भारतीय देशभक्तों की कारावास और बलिदान की कहानी

(देशभक्तों द्वारा स्वयंलिखित ऐतिहासिक दस्तावेज)

आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक

प्रेरणा शहीदों से हम नहीं लेगें, आजादी ढलती हुई सांझ हो जाएगी ।
शहीदों की पूजा हम नही करेगें, तो यह मानो वीरता बांझ हो जाएगी ॥

इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक विशेषताएँ—

यह ग्रन्थ एक ऐतिहासक दस्तावेज है जिसमें अधिकांश विवरण क्रान्तिकारियों के द्वारा लिखे गये हैं ।

समकालीन क्रान्तिकारियों के लिखित विवरणों के कारण पुस्तक के आलेख अधिक प्रामाणिक हैं ।

अंग्रेजों द्वारा रोंगटे खड़े कर देने वाली यातनाओं का सचित्र और प्रामाणिक विवरण है । अंग्रेज लेखकों द्वारा स्वयं वर्णित दृश्य अत्यन्त मार्मिक हैं ।

क्रान्तिकारियों द्वारा रचित और गाये जाने वाले गीतों का संकलन पुस्तक की महत्ता को बढ़ा देने वाला है ।

दुर्लभ चित्रों का संग्रह अत्यन्त प्रयास से किया गया है जो दुर्लभ है ।

निष्कर्षत:, पुस्तक का प्रत्येक लेख और गीत रक्त को उद्वेलित करके देशभक्ति की भावना भरने वाला है ।

यह ग्रन्थ देशभक्त बलिदानियों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता का स्मरण है ।

आर्य सिद्धान्त
कौमुदी

भारतीय देशभक्तों के कारावास और बलिदान की कहानी

(देशभक्तों द्वारा लिखित ऐतिहासिक दस्तावेजों और चित्रों सहित प्रामाणिक जीवनियां)

(परिवर्धित संस्करण)

लेखक एवं संकलनकर्त्ता

आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक'

आचार्य–व्याकरण, संस्कृत साहित्य; एम० ए० (वेद, संस्कृत)

सम्पादक एवं विवरण लेखक

डॉ० सुरेन्द्रकुमार

आचार्य (संस्कृत साहित्य, व्याकरण, दर्शन)
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी० एच० डी०
(मनुस्मृति-भाष्यकार)

प्रकाशक

सत्यधर्म-प्रकाशन

रोहिणी, नई दिल्ली-८५

प्रकाशक : **सत्यधर्म-प्रकाशन**
सत्य सनातन वेदमन्दिर-आश्रम
डी-१२, सैक्टर-८, रोहिणी, नई दिल्ली-८५
दूरभाष : ०११-५५७५९६४६, मो० ०९२१३३-२६५५२

प्राप्ति-स्थान :

१. **हरयाणा साहित्य संस्थान**
महाविद्यालय गुरुकुल, झज्जर
हरयाणा-१२४१०३

२. **गोविन्द राम हासानन्द**
नई सड़क, दिल्ली-६, फोन : ०११-२३९७७२१७

संस्करण : २०६२ विक्रमी संवत्, (२००६ ई०)

© सर्वाधिकार लेखकाधीन

मूल्य : ६००.०० रुपये (पुस्तकालय संस्करण)

शब्द-संयोजक :

स्वस्ति कम्प्यूटर, कैलाशनगर, दिल्ली-३१
दूरभाष : ०९२५५१-६६०२३, ०१७४५-२७४५६८ (नि०)

आवरण सज्जा :

महालक्ष्मी, कैलाशनगर, दिल्ली-३१
दूरभाष : ९३१३७८४२७२, ०११-५५८४५५९९

मुद्रक : **राध प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली-३१

विषयानुक्रम

		पृष्ठ संख्या
१.	सहयोगी ग्रन्थ सूची	८
२.	प्रकाशकीय	९
३.	भूमिका	१०
४.	सन् १८५७ से पहले की प्रमुख घटनाएं	१७
५.	पहला शहीद मंगल पांडे	२४
६.	झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	२७
७.	विद्रोही राजा कुंवरसिंह	३०
८.	वीर राजा अमर सिंह	३२
९.	तांत्या टोपे	३४
१०.	सम्राट् बहादुरशाह और उसके बेटों का बलिदान	३५
११.	नागपुर के साथ अंग्रेजों का विश्वासघात	३७
१२.	स्वतन्त्रता संग्राम में हरियाणा का योगदान	४०
१३.	राव तुलाराम	५०
१४.	कूका विद्रोह और अंग्रेजों की बर्बरता	५३
१५.	सन् १८५७ में अंग्रेजी दरिन्दों के अमानुषिक अत्याचार —अंग्रेज लेखकों द्वारा वर्णित	५९
१६.	क्रान्तिकारी शहीद चापेकर बन्धु	६९
१७.	बंग-भंग आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमानों में फूट	७७
१८.	लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक	७८
१९.	विपिनचन्द्र पाल	८२
२०.	साइमन कमीशन और लाला लाजपतराय	८४
२१.	क्रान्तिगुरु श्याम जी कृष्ण वर्मा	९१
२२.	क्रान्तिकारी वीर सावरकर बन्धु	९५
२३.	मुजफ्फरपुर बमकाण्ड और उसके शहीद खुदीराम बोस, प्रफुल्लकुमार चाकी	११९

२४.	अलीपुर बम केस और उसके बलिदान	१२५
	सत्येन्द्र कुमार वसु, कन्हाईलाल दत्त	१२५
	उल्लासकर दत्त	१३३
	उपेन्द्रनाथ	१३७
	वारीन्द्र घोष	१५२
	अरविन्द घोष	१५६
२५.	क्रान्तिकारी वीर मदनलाल धींगड़ा	१८७
२६.	सूफी अम्बाप्रसाद	१९४
२७.	दिल्ली बमकाण्ड और उसके बलिदान	१९८
	भाई बालमुकुन्द	२००
	मास्टर अमीचन्द	२०३
	अवधबिहारी	२०६
	बसन्त कुमार बिस्वास	२०७
	रास बिहारी बोस	२०८
२८.	मि० अथावले	११९
२९.	अच्युतराव कोल्हटकर	२२०
३०.	लाहौर रायट केस	२२६
३१.	नवरत्नों का निर्वासन	२२९
३२.	गदर पार्टी के संस्थापक—लाला हरदयाल	२३५
३३.	कामागाटामारू और बजबज गोलीकाण्ड	२३८
३४.	जेल शहीद भानसिंह	२४१
३५.	बाबू हरिनाम सिंह	२४४
३६.	बर्मा विद्रोह और उसके बलिदान	२४६
	नारायण सिंह, सोहनलाल पाठक	
३७.	कैनेडा में शहीद हुए देशभक्त	२५१,
	भाई भागसिंह, भाई वतनसिंह, भाई मेवासिंह	
३८.	फिरोजपुर थानेदार-हत्याकाण्ड के शहीद	२५८
	पं० काशीराम, श्री गन्धासिंह	
३९.	बब्बर अकाली दल के शहीद	२६३

	किशनसिंह गर्गज्ज, नन्दसिंह, सन्तासिंह दलीपसिंह, धन्ना सिंह, बन्तासिंह धामियां व ज्वालासिंह, बर्यामसिंह	
४०.	बोमेली युद्ध के चार शहीद	२७४
	कर्मसिंह, उदयसिंह, बिशनसिंह, महेन्द्र सिंह	
४१.	मैनपुरी काण्ड और शहीद पं० गेंदालाल दीक्षित	२७६
४२.	लाहौर का पहला मुकद्दमा	२७८
	करतारसिंह	२७८
	विष्णुगणेश पिंगले	२८१
	भाई परमानन्द	२८३
	रास बिहारी	२८९
४३.	क्रान्तिकारी ऊधमसिंह (अमरीका से लौटने वाले)	२९९
४४.	क्रान्तिकारी जगत् सिंह (अमरीका से लौटने वाले)	३००
४५.	लाहौर का दूसरा मुकद्दमा	२९९
	डॉ० मथुरा सिंह, श्री बलवन्त सिंह, वीर बन्ता सिंह, श्री रंगासिंह, श्री वीरसिंह	
४६.	लाहौर का तीसरा मुकद्दमा	३०८
	डॉ० अरुड़सिंह, उत्तमसिंह, केहर सिंह, जीवन सिंह	
	फरवरी क्रान्ति का भेदिया—कृपालसिंह	३१२
४७.	ऊधमसिंह व जगतसिंह	३१३
४८.	रौलट एक्ट और जलियांवाला बाग की बर्बर घटना	३१५
४९.	वीर सरदार ऊधम सिंह	३१८
५०.	शहीद खुशीराम	३२१
५१.	राष्ट्रपिता महात्मा गांधी	३२३
५२.	लाला हरकिशन लाल	३२७
५३.	लाला गोवर्द्धन दास	३२९
५४.	रामभजदत्त चौधरी	३३२
५५.	दीवान मंगलसेन	३४७

५६.	डॉ० सत्यपाल	३५६
५७.	डॉ० सैफुद्दीन किचलू	३६२
५८.	श्री मजहर अली	३६६
५९.	श्री लालचन्द फलक	३७०
६०.	सुन्दरलाल बी.ए.	३७८
६१.	माखनलाल चतुर्वेदी	३८०
६२.	महात्मा भगवानदीन की जेल-यात्रा	३८२
६३.	काकोरी काण्ड और उसके शहीद	३८५
	पं० रामप्रसाद बिस्मिल	३८५
	राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी	४३२
	रोशनसिंह	४३४
	अशफाकउल्ला खां	४३७
	योगेश चन्द्र चटर्जी	४५६
	गोविन्दचरण कर	४६०
	सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य	४६३
	भूपेन्द्र सान्याल	४६४
	मन्मथनाथ गुप्त	४६५
	शचीन्द्रनाथ बख्शी	४६७
६४.	लाहौर साण्डर्स हत्याकाण्ड के शहीद	४७१
	सरदार भगतसिंह	४७१
	शिवराम राजगुरु	४८४
	सुखदेव	४८६
	पत्र और कोर्ट में दिये बयान	४८८
६५.	शहीद चन्द्रशेखर आजाद	५०४
६६.	भागवतीचरण और दुर्गादेवी	५०९
६७.	रोशनलाल मेहरा	५११
६८.	चटगांव शस्त्रागार काण्ड	५१४

६९.	बंगाल के कुछ जुझारू क्रान्तिकारी	५१६
	यतीन्द्रनाथ मुकर्जी तथा चार साथी	
	गोपी मोहन साहा, नलिनी वाक्च्य,	
	यतीन्द्रनाथ दास	
७०.	बंगाल की क्रान्तिकारिणी महिलाएं	५२३
७१.	मद्रास के प्रमुख क्रान्तिकारी—बंची अय्यर	५२६
७२.	अगस्त १९४२ की क्रान्ति और अंग्रेजों की क्रूरता	५२८
	पटना सचिवालय के आठ किशोर शहीद	५२९
	अगस्त क्रान्ति में स्त्रियों के साथ क्रूरता	५३१
	जेलों में अगस्त बन्दियों पर अत्याचार	५३७
७३.	नेताजी सुभाष चन्द्र बोस	५४८
७४.	नौसेना द्वारा विद्रोह	५५४
७५.	बीसवीं शती में हरियाणा में क्रान्तिकारी गतिविधियां	५५५
७६.	गणेशशंकर विद्यार्थी	५६३
७७.	अमरबलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द	५६५
७८.	भारत निर्माता सरदार वल्लभभाई पटेल	५६८
७९.	क्रान्तिकारियों द्वारा रचित उनके प्रिय	५७०
	गीत एवं कविताएँ	
	आजादी की वधशाला	५९५
८०.	क्रान्तिकारियों के नाम, स्थान एवं प्रमुख	
	शब्दों की अनुक्रमणिका	६०३

सहयोगी ग्रन्थ सूची

१. चान्द फांसी अंक
२. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास (आ० क्रा० आ० इति०) — मन्मथनाथ गुप्त
३. मेरा आजीवन कारावास — वीर सावरकर
४. अशफाक उल्ला और उनका युग — सम्पादक : सुधीर विद्यार्थी
५. कारावास की कहानी — सम्पादक : झाबरमल शर्मा
६. भगतसिंह और उनके साथियों के दस्तावेज — सम्पादित : जगमोहन सिंह एवं चमनलाल
७. भारत के क्रान्तिकारी — लेखक : मन्मथनाथ गुप्त
८. अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल (आत्मकथा) — सम्पादक : बनारसीदास चतुर्वेदी
९. हिस्ट्री ऑफ दि सिपाही — सर जॉन के
१०. इण्डियन म्यूटिनी — चार्ल्स बॉल
११. सिपाही वार — होम्स
१२. प्रोविजन सिविल कमिश्नर — जार्ज कैम्पवेल
१३. नैरेटिव ऑफ दि इण्डियन रिवोल्ट
१४. ग्रेटर ब्रिटेन — चार्ल्स डिल्क
१५. दि क्राइसट्स् इन दि पंजाब — कमिश्नर फ्रेड्रिक कूपर
१६. लाइफ ऑफ लार्ड लारेंस — लार्ड एलफिस्टन
१७. लैटर इन बोम्बे टेलिग्राफ — मांटगुमरी मार्टिन
१८. रसल्स डायरी (समाचार-पत्र) — रसल
१९. आत्मकथा — श्री अरविन्द
२०. आत्मकथा — महात्मा गांधी
२१. मेरी जलावतनी की दास्तान — लाला लाजपतराय
२२. बलिदान अंक (सुधारक पत्रिका) — गुरुकुल झज्झर
२३. हरियाणा का इतिहास (सभी हरियाणा सन्दर्भ) — डॉ० के.सी. यादव

पत्र-पत्रिकाएं

२४. केसरी
२५. किरती
२६. स्टेट्समेन
२७. झंगस्याल
२८. अमृत बाजार पत्रिका
२९. दैनिक ट्रिब्यून

द्वितीय संस्करण का प्रकाशकीय

'सोने में सुगन्ध है' यह संस्करण

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण पर्याप्त संख्या में छपा था। पाठकों ने उसको इतना पसन्द किया कि उसके समाप्त होने पर दूसरे संस्करण की मांग आने लगी। देश को आजाद कराने वाले बलिदानियों के 'पुण्य चरित' को पढ़ने में पाठकों द्वारा रुचि लिये जाने का मतलब है–उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना, उनके बलिदान का महत्त्व समझना, उनको सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करना। मुझे प्रसन्नता है कि पुस्तक के प्रकाशन का मेरा सदुद्देश्य पूर्ण हुआ।

जब पाठकों ने इस पुस्तक के प्रति इतनी रुचि दिखायी तो मैंने भी इसे और अधिक उपयोगी रूप में प्रस्तुत करने का विचार किया। यह दूसरा संस्करण मानो **'सोने में सुगन्ध'** वाला है। पहले संस्करण में बलिदानियों के दस्तावेजों को महत्त्व दिया गया था, इस संस्करण में आजादी के आन्दोलन में भाग लेने वाले सभी प्रमुख क्रान्तिकारियों, बलिदानियों और स्वतन्त्रता सेनानियों और स्वतन्त्रता सम्बन्धी विवरणों को भी सम्मिलित किया गया है। अब यह इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए एक संतुष्टिप्रद ग्रन्थ बन गया है, एक **'बलिदान विशेषांक'** बन गया है। आशा है इस 'पुण्यचरित' में पाठक और अधिक रुचि दिखायेंगे और इसका अध्ययन कर-कराके बलिदानियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करेंगे तथा देशभक्ति की प्रेरणा ग्रहण करेंगे। देशभक्तों ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया। अपना बलिदान देकर देश को आजादी दिलायी। अब हमारा कर्त्तव्य है उनके पुण्य चरितों को स्मरण रखकर उन्हें अमर रखें।

यह ऐसी पुस्तक है जो सदा घर में रहनी चाहिए। यह देशभक्ति के साथ-साथ नयी पीढ़ी का मार्गदर्शन करेगी और उसे बहकने से बचायेगी। जिस बालक या युवक-युवती के हृदय में देशभक्ति के संस्कार होंगे, वह कभी गुमराह नहीं हो सकता। इस पुस्तक के द्वारा आप भावी पीढ़ी का निर्माण कीजिए, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

सामग्री संकलन के लिए जिन पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं का मैंने उपयोग किया है, उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। इसका पुनः सम्पादन करने के लिए मैं डा० सुरेन्द्रकुमार जी (मनुस्मृतिभाष्यकार) का भी आभारी हूं। उन्होंने मेरा मार्गदर्शन भी किया, सहयोग भी किया, सम्पादन भी। उनके द्वारा लिखी गयी भूमिका प्रेरक और उपयोगी होने के कारण इस संस्करण में भी यथावत् दी जा रही है।

मेरा कार्य था राष्ट्रयज्ञ की इस अग्नि को प्रज्वलित करना और प्रज्वलित रखना। अब पाठकों का कर्त्तव्य है कि वे इस राष्ट्र यज्ञ में सहयोग की आहुति देकर पुण्य के भागी बनें और देशभक्ति का परिचय दें।

–आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक'

भूमिका

स्वतन्त्रता संग्राम : क्या पाया, क्या खोया ?

थोड़े से विदेशी आक्रान्ता आये, इस विशाल भारत को लूटा, रौंदा, जलाया, निर्दयतापूर्वक नरसंहार किया और लौटकर चले गये। कभी यूनानी, कभी हूण, कभी शक, कभी पठान, कभी मुसलमान आये। वे आते रहे और जाते रहे। खून मुंह लग गया और शासक बन बैठे!

.....फिर, चार हजार मील दूर से चलकर मुट्ठीभर अंग्रेज आये और तीस करोड़ भारतीयों को गुलाम बना लिया। जब भी किसी ने आजादी की बात की तो उनका सिर धड़ से अलग कर दिया गया, किसी को सूली पर टांग दिया, किसी को तोप के मुंह पर बांधकर उड़ा दिया गया, गलियों और चौराहों पर सार्वजनिक रूप से फांसी पर लटकाया गया, हाथियों से कुचलवाया, कारावासों में डाला, बलात्कार, आगजनी जैसे नृशंस तरीकों से कुचला गया। क्रूर से क्रूर, भंयकर से भंयकर यातनाएं दी गयीं ताकि लोग आजादी की इच्छा करते हुए भी कांप जायें, आजादी प्राप्त करने का प्रयत्न तो दूर रहा।

क्यों ? आखिर क्यों हुआ यह सब ? कैसे हुआ ?

प्रश्न बहुत छोटा-सा है किन्तु उत्तर उतना छोटा नहीं है। उत्तर पाने के लिए हमें अपने कई हजार साल के इतिहास पर दृष्टिपात करना पड़ेगा, आत्मनिरीक्षण करना पड़ेगा। तब हमें निश्चय ही इन शर्मनाक पराजयों के कारण मिल जायेंगे।

जहां एक ओर भारतीय जाति अति अहिंसावाद के प्रचार-प्रभाव से कायर और दब्बू बन गयी थी वहीं साथ-साथ स्वार्थ, फूट, ईर्ष्या-द्वेष, देशभक्ति का अभाव, गद्दारी, अज्ञान, अशिक्षा, अन्धविश्वास, संकीर्णता, सामाजिक भेदभाव, पक्षपात, गरीबी आदि दुर्गणों और त्रुटियों ने इसे खोखला बना दिया था। इन्हीं कमजोरियों का लाभ उठाकर विदेशी आक्रान्ताओं ने अपनी बलनीति, कूटनीति और फूटनीति के सहारे इस विशाल देश को गुलाम बना लिया।

इन प्रवृत्तियों के बीज आज भी इस जाति से नष्ट नहीं हुए हैं। यही कारण है कि हम आज भी अपनी संस्कृति-सभ्यता, साहित्य, देश को हीन मानकर अपने आक्रान्ताओं की प्रशंसा और गुण-वर्णन में गौरव समझते हैं।

किन्तु फिर भी इस देश में कुछ देशभक्त, स्वतन्त्रताप्रिय, बहादुर, साहसी वीर और वीरांगनाएं, राजा-महाराजा, महापुरुष जन्म लेते रहे हैं जो समय-

समय पर देश और आजादी की रक्षा के लिए जूझते रहे हैं। आजादी प्राप्त करने के लिए उन्होंने लम्बा संघर्ष किया है। इस संघर्ष में हजारों माताओं ने अपने लाल लुटाये हैं। हजारों बहनों ने अपने भाइयों को न्यौछावर किया हैऔर हजारों वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की आहुति दी है।

जब चारों ओर स्वतन्त्रता की रणबेरी बज रही थी, स्वतन्त्रता के दीवाने खून की होली खेल रहेथे, तब किसी कवि ने कितनी आशाभरी उमंगों से ये पंक्तियां लिखी होंगी–

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

क्या आज लग रहे है शहीदों की चिताओं पर मेले ? आजादी प्राप्त करने के बाद, अठावन वर्षों के इतने थोड़े से समय में ही शहीदों और स्वतन्त्रता सेनानियों को जिस प्रकार भुला दिया गया है, जैसी उनकी उपेक्षा की जा रही है, देश का जो अध:पतन और दुर्गति हो रही है, उसे देखकर उस कवि की आत्मा कहीं खून के आंसू रो रही होगी।

संसार में, नैतिकता, नीतियों, जीवनमूल्यों में कितनी विडम्बना है कि जब कोई व्यक्ति, व्यक्ति स्तर पर किसी के घर पर कब्जा करता है तो निन्दनीय कहलाता है, किसी अन्याय के फलस्वरूप हत्या करता है तो हत्यारा, धन अपहरण करने पर लुटेरा–डाकू, चोरी करने पर चोर, जैसी घृणित संज्ञाओं से पुकारा जाता है। समाज उस से घृणा करता है और शासन उसे दण्ड देता है। किन्तु जब यही कार्य कोई देश दूसरे देश के साथ करता है तो उसे राजनीति कहा जाता है जबकि वह उतना ही विराट् अपराध है। देशभक्तों की यह दृढ़ मान्यता थी कि अंग्रेजों ने हमारे देश के प्रति ये सभी अपराध किये है जो गैर कानूनी हैं; अत: वे महाहत्यारे, महाडाकू, महालुटेरे, महाचोर हैं और उन्हें दण्ड दिया जाना चाहिए। जितना उनका वश चला उतना दण्ड दिया भी।

हमें यह निश्चित रूप से जान और मान लेना चाहिए कि आजादी हमें किसी एक आन्दोलन से नहीं मिली है। इसमें क्रान्तिकारी, अहिंसावादी और आजाद हिन्द फौज सभी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सत्ता को कोई थाली में परोसकर नहीं देता, जब तक भय न हो। भय ही अंग्रेजों के शासन छोड़कर जाने का मूल कारण था। उनके मन में यह भय पनपा जब चारों ओर से उन पर दबाव पड़ा।

प्राणों की बाजी लगाकर आजादी दिलाने वाले वीर शहीदों की चिताओं पर मेले तो तब लगते, जब उनकी चिताएं बनतीं, स्मारक बनते। आजाद शासन

ने न वे बनाये, न मेले लगाये। आम जनता ने अवश्य बनाये, लेकिन वे उपेक्षित पड़े रहे। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आजादी के बाद बीस वर्षों तक तो भगतसिंह आदि का स्मारक इस कारण नहीं बनाया गया कि कहीं ब्रिटिश सरकार हम से रुष्ट न हो जाये। रामप्रसाद बिस्मिल और अशफाक उल्ला जैसे क्रान्तिकारियों के स्मारक जर्जर दशा में धूल फांक रहे हैं। आजादी हम ने लड़कर ली है, संघर्ष करके ली है, किन्तु तत्कालीन भारतीय नेताओं ने यह माना कि अंग्रेजों ने आजादी हमें जैसे थाली में परोस कर दी है, हम पर अहसान किया है। हमारी इस मानसिकता का उद्‌घाटन प्रसिद्ध पत्रकार मनोरमा दीवान ने अपने एक लेख में किया है, जिसे पढ़कर अपने शासकों पर तरस आता है-

"भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन का सबसे बड़ा अपमान भला और क्या होगा कि आजादी हासिल करने के पूरे बीस वर्ष बाद जलियांवाला बाग में शहीद स्मारक बना। उन गोलियों को नुमायां करके दिखाया गया जो सभी हिन्दुस्तानियों ने मिलकर अंग्रेजी हुकूमत से खाई थीं। इन्दिरा गांधी के बड़े से बड़े आलोचक भी उन्हें इस बात का श्रेय जरूर देते हैं कि १९६६ में प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने जलियांवाला बाग स्मारक बनवाया। हुसैनीवाला में भगतसिंह-सुखदेव और राजगुरु का शहीद-स्मारक बनवाया और स्मारक बनने पर स्वयं वहां श्रद्धांजलि अर्पित करने भी गईं। इन्दिरा गांधी ही ने स्वतन्त्रता सेनानियों को मान्यता दी। उनका सम्मान किया।

लेकिन १९४७ से लेकर १९६७ के बीस वर्षों में भारत ने स्वयं को कामनवेल्थ की जंजीरों में इस तरह जकड़ रखा था कि वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध कुछ खुलकर कहने में हिचकिचाता था। शायद मैं अपने पाठकों को यह घटना पहले भी बता चुकी हूं। लेकिन आज फिर से उसे दोहराना जरूरी समझती हूं कि भारत के मशहूर पत्रकार और लेखक मेरे स्वर्गीय पति दीवान वीरेन्द्रनाथ (जफर पयामी) ने जब १९६० में १३ अप्रैल के दिन आल इण्डिया रेडियो के लिए एक टिप्पणी जलियांवाला बाग में हुए हत्याकाण्ड पर लिखी तो उसे यह कहकर रद्द कर दिया गया कि इससे भारत-ब्रिटिश सम्बन्ध खराब होंगे। तब तक बाकायदा यही सरकारी आर्डर थे कि भारत की जंगे आजादी का जिकर करते हुए केवल विदेशी हुकूमत या विदेशी साम्राज्यवाद का नाम लिया जाये। ब्रिटिश शब्द न इस्तेमाल किया जाये।

ब्रिटिश भावनाओं की रक्षा और सम्मान करते हुए हमारे शासक यह भूल गये कि वह कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं—·····वतनपरस्ती और देशप्रेम की भावनाओं की कुरबानी दे रहे हैं। बरसों तक हमारे बच्चों ने स्कूलों में अपने

देश की स्वतन्त्रता के इतिहास को नहीं पढ़ा। हमारे फिल्म निर्माता-डाकुओं, स्मगलरों को हीरो बनाकर शहीदों पर हावी होते रहे और भारतवासियों के दिमाग की धुलाई करते रहे।

न शहीदों की चिताएं बनीं, न उन पर हर बरस मेले लगे"

(दैनिक ट्रिब्यून, २८ मार्च १९९५)

आज मेले लगते हैं, पर शहीदों की चिताओं पर नहीं। आज मेले लगते हैं-सत्तालोलुप, स्वार्थी, भ्रष्ट, खुशामदबाज राजनेताओं की सभाओं-रैलियों में या उनके बंगलों पर। आज मेले लगते हैं-अभिनेताओं की कोठियों पर। आज मेले लगते है-सिनेमाघरों, जुआघरों, बदमाशों के अड्डों, होटलों या क्लबों में। आजादी और आजादी के परवानों को याद करने के लिए न किसी के पास समय है, न इच्छा। वीरों के बलिदान और स्वतन्त्रता सेनानियों की यातनाओं पर शासन का सुख भोगने वाले आज के नेताओं और अफसरों को उनकी याद बस एक मौसम की तरह आती है तो बेमन से रस्म-अदायगी की औपचारिकता पूरी करने में अपने कर्त्तव्य की पूर्णता समझ ली जाती है। उन्हें फुर्सत ही कहां है, कुर्सी हथियाने, एक-दूसरे की टांग खींचने, आरोपों-प्रत्यारोपों, राजनीतिक कुचालों और आपाधापी से ? क्या इसीलिए सौंपी थीं हमे आजादी की बागडोर बलिदानी वीरों ने ?

खेद है कि जिस स्वतन्त्रता, जिस अपने भारत, अपनी संस्कृति-सभ्यता, जिस अच्छी व्यवस्था, अच्छे शासन, अच्छे वातावरण, अच्छे उद्देश्यों, सिद्धान्तों और आदर्शों की देशभक्तों ने कल्पना की थी, जिनके लिए उन्होंने अपने प्राणों को न्यौछावर किया था, वे सभी उद्देश्य, थोड़े से दिनों की तथाकथित स्वतन्त्रता में दफन कर दिये हैं। ब्रिटिश शासनकाल में अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, लूटखोरी, अपराधों, स्वार्थ और शोषण का जो विकराल रूप था, आज के तथाकथित स्वतन्त्र भारत में वह और भी भयंकर एवं विकृत रूप धारण कर गया है। आजादी की लड़ाई में गद्दारी की भूमिकाएं निभाने वाले लोग आज भी सुख-वैभव लूट रहे हैं और शहीदों के परिवार तथा स्वतन्त्रता सेनानी दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं। आज की स्थिति को देखते हुए, प्रत्येक देशभक्त के हृदय में जो मर्मांतक पीड़ा उभरती है, उसकी कुछ अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों द्वारा की जा सकती हैं-

इक हूक सी दिल में उठती है, इक दर्द जिगर में होता है।
हम रात को उठ कर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है॥

अंग्रेज चतुर, चालाक और कूटनीतिज्ञ थे। व्यापार की आड़ लेकर आये,

व्यापारी के वेश में आये और हमारी कमियों का लाभ उठाकर, फूट डालकर इतने बड़े राष्ट्र को गुलाम बना लिया। उस समय भारत पर आक्रमण के दो लक्ष्य थे-राजनीतिक और सांस्कृतिक आक्रमण!! १५ अगस्त १९४७ को हम आजाद तो हो गए किन्तु राजनीतिक दृष्टि से ही। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ऐसा लगा कि अब उनका सांस्कृतिक आक्रमण भी शिथिल पड़ जायेगा। किन्तु यह केवल कल्पना सिद्ध हुई। आज तक भी हम अपनी आजादी के सही उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। आज भी हम अपनी संस्कृति-सभ्यता, भाषा, विचारधारा, धर्म को अंग्रेजियत से आजाद नहीं करा पाये हैं। आज भी हम मैकाले की कूट शिक्षानीति के शिकंजे में जकड़े हुए हैं। ऊपर से अंग्रेज संस्कृति का भारत पर फिर से कूट 'सांस्कृतिक आक्रमण' हो चुका है। यों समझिए कि एक और मैकाले एक नयी कूटनीति अपनाकर अश्लील साहित्य, अश्लील फिल्मों, नग्नता, कामुकता, भोगवाद, चकाचौंध और आधुनिकता के छद्मवेश में भारत के घर-घर में और नयी पीढ़ी के दिल-दिमागों में घुस चुका है। यह सांस्कृतिक हमला अपने साथ इस बार केवल विधर्मी और विकृत विचारधारा ही नहीं लाया है, लाइलाज बीमारियां भी लेकर आया है। जन-सेवा, सहयोग, अनुदान, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, मानवाधिकार जैसे आकर्षक शब्दों की आड़ लेकर भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया आया है। परिणाम हमारे सामने आने लगे हैं-गुमराह होती नयी पीढ़ी के रूप में, नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों के ह्रास के रूप में, भारतीय संस्कृति-सभ्यता के प्रति उदासीनता के रूप में।

युवा पीढ़ी किसी भी देश की रीढ़ की हड्डी होती है। देश को आजाद कराने वालों में युवाओं का विशेष योगदान रहा है। देश के भार को अपने कन्धों पर ढोने वाले आज के युवाओं का यह हाल है कि उनके कन्धे अपनी जिन्दगी के बोझ से ही झुक गये हैं। वे देश का बोझ क्या उठायेंगे? शक्ति, सामर्थ्य और नवनिर्माण का प्रतीक माना जाने वाला युवा वर्ग आज उसी पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध में चौंधिया गया है या जानबूझकर चौंधिया दिया गया है, जिस संस्कृति ने हमें गुलाम बनाया था। उसकी चकाचौंध में पड़कर वो निराशा-हताशा, नशा-व्यसन, अपराध-कामुकता आदि के रास्ते पर चलकर स्वयं गुमराह हो रहे हैं, वे देश को क्या रास्ता दिखा पायेंगे? आज के नवयुवकों की यह स्थिति है कि यदि उनसे कहा जाये कि एक दर्जन अभिनेताओं-अभिनेत्रियों के नाम गिनाओ तो वह दो दर्जन नाम गिना देगा, किन्तु आजादी के लिए मर मिटने वाले वीरों और वीरांगनाओं के नाम आधा दर्जन ही मुश्किल से पूरा कर पायेगा! उनके लिए आज राष्ट्रीयता, राष्ट्र-भाषा, स्वराज्य, देशप्रेम आदि का अर्थ और महत्त्व लुप्त हो रहा है। इस नयी सांस्कृतिक और आर्थिक

गुलामी का पंजा उनकी गर्दनों की ओर चुपके-चुपके बढ़ता चला आ रहा है। गुलामी का एक और शिकंजा कसता चला जा रहा है—सांस्कृतिक गुलामी का!

गुलामी के इस नये पंजे और शिकंजे से यदि कोई बचा सकता है तो वह है आजादी का साहित्य, आजादी का इतिहास, आजादी के लिए मर-मिटने वाले वीरों और वीरांगनाओं की जीवन-गाथाएं। आजादी का साहित्य ही आज के लोगों को राष्ट्रीयता, देशभक्ति, स्वतन्त्रता, स्वराज्य जैसे शब्दों का सही अर्थ समझा सकता है। आजादी का साहित्य ही आज के भटके-बहके युवकों के मन को सही मार्ग पर लाकर प्रेरणा-प्रकाश से सही रास्ता दिखा सकता है। यही सोये हृदयों को जगा सकता है। यही उनकी रगों में जमे हुए रक्त को पिघला सकता है। यही बुद्धि को यह सोचने के लिए तरंगित कर सकता है कि हमारी आजादी का उद्देश्य क्या था और क्या हमने सही अर्थों में उस उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास किया है? और इससे बढ़कर कहा जा सकता है कि यही साहित्य तथाकथित स्वतन्त्रता के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार, कुशासन, लूट-खसोट, अन्याय, अनाचार, सांस्कृतिक और सामाजिक भटकाव के विरुद्ध एक नयी क्रान्ति ला सकता है। कुम्भकर्णी नींद में सोयी और मैकाले की शिक्षा में बहकी इस भारतीय जाति को, इस अवस्था से यही साहित्य उबार सकता है। इसलिए, आज की परिस्थितियों में यह और अधिक आवश्यक हो गया है कि इस प्रकार के साहित्य का अधिक से अधिक प्रकाशन और प्रचार-प्रसार हो।

आपका कर्त्तव्य

और, इस नयी आजादी की क्रान्ति में आप पाठकों का योगदान भी चाहिए। प्रकाशक का कर्तव्य है उसे प्रकाशित करना और आपका कर्तव्य है इस साहित्य को स्वयं पढ़ना और अधिक से अधिक पाठकों तक पहुंचाना। उन्होंने अपने कर्तव्य को पूरा किया है। अब आपका कर्तव्य है इसे जन-जन तक पहुंचाकर भटकी हुई भारतीय युवा पीढ़ी को गुमराह होने से बचाना, आजादी की रक्षा की प्रेरणा देना, राष्ट्रभक्ति का पाठ पढ़ाना और इस तरह अपने देश की, समाज की, परिवार की रक्षा करना। देशभक्ति के साहित्य का प्रचार-प्रसार भी देशभक्ति ही है। तो आइये, देशभक्ति का परिचय देकर राष्ट्रीय साहित्य के प्रचार-प्रसार रूपी यज्ञ में आहुति दीजिये और अपने प्रिय राष्ट्र भारत की रक्षा कीजिये। राष्ट्रप्रेम की परिभाषा के सन्दर्भ में मुझे अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन का सन्देश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है-

"अमेरिका वासियो! तुम यह मत सोचो कि अमेरिका तुम्हारे लिए क्या कर रहा है, अपितु यह सोचो तुम अमेरिका के लिए क्या कर रहे हो। यही शुद्ध राष्ट्रप्रेम है।" आइये, हम भी यह सोचें कि हम अपने भारत के लिए क्या कर रहे हैं?

इस पुस्तक की विशेषताएं

यह पुस्तक केवल आजादी की कहानी ही नहीं है अपितु एक अमूल्य ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसमें देशभक्तों द्वारा लिखित आत्मकथाओं का संकलन है या फिर तत्कालीन देशभक्तों की लेखनी से लिखित संस्मरण हैं। इस प्रकार ये आजादी की कहानियां वास्तविक और प्रमाणिक दस्तावेज हैं।

इस पुस्तक में, मन में आजादी की उमंग लिये और हृदय में देशभक्ति की तरंग लिए फांसी का फंदा चूमने वाले शहीदों रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, रोशन, लहरी, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु आदि की कहानी भी है और बुद्धि में स्वतन्त्र भारत की योजना और स्वराज्य का मानचित्र लेकर संघर्ष करने वाले तिलक, गांधी, लाला लाजपतराय, सरदार पटेल आदि की कहानी भी है। साथ ही अंग्रेजी जेलों में रोंगटे खड़े कर देने वाली यातनाओं को सहने वाले सावरकर, भाई परमानन्द, वारीन्द्रघोष, उल्लासकर दत्त आदि वीरों की मर्मभेदी गाथाएं भी हैं। प्रत्येक कहानी रक्त के कण-कण को उद्वेलित करने वाली है, प्रेरणा देने वाली है।

अन्त में, देशभक्तों द्वारा रचित और उनके प्रिय गीत, कविताएं आदि भी संकलित कर दिये गये हैं।

आशा है यह 'पुण्यचरित' पाठकों को हृदयग्राही लगेगा और इससे प्रेरणाएं प्राप्त करेंगे।

झज्जर
२३ मार्च, १९९५
बलिदान-दिवस

डॉ० सुरेन्द्र कुमार
सम्पादक

भारत माता

ओ३म्
सत्यार्थ प्रकाश
महर्षि दयानन्द सरस्वती

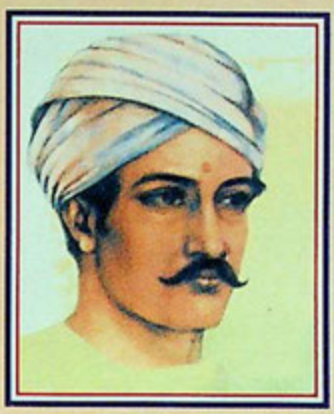

शहीद मंगल पांडे

राजा कुंवर सिंह

रानी लक्ष्मीबाई

नाना साहेब पेशवा

तात्या टोपे

लाला लाजपतराय

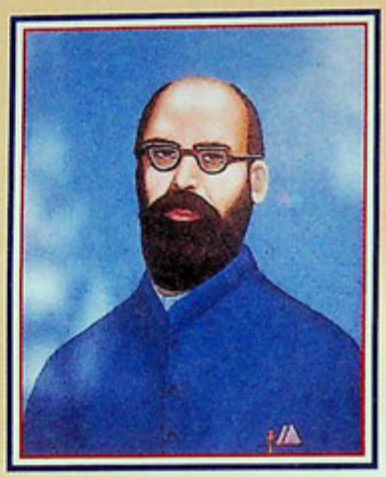

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा

वीर सावरकर

शहीद खुदीराम बोस

मदनलाल धींगड़ा

भाई बाल मुकुन्द

शहीद मास्टर अमीरचन्द्र

शहीद अवध बिहारी जी

रास विहारी बोस

लाला हरदयाल एम.ए
गदर पार्टी के संस्थापक

सोहनलाल पाठक

करतार सिंह

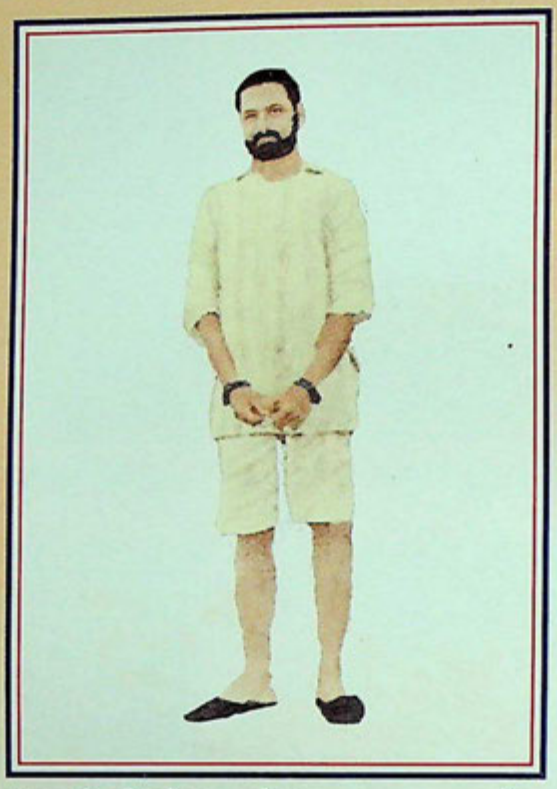

हथकड़ियों से जकड़े हुए अण्डमान जेल
में जाते समय श्रीयुत भाई परमानन्द

शहीद ऊधमसिंह

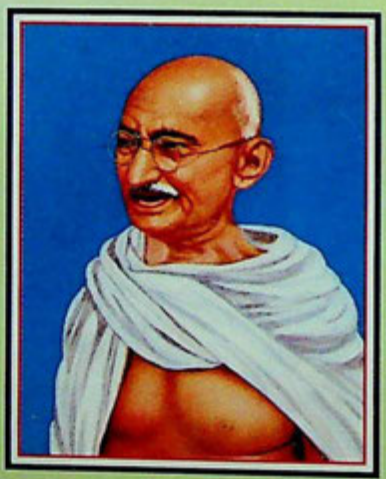

महात्मा गांधी

शहीद रामप्रसाद बिस्मिल

शहीद राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

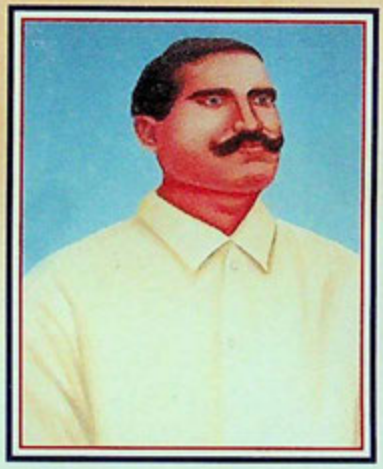

शहीद रोशनसिंह

शहीद अशफाकउल्ला खाँ

मन्मथनाथ गुप्त

बलवन्त फड़के

शहीद सरदार भगतसिंह

शहीद सुखदेव

शहीद शिवराम राजगुरु

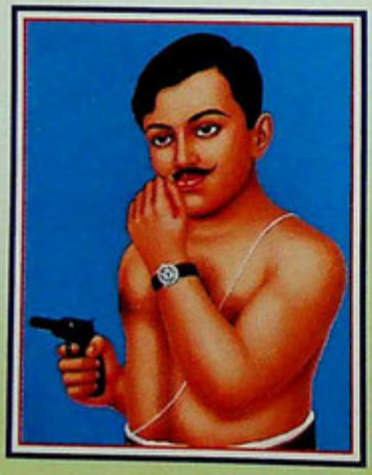

शहीद चन्द्रशेखर आजाद

श्रीमती दुर्गादेवी बोहरा

भारतीय देशभक्तों के कारावास और
बलिदान की कहानी

सन् १८५७ से पहले की प्रमुख घटनाएं

(प्राचीन काल में भारतवर्ष एक समृद्ध देश रहा है। देश-विदेश के लोगों में कोई इसको 'सुवर्णभूमि' कहकर पुकारता था तो कोई 'सोने की चिड़िया'। पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों के कारण यहां प्रायः सभी आवश्यक वस्तुएं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं और विदेशों में उनका निर्यात होता था। यूरोप में यहां से स्वादिष्ट मसालों और महीन कपड़ों के जहाज लदकर जाते थे। उस समय यूरोप में महीन कपड़ा नहीं बनता था। यूरोप के व्यापारी वहां जाकर भारत की समृद्धि की कथाएं सुनाते थे। इसी समृद्धि ने विदेशियों को भारत की ओर आकर्षित किया और अन्ततः यही समृद्धि भारत की गुलामी का एक कारण बनी। यूरोप की ओर से सबसे महत्त्वपूर्ण घटना उस दिन घटी जब भारत की समृद्धि से आकर्षित हुआ वास्को डि गामा पुर्तगाल से चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी करके गोवा में मालाबार तट पर कालीकट के पास उतरा। फिर तो यूरोप से आने वालों का एक सिलसिला ही शुरू हो गया। पहले पुर्तगाली आये, फिर फ्रांसीसी आये और फिर आये अंग्रेज। इन्हीं के साथ आयी भारत की गुलामी। फिर हुई यूरोपियों द्वारा दमन, शोषण, लूट-पाट, अत्याचार, अन्याय, हत्याओं, गांवों और शहरों में आगजनी, शीलहरण, कारावास, मृत्युदण्ड, अमानवीय यातनाओं आदि की शुरुआत। अन्यायी-अत्याचारी अंग्रेजों की बर्बरता के विरुद्ध पहली व्यापक क्रान्ति १० मई, १८५७ को अम्बाला (हरियाणा) से आरम्भ हुई। उसके बाद ही मेरठ में क्रान्ति हुई उससे पूर्व की पृष्ठभूमि की जानकारी पढ़िये क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में।) (**सम्पादक**)

१८५७ से पहले का भारत

१४९८ की २० मई को भारत के मालाबार तट पर कालीकट के पास एक जहाज ने लंगर डाला। उस जहाज में पुर्तगाली लोग थे जो वास्को-डि-गामा नामक जहाजी कप्तान के साथ हजारों मील की साहसपूर्ण समुद्री यात्रा करते हुए भारत आ पहुँचे थे। जिस समय वास्को-डि-गामा भारत के समुद्र तट पर उतरे, उस समय कालीकट में एक हिन्दू राजा राज करता था। उसका नाम जमोरिन था। राजा जमोरिन ने विदेशी आगन्तुकों का खूब स्वागत किया। उस समय किसी को यह

पता नहीं था कि भविष्य में इस घटना का इतना महत्त्व होगा। बस भारत के लिए यह जो नया रास्ता खुला, उस पर हजारों सफेद चमड़ी वाले लोग आने लगे। पुर्तगाली आए, फ्रांसीसी आए, अंग्रेज आए।

सन् १६०० में लन्दन में एक घटना हुई। इस साल कुछ अंग्रेज व्यापारियों ने मिलकर 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना की। ये लोग भारत में आकर व्यापार करना चाहते थे। उन्होंने भी सुना था कि भारत बहुत धनी देश है। वहां मसाला बहुत पैदा होता है, बढ़िया कपड़ा बनता है, सोना-चांदी है, वहां के व्यापार से आदमी बहुत जल्दी धनी हो सकता है। १६०८ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पहला जहाज 'हैक्टर' सूरत पहुंचा। तब तक बम्बई का बन्दरगाह नहीं बना था। उसमें बहुत देर थी, अतः सूरत में ही अंग्रेजों का यह पहला जहाज आया। इस जहाज के कप्तान का नाम हाकिन्स था। वह इंगलैण्ड के राजा जेम्स प्रथम की ओर से उस समय के मुगल बादशाह जहांगीर के नाम एक पत्र लाया था। जब हाकिन्स पत्र लेकर मुगल दरबार में पहुंचा तो वहां पहले से ही वास्को-डि-गामा की जाति के लोग यानी पुर्तगाली मौजूद थे। मुगल सम्राट् को क्या मालूम था कि पुर्तगाल का राजा बड़ा है या इंग्लैंड का। पुर्तगालियों ने मुगल सम्राट् के कान भरे कि इंग्लैंड तो एक बहुत छोटा-सा देश है और उसका राजा बहुत ही मामूली राजा है।

मगर हाकिन्स का दरबार में स्वागत हुआ। मुगल सम्राट् ने सोचा कि जहां पुर्तगाली लोग भारत में व्यापार कर रहे हैं, वहां वे भी व्यापार करते रहें। इसमें क्या आता-जाता है। मुगल सम्राट् को यह मालूम नहीं था कि हाकिन्स का यह जो स्वागत किया गया, उसका आगे चलकर बहुत बुरा नतीजा निकलेगा। यहां तक कि अंग्रेज भारत पर सूरज बन कर चमकेंगे। और उनके सामने मुगल साम्राज्य टिमटिमाता हुआ अस्त हो जाएगा।

अंग्रेजों में उस समय देशभक्ति की भावना उत्पन्न हो चुकी थी, पर भारतीयों में अभी देशभक्ति पैदा नहीं हुई थी, इसका एक प्रमाण यह है। एक बार मुगल सम्राट् शाहजहां की बेटी बीमार हुई। वैद्यों और हकीमों ने सम्राट् की बेटी का इलाज किया, पर लाभ नहीं हुआ। अन्त में एक अंग्रेज डाक्टर के इलाज से वह अच्छी हो गई। इस पर मुगल सम्राट् शाहजहां बहुत खुश हुआ और उसने अंग्रेज डाक्टर से कहा-"तुम जो भी इनाम मांगोगे, वह तुम्हें मिलेगा।"

अगर वह अंग्रेज डाक्टर चाहता तो अपने लिए लाखों की रकम, सोना, चांदी, जवाहरात, घोड़े, मांग लेता। मुंह मांगा इनाम उसे मिलता

क्योंकि मुगलों का खजाना धन से भरा हुआ था।

पर उस डाक्टर ने अपने लिए कुछ नहीं मांगा, उसने सारी अंग्रेज जाति के लिए अधिकार मांग लिए। उसने मांगा "जहांपनाह, हमें भारत में व्यापार करने की अनुमति दी जाए।"

उसी दिन से अंग्रेजों को हिन्दुस्तान की सरजमीं पर व्यापार करने की छूट मिल गई। इस सुविधा से लाभ उठाकर धीरे-धीरे अंग्रेजों की जड़ें भारत में मजबूत हो गई'। भारत में जो दूसरे यूरोपीय थे, वे हार गए और केवल अंग्रेज ही रह गए। अब वे व्यापारी ही न थे, राज भी करते थे और फिर धीरे-धीरे सारा देश गुलाम हो गया। सात समुद्र पार से आए हुए अंग्रेजों का राज्य पूरे हिन्दुस्तान पर हो गया। तब हिन्दुस्तानियों की आंखें खुलने लगीं और वे विद्रोह की बात सोचने लगे।

बीज हमेशा भीतर ही भीतर मिट्टी के नीचे बढ़ता है। जब वह अंकुर रूप में उग कर सामने आता है, तभी लोग उसके अस्तित्व को जान पाते हैं। अंग्रेजों के शोषण और अत्याचारों के कारण भारतीयों में विद्रोह की भावना धीरे-धीरे पैदा हो रही थी। हिन्दू, मुसलमान राजा, रंक सब समझ रहे थे कि यदि अंग्रेजों का राज्य बना रहा, तो सब के लिए दुखदायी है। अंग्रेज व्यापार करने के लिए आए थे, पर धीरे-धीरे यहां के राजा बन बैठे। सदा लड़ाइयां जीत कर राजा बने हों ऐसी बात नहीं। अंग्रेजों ने अपना साम्राज्य स्थापित करने में क्या-क्या चालाकी की, किस प्रकार भाई को भाई से लड़ाया, यह इतिहास में पढ़ सकते हो।

पर ज्योंही अंग्रेज जम गए, त्योंही भारत के लोग उसके विरुद्ध विद्रोह की बात सोचने लगे। कई छोटे-मोटे सिपाही-विद्रोह भी हुए।

१८५७ का विद्रोह

यहां यह बात बता दी जाए कि भारतीय सिपाहियों की सहायता से ही भारत धीरे-धीरे अंग्रेजों के कब्जे में आया था। अवश्य कुछ गोरी फौजें भी रही थीं, पर हिन्दुस्तानी फौजों की संख्या कहीं अधिक थी।

फौज के अन्दर भी असन्तोष था, क्योंकि भारतीय अफसर की जो इज्जत थी, उससे कहीं ज्यादा इज्जत एक अंग्रेज सिपाही की होती थी। सच तो यह है कि अंग्रेज सिपाही की इज्जत भारतीय अफसर की इज्जत से कहीं अधिक थी। अंग्रेज सिपाहियों को कई तरह की सुविधाएं मिली हुई थीं जो भारतीय सिपाहियों को नहीं मिली थीं। अंग्रेज अपने आपको तो राजा समझते थे और भारतवासियों को अपना गुलाम या प्रजा मानते थे।

१८५३ की बात है। इस समय पहले-पहले भारतीय फौज में नए

कारतूस बांटे गए। इन कारतूसों में चर्बी लगी थी और चर्बी लगाते समय यह नहीं देखा जाता था कि यह गाय की चर्बी है या सूअर की चर्बी है। जो भी चर्बी मिली और सस्ती मिलती, वही काम में लाई जाती थी। अगर कारतूसों में चर्बी थी, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था, पर इन कारतूसों को मुंह से खोलना पड़ता था। इस प्रकार हिन्दू या मुसलमान सिपाही के लिए कारतूस खोलना मानो अपने धर्म को चोट पहुँचाना था। हिन्दू के लिए गाय की चर्बी बिल्कुल हराम थी। इसी तरह मुसलमानों के लिए सूअर की चर्बी बिल्कुल हराम थी।

पहले-पहले जब इस तरह कारतूस चला तो पता न लगा, पर धीरे-धीरे बात खुल गई। फौज़ों में तो असन्तोष था अब उसको खुल कर सामने आने का मौका मिल गया। कैसे क्या हुआ, इसकी थोड़ी-सी झलक यों है।

कलकत्ता के पास दमदम नाम से एक जगह है। वहां एक ब्राह्मण सिपाही लोटे में पानी भर कर रास्ते में जा रहा था। इस पर कहते हैं कि एक भंगी आया और उसने ब्राह्मण देवता से कहा-महाराज, मुझे लोटा दे दो, पानी पीऊंगा।

इस पर उस ब्राह्मण देवता ने कहा-भला यह कैसे हो सकता है। तेरे छूने से तो मेरा लोटा अपवित्र हो जाएगा।

इस पर भंगी ने कहा-महाराज, अब वे दिन हवा हो गए, क्या तुमको मालूम नहीं है कि जल्दी ही तुम्हें दांत से उन कारतूसों को खोलना पड़ेगा जिसमें गाय की चर्बी लगी हुई है। नए कारतूस इसलिए जानबूझ कर गाय की चर्बी डालकर बनाए गए हैं ताकि तुम्हारा धर्म नष्ट हो। जिस ऊँची जात का तुम्हें घमण्ड है वह कहां रहेगी ?

उस जमाने में लोगों को जात-पांत का बड़ा घमण्ड था और उस पर चोट हुई तो वे समझते थे कि धर्म पर चोट हो गई। लोगों को विदेशी सरकार की नौकरी में कोई एतराज नहीं था। न उन्हें इस बात पर कोई आपत्ति थी कि उनकी संगीनों और बन्दूकों की बदौलत भारत पर विदेशियों का राज्य कायम है। पर उनको इस पर आपत्ति थी कि मुंह से गाय की चर्बी छुई जाए।

जब ब्राह्मण ने भंगी की यह बात सुनी, तो वह पागल-सा हो गया और वह दौड़ कर छावनी में गया और वह अपने साथी फौजियों को समझाने लगा कि कारतूस में जानबूझ कर गाय और सूअर की चर्बी डाली जा रही है, ताकि लोगों का धर्म नष्ट हो।

यहां यह बता दिया जाए कि यदि सब नहीं तो कुछ अंग्रेज यह जरूर चाहते थे कि भारत के सारे लोग ईसाई हो जाएँ। पर कारतूस में चर्बी डालने का उद्देश्य लोगों का धर्म नष्ट करना नहीं था। मगर थी यह उनकी बड़ी नासमझी और इसका नतीजा भी उनको भुगतना पड़ा। जब वह ब्राह्मण दौड़ कर अपनी छावनी में गया और लोगों ने उसकी बात सुनी तो सब लोग सन्नाटे में आ गए। बात की बात में एक जलूस बन गया और सब सिपाही फौरन अंग्रेज अफसर के पास पहुंचे और उनसे पूछा–क्यों, साहब, ऐसी बात है कि जो कारतूस हमें मिलने वाले हैं, उनमें हिन्दू और मुसलमानों के लिए हराम वस्तुओं का प्रयोग हुआ है?

फौज का जलूस देखकर वह अधिकारी घबरा गया। क्योंकि अब तक तो भारतीय सिपाही बिल्कुल गुलामों की तरह काम कर रहे थे, उन्हें जो भी हुक्म दिया जाता था वे आंख मूँद कर उसका पालन करते थे। उनका यह नया रूप देखकर वह अफसर घबरा गया और उसने झूठ बोला–ऐसी कोई बात नहीं है। कारतूसों में चर्बी नहीं लगाई जा रही है।

पर यह बात सच है कि कारतूसों में चर्बी लगाई जा रही थी। जब अंग्रेज अफसर ने कह दिया कि कारतूस में चर्बी नहीं है तो सिपाही उस समय तो लौट गए। पर लोगों को सन्देह बना रहा। क्योंकि भंगी पक्की खबर लेकर आया था। पर इतनी ही बात से विद्रोह नहीं हो सकता था और होता भी तो सिपाहियों का मामूली विद्रोह होता जिसे दूसरे सिपाही विशेषकर गोरे सिपाही दबा देते। विद्रोह के बहुत से और कारण पैदा हो रहे थे।

जब अंग्रेज पहले–पहले भारत में आए तो स्थिति यह थी कि भारत में जैसा सुन्दर और महीन कपड़ा था, वैसा इंग्लैंड में नहीं बनता था और इंग्लैंड के रईसों में उस तरह के कपड़े की बड़ी खपत थी। हजारों रुपये के कपड़े भारत से इंग्लैण्ड जाते थे। इंग्लैंड में भारत के बने कपड़ों पर बहुत ज्यादा शुल्क लिया जाता था, फिर भी कपड़ा जाता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा उसके कर्मचारियों ने इस व्यापार को हथिया लिया और जुलाहों पर इतना जुल्म किया कि बहुत–से जुलाहों ने कपड़ा–बुनने के डर से अपने अंगूठे काट लिए। उनसे पैसा और माल देकर यह कहा जाता था कि इतने समय के अन्दर तुम इतना कपड़ा जरूर बुन दो। अगर नहीं बुनोगे तो तुम पर जुर्माना होगा। धीरे–धीरे पासा पलट गया, क्योंकि इन्हीं दिनों इंग्लैण्ड में कपड़ा बनाने की मशीनों का आविष्कार हुआ। धीरे–धीरे अंग्रेज सरकार ने अपनी विलायती मिलों के फायदे के लिए यहां के चर्खा और करघा के धन्धे को बिल्कुल दबा दिया।

थोड़े समय में स्थिति इतनी बदल गई कि अब इंग्लैण्ड से भारत में कपड़ा आने लगा। इस प्रकार लाखों जुलाहे खत्म हो गए।

राजाओं के साथ भी बड़ी ज्यादतियां हो रही थीं। अंग्रेज तेजी से भारतीय राजाओं के राज्यों पर चालाकी से या किसी न किसी बहाने से कब्जा करते जा रहे थे। कोई बहाना मिला कि राज्य जब्त।

इससे भी असन्तोष बहुत बढ़ा और यह असन्तोष सब लोगों में फैल गया। एक घटना लीजिए।

एक मौलवी बिल्कुल मरने को थे। वह अंग्रजों के दोस्त थे। एक अंग्रेज पादरी रेवरेण्ड कैनेडी उसकी मृत्यु-शय्या पर पहुंचे, तो उन्होंने यह सोचा कि अपने भारतीय मित्र के साथ कोई भलाई का काम करना चाहिए। उसने उस मौलवी से पूछा-क्यों साहब, आपकी आखरी ख्वाहिश क्या है?

मौलवी मरने को ही थे, पर वह एकाएक जबाब नहीं दे पाए। वह थोड़ी देर तक चुप रहे। फिर यह सोच कर कि मृत्यु शय्या पर झूठ नहीं बोलना चाहिए, उन्होंने कहा-मुझे अफसोस है तो इस बात का कि मैंने अपने जीवन में दो अंग्रेज भी नहीं मारे।

इस प्रकार सब लोंगों में अंग्रेजों के विरुद्ध भावना भर रही थी। यह न समझा जाए कि ऐसा अंग्रेजों के विरुद्ध महज विदेशी होने के कारण हो रहा था। भारत ने हमेशा विदेशियों का स्वागत किया था। इसी भारत भूमि में पारसी अपना ईरान देश छोड़ कर बसने के लिए आए थे। उन्हें पूरी तरह से अभय दिया गया था और उनके धर्म में कभी किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया गया था और आज पारसी भारत के बहुत अच्छे नागरिक हैं। और यद्यपि उनकी संख्या बहुत थोड़ी है, पर भारत के सभी क्षेत्रों में पारसियों का बड़ा भारी प्रभाव है।

इसलिए अंग्रेजों के प्रति यह गुस्सा भारतीयों के लिए स्वाभाविक नहीं था। अंग्रेजों की करनी के कारण ही भारतीय लोग अंग्रेजों के विरुद्ध हो गए थे। स्थिति यहां तक पहुंच गई थी कि बाजारों में लोग कानाफूसी करते थे। भिश्ती गोरों को पानी नहीं देते थे, आया छुट्टी लिए बिना ही मेम साहब को छोड़ कर चली जाती थीं, बावर्ची लोग अब इतने 'गुस्ताख' हो गये थे कि वे पूरी तरह कपड़े न पहन कर भी मेमों के सामने खड़े हो जाते थे।

यह कहना चाहिए कि स्थिति ऐसी थी जैसे बारूदखाने की होती है। यदि बारूदखाने में कोई एक चिनगारी डाले, तो वह चिनगारी फौरन धड़ाका पैदा कर सकती है जिससे आसपास का इलाका उड़ जा सकता है।

सब कुछ खुद-ब-खुद हो रहा था, ऐसी बात नहीं। नाना साहब नामक एक सामन्त अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। वह चाहते थे कि उन्हें पेशवा का वारिस माना जाए। पर वह उसमें सफल नहीं हुए। उन्होंने इंग्लैण्ड में भी अजीमुल्ला को अपना दूत बनाकर भेजा था, वह मुसलमान था। अजीमुल्ला ने जाकर इंग्लैण्ड में बड़े तर्क पेश किए। पर उसकी एक न सुनी गई। तब वह निराश होकर यूरोप गया और उसने अंग्रेजों के विरुद्ध यूरोप की शक्तियों के साथ मिलकर षड्यन्त्र करने की चेष्टा की। इसके अलावा उसने फ्रांस में कैसे क्रान्ति हुई थी, आदि विषयों में जानकारी हासिल की।

जब नाना साहब का दूत लौट आया और नाना साहब ने समझ लिया कि ऐसे कुछ नहीं बनने का, तो उन्होंने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। पर खुलमखुल्ला विद्रोह हो नहीं सका था। इसलिए उन्होंने तीर्थयात्रा के बहाने सारे भारत का भ्रमण किया और देशभक्त लोगों को विद्रोह के लिए तैयार किया। विद्रोही लोग कमल का फूल और चपाती भी घूमाते थे। कमल का फूल फौजों में और चपाती गांव के चौकीदारों में घुमाई जाती थी। इन चीजों को इस तरह से घुमाने का मतलब यह था कि पलटन या गांव विद्रोह के लिए तैयार है।

विद्रोह की तारीख ३१ मई, १८५७ तय हुई। पर विद्रोह को इतने दिनों तक रोका नहीं जा सका। कैसे क्या हुआ, वह एक बहुत अद्‌भुत घटना है। चर्बी वाले कारतूस बंगाल में मौजूद सैनिकों को देना तय किया गया। बैरकपुर की सेना इस कार्य के लिए चुनी गई। इस सेना के विद्रोही नेता थे वजीर अली और वह यह तय कर चुके थे कि गदर करना है। नम्बर १९ रेजीमेण्ट को नए कारतूस देने का निश्चय किया गया। उस रेजीमेण्ट ने नए कारतूस लेने से इन्कार कर दिया। इस पर अंग्रेजों ने यह सोचा कि इस मामले को यों ही नहीं जाने देना चाहिए। लोगों को सजा देनी चाहिए। पर सैनिकों ने तलवार निकाल ली थी। आसपास कोई तगड़ी फौज नहीं थी इसलिए अंग्रेज अधिकारी उस समय पीछे हट गए और यह तय हुआ कि बर्मा से एक रेजीमेण्ट बुलाई जाय। यह भी तय हुआ कि १९ नम्बर की रेजीमेण्ट के हथियार लेकर उन्हें बरखास्त कर दिया जाए।

❑❑

१८५७ की क्रान्ति का पहला शहीद

मंगल पांडे

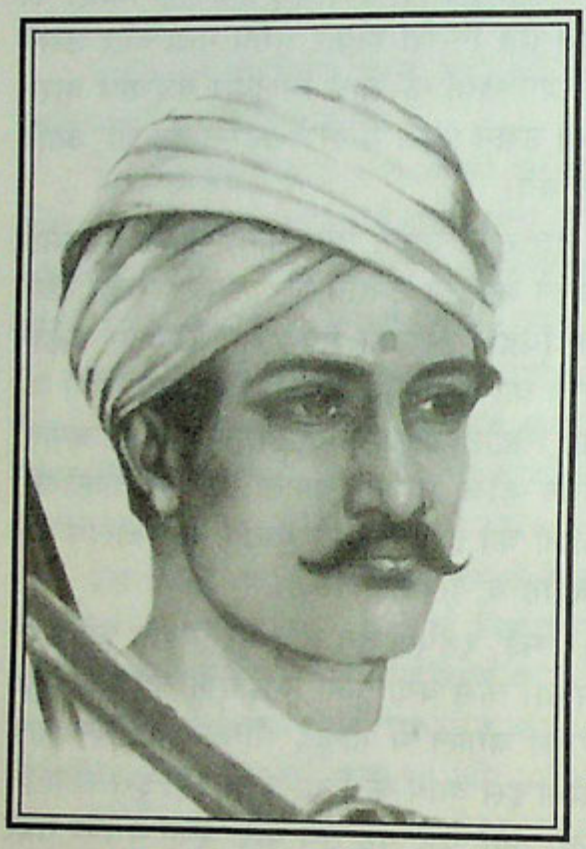

बैरकपुर में एक सिपाही था जिसका नाम था मंगल पांडे। यह खबर पहुँच चुकी थी कि अंग्रेज अधिकारी सेना को भंग करना चाहते हैं। इसलिए प्रश्न यह था कि सिपाही तितर-बितर हो जाए या फौरन विद्रोह कर दिया जाए। विद्रोंह की तारीख काफी दूर थी, तब तक ठहरना सम्भव नहीं था, क्योंकि तब तक ठहरने का मतलब यह होता कि नए कारतूसों का इस्तेमाल करने के लिए राजी होना पड़ता। इस प्रकार धर्म तो पहले ही नष्ट हो चुका होता। जोशीले होने के नाते मंगल पांडे पर इसका सबसे अधिक असर पड़ा। उन्होंने यह तय कर लिया कि ३१ मई तक ठहरा नहीं जा सकता।

मंगल पांडे ने लोगों को घूम-घूम कर समझाया पर लोगों ने उससे धैर्य रखने के लिए कहा। शायद इन लोगों ने ठीक ही कहा था कि एक जगह विद्रोह हो गया तो वह दबा दिया जायेगा। इसलिए हमें निश्चित तारीख पर विद्रोह करना चाहिए।

पर मंगल पांडे नहीं माने। उन्होंने बन्दूक ले ली और उसमें गोली भर ली। फिर वह परेड के मैदान में पहुंच गए और चारों तरफ शेर की तरह उछल-उछल कर कहने लगे- भाइयो उठो, आप पीछे क्यों रहते हो ? आओ और उठो, मैं आप को धर्म की सौगन्ध दिलाता हूँ। आजादी

पुकार रही है कि हम फौरन अपने धोखेबाज शत्रुओं पर हमला बोल दें। रुकने का समय नहीं है।

इस प्रकार से मंगल पांडे ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी और वह प्रथम विद्रोह हुआ। (वह २९ मार्च १८५७ का दिन था।)

वह परेड के मैदान में चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को पुकारता रहा। पर सिपाहियों ने उसका साथ नहीं दिया। वे उन्हें देखते रहे। पर कोई कुछ नहीं बोला। मंगल पांडे की खबर अंग्रेज अधिकारी तक पहुंची और सारजेन्ट मेजर ह्यूसन ने आकर मंगल पांडे को देखा। उसने खड़े तमाशा देखने वाले सिपाहियों से कहा-मंगल पांडे को गिरफ्तार कर लो।

पर सिपाही एक बार मंगल पांडे की तरफ देखते, फिर अंग्रेज अफसर की तरफ देखते। उन्होंने अंग्रेज अफसर की आज्ञा मानने से न तो इन्कार ही किया और न उसे माना ही। इस तरह जब कई मिनट हो गये, तब वह अंग्रेज अफसर समझ गया कि वे उसकी बात मानने के लिए तैयार नहीं हैं। उधर मंगल पांडे बिल्कुल तैयार थे। उनके हाथ में गोली भरी हुई बन्दूक थी। वह रक्त देने और रक्त लेने के लिए तड़प रहे थे। मंगल पांडे ने अब बन्दूक सम्हाली।

ठांय ठांय.....

मेजर ह्यूसन की लाश वहीं पर गिर पड़ी, क्योंकि मंगल पांडे का निशाना अचूक बैठा था। जब यह काण्ड हो गया, तो थोड़ी देर बाद एक अंग्रेज घटनास्थल पर आया। इस अफसर का नाम था लेफ्टिनेंट बाग। अब की बार यह जो अफसर आया था वह पैदल नहीं था, बल्कि घोड़े पर था। अब मंगल पांडे ने उसकी तरफ गोली चलाई और वह अफसर तथा घोड़ा दोनों जमीन पर लुढ़कते दिखाई दिए। पर वह अफसर मरा नहीं था। उसने खड़े होकर मंगल पांडे पर अपनी पिस्तौल चलाई। मंगल पांडे अपनी बन्दूक भर रहे थे। गोली उन्हें लगी नहीं। उन्होंने तलवार निकाल ली और साथ ही उस अफसर ने भी तलवार निकाल ली। मंगल पांडे पर उस समय क्रांति का जोश पूरी तरह सवार था। उन्होंने बात ही बात में उस अफसर का काम तमाम कर दिया।

मंगल पांडे दो अंग्रेज अफसरों को मार चुके थे। थोड़ी ही देर में एक गोरा और आया। उसने पांडे पर हमला किया। वह अभी मंगल

पांडे पर टूट नहीं पाया था कि एक दूसरे सिपाही ने उस गोरे के सिर पर अपनी बन्दूक का कुन्दा दे मारा। इस प्रकार विद्रोह फैल गया और भारतीय सिपाहियों की तरफ से यह आवाज उठी–मंगल पांडे को हाथ मत लगाओ।

थोड़ी देर में एक बड़ा अफसर कर्नल व्हीलर वहां पर आया और उसने यह हुक्म दिया–सिपाहियो, देखते क्या हो, बाग़ी को गिरफ्तार कर लो।

बड़े अफसर को देख कर भारतीय फौजों की भीड़ कुछ देर तक चुप खड़ी रही। पर किसी ने आवाज उठायी, हम ब्राह्मण देवता का बाल बांका न होने देंगे। जब उस अफसर ने यह देखा तो वह घोड़े को एड़ लगा कर वहां से लौट गया। इस बीच मंगल पांडे सिपाहियों से यह कह रहे थे कि भाइयो, अब घड़ा भर चुका है, अब आप लोग विद्रोह का झण्डा उठाइए। पर सिपाही कुछ नहीं बोले।

इसके बाद सबसे ऊँचे अफसर जनरल हियरसे कुछ गोरे सिपाहियों को लेकर वहां आए। मंगल पांडे ने देखा कि गोरों की एक पूरी टुकड़ी आई है और भारतीय सिपाही मेरा पूरी तरह साथ नहीं दे रहे हैं। तब वह समझ गए कि अब मैं गिरफ्तार हो जाऊंगा। इस पर मंगल पांडे ने अपने सीने में बन्दूक दाग ली और वह वहीं गिर पड़े। पर मरे नहीं। उनका इलाज हुआ और जब वह ठीक हो गये तो उन पर बाकायदा मुकदमा चला। उन्हें फांसी की सजा दी गई।

१८५७ की ८ अप्रैल को उनको फांसी देना तय हुआ, पर फांसी देने के लिए कोई जल्लाद तैयार नहीं हुआ। तब कलकत्ता से जल्लाद बुलाए गए। कलकत्ता के जल्लाद भी जान पाते कि किसे फांसी दी जा रही है तो वे शायद इन्कार कर देते क्योंकि लोगों में विद्रोह की भावना बहुत फैल चुकी थी, पर उन्हें यह बताया नहीं गया था कि किसे फाँसी देनी है। इस तरह मंगलपांडे को फांसी दी गई।

इस प्रकार विद्रोह की तारीख के पहले ही मंगल पांडे ने विद्रोह का आरम्भ कर दिया। फिर धीरे–धीरे यह विद्रोह सारे भारत में फैला। जितनी भी तरह के लोग अंग्रेजों से नाराज थे, वे सब मिल गए। विद्रोहियों का कब्जा दिल्ली पर हो गया। पर यह कब्जा ज्यादा दिन नहीं रह सका और दूसरी जगह से फौजों ने आकर विद्रोह दबा दिया।

❑❑

क्रान्तिकारी वीर महिला

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

विद्रोह में बहुत सी घटनाएं हैं। इतनी घटनाएं हैं कि उन्हीं की एक पूरी कहानी बन सकती है। इसलिए हम केवल कुछ मोटी-मोटी घटनाएं ही पेश करेंगे। १८५७ के विद्रोह में बहुत से वीर सामने आए। पर सबसे अधिक प्रभाव शायद रानी लक्ष्मीबाई का पड़ा। इसका कारण यह है कि वह एक महिला होते हुए भी उसने पिछड़े हुए युग में इतनी वीरता दिखाई।

महारानी लक्ष्मीबाई एक साधारण घराने में उत्पन्न एक साधारण लड़की थी। उसके पिता पेशवा के सेवक थे। पर जब पेशवाई खत्म हो गई, तो वह काशी में आकर बस गए। महारानी का बचपन का नाम मनुबाई था और कोई-कोई उन्हें प्रेम से छबीली भी कह दिया करता था। बाद को वह अपने पिता के साथ बिठूर गई, जहां पेशवा बाजीराव के गोद लिए हुए पुत्र नाना साहब रहते थे। दोनों में भाई-बहन का रिश्ता हो गया और दोनों खेल-कूद अस्त्र-शस्त्र चलाना, घुड़सवारी एक साथ करते थे। इस प्रकार दोनों के विचार भी एक तरह से बनते रहे।

मनुबाई की शादी झांसी के गंगाधर राव के साथ हुई। १८४२ में गंगाधर राव झांसी की गद्दी पर बैठे थे। पहली रानी के मर जाने पर उन्होंने मनुबाई के साथ शादी की। यही मनुबाई बाद में रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सन् १८५७ में महारानी लक्ष्मीबाई के पुत्र उत्पन्न हुआ, पर वह तीन महीने के अन्दर ही मर गया। इसके बाद गंगाधर राव का स्वास्थ्य गिरने लगा। बड़ी कठिनाई से तीर्थयात्रा, पूजापाठ आदि करके बच्चा उत्पन्न हुआ था उसके मर जाने पर गंगाधर राव निराश हो गए। तब उन्होंने कम्पनी की सरकार को एक खरीता भेजा, जिसमें यह प्रार्थना की कि मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है। मैं शायद ज्यादा दिन नहीं जीऊं। ब्रिटिश सरकार से मेरी जो सन्धि हुई है, उनके अनुसार मैंने एक पांच वर्ष के लड़के आनन्दराव को गोद ले लिया है। यह लड़का मेरे ही वंश का है। सरकार इसे मेरा वारिस स्वीकार कर ले। जब तक मेरी रानी जिन्दा है, वह राज्य की मालिक और पुत्र की माता मानी जाए और राज्य की व्यवस्था उसके हाथ में रहे। पर गंगाधर राव की मृत्यु के बाद गवर्नर जनरल ने

आनन्द राव को गंगाधर राव का वारिस नहीं माना। यहां तक कि रानी का भी कोई अधिकार नहीं माना गया और झांसी का शासन एक राजनैतिक एजेन्ट एलिस को सौंप दिया गया।

कहते हैं, इन्हीं दिनों जब लक्ष्मीबाई ने यह घोषणापत्र सुना, तो उनकी आंखों से आंसू आ गए और उन्होंने कहा–**मैं अपनी झांसी, नहीं दूंगी।**

गंगाधर राव की सम्पत्ति पर भी ब्रिटिश सरकार ने कब्जा कर लिया। किला और उसके साथ का महल अंग्रेजों के हाथों में चले गए। केवल शहर का महल रानी को रहने के लिए दिया गया। रानी ने उमेशचन्द्र बनर्जी को अपने मामले के लिए विलायत भेजा था, पर उसका कोई नतीजा नहीं हुआ। लोग दुखी थे कि रानी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार हुआ।

इन्हीं दिनों मेरठ और दिल्ली में विद्रोह हुआ और झांसी पर भी इसका असर पड़ा। जब झांसी में विद्रोह हुआ तो कुछ अंग्रेज मारे गए और दोनों तरफ से कुछ लड़ाई हुई। पहले रानी खुल कर विद्रोह में नहीं आई, पर बाद में वह आ गई। लोगों में बड़ा उत्साह था और लक्ष्मीबाई को यह आशा थी कि बाहर से नई फौजें आएंगी। तात्यां टोपे २० हजार फौज लेकर झांसी की रक्षा के लिए आए भी। घमासान लड़ाई हुई, पर दुर्भाग्य से तात्यां हार गए और उनकी फौज लौट गई। इस हार से लोगों में कुछ निराशा फैली, पर ऊपर से सब लोग शान्त रहे।

विद्रोहियों के कब्जे में झांसी का जो किला था, उस पर बड़े जोरों से अंग्रेजों का आक्रमण हुआ, इंच-इंच भूमि के लिए लड़ाई हुई। पर जीत अंग्रेजों की ही हुई, क्योंकि उनके पास बड़ी सेना थी। इसके अलावा कुछ साथियों ने धोखा भी दिया।

झांसी पर विद्रोहियों की विजय हुई थी और काफी दिनों तक विद्रोहियों का झण्डा झांसी के किले पर फहराता रहा, पर यह झांसी की सबसे बड़ी घटना नहीं है। सबसे बड़ी घटना है महारानी की वीरता और अंग्रेज सेना से लड़ते-लड़ते शहीद होना। उसका कुछ ब्यौरा इस प्रकार है।

झांसी का युद्ध

महारानी ने जब देखा कि अब कोई आशा नहीं है, तो वह भाग कर दूसरी जगह मोर्चा लेने को बढ़ी। उनका पीछा ब्रिटिश सेना ने किया। जब यह देखा गया कि महारानी खतरे में हैं, तब उनके ४० अनुयायी पीछे लौट पड़े और अंग्रेज सेना से लड़ाई करते रहे ! ये सारे ४० आदमी लड़ते हुए मारे गए।

४० आदमियों ने प्राण दे दिए, नतीजा यह हुआ कि महारानी पकड़ी

नहीं जा सकीं और वह साफ निकल गई। वह घोड़े पर कालपी पहुँच गई। वहीं सब विद्रोही इकट्ठे थे। पर वहाँ भी शत्रु की फौज पहुंच गई और २३ मई को कालपी तथा उसके इर्दगिर्द के सारे इलाके पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। जब कालपी में भी हार हो गई, तो विद्रोहियों में चिन्ता पैदा हुई। विद्रोहियों में निराशा फैल रही थी। ग्वालियर से कुछ सहायता की आशा थी इसलिए सब लोग उस तरफ चले। महारानी ने देखा कि भागते ही रहना है और वह भागती रही, पर वह भागती जाती थी और लड़ती जाती थी। अवश्य इस लड़ाई का कोई असर नहीं हो रहा था। शत्रु सेना प्रबल थी। आखिर बड़ी लड़ाई ग्वालियर में हुई। पर वहाँ भी विद्रोही जीत नहीं पाए। सेना में भगदड़ मच गई। रानी फिर वहाँ से निकल गई।

महारानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु कैसे हुई इस सम्बंध में बहुत तरह की कथाएं हैं। एक अंग्रेज मैकफर्सन के अनुसार फूलबाग के तोपखाने के पास महारानी लक्ष्मीबाई शहीद हुई। कहा जाता है कि वह घोड़े से उतर कर पानी पी रही थीं कि यह खबर आई कि शत्रु के घुड़सवार आ गए। महारानी के साथ उस समय लड़ते-मरते केवल १५ साथी रह गए थे। इन्हीं के साथ महारानी लड़ाई में कूद पड़ीं। उनका पुराना घोड़ा उनके पास नहीं था। जो घोड़ा था, वह ठीक से काम नहीं कर रहा था। एक नाला फांद कर पार करना था। पर घोड़ा उसे पार नहीं कर सका और महारानी के बाजू में एक गोली लगी। फिर सिर पर तलवार का एक हाथ पड़ा। फिर भी वह घोड़े पर चढ़ी चलती रहीं। वह थोड़ी ही देर में वहाँ गिर पड़ी। विद्रोहियों ने उनकी दाह क्रिया उसी बाग में कर दी।

हर्बर्ट हैमिल्टन ने यह लिखा है कि महारानी घोड़े पर थीं और उनके साथ उनकी मुसलमान नौकरानी भी थी, जो हर वक्त उनके साथ रहती थी। उन दोनों को गोली लगी और दोनों गिर पड़ीं। महारानी इसके बाद भी लगभग २० मिनट तक जीवित रहीं। वहां से वह फूलबाग ले जाई गई जहाँ उनकी दाहक्रिया की गई।

किंवदन्ती ने इसके साथ एक साधु का आश्रम जोड़ दिया है। कहा जाता है कि उस साधु ने महारानी को शहीद होते हुए देखा तो उसके पास उस वक्त कोई लकड़ी आदि नहीं थी और शत्रु आ रहे थे इसलिए उसने अपनी कुटिया में महारानी की लाश रखी और उसमें आग लगा दी।

इस प्रकार सभी तरह से यह पता चलता है कि महारानी लड़ते हुए मारी गई और उनकी लाश शत्रु के हाथ नहीं लगी। महारानी युद्ध क्षेत्र में एक वीर सैनिक की भाँति शहीद हुईं। उस समय उनकी उम्र केवल २० के करीब थी। ❑❑

पचास हजार के इनाम वाला विद्रोही बूढ़ा शेर

राजा कुंअर सिंह

१८५७ की क्रान्ति में महारानी लक्ष्मीबाई के साथ-साथ सबसे अधिक श्रेय नाना साहब को दिया जाता है, पर बिहार के कुंअर सिंह की कहानी भी बहुत रोमांचकारी है। वह जगदीशपुर के जमींदार थे। उनका अपने इलाके में बड़ा सम्मान था। जब १८५७ का विद्रोह हुआ तो कुंअर सिंह की उम्र ८० वर्ष की थी। फिर भी उन्होंने तलवार उठाने में कोई हिचकिचाहट नहीं की। उनकी संगठन शक्ति भी अद्‌भुत थी और वह इतनी फुर्ती से अपनी सेना को इधर से उधर ले जाते कि रेल और हवाई जहाज से विहीन उस युग में ऐसा लगता था कि जैसे वह एक साथ दो स्थानों में मौजूद हों।

वह जंगलों में विद्रोहियों की सभाएँ करते थे। सहसराम के जंगल में कुंअर सिंह ने एक सभा की। उस समय वह एक लड़ाई में हार चुके थे। जगदीशपुर पर मेजर आयर का कब्जा हो चुका था। कुंअर सिंह का महल जला दिया गया था और उनकी सम्पत्ति लूट ली गई थी। ऐसे अवसर पर उन्होंने अपने साथियों से कहा-मुझे दुख इसलिए नहीं है कि मैं हार गया, बल्कि दुख इसलिए है कि मैंने जिस उद्देश्य से विद्रोह किया वह पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है। यदि मेरा कोई बेटा होता तो मुझे भरोसा होता कि वह अपने पूर्वजों की जागीर पर फिर कब्जा कर लेगा।

इस पर उनके छोटे भाई अमरसिंह और दूसरे लोगों ने उनका उत्साह बढ़ाया। तब नए जोश से काम होने लगा। कुंअरसिह चुप बैठने वाले नहीं थे इसलिए अंग्रेजों ने उन्हें जीवित या मृत पकड़ने पर ५० हजार रुपये का इनाम भी घोषित कर दिया था। नए सिरे से सेना बनाई जा रही थी। धनिकों ने थैलियाँ खोल दीं कि विद्रोह को सफल बनाया जाए। इस तरह से एक सेना खड़ी करके कुंअरसिंह फिर पश्चिम की ओर रवाना हुए। वह दिल्ली जाना चाहते थे पर इस बीच रास्ते में ही उन्हें मालूम हुआ कि दिल्ली पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया है। वह रींवा पहुँचे, वहाँ से वह बांदा गए। बांदा में उनका स्वागत हुआ क्योंकि बाँदा का नवाब विद्रोहियों के साथ मिल चुका था। वहाँ से वह कालपी पहुँचे। तांत्या टोपे के साथ उन्होंने कानपुर के आक्रमण में भाग लिया। जब कानपुर की दूसरी लड़ाई में तांत्या हार गए, तो कुंअरसिंह अयोध्या चले गए। वहां नए सिरे से फिर सेना बनी। इस प्रकार वह कभी जीतते, कभी हारते, पर हारते तो हमेशा भाग निकलते, शत्रु के कब्जे में न आते।

अंग्रेज सरकार उनसे घबराई हुई थी कि यह ८० वर्ष का बूढ़ा कितना तेज है और कितने जोरों के साथ काम कर रहा है। कुंअरसिंह बनारस जाते-जाते आजमगढ़ लौट गए और उन्होंने वहां के किले पर घेरा डाल दिया। वहां भी लड़ाई हुई। कभी अंग्रेज सेना पीछे हटती, कभी वह पीछे हटते। शिवपुर में कुंअरसिंह की सेना ने गंगा पार की। अंतिम नाव में कुंअरसिंह थे। इतने में पीछे से अंग्रेज सेना आ पहुँची। एक गोली कुंअरसिंह की कलाई में लगी। तब उन्होंने बायें हाथ में तलवार ली और दाहिने हाथ को काट कर गंगा में डाल दिया कि कहीं इसके कारण जहर न फैले। इसी घायल हालत में वह जगदीशपुर पहुंचे। वहां से ब्रिटिश झंडा उखाड़ फेंका गया और विद्रोहियों का झंडा फहराने लगा। इसके बाद भी युद्ध हुआ। अंग्रेज सेना में बराबर नए सिपाही आते जाते थे। फिर भी कुंअरसिंह ने जगदीशपुर से डेढ़ मील की दूरी पर एक बार फिर अंग्रेजों को हराया। पर उनका घाव ठीक न हो सका। इस जीत के बाद ही २४ अप्रैल १८५७ को कुंअरसिंह की मृत्यु हो गई।

नाना साहब भाग निकले और यह पता नहीं है कि उनका क्या हुआ। बहुत से लोग यह मानते थे कि वह नेपाल की तरफ चले गए हैं और वह अमर हैं। यह कुछ उस किस्म की किंवन्दती है जैसे सुभाष बोस के सम्बन्ध में है। ❑❑

वीर राजा अमरसिंह

(वीर सावरकर द्वारा लिखित)

२४ अप्रैल १८५७ को कुँवरसिंह की मृत्यु हुई। यह महान् व्यक्ति इतिहास के रंगमंच से निकल जाने पर, उस की जोड़ के शूर और स्वदेशभक्त और एक व्यक्ति ने रंगमंच पर पर्दापण किया। यह व्यक्ति और कोई न होकर उसी का भाई राजा अमरसिंह ही था। पूरे चार दिन का आराम भी न लेकर और लड़ाई के सत्त्व को कम न होने देकर अमरसिंह ने आरा पर ही धावा बोल दिया। आरा के अंग्रेजों की हार के समाचार मिलने पर ब्रिगेडियर डगलस तथा जनरल लुगार्ड के नेतृत्व में गंगा के उस ओर पड़ी सेना ने गंगा पार होकर, अमरसिंह से भिड़न्त की। जब अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों को घेरना शुरू किया तब अमरसिंह ने भी और ही चाल चली। शत्रु की जीत होती देखकर, वह अपनी सेना को अलग-अलग टोलियों में बाँट देता और उन्हें फैलाकर मैदान से हट जाता और उन्हें निश्चित समय तथा स्थान पर मिलने की सूचना देता, जिससे शत्रु किसी तरह पीछा न कर सकता था। ज्यों ही ब्रिटिश मानने लगते कि वे ही हर बार विजयी होते हैं, त्यों ही अमरसिंह की सेना पहले के समान बलवान् तथा कार्यशील किसी और जगह दिखायी देती। निदान, परेशान होकर निराश तथा अपमानित ब्रिटिश सेनापति लुगार्ड जून १५ को सेवानिवृत्त होकर आराम के लिये इंग्लैंड चला गया; उस की सेना छावनी को लौट गई।

फिर अंग्रेजों को झूठा सुराग देकर अमरसिंह आरा पर चढ़ आया और शहर में प्रवेश कर गया। इस से क्या होता है? अब तो वह जगदीशपुर की राजधानी में प्रवेश कर रहा है। जुलाई समाप्त, अगस्त बीत गया। सितंबर चुक गया; जगदीशपुर के बुर्जो पर, संपूर्ण स्वाधीनता का अनुभव करनेवाली जनता का, विजयी ध्वज लहरा रहा था और प्रजाप्रिय राणा अमरसिंह सिंहासन पर विराजमान था। ब्रि. डगलस और उस की ७ हजार सेना ने अमरसिंह को नष्ट करने का बीड़ा उठाया था। यहाँ तक कि किसी तरह राणा अमरसिंह का सिर लानेवाले को बड़े-बड़े इनाम घोषित किये गये। अब उन्होंने जंगल तोड़कर सड़क बना ली थी।

१७ अक्तूबर को ब्रिटिश व्यूह के निश्चय के अनुसार छः सेनाएँ

भिन्न-भिन्न दिशाओं से जगदीशपुर के भिन्न भागों पर चढ़ आयी थीं; सातवीं सेना को आते पांच घंटे देरी हुई। ठीक मौका ताड़कर इसी ओर से अमरसिंह अपनी सेना के साथ साफ निकल गया।

बिहारी क्रांतिकारियों को पीस डालने का इरादा फेल हो जाने से, छटके हुए क्रांन्तिकारियों का पीछा करने के लिये रिसाला भेजा गया। हाथ धोकर पीछे पड़े इस रिसाले ने अमरसिंह को एक क्षण का अवकाश न मिलने दिया। इस समय अंग्रेजी सेना के पास नये किस्म की राईफलें थीं, जिनके सामने क्रांतिकारियों की तोड़ेदार बंदूकें निकम्मी साबित हुई, जिससे अंग्रेजी सवारों को टालना असम्भव हो गया-फिर भी अमरसिंह के मुख से शरण का शब्द नहीं निकला। १९ अक्तूबर को अंग्रेजी सेना ने नोनदी गाँव में क्रांतिकारी सेना को पूरी तरह घेर लिया; ४०० में से ३०० तो कट गये ! शेष रहे सौ क्रांतिकारी जान हथेली में लेकर खुले मैदान में शेर की तरह कूद पड़े और नयी आयी गोरी सेना से भिड़े। अन्त में इनमें से तीन बच पाये, जिन में एक राणा अमरसिंह था; अब तक एक सैनिक बनकर लड़ रहा था। कितनी ही रक्तपाती लड़ाइयाँ 'पांडे' सेनाएँ लड़ीं, कितनी खून की नहरें बहीं; किन्तु स्वाधीनता का ध्वज अब तक झुका नहीं। राणा अमरसिंह तो ऐसे बाँके संकटों से बचा था कि कहते ही बनता है; एकबार तो शत्रु ने राणा के हाथी को पकड़ लिया, किन्तु राणा कूद पड़ा और गायब! इस तरह क्रांतिकारी चप्पा-चप्पा भूमि के लिये झूझते हुए अपने प्रांत के बाहर खदेड़े गये। अब वे कैमुर की पहाड़ियों में पहुँच गये। पीछा करनेवाले गोरों को इस प्रांतवालों ने हमेशा तथा यथाक्रम धोखा देकर क्रांतिकारियों की रक्षा की।

शत्रु ने इन पहाड़ियों में भी क्रांतिकारियों का भीषण पीछा किया। हर टीला, हर उपत्यका, हर चट्टान पर क्रांतिकारी झगड़ते रहे। एक भी क्रांतिकारी, पुरुष या स्त्री, शत्रु के हाथ न लगा; वह जूझते हुए अपने देश और धर्म के लिये खेत रहा। श्री कुँवरसिंह के रनवास की डेढ सौ स्त्रियों ने, अब कोई चारा नहीं है यह देखकर, अपने हाथों अपने को तोपों के मुँह बाँध लिया और अपने हाथों उन्हें दाग कर उड़ गईं-हुतात्मता के अनंतत्व में विलीन हो गयीं।

अमरसिंह का आगे क्या हुआ? अपना शेष जीवन उसने कहाँ बिताया, घबड़ाया हुआ इतिहास गूँजता है क-हाँ··?

❑❑

१८५७ की क्रान्ति का सूत्रधार

तांत्या टोपे

तांत्या टोपे बिठूर के राजा नाना साहब पेशवा का एक चतुर और पराक्रमी सेनापति था। नाना साहब को जो अनेक विजयें और यश प्राप्त हुआ उसका मुख्य कारण तांत्या टोपे ही था। इसका जन्म पूना (महाराष्ट्र) में हुआ। सन् १८५७ की क्रान्ति में तांत्या टोपे का महत्त्वपूर्ण योगदान था। अंग्रेजों के विरुद्ध सारे भारत में गुप्त संगठन का निर्माण करने का श्रेय भी तांत्या टोपे को ही मिलता है। भारतीय मूल की बहुत सारी अंग्रेजी सेना को तांत्या ने अपने साथ मिलाने का अद्‌भुत कार्य किया। अंग्रेजों से तांत्या ने अनेक युद्ध किये। तांत्या ने ९ नवम्बर ५७ को कालपी तथा २६ नवम्बर के आक्रमण में कानपुर को जीता। झांसी पर विजय प्राप्त करने के लिए इसने भयंकर युद्ध किया जिसमें इसके १५०० सैनिक मारे गये। इसके पश्चात् ग्वालियर पर विजय प्राप्त की। अंग्रेजों से घिर जाने के कारण २० जून १८५८ को तांत्या ने ग्वालियर से निकल कर नर्मदा पार कर जाने की कोशिश की; किन्तु अंग्रेज सेना ने सामने आकर उसे रोक लिया।

तांत्या अंग्रेजों के लिए बहुत खतरनाक योद्धा बना हुआ था। उसको चारों ओर से घेर कर पकड़ने की योजना बनायी गयी किन्तु वह चीते के समान अंग्रेज सेनाओं के चंगुल से निकल भागा। वह अंग्रेजी सेना से युद्ध करते हुए भरतपुर, जयपुर, बूंदी, भीलवाड़ा, झालरा पाटन, चम्बल नदी की ओर निकल भागा। अंग्रेजी सेना रात-दिन उसकी खोज में लगी रहती। इसी बीच सिंधिया का मानसिंह नामक एक सरदार भी तांत्या से आ मिला। १६ जनवरी को देवास में सवेरे ये सब बैठे विचार विमर्श कर ही रहे थे कि अंग्रेज सिपाहियों ने आ घेरा। वहां से भी ये लोग भाग निकलने में सफल रहे। इसके बाद तांत्या अलवर के निकट 'शिखर जी' नामक स्थान पर दिखाई दिये।

एक दिन तांत्या अपने कुछ साथियों के साथ मानसिंह से मिलने चला गया। मानसिंह ने उसे अपने पास रोक लिया। गद्‌दार मानसिंह ने ७ अप्रैल १८५९ को आधी रात के समय अंग्रेजों को बुलाकर तांत्या टोपे को पकड़वा दिया। इस बीच मानसिंह गुप्त रूप से अंग्रेजों से मिल चुका था।

१८ अप्रैल १८५९ को तांत्या को भारी सेना की पहरेदारी में फांसी पर लटका दिया गया। तांत्या ने हंसते हुए अपने हाथों से फांसी का फंदा अपने गले में डाला। इस तरह १८५७ की क्रान्ति का यह वीर आजादी के लिए शहीद हो गया।

बर्बर अंग्रेजों ने जिसके सामने बेटों के कटे सिर पेश किये

बहादुर शाह

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

यद्यपि अंतिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह का राज्य लाल किले के बाहर सिर्फ नाम के वास्ते ही रह गया था, पर विद्रोहियों ने बादशाह को एक प्रतीक के रूप में अपना लिया था। दिल्ली में १३४ दिन तक विद्रोहियों का राज्य रहा। बादशाह बहादुरशाह भी अन्त में गिरफ्तार हो गए। इसके बाद एक घटना बहुत ही अद्‌भुत है और उससे एक प्रकार से यह सूचित होता है कि अंग्रेजों ने विद्रोहियों को किस बेदर्दी से दबाया। बहादुरशाह के दो बेटे मिर्जा मुगल और मिर्जा असगर सुल्तान तथा उनके पोते मिर्जा अबुबकर हुमायूं गिरफ्तार कर लिए गए। मेजर हडसन अंग्रेजों की तरफ से सैनिक शासक था। उसने शाहजादों को रथ पर सवार कराया। जब शहर सिर्फ एक मील रहा, तो मेजर हडसन एकाएक उतरा। उसने अचानक अपने सिपाहियों के हाथों से एक बन्दूक ली और तीनों शाहजादों को वहीं पर जान से मार दिया। इसके बाद उनके सिर काट कर बादशाह के सामने पेश किए गए। बूढ़ा बादशाह क्या कहता। उसने असीम धैर्य के साथ कहा–**'अलहमदुलिल्लाह! तैमूर की औलाद ऐसे ही सुर्खरू होकर बाप के सामने आया करती थी।'**

बदला लेने का भूत अंग्रेजों पर कहां तक सवार था उसकी एक बानगी और देखिए। **इन तीनों शाहजादों के सिर दिल्ली के खूनी दरवाजे के सामने टाँगे गए और कोतवाली के सामने उनके धड़ टांगे गए। किंवदन्ती तो यहां तक है कि जब हडसन ने शाहजादों को मारा,**

तो उसने चुल्लू भर-भर कर उनका खून पिया और कहा-अगर मैं इनका खून नहीं पीता तो मैं पागल हो जाता। इस प्रकार भारत में तैमूर के राजवंश का अन्त हुआ।

यह तो रही मेजर हडसन के अत्याचारों की कहानी। पर उसकी देखा-देखी साधारण अंग्रेजों ने भी दिल्ली निवासियों पर कम अत्याचार नहीं किए। दिल्ली में खोज की गई कि कौन-कौन लोग घायल हुए हैं। **जो भी घायल मिला, उसका चेहरा पहले संगीन से बार-बार रौंदा गया, फिर उसे धीमी-धीमी आंच में जलाया गया। कई बार मुसलमानों को मारने से पहले सूअर की खाल में सी दिया जाता था।** लोहे के गरम-गरम तवे से उनके बदन दागे गए और लोगों को पकड़-पकड़ कर, जबर्दस्ती उनसे गिरजाघरों में झाड़ू लगवाई गई। सम्राट् बहादुरशाह और उनकी बेगम जीनत महल और जवां बख्त को रंगून भेज दिया गया। वहां वे तब तक कैद रखे गए जब तक कि वे मरे नहीं।

बांद में हिन्दुस्तान के इस अन्तिम बादशाह की मृत्यु वहीं रंगून में हुई। उस जगह स्मारक के रूप में संगमरमर का एक टुकड़ा लगा है जिस पर अंकित हैं ये शब्द-'बहादुरशाह एक्स किंग आव डेलही डाइड एट रंगून, नवम्बर सेविन्थ १८६२ एंड बरीड नियर दिस स्पाट' अर्थात् दिल्ली के भूतपूर्व बादशाह बहादुर ७ नवम्बर १८६२ को रंगून में मरे और इस स्थान के समीप दफनाए गए।

मगर इन सारे अत्याचारों के कारण कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश संसद ने अपने हाथों में भारत का शासन ले लिया। महारानी विक्टोरिया की ओर से एक घोषणा की गई जिसमें यह कहा गया कि "धर्म तथा जाति का ख्याल न रखकर सब को शासन में नौकरी दी जाएगी। कारीगरी की उन्नति के लिए सब कुछ किया जाएगा और ऐसे सब काम किए जाएंगे जिनसे आम जनता को फायदे हों।".

पर इतना बता दिया जाए कि इस घोषणा के बावजूद कुछ भी नहीं हुआ। वर्षों तक विद्रोहियों को ढूंढ-ढूंढ कर उनका दमन किया जाता रहा। ऊंची नौकरियां भारतीयों को नहीं दी गई। हां, एक बात यह हुई कि भारत में जल्दी से रेल चलाना शुरू कर दिया गया। ऐसा भारत के लाभ के लिए नहीं किया गया, न दुर्भिक्ष को रोकने के लिए किया गया, बल्कि इसलिए कि कहीं पर विद्रोह हो तो फौज जल्दी से वहीं भेजी जा सके। ❑❑❑

नागपुर के साथ अंग्रेजों का विश्वासघात

(वीर सावरकर द्वारा लिखित)

जब रंगो बापूजी (नागपुर के राजा) लंदन को जाने की सिद्धता (तैयारी) करने में व्यस्त थे तभी एक नयी घटना ने डलहोजी का मन हर लिया। नागपुर राज्य का पतला और सिमटा हुआ पौधा उखाड़ फेंकने का अनायास बहाना मिला था। नागपुर के एकमात्र अधिपति भोसले अपनी आयु के ४७वें वर्ष में अचानक स्वर्ग सिधारे। बरार का यह अधिपति रघोजी अंग्रेज सरकार का माननीय मित्र था।

और यही अंग्रेजों की मित्रता भोसले के विनाश का सामान हुआ। जिन्हें भान था कि अंग्रेज उनसे द्वेष करते हैं वे ही बच गये। किन्तु अंग्रेजों को अपने गले का हार मानने की मूर्खता जिन्होंने की थी उन्हीं का, अनहद निर्दयता और विश्वासघात से, अंग्रेजों ने सत्यानाश कर डाला। बरार का राज्य कोई अंग्रेजों के बाप की जमींदारी नहीं थी; या अंग्रेजों की मर्जीपर ही जिन की हस्ती अवलंबित हो ऐसा कोई सामंतराज्य भी न था। फिरंगी सरकार के समान वह एक स्वतंत्र और स्वयंपूर्ण राज्य था। जे सिलव्हियन ने अंग्रेजों को साफ शब्दों में ललकारा था "किस कारण से और किस न्याय के दिखावे से (चाहे वह पाश्चात्य हो या पौर्वात्य) अंग्रेजों को हक है कि वे केवल इसलिए किसी के राज्य को जब्त करे कि उसका राजा नि:संतान मरा"।

सचमुच वह सब एक हथकंडे का इंद्रजाल था। एक उड़ा ले और दूसरा साथी चुपचाप उसे छिपाये रखे ! एक सिर काट ले और दूसरा साथी चिल्ला-चिल्ला कर पुकारता जाय 'किस न्याय या निर्बंध के आधार पर तुमने यह काम किया है? मानो, चोरों और खूनी डाकुओं को अपने काम की पुष्टि में किसी न्याय, निर्बंध की आवश्यकता होती है ? सन् १८५३ में निदान डलहौजी ने अपने "मित्रों के" गले पर खूनी खंजर फेर ही दिया ! और केवल इसी बहाने कि भोसले ने दत्तक गोद न लिया। राजा रघोजी को प्रबल आशा थी कि उन्हें पुत्र अवश्य होगा किन्तु एकाएक उनका अन्तकाल हुआ। फिर भी उनकी धर्मपत्नी रानी को दत्तक गोद लेने का पूरा अधिकार था। हाँ, इसके पहले मृत राजाओं की रानियों ने गोद लिए दत्तक पुत्र को अंग्रेजों ने न माना होता तो हमें कुछ कहना न

था, किन्तु यह तो सब जानते हैं कि १८२६ में दौलतराव शिंदे की विधवा रानी के गोद लिए हुए, १८३४ में धारके राजाकी विधवा के लिए हुए और १८४१ में किसनगढ़ की रानी के लिए हुए दत्तक को अंग्रेजों ने मान लिया था। एक दो नहीं, कई एक दत्तविधानों को अंग्रेजों ने मान्यता दी थी। किन्तु, ध्यान रहे; ये सब दत्तविधान मान लेना उस समय अंग्रेजों के लाभ में था। हाँ, इस बार राजा रघोजी की रानी का दत्तक मान लेना उनके स्वार्थ के विरुद्ध था, जिससे स्पष्ट है कि अंग्रजों का हानि-लाभ ही उनकी नीति का आधार था। नागपुर नरेश ने दत्तक नहीं लिया और सातारे के छत्रपति ने गोद लिया, इससे दोनों के राज्यों पर अंग्रेजों ने कब्जा जमाया। तर्कशास्त्र भी यहाँ लाचार हो जाता है।

नागपुर प्रांत जब्त कर डलहौजी ने ७६८३२ वर्ग मील का प्रदेश, जिसकी जनसंख्या ४६,५०,००० और वार्षिक आय ५० लाख की थी, हड़प लिया। असहाय रानियाँ अपना सिर पीटती रो रही थीं उसी क्षण राजमहल के द्वार खटखटाये गये। दरवाजों को धड़ाम से खोलकर अंग्रेजी सेना अंदर घुस पड़ी; अस्तबल से घोड़ों को खोल दिया गया; ऊपर चढ़ी हुई रानियों को बलपूर्वक नीचे उतार कर, हाथियों को मवेशी बाजार में बेचने भेजा गया; सोने चांदी के अलंकार राजमहल से लूट कर गली-गली में नीलामी कर दिये गये। रानी के गले की शोभा बढ़ाने वाली कंठमाला बाजार की मिट्टी में मलिन हुई। एक हाथी के मात्र सौ रुपये इस हिसाब से सभी हाथी बेच मारे गये। और, फिर, इसमें क्या आश्चर्य कि वे घोड़े, जो डलहौजी के प्रतिदिन के खाने से भी अधिक मूल्यवान् तथा अच्छी खुराक पाकर पुष्ट थे, बीस-बीस रुपर्डी में बेचे गये। और घोड़ों की उस जोड़ी को, जिन पर स्वयं राजा रघूजी सवार होते थे, पांच रुपर्डी में दिये गये। हौदे के साथ हाथी, और जीन चढ़ाये घोड़े तो बेच डाले अवश्य; फिर भी, देखो, उन रानियों के गहने उनकी देह पर पड़े हुए हैं! क्यों न उस जेवर को बेचा जाय? और आखिर, अन्य वस्तुओं के समान इन जेवरों को भी रास्ता दिखाया गया; बेचारी रानियों की देह पर फूटी मणि भी न रही ! किन्तु तिस पर भी अंग्रेजों से 'मित्रता' न छूटी। इसलिए उन्होंने राजमहल की भूमि खोदना प्रारंभ किया। हाय रे दैव! रानियों के अंत:पुर के शय्यागारों को अपवित्र करने को अंग्रेजी कुदाली सँवारी गयी ! पाठक, चौंको मत, व्यथित न बनो ! क्यों कि, अभी तो अंग्रेजी कुदाली ने अपना काम शुरू ही किया है; उसे आगे चलकर बहुत काम करना है-वह कर रही है। देखो, रानी का पलंग भी

उसने तोड़-फोड़ दिया और अब उसके नीचे की भूमि खोदी जा रही है ! कैसे कहें ? महारानी अन्नपूर्णाबाई उस समय अपनी घड़ियाँ गिन रही थी। नागपुर के श्रेष्ठ भोसले घराने की यह विधवा राजमाता राज्य तथा घराने के अपमान से दु:खित कराह रही थी, तभी उसकी बगल के दालान के उसी के शय्यास्थान के नीचे, अंग्रेजों की कुदाली अपना विध्वंसन-कार्य बढ़ा रही थी। बगल के दालान के आर्त कराहों का साथ देने का इस कुदाली की दनदनाहट का कैसा घोर पार्श्वसंगीत ! और इस भीषण बनाव का कारण ? यही कि राजा रघूजी भोसले किसी पुत्र को गोद लेने के पहले स्वर्ग सिधारे !

अपने प्राचीन राजवंश पर मढ़े गये असहनीय अपमान की आग से तड़पती हुई, रानी अन्नपूर्णाबाई ने अंतिम साँस ली। फिर भी राणी बंका की यह आशा मरी नहीं कि 'अब भी अंग्रेज न्याय करेगा'। उसकी वह आशा भी अंतिम साँस छोड़ गई; हाँ, किन्तु अंग्रेज बॅरिस्टरों को भरपेट खिलाने के पहले नहीं ! फिर रानी बंका ने क्या किया ? फिरंगियों से 'राजनिष्ठ' रहकर अपनी शेष आयु समाप्त की ! जब झाँसी की बिजली की कड़कड़ाहट हुई और रानी बंका ने जब देखा कि उसके बेटे अपनी तलवारें सँवारकर स्वराज्य-संग्राम के महायज्ञ में जा रहे हैं, तब भोसले की इसी विधवा रानी बंका ने उन्हें धमकाया कि 'मैं स्वयं जाकर अंग्रेजों को तुम्हारे षडयंत्र की खबर देती हूँ और तुम्हें कत्ल करवाती हूँ।' बंका ! उस महान् लब्धप्रतिष्ठ वंश की कलंकरूप बनी पापिनी ! जा, गहरे-बहुत गहरे नरक में जा, वहीं तुझे आसरा मिलेगा ! किन्तु, क्या मालूम, अपने राष्ट्र से विश्वासघात करनेवाले जीव को नरक में भी स्थान मिलता है या नहीं ?

❑❑

स्वतन्त्रता-संग्राम में हरियाणा का योगदान

भारत में शासन स्थापित होने के बाद अंग्रेजों ने यह कोशिश जारी रखी कि इस देश को उभरने न दिया जाये, जिससे निश्चिंत रह कर शासन चलता रहे। पूरे देश की तरह हरियाणा में भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध असंतोष था। अंग्रेजों द्वारा यहां आर्थिक शोषण किया जा रहा था, नौकरियों में भेदभाव था, प्रशासन व्यवस्था दमनपूर्ण थी, नागरिकों की स्वतन्त्रता एवं अधिकार छीन लिये गये थे। चारों ओर आतंक का वातावरण था। बलात् धर्म परिवर्तन किया जा रहा था। पूरे देश में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जो असंतोष की आग सुलग रही थी वह १८५७ में एक विशेष घटना के संदर्भ में भड़क उठी। राइफलों के कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगी होती थी, जिसे मुंह से फाड़कर राइफलों में डाला जाता था। हिन्दुओं और मुसलमानों ने इस बात को अंग्रेजों का जान-बूझकर धर्मभ्रष्ट करने का षड्यन्त्र माना। सेना में इसके विरुद्ध विद्रोह भड़क उठा। २५ फरवरी १८५७ को १९ नम्बर देशी पलटन ने बरहामपुर में खुला विद्रोह कर दिया। अंग्रेजों ने तुरन्त पलटन को भंग कर दिया। हरियाणा में भी विद्रोह की आग भड़क उठी। २९ मार्च को ३४ नम्बर देशी पलटन के एक सैनिक मंगल पाण्डे ने बैरकपुर के स्थान पर अकेले ही बगावत कर दी। उसे फाँसी पर लटका दिया गया। परन्तु इससे विद्रोह की आग न बुझ सकी, बल्कि देखते ही देखते कुछ ही समय में यह विद्रोह की आग अम्बाला, मेरठ और लखनऊ आदि अन्य स्थानों में भी फैल गई।

१० मई, १८५७ को प्रातः अम्बाला में विद्रोह का ज्वालामुखी फूट पड़ा। अम्बाला उन दिनों एक महत्त्वपूर्ण सैनिक छावनी थी। यहां पंजाब और उत्तर-पश्चिमी प्रान्त (यू.पी.) के सैनिकों को एनफील्ड राइफलों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था। पहले अम्बाला के सैनिकों ने शान्तिपूर्ण ढंग से कारतूसों का विरोध किया किन्तु जब उन्होंने देखा कि अंग्रेज अधिकारियों पर उन की बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है तो उन्होंने १० मई को विद्रोह करने का प्रोग्राम बना लिया।

ठीक १० मई को, मेरठ में क्रान्ति होने से ९ घण्टे पहले, ६०वीं भारतीय स्थल सेना ने विद्रोह-योजना को क्रियान्वित कर दिया। किन्तु दुर्भाग्य से अंग्रेज अधिकारियों को उनकी योजनाओं का पहले ही पता लग चुका था। और वे इस दुर्घटना से निपटने के लिए पूरी तरह से तैयार

थे। अत: देखते ही देखते ६०वीं पलटन अंग्रेजों के घेरे में आ गई। अब उनके सामने समझौता कर लेने के सिवाय कोई चारा न था, और ऐसा ही हुआ। अभी तक ६०वीं भारतीय स्थल सेना अच्छी तरह से शान्त भी न होने पाई थी कि पांचवीं भारतीय स्थल सेना ने दोपहर १२ बजे विद्रोह कर दिया। अंग्रेजी पलटनें तो तैयार थीं ही, उन्होंने जल्दी से तोपखाने और टैंकों से पलटन के सैनिकों को घेर लिया। फलस्वरूप घिरी हुई पांचवी पलटन को भी ६०वीं पलटन की तरह ही समझौता करना पड़ा।

चूंकि अंग्रेज अधिकारी चौकस एवं सतर्क थे, अत: वे अम्बाला में तो विद्रोहाग्नि को फूटने से पहले ही बुझा सकने में सफल हो सके परन्तु उसी दिन लगभग ९ घण्टे बाद जो मेरठ में सिपाहियों ने विद्रोह किया उसे वे नहीं दबा सके। दूसरे दिन ११ मई को इस विद्रोहाग्नि की लपटें देहली में पहुँच गईं। मुगल बादशाह बहादुरशाह को क्रान्तिकारियों ने अपना नेता बना कर देश से अंग्रेजी राज्य की समाप्ति की घोषणा कर दी। देखते ही देखते, सारे उत्तरी भारत का वातावरण बिगड़ गया और बहुत समय से इकट्ठी होती आ रही असंतोष रूपी बारूद को सिपाही-विद्रोह की चिंगारी ने इतने भयंकर रूप से विस्फोटित किया कि ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डगमगा गई।

जिला गुड़गांव में क्रान्ति

दिल्ली के ३०० सैनिक १३ मई को गुड़गांव पर आक्रमण करने के लिए गए। डब्लू॰ फोर्ड कलक्टर-मैजिस्ट्रेट, ने विद्रोहियों को गुड़गांव से १२ किलोमीटर दिल्ली की तरफ बिजवासन के स्थान पर रोकना चाहा, परन्तु वह असफल रहा। दूसरे दिन सुबह गुड़गांव पर विद्रोहियों का आक्रमण हो गया। फोर्ड, गुड़गांव छोड़ कर मथुरा, भोंडसी, सिलानी और पलवल होता हुआ भाग गया। विद्रोहियों को इस अभियान में ८,८४,००० रुपये जिला गुड़गांव के खजाने से हाथ लगे।

इन बातों की खबर मिलते ही गुड़गांव की जनता भड़क उठी। जिले के दक्षिण पश्चिम भाग में मेव लोग भारी संख्या में क्रान्ति में शामिल हो गए। और उन्होंने एक-एक करके मेवाती इलाकों से अंग्रेजों का राज्य समाप्त कर दिया। इसी प्रकार जिले के दक्षिण-पश्चिमी भाग जो कि अहीरवाल के नाम से प्रसिद्ध हैं, में भी क्रान्ति की लपटें फूट पड़ी। इस क्षेत्र में क्रांति का संगठन रेवाड़ी के राव गोपाल देव ने किया। यहां की वीर जनता ने भी मेवात की तरह ही अहीरवाल को भी अंग्रेजी प्रभाव से पूर्णतया मुक्त कर अपना 'स्वराज्य' स्थापित किया।

जिला रोहतक में क्रान्ति

जिला रोहतक में भी मई के तीसरे सप्ताह में क्रान्ति की आग भड़क उठी। देखते ही देखते समस्त जिला रोहतक अंग्रेजों के नियन्त्रण से मुक्त हो गया। क्रान्तिकारियों ने बिना किसी झिझक के दिल्ली सम्राट् बहादुरशाह को अपना नेता मान लिया और उसके झंडे के नीचे एकत्रित होकर संघर्ष जारी रखा। कर्नल मालेसन नाम के इतिहासकार को यह देखकर बड़ी हैरानी हुई कि जिला रोहतक में छोटे से बड़े तक सभी लोगों की सहानुभूति मुगल सम्राट् के साथ थी, और यहां तक कि जो लोग अंग्रेजों से लाभ उठा रहे थे वे भी उनके विरुद्ध खड़े हो गए थे।

दिल्ली तथा पंजाब के अंग्रेज अधिकारी इस बात से बड़े चिन्तित हुए। अतः स्थिति पर अधिकार पाने के लिए अंग्रेजों ने अम्बाला की ९०वीं भारतीय स्थल सेना को वहां २४ मई को भेजा। लेकिन इस सेना ने बजाए विद्रोह को दबाने के १० जून को स्वयं खुला विद्रोह कर दिया। यहां के अंग्रेज अधिकारी जान बचाकर भाग निकले और सब भारतीय सैनिक दिल्ली चले गये।

जुलाई-अगस्त में स्थिति और भी गम्भीर हो गई जिसको सुधारने के लिए अंग्रेजों को तुरन्त कार्यवाही करनी पड़ी। अगस्त के दूसरे सप्ताह में उन्होंने अपने एक साहसी सेना-अधिकारी लेफ्टिनेंट हडसन के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजी सेना का प्रबल विरोध किया। स्वयं हडसन के नेतृत्व में एक बड़ा सैनिक दस्ता भेजा। खरखोदा के स्थान पर सूबेदार विसारत अली के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजी सेना का प्रबल विरोध किया। स्वयं हडसन ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि रोहतक के ये ग्रामीण 'दानवों के सदृश' लड़े। किन्तु अन्त में वे हार गए।

विजयोन्मत्त हडसन का दूसरा प्रहार सीधा रोहतक पर हुआ। यहां भी क्रान्तिकारियों ने आक्रमणकारियों का डटकर मुकाबला किया, किन्तु जीन्द आदि देशी राजाओं की सहायता आ जाने से हडसन का पलड़ा शीघ्र ही भारी पड़ गया। अन्ततः वह अपने शत्रुओं को परास्त करने में सफल हो गया। किन्तु उसकी यह विजय किसी भी तरह निर्णायक नहीं कही जा सकती क्योंकि दिल्ली की नाजुक स्थिति को देखते हुए उसे क्रान्तिकारियों को समूल नष्ट करने से पूर्व ही वापिस लौट जाना पड़ा।

हडसन के लौट जाने के पश्चात् क्रान्तिकारियों ने फिर अपने को संगठित कर लिया। उन्होंने जीन्द के राजा के उन अधिकारियों को, जिन्हें हडसन लौटते समय इस क्षेत्र की व्यवस्था सौंप गया था, भगा दिया।

जिला हिसार में क्रांति

जिला हिसार में क्रान्ति का श्रीगणेश तीसरे सप्ताह में सिरसा, हांसी तथा हिसार में स्थित 'हरियाणा लाइट-इन्फैन्टरी' के सैनिक दस्तों ने किया। वहां की जनता ने भी हृदय से सैनिकों का अनुसरण किया और शीघ्र ही सारे जिले में क्रान्ति की प्रबल ज्वाला भड़क उठी। एक समसामयिक लेखक ने ठीक ही लिखा है, "उन दिनों यहां का हर ग्राम विद्रोह का अड्डा बन कर रह गया था।"

इस नाजुक स्थिति में हिसार की जनता का पथ प्रदर्शन भट्टू के पैट्रोल अधिकारी शहजादा मुहम्मद आजिम ने किया। यह शाहजादा दिल्ली के राजघराने से सम्बन्धित था। जिस साहस और शौर्य के साथ इसने अंग्रेजों से लोहा लिया उससे पता चलता है कि यह बहुत ऊंचे चरित्र का मालिक था।

हिसार की इन गतिविधियों से अंग्रेज अधिकारी बड़े चिन्तित हुए। अत: उन्होंने स्थिति को सुधारने के लिए एक बड़ी सेना फिरोजपुर के डिप्टी-कमिश्नर जनरल वान कोर्टलैंड के नेतृत्व में भेजी। रानियां के नवाब नूर मुहम्मद खां ने अंग्रेजी सेना का डटकर मुकाबला किया किन्तु वह हार गया। अंग्रेजों ने नवाब को बन्दी बना लिया और उसे बड़ी निर्दयता से फांसी पर चढ़ा दिया।

नूर मुहम्मद खां के अतिरिक्त सिरसा के आसपास भट्टियों ने भी अंग्रेजी सेना का प्रबल विरोध किया। किन्तु वे सुसंगठित एवं अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित अंग्रेजी सेना के सामने अधिक देर तक नहीं टिक सके। उन्हें भी पराजय का मुंह देखना पड़ा। **अंग्रेजों ने सैकड़ों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया और उनके कितने ही गांव जलाकर राख कर दिये।** परन्तु इसके बावजूद भी इस क्षेत्र की वीर जनता ने अंग्रेजों के समक्ष घुटने नहीं टेके और युद्ध यथासम्भव तरीके से जारी रखा।

जिला अम्बाला में क्रांति

अम्बाला के प्रशासकों को पटियाला, नाभा तथा जींद की रियासतों से बहुत सहायता मिली। इससे उन्होंने अपने जिले में कोई विशेष गड़बड़ न होने दी। किन्तु इसका यह मतलब नहीं लेना चाहिए कि यहां की जनता में क्रान्ति करने की या क्रान्ति में भाग लेने की कोई इच्छा ही नहीं थीं। उक्त जिले के डिप्टी-कमिश्नर फारसिथ ने स्वयं यह माना है कि उसके जिले की समस्त जनता विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति रखती थी। और तो और उसने विस्मित होकर कहा है: "जगाधरी के

वणिए-व्यापारी जो हमारी सरकार से दिन प्रतिदिन लाभान्वित होते रहे हैं, इस कड़े समय में हमारे प्रति स्वामीभक्ति का प्रदर्शन न कर पाए।'' किन्तु अम्बाला की जनता खुला विद्रोह नहीं कर पायी।

इस प्रकार अम्बाला को छोड़कर शेष सब हरियाणा मई के अन्त तक अंग्रेजों से मुक्त हो गया था और यहां के स्थानीय नेताओं तथा जनता ने मुगल सम्राट् बहादुर शाह की अधीनता पूर्णरूपेण स्वीकार कर ली थी।

बादशाह कोर्ट की सहायता से ही हरियाणा प्रदेश को प्रशासित करता था। बादशाह ने हरियाणा प्रदेश को पूर्ववत् चार जिलों: दिल्ली, गुड़गांव, रोहतक, पानीपत में बँटा रहने दिया। हाँ, इन जिलों की देखरेख के लिए अंग्रेज जिलाधिकारियों के स्थान पर हिन्दुस्तान अधिकारी नियुक्त किए। इन पदाधिकारियों को जिलादार कहा जाता था।

केन्द्रशासित प्रदेश के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी क्षेत्र थे जहाँ कि बादशाह ने प्रशासन का पूरा उत्तरदायित्व स्थानीय शासकों के हाथ में सौंप दिया था। हरियाणा में स्थानीय शासकों द्वारा शासित ऐसी रियासतें थीं : बल्लभगढ़, पटौदी, रेवाड़ी, फरुखनगर, झज्जर, बहादुरगढ़ (अथवा दादरी), दुजाना तथा लोहारू। यहाँ के राजा-नवाबों को बादशाह ने प्रशासन चलाने की हर प्रकार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर दी थी।

गुड़गांव में मेवों ने जाटों तथा अहीरों के साथ मिलकर अपने ही उन खानजादा धर्म भाइयों का विरोध किया जो कि अंग्रेजों के भक्त थे। इसी प्रकार होडल के जाट तथा राजपूतों ने मिल कर वहां के सूरत गोत्रीय अंग्रेज-भक्त जाटों का विरोध किया। इसी प्रकार मेवली के कुछ पठानों को नष्ट करने के लिए मेवों ने हिन्दू क्रान्तिकारियों का साथ दिया।

राव तुलाराम और फरुखनगर के नवाब का वैर था। नवाब गलती पर था। अत: पटौदी तथा दादरी के नवाबों ने अपने धर्म-भाई के विरुद्ध राव तुलाराम की सहायता की। पानीपत के परगने में हिन्दू जाटों और मुस्लिम गूजरों ने कन्धे से कन्धा मिला कर अंग्रेजों से टक्कर ली। इसी प्रकार १६ नवम्बर १८५७ के दिन हरियाणा के सब क्रान्तिकारियों ने धार्मिक भेदभाव को भुला कर, भाई-भाई की तरह एकजुट होकर शत्रु से नारनौल के पास प्रलयंकारी युद्ध किया।

वस्तुत: १८५७ की क्रांति के दौरान हरियाणावासियों की शताब्दियों से चली आ रही पारस्परिक भ्रातृत्व की भावना की बड़ी कठिन परीक्षा हुई थी और वे उस परीक्षा में पूर्णतया सफल हुए।

क्रांति की विफलता

यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमानों ने १८५७ में काफी हद तक मिलकर कार्य किया, तथापि कई एक कारणों से (जैसे अच्छे नेताओं का अभाव, सैनिक दृष्टि से निर्बलता, संगठन का न होना, आदि) क्रान्ति अन्ततः विफल हो गई।

दिल्ली के पतन के बाद अंग्रेजी सेनाओं ने एक-एक करके हरियाणा के उत्तरी जिलों पर अपना अधिकार पुनः प्राप्त कर लिया। सर्वप्रथम उन्होंने अम्बाला, थानेसर और करनाल को लिया। फिर हिसार, सिरसा और रोहतक की तरफ बढ़े और थोड़े प्रयत्नों के बाद वे वहां भी सफल हुए।

दक्षिणी इलाकों में बहुत-सारी जगहों पर विद्रोह की आग अब भी बराबर भड़की हुई थी। उसको शान्त करने के लिए ब्रिगेडियर-जनरल शावर्स २ अक्तूबर, १८५७ को १५०० सैनिकों तथा तोपखाने के साथ दिल्ली से चला। उसने सर्वप्रथम रेवाड़ी पर आक्रमण किया। किन्तु उस के वहां पहुंचने से पूर्व ही वहां का शासक राव तुलाराम रेवाड़ी छोड़कर राजस्थान में चला गया।

६ अक्तूबर को जब अंग्रेजी सेना रेवाड़ी पहुंची तो तुलाराम को वहां न पाकर अंग्रेज अफसरों को बड़ी मायूसी हुई। कप्तान हडसन ने कहा : "परिन्दा उड़ गया, घोंसला खाली पड़ा है।" और जरा 'परिन्दे' का वर्णन भी उन्हीं के शब्दों में सुनिए : "वह (तुलाराम) बहुत चतुर व्यक्ति था। उसने बड़ी तैयारी पकड़ रखी थी और यदि देहली में हमारी हार हो जाती तो इस क्षेत्र में हमारा काम तमाम करने वाला यह पहला व्यक्ति होता। इसकी सैनिक तैयारी कमाल की है। सब प्रकार के सैनिक शस्त्र, तोपें, छकड़े, बारूद यहीं बनते हैं। बड़ी अच्छी फाउण्डरियां तथा फैक्टरियाँ लगी हुई हैं। वास्तव में इसने काफी कुछ कर लिया था, तथा कुछ महीनों में इसकी स्थिति इतनी मजबूत हो जाती कि आसपास के सब इलाकों पर इसका अधिकार हो जाता और यह पटियाला, जीन्द जैसा बड़ा राज्य स्थापित कर लेता।"

झज्जर पर आक्रमण

शावर्स एक सप्ताह तक रेवाड़ी में ठहरा। तत्पश्चात् १२ अक्तूबर को उसने झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान खां पर आक्रमण किया। यह नवाब बहुत अर्से से दोहरी चाल चलकर दोनों पक्षों, अंग्रेज तथा बहादुरशाह को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा था। जब नवाब को शावर्स के आगमन की सूचना मिली तो वह अपनी राजधानी झज्जर को छोड़कर छः मील

चलकर शावर्स की शरण में आ गया। शावर्स ने नवाब को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया। इसी प्रकार शावर्स ने दिल्ली जाते समय फरुखनगर के नवाब अहमदअली और बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को भी बन्दी बना कर देहली भेज दिया।

शावर्स के वापिस चले जाने के पश्चात् हरियाणा के बचे खुचे क्रान्ति-कारियों, हिसार के शहजादा आजम, नवाब झज्जर के दामाद जनरल समद खां तथा रेवाड़ी के राव तुलाराम ने इकट्ठे होकर लड़ने की योजना बनाई। सौभाग्य से इसी समय जोधपुर का बागी दस्ता राजस्थान से आकर इनसे मिल गया। सबने नारनौल के स्थान को 'शुभ कार्य' के लिए उत्तम समझा।

नारनौल का युद्ध

जब दिल्ली में अंग्रेजों को 'विद्रोहियों' की इन गतिविधियों का पता चला तो वे बड़े बौखलाए। उन्होंने इन सिरफिरों को पाठ पढ़ाने के लिए अपने एक सुयोग्य सैन्य-अधिकारी कर्नल जेरार्ड के नेतृत्व में नवम्बर के दूसरे सप्ताह में एक महत्त्वपूर्ण सेना भेजी।

जेरार्ड ने १६ नवम्बर, १८५७ को नारनौल पर आक्रमण किया। भारतीय फौजें नारनौल शहर में एक दुर्ग की तरह मजबूत मकान (सराय) में मोर्चा सम्भाले हुई थीं। उनकी संख्या लगभग ५,००० के करीब थी तथा उनके पास आधे दर्जन के करीब मध्यम दर्जे की तोपें थीं। जब उन्होंने सुना कि अंग्रेजी फौजें आ गई हैं तो उन्होंने सराय को छोड़कर अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया। नारनौल से दो मील की दूरी पर स्थित नसीबपुर गाँव के पास दोनों सेनाओं का टकराव हुआ।

लगभग १२ बजे युद्ध शुरू हुआ। पहला भारतीय प्रहार ब्रिटिश सेनाओं के लिए असह्य था। उनमें भगदड़ मच गई। किन्तु थोड़ी देर बाद अंग्रेजी 'कार्बानियर्स' तथा 'गाइड्स' ने कुछ हिम्मत के काम लेकर बढ़ते हुए भारतीय रिसाले को रोक दिया। अंग्रेज अधिकारियों ने अपनी सेना में कुछ उत्साह फूंका, किन्तु वे इससे आगे कुछ न कर सके, क्योंकि उनकी राह में भारतीय रिसाला चट्टान की तरह अडिग खड़ा हो गया। भारतीय कितनी वीरता से लड़े इसका अनुमान होम्स के इन शब्दों से हो सकता है, "शत्रु ने गाइड्स तथा कार्बानियर्स के आक्रमण को बहादुरी से झेला।" 'के' तथा मालेसन के शब्दों में, "यह एक वीरतापूर्ण युद्ध था। शत्रु (भारतीय) इतने साहस और वीरता के साथ पहले कभी भी नहीं लड़े थे। वे न कतराए, न डरे। हम पर इतना विकट प्रहार पहले कभी नहीं हुआ। ब्रिटिश रिसालों ने आज तक ऐसी भयानक टक्कर

क़िसी भी शत्रु से न ली होगी।''

इतने में भारतीय रिसाले के कमान्डर राव किशनसिंह वीरगति को प्राप्त हो गए। उनकी मृत्यु से सेना के हौंसले डूब गए। उनके बढ़ते हुए कदम रुक गये। किन्तु हां, सफल नेतृत्व के अभाव में भी उन्होंने पीछे हटने की बात नहीं सोची। 'के' और मालेसन ने उनकी वीरता को सराहा है। वे कहते हैं ''उन्होंने बहादुरी से अपनी जानें-न्यौछावर कर दीं, समर्पण करने का तो खयाल तक भी न किया।''

जबकि भारतीय पक्ष कुछ दब रहा था तो अकस्मात् बन्दूक की गोली अंग्रेज कमाण्डर जेरार्ड को लगी और वह वहीं ढेर हो गया। जेरार्ड के मरते ही अंग्रेजी सेना में हड़बड़ी फैल गई। भारतीय सैनिकों के हौसले बढ़ गये और वे वज्र बनकर शत्रु पर टूट पड़े। अंग्रेज कमांडर कोलफिल्ड ने बिगड़ती हुई स्थिति को बड़े साहसपूर्ण ढंग से सम्भाल लिया। उन्होंने अंग्रेजी तोपखाने को बेतहाशा आग उगलने का आदेश दिया। तुरन्त ही ब्रिटिश तोपों के गोले भारतीय सेना के मध्य में पड़ने लगे। फलतः भारतीय सेना दो भागों में विभक्त हो गई। पीछे वाले लोग तोपों की मार से परे होने के लिए पीछे चले गये और आगे वाले तापों की मार से बचने के लिए तोपों के बिल्कुल नजदीक बढ़ गये।

जब भारतीय सैनिक तोपों के निकट आ गये तो कोलफिल्ड ने उन पर एक जोरदार आक्रमण करा दिया। भारतीय बड़ी वीरता से लड़े, किन्तु भाग्य ने उनका साथ न दिया। उनके सुयोग्य नेता राव रामलाल, शाहजादा मुहम्मद आजिम तथा जनरल समद खां का एक पुत्र वीरगति को प्राप्त हो गये। उनके गिरते ही युद्ध ने पलटा खाया। भारतीय सैनिक घबरा उठे। इससे अंग्रेजी सेनाओं की हिम्मत बढ़ गई और उन्होंने भारतीय सेनाओं को पीछे धकेल दिया।

सूर्य अस्त होते ही भारतीय सेनाओं में भगदड़ मच गई और इस प्रकार नारनौल के युद्ध का फैसला अंग्रेजों के हक में हो गया। राव तुलाराम तथा समदखां शेखावटी की तरफ चले गये और विजित अंग्रेजी सेनाओं ने नारनौल के शहर तथा आसपास के गाँवों को बुरी तरह लूटा।

नारनौल के युद्ध के समाप्त होने के बाद हरियाणा में क्रान्ति की अग्नि बुझ गई।

अंग्रेजों द्वारा दमन चक्र

क्रान्ति की विफलता के पश्चात् हरियाणा में भयंकर दमन-चक्र चला कर अंग्रेजों ने यहाँ नादिरशाह के कुकृत्यों की एक बार फिर पुनरावृत्ति

कर दी। प्रतिकार की आग में जलते हुए उनके सैनिक दस्तों ने यहाँ के कितने ही गाँव जलाकर भस्मसात् कर दिये। सैकड़ों-हजारों लोगों को जेलों में ठूँस दिया। उन्होंने बिना किसी विशेष छानबीन के बहुत-से लोगों की सम्पत्ति जब्त कर ली तथा लगभग सभी गाँवों से सार्वजनिक जुर्माने वसूल किए।

पेड़ों पर लटकती लाशें

इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने उन दिनों मानव हत्या का बाजार भी काफी गर्म रखा। गाँव-गाँव जाकर उन्होंने सैंकड़ों-हजारों को केवल शक-मात्र पर फाँसी पर लटका दिया। एक समसामयिक दर्शक का विवरण कितना रोमांचकारी है : **''उन दिनों लगभग प्रत्येक गाँव के बाहर बड़-पीपल के वृक्षों पर फाँसी के रस्सों पर ५-१० आदमी दिन-रात लटके रहते थे। लाशें सड़ कर सारे वातावरण को दूषित कर देती थीं, किन्तु उनकी अंत्येष्टि करने का कोई साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करने का मतलब था कि उस व्यक्ति को 'दोषी' से सहानुभूति है। यदि कोई ऐसा दुस्साहस करता तो दूसरे दिन 'दोषी' के बराबर उसका शव भी लटका मिलता।''**

दूरस्थ गाँवों में ही नहीं, दिल्ली की ऐतिहासिक नगरी में भी अंग्रेजों ने अत्याचारों का नृशंस प्रदर्शन किया। इतिहासकार जॉन के शब्दों में : **''आठ छकड़े इस काम के लिये तैनात थे कि गलियों और बाजारों में वृक्षों से लटके शवों को उतार कर दूर फेंक आएँ।'' लोहारू के नवाब के अनुमानानुसार कोई २६,००० मनुष्य इन दिनों दिल्ली ही में मारे गए थे। इस संख्या में हरियाणा के गाँवों में मारे गए कई हजार लोगों की संख्या को और जोड़ लें।**

पंजाब में हरियाणा का विलय -

फरवरी १८५८ में हरियाणा प्रदेश को उत्तर-पश्चिमी प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) से पृथक् करके पंजाब में मिला दिया गया। पंजाब के

तत्कालीन चीफ-कमिश्नर, सर जॉन लारेंस ने नव-प्राप्त प्रदेश को ठीक तरह से व्यवस्थित करने के लिए इसे दो डिवीजनों, दिल्ली तथा हिसार में बाँट दिया। दिल्ली डिवीजन में गुड़गाँव और पानीपत के जिले थे। इस डिवीजन का मुख्यालय दिल्ली में था। हिसार डिवीजन हिसार, सिरसा तथा रोहतक (झज्जर रियासत का कुछ भाग) के जिले सम्मिलित थे। इस का मुख्यालय हिसार में था।

रियासतों पर प्रभाव

हरियाणा की देशी रियासतों पर इस क्रान्ति का दोहरा प्रभाव पड़ा। जिन रियासतों के प्रशासकों ने बादशाह बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी, उन्हें बड़ा कठोर दण्ड मिला। झज्जर के नवाब अब्दुर्रहमान खां, बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह तथा फरुखनगर के शासक अहमद अली को बिना किसी विशेष सुनवाई के चांदनी चौंक में फाँसी के फंदे पर लटका दिया। इनकी रियासतों तथा मूल्यवान् सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया। दादरी के नवाब ने यद्यपि विद्रोह में कोई विशेष योग नहीं दिया था, किन्तु फिर भी उसकी रियासत छीन ली गयी।

जिन शासकों ने उन कठिन दिनों में अंग्रेजों की सहायता की थी उन्हें मुक्तहस्त से पुरस्कृत किया गया। अंग्रेजों की सहायता करने के फलस्वरूप जीन्द के महाराजा को दादरी की पूरी रियासत और कानूंड परगना मिला। नाभा के राजा को झज्जर राज्य का नारनौल के आस-पास का बहुत बड़ा क्षेत्र मिला।

दुजाना, पटौदी तथा लोहारू के प्रशासकों ने चूंकि न तो अंग्रेजों की सहायता की थी और न ही उनके विरोधियों की, इसलिए उनकी रियासतें पूर्ववत् बनी रहने दी गईं।

शासकीय रोष तथा द्वेष

हरियाणा की जनता के प्रति नये शासकों का रवैया बहुत ही वैमनस्यपूर्ण रहा। यहाँ निरन्तर आक्रोश तथा दमन का चक्र चलता रहा। १९वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक भी हरियाणावासियों को विद्रोह करने की सजा मिलती रही। सरकारी नौकरियों के द्वार उनके लिए बन्द थे। नहरें, सड़कें, बिजली तथा स्वास्थ्य आदि की सुविधाएं इन को न के बराबर दी गयीं। न ही यहां विकास का कार्य हुआ और न ही यहां स्कूल-कालेज आदि खोले गये। फलतः यहां के लोग हर प्रकार से पूरी तरह पिछड़ गये। हरियाणा के जन-जीवन में यत्र तत्र अब तक भी उस पिछड़ेपन के दर्शन किये जा सकते हैं। ❑❑

१८५७ की क्रान्ति का अमर योद्धा राजा

राव तुलाराम

हरियाणा प्रान्त के जिला रेवाड़ी के निकट स्थित 'रामपुरा' नाम स्थान से अपना शासन चलाने वाले राजा राव तुलाराम ने १८५७ की क्रान्ति में सक्रिय योगदान देकर भारत की स्वतन्त्रता के निश्चय को आगे बढ़ाया था।

[१० मई १८५७ को जब हरियाणा के अम्बाला और उत्तर प्रदेश के मेरठ आदि में विद्रोह फूट पड़ा तो राव तुलाराम भी अपनी सेना लेकर दिल्ली की ओर बढ़े। अंग्रेजों को सूचना मिल गयी थी कि राव तुलाराम विद्रोह का नेतृत्व कर रहा है। अंग्रेज सरकार ने उसका दमन करने के लिए फोर्ड को सेना लेकर भेजा। मार्ग में सोहना और तावडू के बीच दोनों का मुकाबला हुआ। फोर्ड हार गया। उसकी सेना में भगदड़ मच गयी और वह दिल्ली भाग आया।]

उधर मेरठ में राव तुलाराम के चाचा राव जीवाराम के दूसरे पुत्र राव कृष्णगोपाल कोतवाल पद पर थे। उन्होंने विद्रोह का साथ देते हुए मेरठ के सारे कैदखाने खोल दिये। अपनी एक सेना एकत्र कर मेरठ में

विद्रोह का झंडा बुलंद करते हुए दिल्ली आये। दिल्ली में बहादुरशाह जफ़र को नेता स्वीकार कर राव तुलाराम की सहायता करने रेवाड़ी पहुंचे। राव तुलाराम ने रेवाड़ी में स्वाधीनता के लिए योजनापूर्वक युद्ध करने के लिए राजाओं-नवाबों की एक बैठक बुलायी। इसमें जोधपुर, अलवर, बल्लभगढ़, निमराणा के राजा और झज्जर, फरुखनगर, पटौदी, फिरोजपुर झिरका के नवाबों को आमन्त्रित किया गया। जोधपुर के राजा तथा झज्जर, फरुखनगर, फिरोजपुर झिरका के नवाबों ने सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। राव तुलाराम ने धैर्य नहीं छोड़ा। जो सहयोगी मिले उन्हीं के सहयोग से एक सेना का गठन किया। नवाब झज्जर का दामाद समदखां पठान राव साहब की सेना में शामिल हुआ। चचेरे भाई गोपालदेव को सेनापति नियुक्त किया।

अंग्रेज सरकार ने सेनाधिकारी फोर्ड को और अधिक सेना और सैन्य सामग्री से सुसज्जित करके राव तुलाराम पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अंग्रेज सेना की अधिक शक्ति को जानकर राव तुलाराम रामपुरा को छोड़ महेन्द्रगढ़ की ओर निकल गये। पीछे से फोर्ड ने गोकुलगढ़ और रामपुरा के स्थानों को नष्ट किया और राव तुलाराम का पीछा करते हुए महेन्द्रगढ़ की ओर चला।

राव तुलाराम ने महेन्द्रगढ़ पहुंच कर किले के अध्यक्ष ठाकुर स्यालुसिंह (बाद में कुतानी गांव निवासी) से स्वाधीनता में साथ देने का आग्रह किया और स्वतन्त्रता के योद्धाओं के लिए किले का द्वार खोलने का अनुरोध किया ताकि उसमें मोर्चा बनाकर अंग्रेज सेना से लड़ा जा सके। किन्तु स्यालु सिंह ने अंग्रेज सरकार के प्रति निष्ठा प्रदर्शित करते हुए द्वार नहीं खोला। बाद में अंग्रेज सरकार ने ठाकुर स्यालुसिंह को इस भक्ति के पुरस्कार रूप में तथा स्वतन्त्रता सेनानियों का सहयोग न करने के ईनाम के रूप में सारा कुतानी गांव दे दिया।

राव तुलाराम वहां से नारनौल के पास स्थित नसीपुर गांव के पास अपनी सेना का मोर्चा लगाकर डट गये। अंग्रेज सेना तथा स्वाधीनता-सेना में तीन दिन तक युद्ध हुआ। राव तुलाराम ने हाथी पर सवार अंग्रेज सेनाधिकारी मैटकाफ काना को मार गिराया। उसके बाद अंग्रेज सेना में भगदड़ मच गयी फोर्ड मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ और दादरी के पास मोड़ी नामक गांव में एक चौधरी के यहां आकर शरण ली। बाद में अंग्रेज सरकार ने फोर्ड की जान बचाने के पुरस्कार रूप में बराणी गांव (जिला झज्जर) में बहुत ज्यादा जागीर इस चौधरी को इनाम के रूप में

दी और उस गांव का नाम 'फोर्डपुरा' रखा। आज भी यह इसी नाम से कुख्यात है।

राव तुलाराम की स्वाधीनता सेना काबू में आती न देख अंग्रेजों ने पटियाला, नाभा, जीन्द, जयपुर से सेना बुला ली। इन देशद्रोही राजाओं ने अंग्रेजों का साथ दिया। राव तुलाराम की सेना बहुत कम पड़ गयी। फिर भी राव साहब के नेतृत्व वाली सेना ने हिम्मत नहीं छोड़ी। वीरता के साथ मुकाबला किया। इस युद्ध में राव तुलाराम के चचेरे भाई राव कृष्णगोपाल और राव रामलाल तथा राव किशनसिंह, सरदार मणिसिंह, मुफ्ती निजामुद्दीन, शादीराम, रामधनसिंह, समद खां पठान बलिदान हो गये। राव साहब की सेना को पराजय का सामना करना पड़ा। फिर वे विद्रोह भूमि कालपी पहुंचे। वहां नाना साहब पेशवा, उनके भाई राव साहब, तात्यां टोपे और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि एकत्रित थे। उन्होंने राव तुलाराम का सहर्ष स्वागत किया। विचार-विमर्श के बाद उन्होंने बाहरी सहायता प्राप्त करने के लिए राव तुलाराम को अफगानिस्तान भेजा। वे वेश बदलकर अहमदाबाद और बम्बई होते हुए बसरा (ईराक) पहुंचे। इनके साथ पलवल के राजा नाहरसिंह, श्री रामसुख और सैय्यद नजात अली थे। वहां अंग्रेज सरकार को इनकी जानकारी मिल गयी। ये वहां से बचकर सिराज (ईरान) पहुंचे। तेहरान स्थित अंग्रेज राजदूत ने ईरान के शाह से इन्हें गिफ्तार करने का अनुरोध किया किन्तु उसने अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। कुछ समय बाद ये तेहरान से काबुल के अमीर के पास आ गये। लगभग छह वर्ष वहां रहने के बाद पेचिस की बीमारी से इनका देहान्त हो गया। इस प्रकार एक योद्धा अपना सर्वस्व मातृभूमि पर लुटाकर शहीद हो गया।

स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के दण्डस्वरूप राव तुलाराम की तथा आस-पास की रियासतों को अंग्रेजों ने छिन्न-भिन्न कर दिया तथा सभी प्रकार की सुविधाओं से वंचित कर दिया। राव साहब के राज्य की कोट कासिम की तहसील जयपुर राज्य में तिजारा व बहरोड़ तहसील अलवर में, नारनौल तथा महेन्द्रगढ़ पटियाला में, दादरी जीन्द में, बावल नाभा में, नाहड़ तहसील के चौबीस गांव दुजाना रियासत में देकर उनके राजाओं-नवाबों को देशद्रोह के बदले पुरस्कृत किया गया। ऐसे ही देशद्रोहियों के कारण समय-समय पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये प्रयास विफल हो गये अन्यथा १८५७ में ही भारत आजाद हो जाता।

❑❑

कूका विद्रोह और अंग्रेजों की बर्बरता

४९ को तोप से उड़ाया, १ के टुकड़े किये, १६ को फांसी

पंजाब प्रान्त में सबसे पहले जो विद्रोह हुआ उसे 'कूका विद्रोह' काण्ड के नाम से जाना जाता है। बर्बर अंग्रेजों ने उसे कितनी क्रूरता से दबाया, यह पढ़कर संसार के घोर अत्याचारी भी शर्मिन्दा हो जायेंगे। किन्तु उस पाशविक अत्याचार से भी बहादुर कूके डरे नहीं अपितु बहादुरी के साथ बलिदान हुए।

गुरु रामसिंह और उनकी विप्लव योजना

कूका विद्रोहियों के गुरु श्री रामसिंह कूका गोत्र के थे। इन्हीं के नाम पर इनके सभी शिष्य 'कूका' कहलाते थे। इनके द्वारा चलाया गया सम्प्रदाय 'नामधारी सम्प्रदाय' है।

गुरु रामसिंह का जन्म जिला लुधियाना के 'भैणी' नामक स्थान पर हुआ। ये युवावस्था में महाराजा रणजीत सिंह की सेना में भरती हो गये। आप अधिकांश समय प्रभुभक्ति में लगे रहते, इस कारण सैनिक का कार्य ठीक से नहीं हो पाता था। आपने सेना से त्यागपत्र दे दिया और गांव लौट आये। वहां आप अधिक से अधिक समय तक प्रभुभक्ति में लीन रहते। आपके भक्तिभाव को देखकर लोग बहुत प्रभावित हुए और दर्शनों के लिए आने लगे। आपने सामाजिक बुराइयों को दूर करने का लक्ष्य बनाया। धीरे-धीरे आपको यह अनुभव हुआ कि राजनैतिक स्वतन्त्रता के बिना देश का सुधार नहीं हो सकता, अतः आपके उपदेशों में राजनीति की चर्चा भी होने लगी। किन्तु वह दबे-दबे स्वर में होती थी।

सरकारी रिकार्ड में अंकित है कि जब गुरु रामसिंह भक्ति भाव में लीन थे और समाज सुधार तक सीमित थे तो एक दिन उनके पास कोई रामदास नाम का साधु आया और उसने कहा-"श्रीमन्! ये समय व्यक्तिगत उन्नति करने और आनन्द प्राप्त करने का नहीं है। आप इस भक्तिमार्ग को छोड़िए और देश में जागृति उत्पन्न कर उसे स्वतन्त्र कराने में योगदान कीजिए।" उसके बाद वह साधु कहां गया, किसी को पता नहीं।

साधु रामदास की प्रेरणा से गुरु रामसिंह राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय हो गये। उनके सम्प्रदाय ने उस समय असहयोग का प्रचार किया। अंग्रेजी

शिक्षा, अदालत, रेल, तार, डाक आदि कार्यों का बहिष्कार कर अपना निजी प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। इन सब कार्यों को देखकर अंग्रेजी सरकार में हलचल मच गयी और सरकार ने इस सम्प्रदाय पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये।

प्रतिबन्ध लगने पर गुरु रामसिंह ने कार्यपद्धति बदल दी और गुप्तरूप से सभी कार्यक्रमों का आयोजन होने लगा। ऊपरी तौर पर इनका संगठन सामाजिक एवं धार्मिक था किन्तु उसका दूरगामी गुप्त लक्ष्य आजादी के लिए व्यापक क्रान्ति करना था। उनके लक्ष्य में भक्ति भाव के प्रचार के साथ गोरक्षा का पवित्र उद्देश्य भी था। उन्होंने पंजाब प्रान्त को बाईस जिलों में बांट दिया और उसके बाईस अध्यक्ष नियुक्त कर दिए। वे अपने संगठन में लोगों को दीक्षित करके बढ़ा रहे थे। गुरु रामसिंह की दूरगामी योजना यह थी कि जैसे ही सारे पंजाब में उनके संगठन का विस्तार हो जायेगा, वैसे ही क्रान्ति की घोषणा कर दी जायेगी। इस बीच नामधारी संगठन को ऊपरी तौर पर राजनीतिक गतिविधियों से दूर देखकर सरकार ने भी उस पर से १८६९ में प्रतिबन्ध उठा लिया। प्रतिबन्ध उठने पर नामधारियों के उत्साह का ठिकाना न रहा और वे और अधिक जोश से संगठन को बढ़ाने में सक्रिय हो गये।

अंग्रेज सरकार ने नामधारी-संगठन से प्रतिबन्ध तो हटा लिये किन्तु उसे कोई भी संगठन सहन नहीं होता था इसलिए वह किसी न किसी तरीके से प्रत्येक संगठन को नष्ट करने के उपाय करती रहती थी। अंग्रेज सरकार ने जानबूझ कर सिखों की धार्मिक नगरी अमृतसर में एक गाय काटने का कसाईखाना श्री हरि मन्दिर साहब (स्वर्ण मन्दिर) के पास घंटाघर के मैदान में और एक लाहौरी दरवाजे के पास खोलने की अनुमति दे दी। बूचड़खाने चालू हो गये।

एक बार नामधारी सिखों का दस व्यक्तियों का दल घूमता हुआ अमृतसर पंहुचा। गोभक्त नामधारियों का यह दल धार्मिक शहर अमृतसर में बूचड़खानों को देखकर तिलमिला उठा। १४ जून १८७१ की रात को उन्होंने दोनों बूचड़खानों पर आक्रमण करके सभी बूचड़ों का सफाया कर दिया। इन हत्याओं से अमृतसर में तहलका मच गया। अंग्रेज सरकार ने सन्देह में हिन्दू-सिख नेता, निहंग, पुजारी, महन्त गिरफ्तार कर लिये। कुछ निर्दोष लोगों को यातना देकर सरकार ने अपराध स्वीकार करवा लिया और उन्हें फांसी की सजा सुना दी। इसी बीच नामधारियों का वह

दल गुरु रामदास के पास भैणी गांव पंहुचा। उन्होंने गुरु के पूछने पर सारी घटना सच-सच बता दी। गुरु रामदास ने कहा कि तुम्हारे बदले निर्दोष लोग मारे जायेंगे अत: तुम जाकर अदालत में समर्पण कर दो और अपना अपराध स्वीकार करो। गुरु के आदेश को शिरोधार्य पर शिष्यों ने वैसा ही किया। अमृतसर के सैशन जज मेजर डेविड ने उनके विरुद्ध ३१.८.७२ को फैसला देते हुए फतेहसिंह, लहसनासिंह, हाकिमसिंह, बीहलसिंह को फांसी की सजा सुनायी और लहियासिंह, लहणासिंह, सिपाही लालसिंह को कालापानी की सजा दी। तीन को देशनिकाला दे दिया। **१५ सितम्बर १८७१ को चारों गोभक्तों को रामबाग गेट के बाहर एक बड़ के पेड़ पर फांसी पर लटका दिया। ये लोग स्वयं गले में फांसी का फंदा डालकर खुशी-खुशी फांसी पर झूल गये।** हाकिमसिंह की वीर माता ने इन चारों का अन्त्येष्टि संस्कार किया। वीर माता ने कहा-**"मेरा इकलौता बेटा गोरक्षा, देशहित और धर्म के लिए बलिदान हुआ है। मैं स्वयं को भाग्यशालिनी समझती हूं।"**

ऐसी ही एक दूसरी घटना जिला लुधियाना के रायकोट में घटी। वहां गुरुद्वारा के पास गोवध की बात जानकर कुछ नामधारियों ने १५ जुलाई १८७२ की रात बूचड़ों को मारकर गायों को छुड़वाया। यह कार्य सन्त गुरुमुखसिंह, सन्त मंगलसिंह और सन्त मस्तानसिंह ने किया था किन्तु अंग्रेज सरकार ने इनके साथ दो निर्दोष नामधारी सूबा ज्ञानसिंह और रतनसिंह नाईवालिया को भी फांसी की सजा सुनायी। **इनमें से तीन सन्तों को ५ अगस्त १८७२ को बसिया वाली कोठी के पास एक पेड़ पर फांसी पर लटका दिया तथा निर्दोष ज्ञानसिंह और रतनसिंह को २६ नवम्बर को लुधियाना की जेल में फांसी दे दी गयी।**

निर्दोष नामधारियों को फांसी देने की घटना से इस सम्प्रदाय तथा भारतवासियों में रोष की लहर दौड़ गयी। इसके बाद एक और दुर्भाग्यपूर्ण घटना एक नामधारी के साथ घटी। इस घटना ने गुरु रामसिंह की सारी दूरदर्शितापूर्ण योजना को मिट्टी में मिला दिया। ११-१३ जनवरी १८७२ को 'भैणी' में माघी का मेला होने वाला था। हजारों कूके उधर जा रहे थे। वहां जाते हुए रास्ते की मुस्लिम रियासत मलेर कोटला में एक कूके गांव फरवाही के नम्बरदार गुरुमुखसिंह का एक मुसलमान से झगड़ा हो गया। मुसलमानों ने उसको खूब पीटा और घायल करके एक स्थान पर डाल दिया। इतना ही नहीं, कूके क्योंकि दृढ़ गोभक्त थे, इसलिए उनके

मन को आघात पंहुचाने के लिए, घायल कूके के पास एक गाय को लाकर हलाल कर दिया। इस घटना से तन और मन से घायल तथा क्रोध में आग-बबूला हुआ वह अनुयायी गुरु के दीवान में पंहुचा और वहां अपनी आप बीती सुनायी। इस नीचतापूर्ण घटना को सुनकर गुरु के अनुयायी भड़क उठे। अधिकांश शिष्यों ने गुरु से आग्रह किया कि अत्याचार सीमा को पार कर गये हैं इसलिए विप्लव की घोषणा कर दी जाये। किन्तु गुरु रामसिंह इसके लिए तैयार नहीं थे क्योंकि अभी योजना परिपक्व नहीं हुई थी। उन्होंने गले में पगड़ी डालकर अपने अनुयायियों से शान्त रहने का अनुरोध किया। अधिकांश लोग तो मान गये किन्तु सरदार हीरासिंह के नेतृत्व में १५० कूके बदले की आग में भड़क उठे और उन्होंने विद्रोह की घोषणा कर दी। गुरु रामदास ने यह सोचकर कि ये लोग अब तक की करी-कराई योजना पर पानी फेर रहे हैं, संगठन को बचाने के लिए पुलिस को यह कहला भेजा कि इनके कार्य का कोई उत्तरदायित्व मुझ पर नहीं है। विद्रोही कूकों ने मलौध नामक किले पर आक्रमण कर एक तोप, तलवारें और घोड़े निकाल लिये। कहा जाता है कि इस किले के सरदारों ने क्रान्ति में साथ देने का वादा कर रखा था किन्तु इस अपरिपक्व योजना में उन्होंने साथ नहीं दिया। यहां से हथियार लेकर उन्होंने अगले दिन प्रातः मलेर कोटला शहर पर आक्रमण कर दिया और महल तक जा घुसे। उन्होंने खजाने पर भी आक्रमण किया किन्तु वहां बहुत अधिक सैनिकों का पहरा होने के कारण ये सफल नहीं हुए और उन्हें वापस लौटना पड़ा। अंग्रेजी सेना ने इनका पीछा किया। पटियाला रियासत के सीमान्त क्षेत्र में स्थित 'रढ़' नामक गांव के जंगल में ६६ व्यक्ति पकड़े गये। शेष या तो मारे गये या भाग निकले। इस लड़ाई में सरदार हीरासिंह का एक बाजू कट गया था।

५९ तोप के मुंह पर बांधकर उड़ाये

गिरफ्तार बहादुर कूकों को मलेर कोटला लाया गया। लुधियाना के अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर कॉवन ने अम्बाला के कमिश्नर की उपेक्षा करके जल्लादी आदेश के तहत बिना मुकदमा चलाये, उनको तोप के मुंह पर बांधकर उड़ाने का दण्ड दिया। **१७ जनवरी १८७२ को एक मैदान में उन बहादुरों को बारी-बारी से तोप के मुंह से बांधा जाता और एक धमाके के साथ उनके शरीर के परखचे उड़कर कहीं-कहीं बिखर जाते। बहादुर कूके जोरदार जयघोष के साथ तोप से बंधते**

और जयनाद करते हुए ही कहीं शून्य में विलुप्त हो जाते। तोप से बंधने से पहले सरदार हीरासिंह ने कॉवन को ओजस्वी वाणी में कहा था "ओ बिलिया ! याद रख, हम जल्दी ही जन्म लेकर फिर आयेंगे। भारतवर्ष से तुम्हें निकालकर ही दम लेंगे। गोहत्यारे का नाश करके धर्म का झण्डा लहरायेंगे।" यह कहकर वे तोप से बंध गये। इस प्रकार ४८ वीरों को तोप से उड़ा दिया। इस मैदान का नाम "कूकियां दा रक्कड़" प्रसिद्ध हुआ।

तेरह वर्षीय बालक के टुकड़े कर दिये

विद्रोहियों में पचासवां एक तेरह वर्षीय बच्चा बिशनसिंह भी था जिसकी माता का नाम खेमकौर था। उसके बालकपन पर दया दिखाते हुए, श्रीमती कॉवन ने पति से उसको क्षमा कर देने का अनुरोध किया। डिप्टी कमिश्नर कावन ने गुरु रामसिंह को गाली बकते हुए झुककर उस बालक से कहा कि "यदि तुम यह कह दोगे कि उस बदमाश गुरु के शिष्य नहीं हो तो तुम्हें छोड़ दिया जायेगा।"

कॉवन ने बालक को डरपोक समझा था। उसे नहीं मालूम था कि इस भारतभूमि पर कितने ही निडर वीर बालक हुए हैं जिनके सामने मौत भी शरमा गयी। अपने गुरु के प्रति अभद्र शब्दों का प्रयोग सुनकर बालक क्रोध में उफन पड़ा और झपटकर डिप्टी कमिश्नर कॉवन की दाढ़ी को दोनों हाथों से जोर से पकड़ लिया। पीड़ा से कॉवन कराह उठा। छुड़ाने की कोशिशें की गयीं किन्तु सच्चे शिष्य ने दाढ़ी नहीं छोड़ी। आखिर उसके दोनों हाथ काट दिये तब जाकर कॉवन छूटा। **क्रोधित कॉवन ने उसे और भी बर्बर तरीके से मारने का आदेश दिया। उसके आदेश पर वहीं उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तथाकथित सभ्य अंग्रेज जाति का मुंह एक बालक के खून के धब्बों से सन गया !**

सोलह को फांसी पर लटकाया

शेष बचे सोलह कूका वीरों को अगले दिन मलौध ले जाकर सरे आम फांसी पर लटका दिया। जोशीले जयघोष करते हुए वे वीर खुशी-खुशी फांसी पर झूल गये।

गुरु रामसिंह की गिरफ्तारी

यद्यपि गुरु रामसिंह ने इन विद्रोही कूकों से अपना सम्बन्ध न होने की बात कही थी किन्तु अंग्रेज सरकार ने उन पर विश्वास नहीं किया। उन्हें भी ग्यारह शिष्यों सहित गिरफ्तार करके देश से निष्कासित कर

बर्मा की जेल में भेज दिया। वहीं जेल में ही १८८५ में गुरु रामसिंह का देहावसान हुआ। भैणी गांव में गुरु के स्थान की सारी सम्पत्ति जब्त करके वहां पुलिस चौकी बैठा दी।

नामधारियों पर बर्बरता का कहर जारी रहा

अंग्रेज सरकार को ऊपर वर्णित बर्बर अत्याचारों से भी शान्ति नहीं मिली। नामधारियों की धर-पकड़ शुरू हुई। कहीं उन्हें नजरबन्द किया गया, कहीं गिरफ्तार कर जेल में ठूंस दिया। उनके साथ अपराधियों जैसा बर्ताव किया जाने लगा। नामधारियों के दमन में पटियाला के राजा ने अंग्रेजों का साथ देकर देशद्रोह का पाप अपने सिर पर ले लिया।

नौ व्यक्तियों को फिर तोप से उड़ाया

मलेर कोटला में ही कॉवन ने **फिर नौ नामधारी देशभक्तों को तोप से बांधकर उड़ाया।** इनमें एक सन्त वरियामसिंह थे। इनका पटियाला के राजा से पारिवारिक सम्बन्ध था अत: राजा ने सिफारिशी पत्र भेजकर इनको छोड़ देने की प्रार्थना की थी। कॉवन भी इनको छोड़ना चाहता था किन्तु कोई ऐसा बहाना ढूंढकर, जिससे लोग यह न कहें कि उसको किसी की सिफारिश पर छोड़ दिया। बहाना ढूंढा गया। वरियामसिंह छोटे कद के थे। तोपची ने आकर कहा कि ये छोटे कद के हैं इनकी छाती तोप के ठीक मुंह के सामने नहीं आती। **सन्त वरियामसिंह यह सुनकर तपाक से पास पड़ी कुछ ईंटों को उठा लाया और उन्हें नीचे रखकर उनके ऊपर खड़ा हो गया। उसने वीर की तरह तोपची से कहा - "ये देखो मेरी छाती तोप के ठीक मुंह के सामने आ रही है। अब तोप चलाओ।** कॉवन ने निरुत्तर होकर फायर का आदेश दे दिया। एक धमाके के साथ सन्त वरियामसिंह के शरीर के टुकड़े मातृभूमि की मिट्टी में जा मिले। खून की बूंदों से देश की धरती पर उसकी वीरता की अमर कहानी लिख दी गयी।

नामधारियों के साथ की गयी इस बर्बरता से कुछ समय के लिए विद्रोह का दमन हो गया किन्तु इसके बाद पंजाब में बलिदानों की परम्परा का प्रारम्भ हो चला। यह परम्परा भारत की आजादी तक चलती रही। कूकों अथवा नामधारियों का बलिदान आजादी के इतिहास में सदा-सदा के लिए अपनी अमिट छाप छोड़ गया।

❑❑

सन् १८५७ में अंग्रेज़ी दरिन्दों के अमानुषिक अत्याचार

(प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेज़ लेखकों द्वारा वर्णित)

(जिस दिन से अंग्रेज़ों ने छल-कपट, षड्यन्त्र, कूटनीति के बल पर भारत की स्वतन्त्रता को छीनने का प्रयास किया, उसी दिन से देशभक्त शासकों, वीरों और वीरांगनाओं ने देश की आजादी की रक्षा के लिए तन, मन, धन की बाजी लगा दी। जिनमें नाना साहब पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे, नाना फड़नवीस, टीपू सुल्तान, बहादुरशाह जफ़र आदि के नाम इतिहास में प्रसिद्ध हैं। १७५७ ई० का पलासी का युद्ध भी आजादी की रक्षा के लिए किया गया एक ज्वलन्त प्रयास था। फिर १७६४ में बंगाल-सेना में अंग्रजों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। ३ सितम्बर १७९५ को बंगाल आर्मी की पन्द्रहवीं बटालियन ने अंग्रेज़ी आदेशों के विरुद्ध विद्रोह किया। १८०६ में वेल्लौर में मद्रास आर्मी ने विद्रोह किया, जिसका देश में व्यापक असर हुआ। १८५७ का विद्रोह अत्यन्त व्यापक और प्रभावकारी था, जिसने देश में जमी हुई अंग्रेजी शासन की चूलें हिला दीं। तब अपने साम्राज्यवादी शासन को बचाने के लिए अंग्रजों ने भारतीय जनता पर जो राक्षसी जुल्म ढाये, उन्हें पढ़कर दिल कांप उठता है, रोंगटे खड़े हो जाते हैं। न्याय, उन्नत सभ्यता-संस्कृति का दावा करने वाले अंग्रजों ने जिस हैवानियत और शैतानियत का नंगा नाच यहां प्रदर्शित किया उसका नमूना प्रस्तुत उद्धरणों में देखा जा सकता है। ये उद्धरण प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेज़-लेखकों और इतिहासकारों की पुस्तकों से ही उद्धृत किये हैं।) **(सम्पादक)**

अंग्रेज़ी सेना द्वारा गांवों को जलाना

एक अंग्रेज़ अधिकारी चार्ल्स बॉल ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन म्यूटिनी' में निर्लज्ज भाव से लिखा है[1]–

"हमने एक बड़े गांव में आग लगा दी, जो कि लोगों से भरा हुआ था। हमने उन्हें घेर लिया और जब वे आग की लपटों में से निकलकर

---

1. "We set fire to a large village which was full of them. We surrounded them, and when they came rushing out of the flames, we shot them! -Charles ball's Indian Mutiny, Vol. 1, pp.243-244

भागने लगे तो हमने उन्हें गोलियों से उड़ा दिया।"

निर्दोष भारतीय जनता का व्यापक संहार

अपनी पुस्तक–'हिस्ट्री आफ दि सिपाही' में इतिहास लेखक सर जॉनके ने भारतीय जनता के संहार का बड़ा दर्दनाक चित्र प्रस्तुत किया है[२]–

"फौजी और सिविल दोनों तरह के अंग्रेज़ अफसर अपनी-अपनी खूनी अदालतें लगा रहे थे, अथवा बिना किसी तरह के मुकद्दमे का ढोंग रचे और बिना मर्द-औरत या छोटे-बड़े का विचार किये भारतवासियों का संहार कर रहे थे। इसके बाद खून की प्यास और भी अधिक भड़की। भारत के गवर्नर जनरल ने जो पत्र इंगलिस्तान भेजे उनमें हमारी ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के कागजों में यह बात दर्ज है कि "बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया गया है, जिस प्रकार उन लोगों का, जो विप्लव के दोषी थे। इन लोगों को सोच-समझकर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें गांव के अन्दर जलाकर मार डाला गया, शायद कहीं-कहीं उन्हें

---

2. "Soldiers and civilians alike were holding bloody Assizes, or saling Natives without any assize at all, regardless of sex or age. Afterwards the thirst for blood grew stronger still. It is on the records of our British Parliament, in papers sent home by the Governor-General of India in Council that the aged women and children, are sacrificed, as well as those guilty of rebellion. they were not deleberately hanged, but burn to death in theier villages, perhaps now and then accidently shot Englishmen did not hesitate to boast or to record their boasting in writing, that they had spared no one, and that peppering away at niggers was very pleasant pastime, enjoyed amazingly, And it has been stated, in a book published by official authorities, that for three month eight dead-carts daily went their rounds from sunrise to sunset to take down the corpses which hung at the cross roads and market places and that six thousand beings had been thus summarily disposed off and launched into eternity,.....an Englishman is almost suffocated with indignation when he reads that Mr.Chambers or Miss Jenning was hacked to death by a dusty ruffian, but in Native histories or, history being wanting, in Native legends and traditions, it may be recorede against our people, that mothers and wives and childern, with less familiar names, fell miserable victims to the first swoop of English vengeance,....." Keye's history to the Sepoy War, Vol.II

इत्तिफाकिया गोली से भी उड़ा दिया गया। अंग्रेजों को गर्व के साथ यह कहते हुए अथवा पत्रों में लिखते हुए भी संकोच न हुआ कि हमने एक भी हिन्दुस्तानी को नहीं छोड़ा और काले हिन्दुस्तानियों को गोलियों से उड़ाने में हमें बड़ा विनोद और आश्चर्यजनक आनन्द अनुभव होता था।"

एक पुस्तक में, जो अंग्रेज़ सरकार की ओर से प्रकाशित हुई है, लिखा है—"सड़कों के चौरास्तों पर और बाजारों में जो लाशें टंगी हुई थी, उनको उतारने में सूर्यास्त तक मुर्दे ढोने वाली आठ-आठ गाड़ियाँ बराबर तीन-तीन महीने तक लगी रहीं और इस प्रकार एक स्थान पर छः हजार मनुष्यों को झटपट खत्म करके परलोक भेज दिया।" .....जब कोई अंग्रेज़ यह पढ़ता है कि किसी काले रंग के बदमाश ने किसी मिस्टर चैम्बर्स या किसी मिस जेनिङ्ग्स को काट कर मार डाला तो क्रोध के मारे उसका दम घुटने लगता है, किन्तु भारतवासियों के इतिहासों में अथवा, यदि इतिहास न हुए तो, उन परम्परागत वृत्तान्तों में हमारी कौम के विरुद्ध यह स्मरण रहेगा कि भारत की माताएँ, पत्नियाँ और बच्चे जिनके नामों से हम इतनी अच्छी तरह परिचित नहीं हैं, अंग्रजों की पहली बाढ़ के निर्दयता के साथ शिकार हुए।"

ग्रामवासियों को गांव के साथ ही जला देना

अंग्रेज़ अधिकारी चार्ल्स वॉल अपनी पुस्तक में आगे अपने क्रूर कार्यों का चित्रण करते हुए बड़ी धृष्टता के साथ लिखता है[3]—

"एक यात्रा में मुझे अद्‌भुत आनन्द आया। हम लोग एक तोप लेकर

---

3. "One trip I enjoyed amazingly; we got on board a steamer with a gun, while, the Sikhs and fusiliers marched up to the city. We steamed up throwing shots right and left till we got up to the bad places, when we went on the shore and preppered away with our guns, my old doubble barreel bringing down sevral niggers. So thirsty for vengance I was, we fired the places right and left and the flaims shot up to the heavens as they spread, fanned by the breeze, showing that the day of vengence had fallen on the treacherous villions, Everyday, we had expeditions to born and destory disaffected villages and we have taken our revenge.....We have the power of life in our hands and I assure you, we spare not ..... The condemmed culprit is placed under a tree, with a rope round his neak, on the top of a carriage, and when it, is pulled off he swings" —Charles Ball's Indian Mutiny, Vol.L.P.257.

स्टीमर पर चढ़ गए। सिक्ख और गोरे सिपाही शहर की तरफ बढ़े। हमारी किश्ती ऊपर को चलती जाती थी। और हम अपनी तोप से बाएँ गोले फैंकते जाते थे। यहां तक कि हम भरे-पूरे ग्रामों में पहुंचे। किनारे पर जाकर हमने अपनी बन्दूकों से गोलियां बरसानी शुरू कीं। मेरी पुरानी दो नली बन्दूक ने कई काले आदमियों को गिरा दिया। मैं बदला लेने का इतना प्यासा था कि हमने दाएं और बाएं गाँवों में आग लगानी शुरू की, लपटें आसमान तक पहुंची और चारों ओर फैल गईं। हवा ने उन्हें फैलने में मदद दी, जिससे मालूम होता था कि बागी और बदमाशों से बदला लेने का मौका आ गया है। हर रोज हम लोग विद्रोही ग्रामों को जलाने और मिटा देने के लिए निकलते थे और हमने बदला ले लिया है।.....लोगों की जान हमारे हाथों में है और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि हम किसी को नहीं छोड़ते। .....अपराधी को एक गाड़ी के ऊपर बैठा कर किसी दरख्त के नीचे ले जाया जाता है। उसकी गर्दन में रस्सी का फन्दा डाल दिया जाता है। और फिर गाड़ी हटा ली जाती है और वह लटका हुआ रह जाता है।"

बूढों और दूध पीते बच्चों वाली माताओं का संहार

इतिहास लेखक होम्स 'सिपाही वार' नामक पुस्तक में अपने संस्करणों में बड़े गौरव के साथ लिखता है[४]—बूढ़े आदमियों ने हमें कोई नुकसान न पहुंचाया था; असहाय स्त्रियों से, जिनकी गोद में दूध पीते बच्चे थे, हमने उसी तरह बदला लिया जिस तरह बुरे से बुरे आदमियों से।"

कत्ले आम और अभूतपूर्व यातनाएं

सर जार्ज केम्पवेल ने अपनी पुस्तक में स्वीकार किया है[५]—कि हमने क्रूरतम यातनाएं देकर भारतीयों को मारा—"और मैं जानता हूं कि इलाहाबाद में बिना किसी तमीज के कत्लेआम किया गया था .....और

---

4. "Old men had done us no harm, helpless women, with suckling infants at their chests, felt the weight of our vengeance no less than the vilest male factors." =Holmes, Sepoy War, pp.229-230.
5. ".....and I know that at Allahabad there were far two wholesale executions.....And afterwards Neill did things with almost more than the massocre, putting deliberate torture, in a way that has never been proved against the natives. "-Sir George Campbell, Provisional Civil Commissioner in the Mutiny, as quoted in the other side of the Medal by Edward Thompson, p.81

इसके बाद नील ने वे काम किये थे जो कत्लेआम से भी अधिक मालूम होते थे, उसने लोगों को जान-बूझकर इस तरह की यातनाएं दे-देकर मारा जिस तरह की यातनाएं, जहां हमें सुबूत मिले हैं, भारतवासियों ने कभी किसी को नहीं दीं।".....

तोप के मुंह पर बांधकर उड़ाना

'नैरेटिव ऑफ दा इण्डियन रिवोल्ट' पुस्तक में बताया गया है कि विद्रोह को दबाने के लिए भारतीयों को किस प्रकार तोप के मुँह पर बांधकर उड़ा दिया[6]–

"५५ नम्बर पलटन के कैदियों के साथ अधिक भयंकर व्यवहार किया गया, ताकि दूसरों को शिक्षा हो। उनका कोर्ट-मार्शल हुआ, उन्हें दण्ड दिया गया और उनमें से हर तीसरे मनुष्य को तोप के मुंह से उड़ाने के लिए चुन लिया गया।"

"उस दिन की परेड का दृश्य विचित्र था। परेड पर नौ हजार सिपाही थे।.....एक चौरस मैदान के तीन ओर फौज खड़ी कर दी गई। चौथी ओर दस तोपें थीं।.....पहले दस कैदी तोपों के मुंह से बांध दिये गए। इसके बाद तोपख़ाने के अफसर ने अपनी तलवार हिलाई, तुरन्त तोपों की गरज सुनाई दी और धुंए के ऊपर हाथ, पैर और सिर हवा में उड़ते हुए दिखाई देने लगे। यह दृश्य चार बार दुहराया गया। हर बार समस्त सेना में से जोर की गूंज सुनाई देती थी, जो दृश्य की बीभत्सता के कारण लोगों के हृदयों से निकलती थी। उस समय से हर सप्ताह में

---

6. "Of the prisioners of the 55th a more aweful example was made. They were tried, condemmed and every third man was selected to be blown away from guns." -Narrative of Indian Revolt.p.36.

"That parade was a strange scene. There were about nine thousand men on parade.....The troops were drawn up on three sides of a square, The forth side being occupied by ten guns.....The first ten of presioners were then dashad to the gun, the artillery officer waved his sword, you heard the roar of the guns, and above the smoke you saw legs, arms, and heads flying in all directions. There were four of these saloves, and at each a sort of buzz went through the whole mass of the troop, a sort of murmur of horror. Since that time we have had execution parades once or twice a weak, and such is force of habit we now think little of them. "-Narrative of the Indian Revolt, p.36

एक या दो बार उसी तरह के प्राण-दण्ड की परेड होती रहती है और हम अब उसके ऐसे अभ्यस्त हो गए है कि हम पर उसका कोई असर नहीं.....

इतिहास लेखक 'के' लिखता है कि ५५ नम्बर पलटन के अधिकांश सिपाहियों की निर्दोषता को कर्नल निकल्सन और जॉन लारेन्स दोनों ने अपने पत्रों में स्वीकार किया है।.....

मनुष्यों का शिकार

सन् १८५७ में जनरल हेवलॉक और रिनॉड के अधीन कम्पनी की सेना की इलाहाबाद से कानपुर तक की यात्रा के विषय में सर चार्ल्स डिल्क लिखता है[७]–

"सन् १८५७ में जो पत्र इंगलिस्तान पहुंचे उनमें एक ऊँचे दर्जे का अफसर, जो कानपुर की ओर से सेना में साथ था, लिखता है–मैंने आज की अंग्रेज़ी तारीख में खूब शिकार मारा। बागियों को उड़ा दिया। यह याद रखना चाहिए कि जिन लोगों को इस प्रकार फांसी दी गई या तोप से उड़ाया गया, वे सशस्त्र बागी न थे, बल्कि गांव के रहने वाले थे, जिन्हें केवल सन्देह पर पकड़ लिया जाता था। इस कूच में गांव के गांव इस क्रूरता के साथ जला डाले गए और निर्दयता के साथ निर्दोष ग्रामवासियों का संहार किया गया कि जिसे देखकर एक बार मुहम्मद तुगलक भी शरमा जाता।"

कानपुर में फांसियाँ

१७ जुलाई सन् १८५७ को जनरल हेवलॉक की सेना ने कानपुर में

---

7. ".....letters which reached home in 1857 in which an officer in high Command during the march upon Cawnpore reported 'good bag today, polished off rebels', it being borne in mind that the 'rebels' thus hanged or blown from guns were not taken in arms, but villagers apprehended or suspicion. During this march atrocities were committed in the burning of villages and massaere of innocent inhabitants at which Mohammad Tuglak himself would have stood ashamed....." -Greater Britain, by Sir Charles Dike.
8. "General Havelock began to wreck a terrible vengeance for the death of Sir Hugh Wheller. Batch upon batch of natives mounted the scaffild. The calmness of mind and nobility of demeanour which some of the Revolutionaries showed at the time of death was such

प्रवेश किया। उस समय चार्ल्स बॉल लिखता है[८]—"जनरल हेवलॉक ने सर ह्यू व्हीलर की मृत्यु के लिए भयंकर बदला चुकाना शुरू किया। हिन्दुस्तानियों के गिरोह के गिरोह फांसी पर लटका दिए गए। मृत्यु के समय कुछ विप्लवकारियों ने जिस प्रकार चित्त की शान्ति और अपने व्यवहार में ओज का परिचय दिया, वह उन लोगों के सर्वथा योग्य था, जो कि किसी सिद्धान्त के कारण शहीद होते हैं।"

इनमें से एक व्यक्ति की मिसाल देते हुए चार्ल्स बॉल लिखता है, वह "बिना जरा सी भी घबराहट के ठीक इस प्रकार फांसी के तख्ते पर चढ़ गया जिस प्रकार एक योगी अपनी समाधि में प्रवेश करता है।"

पंजाब का ब्लैक होल और अजनाले का कुँआ

२६ नम्बर पलटन के कुछ थके हुए सिपाही अमृतसर की एक तहसील अजनाले से ६ मील दूर रावी नदी के किनारे पड़े हुए थे। यह वे सिपाही थे जो ३० जुलाई की रात को लाहौर की छावनी के पहरे से निकल भागे थे। इन लोगों ने विद्रोह में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया था, परन्तु केवल सन्देह के कारण इनसे हथियार रखवा लिये गए थे और इन्हें कैद कर लिया गया था। इन निर्दोष सिपाहियों के साथ जुडीशल कमिश्नर सा रॉबर्ट मॉण्टगुमरी ने जैसा व्यवहार किया उसका वर्णन अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर फ्रेड्रिक कूपर ने अपनी "The crisis in the Punjab" नामक पुस्तक में बड़े विस्तार के साथ किया है। उसका सारांश संक्षेप में कूपर ही के शब्दों में नीचे दिया जाता है—

"३१ जुलाई को दोपहर के समय जब हमें मालूम हुआ कि ये लोग रावी नदी के किनारे पड़े हुए हैं तो हमने अजनाले के तहसीलदार को कुछ सशस्त्र सिपाहियों सहित उन्हें घेरने के लिये भेज दिया। शाम को चार बजे के करीब हम ८० या ९० सवारों को लेकर मौके पर पहुंचे। बस फिर क्या था। शीघ्र ही उन थके-माँदे लोगों पर गोलियां चलानी शुरू कर दीं। बहुत से उनमें से रावी में कूद पड़े और बहुतेरे बुरी तरह घायल होकर निकल भागे। उनकी संख्या पांच सौ थी। भूख-प्यास के कारण वे इतने निर्बल हो गये थे कि रावी नदी की धार में न ठहर

---

as would do credit to those who martyred themselves for devotion to a principle." —Charles Balls Indian Munity, Vol, p.388.

"Without the least agitation he mounted the scaffold even as a yogi enters samadhi!" -Ibid.

सके। नदी के ऊपर की ओर लगभग एक मील के फासले पर एक टापू था। जो लोग तैरते हुए रावी पार कर गए उन्होंने भाग कर यहां शरण ली, पर यहां भी भाग्य ने उनका साथ न दिया। दो किश्तियां मौके पर मौजूद थीं। ६० बन्दूकों के मुंह उनकी तरफ कर दिये गए। जब उन लोगों ने बन्दूकें देखीं तो उन्होंने हाथ जोड़कर अपनी निर्दोषता प्रकट की और प्राण-भिक्षा मांगी। परन्तु इन्हें शीघ्र ही गिरफ्तार कर लिया गया और थोड़े-थोड़े कर रावी के उस पार पहुंचा दिये गये। गिरफ्तार होने से पहले पचास के करीब इनमें से निराश होकर रावी में कूद पड़े और फिर न दिखाई दिये। किनारे पर पहुंचकर इन लोगों को खूब कसकर बांध दिया गया और इनकी कण्ठी-मालाएं तोड़कर पानी में फैंक दी गईं। उस समय जोर की वर्षा हो रही थी, पर उस वर्षा में ही उन्हें सिक्ख सवारों की देख-रेख में अजनाले में पहुंचा दिया गया।"

"अजनाले के थाने में हमने इनको फांसी देने के लिये और गोलियों से उड़ाने के लिये रस्सियों एवं पचास सिक्ख सिपाहियों का प्रबन्ध कर रक्खा था। २८२ बंधे हुए सिपाही, जिनमें कई एक देशी अफसर भी थे, आधी रात के समय अजनाले के थाने पर पहुंचे। सब को अजनाले के थाने में बन्द कर दिया गया। जो थाने में न आ सके उन्हें पास के तहसील में, जो बिल्कुल नई बनी थी, एक छोटे से गुम्बद में भर दिया गया। यह गुम्बद बहुत तंग था, पर तो भी उसके दरवाजे चारों तरफ से बन्द कर दिये गये और वर्षा के कारण फांसी दूसरे दिन सवेरे के लिये स्थगित कर दी गई।"

"दूसरे दिन बकरीद थी। प्रात:काल इन अभागों को दस-दस करके बाहर निकाला गया। दस सिक्ख एक ओर बन्दूकें लिये खड़े थे और चालीस उनकी मदद के लिये। सामने आते ही इन लोगों को उड़ा दिया जाता था।"

"जब थाना खाली हो गया तो तहसील की बारी आई। जब गुम्बद के २१ सिपाही बन्दूक का निशाना बन चुके तो मालूम हुआ कि बाकी सिपाही गुम्बद में से बाहर नहीं निकलना चाहते। अन्दर जाकर देखा तो ४५ सिपाही पड़े-पड़े सिसक रहे थे। अनजाने ही हौलवेल का ब्लैक होल हत्याकाण्ड फिर दोहराया गया।"

"शीघ्र ही इन लोगों की लाशें घसीट कर बाहर निकाली गईं और उन्हें एक पुराने कुएं में, जो कि अजनाले के थाने से सौ गज के फासले पर था, डाल दिया गया। कुएं में जो जगह बाकी रही थी वह ऊपर से

मिट्टी डलवा कर भर दी गई और उस पर एक ऊंचा टीला बना दिया गया। एक कुंआ कानपुर में है, परन्तु एक कुंआ अजनाले में भी है। जो सिपाही गोली से उड़ा दिये अथवा कुंए में डाल दिये गये, उनमें से अधिकांश हिन्दू थे। उन्होंने मरते समय सिक्खों को गंगा जी की दुहाई लानत मलामत की।

दिल्ली में कत्लेआम और लूट

सन् १८५७ में दिल्ली के पतन के बाद दिल्ली के अन्दर कम्पनी के अत्याचारों के विषय में लॉर्ड एल्फिस्टन ने सा जॉन लॉरेन्स को लिखा है[९]–"मोहासरे के खत्म होने के बाद से हमारी सेना ने जो अत्याचार किये हैं, उन्हें सुनकर हृदय फटने लगता है। बिना मित्र अथवा शत्रु में भेद किये ये लोग सब से एक सा बदला ले रहे हैं। लूट में तो वास्तव में हम नादिरशाह से बढ़ गये।" मॉण्टगुमरी मार्टिन लिखता है[१०]–

"जिस समय हमारी सेना ने शहर में प्रवेश किया तो जितने नगर-निवासी शहर की दीवारों के अन्दर पाये गए, उन्हें संगीनों से मार डाला गया। आप समझ सकते हैं कि उनकी संख्या कितनी अधिक रही होगी, जब मैं आपको यह बतलाऊं कि एक-एक मकान में चालीस-चालीस, पचास-पचास आदमी छिपे हुये थे। ये लोग विद्रोही न थे, बल्कि नगर-निवासी थे, जिन्हें हमारी दयालुता और क्षमाशीलता पर विश्वास था। मुझे खुशी है कि उनका भ्रम दूर हो गया।"

इसके बाद एक अंग्रेज़ इतिहास लेखक लिखता है[११]–

---

9. "After the siege was ever, the outranges committed by our army are simply heart rending. A wholesale vengeance is being taken witout distinction of friend and foe. As regard the looting, we have indeed surpassed Nadirshah!" -Life of Lord Lawrence, Vol, II.p.262.
10. "All the city people found within the wall when our troops entered were bayonetted on the spot; and the number was considerable, as you may suppose, when I tell you that in some house forty or fifty persons were hiding. These were not muteers, but residents of the city, who trusted to our well-know mild rule for pardon, I am glad say that they were disappointed." -Letter in Bombay Telegraph by Montgomery martin.
11. "A general massacre of the inhabitant of Delhi, a large number of whom were know to wish our success, was openly proclaimed," - The chaplain's narrative of the siege of Delhi, quoted by kaye.

"दिल्ली के वाशिन्दों के कत्लेआम का खुले रूप से ऐलान कर दिया गया, यद्यपि हम जानते थे कि उनमें बहुत से हमारी विजय चाहते थे।" रसल लिखता है[१२]–

कभी-कभी "मुसलमानों के मारने से पहले उन्हें सूअर की खालों में सी दिया जाता था, उन पर सूअर की चर्बी मल दी जाती थी, और फिर उनके शरीर जला दिये जाते थे और हिन्दुओं का जबरदस्ती धर्मभ्रष्ट किया जाता था।"

(चांद फांसी अंक, नवम्बर १९२८ से)

❑❑

१८५७ में अंग्रेजों के अत्याचार

12. "Sewing Mohammadans in pig-skin, smearing them with pork-fat before execution and buring their bodies and forcing Hindus to defile themselves....." -Russell's Diary Vol.II.p.43.

१८५७ की क्रान्ति के बाद
ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाती पर पहली गोली दागने वाले
सगे तीन भाई

क्रान्तिकारी शहीद चापेकर बन्धु

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

(१८५७ की आजादी की क्रान्ति में अंग्रेजों ने व्यापक स्तर पर इतने जुल्म ढाये कि आजादी की क्रान्ति में काफी समय के लिए ठहराव सा आ गया। नयी आंजादी की क्रान्ति का सूत्रपात करने का श्रेय जाता है चापेकर बन्धुओं को, जिन्होंने १८५७ के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाती पर १८९७ में फिर पहली गोली दाग कर मानो साम्राज्यवाद को खुली चुनौती दे डाली कि दमनकारी अंग्रजो ! तुम्हें एक दिन इस देश को छोड़कर जाना ही पड़ेगा और नहीं तो मरने के लिये तैयार हो रहो।

अत्याचारी अंग्रेज़ शासक भारतीयों पर अत्याचार करने का बहाना ढूंढ़ते रहते थे और मौका लगते ही पशुओं से भी बुरा वर्ताव करते थे। १८५७ में पूना में प्लेग फैलने पर मकान खाली कराने के बहाने मिस्टर रैण्ड ने भारतीयों पर अत्याचार किये और उनके मान-सम्मान को आघात पहुंचाया। मिस्टर रैण्ड की हत्या करके इसका बदला लिया दो सगे भाइयों दामोदर चापेकर व बालकृष्ण चापेकर ने । और तीसरे भाई वासुदेव चापेकर ने उन मुखबिरों को गोली से उड़ाया, जिन्होंने विश्वासघात करके चापेकर बन्धुओं को फांसी दिलवाई थी। इस प्रकार आजादी के लिए तीन सगे भाई फाँसी पर खुशी-खुशी झूल गये।) **(सम्पादक)**

दामोदर और बालकृष्ण दो भाई थे। इनके पिता हरिपंत चापेकर महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध कीर्तनकार थे। उनके कीर्तन की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। यह तो स्पष्ट ही है कि यह धार्मिक परिवार था, जिसमें चापेकर बन्धु पले। कीर्तन से अच्छी आमदनी हो जाती थी और परिवार खाता-पीता था।

दामोदर ने भी कीर्तन को ही अपना पेशा बनाया, पर उनका मन कीर्तन में उतना नहीं लगता था। यही हाल बालकृष्ण तथा तीसरे भाई

वासुदेव का भी था। जब पिता कीर्तन करते थे तो दामोदर और बालकृष्ण उनके पीछे कोई न कोई वाद्य बजाते होते थे। पर तीनों भाइयों की दिलचस्पी कसरत, कुश्ती, खेल आदि में थी। दामोदर ने तो कसरत और कुश्ती के लिये अखाड़ा भी खोल दिया था। दामोदर की यह आकांक्षा थी कि किसी तरह फौजी तालीम प्राप्त हो, पर ब्रिटिश सरकार जिन लोगों को अपनी फौज में लेती थी, उनमें मराठा ब्राह्मण और विशेष कर चितपावन ब्राह्मण बिल्कुल वर्जित थे। एन० सी० केलकर के अनुसार दामोदर चापेकर ने ब्रिटिश सरकार की फौज में भरती होने के लिये एक विशेष प्रार्थना-पत्र भेजा था, जिसमें कहा गया था—मुझे फौज में भरती कर लिया जाये, तो मैं चार सौ ब्राह्मणों की एक टुकड़ी बना कर दिखा सकता हूं।

पर सरकार भला इस पर क्यों राजी होती, क्योंकि सरकार के दिमाग मैं यह बैठ गया था कि चितपावन ब्राह्मण बहुत खतरनाक होते हैं और उनमें बगावत करने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। जो कुछ भी हो, जब दामोदर को यह मौका नहीं मिला, तो वह बहुत दु:खी और क्रुद्ध हुए। लोकमान्य तिलक ने यह चेष्टा की कि उन्हें किसी देशी राज्य की सेना में भरती करा दिया जाए, तो एक देशभक्त को सैनिक प्रशिक्षण मिल जाये।

उन दिनों श्यामजी कृष्ण वर्मा उदयपुर के दीवान थे। लोकमान्य तिलक ने श्याम जी से कहा—आप इस युवक को अपने यहां की सेना में भरती कर लें। श्यामजी स्वयं बड़े देशभक्त थे, और क्रान्तिकारी विचार रखते थे। लोकमान्य तिलक ने दामोदर चापेकर की सिफारिश करते हुए श्याम जी कृष्ण वर्मा को जो पत्र लिखा था वह इस प्रकार था—"यहां का एक ब्राह्मण भद्र व्यक्ति जो कारकुन से कहीं ज्यादा सैनिक है, किसी देशी राजा की सेवा वैयक्तिक प्रचारक, अंगरक्षक या यदि यह कार्य न मिल सके तो फौजी के रूप में करना चाहता है। क्या उदयपुर में उन्हें कोई अवसर मिल सकता है? जब आप यहां आएंगे, तो आपसे उनके विषय में बातचीत करूंगा।"

पर दामोदर चापेकर को अंगरक्षक या फौज में भरती होने का मौका ही नहीं मिला, क्योंकि स्वयं श्यामजी कृष्ण वर्मा को उदयपुर राज्य की दीवानगी छोड़नी पड़ी और यह शायद इस कारण कि लोकमान्य तिलक के साथ उनका भीतर ही भीतर सम्बन्ध था।

इसलिये दामोदर चापेकर को कीर्तनकार ही रह जाना पड़ा, पर भीतर जो आग जल रही थी, वह कीर्तन से शान्त कैसे होती? दामोदर ने अपने अखाड़े या क्लब के जरिये एक अच्छा जत्था इकट्ठा किया।

इस प्रकार यह तरुण देशभक्तों की एक संस्था बन गई। हथियार एकत्र किये जाने लगे और फौज में भरती हुए बिना जितना फौजी प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता था,वह प्राप्त किया जाने लगा। बीच-बीच में ये युवक कुछ काम भी करने लगे। इन युवकों का स्वप्न यही था कि भारत से अंग्रेज़ों को मार कर भगा दिया जाये। जो लोग अंग्रेज़ों के पिट्ठू थे, स्वाभाविक रूप से उन लोगों के विरुद्ध इस दल का क्रोध था। बाद को जब दामोदर चापेकर पकड़े गये तो उन्होंने स्वीकार किया कि मैंने ही वासुदेव राव पटवर्धन, कुलकर्णी और ऐसे लोगों को पीटा। इसी प्रकार मैंने थोराट और विलिंकन की भी पिटाई की और मैंने ही विश्वविद्यालय के पंडाल में आग लगाई। इसी दल की ओर से एक युवक ने भी बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्त्ति के मुंह पर तारकोल पोता था, और मूर्ति के गले में जूतों की माला लटका दी थी।

पूना में प्लेग

१८९७ में पूना में प्लेग (ताऊन) भयंकर रूप से फैल रहा था। उसको दूर करने के लिये घर-घर तलाशी होने लगी, और जिन मकानों में बीमारी पाई गई, उनको जबरदस्ती खाली कराया गया। मिस्टर रैण्ड नामक एक अंग्रेज़ इस कार्य के लिये विशेष रूप से तैनात होकर आये। ये महाशय जरा कड़े मिजाज के थे, जिस बात को सहूलियत के साथ आसानी से किया जा सकता था, उसी को उन्होंने बदमिजाजी और सख्ती से किया। सच बात तो यह है कि मिस्टर रैण्ड ऐसे परोपकार के कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य थे। नतीजा यह हुआ कि पूना और उसके आस-पास मिस्टर रैण्ड की बड़ी बदनामी हुई, और सभी लोग उन्हें सार्वजनिक शत्रु के रूप में देखने लगे। अखबार मिस्टर रैण्ड का तिरस्कार करने लगे।

४ मई १८९७ को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने समाचार-पत्र 'केसरी' में इस आशय का लेख लिखा कि बीमारी तो एक बहाना है, वास्तव में सरकार लोगों की आत्मा को कुचलना चाहती है। उन दिनों यह पत्र काफी जनप्रिय हो चुका था, इसी लेख में यह भी लिखा था कि मिस्टर रैण्ड अत्याचारी हैं और जो कुछ वे कर रहे हैं, वह सरकार की आज्ञा से ही कर रहे हैं, इसलिये सरकार के पास सहायता के लिये प्रार्थना-पत्र देना व्यर्थ है।

१२ जून १८९७ को शिवाजी का अभिषेकोत्सव मनाया गया था, और १५ जून को उसी का विवरण देते हुए 'केसरी' ने कुछ पद्य छापे,

जिनका शीर्षक 'शिवा जी की उक्तियां' था। पुलिस का कहना था कि शिवाजी की उक्तियों के बहाने इसमें अंग्रेज़ जाति के विरुद्ध विद्वेष का प्रचार किया गया था। इस उत्सव के अवसर पर बोलते हुए, पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार, एक वक्ता ने कहा–'आज इस पवित्र उत्सव के मौके पर प्रत्येक हिन्दू तथा मराठे का–चाहे वह किसी भी दल या सम्प्रदाय का हो–दिल बांसों उछल रहा है। हम सभी अपनी खोई हुई स्वाधीनता को पा लेने की चेष्टा कर रहे हैं, और हम सब को आपस में मिलकर ही इस भारी बोझ को उठाना है। किसी भी ऐसे आदमी के पथ में रोड़ा अटकाना अनुचित होगा, जो अपनी बुद्धि के अनुसार इस भार को उठाने का कार्य कर रहा है। आपस के हमारे झगड़ों से हमारी उन्नति बहुत कुछ रुक जाती है। यदि कोई हमारे देश पर अत्याचार करता है तो उसे खत्म कर दो, किन्तु दूसरों के कार्य में बाधा मत डालो। ऐसे सभी मौके या उत्सव जब भी हम सभी अनुभव करते हैं कि हम एक सूत्र में बंधे हैं, खूब मनाए जाने चाहियें।' पुलिस रिपोर्ट के अनुसार एक और वक्ता ने उसी अवसर पर कहा–'फ्रांस की राज्य क्रान्ति में भाग लेने वालों ने इस बात से इन्कार किया है कि वे कोई हत्या कर रहे हैं, उनका कहना है कि रास्ते के कांटों को हटा रहे हैं।' लोकमान्य तिलक स्वयं इस उत्सव में सभा के सभापति थे।

पुलिस रिपोर्ट के अनुसार उन्होंने कहा–"क्या शिवाजी ने अफजल खां को मार कर कोई पाप किया? इस प्रश्न का उत्तर महाभारत में मिल सकता है। भगवान् श्री कृष्ण ने तो गीता में अपने गुरु तथा सम्बन्धियों तक को मारने की आज्ञा दी है। यदि कोई मनुष्य परार्थबुद्धि से कोई हत्या भी कर डाले, तो उस पर उसका दोष नहीं लग सकता। श्री शिवा जी ने अपने पेट भरने के लिये अफज़ल खां को नहीं मारा था। यदि चोर हमारे घर में घुस आये, और हम में उसको पकड़ने की शक्ति न हो, तो हम बाहर से किवाड़ बन्द कर लें और उन्हें जिन्दा जला डालें। इसे ही नीति कहते हैं। ईश्वर ने विदेशियों को हिन्दुस्तान के राज्य का पट्टा लिखकर नहीं दिया है। श्री शिवाजी ने जो कुछ किया, वह यह था कि उन्होंने अपनी जन्मभूमि पर विदेशियों की राज्य-शक्ति हटाने के लिये लड़ाई लड़ी थी। उन्होंने इस प्रकार किसी पराई चीज पर दखल करने की चेष्टा नहीं की। एक कूपमण्डूक की भांति अपनी दृष्टि को संकुचित मत बनाओ। 'भारतीय दण्ड विधान' से यह सबक मत लो कि क्या करना चाहिये और क्या नहीं। इसके विपरीत श्रीमद्भगवद् गीता

के भव्य वायुमण्डल में चले जाओ, महापुरुषों के आचरणों पर विचार करो।

मिस्टर रैण्ड की हत्या

२२ जून को सारे साम्राज्य में महारानी विक्टोरिया का ६० वां राज्याभिषेक-दिवस मनाया जा रहा था। पूना शहर में उत्सव हो रहा था। रात को रोशनी हो रही थी। दो गोरे अफसर खुशी में मस्त झूमते हुए गणेशकुण्ड से लौट रहे थे। गदर हुए ४० साल गुजर चुके थे, इस बीच ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कोई भी चूं नहीं करता था। मुसलमान क्रान्तिकारियों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। बड़े आनन्द से सरकार और उसके पिट्ठुओं के दिन कट रहे थे। मालूम होता था कि यही बहार सदा रहेगी, भारतवासी ऐसे ही गुलाम रहेंगे। किन्तु सहसा यह क्या रंग में भंग हो गया? धांय! धांय!! धांय!!! किसी ने गोली चला दी। मिस्टर रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट एयर्स्ट एक चीख के साथ गिर पड़े। मारने वाला जो भी हो, निशाने का पक्का था। दोनों की तत्काल मृत्यु हो गई। मारने वाला भाग निकला था। सारे साम्राज्य में खलबली मच गई। साम्राज्य के भाड़े के टट्टू चिल्लाते दौड़ पड़े-'पकड़ो ! पकड़ो ! उस बदमाश को।' सचमुच ही साम्राज्य की आंखों में वह बदमाश था। साम्राज्य का धन्धा कैसे सुन्दर रूप से चल रहा था, जो आज्ञा अफसर देता, वही चलती थी। न कोई उस पर बहस करता था, न कोई उस पर विद्रोह करता था, किन्तु यह कौन खूनी है? उसका क्या उद्देश्य है? वह क्या चाहता है? साम्राज्यवाद की आंखों में सारी चेतना इस समय इसी पर केन्द्रीभूत हो रही थी-'वह कौन है?'

वह युवक कठिनता से पकड़ में आया था। यह सवाल उठा था, उसका नाम क्या है? उसका नाम था दामोदर चापेकर। ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने बड़ी देर तक इस युवक की ओर घूरा, फिर अंगड़ाई ली, शासकों की सुखनिद्रा में बाधा पड़ चुकी थी। वे सजग हो गए। फिर वे क्रोध के मारे थर-थर कांपते हुए चिल्लाये-'पीस डालो उस बदमाश को।' ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वह चक्की जो गदर के दिनों के बाद से करीब-करीब बेकार पड़ी थी, हंसी, और उससे एक पैशाचिक घर्र-घर्र की आवाज निकलने लगी। इस चक्की का नाम था ब्रिटिश न्यायालय। ऊपर से यह कितनी भोली-भाली मालूम होती थी, किन्तु उधर जनता ने भी दामोदर की ओर देखा, कौन है यह बहादुर, जिसने १८५७ के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छाती पर पहली गोली चलाई।'

दामोदर चापेकर ने अदालत में कबूल किया कि उसने रैण्ड साहब की हत्या जान-बूझ कर की है। केवल यही नहीं, उसने यह भी स्वीकार किया कि इस घटना के पहले बम्बई में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति के मुंह पर तारकोल पोतने वाला वही था। इसमें उसका उद्देश्य यह था कि 'आर्य-भ्राताओं के दिल में उत्साह की लहर पैदा हो और हम लोग विद्रोह का टीका माथे पर लगायें। चापेकर को फांसी की सजा हुई।

इसके बाद पूना नगर में दमनचक्र जोरों से चालू हुआ। प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने हीरा बाग में एक सभा बुलाई और उसमें बाकायदा इस हत्या की निन्दा की गई। 'लंदन टाइम्स' ने हत्या की निन्दा की और ऐंग्लो इण्डियनों ने तो यह शोर मचाया कि प्रत्येक ब्राह्मण को फांसी पर चढ़ा देना चाहिये। उन्होंने कहा कि यदि इस समय दया दिखाई गई, तो आगे चलकर अंग्रेज़ों का खात्मा हो जायेगा।

यह भी मालूम हुआ है कि कैसे चापेकर पकड़े गये। चापेकर के ही क्लब के एक सदस्य गणेश शंकर द्रविड़ ने बीस हजार रुपये के लोभ से दामोदर चापेकर को गिरफ्तार करा दिया। बालकृष्ण चापेकर भाग निकले। मि० क्रो नामक एक अंग्रेज़ जज की अदालत में मुकद्दमा चला और उन्हें फांसी की सजा दी गई। लोकमान्य तिलक भी जेल में मिलने आ चुके थे। फांसी घर से उन्होंने खबर भेजी कि मुझे आप अपनी गीता भेज दें। लोकमान्य तिलक ने अधिकारियों की अनुमति लेकर हस्ताक्षर के साथ गीता भेज दी। फांसी के दो दिन पूर्व दामोदर चापेकर के हाथ में तिलक वाली वही गीता थी और वह उस श्लोक की आवृत्ति कर रहे थे–

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिः धीरस्तत्र न मुह्यति।।

श्लोक कहते हुए वह फांसी पर चढ़ गये। उस समय के अनुसार उनकी अन्तिम इच्छा यह थी कि उनकी लाश ब्राह्मणों के अलावा किसी के द्वारा न जलाई जाये। लोकमान्य तिलक ने तदनुसार केसरी के व्यवस्थापक श्री विद्वांस को लाश दिलवा दी और वैदिक रीति से क्रिया-कर्म हुआ।

बालकृष्ण भागकर निजाम के राज्य में छिपे हुए थे। लोकमान्य तिलक ने दामोदर चापेकर के मामले में साढ़े सात हजार रुपये खर्च किये थे। जब उन्होंने सुना कि बालकृष्ण के पास खाने को नहीं हैं तो

उन्होंने हैदराबाद के मुख्य न्यायाधीश केशवराव कोरटकर के जरिये सहायता भेजी। मजे की बात यह है कि कोरटकर नरम विचारों के व्यक्ति थे और गोखले के अनुयायी थे, पर इस मामले में उन्होंने तिलक की आज्ञा मानी। बाद को कोरटकर ने लिखा कि मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब मुझे लोकमान्य तिलक का यह पैगाम प्राप्त हुआ, पर मैंने उनका कहा हुआ कार्य कर दिया।

पर बालकृष्ण अधिक दिन छिपे न रह सके। उनका मन नहीं लगा और वह लौटकर महाराष्ट्र आए और वहां पकड़ लिये गये। तीसरे भाई वासुदेव पर कोई मुकद्दमा नहीं था, पर कुछ ऐसा प्रमाण मिल गया कि वासुदेव भी हत्या के समय मौजूद थे। इसलिये इस्तगासे में यह तय किया कि वासुदेव से अपने बड़े भाई बालकृष्ण के विरुद्ध गवाही दिलवाई जाये। अब वासुदेव के लिये बड़ी अद्‌भुत समस्या पैदा हुई।

वासुदेव ने सोच-सोचकर गवाही देने की बात मान ली, पर साथ ही वह भीतर-भीतर यह सोचते रहे कि किस प्रकार ऐसा कुछ किया जाये, जिससे वह अपने भाइयों के योग्य हो सके। वासुदेव ने यह तय किया कि मुखबिर द्रविड़ बन्धुओं को मार डाला जाय, पर ऊपर से सरकारी पिट्ठू बना रहा जाये। पिट्ठू बनने के दिखावे में कई लाभ थे। सब से बड़ा लाभ यह था कि जेल में बन्द और हत्या में अभियुक्त क्रान्तिकारियों के भाई होने पर भी उन्हें घूमने-फिरने की पूरी आजादी रही। उन्होंने साठे और रानाडे दो युवकों को भी षड्यन्त्र में मिला लिया।

द्रविड़ बन्धु सदाशिव पेठ के मुरलीधर मन्दिर के सामने रहते थे। १८९९ की ८ फरवरी की रात को ९ बजे चापेकर और रानाडे पंजाबी नौकरों का भेष बनाकर द्रविड़ बन्धु के घर पहुंचे, और वहां कोई एकाएक न आ पड़े, इसलिये साठे दरवाजे पर चौकीदारी करते रहे। द्रविड़ बन्धु बहुत सावधान रहते थे, इसलिये जब दो पंजाबियों ने उनका दरवाजा खटखटाया तो गणेश शंकर द्रविड़ ने जंगले से पूछा—तुम लोग क्या चाहते हो?

तब वासुदेव ने यह कहा कि पुलिस में उनका फौरन बुलावा आया है और मिस्टर ब्रीन उन्हें चाहते हैं। भला जो मुखबिर बन चुके हैं वे पुलिस की बात कैसे न मानते। वह तैयार हो गये, और बोले—हम लोग जाएंगे, तुम चलो।

इस पर वासुदेव और रानाडे देखने में तो वहां से चले गये, पर असल में पास ही छिप कर खड़े रहे। जब थोड़ी देर बाद द्रविड़ बन्धु

निकले और दोनों भाई सौ गज चलकर सड़क पर मुड़े ही थे कि धांय-धांय से उन पर गोली चल गई। गोलियों की आवाज सुनकर लोग जमा हो गये तो देखा कि दोनों भाई खून से लथपथ पड़े हैं। डाक्टर आए तो कहा कि हालत बहुत ही खतरनाक है और अगले दिन दोनों मुखबिर मर भी गये।

पूना शहर में ही नहीं दूर-दूर जहां भी खबर गई, लोग बहुत खुश हुए।

दूसरे मुखबिर नीलकंठ द्रविड़ के बयान से रानाडे और साठे गिरफ्तार हो गये थे। वासुदेव भी बुलाये गये। कहा जाता है पुलिस जांच कर रही थी और इन लोगों से पूछताछ कर रही थी, इतने में राम जी पाण्डे नामक एक हेड कान्सटेबिल ने कोई ऐसी बात कह दी कि वासुदेव राम जी पाण्डे पर कूद पड़े और उसका रिवाल्वर छीनकर उस पर गोली चला दी। राम जी को गोली नहीं लगीं, पर वह बेहोश हो गया। अब वासुदेव की असलियत खुल गई और वासुदेव ने साफ बयान दे दिया कि मैंने ही द्रविड़ बन्धुओं को मारा है और मैं अपने भाइयों के साथ फांसी पर चढ़ना कहीं उपयोगी और सही मानता हूं, बनिस्बत इसके कि मैं सरकारी गवाह बनूं।

मुकद्दमा चला और उसमें चापेकर बन्धुओं को फांसी की सजा हुई। रानाडे को भी फांसी की सजा हुई और साठे को सात वर्ष की सजा हुई। एक परिवार से तीन भाइयों को फांसी होने पर देश में बहुत जोश फैला, इसी पर सावरकर ने एक कविता लिखी—'तीन का क्या है यदि हम सात भी होते, तो हम हवनकुण्ड में अपना सिर चढ़ा देते। हे माता ! तेरी मुक्ति के लिये हमें यदि अपने को होमने का मौका मिले, तो यह हमारे लिए सब से बड़ी खुशी होगी।'

('भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' से)

सुन ले गोरे, सुन ले गोरे, देश आजाद करायेंगे।
बेंत क्या, चाहे लाठी टूटे, आंसू नहीं बहायेंगे॥
बाधाएँ कब बांध सकी हैं आगे बढ़ने वालों को।
विपदाएँ कब रोक सकी हैं मर कर जीने वालों को॥
नहीं देश से प्यार जिन्हें वे मानस नहीं पाहन हैं।
हाड़ मांस के दो पगवाले प्राणों के बस वाहन हैं॥

बंग-भंग आन्दोलन
और
हिन्दू-मुसलमानों में फूट

सन् १८५७ की क्रान्ति से लेकर निरन्तर हिन्दू और मुसलमान मिलकर स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। सारे देश में राष्ट्रीय भावना का प्रसार हो रहा था। इससे घबराकर अंग्रेजों ने "फूट डालो और राज करो" की कूटनीति अपनायी। अंग्रेजों ने जहां उत्तर-दक्षिण, जात-पांत आदि की भावनाओं को उभार कर भारतीयों में आपस में फूट डालने के प्रयास किये, वहां धर्म के आधार पर हिन्दू-मुसलमानों में भेद उत्पन्न कर दिया। इस भेद को क्रियात्मक रूप देने के लिए लार्ड कर्जन ने १९०५ में बंगाल को दो टुकड़ों में विभक्त करा दिया। पूर्वी बंगाल को मुसलमानों का तथा पश्चिम बंगाल को हिन्दुओं का प्रदेश बना दिया। २० जुलाई १९०५ को बंग-भंग के प्रस्ताव को भारत-सचिव ने स्वीकृत भी कर दिया। इस प्रकार मुस्लिम देश 'पाकिस्तान' का मूल जन्मदाता लार्ड कर्जन था, मुहम्मद अली जिन्ना या इकबाल नहीं, जिन्हें पाकिस्तान का प्रणेता कहा गया है। कर्जन ने १९०५ में ही देश-विभाजन और हिन्दू-मुस्लिमों के हृदय-विभाजन की नींव डाल दी थी।

बंगाल के साथ-साथ इस विभाजन का सारे देश में तीव्र विरोध हुआ। यहां तक कि सुप्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी इस विरोध में भाग लिया। जिन बंगालियों को अंग्रेजी शिक्षा देकर अंग्रेजभक्त बनाया गया था, वे भी इस विभाजन के विरोध में खड़े हो गये। यह विभाजन स्वदेशी आन्दोलन को तीव्र गति देने में सहायक सिद्ध हुआ। बढ़ते विरोध को देखकर १९११ में बंगाल को फिर से एक कर दिया गया किन्तु तब तक आन्दोलन इतना जोर पकड़ चुका था कि उसके प्रवाह में पुनः एकीकरण का यह कदम निष्प्रभावी सिद्ध हुआ। बंगाल में बढ़ते आक्रोश और व्यापक स्वतन्त्रता आन्दोलनों के कारण १९११ में अंग्रेज अपनी राजधानी कलकत्ता से हटाकर दिल्ली ले आये। किन्तु क्रान्तिकारियों ने दिल्ली में भी उन्हें चैन से रहने नहीं दिया। (**सम्पादक**)

''स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है''
के उद्घोषक

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

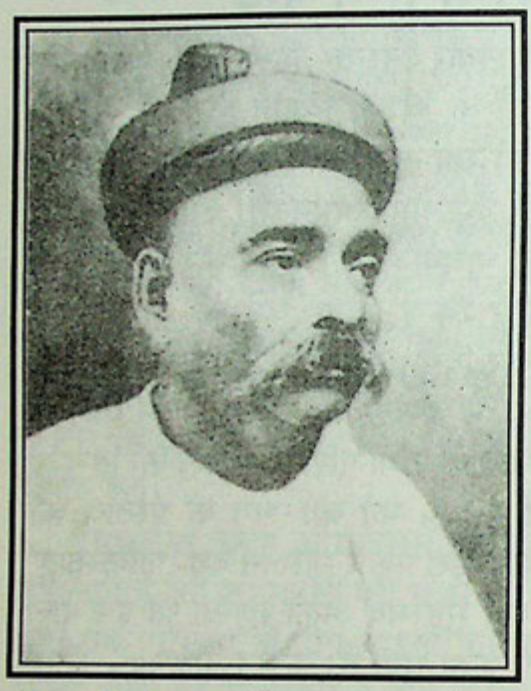

''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'' का उद्घोष करने वाले देशभक्त और क्रान्ति के समर्थक बाल गंगाधर तिलक का जन्म रत्नागिरि जिले के 'चिबल' नामक गांव में एक निर्धन ब्राह्मण गंगाधर पन्त के घर हुआ। तिलक की कई बहनें थीं और ये सबसे छोटे थे, अत: परिवार में इन्हें 'बाल' कहकर पुकारा जाता था। कुशाग्र बुद्धि तिलक मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके डेक्कन कॉलेज पूना में १८७६ में प्रविष्ट हुए। प्रथम श्रेणी में बी.ए. परीक्षा पास करके सन् १८७९ में वकालत की डिग्री प्राप्त की। इनके एक निकट के साथी श्री आगरकर थे। दोनों ने देशसेवा करने का निश्चय किया।

पूना में श्री विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने एक अंग्रेजी स्कूल खोला। दोनों साथी सरकारी नौकरी छोड़ उसमें सहयोग करने लगे। ये विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ देशभक्ति का पाठ पढ़ाते थे। देशभक्ति की भावना का प्रचार करने के लिए श्री तिलक ने ४ जनवरी १८८१ से दो साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किये। 'केसरी' मराठी भाषा का और 'मराठा' अंग्रेजी का पत्र था। इन पत्रों में ब्रिटिश सरकार की कटु आलोचना करने के कारण इन्हें साथी सहित गिरफ्तार कर लिया और १७.८.१८८२ को दोनों को चार मास की जेल हुई। जेल से छूटने के बाद १८८८ में 'सुधारक' नामक पत्र प्रारम्भ किया।

इस बीच तिलक समाजिक क्षेत्र में अपनी सक्रियता से बहुत प्रसिद्ध

होते गये। इन्होंने महाराष्ट्र में 'गणपति उत्सव' को व्यापक लोकप्रिय बनाया और उसके माध्यम से जन जागृति की। इसी शैली में शिवाजी की जन्मभूमि रायगढ़ में उनके जन्म दिवस पर 'शिवाजी उत्सव' प्रारम्भ किये। ये उत्सव महाराष्ट्र में राष्ट्रीय जागरण के माध्यम बने और वहां स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नयी चेतना का संचार हो गया।

१८९७ में पूना में प्लेग की महामारी और दुर्भिक्ष फैले। अंग्रेज सरकार महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के उत्सव मनाने में इतनी मग्न थी कि उसने जनता के कष्ट पर ध्यान नहीं दिया। अपितु प्लेग आफिसर रैंड प्लेग की आड़ में जनता को सताने और कष्ट देने लगा। उसकी यातनाओं से क्रुद्ध होकर एक मराठी क्रान्तिकारी युवक दामोदर चापेकर ने उसे गोली से उड़ा दिया। श्री तिलक ने १५ जून १८९७ के अंक में इस घटना पर एक लेख लिखा जिसमें सरकार के अधिकारी रैंड को इस घटना का जिम्मेदार माना। तिलक को गिरफ्तार कर लिया गया। जनता ने ५० हजार की राशि इकट्ठी कर अपने नेता को जमानत पर छुड़वा लिया, किन्तु अन्याय करने पर तुली गोरी सरकार ने निर्णय करते समय डेढ़ वर्ष की कठोर कैद दे डाली। इन घटनाओं से तिलक सारे भारत में प्रसिद्ध हो गये और एक संघर्षी नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। जेल में तिलक का स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया। भारत भर से, यहां तक कि इंगलैंड से प्रो. मैक्समूलर तक ने तिलक के स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट करते हुए उनको छोड़ने का आग्रह किया। सरकार माफीनामे के साथ छोड़ने को तैयार हो गयी किन्तु तिलक माफी मांगने के लिए तैयार नहीं हुए। अन्ततः उन्हें एक वर्ष बाद स्वयं ही छोड़ दिया गया।

स्वास्थ्य ठीक होने पर आप मद्रास के और लखनऊ के कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए। जनता ने आपका खूब स्वागत किया। कांग्रेस में आपको 'गरमपन्थी' नेताओं में माना जाता था। नरमपन्थी भीरू नेताओं ने इसी कारण तिलक को अध्यक्ष नहीं बनने दिया। किन्तु कांग्रेस पर 'गरमपन्थी' नेताओं का वर्चस्व बढ़ता ही गया।

मुजफ्फरपुर बमकाण्ड के बाद 'केसरी' में लिखे एक लेख में तिलक ने उस काण्ड के लिए अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीति को जिम्मेदार ठहराया। तिलक पर फिर मुकदमा चलाया गया। तिलक ने अपनी पैरवी स्वयं की और एक सप्ताह तक चली बहस में २१ घण्टे अपने तर्क प्रस्तुत किये। किन्तु न्याय का सिर्फ ढोंग ही करने वाली सरकार ने उन्हें छह वर्ष की कठोर कैद सुना दी और बर्मा की मांडले

जेल में ले जाकर एक एकान्त की कोठरी में बंद कर दिया। इस कठिन समय का आपने सदुपयोग इस रूप में किया कि एकाग्र और तपस्वी बनकर 'गीता रहस्य' नामक गीता की विस्तृत टीका लिखी तथा वेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे। वहां आपका स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा। तब आपको पूना की जेल में स्थानान्तरित कर दिया।

जेल से छूटकर आपने 'होमरूल लीग' (स्वराज्य संस्था) की स्थापना की। सरकार ने आपको फिर नोटिस दिया और जमानत के रूप में ४० हजार रुपये जमा कराने के निर्देश दिये। इस केस में आप हाईकोर्ट से जीत गये। होमरूल लीग की ओर से आपने तथा एनीबेसेन्ट ने एक प्रतिनिधि मण्डल के रूप में इंगलैंड जाकर स्वराज्य प्रदान करने का आग्रह किया। स्वराज्य आन्दोलन के कारण कांग्रेस और देश में आपकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक बढ़ी। जनता ने आपको उस समय एक लाख की थैली भेंट की, जो तब तक किसी भी नेता को नहीं मिली थी। आपने घोषणा की कि यह राशि स्वराज्य प्राप्ति के लिए व्यय की जायेगी। आपने ७० हजार रुपये लाला लाजपतराय को दिये ताकि वे निर्बाध रूप से राष्ट्र सेवा का कार्य कर सकें।

रोगों, संघर्षों, जेलयातनाओं, भागदौड़ भरे कार्यक्रमों से लोकमान्य तिलक का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। अन्तिम समय उनको ५-६ दिन तक ज्वर आता रहा और इसी में उनकी जीवन यात्रा पूर्ण हो गयी। बम्बई में 'बैंकवे' नामक समुद्र तट पर आपका अन्तिम संस्कार किया गया। इस अवसर पर महात्मा गांधी सहित सभी बड़े नेता और दो-तीन लाख व्यक्ति उपस्थित थे। सरलता एवं सादगी और वैचारिक प्रखरता की प्रतिमूर्ति श्री तिलक के साथ स्वराज्य प्राप्ति के प्रयत्नों का एक अध्याय पूर्ण हो गया। आज उनका भौतिक शरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु ये उद्घोष उनके वैचारिक शरीर को सदा अमर रखेगा -

''स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।''

और.....तिलक अगर जीवित होते तो देखते कि यह अधिकार १५ अगस्त १९४७ को हमें मिल कर ही रहा !

लोकमान्य तिलक के स्वलिखित जेल-संस्मरण

"पहले मैं बम्बई के प्रेसीडेन्सी जेल में रहा। बाद में वेराडा जेल में भेजा गया। यहां मुझे ऊन का सूत रंगने और कातने का काम दिया गया। यहां 'मराठा' और 'केसरी' कटे फटे हुए पढ़ने को मिलते थे। मुझे युरोपियन

वार्ड में रखा गया था। कोठड़ी दश फीट लम्बी और आठ फीट चौड़ी थी। मेरा बिस्तर दो कम्बल थे। मुझे रात को पुस्तकें पढ़ने और तीन घण्टे तक तैल जलाने की आज्ञा मिली हुई थी। कुछ पुस्तकें मेरे पास रहती थीं, शेष सब जेल के आफिस में रखनी पड़ती थी। मैं वहां अधिक दिन तक ऋग्वेद का स्वाध्याय करता रहा।

जब मैं बम्बई के जेल में था, तो मुझे भोजन की बड़ी शिकायत थी, केवल शुष्क रोटी और पानी पर भरोसा करना पड़ता था। क्योंकि प्याज और लहसुन से मुझे बड़ी घृणा थी, इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत शीघ्र मेरा वजन घट गया। इस पर डाक्टर से शिकायत करने पर भोजन में परिवर्त्तन कर दिया गया। एक पौण्ड दूध और आधी छटांक घी भी मिलने लगा था और अन्त तक मिलता रहा। यूरोपियन कैदियों को दूध, चाय, बिस्कुट तथा मांस सब कुछ मिलता था। हमें सप्ताह में एक बार गेंहू की रोटी, दाल और नित्य सुबह बाजरे की रोटी, दाल तथा शाम को सब्जी और वही रोटी !

जेल में आज्ञा के बिना कोई व्याख्यान नहीं हो सकता। जेल कर्मचारियों की आज्ञानुसार काम करने से, उसी के अनुसार आचरण न होने पर बेंत, उपवास, एकान्तवास की सजाएँ दी जाती हैं। मेरे साथ अच्छा सुलूक किया जाता था और मेरा हर तरह से ध्यान रखा जाता था। मुझे कभी कोई सजा नहीं भुगतनी पड़ी।

जेल के कपड़े तथा मकान बड़े सड़े हुए रहते हैं। बम्बई में जब पहली बार प्लेग का प्रकोप हुआ, तो जेल में भी वह फैलने लगी थी, किन्तु मेरी अनुमति से वहां सुपरिण्टेडेंट ने खूब अच्छी तरह सफाई करा दी थी। जिससे प्रकोप शान्त हो गया।

जेल में बुरे से बुरे आदमी होते हैं। वहां भी वे कुछ न कुछ उपद्रव करते ही रहते हैं। अगर मैं जेलर होता, तो ऐसे आदमियों के साथ कभी अच्छा वर्ताव न करता।

भारत की जेलों में राजनीतिक कैदियों की बहुत बुरी दशा होती है। खूंखार, खून और जूआ, चोरी के अपराधों में कैद हुए यूरोपियनों के साथ बहुत अच्छा वर्ताव होता है और भारतीय राजनीतिक कैदियों से बुरा वर्ताव होता है। यह अन्याय है और वह दूर होना चाहिये।"

('केसरी' से संकलित)

❑❑

बंगाल के जाने-माने गरमदल नेता

विपिनचन्द्र पाल

लाल, बाल, पाल की गरमदल की जोड़ी में बंगाल के जाने-माने नेता विपिनचन्द्र पाल को 'पाल' नाम से पुकारा जाता था। ये उत्कृष्ट वक्ता, सुप्रतिष्ठित नेता, परम सत्यवादी और क्रान्तिकारी विचारों के समर्थक थे।

अरविन्द घोष 'वन्देमातरम्' पत्र निकालते थे किन्तु गुप्त रूप से। इस पत्र में बहुत ही जोशीले लेख छपते थे। उन लेखों ने बंगाल में तूफान खड़ा कर दिया। अंग्रेजी सरकार इस पत्र से बहुत परेशान थी किन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वह सम्पादक का पता नहीं लगा पायी। आखिर अनुमान के आधार पर अरविन्द घोष को गिरफ्तार कर लिया। मुकद्दमा चलाने के लिए सरकार को कोई प्रमाण नहीं मिला। गोरी सरकार ने तब एक घृणित चाल चली। उसने विपिनचन्द्र पाल की सत्यवादिता का अनुचित लाभ उठाना चाहा। यह सोचकर कि बड़े क्रान्तिकारी नेता पाल को 'वन्दे मातरम्' के सम्पादक का अवश्य पता होगा, और यदि उन्हें अदालत में गवाह के रूप में बुला लिया जाये तो वे झूठ नहीं बोलेंगे, इस प्रकार सच सामने आ जायेगा; सरकार ने उनको गवाह के रूप में बुला लिया।

श्री पाल अंग्रजों की इस कूटनीति को समझते थे। जब उन्हें गवाही के लिए खड़ा किया गया तो उन्होंने कहा –

''मैं इस विदेशी सरकार के सामने गवाही देना नहीं चाहता। मेरा विवेक इस बात की अनुमति नहीं देता।''

सरकार की चाल धरी रह गयी। अपमान से बचने के लिए अदालत ने गवाही न देने को 'अदालत की मानहानि' घोषित किया और विपिनचन्द्र पाल को जेल की सजा सुना दी ! कथित अभियुक्त तो छूट गया किन्तु गवाह को सजा हो गयी!!ऐसा विचित्र था अंग्रेजों का न्याय! **(सम्पादक)**

(आत्मकथा)

"जो वर्ताव मेरे साथ प्रेसीडेन्सी और बक्सर जेल में हुआ, मैं उसकी निन्दा नहीं करूंगा। मेरे साथ कृपापूर्ण व्यवहार किया गया। जो दो एक कष्ट हुए भी थे, शिकायत करने पर रफा हो गये। मुझे लिखने-पढ़ने की सुविधा थी। अधिकतर मैं लिखने-पढ़ने में ही लगा रहता था। मेरे पत्र

मुझे दिये जाते थे और मैं सहर्ष पत्र लिख सकता था; किन्तु मास भर में एक बार! मुझे काम करने का अपनी ही अनुमति के अनुसार पूर्ण अधिकार था। जब प्रात:काल मेरी इच्छा होती, उठ जाता और शाम को नींद आती सो जाता था। जेल के कम्पाउण्ड में मैं सैर भी करता था, सुबह पीने को चाय मिलती थी, परन्तु रात को कैद कोठड़ी में बन्द होना अनिवार्य था।

मैं प्रथम श्रेणी का कैदी था, परन्तु मुझे उसकी खुराक नहीं मिली। मुझे बीमारों का पथ्य खाने को मिलता था। बक्सर जेल में नये सुपरिण्टेण्डेण्ट के आने पर मुझे साधारण कैदियों का भोजन मिला। उससे मेरी तबियत खराब होने लगी, तब मैंने शिकायत की, इस पर फिर मुझे बीमारों का भोजन मिलने लगा।

शायद यह राजद्रोह न होगा–यदि मैं कहूं कि जेल के डाक्टर को ही जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाने की प्रणाली ठीक नहीं है। इससे कैदियों पर बड़ा अत्याचार होता है। बदमाश कैदी यहां आकर और बदमाश हो जाते हैं। कैदियों का यहां पर कोई किसी तरह का सुधार नहीं होता।

मेरे छुटकारे की तारीख को जेल के कानून के अनुसार–ऑफिस में आते ही–सुपरिण्टेण्डेण्ट को मुझे रिहा कर देना चाहिए था, पर वह बेपरवाही के साथ दो घण्टे तक कैदियों की परेड देखता रहा और मनोरंजन करने के बाद मेरे रिहा करने के कागजों पर हस्ताक्षर किये। इसके बाद मुझ से पूछा गया कि तुम्हारे कितने रुपये हैं। यह सरासर मूर्खता थी। क्योंकि छ: मास पहले का हिसाब मुझे क्या याद रह सकता था। उसने मेरी उस रकम में से मनमाने तौर पर खर्च काटकर बाकी रुपया मुझे दे दिया। इस खर्च में मेरा और मेरे साथी दो पुलिसमैनों का किराया भी शामिल था। मैंने कोई आपत्ति नहीं की–और मैं रिहा होकर घर चला आया।" ('स्टेट्समेन' से)

❑❑

साइमन कमीशन हत्याकाण्ड योजना

दिन-प्रतिदिन देश में उफनते असन्तोष को शान्त करने के लिए अंग्रेज सरकार ने साइमन के नेतृत्व में जो कमीशन भेजा था उसका भारत में सर्वत्र विरोध हुआ। लाला लाजपतराय ने जहां इसका 'साइमन कमीशन वापस जाओ' के नारों के साथ विशाल प्रदर्शन पूर्वक विरोध किया, वहीं क्रान्तिकारियों ने अपने तरीके से इसका विरोध करने की योजना बनायी। क्रान्तिकारियों ने कमीशन के सभी सदस्यों की एक साथ बम से हत्या कर देने की योजना तैयार की। दुर्भाग्य से क्रान्तिकारियों का बम मनमाड स्टेशन के पास रेल में ही फट गया। क्रान्तिकारी मार्कण्डेय उस विस्फोट से वहीं मारे गये। दो क्रान्तिकारी हरेन्द्र और मनमोहन गुप्त पकड़ लिये गये। उनको सात-सात वर्ष की जेल की सजा दी गयी। इसी अवसर पर विरोध प्रदर्शन करते समय लाला लाजपत राय पर लाठियां बरसायीं गयीं जो उनके देहान्त का कारण बनीं। (**सम्पादक**)

''मेरे शरीर पर पड़ा प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश कफन की कील बनेगा'' के भविष्यवक्ता

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

भारत में अंग्रेजी शासन के प्रति विरोध और असंतोष तेजी से फैल रहा था। अंग्रेज सरकार चिन्तित हो उठी। इस असन्तोष को शान्त करने के लिए साइमन के नेतृत्व में अंग्रेजों का एक कमीशन ब्रिटेन से भारत भेजा गया ताकि वह भारतीय शासन में सुधार के सुझाव दे सके। इसमें सभी सदस्य अंग्रेज थे अत: सुधार की कोई आशा नहीं थी। कांग्रेस तथा क्रान्तिकारियों ने इस कमीशन का विरोध एवं बहिष्कार करने का निर्णय लिया। २० अक्टूबर १९२८ को साइमन कमीशन लाहौर पहुंचा। रेलवे स्टेशन पर कमीशन के विरोध में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में जोरदार प्रदर्शन हुआ। पुलिस ने इसको दबाने के लिए भयंकर लाठीचार्ज किया। लाला लाजपतराय पर विशेष रूप से लाठियां बरसायी गयीं। उनके सीने पर घातक प्रहार किये गये। अन्त में उन्हीं के कारण १७ नवम्बर १९२८ को लाला जी शहीद हो गये। चोट के बाद एक विशाल सभा में भाषण देते हुए लाला जी ने ओजस्वी वाणी में कहा था-

''मेरे शरीर पर पड़ा लाठी का प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील बनेगा।''

उनकी भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। दिन-प्रतिदिन ब्रिटिश सरकार का ताबूत तैयार होता चला गया। उनके द्वारा किये जाने वाले अत्याचार उसमें कील बनकर गड़ते चले गये। १५ अगस्त १९४७ को उस ताबूत में अंग्रेज सरकार का शव कफ़न ओढ़ाकर दफना दिया गया। लाठी-प्रहार करने वाले साण्डर्स को क्रान्तिकारी भगतसिंह के दल ने बम प्रहार से तीन महीने बाद ही नरक में पंहुचा दिया था।

लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक को उस समय लाल-पाल-बाल की जोड़ी के रूप में पूरे देश में अति सम्मान प्राप्त था। इसी कारण भगतसिंह के दल ने साण्डर्स से बदला लिया।

लाला जी का जन्म १८६५ में पंजाब 'जागरन' गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम लाला राधाकिशन था। सन् १८७७ में शिक्षा प्राप्त करते समय आप अपने दो सहपाठियों के साथ समाजसुधारक और स्वदेशीय राज्य के मन्त्रदाता महर्षि दयानन्द के शिष्य बन गये। आपके जीवन के यही दो लक्ष्य बने। राष्ट्रभक्ति का पाठ आपने महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से सीखा।

सन् १८८५ में आपने केवल २० वर्ष की आयु में कानून की परीक्षा पास की। कुछ समय तक रोहतक और हिसार में वकालत करने के बाद आप लाहौर आ गये। १८८८ में आप कांग्रेस से जुड़ गये। १९२० में जब कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो आपको उसका सभापति चुना गया।

इससे पूर्व वकालत करते हुए १९०६ में आपको यह गौरव प्राप्त हुआ कि गोपालकृष्ण गोखले के साथ आपको एक शिष्टमंडल के रूप इंगलैंड भेजा गया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और विपिनचन्द्र पाल के साथ मिलकर आपने कांग्रेस में जोशीली विचारधारा का संचार किया। आपके भाषण बड़े जोशीले होते थे। आपके व्याख्यानों से भयभीत होकर अंग्रेज सरकार ने आपको भारत से निर्वासित कर बर्मा की माण्डले जेल में बंद कर दिया। भारत की जनता ने सरकार की भरपूर निन्दा की।

नवम्बर १९२१ में ब्रिटेन का युवराज जब भारत आया तो उसके विरोध में भारत में जगह-जगह प्रदर्शन हुए। इस संदर्भ में एक लेख लिखने पर ७ जनवरी १९२२ को आपको गिरफ्तार करके छह मास की

कारावास की सजा सुनायी। उसके बाद फिर एक बार एक वर्ष की सजा दी।

इस प्रकार लाला लाजपतराय का सम्पूर्ण जीवन समाज हित और देशहित में बीता और उसी के लिए बलिदान हुआ। अग्रिम पंक्तियों में जेल के कुछ अनुभव, जो उन्हीं की लेखनी से वर्णित हैं, प्रस्तुत किये जा रहे हैं। **(सम्पादक)**

आत्मकथा

('मेरी जलावतनी की दास्तान' से संकलित)

"मैं १६ मई १९०७ को लाहौर से गिरफ्तार हो कर माण्डले पहुंचाया गया। पहले गाड़ी पर सवार होकर दो पुलिस आफिसरों के साथ माण्डले के किले में सुपरिण्टेण्डेण्ट के बंगले में पहुंचाया गया। ३५० के नोट और मेरी एक घड़ी साथ के लाहौरी गोरे पुलिस इस्पेक्टर सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल को देकर उसकी और मेरी रसीद ले ली और वे दोनों अफसर चले गये। इसके बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने मुझे एक साफ और अच्छे कमरे में रहने को जगह दी। वहाँ दरी, मेज, कुर्सी, निवार का एक पंलग और दो चादरें तथा जेल के दो कम्बल भरने को दिये गये। मेरे साथ सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल का वर्त्ताव सहानुभूतिपूर्ण था। मेरी जांच पड़ताल करने के लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने मुझ से वचन ले लिया था कि मैं भागूंगा नहीं। एक दिन की बात है कि मैं स्नान करने की जगह स्नान कर रहा था, पुलिस वाले मेरे रहने की जगह खाली देख कर बहुत घबराये और मेरे बोलने पर कहीं शान्ति मिली। एक दिन डिप्टी कमिश्नर तथा कमिश्नर मुझसे मिलने आये। उन्होंने पूछा कि किसी वस्तु की इच्छा तो नहीं। इस वार मैंने कुछ कपड़े मांगे–जो बनवा दिये गये। खाने के लिए पहले तो मुझे अंग्रेज़ी ढंग का खाना मिलता रहा। पीछे एक मद्रासी छोकरा रसोई बनाने लगा। मुझे सिपाहियों की देखरेख में घूमने फिरने की आज्ञा थी, किन्तु मैंने संकेत से यथोचित उत्तर देकर उन्हें हट जाने को कहा, किन्तु वे बड़ी उत्सुकता से मुझे देखते रहे।

नये मकान में जाकर भी पहले की तरह सब सामान मुझे मिल गया था और मोमबत्ती की जगह लैम्प भी मिल गया था। एक बार मैंने कहा कि वायु ठीक आने के लिए मेरा बिस्तर ऊंचा कर दिया जाये परन्तु यह निवेदन स्वीकार होने योग्य नहीं समझा गया।

मैं यह कह चुका हूं कि एक मद्रासी छोकरा मेरा खाना बनाने लगा

था तथा एक भंगी, भिस्ती, नाई और धोबी भी काम करने के लिए नियुक्त किये गये थे।

पहला मास समाप्त होने पर उन लोगो ने वेतन मांगा। मैंने कहा सुपरि० जेल से मांगो। उन्होंने वैसा ही किया। एक दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने मुझे से कहा कि इन लोगों को वेतन क्यों नहीं मिला। मैंने कहा कि रेगुलेशन नं० ३ सन् १८१८ के कानून के अनुसार इन लोगों का वेतन गवर्नमेण्ट को देना चाहिए। इस पर सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल बहुत नाराज हुआ। उसने कहा कि मैं भी स्वयं कानून से कुछ कम नहीं हूँ। दाढ़ी मुंड़ाना जरूरी नहीं है। न गवर्नमेंण्ट इसका खर्च देने के लिए पाबन्द है। दूसरे मैं भारतीयों के रस्मोरिवाज खूब जानता हूं। मुसलमानों के लिए दाढ़ी मुंडवाना अनिवार्य हो सकता है, हिन्दुओं के लिए नहीं। दूसरे क्या आप अपने घर भी रोज नाई रखते थे? ये सब बातें सुपरिण्टेण्डेण्ट एक बार कह गया और मैं सुनता रहा। मैंने कहा वेतन देने की कोई बात नहीं है। न मैं इन छोटी-छोटी बातों की शिकायत ही करना चाहता हूं। नहीं हो सकता तो आप के पास जो रुपया जमा है उसमें से इन लोगों का वेतन दे दिया जाय। इस पर भी जब सन्तोष नहीं हुआ तो मेरे ही हाथ से उन लोगों को वेतन दिलाकर उसे सन्तोष हुआ।

थोड़े ही दिन बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट का पारा उतरा तो उसने स्वयं सब लोगों का वेतन देना आरम्भ कर दिया। इसी तरह से कई मास बीत गये तो अक्टूबर में तब गर्मी पड़ने लगी और रात को ठीक नींद भी न आती थी तब मैंने दरख्वास्त की कि मेरे पास एक नौकर और रखा जाय जो जरूरत पड़ने पर पंखा कर सके। परन्तु इसका कुछ नहीं हुआ। हां, इससे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल और भभक उठा। और कहा गया कि यह एक कैदी की असाधारण दरख्वास्त है। इस पर जब वह कुछ ठण्डा हुआ तो मेरे भोजन बनाने वाले को ही वहां सोने के लिए आज्ञा दी गई, पर उसने उसे स्वीकार नहीं किया। तब मैंने भी सन्तोष किया और जो कुछ कष्ट होता था उसे सहन करना आरम्भ कर दिया।

एक दिन डिप्टी कमिश्नर ने आकर पूछा कि कोई किसी तरह की शिकायत तो नहीं। इस पर मैंने कहा-वायसराय को मैंने एक दरख्वास्त देकर कहा था कि मेरे लिए एक पंजाबी रसोइया चाहिए और मुझे स्वयं देश से एक नौकर बुला लेने की आज्ञा दी जाये, परन्तु वह स्वीकार नहीं हुई। मद्रासी छोकरा जो भोजन बनाता है ठीक तौर पर हजम नहीं हो पाता। ये सब बातें सुनकर डिप्टी कमिश्नर चला गया। अगले ही दिन

सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल भी आए और उनसे भी यही बातें हुई। उनका पारा कुछ उतरा हुआ था, इसलिए मेरी सब बातें कमिश्नर साहब को लिख भेजी। इस पर रंगून से एक बूढ़ा सिक्ख भेजा गया, पर वह खाना बनाना नहीं जानता था। इसलिए दो चार दिन के बाद वह भी बेचारा वापस चला गया और फिर वही मद्रासी भोजन तैयार करने लगा तथा अन्त तक वही प्रबन्ध जारी रहा।

मुझ पर दो सरकारों की हुक्म थी। जेल में सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल की और बाहर भ्रमण करने जाऊं जो पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की। इसलिए जब सरदार अजीतसिह भी माण्डले लाकर नजरबन्द कर दिये गये तो वहां भी बाहर की सड़कों पर खूब पहरा रहने लगा। और हम लोगों को कहीं बाहर-भीतर घूमने में बड़ी अड़चन पड़ी।

सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल कभी-कभी मुझ पर प्रसन्न भी हो जाता था। एक बार उसने मछलियां पकड़ने का कांटा भी मंगा दिया था। जिससे दिन काटने में सुविधा रहे। दो चार बार मैंने मछलियां पकड़ने की चेष्टा की, पुलिस के कांस्टेबल भी मेरी सहायता करते थे, परन्तु कभी सफल नही हुई।

मैं जब से पुलिस की हिरासत में आया था, सख्त निगरानी की जाती थी। सिवा सरकारी अफसरों के मुझसे कोई मिलजुल न सकता था। सड़क और किले के चारों ओर कड़ा पहरा रहता था। पहरेदार भी किसी काम से यदि मेरे पास आता था तो उसकी पहले तलाशी ले ली जाती थी। इसी तरह से मेरा पत्र व्यवहार भी देखकर होता था, परन्तु कोई अखबार मेरे पास तक नहीं पहुंच पाता था। एक बार दो गोरे पुलिस सार्जेण्ट अपने पढ़ने के लिए कुछ समाचार पत्र ले आये थे। जब सुपरिण्टेण्डेण्ट ने देखा तो उनको खूब फटकार बताई। वे बेचारे अखबार फेंकने को विवश किये जाने पर चुप हो गये।

मेरे साथ किसी सम्बन्धी को भी मिलने की आज्ञा नहीं थी। एक बार पंजाब के लाट साहब से मेरे मिलने के लिए मेरे भाई लाला धनपतराय ने अनुमति मांगी तो नहीं मिली।

मेरे साथ पुलिस के एक पहरेदार रहते थे। पीछे उनकी संख्या बढ़ा दी गई। उनको मेरे साथ हर समय सशस्त्र रहने की आज्ञा थी। पंजाब तथा दूसरे भारतीय पुलिस वाले मेरे काम में नहीं लगाये जाते थे। बर्मी और गोरी पुलिस ही मेरे पहरे के लिए तैयार रहती थी। दूसरे और कामों

में जहां पंजाब के आदमी पुलिस में काम करते थे, उधर जाने से मुझे हमेशा रोका जाता था।

यद्यपि जिस सड़क पर होकर मैं घूमने-फिरने जाता था, वह एक तरह से बन्द थी, किन्तु तब भी बहुत से आदमी उधर निकल आते थे और न मालूम क्यों मुझे सलाम करने लगते थे। और कभी-कभी वे मार भी खाते थे पर यह सलाम का राग बढ़ता ही जाता था। एक बार जब मैं सड़क पर से जा रहा था, मुझे दो पंजाबी सामने से आते दीखे। मैंने चाहा कि मैं किसी तरह से पीछे हट जाऊं परन्तु मैं ऐसा न कर सका। परिणाम यह हुआ कि उनमें से एक आदमी मुझे झुककर तथा एक आदमी ने जमीन पर मस्तक रखकर अभिवादन किया। बस इसी अपराध पर उनको गिरफ्तार कर लिया गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के सामने पेश होने पर एक ने तो इधर-उधर की बात कहकर अपना पिण्ड छुड़ाया, परन्तु दूसरा झूठ न बोल सका। उसने मेरी ओर संकेत करके कहा कि मैं एक पंजाबी ठेकेदार हूं और रंगून में रहता हूं। यहां किसी काम से आया था। अकस्मात् इधर निकल आया बस यही मेरा दोष है। पर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा भविष्य में ऐसा न करना। ठेकेदार ने कहा कि साक्षात्कार होने पर मैं ऐसा अवश्य करूंगा। कोई कानून नहीं जो मुझे ऐसा करने को बाध्य कर सके। इस पर उसे बहुत तंग किया गया और छोड़ दिया गया।

ऊपर की इस घटना से मुझे बड़ा दु:ख हुआ और मैंने यह उचित समझा कि सैर करना मैं छोड़ सकता हूं, पर स्वदेशवासी भाइयों का यह अपमान सहन नहीं कर सकता और ऐसा ही मैंने किया। किन्तु तब भी लोग पीछा नहीं छोड़ते थे। सड़क पर घूम-फिरकर प्राय: बहुत से इधर-उधर से झांका करते तथा पुलिस वालों के देख लेने पर दु:ख उठाते थे। इसी बीच में मुझ से बाहर न जाने का कारण सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने पूछा। मैंने कहा कि मैं रोज-रोज अपने देश भाइयों का अपमान नहीं देख सकता। इस पर उसने कहा कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा। किन्तु खेद है वह बराबर होता ही रहा। कभी-कभी बहुत से कर्मचारियों के छोटे-छोटे मद्रासी लड़के श्रेणीबद्ध होकर खड़े हो जाते और बड़ी नम्रता से अभिवादन करते। मैं उनकी कमर ठोक देता और पैसे देकर विदा हो जाता।

इसी तरह से एक दिन प्रात:काल चार बजे मैं बैठा कुछ सोच रहा था। मेरे कान में एक सिक्ख की आवाज आई वह 'जपजी साहब' का पाठ कर रहा था। पुलिस वालों ने समझा कि कुछ 'संदेश' मुझे पंजाबी भाषा में दे रहा है। यही समझ कर उसे पाठ करने से रोका गया। दूसरी

घटना इससे भी विचित्र थी। एक दिन कुछ पंजाबी लड़के पशु चराते हुए पंजाबी गीत गा रहे थे। मेरे मन में आया कि मैं अपनी मातृभाषा में उनके गीत सुनूं और यही समझकर उन अशिक्षित बालकों के पंजाबी गीत सुनने लगा। मेरे साथी पुलिस अफसरों ने उन लड़कों को बहुत दूर भगाया और भय दिखाकर भविष्य में उन्हें ऐसा 'घोर' अपराध करने से मना कर दिया गया।

ऐंग्लो इण्डियन समाचार पत्रों में मेरे सम्बन्ध में जो विष उगला जाता था, उससे सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा अन्यान्य गोरे अफसर दिनों-दिन नाराज होते गये और यद्यपि वे लोग मुझे जान बूझकर किसी तरह का कष्ट न देते थे किन्तु भय भी उनके ऊपर बहुत बुरी तरह से सवार था। उसी गड़बड़ में कभी-कभी वे लोग ऐसे बन्धन तथा बाधाएं उपस्थित कर देते थे, जिनसे मुझे कष्ट होता था।

बिल्ली के दो बच्चे कहीं से उस कमरे में आकर रहने लगे थे। कभी-कभी जब पढ़ने से जी ऊब उठता था तो मैं उनसे मन बहलाव करने लगता था। ११ नवम्बर को दोनों बच्चे कहीं इधर-उधर घूमने चले गये थे, किन्तु मेरे असबाब सहित मुझे स्टेशन पर पहुंचा दिया गया। मैं उनकी वापसी की प्रतीक्षा न कर सका, क्योंकि कमिश्नर ने कहा था कि स्पेशल ट्रेन तैयार खड़ी है। मुझे बिल्ली के बच्चों से मिलकर एक बार विदाई लेनी थी, परन्तु उधर भी शीघ्रता से ऐसा न कर सका। मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा-

"रिहाई कि घड़ी आ गई। जंजीरें अलग-अलग करके फैंक दी गईं। मेरा समाज लोहे के किवाड़ और एकान्तवास तथा ईंटों की दीवारें थी। उन्हीं से मुझे प्रेम था। जब रिहाई देने वाले आये तो दु:ख अनुभव हुआ। वे मुझ से दूसरा घर छुड़ाने आये हैं, मैंने कहा मकड़ी से मैत्री पैदा की थी। घड़ियों उसे ताना-बाना बुनते देखा करता। मैं चूहों को चांदनी के साथ खेलते देखता और अपने आपको इन्हीं में से ख्याल करता। हम सब एक ही जगह रहते-सहते थे। मैं इनका बादशाह था। मैं चाहता तो इन्हें मार सकता था, परन्तु आश्चर्य था कि हम लोग शान्तिपूर्वक रहते थे, मुद्दत के रफीकों से अलग होते हुए सीने से एक बार आह निकल गई।"

❑❑

सशस्त्र क्रान्ति के प्रेरणास्त्रोत और क्रान्तिकारियों के गुरु

श्यामजी कृष्ण वर्मा

भारत में क्रान्ति के द्वारा अंग्रेजों के मन में भय उत्पन्न करने वाले क्रान्तिकारियों को भारत का बच्चा-बच्चा जानता है किन्तु गोरी सरकार के घर में जाकर वहीं से सशस्त्र क्रान्ति का आविष्कार और शंखनाद करने वाले तथा आदि-क्रान्तिकारियों का निर्माण करने वाले उस महान् क्रान्तिकारी को आजादी के इतिहास के पाठक भलीभांति जानते हैं। प्रतिभा के धनी, संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित, उच्च शिक्षित, बार एट-लॉ, दृढ़ देशभक्त श्याम जी कृष्ण वर्मा की प्रेरणा से ही लंदन और अमेरिका में गदर पार्टी से तहलका मचा देने वाले लाला हरदयाल, अंग्रेजों की नाक में दम करने वाले वीर सावरकर, देश की आजादी के लिए फांसी का फंदा चूमने वाले भाई परमानन्द, बर्बर डायर को गोली से उड़ाने वाले सरदार ऊधमसिंह, सेनानी बापट, मैडम भीका जी कामा आदि देशभक्त पैदा हुए! ये सब वर्मा जी की ही देन हैं। इनका सारा जीवन विदेशों में ही बीता और विदेश में ही स्वर्गवासी हुए, इस कारण सामान्य लोग इनके जीवन एवं महत्त्व से कम परिचित हैं।

श्याम जी कृष्ण वर्मा का जन्म गुजरात प्रान्त के काठियावाड़ राज्य के माण्डली गांव में ५ अक्टूबर १८५७ को एक गरीब परिवार में हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री कृष्ण था और वे एक व्यापारी की दूकान पर नौकरी करते थे। माण्डली में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आपको अंग्रेजी पढ़ने के लिए भुज में भेजा। आपकी बुद्धिमत्ता की ख्याति बम्बई के सेठ मथुरादास के पास पहुंची तो उन्होंने आपको बम्बई के विल्सन हाई स्कूल में प्रवेश दिला दिया। स्कूल में आप सबसे कुशाग्रबुद्धि

विद्यार्थी थे अतः निरीक्षण के समय आपको आगे रखा जाता। इसके बाद आप एलफिन्सटन कालेज में प्रविष्ट हो गये। सर्वाधिक बुद्धिमान् होने के कारण बम्बई के एक धनी व्यक्ति छबीलदास लल्लूभाई ने १८७५ में अपनी पुत्री भानुमती का विवाह आपके साथ कर दिया। उसी समय यूरोप के संस्कृत-विद्वान् मोनियर विलियम्स भारत आये। श्याम जी की संस्कृत की भाषण एवं लेखन योग्यता से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कहा कि यदि श्याम जी लंदन के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में आयेंगे तो मैं उनका भरपूर सहयोग करूंगा।

उसी समय गुजरात-महाराष्ट्र में महर्षि दयानन्द सरस्वती की विद्वत्ता एवं समाज-सुधार का यश फैल रहा था। समाज के अग्रणी लोग महादेव गोविन्द रानाडे, गोपालराव देशमुख, महात्मा फुले, लोकमान्य तिलक आदि महर्षि से प्रभावित हो रहे थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भी महर्षि के अनेक व्याख्यान सुने और उनके अनुयायी बन गये। महर्षि के ग्रन्थों में समाजसुधार के साथ सबसे पहले स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा और विदेशी राज्य की निन्दा की गयी है। श्याम जी उससे प्रभावित होकर स्वराज्य के संस्कारों से ओत-प्रोत होते गये। उन्होंने कई वर्षों तक महर्षि के साथ लेखन एवं वेदभाष्य के प्रकाशन कार्य में सहयोग किया।

आप १८७९ में इंगलैंड गये और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सबसे पहले भारतीय स्नातक बने। फिर वहां मोनियर विलियम्स के सहयोगी प्रोफेसर के रूप में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ही संस्कृत पढ़ाने लगे। साथ ही स्वयं वकालत का अध्ययन करके 'बार एट लॉ' हो गये। इस समय आपकी प्रतिभा की छाप इंगलैंड पर भी पड़ चुकी थी। आप वहां से स्वदेश लौट आये और बम्बई-हाईकोर्ट में वकालत आरम्भ की। उस समय की देशी रियासतों में आपकी योग्यता की चर्चा थी। आपने उनके निमन्त्रण पर रतलाम, उदयपुर, जूनागढ़ की रियासतों में मन्त्रिमण्डल में रहकर कार्य किया। किन्तु स्वराज्य प्रेमी देशभक्त श्याम जी को देशी राजाओं की दास मनोवृत्ति और अंग्रेजों का पग-पग पर अनावश्यक हस्तक्षेप पसन्द नहीं आया। उन्होंने रियासतों में मन्त्री पद छोड़ दिया। स्वराज्यप्रेमी देशभक्त को उच्च पदों पर कार्य करते हुए कुछ अंग्रेजों को भारी जलन होती थी। जूनागढ़ में माकानिक नाम का एक अंग्रेज अधिकारी श्याम जी का तथाकथित मित्र बन गया था। श्यामजी सच्ची मित्रता निभा रहे थे किन्तु वह इनकी जड़ काटता रहा और अंग्रेज सरकार

को इनके विरुद्ध रिपोर्ट भेजता रहा। विलियम कर्नल वायली को श्यामजी का उदयपुर स्टेट में मन्त्री बनना सहन नहीं हुआ। इसी बीच लोकमान्य तिलक द्वारा 'केसरी' समाचार पत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध लेख लिखने पर डेढ़ वर्ष की जेल हुई और अंग्रेजी अत्याचारों का विरोध करने पर महाराष्ट्र के छह युवकों को फांसी पर लटका दिया गया। इस अंग्रेजी-विरोध में आपका भी हाथ था। भारत में अंग्रेजों का निरंकुश और कानून विहीन जंगली राज देखकर आपने यह अनुभव किया कि यहां स्वराज्य की प्राप्ति हेतु लम्बी लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती, अत: आप १८९७ में पुन: इंगलैंड चले गये। वहां आप प्रवासी भारतीयों को गुप्तरूप से आजादी प्राप्त करने हेतु क्रान्ति के संस्कारों में दीक्षित करने लगे।

१९०५ में आपने अपने विचारों को मूर्तरूप देने के लिए तथा स्वाधीनता के विचारों के प्रचार के लिए 'इंडियन सोशयोलॉजिस्ट' नामक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इसमें आप भारत में होने वाले अन्यायों-अत्याचारों का खुलासा भी करते थे और उनके विरुद्ध टिप्पणी भी करते थे। १९०६ में आपने लन्दन में 'इंडिया हाउस' (भारत भवन) नामक तीन मंजिला भवन बनाया। वहां २५ प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था, खेल-कूद, भोजन आदि की सुविधा प्रदान की। समय-समय पर वहां भारत सम्बन्धी विषयों पर गोष्ठियों का आयोजन भी होता रहता था। यही 'इंडिया हाउस' अन्तत: भारतीय क्रान्तिकारियों और स्वाधीनता-प्रेमियों का केन्द्र बन गया। यहीं श्यामजी के संपर्क में आने के कारण अंग्रेजों द्वारा दी गई छात्रवृत्ति को ठुकराकर लाला हरदयाल स्वराज्यप्रेमी बने और अमेरिका में 'गदर पार्टी' की स्थापना कर 'ग़दर' अखबार निकाला जो विदेशों में क्रान्ति के प्रसार में महत्वपूर्ण कारण बना। यहीं भाई परमानन्द, सेनानी बापट, वीर सावरकर जैसे क्रान्तिकारी क्रान्तिकर्म में दीक्षित हुए। मदनलाल धींगड़ा भी 'भारतीय भवन' का सदस्य था। इस क्रान्तिकारी ने भारत से पुन: इंगलैंड लौटकर १ जुलाई १९०९ को कर्नल वायली की हत्या कर दी। इसमें भी आपका हाथ माना गया। आपने वीर धींगड़ा की स्मृति में चार छात्रवृत्तियों की घोषणा करके अंग्रेज सरकार के जले पर नमक छिड़क दिया। बम्बई देशभक्त पारसी महिला श्रीमती भीकाजी कामा का सारा स्वाधीनता सम्बन्धी प्रचार कार्य भी 'भारत भवन' से चलता था। अंग्रेज सरकार ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को गिरफ्तार करने का षड्यन्त्र कर लिया किन्तु उससे पूर्व ही वे इंगलैंड छोड़कर पत्नी सहित पेरिस चले गये।

पेरिस में कई वर्ष एकान्त जीवन बिताने के बाद आपका ३१ मई १९३० को देहान्त हो गया। इस बीच उनके सारे शिष्य या तो फांसी पर लटक चुके थे या जेलों में थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा पहले क्रान्तिकारी थे जिन्होंने भारत को स्वाधीन कराने के लिए बलप्रयोग करने का उद्घोष किया था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने श्यामजी को 'वृद्ध सिंह' की संज्ञा से प्रशंसित किया था। श्याम जी अंग्रेजी सरकार के कैसे आलोचक और स्वाधीनता प्रेमी थे तथा अंग्रेज सरकार उन पर किस प्रकार कुदृष्टि रखती थी, पं. नेहरू की इन पंक्तियों से उसका अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। पं. नेहरू लिखते हैं–"जो लोग राष्ट्रसंघ में शामिल होने के लिए आते थे तो श्याम जी उनके पास नहीं जा सकते थे। परन्तु वे मजदूर कार्यालय में कभी-कभी हिन्दुस्तानियों से मिलने जाते थे। जब कभी श्यामजी मिलते, तो मिलते ही ये लोग घबरा उठते थे, और न केवल जनता में ही उनसे मिलने से बचने का प्रयत्न करने बल्कि एकान्त में भी मिलने पर किसी न किसी बहाने से क्षमा मांग कर बच निकलते थे, क्योंकि वे जानते थे कि श्यामजी से सम्बन्ध रखने या उनके साथ देखे जाने से हमारी खैर नहीं।" किन्तु श्याम जी कभी नहीं घबराये। जीवन की अन्तिम सांस तक वे स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील रहे।

भारत के इस महान् क्रान्तिकारी की अन्तिम इच्छा थी कि उनकी चिता की राख भारत की मिट्टी में मिल जाये। किन्तु सत्तर वर्ष से अधिक समय होने पर भी किसी स्वतन्त्र भारत के नेता ने यह कृतज्ञता नहीं दिखायी।

सन् २००४ में गुजरात के मुख्यमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जब पेरिस की यात्रा पर गये तो उन्होंने श्याम जी कृष्ण वर्मा के अस्थिकलश को भारत जाने के लिए ग्रहण किया, जो वहां के एक हिन्दू परिवार के पास सुरक्षित था। नरेन्द्र मोदी ने जहां क्रान्तिकारी की इच्छा को पूर्ण किया वहीं देशभक्तों के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करके उन्हें यथोचित सम्मान देने की परम्परा को बनाये रखा है।

अब भारत मां का सपूत अपनी मातृभूमि की गोद में अस्थिकलश के रूप में आकर देश के स्वतन्त्रता प्रेमियों को प्रेरणा देता रहेगा। इसी मातृभूमि की आजादी के लिए ही तो उसने सारे सुख छोड़कर जीवन अर्पित किया था। ❑❑

क्रान्ति के सूत्रधार

जेलों की क्रूर यातनाओं के शिकार तीन सगे भाई

क्रान्तिकारी वीर सावरकर बन्धु

(चापेकर बन्धुओं की तरह आजादी के लिये अपने जीवन को देश के प्रति समर्पित कर देने वाले तीन सगे भाइयों में थे—बड़े भाई गणेशपन्त सावरकर और दूसरे विनायक सावरकर तथा छोटे नारायण सावरकर। महाराष्ट्र में, नासिक जिले के भगूर ग्राम में एक चितपावन ब्राह्मण दामोदर पन्त सावरकर के घर इनका जन्म क्रमशः १८७९, १८८३ और १८९९ में हुआ।

अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश-विदेश में प्रचार करने, आजादी सम्बन्धी कविताएं एवं साहित्य लिखने और उन्हें प्रकाशित कराने, क्रान्ति के सूत्रधार होने तथा अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने के अपराधों में संलिप्त मानने के कारण अंग्रेज़ों ने दो बड़े भाइयों को काले पानी की सजा दी। विनायक सावरकर को तो खतरनाक क्रान्तिकारी मानकर ५० वर्ष की सजा दी गयी। कालेपानी की जेल में उनके साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया गया, क्रूर यातनाएं दी गयीं, तिल-तिल करके शरीर को जीर्ण-शीर्ण कर दिया गया। सावरकर ने अपनी आत्मकथा में उन घृणित, क्रूर एवम् अमानुषिक यातनाओं का विवरण दिया है, जिन्हें पढ़कर आज भी पाठकों की रूह कांप जाती है। सावरकर बन्धुओं के कारावास की कहानी अंग्रेज़—साम्राज्यवाद के अन्याय-अत्याचार की ज्वलन्त कहानी है। इनकी कथा से अंग्रेज़ों के ही नहीं, हेग अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तक के तथाकथित न्याय के ढोंग और पाखण्ड का पर्दाफाश हो जाता है।
(सम्पादक)

दो आजन्म कारावासों की सजा

"आपको पचास वर्ष की कालेपानी की सजा दी गई है। हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने यही निर्णय दिया है कि अंग्रेज़ों को बाध्य नहीं किया जा सकता कि वे आपको फ्रांस के हाथों सौंप दें।" मुझे जेल में आकर एक सरकारी अधिकारी ने यह जानकारी दी।

ठाणे के कारागृह में छोटा भाई

छोटा भाई(नारायण सावरकर) २० वर्ष का तरुण ! अहमदाबाद में लार्ड मिन्टो पर फेंके गये बम के प्रकरण में पकड़े जाने पर वह यहां कष्टमय जीवन बिता रहा है। मातृभूमि की स्वाधीनता के लिये कष्टों का धैर्य से सामना करने की उसकी जो बारी आई सो भी आयु के अठारहवें वर्ष में। जेल से मुक्त होकर घर पहुंचकर बिछौने पर लेटकर निद्रामग्न हुआ ही था कि उसे राजद्रोह व हत्या के भयंकर अभियोग में पुन: जेल में डाल दिया गया। एक वर्ष तक उसे अमानवीय यातनाओं, तरह-तरह की धमकियों तथा क्रूरता का शिकार होना पड़ा। फिर भी जिसने इस अल्पायु में न अपना दृढ़ निश्चय त्यागा, न अपने संकल्प से लेशमात्र भी डिगा—वही मेरा छोटा भाई !

माता-पिता बचपन में ही चल बसे थे, जिससे मैं ही उसके लिये सब कुछ था। क्षण भर भी मुझसे बिछुड़ जाता तो मैं रो उठता। वही मेरा छोटा भाई यहीं बेड़ियों से जकड़ा, मुझ जैसा ही चक्की पीसने का कठिनतम कार्य कर रहा है !! वह बेचारा स्वयं इतना दु:खी है, ऐसे में मैं अपने आजन्म कारावास की सजा का हाल उसे कैसे सुना दूं, उसे और अधिक दु:खी बनाने के लिये ? आजन्म कारावास के दण्ड की बात वे सब जानते तो थे, मगर उन सब को विश्वास था कि हेग के न्यायालय के निर्णय से मुझे रिहा कर फ्रांस भेज दिया जायेगा, इसी आशा में वे तमाम दु:ख भूल जाते। अब यदि उन्हें मेरे दो आजन्म कारावासों के दण्ड का समाचार मिल गया तो उन पर क्या बीतेगी?

बड़ा भाई आजन्म कारावास का दण्ड पाकर कालेपानी चला ही गया था। अब मैं उसी रास्ते पर हूं। जब छोटा भाई यह जान जायेगा कि मैं अण्डमान स्थायी रूप से, जीवन भर के लिये जा रहा हूं, मेरी उसकी भेंट दुर्लभ होगी तो उसके अपरिपक्व मन की क्या हालत होगी? उसे शिक्षा कौन देगा? वह लड़का जहां-जहां जायेगा, वहां-वहां के लोग माथे पर त्यौरियां चढ़ाकर उसके लिए दरवाजे बन्द कर देंगे! वह सच में अनाथ बन जायेगा।

मानस पटल पर दु:ख भरे ये विचार अचानक छा-से गये। पुन: डूब गये।

चलो भैया, कालेपानी

ठाणे के बन्दीगृह में केवल अण्डमान जाने वाले कैदियों को बन्द

करने के लिये जो एक स्वतन्त्र विभाग है, उसमें कदम धरते ही मुझे एक कोठरी में बन्द कर दिया गया।.....दो ही चार दिनों में उन कैदियों को बाहर निकाला गया, जिन्हें अण्डमान भेजना था। अन्य बन्दियों के साथ मैं भी पैरों में बेड़ी डाले, एक-एक चादर और एक बण्डी, जो बन्दियों की पोशाक होती है, लिये पहने खड़ा था। सभी को कहा जा रहा था—चलो भैया, कालेपानी को।

.....हमारी अग्निबोट अण्डमान के बन्दरगाह पर पहुंच गयी। वह समुद्र के खल-खल करते पानी में लंगर डाले खड़ी हो गयी। बन्दियों को साथ लाने वाले अधिकारी उनमें से उतर गये। नीचे उतरने के लिये हमें वोट पर काफी समय तक खड़े रहना पड़ा।

चलो उठाओ बिछौना

मैं उठा, बिछौना सिर पर रखा, हाथ में बर्तन लिया। पैरों की भारी बेड़ियां कमर में कस लीं और खड़ा रहा।.....कल्पना में खोया था कि सिपाही के 'चलो उठाओ बिछौना' के शब्दों ने मुझे आहत ही कर डाला।

थोड़े ही समय में सेलुलर जेल का दरवाजा आ गया। लोहे के विशाल दरवाजे की कब्जियां तीक्ष्ण दाढ़ों की तरह चरमराने लगीं और कर्कश आवाज के साथ जेलखाने का दरवाजा मुंह बाये सामने खुल पड़ा—मैं उसमें घुस गया और मुंह बन्द हो गया, जो अगले ग्यारह वर्ष बाद ही पुनः खुला।

जमादार मुझे लेकर सात नम्बर की बैरक की ओर चल दिया। मार्ग में काले पानी से भरा एक हौद मिला। जमादार ने कहा, "इसमें स्नान करो।" मैंने चार-पांच दिन से स्नान नहीं किया था। समुद्र यात्रा से शरीर एकदम मलिन तथा पसीनामय हो गया था। इससे स्नान की अनुमति मिलते ही मन में अपार आनन्द हुआ। लेकिन समस्या थी कि किस वस्त्र को पहनकर नहाया जाये?

जमादार मेरी दुविधा को भांप गया। उसने कहा—"यह लंगोटी लो और स्नान करो। अब स्नान करते समय तथा काम करते समय इसी को पहनना होगा।" पहले तो लंगोटी पहनते हुए मन हिचकिचाया—मगर झट ही बोल उठा, "अरे पगले, स्वामी समर्थ रामदास भी तो लंगोटी ही पहनते थे।.....

लंगोटी पहनकर मैं कटोरीनुमा थाली से हौद से स्नान के लिए पानी लेने लगा कि इतने में जमादार ने चिल्लाकर कहा, "ऐसा नहीं

करना, यह कालापानी है। पहले खड़े रहना, फिर मैं आज्ञा दूंगा लो पानी। फिर झुक कर आप पानी लेंगे–एक कटोरा भर। फिर मैं कहूंगा 'अंग मलो', तो आप अंग मलेंगे। तब फिर मैं कहूंगा और पानी लो तब आप दो कटोरे पानी लेंगे। केवल तीन कटोरे पानी में स्नान करना बस, समझे ?

उस मुसलमान पठान का यह आदेश सुनते ही मैं चौंक पड़ा। नासिक क्षेत्र का निवासी होने के कारण मुझे संकल्प के अनुशासन की आदत थी। मन में हंस कर कहा–तो फिर यह भी एक संकल्प सही। वह गोरे पानी का था, इसे कालेपानी का समझ लिया जाये।

मैं स्नान करने लगा। मुंह पर पानी का छपका लगाते ही मेरे नेत्र एकदम बन्द हो गये और अंधेरा छा गया। आंखों में आग-सी लगने लगी। आखिर हुआ क्या? इतने में आदत वश चुल्लू-भर पानी मुंह में गया। मुंह कड़वा व जीभ नमकीन हो गयी तथा पूरा पानी थूक दिया। साहस करके जमादार से पूछा–'यह पानी नमकीन क्यों है?' उसने कहा–'वाह, समुद्र का पानी भी क्या मीठा होता है? पीने के पानी का अभाव रहने से अण्डमान में स्नान, कपड़े धोने तथा अन्य उपयोग के लिये समुद्र के पानी का उपयोग करना होता है। वह भी समुद्र से लाकर हौद में संचित हुआ होता है।'

स्नान तो कर लिया पर पूरा शरीर कसमसा उठा। बाल खड़े हो गये। लगा कि स्नान नहीं करता तो अच्छा था। मगर फिर विचार किया कि अब इसकी आदत तो डालनी ही होगी। लन्दन तथा पेरिस के 'टर्किशी-बाथ' का आनन्द लिया है, अब थोड़ा 'अण्डमानिश-बाथ' का भी अभ्यास हो जाये। राष्ट्रीय पाप का क्षालन उच्चकोटि के साबुन तथा सुगंधित तैल लगाकर गरम पानी के फव्वारों से संस्कृत-संकल्प करके थोड़े ही होगा? वह होगा खारे पानी से, जमादार के 'लो पानी' के संकल्प से जो कि कठोर आज्ञा के समान है और होगा केवल तीन कटोरे भर पानी से, समझे?'

कपड़े पहनकर आगे बढ़ा।.....तीसरी मंजिल की बैरक तक पहुंच गया। मेरे कारण वह पूरी बैरक, जिसमें १५० लोग रखे जाते थे, पूरी खाली करवा दी गई थी। वहां चुगलखोर, कुकर्मी, तथा उलट खोपड़ी, कलेजे वाले तीन वार्डरों की तैनाती की गई थी। वे तीनों बलूची तथा पठान मुसलमान थे।.....

इन मुसलमानों में पठान, सिन्धी तथा बलूची में व्यक्तिगत अपवाद को छोड़ कर प्रायः सभी अत्यन्त क्रूर तथा हिन्दू द्वेषी थे। उनमें भी व्यक्तिगत

अपवाद छोड़कर वे इतने दुष्ट थे, न कि हिन्दू द्वेषी ही, किन्तु अव्वल दर्जे के धर्मान्ध व क्रूर मुसलमानों की दृष्टि में भी वे मुसलमान 'काफिर' थे। वे उन्हें 'आधा काफिर' कह कर पुकारते जिसमें अन्य मुसलमान भी उन पठानों व बलूचियों के समान क्रूरतर व हिन्दू विरोधी बनने लगे। वहां के अधिकारी उसी पर ज्यादा विश्वास करते जो ज्यादा क्रूर होता।

इसीलिए मुझ पर निगरानी के लिए न केवल मुसलमानों में अपितु पठानों में भी जो सब से अधिक क्रूरतम था, उसे 'वार्डर' अथवा 'पेटी अफसर' के रूप में रखा गया था। वह इन्हीं गुणों, क्रूरता, चुगली व हिन्दू द्वेष के आधार पर चढ़ते-चढ़ते अधिकारी बन बैठा था।

तैल की घानी

राजबन्दियों को अलग-अलग बैरकों में अकेले-अकेले रखा गया। उनकी परस्पर की बातचीत अब हथकड़ी या बेड़ी की सजा पाती। स्नान के हौद पर या भोजन करते समय यदि कोई इशारे से भी कुशल-क्षेम पूछता देख लिया जाता, तो सात-सात दिन दण्डा बेड़ी पहने खड़े रहने की सजा रसीद हो जाती। उन सुशिक्षित राजबन्दियों से अब छिलका कुटाई का काम लेना पक्षपात माना जाने लगा तथा उन्हें तैल के कोल्हू चलाने का काम सौंप दिया गया जो बैल के ही योग्य माना जाता है तथा जेल का सब से कठिनतम मशक्कत का कार्य माना जाता है।

सवेरे उठते ही लंगोटी पहनकर कमरे में बन्द हो जाना तथा अन्दर कोल्हू का डण्डा हाथ से घुमाते रहना। कोल्हू में नारियल की गरी के पड़ते ही वह इतना भारी चलने लग जाता कि कसे हुए शरीर के बन्दी भी उसकी बीस फेरियां करते रोने लग जाते। बीस-बीस वर्ष तक की आयु के चोर-डाकुओं तक को इस भारी मशक्कत के काम से वंचित कर दिया जाता किन्तु राजबन्दी, चाहे वह जिस आयु का हो, उसे यह कठिन व कष्टतर कार्य करने से अण्डमान का वैद्यक शास्त्र भी नहीं रोक पाता। कोल्हू के उस डण्डे को हाथों से उठाकर आधे रास्ते तक चला जाता और उसके बाद का अर्ध गोला पूरा करने के लिए डण्डे पर लटकना पड़ता, क्योंकि हाथों में बल नहीं रहता था। तब कहीं कोल्हू की गोल दांडी पूरा चक्कर काटती।

बीस वर्ष तक आयु के वे सब कोमल राजबन्दी कष्टों से अपरिचित परन्तु सुशिक्षित थे। सवेरे दस बजे तक लगातार कोल्हू के चक्कर लगाने से श्वास भारी हो जाती और प्रायः सभी को चक्कर आ जाता। कोई-कोई तो पसीने से लथपथ होकर बेहोश तक हो जाते। नियमानुसार दस बजे

काम बन्द कर दिया जाता दो घण्टे के लिए। परन्तु कोल्हू का काम निरन्तर का था। भोजन आते ही दरवाजा खुल पड़ता। बन्दीवान भात, रोटी व सब्जी लेकर, थाली भर लेता और उसके अन्दर जाते ही दरवाजा बन्द। यदि कोई बन्दी पसीने से तर शरीर को साफ करते रहने या हाथ-पैर धोते रहने के कारण एकाध मिनट विलम्ब कर देता, तो जेल वार्डर उसे जोर-जोर से मां-बहन की गन्दी गालियां देने लगता। जहाँ पीने के पानी के लिए आग्रह करना पड़ता वहाँ हाथ धोने के लिए पानी कहां से मिले?

कोल्हू में काम करते-करते भीषण प्यास लगने लगती। पानी वाला पानी देने से इन्कार कर देता। यदि किसी को तम्बाकू खिला दी तो पानी मिल जाता। जमादार से पानी के लिए कहा जाता तो उसका उत्तर होता–'कैदी को दो कटोरी पानी देने का हुक्म है, तुम तो तीन पी गये। और पानी क्या तुम्हारे बाप के घर से लायें' पानी पीना या हाथ धोना जहां इतना दुश्वार था वहां स्नान के लिए पानी कहां?

तैल पूरा करना होगा

भोजन परोसकर जमादार को कोठरी का दरवाजा बन्द करने के बाद यह चिन्ता न थी कि कैदी ने भोजन किया कि नहीं। बल्कि उसे यह चिन्ता रहती कि फिर से कोल्हू पिराने लगे कि नहीं? वह बैरक में से, कोठरियों के सामने निरन्तर चक्कर लगाकर चिल्लाता रहता–'बैठो मत, शाम तक तैल पूरा करना पड़ेगा। नहीं तो पिटाई होगी, सजा मिलेगी सो अलग।' उसका यह चिल्लाना इतनी कर्कश आवाज में होता कि बन्दियों को उसे सुनकर खाना निगलना भी मुश्किल हो जाता। क्योंकि प्रत्येक का अनुभव था कि तैल कम निकलने पर शाम के समय बन्दियों को पैरों तले कुचला जाता था। लाठी से पीटा जाता। इस डर से पेट में चूहों के कूदते रहने पर भी, कोल्हू पेरते-पेरते, खड़े-खड़े थालियों में पसीना डालते-डालते उसी के कौर उठा-उठाकर बन्दियों को मुंह में भरने को मजबूर होना पड़ता।

इस प्रकार भोजन करके शाम के पांच बजे तक कोल्हू पेरना पड़ता। आदत पड़ जाने के कारण कुछ लोग चार बजे ही अपना काम समाप्त कर देते। सौ में एकाध ही आदमी नित्य का पूरा काम अर्थात् ३० पौण्ड तैल निकाल पाता। अन्य सभी पूरा प्रयास करने के भयंकर कष्ट उठाने के बावजूद उसे पूरा करने में असमर्थ रहते। उनमें जो नवसिखिये, सीधे-सादे तथा कर्त्तव्यनिष्ठ होते, उन्हीं पर जमादार वार्डर की मार पड़ती। भोजन पूरा न करके भी निरन्तर काम करते रहने पर भी तैल पूरा न हो पाता।

तब क्या कहना? अभी भी ऐसे बन्दियों का अति कारुणिक दृश्य मेरी आंखों के आगे घूम रहा है। तैल पूरा नहीं हुआ है, ऊपर से थप्पड़ें पड़ रहीं हैं। बाजू से लाठियां खा रहे है, आंखों से आंसू की धाराएं बह रही हैं। मूक रुदन इस ओर से उस ओर तक लहराता चला जा रहा है। स्वाभिमानी व सरल हृदय वाले बन्दियों की यह दुर्दशा?

कैदी जरा निडर हो तो उसे हथकड़ी, तेज हो तो बेड़ी आदि की सजा दिला दी जाती। इन बातों को देखकर बन्दीगृह में कदम रखते ही आदमी को निश्छलता, सरलता व लज्जा त्यागने को विवश होना पड़ता। यह अनुभव की बात है कि जो लज्जा त्याग देते, गाली का जवाब और बड़ी गाली से देने को उद्यत रहते, ऐसे ही लोग वहां अन्त तक जीवित रहते हैं। भले व सीधे-सादे आदमी का वहां क्या काम?

रात में भी कोल्हू

जेलर बारी बाबा किसी को भी ढीला नहीं छोड़ते थे, चाहे वह निडर हो या अव्वल दर्जे का बदमाश। सरल व सीधों से तो आते-जाते मारपीट होती थी, क्योंकि भुनगों को कुचलना तो 'वीर पुरुषों' के लिए बहुत आसान होता है। इसका एक लाभ यह भी होता था कि सीधे, सरल व दुर्बलों पर मार पड़ते देखकर, बदमाश भी आंतकित होकर पिटने के भय से अपना तैल पूरा करने में जी-जान से तुल जाते थे।

इतने पर भी यदि किसी दिन गरी कच्ची होती और किसी का भी तैल शाम तक पूरा न हो पाता तो बारी बाबा दंड देने का एक और नया तरीका जानते थे। शाम को लगभग पांच बजे भोजन परोसे जाते समय वे आकर गर्जना करते "बन्दीवान षड्यन्त्र रचते हैं, काम जानबूझ कर पूरा नहीं करते।" वे घोषणा कर देते "जिनका तैल पूरा नहीं हुआ है उन्हें आज भोजन नहीं दिया जायेगा।"

बन्दी सवेरे छह बजे से काम शुरू करते। खड़े-खड़े भोजन करते, फिर शाम तक लगातार बिना एक पल सांस लिये कोल्हू चलाते-चलाते थक कर चूर हो जाते। फिर बारी बाबा शाम को पूरी जेल का काम समाप्त करा कर, बन्दियों को बैरकों में भिजवाकर राजबन्दियों की काम की कोठरी में आ पहुंचते। बाहर कुर्सी पर जम जाते और रात के काम की खबर बाहर व्यक्त करने की हिम्मत न सिपाही की होती न किसी अन्य की। क्या मजाल कि जो मुंह से एक शब्द भी बाहर निकाले? यदि कोई ऐसा दुस्साहस कर देता तो बारी षड्यन्त्र रचकर उसे ऐसा

मजा चखाता कि वह एक ही हफ्ते में पानी मांगने लगता।

राजबन्दियों से रात को सात, आठ, नौ, दस बजे तक भी कोल्हू चलवाया जाता। जमादार आते-जाते मार-पीट कर जाते। रात में जेल के घण्टे पर घण्टे बज रहे हैं, तमाम बन्दी सो रहे हैं, केवल कोल्हू की बैरक कर्रकर्र कर रही है। बारी बाबा बैरक के सामने कुर्सी पर बैठे ऊंघ रहे हैं। बीच में नींद उचटते ही गाली-गलौज करने लगते हैं। "अब तक तैल पूरा न हुआ तो मारो साले को, कल मारना है तो आज ही मारो।" वह कहते-कहते फिर से ऊंघने लग जाता।

बीमारी का ढोंग

जिनके हाथ को कभी कष्ट ने स्पर्श तक नहीं किया, जिनमें कालेज में अध्ययन-अध्यापन करने वाले थे, ऐसे सत्रह-अठारह साल के बन्दीवानों को महीनों तक कोल्हू का कष्टप्रद काम दिया जाता। उन तरुणों के कष्टों की कोई सीमा ही नहीं थी। उनमें जब कोई बीमार पड़ जाता तो उससे तो अच्छा मृत्यु की ही कामना करने लगता। इसका कारण यह था कि वहां बीमारी के भयंकर स्वरूप को भी ढोंग करार दे दिया जाता।

यदि बुख़ार हो गया तो १०१ के ऊपर होने पर ही माना जाता कि बुखार है। बुखार होने पर बन्दी को अस्पताल न भेजकर काम बन्द कराकर कोठरी में ही रखा जाता। चोरी, आगजनी, डाके आदि के कैदियों को ज्वर जैसी बीमारी होने पर भी रुग्णालय में सोने के लिए चारपाई मिल जाती। परन्तु राजबन्दियों को कोठरी में ही डाले रखा जाता। सिर दर्द, हृदय रोग, जी घबड़ाना आदि अप्रत्यक्ष बीमारी से जो पीड़ित हो जाता, उन पर 'ढोंग' करने या 'काम से जी चुराने का बहाना' जैसे आरोप लगा दिये जाते। अवसर पाकर उन्हें सजा भी दे दी जाती। हां, यह भी सत्य है कि कुछ चतुर बन्दियों के पास ऐसी युक्तियां या औषधियां हो जाती कि वे चाहे जितना ताप, कै, खून की उल्टी, दस्त करके अपनी बीमारी का प्रदर्शन करने में सफल हो जाते।

इस प्रकार की अनापशनाप औषधियां खाने से उन्हें चाहे जितना ताप चढ़ जाये, चाहे जितना पेट दर्द हो जाये, भले ही खून के दस्त हो जाएं, परन्तु इन सब के समक्ष कोल्हू पेरना कहीं ज्यादा कष्टदायक माना जाता था। न केवल कैदी, अपितु अव्वल दर्जे के खूंखार बदमाश भी कोल्हू से घबड़ा उठते, उसके मारे उनकी नाक में दम आ जाता तथा इस घोर यातना से बचने के लिए बीमारी का बहाना बनाने का वे नाटक करते। यदि कोई ढोंग कर बीमार बनता तो उसे फिर कष्टतर काम में

जुटा दिया जाता।

इस प्रकार के सहिष्णु तथा कष्टभोगी पुरुषों में मेरे ज्येष्ठ भाई (गणेश दामोदर सावरकर) की गिनती प्रमुखतया होती थी।

भाई का सिर-दर्द

मेरे बड़े भ्राता को बचपन से ही आधा शीशी (आधे सिर का दर्द) का रोग था। इस पर भी उन्हें बन्दीगृह के अपार कष्ट, मानसिक व शारीरिक यातनाएं तथा कोल्हू में जोते जाने से कष्टों की मालिका ही मानो हरदम उनके सामने खड़ी रहती। इन सब के ऊपर उनका अपराध यह था कि अन्य राजबन्दियों के समान वह अभी तक सब से हिलमिल नहीं पाये थे। उनके मुख से झूठी बातें या सुख-सुविधा के लिए गिड़गिड़ाना जैसा एक शब्द भी कभी नहीं निकल पाया था। बारी बाबा तो अपने को सर्कस का मालिक तथा राजबन्दियों को हिंसक पशु समझता था। अत: उन्हें हिला देने, आतंकित कर झुकने को मजबूर करने का रोज प्रयास किया करता। इस तनावपूर्ण स्थिति ने उनके आधा शीशी के असहनीय दर्द को और भयंकर बना दिया था।

सुबह उठते ही भ्राता को कोल्हू में जोत दिया जाता। जैसे-जैसे दिन चढ़ता उनका सिर दर्द अत्यधिक तीव्र होता जाता। वेदनाएं फूट निकलतीं। गरमी असह्य हो उठती। उधर मस्तक शूल तीव्रतर होता जाता। उसी के साथ-साथ "कोल्हू चलाओ, हम और कुछ नहीं जानता" की जमादार की बेसुरी व कर्कश गर्जना गूंजती रहती। यदि गोरा अधिकारी कोठरी में आता तो वे बताते 'मेरे सिर में असह्य दर्द है' तो उसका उत्तर होता-'ये मेरा प्रश्न नहीं है, डॉक्टर से पूछो'। डॉक्टर कोई भारतीय ही होता। जब वह आता तो ताप देखकर कह देता-'इसे कोई बीमारी नहीं है, साहब की ओर ले जाओ।' सिर दर्द से तापमान तो चढ़ता नहीं था, अत: वह प्रमाणित कैसे हो? अर्थात् यही माना जाता कि बदमाशी है, ढोंग है बन्दीवान का और गणेश सावरकर का।

वही बीमार है जिसे मैं कहूं

डॉक्टर यह जानते थे कि वे इन बन्दियों के साथ जो अत्याचार करा रहे हैं वह गलत है किन्तु उन्हें भी बारी बाबा का डर था। बारी बाबा आते-जाते डॉक्टर से कहता रहता-"देखो डॉक्टर, तुम हिन्दू हो और ये राजबन्दी भी हिन्दू हैं। इनके कारण न जाने तुम्हारा गला कैसे और कब फंस जाये? उनके साथ यदि आप बोलते भी पाये गये तो

उसका पूरा वर्णन अधिकारी के पास पहुंचने में देर नहीं लगेगी। इसलिए कहता हूं कि यदि नौकरी चाहते हो तो सम्भलकर रहना।"

वह आगे कहता—"तुम पढ़े-लिखे व अनुभवी हो, मगर मैं जानता हूं कि इन ढोंगी लोगों का सत्य क्या है और झूठ क्या है? याद रखना कि वही बीमार है जिसे मैं कहूं।" कहते-कहते अपने ही विनोद पर हंसते-हसंते बारी बाबा आगे बढ़ जाता।

एक दिन कोल्हू पेरते समय डॉक्टर ने मेरे भाई की दयनीय हालत देखी। वेदनाएं जब असह्य हो उठतीं, शूल जब सीमा से अधिक रूप धारण कर लेता तब भाई दीवार पर तड़ातड़ सिर से टक्करें मारता और कुछ ही क्षणों में फिर से कोल्हू पेरने लग जाता। डॉक्टर ने यह कारुणिक दृश्य देखा तो उसका हृदय पसीज गया। साहस कर डॉक्टर बोला—'चलो मैं अपने अधिकार से तुम्हें दो दिन तक अपने उपचार में रखूंगा। काम छोड़ो और बिछौना उठाओ। डॉक्टर के आदेशानुसार मेरे भाई ने काम छोड़ दिया और बिछौना उठाकर चलने लगा। इतने में बारी बाबा आ धमका। वह जमीन पर लाठी पटकर जोर से गरज उठा—'ऐ बम-भोले वाला ! किधर जाता है?' उसने गणेश पंत को साथ ले जा रहे जमादार को धमकाया। जमादार कांपते-कांपते बोला—"डॉक्टर के आदेश से काम छुड़वाकर इन्हें बीमारी की जांच के लिए अस्पताल ले जा रहा हूं।"

"कौन है साला डॉक्टर मुझ से क्यों नहीं पूछा?" साला कहते-कहते उसने पूरी जेल को गुंजा दिया। वह और जोर से चिल्लाया—"ले जाओ वापस, इसे काम में लगा दो। मैं डॉक्टर को भी देखता हूं और तुम्हें भी। साला..... मुझ से पूछा नहीं और इसे कोठरी से बाहर निकाल दिया? यहां मेरा हुक्म चलता है कि डॉक्टर का?" चीखते-चिल्लाते बारी बाबा ने गणेश पंत को फिर से कोठरी में बन्द करवा दिया और कोल्हू में लगवा दिया।

नियमानुसार डॉक्टर का अधिकार बारी बाबा से कहीं ज्यादा तथा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट से नीचे का होता था। मगर राजबन्दियों से सम्बन्धित चाहे जो मामला हो उसे सुपरिण्टेण्डेण्ट तक न पहुंचने देने के लिए तमाम अधिकारी सतर्क रहा करते थे। उस डॉक्टर ने बारी से डरकर अपना अपमान तो निगल ही लिया, उलटे बारी से क्षमायाचना तक की। इसके बाद उसने बिना सुपरिण्टेण्डेण्ट की आज्ञा के किसी भी राजबन्दी को एक क्षण के लिए भी कोठरी से बाहर नहीं निकाला।

जो दस-दस बार जेल से भागे या उसे तोड़कर आते-जाते रहते थे,

उन्हें वहां रखना या न रखना, डॉक्टर के हाथ में था। उनके मामले में बन्दीपाल दखल न देता था। किन्तु राजबन्दियों के लिए चिकित्सालय में प्रवेश निषिद्ध था।

उस आधा शीशी का असह्य शूल सहन करते हुए, दिनभर कोल्हू चलाते हुए, शाम के समय मेरे ज्येष्ठ बन्धु तैल नापकर-आह खींचकर-उस लकड़ी पर शरीर लिटा देते तो सारा शरीर वेदनाओं से भर जाया करता। आंख झपक ही नहीं पाती कि सवेरा हो जाता? सुबह उठने पर सूर्य के चढ़ते-चढ़ते फिर से सिर दर्द के सामने डटकर खड़े हो जाते-कोल्हू भी सामने डटकर खड़ा रहता। इस रूप से सप्ताह, महीने ही क्यों, वर्ष और वर्ष के साथ-साथ पूरा जन्म। कितना कष्टकर कितना अपमानित?

कष्टों का कितना वर्णन किया जाये? अण्डमान में बन्दियों को कठोर से कठोर काम लिये जाने, उन्हें तरह-तरह की यातनाएं देने, मार-पीट करने, खराब भोजन देने आदि कष्ट तो उठाने पड़ते ही थे, परन्तु दिखाई देने में अत्यन्त मामूली और कहने में अत्यन्त संकोचास्पद ऐसी यातना थी, मल-मूत्रादि पर भी रोक। सुबह, दोपहर तथा शाम को छोड़कर अन्य समय पर शौच जाना अपराध माना जाता था। शाम को छह बजे बन्दी कोठरी में बन्द करवा दिये जाते। सुबह सात बजे तक के लिए उस अवधि में बन्दी को पेशाब करने के लिए मटका रखा जाता था। अण्डमान की जेल में सब कोठरियां अलग-अलग थीं तथा प्रत्येक कोठरी में एक बन्दी रखा जाता। इसीलिए उसे 'सेल्युलर' जेल अर्थात् कोठरी का कारागृह कहते हैं। बारी का आदेश था कि रात के इन बारह घण्टों में कोई शौच न करे। पेशाब के लिए रखा गया घड़ा अत्यन्त छोटा होता था अत: उसमें शौच किया ही नहीं जा सकता था।

यदि किसी से शौच किये बिना न रहा जा रहा हो तो वह वार्डर से कहता। यदि वार्डर डांट-फटकार दे तो मल को पेट में ही दाबे रातभर कोठरी में पड़े रहो। यदि वार्डर जमादार को सूचित करे तो जमादार बन्दी को बुरी-बुरी गालियां देने लगता, मानो शौच करना उसकी दृष्टि में अपराध था। यदि जमादार दया करके डॉक्टर तक यह बात पहुंचा दे, डॉक्टर सौ में से एक को इस बात की लिखित आज्ञा देता। उसे लेकर बारी के यहां जाना पड़ता और तब कहीं बारी उस बन्दी को शौच के लिए जाने देता, और कोठरी का दरवाजा खुलता। दूसरे दिन सवेरे बारी साहब उससे पूछ बैठता-"तुमने रात को शोरगुल क्यों किया?" बन्दी उत्तर देता-"साहब टट्टी को जाना था, माफ करो।" तब लाठी पटक गाली दे बारी

बोलता–"टट्टी रात ही को क्यों आने लगी?" घबड़ाया बन्दी उत्तर देता–"लगी सो लगी।" इस पर जमादार उसे दो-एक तमाचे जड़ते हुए कहता–"ए साला, साहब से मखौल उड़ाता है।" यदि बारी को गुस्सा आ जाता तो उस कैदी को एक दिन का अधिक कोल्हू का काम देने की सजा सुना कर वहां से चल पड़ता।

कुछ बन्दी मलावरोध असम्भव होने की स्थिति में कोठरी की जमीन पर शौच कर लेते। उस आठ-दस फुट के कमरे में रातभर उस मल को सिरहाने रखे दुर्गन्ध में पड़े रहते। सवेरे भंगी आता तो उसे तमाखू का लालच देकर मल को उठाने की विनती करते। यदि भंगी मान गया तो ठीक, वरना तमाखू न मिलने पर भंगी शोर मचाकर जमादार से कह देता-'इसने कमरा गन्दा कर रखा है।' जमादार उस बन्दी को ठोकरें लगाता या बारी के पास लिये चलता। वहां उसे सजा दी जाती- या तो अपने हाथों से मल धोना पड़ता या तीन-चार खोड़े में खड़े रहने की सजा दी जाती।

खोड़े में खड़े रहने की सजा बहुत कष्टदायक होती। मल-मूत्र का अवरोध करना पड़ता। सवेरे छह से दस बजे तक दोपहर को बारह से पांच तक हथकड़ी में खड़ा होना पड़ता। उस दौरान शौच तो दूर, पेशाब तक करना मना होता।

कोल्हू के काम पर

मैंने लगभग एक माह तक छिलका कूटने का काम किया। सब लोग आश्चर्य करने लगे कि मुझे कोल्हू का काम क्यों नहीं दिया गया। कुछ लोग बोले–"बैरिस्टर को कोल्हू का कष्टकारक काम किस मुंह से देंगे?" मैं उनसे कहता–"जिस मुंह से बैरिस्टर को कालेपानी भेजकर, लंगोटी पहनाकर छिलका कूटने काम दिया गया, उसी मुंह से।" अन्त में एक दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा, "कल से तुम को कोल्हू पर जाना है। छिलका कूटने से तुम्हारे हाथ अवश्य सख्त बन गये होंगे। अब पहले से अधिक सख्त काम करने में कोई हर्ज नहीं है।" बारी भी हंसकर बोला–"आपकी बढ़ती ऊपर के वर्ग में कर दी गई है।".....

दूसरे ही दिन सवेरे ही मुझ को कोल्हू में जोत दिया गया। मेरी सात नम्बर की बैरक के छठवें विभाग में कोल्हू का काम था।....

लंगोटी पहनकर सवेरे दस बजे तक काम करना पड़ता। निरन्तर फिरते रहने से चक्कर आने लगते। शरीर बुरी तरह थककर चूर हो जाता,

दु:खने लगता। रात को जमीन पर लेटते ही नींद का आना तो दूर, बेचैनी में करवटें बदलते रात बीतती। दूसरे दिन सवेरे वही कोल्हू सामने खड़ा होता। इस प्रकार छह-सात दिन निकाल लिये।

भारी परिश्रम के बावजूद मैं तैल पूरा नहीं कर पाता था। एक दिन बारी आया। जरा तुर्रे में बोला-"देखो, पड़ोस का बन्दी तीस पौंड तैल दो बजे पूरा नाप कर दे देता है और आप शाम तक काम करते रहने पर भी दो-एक पौंड तैल कम ही दे रहे हो। इस पर आपको शरम आनी चाहिए।".....

मन का विद्रोह-आत्महत्या का आकर्षण

उस कोल्हू को पेरते समय पसीने से तर हुए शरीर पर जब धूल उड़कर उसे सान देती। बाहर से आते हुए कूड़े-कचरे की तह उस पर जम जाती, तब कुरूप बने उस नंग-धड़ंग शरीर को देखकर मन बार-बार विद्रोह कर उठता-ऐसा दु:ख क्यों झेल रहे हो, जिससे स्वयं पर घृणा पैदा हो। इस शरीर तथा कर्तव्य का उपयोग राष्ट्र को स्वाधीन कराने में होने को था। मगर अब वह मिट्टी के मोल का बन गया है। फिर इस अन्धकार में कष्ट क्यों झेल रहे हो? इसका कार्य के लिए, मातृभूमि के उद्धार के लिए, कौड़ी का मूल्य नहीं है। वहां तुम्हारी यातनाओं का ज्ञान तक किसी को भी न होगा, फिर उसका नैतिक परिणाम तो दूर की बात है। इसका न कार्य के लिये उपयोग है, न स्वयं के लिए। जब इतना भी नहीं, तो केवल भार-भूत बनकर रहने में क्या रखा है? तो फिर यह जीवन व्यर्थ में क्यों धारण कर रहे हो। बस, जो कुछ उसका उपयोग होना था, हो चुका। अब चलो फांसी का एक ही झटका देकर जीवन का अन्त कर डालो।

मन बार-बार यही कहा करता 'अब जीना व्यर्थ है। अब आत्मघात ही आत्मसम्मान होगा।' नोवलिस आदि नीति विशारदों के तथा ऐतिहासिक उदाहरणों की याद हो आती कि कभी-कभी आत्मघात ही आत्मकर्तव्य बन जाता है।

एक दिन दोपहर को बाहर लू चल रही थी। मैं अन्दर कोल्हू चला रहा था। अचानक हांफने लगा, चक्कर आ गया और धम-से-नीचे बैठ गया। अतिश्रम के कारण पेट में बल पड़ गया। पेट पकड़ कर दीवार के सहारे मस्तक रखकर आंखे मूंद ली-न जाने क्या हुआ? मगर जब मैं होश में आया तो मेरी समझ में न आ सका कि कहां हूँ, कौन हूँ, किस स्थान पर हूँ? शान्त तथा निर्विकार, न जाने किस सुखद अवस्था में

निमग्न बना रहा। थोड़े समय में एक-एक वस्तु आंखों के सामने आने लगी। फिर से उठा और काम में जुट गया।

मन अब निरन्तर कहता गया, यह अन्तिम कार्य (मृत्यु) क्यों नहीं होने देते? अभी जो शून्यता प्रतीत हुई थी-वही तो मृत्यु है। सैकड़ों बन्दी जिस पोर्टब्लेअर में जिस रस्सी के आधार से मृत्यु पार कर गए, तर गए, उसी रस्सी के टुकड़े की फांसी लगा लो और करो जीवन का अन्त, कष्टों का अन्त ।

उस दिन आत्महत्या का आकर्षण मुझ को बार-बार आकर्षित करता रहा। वही शून्यता ही मृत्यु ! वह तो इस जीवन से कहीं अधिक मीठी है, निःसंशय मधुर है। मुझे दो-चार बार, यातनाओं के असह्य हो जाने पर आत्महत्या करने के लिए विचार आकर्षित करते रहे।.....

बन्दियों का भोजन

सन् १९१२ के प्रारम्भ में मुझे अण्डमान में आये लगभग एक वर्ष हो गया था। उस पूरे वर्ष जेल की यातनाएं व कठिन से कठिन कष्ट सहते रहने पर भी तथा जेल का खराब भोजन लेते रहने पर भी मेरा स्वास्थ्य ठीक था। जेल में बन्दियों को जो भोजन दिया जाता, यदि जेल के नियमानुसार दिया जाये, तो वह अपर्याप्त नहीं कहा जा सकता। बन्दियों को एक समय में दो कटोरा चावल, गेहूं की दो चपातियां तथा दाल-सब्जी दी जाती थी। साधारणतः एक आदमी के लिए यह पर्याप्त ही था। कोल्हू का या चक्की पीसने का काम मिले बन्दियों को, कठोर शारीरिक श्रम के बदले भोजन में अनाज की मात्रा बढ़ा दी जाती थी। कुछ बन्दी ऐसे भी होते थे कि इस भोजन से उनकी क्षुधा शान्त नहीं हो पाती थी। परन्तु यह परिस्थिति साल-दो-साल में बदल जाती थी।..... ९९ प्रतिशत वार्डर पंजाबी, सिन्धी या पठान मुसलमान थे तथा वे हिन्दुओं को ज़्यादा से ज़्यादा यातनाएं देना या दिलवाना अपना 'मजहबी फर्ज' मानते थे। जेल के ९९ प्रतिशत हिन्दू बन्दी उनके अत्याचारों के शिकार बनते थे।

जेल से बाहर नियुक्त .....पेटी अधिकारी तथा जमादार को बाहर अपने पैसे से भोजन करना चाहिए। किन्तु वे भी मुफ्तखोरों के समान भोजन के समय प्रायः बन्दीशाला में आ पहुँचते थे। इन मुफ्तखोरों को भी बन्दियों को ही अपनी चपातियां देने को विवश होना पड़ता था। यदि कोई बन्दी इनकार कर देता है तो उसे किसी न किसी बहाने से दो डण्डे खाने पड़ जाते हैं।

मिर्ज़ा ख़ान नामक एक जमादार था। वह 'छोटा बारी' के नाम से प्रसिद्ध था। वह किसी भी पठान को आंखों से इशारा कर देता था कि वह उसके लिए दस-बारह चपातियां इकट्ठी कर लाये। मिर्जा खान भोजन परोसते समय परोसने वाले के साथ चला करता था तथा वार्डर बन्दियों की चपातियों में से उसके लिए चपाती उठा लेता था। यदि कोई बन्दी चपाती देने में आनाकानी करता दिखाई दे जाता तो मिर्जा खान 'पंक्ति में ठीक से क्यों नहीं बैठा' कहकर उस हिन्दू बन्दी पर दो-चार डण्डे जमा ही देता।.....

अधपका चावल-जली रोटियां

भोजन में सब से कमी यह रहती थी कि उसे तैयार करते समय लापरवाही बरती जाती थी। चावल अधपका होता तो रोटी अधसिकी या आधी जली। कभी-कभी तो रोटी की जगह मानो कच्चा आटा ही सामने रख दिया गया हो। जेल के रसोइये अत्यन्त गन्दे रहा करते थे। उनके कपड़े पसीने से तर रहा करते थे। गर्मी में जब वे भोजन बनाते होते तो उनके मस्तक से निकली पसीने की बूंदे दाल या आटे में गिरती दिखाई देती। वे प्राय: संक्रामक रोग से पीड़ित रहा करते।.....

सब्ज़ी में मिट्टी का तैल

कई बार भोजन में दी जाने वाली कांजी में मिट्टी का तैल पड़ा मिलता। दुर्गन्ध आती तो पता चलता। होता यह था कि बड़ी हांडी में कांजी पड़ती थी। वह हांडी चूल्हे पर चढ़ी होती। पकते समय उसे देखने के लिए रसोइया मिट्टी के तैल का दीया लेकर उसमें झांकता। दीया टेड़ा हो जाता और मिट्टी का तैल उस हांडी में गिर जाता।.....

सब्ज़ी में सांप और केंचुली

अण्डमान में दो फुट लम्बी तथा अत्यन्त विषैली केंचुली बहुत होती थी। सवेरे बन्दी जंगल से सब्जी लेने भेज दिये जाते थे। वे हाथों में हंसिया लेकर जंगलों में घुस जाते और ढेर की ढेर सब्जियां काटकर, पत्तीदार शाक काटकर गाड़ियों में भरकर जेल ले आते। उन्हें जूड़ियों में बांधकर, काटकर पकने के लिए हंडियों में डालकर चूल्हों पर चढ़ा दिया जाता था। उन्हें बीनने, साफ करने या धोने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी।

कई बार भोजन करते समय सब्जी में कभी केंचुली का टुकड़ा हाथ में आ जाता तो कभी-कभी सांप तक के शरीर की बोटी दिखाई

दे जाती। मैंने तथा कुछ अन्य बन्दियों ने जब सब्जी में केंचुली और सांप का टुकड़ा उठाया और उसे दिखाने सुपरिण्टेण्डेण्ट या बारी के पास ले गए तो वे हंसकर कह देते–"इनका स्वाद तो बहुत अच्छा होता है!" कई बार केंचुली या सांप का टुकड़ा निकलने पर या तो उन्हें निकालकर बाकी सब्जी से रोटी खानी ही पड़ती या सब्जी फेंककर सूखी रोटी चबानी पड़ती।.....

संघर्ष के कारण सुधार

कुछ दिनों बाद हमारे सतत प्रयास से राजनीतिक बन्दियों के लिए चपातियां तथा सब्जी अच्छी बनाई जाने लगी। कभी-कभी सर्वेक्षक आकर स्वाद चखकर देखने लगा। और आगे चलकर जब समाचार पत्रों व कौंसिल में अण्डमान में राजनीतिक बन्दियों की चर्चा छिड़ी, उन्हें दिये जाने वाले खराब भोजन की आलोचना हुई तो भोजन का स्तर धीरे-धीरे सुधरता गया और साधारण कैदियों के भोजन-स्तर में भी काफी सुधार हुआ।

भोजन में तो सुधार हो गया किन्तु भोजन के लिए कड़ी धूप या बरसात में पंक्ति में बैठाये जाने के हठ से उन्हें भारी परेशानी उठानी पड़ती थी। यदि कोई बन्दी भोजन लेकर छाया में जा बैठता तो उसे सजा दी जाती। बरसात में भीगते रहते, ठण्ड में ठिठुरते हुए भोजन करते रहते। वर्षा में भीगने से बचने के लिए इधर-उधर जाने का प्रयास करते तो गालियां सुननी पड़तीं। वर्षों के संघर्ष के बाद बन्दियों को छाया में बैठकर भोजन करने की अनुमति भी आखिर मिल ही गई।.....

कष्टों से बचने को बीमार

बन्दी कष्टदायक कामों से बचने के लिए रोग पैदा करने वाली औषधियों का प्रयोग करना सीख गये थे। सफेद कनेहरी की जड़ियां पानी में घोलकर पीने से बुखार चढ़ जाता है। मूंज को पानी में घोलकर पीने से रक्त के साथ दस्त आने लगते हैं, जख्म में एक वस्तु लगाने से घाव महीनों तक सड़ता रहता है। वे सब युक्तियां बन्दी जानते थे तथा कठिन काम से बचने के लिए वे इन औषधियों का प्रयोग कर बीमार बन जाते थे।

जेल के अन्दर कोल्हू के कठिनतर कष्टसाध्य काम के डर से बाहर लकड़ी तोड़ने तथा जंगल काटने जैसे कष्टकारक कामों के डर से जड़ियों, औषधियों को खाकर, अपने पैरों पर स्वयं घाव बनाकर, उनमें घाव सड़ाने वाले धागे डालकर, सुई से अपनी गर्दनों से रक्त

निकालकर वे यही बताने का प्रयास करते थे कि घाव सड़ने से पैरों से चला नहीं जा रहा या मुंह से खून आ रहा है कुछ शातिर किस्म के बन्दी अपने को 'पागल' सिद्ध करने के लिए मुंह पर विष्ठा का लेप तक कर लेते। कुछ सब के सामने उसे खा तक डालते जिससे उन्हें 'पागल' मानकर काम से मुक्ति मिल जाये।.....

अश्लील गालियां

एक दिन की घटना है। सवेरे से शाम तक कोल्हू चलाते रहने से शरीर काष्ठवत् बन गया। हाथों में छाले पड़ गये, परन्तु तीस पौंड तैल पूरा न हो सका। चलाते-चलाते चक्कर आ रहे थे। बीच-बीच में पेटी अफसर अश्लील गालियों से प्रहार करते थे जो सीधे हृदय में चुभते थे। वे गालियां चाबुक के प्रहार के समान थी।.....

इन्दुभूषण राय पर अत्याचार और आत्महत्या

इन्दुभूषण राय नामक क्रान्तिकारी युवक को माणिकटोला बम काण्ड में दस वर्ष की सजा हुई थी। अण्डमान जेल में उसे कोल्हू तथा अन्य काम दिये गये। वह भी उन बन्दियों में था जिन्हें बाहर भेज दिया गया था। इन्दुभूषण ने देखा कि बाहर भी जेल की तरह कठोर से कठोर काम दिया गया है। उसने देखा कि बाहर यदि कोई अपराधी बन्दी बीमार पड़ जाये तो उसे बाहर के ही आरामदायक अस्पताल में भेज दिया जाता है। परन्तु किसी राजनीतिक बन्दी के बीमार पड़ने पर उसे आराम व दवा की जगह दण्ड दिया जाता है। राजबन्दी को ज्वर हुआ या दस्त, उसे अपना बिस्तर सिर पर रखकर, थाली हाथ में लेकर चार-पांच मील पैदल चलकर सेल्युलर जेल का दरवाजा देखना पड़ता था। जेल में आते ही अस्पताल की जगह कोठरी में बन्द होना पड़ता था।

इन्दुभूषण बाहर के अपार कष्टों से ऊब चुका था। अन्त में तंग आकर निरुपाय होकर उसने जेल के अन्दर के कष्टों को ही स्वीकार कर लिया। उसने दंडा-बेड़ी-हथकड़ी पसन्द की परन्तु काम करने से साफ इन्कार कर दिया।

बारी उसके पास आया और पूछा-"तुम बाहर से लौट आये? तुम यही समझ बैठे थे कि बाहर काम करने से इन्कार करने पर, अन्दर आकर सुख-चैन से सो सकोगे?' बारी ने वार्डर को आदेश दिया-'जाओ, इसे कोल्हू में जोतो। उसे उसी समय ले जाकर कोल्हू में जोत दिया गया।

शाम को तैल ले जाते समय मौका मिलते ही मैं उससे मिला तथा धीरज बंधाते हुए कहा–"तुम्हें तो केवल दस वर्ष की सजा हुई है, मुझे तो आजीवन यहां रहना है। मेरी ओर देखकर कम से कम अपने मन को धीरज दो।" मैं केवल चार ही शब्द बोल पाया था कि वह बोला–"अपमानजनक स्थिति में जीवित रहने की अपेक्षा मृत्यु कहीं अधिक उत्तम है।"

मैंने फिर से उसे समझाया, "स्वदेश के लिए अपने हितों, सुख-सम्पत्ति व प्राणों तक का त्याग करना जिस प्रकार कर्त्तव्य है, वैसे ही मान-अपमान का त्याग करना भी तो एक कर्त्तव्य हो जाता है। तुम मेरी तरह ही २५ वर्ष के हो। तुम मुझ से बहुत पहले, ज्यादा से ज्यादा आठ-दस वर्ष में यहाँ से मुक्त होकर आगे जाओगे। धीरे-धीरे कष्ट सह कर भी जीवित रहो जिससे यहां से मुक्त होकर आगे देश की, मातृभूमि की सेवा कर सको।"

जल्दी-जल्दी में ये बातें हो पाई थीं। रोज शाम को पसीने से तर, खोपड़े (नारियल) के चूरे में सिर से पैरों तक सना, कन्धे पर भूसे का बोरा, पैरों में पड़ी बेड़ी और हाथ में तीस पौंड तैल की बाल्टी लिये झूमते हुए, नंगे शरीर जाते हुए इन्दु को मैं देखा करता। हम सब भी उसी की तरह कोल्हू का काम पूरा करके लौटा करते थे।

आखिर आत्महत्या कर ली

एक दिन सवेरे कोठरियां खुलीं और हम निकले ही थे कि वार्डर ने मेरे कान में कहा–'इन्दु कल फांसी लगाकर मर गया। मैंने यह बताया है, किसी को न कहना।'

ये दु:खद शब्द सुनते ही मैं हक्का-बक्का सा खड़ा रह गया। सायंकाल ही जिस तरुण को बोलते-बोलते कोठरी में बन्द होते देखा था, सवेरे उठकर देखता हूं तो अपने ही कपड़े की बनाई रस्सी से वह फांसी पर लटका हुआ है। गर्दन मुड़ी हुई, जीभ निकली, हुई, दोनों पैर ढीले नीचे लटकते हुए। ऊपर की खिड़की से नीचे लटकते देख–मैं अवाक् रह गया। मैं अचानक बोल उठा–'उस स्वाभिमानी तरुण ने अपमानास्पद जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मृत्यु को सुखकर माना।'

मृत्यु शय्या पर

उधर युद्ध समाप्त होने को था, इधर मेरा स्वास्थ्य बुरी तरह गिरने लगा था। मुझे निरन्तर सौ डिग्री बुखार रहने लगा था तथा पेचिश के कारण शरीर हड्डियों का ढांचा बन चुका था। अन्त में मेरी बिगड़ती

हालत को देखते हुए अधिकारियों ने मुझे जेल की कोठरी से निकाल कर हस्पताल में भर्ती कराया तथा मेरी अच्छी प्रकार से देखभाल शुरू की गई। बन्दी को हस्पताल में भर्ती कराते ही आराम होने लगता है, किन्तु मुझे तो आठ वर्षों में पहली बार, जब शरीर रोगों-व्याधियों का घर बन चुका था, तब जाकर हस्पताल भेजा गया था। इससे पहले मुझे कितनी भयानक बीमारी क्यों न हुई हो, किन्तु जेल की कोठरी से बाहर ही नहीं निकाला गया था।

हस्पताल में भर्ती किये जाते ही सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मेरी पूर्ण देखभाल का आदेश दिया। हस्पताल में मुझे समय-समय पर अच्छा भोजन दिया जाने लगा तथा मुझे क्या पच सकता है इसे देखकर भोजन में परिवर्तन भी किया जाता रहा। हिन्दुस्तान के समाचार-पत्रों तथा अन्य क्षेत्रों में जेल की दुर्व्यवस्था, राजनीतिक बन्दियों का उत्पीड़न किये जाने तथा मेरे निरन्तर गिरते स्वास्थ्य के बारे में काफी कुछ छप व प्रचारित हो चुका था। इसलिए ऊपर से आये कड़े आदेश के परिणाम स्वरूप मुझे कोठरी से निकाल कर हस्पताल पहुंचाया गया था। और कैसे भी मेरे स्वास्थ्य में सुधार हो, इस ओर पूर्ण ध्यान दिया जा रहा था। किन्तु यह अवस्था इतने विलम्ब से की गई थी कि मेरी तबियत सुधरने का नाम नहीं ले रही थी। ज्वर को उतरने के लिए 'कुनीन' की गोलियों पर गोलियाँ दी जाती किन्तु वह लाभ की जगह हानि करती और उसके कुप्रभाव से खूनी पेचिश होने लगती। पेचिश ने मेरी पाचन-शक्ति इतनी बिगाड़ कर रख दी थी कि चावल और दूध सीधे शौच मार्ग से निकलने लगा था। उसे पचाने की प्रक्रिया पूरी तरह नष्टप्रायः हो चुकी थी। अण्डमान में टी०बी०, मलेरिया तथा पेचिश रोगी पर एक साथ धावा बोलते थे। इन तीन-तीन घातक रोगों के सम्मिलित आक्रमण से शरीर की पूरी शक्ति क्षीण हो जाती थी।

टी० बी० की आशंका

मुझे मलेरिया तथा रक्तिम पेचिश तो थी ही, छह माह के दौरान डाक्टरों को शंका होने लगी कि कहीं मुझे टी०बी०(क्षय) न हो गई हो? जेल में पहले ही, अच्छे सुदृढ़ शरीर वाले अनेक बन्दी भी रोगों की इस त्रिमूर्ति-मलेरिया, पेचिश और क्षय के शिकार हो ही चुके थे। फिर मुझ जैसे कृशकाय, आठ वर्षों तक विषाक्त जलवायु, कठोर परिश्रम तथा उत्पीड़न के बीच रहने वाले व्यक्ति की तो क्या बसात हो सकती थी? आठ वर्षों के दौरान मैं पेचिश के कारण पाचन-शक्ति खोकर

अन्न से वंचित होता जा रहा था। अन्न के अभाव के कारण शरीर अशक्त होना स्वाभाविक था। मज्जातन्तु क्षीण होते गये। अब केवल एक अन्तिम शत्रु के आक्रमण या शरीर प्रवेश की आशंका बची थी, और वह था 'क्षय' (टी०बी०)। कारागार के हस्पताल में मनोरंजन या समय व्यतीत करने का एक ही मात्र साधन था 'अध्ययन' (पढ़ना)। अध्ययन ही मेरे जेल जीवन का आधार रहा था, किन्तु निरन्तर रहने वाले ज्वर के कारण मेरी पढ़ने की शक्ति भी क्षीण हो चुकी थी। थोड़ा-बहुत पढ़ने से भी तापमान बढ़ जाता था, आंखों के आगे अंधेरा छा जाता था। परिणामत: पढ़ना पूरी तरह छोड़ देना पड़ा। पास में पुस्तकें रखनी ही बन्द कर देनी पड़ी। बिछौने पर पड़े-पड़े समय काटना दूभर हो जाता था। पेचिश के कारण पेट में मरोड़ उठता तो उसकी वेदना असह्य हो जाती। शरीर में बढ़ते तापमान के कारण दर्द होने लगता।.....

हस्पताल से पुन: कोठरी में

जेल हस्पताल में एक वर्ष व्यतीत करने के बाद पुन: पांच नम्बर की बैरक की तीसरी मंजिल की कोठरी में बिल्कुल एकान्त में ले जाकर रख दिया गया। अब वहां मन के उद्वेग से तथा शरीर की क्षीणता से निरन्तर झगड़ना पड़ा। एक के बाद दूसरी बीमारी के पीछे पड़ते रहने से लगने लगता कि यह देह रूपी वस्त्र अब इतना जीर्ण-शीर्ण हो चुका है कि यह ठीक होना असम्भव है। महीने, दो महीने, छह महीने, वर्ष, डेढ़ वर्ष बीत गया—आज पेचिश, कल खूनी पेचिश, परसों तीव्र ज्वर, नरसों भीषण सर्दी, सब सहन करता रहा। अन्त में लगने लगा कि यह कारागार न मुझे जीवित रहने की स्थिति में आने देता है, न जीवन-मुक्ति को प्राप्त होने देता है। अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए अभी आगे और कार्य करने की लालसा से शरीर को धारण करना पड़ रहा था, परन्तु शरीर की गिरती हालत को देखते हुए अब जीवन-मुक्ति की आकांक्षा होने लगी। मैंने त्रास और बीमारी का लेखा-जोखा करने के लिए दीवार पर गिनती लिखनी शुरू कर दी। त्रास या बीमारी होते ही दीवार पर अंकित कर देता। यह क्रम दो महीने तक चलता रहा। अन्त में जोड़ लगाया तो पता चला कि १५ दिन कुछ चैन के थे तो ४५ दिन दु:ख के थे। अब सोचने लगा कि अभी जीवित रहने, शरीर को बचाये रखने की चतुर्थांश आशा है।.....

मैं एकान्त कोठरी में भले ही था, किन्तु अण्डमान द्वीप में संगठन, हिन्दी-प्रचार, शिक्षा तथा शुद्धि कार्य के साथ-साथ बन्दियों व नागरिकों

में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने का अभियान बढ़ ही रहा था। मुझे इस बात का आत्मिक सन्तोष था कि जागृति अभियान निर्बाध रूप से जारी है। राजनीतिक तथा साधारण बन्दी मेरे स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित रहते थे। अधिकारियों का कोपभाजन बनकर भी, हथकड़ी में खड़े रहने की सजा पाकर भी वे मुझ से मिलने तथा स्वास्थ्य की जानकारी लेने को तत्पर रहते थे। ऐसे बन्दियों के प्रति मैं सदैव कृतज्ञ ही रहूंगा।

मेरे गिरते हुए स्वास्थ्य को लेकर पूरे देश में जो चर्चा चली थी, उसी कारण से मुझे शुद्ध वायु तथा धूप आदि उपलब्ध कराने के उद्देश्य से तीसरी मंजिल में रखा गया था। अच्छा भोजन तथा उपयुक्त औषधियां भी दी जाने लगी थी। इस बदलाव के कारण मेरा स्वास्थ्य तेजी से सुधरने लगा। भोजन भी पचना शुरू हो गया, शरीर का वजन बढ़ने लगा। क्षय के चिह्न स्वतः नष्ट होने लगे। दो वर्षों में मैंने अपनी मृत्यु शय्या को लपेटकर एक कोने में रख दिया।

ज्येष्ठ बन्धु टी०बी० की चपेट में (गणेश सावरकर)

अपनी मृत्यु-शय्या को लपेटकर रखा ही था कि उसे ज्येष्ठ भ्राता (गणेश सावरकर) के लिए पुनः बिछाना पड़ गया। उनका स्वास्थ्य गिरते-गिरते दयनीय स्थिति को पहुंच चुका था। उनका शरीर अनेक बीमारियों का केन्द्र बन चुका था, फिर भी अधिकारियों को उनके स्वास्थ्य की कोई चिन्ता नहीं थी। उनकी चिकित्सा की उचित व्यवस्था नहीं की गई थी। एक दिन मुझे यह देखकर बहुत धक्का लगा कि वे काला कोट पहने और कम्बल ओढ़े पित्ताशय की असहनीय पीड़ा से कराहते हुए अस्पताल जा रहे हैं। उनकी कमर झुकी हुई है। अस्पताल पहुंचकर मद्रासी डाक्टर को दिखाया तो उसने अपने बूट फटकारे और आंखें निकाल कर कहा–'कहां है दर्द, यहां तो कुछ नहीं है, सब ठीक है। तुम झूठा बहाना करते हो।' इस अपमानजनक व्यवहार ने उस महान् राष्ट्रभक्त बन्धु के स्वाभिमान को ऐसा आघात पहुंचाया कि वह फिर से अस्पताल का मुंह न देखने का संकल्प करके, खांसते-खांसते, कराहते-कराहते अपनी कोठरी में वापस आ गये। वह करुणाजनक दृश्य आज भी मेरी आंखों के सामने आ जाता है तो मेरा हृदय चीत्कार कर उठता है।

हमने उस मद्रासी डाक्टर के घोर अमानवीय व्यवहार की शिकायत की तो उसकी जांच भी हुई। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने ज्येष्ठ बन्धु के थूक की जांच कराई तो उसमें क्षय (टी० बी०) के रोगाणु पाये गए। बाद में वरिष्ठ चिकित्सक से उनकी पूरी जांच कराई गई तथा क्षय ही पाया गया। पीठ

की रीढ़ को क्षय ने अपना शिकार बना डाला था। वे खांसते तो आस-पास की कोठरियों के बन्दी भी घबरा उठते थे। उनकी सांस रुक सी जाती थी और लगने लगता था कि जैसे प्राणपखेरू उड़ना चाह रहे हों। प्रतिदिन १०० से १०२ डिग्री ज्वर रहता था। पित्ताशय की बीमारी के कारण उनका खड़ा होना भी दूभर हो जाता था। खांसी, खूनी पेचिश, पित्ताशय का भीषण दर्द डेढ़ वर्ष से सहते-सहते भी वह कर्मवीर मृत्यु की चुनौती स्वीकार कर उसे पछाड़ता आ रहा था। उस डेढ़ वर्ष के दौरान न जाने कितने सौ राजनीतिक बन्दी मुक्त कर दिये गए, सैकड़ों कुख्यात अपराधियों को रिहा कर दिया गया, विश्व-युद्ध में विजय प्राप्ति के उपलक्ष्य में भी अनेक बन्दियों की सजा माफ कर दी गई। परन्तु दस वर्षों से इन अपार कष्टों, उत्पीड़न और भीषण बीमारियों का शिकार बन तिल-तिल कर अपने शरीर को क्षीण करने वाले कर्मवीर, राष्ट्रवीर बन्दी को आज तक मुक्ति नहीं मिली। कैसी विडम्बना है यह?

आख़िर अपराध क्या था?

अखिर ज्येष्ठ बन्धु (श्री गणेश सावरकर) ने ऐसा कौन-सा भंयकर अपराध किया था कि उन्हें इतनी भयंकर यातनाएं भोगने को मजबूर किया जा रहा था? केवल दस पृष्ठ का एक पत्रक (पैम्पलेट) प्रकाशित करने के 'अपराध' में उन्हें राजद्रोही करार देकर आजीवन कारावास का दण्ड देकर अण्डमान भेजा गया था। उनका दूसरा अपराध यह था कि वे मेरे ज्येष्ठ बन्धु थे। इन्हीं अपराधों के कारण उन्हें क्षय रोग से ग्रस्त होकर मृत्यु के द्वार तक पहुंच जाने पर भी कारागार से मुक्ति नहीं मिल पा रही थी।

इतना सहन करने पर भी वह कर्मयोगी अपने सिद्धान्तों पर अडिग था। घोर अमानवीय यातनाएं, उत्पीडन और रोगों का सामूहिक प्रहार भी उनको राष्ट्रभक्ति के पथ से विचलित नहीं कर पाये थे। मृत्यु के द्वार पर पहुंचने पर भी वे अपने सिद्धान्तों से तिल-भर भी नहीं भटके।"

('मेरा आजन्म कारवास' से)

बलिदानी वीर का अन्तिम प्रयाण

२६ जनवरी १९६६ के बाद वीर सावरकर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे क्षीण होने लगा। डाक्टर चिन्ता में पड़ गये। स्वातन्त्र्य-वीर दवा नहीं लेते, तो क्या करें? दूसरे किसी उपाय से यदि दवा पेट में जाये, तो अत्यन्त उत्तम होगा, यह सोचकर २९ से ३१ तारीख तक चाय में दवा

दी गई। इससे स्वातन्त्र्य वीर को सन्देह हो गया। एक दिन उन्होंने पूछ लिया कि क्या चाय का चूरा बदल दिया है? पर उत्तर नकारात्मक ही मिला। वस्तुत: पाचनशक्ति की क्षीणता को छोड़कर और कोई विकार उनमें नहीं था। सभी ज्ञानेन्द्रियां उत्तम थीं। अत: उनके मन में यह सन्देह पैदा हो गया कि डाक्टर उनसे कुछ छिपा रहे हैं। तर्कनिष्ठ और बुद्धिवादी मनुष्य को फंसाना बड़ा कठिन काम है। वही बात यहां भी हुई।

३ फरवरी से स्वातन्त्र्य-वीर ने चाय पीनी बन्द कर दी। केवल थोड़ा-सा पानी पीना, अखबार पढ़ना या सुनना, रोज की तरह दाढ़ी बनाना, शरीर पोंछवा लेना, आई डाक देखना, अपने सचिव को उत्तर देना लिखवाना, और थोड़ी बहुत चर्चा करना यह उनका दिनक्रम था। आने वालों की खोज खबर लेना वे कभी नहीं भूलते थे। उनकी बीमारी का समाचार रेडियो और अखबारों में आने से पत्रों और तारों की झड़ी सी लग गई, जो दिनों-दिन बढ़ती ही चली गई। इन सब का उत्तर देना भी कठिन होने लगा। दर्शकों की भी भीड़ इतनी होने लगी कि सावरकर सदन में जगह की कमी महसूस होने लगी।

शनिवार दिनांक २६ फरवरी १९६६ को सवेरे ८ बजे सावरकर जागे। मुंह धोया, पर चम्मच भर पानी भी नहीं पी सके। रात को बुखार आया था जो अभी तक उतरा नहीं था, सब चिन्तित हो गए। स्वातन्त्र्य वीर के जीवन में भव्यता रही, अत: उनके मरण में भी भव्यता स्वाभाविक ही थी, पर यम मानो उनके पास आने से डरता था। वे मृत्यु को निमन्त्रण देते थे; पर मृत्यु उनके पास आने से डरती थी। अन्त में मृत्यु हार गई और स्वातन्त्र्य वीर अमर हो गये।

डाक्टरों की भागदौड़ शुरू हो गई। १० बजे उन्हें प्राण-वायु दिया गया। कई इञ्जेक्शन भी दिये गए, पर स्वातन्त्र्य-वीर शान्ति से पड़े रहे। उनकी उंगलियां हिलती रहीं। चमत्कार यह कि उनके शरीर का कुछ भाग गरम और कुछ ठण्डा था। सभी के आंसू बह रहे थे, कुछ भरी आंखों से एक दूसरे को देख रहे थे। सौ० प्रभाताई (पुत्री) पायताने बैठ कर रो रही थी। माधवराव (दामाद) भी बराबर रो रहे थे। सावरकर के पुत्र विश्वासराव की मन: स्थिति का वर्णन असम्भव ही है। सभी दु:खी थे।

मां के चरणों में लीन हुए

अन्त में.....११ बजे के बाद पंछी उड़ गया, सब शरीर ठण्डा हो गया। डाक्टरों ने पत्रक तैयार किया। टेलिफोन टनटनाने लगे, आकाशवाणी,

पी०टी०आई० आदि समाचार संस्थाओं ने स्वातन्त्र्य वीर की मृत्यु का समाचार जगत् भर में फैला दिया।

देश के स्वातन्त्र्य एवं राष्ट्रोन्नति की सतत चिन्ता करने वाला एक महान् राष्ट्रभक्त भारत मां के चरणों में लीन हो गया। **(सम्पादक)**

मुजफ्फरपुर बमकाण्ड के दो शहीद

खुदीराम बोस और प्रफुल्लकुमार चाकी

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

(मिस्टर किंग्सफोर्ड एक कुख्यात अंग्रेज अधिकारी था। वह देशभक्तों और क्रान्तिकारियों को सख्त से सख्त सजा देने के लिए प्रसिद्ध था। **'वन्देमातरम्'** कहने वाले को भी वह कोड़ों से पिटवाता था। उसके अत्याचारों से तंग आकर क्रान्तिकारियों ने उसका सफाया करने का निश्चय किया। इसके लिए क्रान्तिकारी दल ने दो युवकों को तैनात किया। वे थे खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी। छोटी-सी उम्र के खुदीराम ने अपना कर्त्तव्य तो पूरा किया किन्तु दुर्भाग्य से मरने वाला किंग्सफोर्ड नहीं निकला। इसका उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ। वे पकड़े गये और खुशी-खुशी फांसी को स्वीकार किया। (**सम्पादक**)

दल ने मिस्टर किंग्सफोर्ड को सजा देने के लिए दो नवयुवकों को तैनात किया। एक का नाम खुदीराम तथा दूसरे का नाम था प्रफुल्लकुमार चाकी। इसी बीच में मिस्टर किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया था। यह निश्चित हुआ कि खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल जाकर मुजफ्फरपुर में ही मिस्टर किंग्सफोर्ड पर चढाई करें। ये दोनों एक तो कम उम्र के थे। खुदीराम की उम्र केवल सत्रह साल की थी। दूसरे ये मुजफ्फरपुर में नये थे, फिर भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी और वे एक धर्मशाला में टिक कर मिस्टर किंग्सफोर्ड का पता लगाने लगे। कुछ दिनों के अथक परिश्रम के बाद उनको पता लगा कि मिस्टर किंग्सफोर्ड घूमने निकलते हैं। उन्होंने यह निश्चय किया कि जब इसी प्रकार मिस्टर किंग्सफोर्ड घूमने निकलें तो उन पर बम डाला जाय और इसी प्रकार अपना ध्येय पूरा किया जाय। इन नौजवानों को नृशंस हत्यारा न समझो, क्योंकि जिस समय उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे मिस्टर किंग्सफोर्ड पर बम डालेंगे, उसी समय उन्होंने यह भी समझ लिया था कि उनकी नन्हीं सी गर्दन होगी और फांसी की रस्सियां होंगी। नौजवानी थी और अभी तो उनमें वह विकसित भी नहीं हो पाई थी। फूल अभी खिला नहीं था कली के अन्दर गन्ध कैद पड़ी हुई सो रही थी कि इन्होंने तय कर लिया कि बिन खिले मुरझा जाएगी। देश की बलिवेदी को इस बलि

की जरूरत लगी कि बस तैयार हो गए।

१९०८ की ३० अप्रैल की रात के आठ बजे थे। एक गाड़ी सरकती हुई चली आ रही थी, हाँ इस गाड़ी का रंग वही था जो मिस्टर किंग्सफोर्ड की गाड़ी का था। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने जो कहीं अंधेरे में क्लब के पास प्रतीक्षा कर रहे थे, बड़ी सतर्कता से इस गाड़ी की ओर देखा। वहां उन्होंने अपने बम को संभाल लिया और गाड़ी निशाने के अन्दर आते ही बम चला दिया। दुर्भाग्यवश उस गाड़ी में जिसे मारना चाहते थे वह नहीं था बल्कि दो अंग्रेज़ रमणियां थी। एक श्रीमती केनेडी, दूसरी कुमारी केनेडी, दोनों वहीं ढेर हो गई।

खुदीराम की गिरफ्तारी

बम फेंक कर खुदीराम भाग निकले। इधर पुलिस को खबर लगते ही सारा शहर घेर लिया गया और तलाशियों की धूम मच गई। खुदीराम रात भर भागकर मुजफ्फरपुर से पच्चीस मील की दूरी पर बेनी पहुंचे, यहां सबेरे के समय भूख से परेशान हालत में एक बनिये की दुकान पर लाई चने की तलाश पर गए थे। वहां उन्होंने लोगों को कहते सुना कि मुजफ्फरपुर में दो मेमें मारी गई है और मारने वाले भाग निकले हैं। इस बात को सुनकर कि मिस्टर किंग्सफोर्ड नहीं मारा गया है और उसकी जगह पर दो मेमें मारी गई, खुदीराम को इतना आश्चर्य तथा क्षोभ हुआ कि उनके मुंह से एक चीख निकल पड़ी। उनके बाल अस्त व्यस्त हो रहे थे, चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी। एक भयानक दुर्घटना की छाप उनके चेहरे पर थी। लोगों ने जो खुदीराम की चीख सुनी और खुदीराम के अस्त व्यस्त चेहरे की ओर देखा तो उन्हें एकाएक शक हो गया कि हो न हो हत्यारा वही है। बस लोग उन्हें पकड़ने को दौड़ पड़े। जनता को तो इस काम से कोई सहानुभूति नहीं थी। इसके साथ ही प्रलोभन बहुत से थे। गदर में एक-एक अंग्रेज़ को जिलाने पर कैसे एक-एक जिला इनाम में मिला था, यह सब लोगों को याद था। खुदीराम आसानी से आत्मसमर्पण करने वाले नहीं थे। उनके पास गोली से भरी पिस्तौल थी। किन्तु उनका नाहक उपयोग करना नहीं चाहते थे। वे दौड़े उनके पीछे-पीछे जनता दौड़ी यह कितना अजीब दृश्य था। जिस जनता का राज्य लाने के लिए खुदीराम ने यह महान् व्रत लिया था वह उस को पकड़कर साम्राज्यवाद के जल्लादों के हाथ सौंपने जा रही थी।

अन्त में खुदीराम पकड़ लिये गए। साम्राज्यवाद के अगणित किराए के गुण्डों से वह नन्हा बालक कब तक बचता? पुलिस के सिपाहियों

ने उसे पकड़कर मुजफ्फरपुर भेज दिया। अब इसके बाद का इतिहास वही है जो सब शहीदों का है। न्याय का पर्दा रचा गया। फांसी सुनाई गई, फिर एक दिन फांसी दे दी गई।

प्रफुल्लकुमार चाकी

खुदीराम तो बेनी पहुंचे, इधर उनके साथी प्रफुल्ल चाकी समस्तीपुर पहुंचे किन्तु साम्राज्यवाद का जाल ऐसा विस्तृत था कि वहां भी उन्हें दुर्भाग्य ने आ घेरा। जिस डिब्बे में प्रफुल्ल चाकी बैठे थे, उसमें एक दारोगा जी भी बैठे थे। वे मुजफ्फरपुर के हत्याकाण्ड के विषय में सुन चुके थे, उन्होंने प्रफुल्ल को देखा तो उनको सन्देह हुआ। दारोगा ने पहले मुजफ्फरपुर पुलिस को तार से इत्तला दी फिर हुलिया मालूम कर दो तीन स्टेशन बाद उसको गिरफ्तार करना चाहा। किन्तु प्रफुल्ल भी इसके लिए तैयार था। उसने अपनी पिस्तौल निकाली और घोड़ा दबाकर एक गोली उस व्यक्ति को मारी जो उसे पकड़ने आ रहा था, किन्तु वार खाली गया। जब ऐसी हालत हो गई तो प्रफुल्ल चाकी ने पिस्तौल की नली का रुख बदल दिया, और अपने को ही गोली मार दी। प्रफुल्लकुमार वहीं मुरझाकर गिर पड़ा, दारोगा जी हाथ मलते रह गए। दारोगा जी का नाम था नन्दलाल बनर्जी। नन्दलाल बनर्जी को बहुत सम्भव है सरकार से इस खून के लिए कुछ इनाम मिला हो, किन्तु क्रान्तिकारी दल की ओर से भी उन्हें कुछ मिला। कुछ दिन बाद नन्दलाल कलकत्ता की एक सड़क पर दिन-दहाड़े मार डाले गए। बंगाली क्रान्तिकारियों ने प्रफुल्ल चाकी का तर्पण इस प्रकार नन्दलाल के शोणित से किया।

सन् १९०८ का जमाना था **'वन्देमातरम्'** कहने पर कोड़ों की मार पड़ती थी। ऐसे युग में खुदीराम का यह बम एक गुमराह लक्ष्यभ्रष्ट बम ही सही, साम्राज्यवाद की आंखों में कितनी बड़ी धृष्टता थी। यों तो साम्राज्यवाद के तरकश में बहुत से तीर थे, किन्तु इस अपराध के लिए केवल एक ही सजा थी-मौत। जल्लाद के हाथ की मौत। देश में वकीलों की कमी नहीं थी। स्वयं कांग्रेस एक वकीलों का गुट थी, किन्तु खुदीराम के लिए कोई वकील नहीं मिला। केवल एक कालीदास बोस खुदीराम की ओर से पैरवी करने के लिए तैयार हुए, किन्तु खुदीराम को वकीलों की जरूरत क्या थी, उन्होंने तो स्वीकार कर लिया कि मैंने बम फेंका था। जज ने बोस को फांसी की सजा दी। ११ अगस्त १९०८ को खुदीराम को फांसी दे दी गई।

यह एक दिलचस्प बात है कि जिस जनता ने नासमझी वश खुदीराम

को पकड़ा दिया, उसी जनता ने खुदीराम की फांसी के बाद उन्हें एक शहीद की इज्जत दी। बात यह है इस बीच में जनता जान चुकी थी कि वह घुघंराले बालों वाला बड़ी-बड़ी आंखों वाला किशोर कौन है। खुदीराम की धुंधुआती चिता के चारों ओर एक विराट् जनसमुदाय था। लोगों के सिर पर उस समय अहिंसा का भूत नहीं था। लोग जी खेलकर अपने प्यारे शहीद का अभिनन्दन कर रहे थे। भारत स्वतन्त्र होने पर वहां एक स्मारक भी बनाया गया है। **यद्यपि बिहार के सभी नेताओं ने इस स्मारक की स्थापना में भाग लिया पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसमें भाग लेने से इन्कार किया।**

आखिर चिता भी जल चुकी, खुदीराम की देह उसमें भस्मी भूत हो चुकी किन्तु जनता को अपने प्यारे शहीद की स्मृति प्यारी थी, वह झपकी उसकी राख के लिए। किसी ने उसकी ताबीज बनवाई, किसी ने उसको सिर में मला, स्त्रियों ने उसे अपने स्तनों पर मला। एक स्वर्गीय दृश्य था और यही क्यों? हजारों आदमी एक साथ फूट-फूटकर रो रहे थे, कोई आंसू पोंछता था, कोई गम्भीर बन गया था। इस सार्वजनिक शोक को मैं एक दिव्य घटना समझता हूं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका कम महत्त्व नहीं है। यह बात सच है कि इन सर्वस्व त्यागी अलमस्तों ने जनता को साथ में नहीं लिया था किन्तु इनके महान् त्याग और फांसी को एक खेल समझने की मनोवृत्ति ने जनता को इनकी ओर खींच लिया। लोरियों में, कहानियों में, किम्वदन्तियों में इन लोहे की रीढ़ वालों का प्रवेश हो गया। सैकड़ों अखबारों के जरिए से एक दल वर्षों में जितना जनता में प्रविष्ट नहीं हो पाता था, ये अलमस्त एक फांसी से एक दिन के अन्दर उस से कहीं अधिक जनता के दिल में घर कर लेते थे। हिन्दुस्तान में सैकड़ों दल वर्षों से काम कर रहे हैं जिनमें से कुछ के प्रचार कार्य का ढंग बिल्कुल आधुनिक था। जहां देखो वे अपने आदमियों को सभा सोसायटियों में सभापति करके बुलाते हैं, बढ़ाते हैं। किन्तु फिर भी उनका नाम जनता तक उतना नहीं पहुंच सका जितना खुदीराम का पहुंचा।

लोकमान्य तिलक और खुदीराम

खुदीराम का अभिनन्दन केवल आम जनता ने ही नहीं किया बल्कि गांधी जी के पूर्व भारत के सर्व समझदार सार्वजनिक नेता लोकमान्य तिलक ने स्वयं इस काण्ड पर दो लेख लिखे। रौलट साहब ने लिखा है कि ये लेख 'केसरी' में मई और जून में प्रकाशित हुए थे तथा इनमें जनता विरोधी अफसरों को हटाने के लिए बम की प्रशंसा की गई थी।

अहिंसावादी कांग्रेसजनों को शायद यह सुनकर आश्चर्य हो कि लोकमान्य को इन्हीं लेखों के कारण छः साल की सजा मिली थी।

२२ जून को मराठी 'केसरी' में जो सम्पादकीय प्रकाशित हुआ था उसमें से कुछ अंश उद्धृत किया जाता है। वह यों था–

"१८९७ की धुंधली रात को मिस्टर रैण्ड की हत्या के बाद से मुजफ्फरपुर के इस धड़ाके तक प्रजा के हाथों से कोई ऐसा काम नहीं हुआ जो अफसर वर्ग के ध्यान को हमारी ओर अच्छी तरह खींचता। १८९७ की हत्याओं में और इस धड़ाके में बहुत प्रभेद है। साहस तथा अच्छी तरह अपने काम को अन्जाम देने की दृष्टि से देखा जाए तो चापेकर भाइयों के काम को बंगाल के बम पार्टी के लोगों के काम से श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। यदि उद्देश्य तथा उपाय (बम) को देखा जाय तो बंगाल वालों को श्रेष्ठतर मानना पड़ेगा। न तो चापेकर बन्धुओं ने और न बम फेंकने वाले बंगालियों ने ये काम अपने ऊपर किये गए अत्याचारों के बदलास्वरूप, वैयक्तिक झगड़े या मनमुटाव के फलस्वरूप किए। ये हत्याएं दूसरी हत्याओं से बिल्कुल दूसरी तरह की हैं क्योंकि इन हत्याओं के करने वालों ने अत्यन्त उच्च भावुकता के वशवर्ती होकर ऐसा किया था। यद्यपि कुछ हद तक इन दोनों क्षेत्रों में की गई हत्याओं का उद्देश्य एक था। किन्तु फिर भी मानना पड़ेगा कि बंगाली बम का उद्देश्य कुछ अधिक सूक्ष्म था। १८९७ में पूना निवासियों को ताऊन के बहाने खूब सताया गया था, इसी अत्याचार के बदले मिस्टर रैण्ड मारे गए थे इसलिए यही कहा जा सकता है कि हत्या बिल्कुल ही राजनैतिक थी। यह शासन पद्धति ही खराब है और जब तक कि एक-एक अफसर को चुन-चुनकर हटाया न जाए, तब तक पद्धति नहीं बदल सकती, इस किस्म के महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत दृष्टिकोण से चापेकर भाइयों ने किसी बात को नहीं देखा था। दृष्टिकोण मुख्यतः ताऊन के अत्याचारों तक सीमित था। मुजफ्फरपुर वालों की बात और है, बंगभंग के कारण ही उसकी दृष्टि में यह विस्तृति सम्भव हुई थी, इसके अतिरिक्त पिस्तौल या तमंचा एक पुरानी चीज है, किन्तु बम पाश्चात्य विज्ञान का आधुनिकतम आविष्कार है। फिर भी एकाध बमों से किसी सरकार की सामरिक शक्ति नहीं विनष्ट होगी। बम से कोई सेना नहीं खत्म हो जाती, न सामरिक शक्ति का कोई खास नुकसान ही होता है। बम से केवल इतना तो हो सकता है कि सरकार की दृष्टि उन अत्याचारों की ओर जाती है। जो इन बमों को जन्म देते हैं।"

ऊपर जो कुछ उद्धृत किया गया उस पर टीका करने की आवश्यकता

नहीं। आतंकवाद से जन-क्रान्ति नहीं हो सकती। यह तो इस लेख के लेखक भी मानते है, किन्तु बाद में फिलिस्तीन में होने वाले अरब आतंकवाद तथा उसके फलस्वरूप ब्रिटिश परराष्ट्र नीति के बदलते हुए रुख को देख कर कौन इतिहास का विद्यार्थी कह सकता है कि आतंकवाद बेकार जाता है? और उदाहरण भी हैं। अस्तु।

'काल' नामक एक मराठी अखबार ने मुजफ्फरपुर की हत्या के बारे में एक लेख लिखा। इस लेख में लिखा गया था कि "लोग अब स्वराज्य के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं और अब वे ब्रिटिश राज्य का गुणगान नहीं करते। अब उन पर से ब्रिटिश राज का दबदबा उठ गया; यह सारा दबदबा केवल पशुशक्ति की बदौलत है, यह सभी समझ गए हैं। भारतवर्ष तथा रूस में होने वाले बमों के प्रयोग में कुछ प्रभेद है, वह प्रभेद यह है कि भारतवर्ष में कोई सरकार के साथ सहानुभूति करेगा। यदि ऐसा होते हुए भी रूस को 'डूमा' याने धारासभा मिल गई, तो इसमें तो शक नहीं है कि भारतवर्ष को स्वराज्य ही मिल जाएगा। भारतवर्ष के बम फेंकने वालों को अराजकतावादी कहना बिल्कुल गलत है। यह प्रश्न तो छोड़ दिया जाए कि बम फेंकने वालों का उद्देश्य अराजकता फैंलाना नहीं, बल्कि स्वराज्य प्राप्त करना था।"

काल के सम्पादक को ८ जुलाई १९०८ को मुजफ्फरपुर के बारे में लिखे गए इस लेख के कारण सजा हुई थी।.....

('भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास' से)

❑❑

अलीपुर बम केस और उसके बलिदान

मुजफ्फरपुर में १७ वर्ष के किशोर खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी द्वारा बम प्रहार करने के बाद अंग्रेज सरकार बहुत अधिक सचेष्ट हो गयी। अनेक संदिग्ध स्थानों पर पुलिस ने छापे मारकर तलाशी ली। मई १९०८ में बंगाल के कई स्थानों की तलाशी १०-१२ दिन तक होती रही। इस अवधि में ३० दिन के लगभग युवक पकड़े गये। तलाशी में बम, बन्दूकें, राइफलें, डाइनामाइट, बिजली की बैटरी, बम बनाने का साहित्य आदि वस्तुएं मिलीं। श्री अरविन्द के भाई वारीन्द्र घोष इस काण्ड से सम्बन्धित क्रान्तिकारियों के नेता थे। सभी को गिरफ्तार कर अलीपुर (बंगाल) जेल में लाया गया। गिरफ्तार युवकों में से नरेन्द्र गोस्वामी सरकारी गवाह बन गया। जेल में बंद कन्हाईलाल और सत्येन्द्र वसु ने उसको जेल में ही गोली से उड़ा दिया। इन दोनों को फांसी की सजा हुई। वारीन्द्र और उल्लासकर को भी फांसी की सजा हुई थी। किन्तु उसे आजन्म कालापानी की सजा में बदल दिया गया। उपेन्द्रनाथ, हेमचन्द्र दास आदि बाकी सब लोगों को भी आजन्म कालापानी से लेकर कुछ वर्षों तक की सजाएं हुई। उल्लासकर को काला पानी की सजा हुई। अरविन्द घोष भी इसमें अभियुक्त थे किन्तु उनका अभियोग सिद्ध नहीं हो सका, अत: छोड़ दिये गये। इसके बाद वे आन्दोलन से दूर होकर पांडीचेरी में आश्रम बनाकर रहने लगे। इस सारे प्रकरण को **'अलीपुर षड्यन्त्र केस'** कहा जाता है। वस्तुत: यह क्रान्ति की एक भावी योजना थी।

सत्येन्द्र कुमार वसु - लम्बे कद के सुन्दर युवक सत्येन्द्र मेदिनीपुर (बंगाल) के रहने वाले थे। इनको अपने बड़े भाई की बन्दूक को बिना लाइसेंस के इस्तेमाल करने के कारण दो वर्ष का कारावास हुआ था। जब अलीपुर काण्ड के क्रान्तिकारियों की जांच हुई तो पता चला कि इन्होंने मेदिनीपुर में स्वदेशी आन्दोलन के लिए समिति बना रखी थी और ये उसके प्रधान संयोजक थे। क्रान्तिकारियों से इनके घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। इस कारण इनको मेदिनीपुर से अलीपुर जेल लाया गया था।

कन्हाईलाल दत्त—कन्हाईलाल दत्त के विषय में अभी तक जितनी जानकारी उपलब्ध है उसके अनुसार उसका जन्म बंगाल में १८८७ की कृष्ण जन्माष्टमी को हुआ था। इसीलिए उसका यह नाम रखा गया।

यह एक धनी-मानी परिवार का बालक था। धनी होकर वह उदार और परोपकारी था। दीन-दुखियों की सहायता करना उसका सहज स्वभाव था। वह गरीबों को भोजन खिलाता रहता था, निर्धनों को पुस्तकें खरीदकर दे देता था। किसी को कपड़े दे देता था तो किसी को नकद पैसे।

बी.ए. पास करने के बाद माता से यह कहकर घर से निकला कि नौकरी की तलाश करने जा रहा हूं। देशभक्ति की भावनाओं ने उसे देशसेवा में लगा दिया। चन्द्रनगर में क्रान्ति के लिए संगठन तैयार करके वह १९०७ में कलकत्ता आ गया। कुछ दिन मानिकतल्ला बाग में क्रान्तिकारी उपेन्द्र आदि के साथ रहकर वह चटगांव के एक कारखाने के प्रचार के लिए गया। वहां वह कुली बनकर जीवन बिताता था। किन्तु एक धनी घर का युवक कब तक कुली के वेश में छिप सकता था ? जब उसे अनुभव होने लगा कि तुझ पर नजरें रखी जा रही हैं तो वह चटगांव को छोड़कर फिर कलकत्ता आ गया। इस बार उसने एक बम फैक्ट्री में अपना निवास और केन्द्र बनाया। मई १९०८ में पुलिस के तलाशी अभियान के दौरान कन्हाईलाल भी पकड़ा गया और उसे भी अलीपुर जेल में लाया गया। अब अलीपुर जेल में क्रान्तिकारी प्रकृति के अनेक युवक इकट्ठे हो गये थे। नरेन्द्र हत्याकाण्ड में जब कन्हाईदत्त को फांसी की सजा सुनाई गयी तो फांसी के दिन तक इनका वजन १६ पाउण्ड बढ़ गया था।

उल्लासकरदत्त—बंगाली युवक उल्लासकर दत्त ने बम्बई के 'विक्टोरिया टैक्निकल इंस्टिटयूट' में इंजिनीयरिंग शिक्षा प्राप्त की। उसके बाद वे कलकत्ता लौट आये। यहां आकर उन्होंने बाबू विपिनचन्द्र पाल तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषण सुने तो उनमें देशभक्ति की भावना घर कर गयी। 'युगान्तर' जैसे देशभक्त समाचार पत्रों से उस भावना में दृढ़ता आयी। वे वारीन्द्र घोष के साथ मिलकर गुप्त समितियों में काम करने लगे और बम बनाने आदि का अभ्यास करने लगे। 'बंग भंग आन्दोलन' और 'स्वदेशी आन्दोलन' में आपने उत्साह से भाग लिया।

अलीपुर काण्ड में वारीन्द्र आदि के साथ आप भी पकड़े गये और आजीवन कालापानी की सजा हुई। वहां आपको जो मर्मान्तक यातनाएं दी गयीं उनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। १२ वर्ष बाद १९२० में आपको अंडमानद्वीप की जेल से छोड़ा गया। जेल से छूटकर आने के बाद आपने ''जेल की गाथ'' नामक आत्मकथा लिखी जिसमें कारावास की क्रूर कहानी है। उसी आत्मकथा से कुछ अंश आगे भी दिये गये हैं।

श्री अरविन्द घोष ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जेल के कर्मचारी बलिष्ठ और उत्साही नौजवानों से सदा भयभीत रहते थे कि कहीं कोई हिंसात्मक कार्य न कर बैठें। किन्तु जिन पर बिल्कुल ही शक न था, उन्होंने वीरता का काम कर दिखाया। वे थे–सत्येन्द्र और कन्हाई। दुबले–पतले, शुष्क काया वाले किन्तु बलिष्ठ आत्मा वाले इन क्रान्तिकारियों ने जेल में ही एक विश्वासघाती मुखबिर नरेन गोसाईं को मारकर सभी विश्वासघातियों को एक सबक सिखा दिया। (**सम्पादक**)

अलीपुर षड्यन्त्र का शहीद कन्हाईलाल दत्त

"३२ मुरारीपुकुर–रोड में एक बम का कारखाना था। जब वह पकड़ा गया, तो उसी के साथ बहुत से बम, डाइनामाइट तथा चिट्ठियां भी पकड़ी गईं। ३४ आदमी पकड़े गए, और इस षड्यन्त्र का नाम अलीपुर षड्यन्त्र पड़ गया। अभियुक्तों में से एक अर्थात् नरेन गोसाईं मुखबिर हो गया, किन्तु अदालत में उसका बयान होने के पहले ही दो क्रान्तिकारी नवयुवकों ने बड़ों से बिना सलाह किये ही, चोरी से जेल में पिस्तौलें मंगा लीं, और मुखबिर का काम तमाम कर दिया। इन दोनों नवयुवकों को अर्थात् श्री कन्हाईलाल तथा श्री सत्येन्द्र चाकी को फांसी की सजा हुई। अन्त तक अलीपुर षड्यन्त्र में १५ आदमियों को सम्राट् के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपराध में सजा हुई। इन सजायाफ्तों में वारीन्द्रकुमार घोष, उल्लासकर दत्त, हेमचन्द्रदास तथा उपेन्द्र बनर्जी थे। १० फरवरी, १९०८ को अलीपुर षड्यन्त्र का सरकारी वकील जान से मार डाला गया। २४ फरवरी सन् १९१० को अलीपुर–षड्यन्त्र के अपील की सुनवाई हाई कोर्ट में हो रही थी, उस समय डी०एस०पी० को जो सरकार की ओर से इस मुकदमे की देख–रेख कर रहा था, दिन–दहाड़े अदालत से निकलते समय गोली से मार दिया गया। इसी प्रकार की बहुत सी घटनाएं हुईं।.... उस जमाने में कन्हाई के कार्य से सारे बंगाल में एक सनसनी फैल गई थी, और खुशी की लहर दौड़ गई थी। अलीपुर षड्यन्त्र में नरेन गोसाईं नामक एक नौजवान मुखबिर हो गया। ३० जून, १९०८ को उसे माफी दे दी गई। साधारण कायदे के मुताबिक नरेन को अभियुक्तों से हटाकर अस्पताल में रखा गया, जहां राजनैतिक मुकदमा होने के कारण उसकी अच्छी देखरेख रखी जाती थी ताकि वह पलट न जाए या उस पर कोई हमला न करे। जब नरेन इस प्रकार मुखबिर बना तो अभियुक्तों में जो नौजवान थे उनको बहुत बुरा लगा, उन्होंने तय किया

कि इसकी किसी प्रकार हत्या की जाये, किन्तु मौका बड़ा कठिन था। एक तो किसी की हत्या जेल के बाहर ही करना मुश्किल है, फिर हत्या करने का इरादा रखने वाला स्वयं कैदी हो, और जिसकी हत्या करनी है उस पर पहरा रहता हो तो यह काम बहुत ही कठिन हो जाता है। सत्येन्द्र बसु तथा कन्हाईलाल ने आपस में सलाह कर ली, और तय कर लिया कि यह काम होना चाहिए। षड्यन्त्र के नेताओं से इस बात का इशारा किया गया, किन्तु उन्होंने इसमें बिल्कुल दिलचस्पी नहीं ली बल्कि ऐसी-ऐसी बातें कहीं जिससे यह बात असम्भव सिद्ध हो। अब वे दोनों अलमस्त साधनों की खोज में लगे, बाहर से अभियुक्तों के लिए कटहल, मछली वगैरह आती थी। कहा जाता है कटहल या मछली के अन्दर ही दो रिवाल्वर आए, असली बात तो यह है कि किसी को पता ही नहीं कि ये रिवाल्वर कैसे अन्दर गए। जो लोग जेल में बहुत दिनों तक रह चुके हैं वे जानते हैं कि रुपया खर्च करने के लिए तैयार होने पर जेल में कोई भी चीज वार्डर, यहां तक कि जेलरों के जरिए से जा सकती है, फिर क्रान्तिकारी इसके अतिरिक्त नैतिक दबाव भी तो रखते थे। सम्भव है कि कोई वार्डर इन रिवाल्वरों को अन्दर ले गया हो। बात यह है कि इस षड्यन्त्र में लिप्त दोनों व्यक्तियों को फांसी हो गई, उनकी जीभ हमेशा के लिए नीरव हो गई है, इसलिए ठीक-ठीक इसका पता इतिहास को कभी नहीं लगेगा।

जेल में धांय-धांय

जब साधन प्राप्त हो गया तो यह प्रश्न पैदा हुआ कि नरेन के पास कैसे जाया जाये, क्योंकि जेल में एक वार्ड से दूसरे में जाना तिब्बत या मध्य अमेरिका जाने से कम कठिन नहीं है। सत्येन्द्र ने खांसी की बीमारी बनाई, और हस्पताल पहुंच गए, उधर दो-एक दिन बाद कन्हाईलाल के पेट में सूक्ष्म दर्द उठा, और वह भी कराहते-बिलखते अस्पताल पहुंचे। अस्पताल पहुंचते ही पहले कन्हाई इतने जोर से कराहने लगे कि डाक्टर तथा जेलर समझे कि अब यह दो-चार ही दिन के मेहमान हैं, किन्तु उनका असली मतलब तो यह था कि सत्येन्द्र जान जाएं कि वह आ गए, और अब काम शुरू हो जाना चाहिए।

उधर सत्येन्द्र हस्पताल में आने के बाद से बराबर यह दिखला रहे थे कि वे जीवन से उकता गये हैं, और अपने साथियों सें नाराज हैं। उन्होंनें नरेन को एक खबर भेज दी कि हम भी मुखबिर बनना चाहते हैं। नरेन तथा जेल के अफसर सत्येन्द्र के अभिनय से इतने प्रभावित

हुये थे कि ३१ अगस्त को नरेन को एक जेल सार्जेंट की संरक्षता में सत्येंद्र से मिलने भेजा गया। बस गोली की मार के अंदर आते ही सत्येन्द्र ने गोली चला दी। गोली पैर में तो लगी किन्तु नरेन गिरा नहीं। अब कन्हाई भी कहीं आसपास ही थे, उनके पास भी भरा हुआ रिवाल्वर था। नरेन भाग कर अस्पताल से बाहर जा रहा है यह देख कर कन्हाई ने उसका पीछा किया। बीच में एक फाटक खोल दिया, यही नहीं उसने इशारे से बता दिया कि नरेन किधर गया। कन्हाई एक शेर की तरह झपट कर नरेन के पास पहुंचा, और सब गोलियां उस पर खाली कर दीं। इस प्रकार साम्राज्यवाद के ऐन गढ़ में साम्राज्यवाद का एक पिट्ठू देशद्रोही नरेन मारा गया।.....

इस खबर के पहुंचते ही सारे बंगाल में जो सनसनी फैली वह अवर्णनीय है। अंग्रेज़ी दैनिक बंगाली के दफ्तर में खुशी से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मिठाई बांटी। सारे बंगाल में यह घटना एक राष्ट्रीय विजय के रूप में ली गई।

साम्राज्यवाद का बदला

ब्रिटिश साम्राज्यवाद यह नहीं बर्दाश्त कर सकता था कि कोई व्यक्ति या संस्था आतंकवाद में उससे आगे बढ़ जाए। वह तो इस वस्तु का अधिकार अपने हाथ में रखना चाहता है, तदनुसार कन्हाई और सत्येन्द्र पर मुकदमा चला, और सन् १९०८ की १० नवम्बर को उन्हें फांसी दे दी गई।

शहीद का दर्शन

मोतीलाल राय ने कन्हाईलाल पर एक पुस्तक लिखी थी। मोती बाबू बंगाल के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी तथा लेखक थे। कन्हाई की फांसी के बाद इनको तथा कुछ अन्य लोंगों को जेल के अंदर से कन्हाई की लाश ले जाने की आज्ञा मिली थी । उस समय का जो मार्मिक वर्णन उन्होंने लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं–

पांच–छः आदमियों को भीतर जाने की अनुमति मिली। एक गोरे ने हमसे जानना चाहा कि कौन–कौन भीतर जाना चाहता है। आशु बाबू (कन्हाई के बड़े भाई), मैं और कन्हाई परिवार के तीन व्यक्ति थर–थर कांपते हुए उस गोरे के पीछे हो लिए। शोक और दुःख से हम सिहर रहे थे। लोहे के फाटकों को पार कर हम लोग जेल के भीतर दाखिल हुए, यान्त्रिक पुतले की भांति हम उस गोरे के पीछे–पीछे चल रहे थे। एकाएक

वह गोरा रुक गया, और उसने उंगली के इशारे से हमें एक कोठरी दिखा दी। सिर से पैर तक कम्बल से ढकी हुई एक लाश पड़ी थी। यही कन्हाई का शव था। हम लोगों ने शव उठाकर कोठरी के सामने आंगन में रख दिया। किन्तु किसी की भी हिम्मत न होती थी कि शव से कम्बल उतारे। आशु बाबू के चेहरे पर से मोती के समान बूंदें टपकने लगीं। एक-एक करके सभी रोने लगे। उसी समय गोरा बोल उठा—**"आप रोते क्यों है? जिस देश में ऐसे वीर पैदा होते हैं, वह देश धन्य है। मरेंगे तो सभी, किन्तु ऐसी मौत कितने मरते हैं?"**

"हमने विस्मित नेत्रों से आंख उठा कर उस कर्मचारी को देखा तो मालूम हुआ कि उसके चेहरे पर भी आंसुओं की झड़ी लगी है। उसने कहा मैं इस जेल का जेलर हूं। कन्हाई के साथ मेरी खूब बातें हुआ करती थीं। फांसी की सजा सुनाई जाने के बाद से उसकी खुशी का कोई पारावार नहीं था। कल शाम उसके चेहरे पर जो मोहिनी हँसी मैंने देखी वह कभी न भूलेगी। **मैंने कहा—'कन्हाई आज हँस रहे हो, किन्तु कल मृत्यु की कालिमा से तुम्हारे ये हंसते हुए होठ काले पड़ जाएंगे'।** दुर्भाग्य से कन्हाई को फांसी लगने के समय भी मैं वहां मौजूद था, कन्हाई की आंखों पर पट्टी बांध दी गई थी। वह शिकंजे में कसा जाने वाला ही था, ठीक उसी समय कन्हाई ने घूमकर मेरी ओर संकेत किया और कहा, **'क्यों मिस्टर, इस समय मैं कैसा लग रहा हूं?' ओह! यह वीरता, इस प्रकार की वीरता का होना रक्त-मांस के मानवों के लिए संभव नहीं।**

हमने चकित हो कर ये सब बातें सुनीं। इसके बाद डरते-डरते ओढाए हुए कम्बल को उठाकर उसे देखा, अर्थात् उस तपस्वी कन्हाईलाल के दिव्य स्वरूप के वर्णन की भाषा मेरे निकट नहीं है। चौड़ा माथा लम्बे-लम्बे बालों से ढका हुआ था, अधखुले नेत्रों से अमृत ढुलक रहा था, कसे हुए होठों से संकल्प की रेखा फूट पड़ती थी, विशाल भुजाओं की मुट्ठियां बधी हुई थीं, आश्चर्य है कि कन्हाई के किसी भी अंग में बीभत्सता के चिह्न नहीं थे केवल दोनों कन्धे फाँसी की रस्सी की रगड़ से दब गऐ थे, उनकी पवित्र मुखश्री पर कहीं विकृति न थी। कौन ऐसा अभागा है, जो इस मृत्यु पर ईर्ष्या न करेगा?

कन्हाई की लाश को बड़े समारोह के साथ जलाया गया, हजारों की तादाद में लोग इकट्ठे थे। हजारों रोने वाले थे, जब कन्हाई जलकर

खाक हो गया, तो उंसकी राख को लोगों ने गंडा-ताबीज बनाने के लिए लूट लिया। कन्हाई को एक शहीद का सम्मान दिया गया, यह बात ब्रिटिश साम्राज्य के लिए कितनी अखरने वाली थी कि जिसको हत्यारा कहकर फांसी पर चढ़ा दिया, उसे जनता ने शहीद करके पूजा.....।

कन्हाई पर उस युग का सार्वजनिक मत

कन्हाईलाल की फांसी पर जनमत किस प्रकार उत्तेजित हुआ था, यह १२ सितम्बर १९०८ के वन्दे मातरम् के एक लेख से ज्ञात होता है। उसमें लिखा था–

"कन्हाई ने नरेन को मार डाला। कोई भी अभागा भारतवासी जो अपने साथियों के हाथ चूम लेने के बाद उनके साथ विश्वासघात करता है, अब से अपने को प्रतिहिंसा लेने वाले से बेखतरा नहीं समझेगा।"

कन्हाईलाल दत्त को १० नवम्बर १९०८ को फांसी दी गई थी। आपकी मृत-देह को पाकर बंगालियों ही ने नहीं, प्रत्युत समस्त भारतवासियों ने जो कलकत्ता में उपस्थित थे, महान् उत्सव मनाया। यह देखकर सरकार ने सत्येन्द्र की लाश जनता को नहीं दी। फांसी के समय के दृश्य को तत्कालीन दर्शक श्रीयुत कृष्णकुमार मित्र ने इस प्रकार बताया है–

"मैं उसकी फांसी के दिन स्वयं जेल में उपस्थित था। यद्यपि नितान्त हृदयहीन फांसी के दृश्य को मैं स्वयं न देख सका, किन्तु मेरे साथियों ने जिन्होंने उस दृश्य को देखा था, तथा जेल के अधिकारियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।" श्रीयुत अविनाशचन्द्र राय, जो सत्येन्द्र के पड़ोसी हैं और जिन्होंने उनके दाह संस्कार का भार लिया था, अपने एक मित्र को पत्र लिखते हुए लिखते हैं –

"मुझे सन् तारीख याद नहीं है। सत्येन्द्र की मां ने मेरे घर आकर कहा-सत्येन्द्र का बड़ा भाई ज्ञान बीमार है, उसके अन्तिम संस्कार के लिए किसे भेजूं। अब आप ही इस भार को स्वीकार करें। वृद्धा का आदेश मैं टाल नहीं सका। मैं प्रेमतोष बाबू से मिला। उसके प्रयत्न से दाह संस्कार के लिये बहुत आदमी तैयार हो गये। सत्येन्द्र का चचेरा भाई भी साहस करके हम लोगों के साथ हो लिया। मजिस्ट्रेट ने हमारे सामने यह शर्तें पेश की (१) जेल के बाहर दाह क्रिया न हो। (२) कोई आडम्बर और उत्सव न मनाया जाय। (३) कोई स्मृति चिह्न नहीं ले जा सकते। (४) जेल कर्मचारियों की उपस्थिति में दाह-कर्म होगा। (५) केवल १४-१५ आदमी इसमें भाग ले सकेंगे। इस प्रकार की शर्तें

पेश करने का कारण कन्हाई की लाश का उत्सव था।

"फांसी के दिन प्रातः काल ही हम लोग अलीपुर जेल के फाटक पर उपस्थित हुए। फांसी के निर्दय दृश्य को देखने की क्षमता हम लोगों में न थी। फांसी हो चुकने पर एक अंग्रेज़ पुलिस -सुपरिण्टेण्डेण्ट आया और हम लोगों से कहा–You can go now. The thing is over. Satyendra died bravely. Kanhai was brave, but is seems Satyendra was braver.

अर्थात्–"अब आप लोग जा सकते है। फांसी हो चुकी है। **सत्येन्द्र वीरतापूर्वक मरा। कन्हाईलाल बहादुर था, लेकिन मुझे मालूम होता है, सत्येन्द्र उससे भी बहादुर था।**"

पूछताछ करने पर एक सार्जेंट ने कहा–"When I went to his cell to get him to the gallows, he was wide awake. When I said "Satyendra be ready." He answered, well I am guite ready and smiled. He walked steadily to the gallows. He mounted it bravely and bore it all cheerfully. A brave lad."

अर्थात्–"जब मैं सत्येन्द्र की काल-कोठरी में फांसी पर चढ़ने के लिये उन्हें लेने गया था तो मैंने देखा वह प्रसन्नचित्त है। मैंने कहा–'सत्येन्द्र तैयार हो जाओ।' उसने उत्तर दिया–"तैयार हूं और मुस्कुरा दिया। **फांसी के तख्ते पर मस्ती के साथ झूमता हुआ गया और वीरतापूर्वक फांसी पर चढ़ गया। वह एक बहादुर युवक था।**"

"मृत्यु के पूर्व मैं अपनी पत्नी के साथ दो बार उनसे मिला था। दोनों बार वे प्रसन्नता से हम लोगों के साथ स्वदेशी-आन्दोलन की चर्चा करते रहे। उनकी कुछ बातें आज भी याद हैं। उन्होंने कहा था–मेरे और कन्हाई के मरने से क्या हानि है? हमारे जैसे हजारों के मरने पर ही देश का उद्धार होगा। हमारी मृत्यु शोक मनाने लायक नहीं, बल्कि हर्ष मनाने लायक होगी।

"एक बार मैंने कहा–'तुम्हारी मां तुमसे मिलना चाहती है।' उसने कहा–**'यदि वे यहां आ कर रोवें नहीं, तभी मैं उनसे मिल सकता हूं अन्यथा नहीं।' वही हुआ। वीर माता ने पुत्र को बलि-वेदी की ओर अग्रसर किया। रोते हुए नहीं, बल्कि हंसते हुए। धन्य हो ऐसी माता और ऐसे पुत्र को।** मृत्यु के पश्चात् बंगाल के अनेक युवक और युवतियां इन दोनों की मूर्ति बनाकर पूजते रहे।

"जेल में उन्हें जिस अवस्था में रखा गया था, उसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा था। उन्हें काल-कोठरी में रक्खा गया था। कोठरी पले हुए बाघ के पिंजड़े के सदृश थी। एक तरफ सींखचे थे, दूसरी तरफ दीवार। ४ हाथ लम्बी और इतनी ही चौड़ी जेल में सोना-बैठना, खाना-पीना, पाखाना-पेशाब सब काम करना पड़ता था।"

"कड़े पहरे के बीच हम लोग उनसे मिलते थे। पुलिस के अतिरिक्त जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० इमर्सन भी सामने रहते थे। दाह के समय आप प्रारम्भ से लेकर अन्त तक उपस्थित रहे और इस महान् वीर की वीरगति को देखते रहे। हम लोग कोई स्मृति-चिह्न अपने साथ नहीं ला सके।"

(क्रांतिक्रारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित, 'चांद' नव० १९२८ अंक से)

कालेपानी की यातनाओं से पागलपन का शिकार

क्रान्तिकारी उल्लासकर दत्त

(क्रान्तिकारी वीर विनायक सावरकर द्वारा लिखित)

उल्लासकर दत्त बंगाली युवक था। अण्डमान पंहुचने पर उसने कठोरतम काम करने से इन्कार कर दिया था। उस पर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने उसके सम्बन्ध में निर्णय देते हुए कहा–'उल्लासकर दत्त एक बहुत ही सज्जन तरुण है, किन्तु वह दृढ़ आदर्शवादी है।'

उल्लासकर दत्त ने अण्डमान की आपबीती इस प्रकार लिखी है–

"मुझे उस कोल्हू में जोता गया जो भारत में तैल निकालने के काम में लाया जाता है। कोल्हू बैल चलाते हैं तथा वे दिनभर घानी के चक्कर काटते रहकर भी सरसों का मुश्किल से १५ पौंड तैल निकाल पाते हैं। परन्तु अण्डमान में बैलों की जगह तीन बन्दियों को कोल्हू में जोता जाता है तथा दिन भर में ८० पौंड तक तैल उनसे निकलवाया जाता है। घानी में तीन आदमी जोते जाते हैं। भोजन के समय के कुछ मिनट छोड़कर बाकी तमाम समय आदमी कोल्हू का हत्था पकड़कर या उसे कुछ कन्धे पर रखकर, बैल की तरह धीरे-धीरे चक्कर नहीं लगाते। अपितु उन्हें दौड़ते रहना पड़ता है। अन्यथा तैल पूरा न होने के परिणाम स्वरूप मिलने वाली सख्त सजा का भय बना रहता है। यदि चलने में कोई ढीला पड़ा कि उसे पेटी अधिकारी का सोटा खाना पड़ता। यदि इस मार से भी सचेत न होता तो उसे कोल्हू के डण्डे से हाथ पैरों से बांध दिया जाता था और जोर से भी दौड़ने के लिए विवश किया जाता अर्थात् बांधा गया आदमी जमीन पर घसीटकर खींचा जाता था। इससे उसका

सारा शरीर लहूलुहान हो उठता था। मुंह से भी खून आने लगता था।"

"दिन-भर कोल्हू घुमाकर शाम के समय थककर चूर होने के बाद जब मैं कोठरी में जाया करता तो लगने लगता कि सुबह जीवित उठूंगा कि नहीं? सुबह फिर कोल्हू में जोत दिया जाता।"

बाहर भी घोर यातनाएँ

"वर्षों बाद एक दिन मुझे भी, कारागार से बाहर भेजे जाने की अनुमति आ गई। परन्तु लगा कि मुझे चूल्हे से निकालकर कड़ाही में डाल दिया गया है। बाहर मुझे ईटों का अत्यन्त कठोर काम दे दिया गया। मुझे सवेरे से दोपहर तक कच्ची ईटें लेकर इधर उधर दौड़ते रहना पड़ता था। इस कठोर काम के लिये अतिरिक्त भोजन के रूप में दूध दिया जाता था। परन्तु इस दूध को पेटी अफसर हड़प जाते थे। मुझे भी दूध दिया गया तो मैं मिलते ही पी गया। पेटी अफसर मेरा मुंह ताकता रह गया। उसने मेरी धृष्टता से चिढ़कर, मुझे ऐसे काम पर भेज दिया जहाँ दूध नहीं मिलता था। यह कष्टकारक काम था एक अफसर के घर पानी भरने का। उसका घर ऊंची पहाड़ी पर था। और मुझे पहाड़ी की चढ़ाई का अभ्यास न था और प्रतिक्षण यही डर बना रहता कि कहीं पांव फिसल जाने से नीचे गिरकर न मर जाऊं? जब कुछ ही दिनों में यह कष्टकारक काम करना असह्य हो गया तो इस काम को करने से साफ इन्कार करने को विवश होना पड़ा।

काम नहीं करूँगा

"मुकदमा चला—न्यायाधीश ने समझाया, थोड़े दिन अस्पताल में आराम करो'—परन्तु मैंने भविष्य में काम न करने का दृढ़ निर्णय ले लिया था। मुझे तीन माह की सख्त सजा देकर कारागार में बन्द कर दिया गया। बारी मुझे देखकर बोला—'सुन, यह बाहर का मैदान नहीं है, कारागार है। अनुशासन तोड़ा या काम न किया तो बेंत से खाल उधेड़ दूंगा। बेंत भी ऐसी कि शरीर पर पड़ते ही मांस में एक-एक इञ्च तक गड़ जायेगी। एक नहीं, तीस बेंत मारूंगा।"

मैंने दृढ़ता से उत्तर दिया, 'चाहे मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दो, परन्तु मैं काम नहीं करूंगा, क्योंकि तुम्हारा काम करना घोर अन्याय को सहन करना है।'

"जेलर बारी चिढ़ गया और उसने मुझे उसी क्षण आठ दिनों तक की हथकड़ी की सजा दे दी और साथ ही दीवार पर टांग देने का आदेश।

दीवार पर टांग देने के आदेश सुनते ही मैं विस्मित हो उठा।"

"अचानक बारी ने कहा–'तुमने मेरा अपमान किया है, मुझे चुनौती दी है–मैं तुमसे दो-दो हाथ करने को द्वन्द्व युद्ध करने को तत्पर हूं। तुम्हारी ओर से जो मुझ से लड़े उसे बुलाओ। मेरी दृष्टि में तुम्हारी ओर से सावरकर रहेगा।' उसने सावरकर जी को बुलवा लिया। मैंने देखा कि सावरकर जी पहले की अपेक्षा जरा कृशकाय (पतले-दुबले) हो गये थे। बारी ने उनसे पूछा–'क्या उल्लास की ओर से वे लड़ने को तैयार हैं?' सावरकर जी ने तुरन्त हां कर दी। बारी ने एक हथमोजा और एक शस्त्र सावरकर जी को दे दिया। दोनों का युद्ध शुरू हो गया। मैं उत्सुकता से देखते समय अपने प्रतिनिधि की विजय की कामना कर रहा था। सावरकर जी विजयी हो गये। उन्होंने शस्त्र व हथमोजा बारी के मुख पर दे मारा। बारी का मुख उतर गया था। जबकि मैं आनन्दित था।

"बारी अन्दर-ही-अन्दर कुपित था। मुझे दीवार के सहारे खड़ा कर दीवार पर लटक रही हथकड़ी में मेरे हाथ अटका दिये। उसे ताला लगा दिया गया। मैंने अनुभव किया कि मुझे ज्वर चढ़ रहा है। मैं दीवार से सटकर खड़ा था। सामने से सूर्य की किरणें मुझे तप्त कर रही थी। मुझे ज्वर चढ़ता गया।

"डाक्टर आया। ज्वर १०७ डिग्री था। मैं सर्दी से कांप रहा था। तेज ज्वर के बावजूद मैं झूल रहा था। डाक्टर के कहने पर हथकड़ी से उतारा गया तो मैं बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा।"

अत्याचारों से उल्लासकर पागल हो गया

उल्लासकर दत्त के उपर्युक्त वर्णन से अण्डमान की असहनीय यातनाओं का एक छोटा-सा चित्र स्पष्ट हो जाता है। इस कोठरी के दरवाजे के पास पहुंचे ही थे कि कर्कश, करुण चीखें तथा उठा-पटक की आवाजें सुनाई दी। हमें लगा कि जैसे कुछ लोग उस पर पिल पड़े हों तथा भीषण ज्वर में भी उसे 'ठीक' करने के लिए पिटाई की जा रही हो। चीख-चिल्लाहट काफी समय तक सुनाई देती रही। करुणा से भरी चीखें बन्दियों के हृदय को भी द्रवित कर रही थी। इतने में किसी वार्डर ने आकर बताया कि उल्लासकर पागल न होता तो क्या होता? वह रात्रिभर कर्कश स्वर में चीखता रहा। असह्य वेदनाओं को सहन करता हुआ भी विभिन्न पक्षियों व जानवरों की बोलियां निकालता रहा। उसे उन्माद के कारण नींद आये न आये, मगर हमें तो नींद नहीं आ रही थी।

ऐसा विनोदी-हंसमुख उल्लासकर, जो फांसी की सजा सुनते भी व्यंग्य कर उठा था—जोर से हंस पड़ा था। वह अखिर पागल क्यों हुआ? इतने घोर असहनीय कष्ट दिये गये थे उसे कि शरीर सहन न कर सका। फिर उसके ज्ञान-तन्तु उन्हें कैसे सहन कर सकते थे?

उल्लासकर की करुण चीत्कार

प्रात: उठकर देखा तो अस्पताल से पुन: कर्कश क्रन्दन सुनाई दे रहा है। 'अ-मा-अ-मा' (ओ मां ओ मां)। वह बंगला भाषा में पुकार रहा था। उसकी पुकार अन्त:करण चीरकर मर्म पर प्रहार करती रही। अन्त में पता चला कि अधिकारियों द्वारा इस बात की जांच करने के लिए उसे बिजली के झटके दिये जा रहे हैं।

उल्लासकर दत्त के शब्दों में—"इस अर्ध बेहोशी तथा यातनाओं में भी मुझे याद है कि सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझे विद्युत् के झटके दिये। मैं उन्हें सहन नहीं कर सका। धक्कों तथा झटकों का आघात इतनी जोर से होता कि बिजली मेरे तमाम शरीर में संचार करने लगी। उसका प्रवाह मेरे शरीर की स्नायुओं, रगों, नाड़ियों तथा तन्तुओं को भी तड़ातड़ तोड़ने लगा, मानो अत्यन्त क्रूरता से मुझे खींचे ले जा रहा है। मैंने समझा कि शरीर में भूत प्रवेश कर गया है। यातनाओं के आवेग में मैं कर्कश स्वर में चिल्लाने लगा। अन्त में बेसुध होकर गिर पड़ा। होश आने पर मुझे पता चला कि मैं तीन दिन तक बेहोश रहा।"

असहनीय यातनाओं ने उल्लासकर को पागल ही बना दिया था। पागलपन में उसे अपने परिवार जनों की व्याकुल पुकारें सुनाई देने लगीं। एक दिन उसने अपने जीवन का अन्त करने का निर्णय कर लिया। अपने कपड़े फाड़कर रस्सी बनाई। कोठरी के पिछवाड़े की खिड़की में उसने अपने को फांसी पर लटकाना चाहा कि अचानक पहरेदार ने उसे देख लिया और पकड़ लिया। मृत्यु के मुख से वह बाल-बाल बचा था।

पागलख़ाने में भर्ती

पहले क्रूर व निष्ठुर अधिकारी के छुट्टी पर चले जाने पर दूसरा अधिकारी आ चुका था। वह उदार स्वभाव का व्यक्ति था। उसने उल्लासकर को धीरज दिया—'मैं अंग्रेज हूं, सरकारी नौकर हूं। अपने-अपने हित-अहित अलग-अलग होते हैं—यह मैं जानता हूं। मैं यह नहीं कह सकता कि तुम क्रान्तिकारियों ने जो कुछ किया वह सब ठीक था। फिर भी मैं यह मानता हूं कि तुम लोगों ने अपने देश के लिए अपना कर्तव्य

मानकर जो किया उसमें स्वार्थ नहीं था। तुम तरुण हो, एक दिन यहां से मुक्त होकर घर लौट जाओगे। फांसी या आत्महत्या जैसा निन्दनीय व कायर कर्म क्यों करते हो?'

उस अंग्रेज़ अधिकारी ने उल्लास को समझा-बुझाकर मानसिक चिकित्सालय में दाखिल करा दिया। दस वर्ष तक उल्लासकर 'पागल' की दयनीय स्थिति में रहा। अण्डमान के बाद उसे मद्रास के पागलों के अस्पताल में रखा गया तथा वहीं से मुक्त किया गया।

उल्लासकर दत्त-प्रकरण के दिनों में बारी एक दिन मेरे पास आया और मुझे देखते ही बोला—'तुम कब पागल बनोगे?' मैंने क्रोध में आकर उसे उत्तर दिया—'शायद, तुम्हारे पागल होने के बाद।'

जब बारी ने उल्लास के पागलपन को नाटक कहा तो मैंने जवाब दिया—'इन्दुभूषण की आत्महत्या को भी तुमने पागलपन के कारण की गई आत्महत्या बताया था। उल्लास के यातनाओं के कारण पागल बन जाने को भी तुम लोग ढोंग सिद्ध करने पर तुले हुए हो। तुम्हारे ये थोथे तर्क हैं कि बन्दी काम से बचने के लिए पागल बनने का ढोंग करते हैं।' मैंने आवेग में कहा—'यदि वह पागल नहीं बना है तो तुम जरूर पागल बने हो।' बारी मेरा मुंह ताकता रह गया।..... ('मेरा आजन्म कारावास' से)

एक अध्यापक, लेखक और कालेपानी की सजा प्राप्त क्रान्तिकारी

उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय

अलीपुर काण्ड में आजीवन कालापानी की सजा प्राप्त श्री उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय बंगाल के चन्दननगर (या चन्दरनगर), जहां फ्रांस का राज्य था, के रहने वाले थे। उनके पिता का नाम श्री रामनाथ बनर्जी था। उनका जन्म ६ जून १८७९ को हुआ। आपने कलकत्ता के मैडिकल कॉलेज में डाक्टरी की शिक्षा प्राप्त की, साथ ही बाइबल में भी दक्षता प्राप्त की। बंगला भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी और फ्रेंच में आपकी विशेष योग्यता थी।

स्वामी विवेकानन्द से प्रभावित होकर आप उनके हिमालय स्थित मायावती आश्रम में साधु की तरह रहने लगे। फिर आपके पिता व भाई आपको वहां से ले आये। आप अध्यात्मवाद से हटकर कर्मवाद की ओर झुके। १९०५ में अध्यापन कार्य करने लगे और छात्रों में क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करने लगे। फिर अध्यापन छोड़कर अरविन्द घोष के 'वन्देमातरम्' पत्र में लिखने लगे। इसके बाद 'युगान्तर' के सम्पादक

बन गये। १९०८ में आप वारीन्द्रकुमार के साथ कलकत्ता के मानिकतल्ला बाग में पकड़े गये। आपने जज के सामने स्पष्ट कहा कि "हमारा लक्ष्य अंग्रेज सरकार के उच्च अधिकारियों, किंग्सफोर्ड जैसे लोगों को मारने का था।"

उपेन्द्र को आजीवन कालापानी की सजा हुई। १२ वर्ष तक अंडमान जेल में रहने के बाद फरवरी १९२० में आपको छोड़ा गया। वहां से आकर आपने 'नारायण', 'बिजली', 'आनन्द बाजार पत्रिका' में कार्य किया। फिर 'आत्मशक्ति' और 'सन्ध्या' नाम पत्र निकाले। 'भवानी मन्दिर' नाम की आपकी पुस्तक में आपने देश के लोगों से अविवाहित रहकर सैनिक शिक्षा प्राप्त कर देश को स्वतन्त्र कराने का आह्वान किया था। एक बम बनाने की पुस्तक भी लिखी जिसे क्रान्तिकारी साथ रखते थे।

आपका विवाह बहुत पहले १८९७ में ही हो गया था। १९०६ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम नृपेन्द्र था। दूसरा पुत्र जेल से छूटने के बाद हुआ। आपके जेल जाने के बाद आपकी पत्नी सन्यासिनी की तरह रहती थीं। ऐसी पतिव्रता थी आपकी पत्नी ।

अलीपुर काण्ड में पकड़े जाने पर वारीन्द्र के अतिरिक्त अन्य लोगों ने जो बयान दिए उनसे भी साफ हो जाता है कि उस जमाने के क्रान्तिकारी क्या चाहते थे? उपेन्द्रनाथ कथित षड्यन्त्रकारियों में एक प्रमुख व्यक्ति थे। बंगला भाषा के लेखकों में उन्हें एक प्रमुख स्थान प्राप्त है। उन्होंने अदालत में जो बयान दिया उसे और उसकी कालेपानी की यातनाओं को उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है। **(सम्पादक)**

उपेन्द्रनाथ का अदालत में बयान

"मैंने सोचा कि हिन्दुस्तान में कुछ आदमी तब तक कुछ काम नहीं करेंगे जब तक कि उनसे धार्मिक रूप से काम न कराया जाये। इसलिए मैंने चाहा कि अपने काम में साधुओं से मदद लूं। जब साधुओं की मदद न मिली तो मैंने छात्रों पर ध्यान दिया और उनको धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक शिक्षा देने लगा। तब से मैं बराबर लड़कों में देश की दशा तथा आजादी की जरूरत पर प्रचार करता रहा और यह बताता रहा कि इसको हासिल करने का एकमात्र उपाय लड़ना है। वह इस प्रकार होगा कि अभी तो गुप्त समितियां स्थापित कर हम भावनाओं का प्रचार करें तथा अस्त्र-शस्त्र संग्रह करें। मैं यह जानता था कि वारीन्द्र, उल्लासकर और हेम बम बना रहे हैं। ऐसा करने में उसका उद्देश्य उन

सरकारी अफसरों को उदाहरणार्थ किंग्सफोर्ड को मारना था, जो दमन द्वारा हमारे काम में रोड़े अटकाते रहते थे।"

आत्मकथा

कालेपानी की जेल में पहुंचते, न पहुंचते हम में से जो ब्राह्मण थे, उनके जनेऊ निकाल लिये गये। हिन्दुस्तान की जेलों में इस किस्म का कोई कायदा नहीं, पर कालेपानी की जेल में यही कायदा है। जेल तो जगन्नाथ का क्षेत्र है। जाति भेद और धर्म तो मर कर कभी का भूत बन गया होगा। पर मुसलमान और सिख की चोटी पर हाथ साफ नहीं किया जाता, बिचारे ब्राह्मणों के जनेऊ से ही दुश्मनी है। इसके अलावा इसका और कोई सबब नहीं हो सकता कि मुसलमान और सिख गंवार है और ब्राह्मण पढ़े-लिखे या सीधे सादे! खैर जो कुछ भी हो, अपने जनेऊ उतरवाकर हम भी कैदियों के साथ कैदी बन गये। मजा तो यह कि किसी ब्राह्मण को जनेऊ उतारने से नाँहीं करते नहीं देखा। इस दुनियां में जो गिरकर मार खाय उसे मारने के लिए सभी हाथ ऊंचे उठाते हैं। बहुत दिनों के बाद एक पंजाबी ब्राह्मण रामरक्षा को जनेऊ उतारने में झगड़ते देखा। उसने जेलर से कहा कि अगर जनेऊ न होगा तो वह खाना न खायेगा। वह स्याम, चीन, बर्मा और जापान सब जगह घूमा था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता था कि वह शुद्ध सनातन धर्मी था, लेकिन सच्चाई और अपने हक के लिए उसने जेल के उस कायदे की मुखालफत की। कमजोर की बात को कौन सुनता है, उसका जनेऊ निकाल लिया गया, उसने भी खाना-पीना छोड़ दिया। चार दिन वह बिल्कुल भूखा रहा। पांचवें दिन से नाक में रबर की नली डाल कर पेट में दूध उतारा जाने लगा। उस वक्त हड़ताल की लहर बह रही थी, इसलिए रामरक्षा जेलवालों से इतना लड़ा था। बर्मा से काले पानी आते हुए रास्ते में तरह-तरह की तकलीफों से उसकी तन्दुरुस्ती पहले से बिगड़ गई थी। अब की वार क्षय रोग दिखाई दिया। थोड़े दिन बाद वह सफ़ाखाने भेजा गया और वहीं मर गया।

जो कुछ हो, मर कर जिन्दा रहना हमें न आया। हम मरे नहीं, बल्कि जेल का अनाज खाकर जीते रहने की हमारी दृढ प्रतिज्ञा थी। वह भी कम बहादुरी की बात न थी। मोटे-मोटे रंगून के चावल, कच्ची और जली रोटी, गले हुए आलू और छोटे-छोटे कंकर मिली दाल खाकर जिंदा रहने की प्रतिज्ञा करना हम समझते हैं, आसान काम नही हैं। फिर हमने बारह बरस उसे खाकर गुजारे, वह तरकारी देखकर हमारे देश के

भले आदमियों की आंखों में आंसू आये बिना नहीं रह सकते। कलकत्ता से जहाज में बैठकर हम चार दिन में काले पानी पहुँचे थे, इन चार दिनों में हमें खाने के लिए सूखी चने की दाल मिली थी। चार दिन के भूखों को वह कालेपानी का खाना अमृत जैसा लगा था।

जेल में दाखिल होते ही जेलर साहब ने समझा दिया था कि हम किसी से बातचीत नहीं करें। आपस में भी न बोलें, अगर बोलेंगे तो सजा पायेंगे क्योंकि हम "बम केस" में आसामी थे। अब काम का नम्बर था। कालेपानी टापू में नारियल बहुत पैदा होते हैं, यह सब सरकार की सम्पत्ति है। इसलिए इसका कारोबार सरकारी ही है। जेलखाने में भी नारियल का कारोबार होता है। नारियल के छिलकों को कूटना, फिर उसके तारों की रस्सी बनाना। नारियल को कोल्हू में डालकर तैल निकालना। नारियल की खोल के हुक्के तैयार करना, यही सब जेलखाने के काम हैं। इसके अलावा एक बेंत का कारखाना है, पर उसमें छोटी उम्र के लड़के ही काम करते हैं।

बैल की जगह कोल्हू में जुतकर घुमाना और छिलके कूटना यही दो काम बड़े सख्त थे। हम जो आदमी बम केस में गये थे, उनमें से वारीन्द्रकुमार और अविनाशचन्द्र तो कमजोर बीमार से थे। इसलिए उन्हें छिलके की रस्सी बनाने का काम दिया गया, पर हम सब लोगों की तकदीर में छिलके कूटने का काम न था। सवेरे उठकर टट्टी से फारिग हो कर हम लोगों को जरा सी गंजी पिलाई जाती थी। और इसके बाद लंगोट कसकर छिलके कूटने पर जोत दिये जाते थे। हर एक आदमी को बीस नारियलों के सूखे छिलके दिये जाते थे। छिलकों को एक लकड़ी के तख्ते पर बिछाकर लकड़ी के मोगरे से जोर जोर से पीटना पड़ता था, पीटते-पीटते उनके ऊपर का बक्कल उतर जाता था-तब उन्हें पानी में भिगोकर फिर कूटना पड़ता था। कूटते-कूटते उनके भीतर की भूसी बिल्कुल झड़कर सिर्फ रेशा ही रह जाता था। इन तारों को धूप में सुखाकर एक सेर का बण्डल बनाना पड़ता था।

पहले दिन हमें इस छिलका कूटने के काम को समझने में ही देर लगी। फिर जब उसे कूटने लगे तब तो कुछ न पूछिये तमाम हाथ में छाले हो गये। तमाम दिन सिर मारकर किसी तरह आध सेर तार तैयार किये। बलिदान के बकरे की तरह कांपते-कांपते तब तीन बजे अपने काम का दाखिला करने गये, तब धमकी के मारे अक्ल ठिकाने आ गई। शुद्ध असंकोच गालियों को हजम करने की कभी आदत थी ही

नहीं–आज मालूम हुआ कि इस जेल में कड़ी मेहनत के बाद गालियां खाकर जिन्दगी बसर करनी होगी।

सोचकर अक्ल ठिकाने आ गई। गालियों की अजब बहार थी, शरत् बाबू की साहित्य की किताबों में पढ़ा था कि हिन्दुस्तानियों की गालियां बड़ी सीधी–सादी और हृदय तक असर करने वाली होती हैं। पर जो लेखक और साहित्यसेवी गालियों पर लिखना चाहे उसे चाहिए कि कुछ दिन इस कालेपानी की जेल में निवास कर जाये। हिन्दुस्तानी, पंजाबी, पठान, बलोची मिलकर जो अपनी सुमधुर भाषा में गाली देते हैं–वह गाली–साहित्य जिसकी तकदीर में लिखा है उसके अलावा और कोई उसका मिठास नहीं समझ सकता। गालियों में भी इतना साहित्य भरा है यह पहले मालूम न था।

खैर, छिलके कूटकर और कंकर मिली दाल का पानी पीकर किसी तरह दिन बीतने लगे, पर देवताओं के बाद उपदेवताओं की दया से जिन्दगी किरकिरी होने लगी। बार्डर, पेटी आफिसर और टंडेल और जमादारों के मारे नाक में दम था। मामूली कैदी छः सात–साल जेल भोगने बाद अफसर बना दिया जाता था। यह कैदी अफसर बनकर दूतों की तरह नाक में दम करते थे। रामलाल जरा बैठा है, इसलिए मारे उसको दो घूसे। मुस्तफा आवाज देते ही नहीं खड़ा हुआ है, इसलिए उसकी दाढ़ी नोच लो। बकाउल्ला पाखाने से देर में निकला, इसलिए उसकी कमर पर दो दण्डे लगाओ जिससे पाखाना जल्दी हो। इसी तरह के प्रयोग से जेल की बाकायदगी इन लोगों ने कायम कर रखी है।

कैदी लोग गले में एक छेद बनाकर उसमें पैसे और कौड़ी रखते हैं। कैदियों को तंग करके उनसे पैसे कौड़ी निकलवाना इन लोगों का खास काम था। पर हमारे पास न पैसा था न कौड़ी हम कहां जायें? वारीन्द्र बीमार था इसलिए हस्पताल से उसे १० औंस दूध मिलता था। यह दूध वह पेटी अफसर खुदादाद के मुंह में डालता था। वह खुदादाद बड़ा ही नमाजी मुल्लाह–शायद खुदा का ही बेटा था। मूंछें कतरे मुंह के भीतर दूध डालकर डाढी पर हाथ फेरते–फेरते वह कहता बिसमिल्ला! यह खुदा ने क्या अजब चीज पैदा की है।

इसके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह थी कि अफसरों की शिकायत करके कौन अपने सिर भूत बुलावे। जहां रक्षक ही भक्षक हो वहां की कथा ही क्या! पर कुछ दिन बाद करीब पांच छः महीने के बाद नासिक, खुलना और इलाहाबाद से दस बारह राजनीतिक कैदी और आ पहुंचे।

हम सब राजद्रोहियों की तादाद मिलकर बीस-बाईस हो गई। इसी वक्त एक नये पुच्छल तारे की तरह नये जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट का उदय हुआ। उसने आते ही हम कुछ राजद्रोहियों को कोल्हू में जोतकर तैल निकलवाने का कायदा बताया। बेचारे उल्लासकर दत्त को तो सरसों का तैल निकालने के लिए कोल्हू में जोत दिया। वह कोल्हू हमारे देश के कोल्हू की तरह ही थे। बाकी हेमचन्द्र, सुधीरचन्द्र, इन्दुभूषण को हाथ से चलने वाले कोल्हू पर लगाया। एक आदमी को दिन में १० पौण्ड सरसों का अथवा ३० पौण्ड गोले का तैल निकालना पड़ता था। बड़े-बड़े पहलवान भी कोल्हू चलाने में हिचकते थे। फिर हम लोगों की क्या हालत हुई, जो मुंह से कही नहीं जा सकती। हमारा काम क्या था, पूरी पहलवानी थी। आठ दस मिनट में ही दम चढ़ जाता और हलक सूखने लगता। घण्टे भर में तो हाथ पैर मिट्टी हो जाते, मन ही मन सब जेलर और सुपरिण्टेण्डेण्ट को गालियां देते। पर यह सब बे-फायदे था।

हमें कोल्हू में बैल की जगह जोत कर तैल निकालना शुरू किया गया। मजा यह कि बैल भी हमीं और तैली भी हमीं। यह काम बाकायदा कुश्ती थी। आठ दस मिनट में दम सूख कर जीभ तालू से चिपट गयी। एक घण्टे में हाथ पैर निकम्मे हो गये। गुस्से के मारे जेलर सुपरिण्टेण्डेण्ट और सब अफसरों का श्राद्ध कर डाला। पर यह सब बे-फायदे था। दस बजे खाने के लिये जब नीचे उतरा तब दोनों हाथों में छाले पड़ गये थे आँखों के आगे लाल-पीले तिरमिरे आ रहे थे। कानों में झींगुर की आवाज आ रही थी। उतर कर देखा, बूढे हेमचन्द्र कोने में बैठे हैं। पूछा भाई साहब क्या हाल है? भाई साहब ने दोनों हाथ दिखाकर कहा-'दारुभूतो मुरारि:' पर हाथ चाहे पत्थर हो या लकड़ी बूढ़े हेमचन्द्र की आत्मा का जोर सदा वैसा ही देखा। चाहे जैसी कड़ी तकलीफ हो, पर उन्हें सदा तकलीफें भोगकर आगे का अदम्य निश्चय करते देखा। जेल में तकलीफों से घबराकर जब हम में से कोई-कोई कुछ कर गुजरने का इरादा करता, तब हेमचन्द्र अपने हृदय की पवित्र शक्ति उसमें भर कर दु:ख सहने के लिए उसे कड़ा कर देता।

हम में से दो तीन छोड़कर ३० पाउण्ड तैल निकालना सबकी ताकत से बाहर था। बहुत बार तो दूसरे कैदी छिपकर हमारे बदले तैल निकाल दिया करते थे। इसी तरह दिन भर कोल्हू घुमाकर और रात भर आधे मुर्दे की तरह पड़े रहकर एक महीना काटा।

एक महीने बाद गिरोह कोल्हू पर से तब्दील किया गया-दूसरा

आया। पहले सुपरिण्टेण्डेण्ट ने अविनाशचन्द्र को बीमार और क्षयरोग की सम्भावना होने से कोल्हू से दूर रखा था, पर उसके तब्दील होकर जाते ही दूसरे ने आकर उसे भी कोल्हू पर भेज दिया। इलाहाबाद के 'स्वराज्य' के सम्पादक श्रीयुत नन्दगोपाल को भी कोल्हू घुमाने पर लगा दिया।

नन्दगोपाल पंजाबी खत्री था। लम्बा चौड़ा जवान था। राजद्रोह के अपराध में दस साल के लिए काले पानी में आया था। कोल्हू पर जाकर एडीटर साहब ने एक नया फसाद खड़ा कर दिया। पहले तो बोले इतने जोर से कोल्हू नहीं चला सकता। कोल्हू खूब धीरे-धीरे चलने लगा। नतीजा यह हुआ कि दस बजे तक चौथाई भी तैल न निकला। दस बजे खाना खाने के लिए नीचे आते थे और खाकर मामूली कैदी तो चार-पांच मिनट में ही कोल्हू घुमाने चले जाते थे। पर जेल के कानून के मुताबिक दस से बारह तक का समय खाने और आराम करने का था, पर कैदी न ठहरते थे, क्योंकि १५ सेर तैल निकालना बड़ा ही मुश्किल काम था। पर नन्दगोपाल को यह डर न था। पेटी अफसर ने आकर झटपट खाकर कोल्हू चलाने को कहा। नन्दगोपाल ने उसे हंसते हुए तंदुरुस्ती के कायदे कानून समझाकर कहा कि खाना खाकर फौरन काम से मेदे की नलियों पर जोर पड़ कर किस तरह से हाजमें की ताकत मारी जाती है। और उसे जब दस बारह बरस सरकार बहादुर का मेहमान रहना है, तब किसी तरह से अपनी तन्दुरुस्ती बिगाड़ कर वह सरकार को बदनाम करना नहीं चाहता। इसकी रिपोर्ट जेलर के पास पहुँची। जेलर ने आकर देखा कि नन्दगोपाल डाक्टरों की राय के मुताबिक एक-एक गस्ते बत्तीस-बत्तीस दफा चबाकर धीरे-धीरे गले के नीचे उतार रहे हैं। जेलर साहब ने गरज-गरज कर एडीटर साहब को यह बात समझायी कि अगर वक्त पर काम न हुआ, बेंत मारे जायेंगें। वैसे ही हंस कर नन्दगोपाल ने जेलर साहब से कहा सरकार बहादुर ने १० से १२ बजे तक का वक्त खाने और आराम करने के लिए मुकर्रर कर दिया है, इसलिए मैं राजभक्त आदमी सरकार के कानून को किसी तरह नहीं तोड़ सकता, बल्कि यह भी देखता रहूंगा कि आप कहीं सरकार के कानूनों को न तोड़ दें! यह कहने की जरूरत नहीं कि जेलर साहब गुस्से से गरजते हुए विदा हुए। खाना खा पीकर नन्दगोपाल उठे। पेटी अफसर ने समझा कि शायद अब एडीटर साहब काम पर लगेंगे, पर नन्दगोपाल एक कम्बल बिछा कर मजे से सो रहा। खूब बकने-झकने, पुकारने-चीखने से भी नहीं उठा। सत्याग्रह में वह महात्मा गांधी से कम न था। बारह बजे उठ कर नन्दगोपाल

ने कोल्हू चलाना शूरू किया, करीब दो घण्टे चलाया होगा। जब देखा कि सात सेर के अन्दाज तैल हो गया तब बाकी नारियलों को छोड़ कर अपने मजे से बैठ गये। अफसर ने कहा अभी तो आधा ही तैल निकला है, बाकी आधा कौन निकालेगा। नन्दगोपाल ने कहा मुझे क्या मालूम कौन निकालेगा? मैं आदमी हूं कोल्हू का बैल तो हूं नहीं जो दिन भर कोल्हू चलाऊं। खाने को तो छः पैसे का भी नहीं देते और तैल निकलवाते हो १५ सेर!

जेल के अफसरों का तर्जन-गर्जन शुरू हुआ, पर नन्दगोपाल वैसे ही हंसते हुए मुँह निर्विकार परमपुरुष की तरह था। सुपरिटेण्डेण्ट ने देखा कि नन्दगोपाल से १५ सेर तैल निकालने की उम्मीद ही नहीं है इसलिए पैरों में डण्डा बेड़ी डालकर दूसरे हुक्म तक (Till further order) काल कोठरी में अकेला बंद कर दिया गया।

इधर कोल्हू चलाते-चलाते अविनाशचन्द्र अधमरा हो गया। दस बजे के बाद उसकी काम करने की ताकत ही न रहती। हमारे साथ वालों में इन्दुभूषण सब से ताकतवर था। दूसरे कैदियों से कह सुनकर वह अविनाश का बाकी काम करवा दिया करता था।

इसी तरह एक महीना और बीता। जेलर ने नन्दगोपाल से मामले को साफ किया। यह शर्त ठहरी कि चार दिन नन्दगोपाल पूरा काम कर दे फिर उसे कोल्हू चलाने का काम नहीं दिया जायेगा। नन्दगोपाल भी इस बात पर राजी हो गया और थोड़ा बहुत करके कोल्हू से निकला।

पर अधिक दिन नहीं। कुछ दिन बाद फिर उसे कोल्हू में लगा दिया। काम करने से फिर उसने इन्कार किया। पैरों में बेड़ियां डालकर फिर उसे अकेला काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। हुक्म हुआ कि हम सब को फिर तीन दिन कोल्हू चलाना पड़ेगा। एक तो हमारी कैद की कोई मियाद नहीं, बेमियाद कैद; दूसरे, रोज कोल्हू चलाने का डर। हम सब ने अच्छी तरह समझ लिया कि यहां काम काज का बिना एक अच्छा निपटारा किये कालेपानी से कोई जिन्दा वापस देश न जायेगा। सजा तो रात-दिन है ही फिर अपने आप अपने को सजा क्यों दें? बहुतों ने इस दफा कोल्हू पर काम करने से इन्कार कर दिया और सत्याग्रह शुरू हुआ।

जेल के हुक्कामों ने भी भयानक शक्ल बनायी। जेलखाने भर में सत्याग्रह एक आनन्दोत्सव था। सजा की पहली किश्त में चार दिन सिर्फ चावल का पानी खाने को दिया गया और सात दिन डंडा-बेड़ी डाली

गयी। जेल के कायदे के मुताबिक दो चार दिन से ज्यादा किसी का भी खाना नहीं रोका जाता, पर अफसरों ने हम में से नन्दगोपाल, होतीलाल, उल्लासकर दत्त को तेरह दिन तक गंजी ही खिलाई। सन् १९१३ में जब सर रेजिनाल्ड क्रेडॉक कालेपानी देखने गये, तब नन्दगोपाल ने उससे यह शिकायत की थी, पर जेल के अफ़सरों ने सजा देकर रजिस्टर में लिखी ही नहीं थी। जेलर ने साफ कह दिया, इसे यह सजा नहीं दी गयी। इसलिए नतीजा कुछ नहीं निकला। जेलर के खिलाफ कैदी की शिकायत नहीं सुनी जाती।

सजा के बाद सजाओं का नम्बर शुरू हुआ। तरह-तरह की बेड़ियां पहनाकर हमें अलग-अलग कोठरियों में बंद किया गया। इस में भी एक बात थी। मामूली कैदी जब कोठरी में बंद किए जाते, तब वे खाने पीने के लिए नीचे आते हैं दूसरे कैदियों से बातें भी कर लेते हैं। पर हमारे लिए हुक्म हुआ कि जो कोई हम से बातें करेगा वही सजा पायेगा। इसलिए मूक कारावास कहना चाहिए। हम में से कई तो तीन महिने से अधिक इन कोठरियों में रहे।

कइयों की तन्दुरुस्ती खराब होने लगी। एक तो काले पानी में वैसे ही मलेरिया बना ही रहता है। बुखार, खांसी और उस पर प्लीहा शुरू हुई। शायद जेल के विधाताओं ने भी हमारी हालत को तब्दील करना जरूरी समझा। इसलिए हम में से कुछ को चुन कर कारोनेशन उत्सव के काम के लिए जेलखाने से बाहर सैटलमैन्ट पर भेजा। वारीन्द्रकुमार तो गये मिस्तरी के पास गारा सानने, उल्लासकर गया ईट बनाने, कोई भेजा गया लकड़ी काटने और रिक्शा गाड़ी खींचने।

पर यहां तो उल्टी गंगा थी। जेल से ज्यादा आफत हुई बाहर। जेल का काम चाहे जितना सख्त था एक तो खाने को पूरा मिलता था। दूसरे बरसात और धूप से बचते थे। पर बाहर जा कर वह कुछ न था। सबेरे ६ से १० तक और शाम को १ से ४.३० तक कड़ी मेहनत करनी पड़ती थी। चाहे बरसात हो या धूप। इसके सिवा इस टापू में जोंक बहुत हैं वे लिपट कर खून चूसने लगती हैं। जेलखाने से बाहर काम करते हुए आदमियों ने घबराकर भागने की कोशिश की। इसका कोई ठिकाना नहीं।

इस पर आफत यह कि पूरा खाने को नहीं मिलता। कैदियों की खुराक चोरी होकर बाजार-बाजार और गांव-गांव बिकती है मामूली कैदी से लगा कर यूरोपियन अफसर तक इस चोरी को अच्छी तरह जानते हैं।

जेल से बाहर बीमारों के लिए चार अस्पताल हैं पर उनके असिस्टेण्ट सर्जन बंगाली हैं। इसलिए किसी भी राजनीतिक कैदी को उनमें भेजने की मनाही थी। बीमार होने पर हमें वापस जेल में आना पड़ता था। चढ़े बुखार में अपना सामान सिर पर रखकर दस मील बेड़ी पहने आना कितना कठिन है, इसे बिना भोगे कोई नहीं समझ सकता। फिर जेल में जाकर कौन-सा इलाज हो जाता है? दिन-रात के २४ घण्टे इस कोठरी में पड़े रहो और कोठरी के कोने में रखे हुए गमले में पाखाना पेशाब करा करो।

सोचा था जेल से बाहर निकलने से सुख होगा, पर जिसकी तकदीर में सुख का लेश नहीं, उसे सुख नहीं मिल सकता। खूनी डाकू और लुटेरे आकर कालेपानी में हल्का काम पा सकते हैं। कोई लिखने-पढ़ने पर, कोई पहरे पर, कोई दूसरों से काम लेने पर मुकर्रर हो सकता है, पर हम थे राजनीतिक कैदी ! बाहर से हारकर हम सब एक-एक करके वापस जेल में लौट आये।

इस समय एक दु:ख की घटना हो गयी। इन्दुभूषण ने आत्महत्या कर ली। उसका मज़बूत शरीर कठोर काम में कभी नहीं घबराया। पर वह बेइज्जती और गालियों से पागल हो जाता था। वह कहा करता था कि जिन्दगी इस तरह बिताना मेरे लिए असम्भव है। एक दिन रात को अपना कुरता फाड़कर उसने रस्सी बनाई और खूंटी से बांध कर गले में फंदा डाल लिया। जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट सुबह आठ बजे आये। उस दिन जेलर के साथ जो पहले वाले भीतर घुसे थे उनका कहना था कि लाश के गले में एक लिखा हुआ कागज का टुकड़ा लटक रहा था, पर बाद में उस कागज का कहीं भी पता न लगा। बाद में जेलर से दरयाफ्त किया था, लेकिन उन्होंने साफ नाँहीं कर दी। इन्दुभूषण के भाई ने हिन्दुस्तान में उसकी मौत की जाँच के लिए सरकार से कहा। अण्डमान के कमिश्नर उस जांच के लिए मुकर्रर हुए और उन्होने उस मामले को मटियामेट कर दिया।

इस वक्त जितने कैदी बाहर थे, वे काम की और बिमारी की वजह से वापस आने लगे। उल्लासकर दत्त भी आया। उसे धूप में बैठकर ईंट बनाने का काम दिया गया था। वहां के हस्पताल के जूनियर मेडिकल आफिसर ने कहा था कि उल्लासकर से धूप में बैठकर काम न होगा। पर बंगाली डाक्टर की बात गोरा ओवरसियर क्यों मानने लगा। १३ मास उल्लास से धूप में बैठ कर ईट बनवाई गयीं। उसने काम करने से इन्कार कर दिया, इसलिए वापस जेल में आया। यहां वह सात दिन डंडा-बेड़ी डालकर रख गया। पर सात दिन क्यों, वह तो पहले ही दिन बुखार में

बेहोश हो गया और अस्पताल भेजा गया। रात को उसका बुखार १०६ डिग्री तक बढ़ गया। सवेरे बुखार उतरा पर फिर वह उल्लासकर न था। कड़ी से कड़ी तकलीफों में जिसके मुंह से उफ न निकली, वह उल्लासकर पागल हो गया।

जेलखाने की सच्ची तस्वीर हमारी आखों के सामने नाचने लगी। जिन्दा रहकर वापस जन्मभूमि लौटने की इच्छाओं पर पानी फिर गया। कोई फांसी पर लटककर मरेगा, तो काई पागल होकर मरेगा। जब आखिर मौत ही है, तब इतना दु:ख ही क्यों? सब ने मिलकर निश्चय किया कि जब तक हमारे काम-काज में सहूलियत न हो, तब तक कोई काम न करेगा। इधर से हमने अल्टीमेटम दिया, उधर से हुक्कामों ने भी हम पर अपना वार करना शुरू किया।

खाली लड़ाई शुरू हो गई। इससे कुछ पहले ही बंगाल के एक राजनीतिक मुकद्दमे में ननिगोपाल तथा तीन चार और आदमी जेल में दाखिल हुए। ननिगोपाल लड़का ही था, पर उसे कोल्हू चलाने का सबसे कड़ा काम दिया गया। वह भी सत्याग्रह में शामिल हो गया। हम सब सत्याग्रही कैदियों को एक न्यारे ब्लाक में बन्द करके चुन-चुनकर पठान पहरे वाले हम पर मुकर्रर किये गये। खाना हमें बहुत ही कम मिलने लगा और इस बात पर कड़ी नजर रखी जाने लगी कि हम आपस में बोला न करें। पाखाने में जा कर किसी से बात ना करें। इसलिए सामने पहरे वाला खड़ा रहता। पर बहुत बार ज्यादा कड़ाई का भी बन्धन टूट जाता है। और कायदे कानून पर किसी तरह की भक्ति नहीं रहती। डर दिखा कर कानून बनाने की कोशिश तो कानूनी मजाक है।

हमने तीन चीजें चाहीं—अच्छा खाने-पहनने को, काम की कमी और आपस में मिलने की सहूलियत। बीच-बीच में चार-चार, पांच-पांच कोठरियां छोड़कर हम सब कैद किये गये। इसलिए पहले धीरे-धीरे बातें करते थे। अब जोर-जोर से बोलते, चिल्ला-चिल्ला कर बातें करते। हम हथकड़ियों में झुलाये गये थे लेकिन मुंह तो खुला था। इसी तरह हमारा सत्याग्रह चला। इसी वक्त हमारा पुराना सुपरिण्टेण्डेण्ट तब्दील होकर आ गया। उसकी सलाह से चीफ कमिश्नर ने हममें से कुछ को हल्का काम देने का नियम बनाया।

करीब दस बारह आदमियों को नारियल के पेड़ों के पहरे वाले बनाकर भेजा। नारियल के पेड़ सरकारी चीज है वे चोरी न हो जायें, यह देखना ही पहरे वाले का काम था। काम बहुत ही हल्का था, पर

सब को रखा गया दूर-दूर ताकि एक दूसरे से मिल न सकें।

पर जेलखाने के भीतर सत्याग्रह वैसे ही चलने लगा। नन्दगोपाल और ननिगोपाल को एक दूसरे तरफ की जेल में तब्दील किया गया। तब वहां जाकर ननिगोपाल ने खाना-पीना छोड़ दिया। सब को हल्का काम देने का जो वायदा था वह पूरा न किया गया। इसलिए जिन को बाहर भेजा गया था उन्होंने भी सत्याग्रह फिर शुरू कर दिया। महीने भर के बाद जब वापस जेल में आये तब देखा कि सत्याग्रह बहुत कुछ टूट गया है। नाउम्मीद हो कर बहुतों ने फिर काम शुरू कर दिया है। चार दिन खाना-पीना छोड़ने के बाद ननिगोपाल को वापस जेल में ले आए। सत्याग्रह के हामी यही ननिगोपाल, वारीन्द्रकुमार बन्द रहे, सजा पर सजा खाते-खाते एक के बाद एक अन्त में सब ने सत्याग्रह छोड़ दिया, पर ननिगोपाल डटा रहा।

दिन बीतने लगे। बिना खाये पिये ननिगोपाल सूखकर कांटा हो गया। जब उसे चार दिन बिना खाये पीये बीत गये थे, तब भी हथकड़ी कस कर उसे कड़ी से लटका रखा था। उसके आत्मा ने इस बार फिर कोई खास रूह फूंकी और बहुत से कैदी खाना-पीना छोड़ बैठे। हुक्कामों के लाख छिपाने पर भी इन्दुभूषण की आत्महत्या, उल्लासकर का पागल होना और ननिगोपाल का भूखा रहना हिन्दुस्तान के अख़बार में छपा। अखबारों के लिखने की वजह से गवर्नमेंण्ट के डाक्टर ल्यू किस को जांच करने भेजा। ल्यू किस साहब ने क्या जांच की सो वे ही जानें। पर उल्लासकर को कालेपानी से मद्रास के पागलखाने में भेजा गया। ननिगोपाल को समझा-बुझाकर खाना खिलाया गया।

सत्याग्रह का पहला अध्याय यहां खत्म होता है।

कुछ दिन बाद हम लोगों को फिर जेल से बाहर काम पर भेज दिया गया। किसी तरह से दिन गुजरने लगे, पर थोड़े ही दिन बाद सुना कि जेलखाने में गड़बड़ हो रही है। तंग होकर ननिगोपाल फिर सत्याग्रह कर बैठा। उसका जांघिया जबर्दस्ती उतार कर नारियल का जांघिया उसे पहनने के लिए दिया गया था। पर उसे फेंककर वह नंगा ही बैठ गया। और बोला-(Naked we come of our mother's womb and naked shall we return) "मां के पेट से नंगे ही आये हैं और नंगे ही जायेंगे।" यह मन्त्र वह जपने लगा और पूरा सत्याग्रह शुरू कर दिया।

लड़का कहीं पागल तो नहीं, यह फिक्र सब को हुआ, पर मालूम हुआ कि पागल नहीं हुआ। उसके सामने यही सवाल था कि जिस कानून

और अदालत को अंग्रजों ने अपनी मर्जी से बना लिया है, उसे वह क्यों माने। जिस बात में उसकी राय नहीं, उसे वह न मानेगा। जिस बात के करने को आत्मा गवाही नहीं देता, उस काम को सिर्फ जान बचाने के लिए ही वह क्यों करे। जान बचाने में ही जहां आफत है, वहां जान की कीमत ही क्या है। भगवान् ने जिसके दिल पर आजादी की मुहर लगा दी है। कड़ी से कड़ी तकलीफ और बड़े से बड़ा हुक्म भी जिसे पराधीन नहीं कर सकता। वह जीव कितना अमूल्य है, इसे भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं।

इधर हमारी हालत भी गिरी। हिन्दुस्तानी और ख़ासकर बंगाली अख़बारों में कालेपानी के कैदियों की चर्चा चली। सब हुक्कामों ने मन में निश्चय कर लिया कि अख़बारों के पास हम सब यह चिट्ठियां भेजकर छपवा रहे हैं। बस हम पर जाल बनाने शुरू किये गए। एक दिन सवेरे ही चारों तरफ से घेरकर पुलिस तलाशी लेने लगी। एक आधी चिट्ठी और एक दो किताब के अलावा हमारे पास कुछ न मिला, पर हम जेल में भेजे गये। तरह-तरह की अफवाहें क्यों उड़ रही हैं। उन्होंने भले आदमी की तरह कहा-मैं कुछ नहीं जानता, इंडिया गवर्नमेंण्ट का जैसा हुक्म मिला वैसा किया।

खैर, इसका हमारे पास जवाब ही क्या था। पर कुछ दिन बाद मालूम हुआ कि हम लोगों से बातचीत करने के अपराध में बाहर के कई आदमियों को सजाएं हुई हैं। पुलिस ने न मालूम कहां से एक गवाह पैदा कर लिया जिसने ग्रामोफोन की सुइयां और लोहे के टुकड़े इकट्ठे करके साबित कर दिया कि हम लोग बम बनाने की कोशिश कर रहे थे! नारायणगढ़ में बम से लाटसाहब की ट्रेन को उड़ाने की कोशिश में पुलिस ने अदालत से जब कई आदमियों को सजा दिलाई थी, तभी से हम पुलिस की महिमा अच्छी तरह जानते थे। इसलिए हुक्कामों से कहा कि अगर हमारे खिलाफ कोई ऐतराज है तो गुपचुपी तफतीश न करके खुली अदालत में मुकदमा क्यों नहीं चलाते? पर इसका कुछ भी जवाब न मिला।

कुछ महीने बाद सर रेजिनाल्ड क्रेडॉक (Sir Reginald Craddock) साहब कालेपानी की सैर करने आये। हम ने सोचा कि इन से अपनी सब बातें कहेंगे-जरूर कुछ न कुछ किनारा होगा ही। उनसे बातें शुरू करते, न करते, चीफ कमिश्नर ने कहा-'जब तुम्हें जेल से बाहर काम पर भेजा गया था-तब तुम राजद्रोह की सलाहें कर रहे थे।'

हम ने कहा-'अगर आपको यही ख्याल था तो जब आपसे कहा था, उस वक्त भले आदमी की तरह "मालूम नहीं" क्यों कह दिया था? इस पर भी अगर आपको हमारे खिलाफ सुबूत मिले हैं तो खुली अदालत में केस क्यों नहीं चलाते? सर रेजिनाल्ड ने मुस्कराते हुए कहा-'क्या समझते हैं। ऐसी बातें खुली कचहरियों में साबित नहीं हुआ करती।'

ननिगोपाल ने अपनी तमाम कहानी कही। सर रेजिनाल्ड ने थोड़े से में जवाब दिया-'तुम सरकार के दुश्मन हो, तुम्हें जान से मार देना ही अच्छा था।'

ननिगोपाल बोला-'अगर इसे ही आप अच्छा समझते हैं तो कायदे कानून और अदालतों के झूठे बाग लगाने की क्या जरूरत थी? मुसलमान बादशाहों की जबान ही कानून था, वैसे ही आपके राज में भी है, पर वे सीधी तरह से करते थे और आप लोग कायदे-कानून की ओट में शिकार खेल रहे हैं।'

बात यहीं खत्म हो गयी, पर जो जुल्म गुजर रहे थे उनका क्या करें? दुनिया में अनाथों का जो नाथ है, बिना उसके देखे कोई काम नहीं होता। मालूम होता है, इस बार उस दीनानाथ का भी सिंहासन हिल उठा था।

जियादती के मारे, एका करके सब ने फिर काम छोड़ दिया। सत्याग्रह शुरू हुआ। सजा देते-देते जब जेल के हुक्काम थक गये, तब उन लोगों को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जिनकी सजाएं तमाम उम्र की न थीं। यह काम डिप्टी कमिश्नर लूइस (Louis) साहब पर पड़ा। अदालत से एक दिन पहले वे सत्याग्रह की वजह मालूम करने जेल में आये।

हम लोगों पर जैसी-जैसी ज्यादतियां की गयी थीं, उन सब को सुनकर उन्होंने कहा कि-आप लोगों के मामले में पोर्टब्लेयर के किसी हुक्काम का हाथ नहीं है, इण्डिया गवर्नमेंण्ट का हुक्म है कि आप लोगों के साथ मामूली कैदी से कुछ भी अच्छा सुलूक न किया जाये।

लेकिन मामूली कैदी को जितनी सहूलियत हैं, उतनी भी हमें नहीं, अगर मामूली कैदी लिखना-पढ़ना जानता हो, तो उसे जेल के दफ्तर में कोई अच्छा काम मिल जाता है। अगर वे लिखना पढ़ना न जानते हों, तब कैदियों पर छोटे अफसर बना दिये जाते हैं। इन सब कामों के लायक होने पर भी हमें कोल्हू में बैल की जगह जोतकर तैल निकालना ही अच्छा समझा गया। दूसरे कैदियों को पांच साल जेल में रहने के बाद जेल से बाहर काम मिलता है और बारह आने महीना जेब खर्च दिया

जाता है, पर हमारे तमाम उम्रभर जेल में रहने की व्यवस्था थी। यद्यपि जो कुछ हमने कहा उसका जवाब लूइस साहब ने यह दिया कि-'इण्डिया गवर्नमेण्ट के हुक्म के मुताबिक हो रहा है, इससे हम अपनी तरफ से कुछ नहीं करते।'

हम में से एक ने कहा-"साहब, तमाम बुरा करने का इख्तियार आपको और इण्डिया गवर्नमेण्ट को है, पर कुछ भला करने का क्या जरा भी इख्तियार नहीं है?"

साहब ने हंस कर कहा-"मैं क्या करूं, आखिर जेल का अदब (Discipline) तो रखना ही पड़ेगा।"

एक ने कहा-"तो मतलब यह है कि इंसाफ हो चाहे गैर इंसाफ, आपको तो जेल का अदब रखना है।"

साहब ने इसका कोई उत्तर न दिया। बात वे पहले से ही अच्छी तरह जानते थे, पर वे तो गवर्नमेण्ट के नौकर ही थे। इसलिए किसी की एक महीना, किसी की दो महीने और किसी की छः महीने सजा बढ़ाकर चले गये। आगे चलकर एक दफे और यही लूइस साहब हमसे मिले थे-उस वक्त उन्होंने उल्लासकर दत्त के लिए कहा था-Ullaskar is one of noblest boys I have ever seen but he is too idealistic. अर्थात् उल्लासकर के समान उच्च हृदय के लड़के बहुत कम देखने में आये, पर यह सब से ज्यादा भावुक है। जिस उल्लासकर के लिए साहब के यह ख्याल थे, उसी को अपनी नौकरी बनाये रखने के लिए सजा भी दी।

अपने कानून के अदब को बनाये रखने के लिए सजा दी जाती हैं लेकिन आखिर सजा ही सरकार का मकसद हो गया। हम लोगों की देखादेखी मामूली कैदियों में भी सत्याग्रह शुरू हो गया। अब जेल के काम-काज में फर्क आने लगा, अफसरों ने देखा कि कुछ न कुछ करना चाहिए।

एक दिन एकाएक हम राजनीतिक कैदियों में सात-आठ मियादी (term convict) कैदियों को हिन्दुस्तान की जेल भेज दिया। और जो जेलर बिना गाली के बात नहीं करता था, वह भले आदमी की तरह आकर सत्याग्रह छोड़ने के लिए कहकर बोला-(Now you can retreat with houner) मियादी कैदी हिन्दुस्तान की जेल में भेज दिये जायेंगे और जो कालेपानी में रहेंगे उनके साथ अच्छा बर्ताव किया जायेगा।

हम ने कहा–"तथास्तु, पर अगर दो महीने में भी आपके काम में कोई विशेषता न दिखाई दी, तो फिर मजबूरन हमें खुद व्यवस्था करनी पड़ेगी।"

इस तरह दोनों तरफ से सुलहनामे पर दस्तखत होकर काम शुरू हुआ। सत्याग्रह का दूसरा अध्याय यहीं समाप्त होता है।

थोड़े दिन बाद अलीपुर के वारीन्द्र, हेमचन्द्र और नासिक के सावरकर भाई और जोशी को छोड़कर बाकी राजनीतिक कैदियों को हिन्दुस्तान की जेलों में भेज दिया गया और सत्याग्रह कुछ दिन के लिए शान्त हो गया। (आत्मकथा से संकलित)

कालेपानी की सजा प्राप्त

क्रान्तिकारी वारीन्द्र घोष

वारीन्द्र जिस कथित षड्यन्त्र में लिप्त थे, जब वे पकड़े गए तो वह 'अलीपुर षड्यन्त्र' नाम से मशहूर हुआ। इस षड्यन्त्र के सभी सदस्य उच्च शिक्षित थे। कुछ तो विदेश भी हो आए थे। जनता में असन्तोष था, ऐसी अवस्था में वारीन्द्र आदि ने प्रचार-कार्य भी जोरों से किया। वे 'युगान्तर' तो निकाल ही रहे थे। १८८० ई० में वारीन्द्रकुमार घोष का जन्म इंग्लैण्ड में हुआ था, किन्तु वे बचपन में ही इंग्लैण्ड से भारतवर्ष लाये गये थे। १९०२ में वे अपने बड़े भाई श्री अरविन्द घोष के निकट जो उस समय बडौदा कालेज में वाइस प्रिंसिपल थे, बंगाल आए। ये दोनों भाई डाक्टर के०डी० घोष के लड़के थे। डॉक्टर घोष सरकारी नौकर थे।.....

वारीन्द्र एक निश्चित उद्देश्य लेकर ही बंगाल आए थे। बाद को उन्होंने स्वयम् अदालत में कहा कि वे क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए बंगाल गए थे। इस आन्दोलन का उद्देश्य सशस्त्र उपायों से ब्रिटिश सरकार को यहां से निकालना था। .....१९०४ में जब भावी बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन जोरों पर था। उस समय वे फिर बंगाल गए। अब की बार वारीन्द्र को पहले से अधिक सफलता मिली। वारीन्द्र बाद को जब पकड़े गए तो उन्होंने २२ मई, १९०८ को एक मजिस्ट्रेट के सामने जो बयान दिया था, वह नीचे दिया जाता है। स्मरण रहे कि वारीन्द्र के मुकदमें में सभी ने आपस में सलाह करके बयान दे दिया था। उन्होंने ऐसा करने में देश की भलाई समझी। जो कुछ भी हो, वारीन्द्र के बयान का सारांश यह था।.....

वारीन्द्र घोष का बयान

"एक साल बड़ौदा में रहने के बाद मैं बंगाल लौट कर आया। मेरा उद्देश्य यह था कि राष्ट्रीय मिशनरी की भांति मैं भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का प्रचार करूँ। ऐसी जगहों पर नौजवानों को कसरत सिखाई तथा राजनीति में उनकी दिलचस्पी पैदा की जाती थी। इसी भांति मैंने दो साल तक लगातार स्वाधीनता का प्रचार करते हुए दौरा किया। मैं इसी बीच में बंगाल के लगभग सब जिलों का दौरा कर चुका था। मैं इस बात से थक गया और बड़ौदा चला गया, और फिर अपनी किताबों में डूब गया। एक साल बाद फिर बंगाल लौट आया। अब की बार मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि केवल विशुद्ध राजनीतिक प्रचार-कार्य से इस देश में कुछ नहीं होगा। लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा देनी चाहिए, ताकि वे विपत्ति का सामना कर सकें। एक धार्मिक संस्था खोलने की योजना भी मेरे दिमाग में थी। तब तक स्वदेशी अपनाने और विदेशी के बायकाट का आन्दोलन भी आरम्भ हो चुका था। मैंने सोचा कि कुछ आदमियों को मैं अपनी देख-रेख में शिक्षा दूँ, इसलिए मैंने इन लोगों को एकत्र किया, जो मेरे साथ पकड़े गए हैं। मेरे मित्र भूपेन्द्रनाथ दत्त तथा अविनाश भट्टाचार्य की सहायता से मैंने 'युगान्तर' प्रकाशित करना शुरू किया। हमने लगभग डेढ़ साल तक इसे चलाया, फिर इसे वर्त्तमान व्यवस्थापकों के हाथ सौंप दिया। अखबार का भार इस बार दूसरों पर सौंपने के बाद, मैं फिर लोगों को भर्ती करने में लग गया। मैंने १९०७ के शुरू से लेकर अब तक (अर्थात् १९०८ तक) करीब १४-१५ नवयुवकों को एकत्रित किया। मैंने इन नवयुवकों को धार्मिक पुस्तकें तथा राजनीति पढ़ाई। हम लोग हमेशा यही सोचते थे कि आगे जाकर एक क्रान्ति होगी और इसके लिए अस्त्र-शस्त्र भी इकठ्ठे किए जाने लगे। मैंनें इन दिनों ११ पिस्तौलें, चार राइफलें और एक बंदूक एकत्र कर ली थीं। हमारे यहां के नवुयवकों में एक उल्लासकर दत्त भी था। उसने कहा कि चूंकि मैं आप लोंगों से मिलकर काम करना चाहता था, इसीलिए मैंने बम बनाना सीख लिया था। उसके घर में एक प्रयोगशाला थी जिसका उसके पिता को पता नहीं था। उसी में वह अपने प्रयोग किया करता था। मैं कभी इस प्रयोगशाला में नहीं गया। मुझे केवल मालूम भर था कि एक ऐसी प्रयोगशाला है। उल्लासकर की मदद से हमने ३२ नं० मुरारीपुकुररोड के एक मकान में बम बनाना शुरू किया। इस बीच में हमारे एक मित्र हेमचन्द्रदास अपनी जायदाद का एक हिस्सा बेचकर

पेरिस में मेकेनिक्स और हो सका तो बम बनाना सीखने चले गए। जब वे लौट आये तो वे बम बनाने में हमारे कारखाने में उल्लासकर के साथ शामिल हो गए। हम कभी भी यह नहीं समझते थे कि राजनीतिक हत्याओं से आजादी मिल जायेगी। हम हत्याएं केवल इसलिए करते हैं कि हम समझते हैं कि जनता को इसकी आवश्यकता है।"

(भा० क्रा० आ० इति० से)

आत्मकथा

जिन कैदियों की कोई मियाद थी वे जब हिन्दुस्तान की जेलों में भेज दिये गये तब हम बहुत कुछ निश्चिन्त हुए। हम छः-सात आदमी थे जिनकी कैद की कोई मियाद ही न थी, छूटने की कोई उम्मीद थी ही नहीं, इसलिए फिर जन्मभूमि के दर्शनों की आशा छोड़कर हम चुपचाप दिन बिताने लगे।

लेकिन कालेपानी के कैदी की तकदीर में ख़ासकर हम राजनीतिक मामलों के कैदियों की तकदीर में शान्ति कहां? सन् १९१४ में लड़ाई शुरू हो गयी। हिन्दुस्तान में जो लहर पैदा हुई उसके नतीजे में लाहौर की 'ग़दर पार्टी' में पांच आदमी कालेपानी लाये गये। बहुत से पल्टनों के सिख सिपाही मुल्की कुसूर में आ पहुंचे। बंगाल से भी पन्द्रह-सोलह राजनीतिक कैदी आ गये। कालेपानी का जेलखाना देशभक्त कैदियों से भर गया, हमारे इस सूखे-नर्क में भी बसन्त का मौसम आया। इनमें से ज्यादा को नारियल के छिलके कूटने और कोल्हू चलाकर तैल निकालने का काम दिया गया। सब से बड़ी आफत यह थी कि लम्बे चौड़े शरीर वाले हमारे पंजाबी बहादुरों के पेट जेल की खुराक से भरते ही न थे। एक तो पंजाबी वैसे ही अधिक खाने वाले, फिर ये देशभक्त अमेरिका में भी रह आए थे, इसलिए गोश्त ज्यादा खाते थे; इसलिए जेलखाने की रोटी और दो मुट्ठी दाल-चावल से इनका हो ही क्या सकता था? पेट के न मालूम किस कोने में वह जा पड़ता था। इसके अलावा वे लोग बेइज्जती भी चुपचाप बर्दाश्त न करते थे, रोज किसी न किसी अफसर से लड़ाई झगड़ा हो ही जाता था। थोड़े ही दिन में मालूम हो गया कि जेल में कुछ न कुछ होगा।

झगड़े की वजह परमानन्द को लेकर शुरू हुई। किसी एक मामूली बात पर उसे जेलर के पास ले गये। जेलर ने उसे गाली दी उसने भी जेलर को गाली दी। बात गाली पर ही खत्म नहीं हुई, दोनों में हाथापाई भी हो गई। बस इन्साफ में परमानन्द को बीस बेंत लगाने का हुक्म

हुआ। इसी कारण सत्याग्रह शुरू हुआ, पर यह ज्यादा दिन न टिका। जेलर ने लोगों को समझा बुझा कर फिर काम पर लगा दिया।

पर नाराज़गी का बीज न गया, कुछ दिन बाद एक मामूली से कारण पर फिर गड़बड़ शुरू हुई। जेल में रविवार की छुट्टी रहती है। उस दिन अपने मैले कपड़े वगैरह धोने के अलावा और कोई काम नहीं लिया जाता। यह मामूली जेलों की बात है, पर कालेपानी की जेल में रविवार के दिन घास काटनी पड़ती है। अमेरिका में जो गदर अख़बार निकलता था, उसके एडीटर जगत्राम ने सब से कहा कि रविवार के दिन हम जेल में कोई काम नहीं करेंगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने काम से इन्कार करने के कसूर पर छः महीने पैरों में कड़ी बेड़ी डालकर अकेले कोठरियों में बन्द रखने की इन लोगों को सजा दी। इससे एक के बाद एक अपना-अपना काम छोड़ता गया। इस वक्त एक घटना से बड़ा जोश फैला। एक बूढे सिक्ख और जेल के अफसरों में झगड़ा हुआ। सिक्ख का कहना था कि अफसरों ने मुझे कोठरी में ले जा कर बुरी तरह मारा। दो तीन दिन बाद बेचारा बूढा सिक्ख मर गया। इस पर तीन चार पंजाबियों ने खाना-पीना छोड़कर सत्याग्रह शुरू किया। पृथ्वीसिंह इन सब का अगुआ था। जब कभी वह बेहोश हो जाता, तब नाक में रबर की नली डाल कर पेट में दूध उतार देते थे। इसी तरह पांच महीने बीत गये। इसी वक्त पंजाबी रामरक्षा भी मर गया। अपने छुटकारे का कोई उपाय न देखकर एक पंजाबी ने शीशे का टुकड़ा खाकर जान दे दी।

जो मर गये, वे मर कर बच गये, लेकिन जो तकलीफों की वजह से पागल हो गये वे जिन्दा रह कर भी नरक में पड़ गये। कालेश्वर के राजनीतिक मुकद्दमें में आया हुआ यतीशचन्द्रपाल अकेला कोठरी में बन्द रहने के कारण पागल हो गया और उसे हिन्दुस्तान के किसी पागलखाने में भेज दिया गया।

पागल होने, खुदकुशी करने और जुल्मों से जिन्दगी का नाश होने का अन्त नहीं है। कालेपानी के कैदियों में से किस की बातें छोड़ी जायें और किस की बात लिखी जाये। लायलपुर के खालसा स्कूल का मास्टर छत्र सिंह शुरू ही से बेड़ियां डालकर अन्धेरी कोठरी में कैद किया गया। जब जेल में सत्याग्रह हो रहा था, तब तकलीफों से पागल हो कर उसने जेलर पर हमला बोल दिया। इससे वह इतना पीटा गया कि बेचारा बेहोश हो गया। कड़ी बेड़ियां डालकर जो कोठरी में बन्द किया गया था सो दो बरस तक नहीं निकाला। दूसरे सिक्ख अमरसिंह का भी यही हाल किया गया।

जब सत्याग्रह और तकलीफों की खबरें हिन्दुस्तान के अख़बारों में छपने लगीं और देश में आंदोलन हुआ, तब जेल में अफसरों की आंखें खुलीं और उन्होंने देशभक्त कैदियों को कुछ हल्का काम दिया गया। लाहौर दयानन्द कालिज के प्रोफेसर भाई परमानन्द सत्याग्रह में शामिल न हुए थे। इसलिए इन्हें कम्पाउन्ड का काम दिया। पर ज्यादा दिन तक इस काम पर न रह सके। उन्होंने अपनी स्त्री को राजनीतिक कैदियों की हालत चिट्ठी में लिख भेजी थी। इनकी स्त्री ने चिट्ठी कहीं अखबारों में छपवा दी। इससे चीफ कमिश्नर नाराज हो गये और भाई परमानन्द को बड़ी बेइज्जती सहनी पड़ी। अन्त में जिन्दगी की इतनी किरकिरी हालत देख उन्होंने भी खाना-पीना छोड़कर मरने का इरादा कर लिया। सुख की बात इतनी ही हुई कि इनके सत्याग्रह करने के कुछ दिन बाद ही बादशाह के ऐलान के मुताबिक छोड़ दिये गये। लेकिन जो अभी तक नहीं छूटे उनका ईश्वर मालिक है।

हमारा देश जेलखानों के भीतर की बातें नहीं जानता। लाखों आदमी जेल के भीतर नरक भोगते हैं, पर उनका पता देशवासियों को मालूम नहीं। जेल ही क्यों, जिन्हें हम आठों पहर अपनी आंखों के सामने देखते है उन अपनी माताओं और बहनों के दु:ख की ही कितनी बातें जानते हैं? कोई महात्मा पैदा हो जाते हैं सो हमें हमारी हालत समझाते हैं। लेकिन जैसा जमाना है, उससे बिना अपनी हालत समझे काम नहीं चल सकता। भारत-माता इन अत्याचारों और पापों के मारे पत्थर बनने के करीब आ गई है।

हर साल करीब एक हजार आदमी कालेपानी जाते हैं। सोलह बरस के लड़के से लगाकर पचास बरस का बूढा तक डाक्टर की मेहरबानी से कालेपानी की सजा के लायक साबित हो जाता है।"

क्रान्तिकारी अरविन्द घोष

अलीपुर काण्ड के क्रान्तिकारी वारीन्द्र घोष के बड़े भाई अरविन्द घोष भी आरम्भ में क्रान्तिकारी विचारधारा के थे। इनके पिता श्री कृष्णधन घोष एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। वे इंगलैंड से डाक्टरी परीक्षा पास कर बिल्कुल 'अंग्रेज साहब' बनकर लौटे थे और अपने पुत्रों को भी 'अंग्रेज साहब' बनाना चाहते थे। इसी कारण अरविन्द को उन्होंने बचपन में मिशनरी स्कूल में पढ़ाया और फिर इंगलैंड भेजा। अरविन्द ऐसे वातावरण में पढ़े कि अपनी मातृभाषा बंगला भी भूल गये थे। भारत छोड़कर उन्हें फिर से बंगला सीखनी पड़ी थी।

अरविन्द अध्ययन में अच्छे थे। वे आई.सी.एस. परीक्षा में भी बैठे किन्तु घुड़सवारी के अवसर पर कुछ बाधा आ जाने के कारण वे उत्तीर्ण नहीं हुए। इस कारण आई.सी.एस. में भी उत्तीर्ण घोषित नहीं किये। उन्हीं दिनों बड़ौदा के महाराजा लंदन में थे। उन्होंने अरविन्द से प्रभावित होकर उन्हें अपने राज्य में बुलाकर शासकीय उच्च पद दिया। अच्छा कार्य करने के कारण उनका वेतन भी जल्दी-जल्दी बढ़ता गया।

जब स्वदेशी आन्दोलन चला तो वे अपने ठाठ-बाट को छोड़कर आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। 'अलीपुर काण्ड' में आपको भी गिरफ्तार कर लिया गया और अलीपुर जेल लाया गया। प्रमाणों के अभाव में आप मुक्त हो गये। आश्चर्यजनक बात यह थी कि इस केस में आपके गवाह के रूप में सरकार द्वारा बुलाये गये बाबू विपिनचन्द्र पाल को सजा हुई थी। जेल से छूटने के बाद आपने आन्दोलन में भाग लेना छोड़ दिया और पांडिचेरी में आश्रम बनाकर साधना-तपस्या में संलग्न हो गये। आपके छोटे भाई वारीन्द्र को कालापानी का आजीवन कारावास हुआ। इस प्रकार एक ही परिवार के दो पुत्रों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए योगदान किया। उनकी जेलकथा उन्हीं के शब्दों में यहां दी जा रही है।
(सम्पादक)

तपोनिष्ठ अरविन्द घोष द्वारा स्वयंवर्णित कैद कहानी

मैं पहली मई सन् १९०८ ई० को शुक्रवार के दिन "वन्दे मातरम्" पत्र के दफ्तर में बैठा हुआ था। उस समय श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने मुजफ्फरपुर का एक टेलिग्राम (तार खबर) मेरे हाथ में दिया। उसको पढ़कर मुझे मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर में एक बम का गोला चलाया गया है जिससे कि दो मेमों की मृत्यु हुई। उसी दिन के एम्पायर नामक अंग्रेजी संवादपत्र में यह भी पढ़ा कि पुलिस कमिश्नर कहते हैं कि जो जो लोग इस हत्याकाण्ड में मिले हुए हैं उन सब को हम खूब जानते हैं और वे शीघ्र ही गिरफ्तार किये जायेंगे। उस समय मैं यह नहीं जानता था कि मैं ही उनके इस सन्देह का मुख्य निशाना हूं। मैं ही पुलिस के विचार में प्रधान हत्यारा हूँ। राष्ट्र विप्लव चाहने वाले युवक दलों का मन्त्रदाता और गुप्त नेता मैं ही समझा जाता हूँ।.....

शुक्रवार की रात को मैं निश्चिन्त मन हो सो रहा था। भोर होने पर प्राय: पांच बजे मेरी बहिन घबराई हुई मेरे कमरे में आई और नाम लेकर मुझे पुकरने लगी। मैं जाग उठा। एक क्षण भर में मेरा छोटा सा कमरा

शस्त्रधारी पुलिस वालों से भर गया। उनमें सुपरिण्टेण्डेण्ट क्रेगन, २४ परगना के क्लर्क साहब हमारे सुपरिचित श्रीमान् विनोदकुमार गुप्त की आनन्दमयी और लावण्यमयी मूर्त्ति, कई एक इंस्पेक्टर, सिपाही, डिटेक्टिव और खाना तलाशी के गवाह भी थे। ये सब लोग अपने हाथों में पिस्तौल लिये हुए ऐसी वीरता के साथ दौड़े हुए आये मानो उन्हें किसी तोपों और बन्दूकों से सुरक्षित दुर्ग में दखल करना था। मैंने अपनी आंखों से तो नहीं देखा, परन्तु पीछे सुना कि एक सफेद चमड़े वाले ने मेरी बहन की छाती पर भी पिस्तौल रख दिया था। मैं बिछौने पर बैठा हुआ था, मेरी आखों में नींद भरी हुई थी। उसी समय क्रेगन साहब ने मुझ से पूछा कि "अरविन्द घोष कौन है?" मैंने उत्तर दिया? हां, "मैं ही अरविन्द घोष हूं।" यह सुनते ही उन्होंने एक सिपाही को मुझे गिरफ्तार करने की आज्ञा दी। इसके अनन्तर क्रेगन ने एक ऐसी अभद्र बात कही, जिस पर हम दोनों में कुछ वाद-विवाद भी हो गया। मैंने खाना तलाशी वारंट मांगा और पढ़कर उस पर दस्तखत किये। वारण्ट में बम की बात देख कर मैं समझ गया कि आज यहां इस पुलिस सेना का आना मुजफ्फरपुर के खून से सम्बन्ध रखता है। परन्तु मेरी समझ में यह बात न आ सकी कि कोई बम का गोला या अन्य स्फोटक पदार्थ मेरे मकान में पाये जाने के पहले ही और बिना मेरे नाम किसी वारण्ट (Body warrant) के मुझे क्यों गिरफ्तार कर लिया गया। परन्तु इस बारे में मैंने कुछ आपत्ति न की। उसके पीछे क्रेगन साहब के हुकम से मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बांध दी गयी। एक हिन्दुस्तानी सिपाही उस रस्सी को पकड़े हुए मेरे पीछे खड़ा रहा।

उसी समय श्रीयुत अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य और श्रीयुत शैलेन्द्र बाबू को पुलिस ऊपर ले आई उनके भी हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बंधी हुई थी। आधा घण्टे पीछे न जाने किस के हुक्म से पुलिस ने हम लोगों के हाथों की हथकड़ियाँ और कमर की रस्सियां खोल दीं। क्रेगन साहब की बातों से यह प्रकट होता था कि मानो वह किसी खूंखार जानवर की मांद में घुसे हैं और हम लोग अशिक्षित हिंसक और स्वभाव से कानून के तोड़ने वाले मनुष्य हैं। हम लोगों के साथ अच्छा व्यवहार करना अथवा हमारे साथ भले आदमियों की सी बातें करना क्रेगन साहब निष्प्रयोजन समझते थे, परन्तु मुझ से झगड़ा होने पर वे कुछ शान्त से हो गये थे। विनोद बाबू ने न जाने हमारे विषय में उन्हें क्या समझाया उसके पीछे ही क्रेगन ने मुझे कहा, "मैंने सुना है कि आपने बी०ए० पास किया है। आप ऐसे शिक्षित मनुष्यों के लिए ऐसे मकान में और शय्याहीन

कमरे में रहना और जमीन पर सोना क्या लज्जाजनक नहीं है?" मैंने उत्तर दिया–"मैं दरिद्र धनहीन हूँ, दरिद्रों के समान ही रहता हूं।" साहब ने गरजकर कहा, "तो क्या आपने धनवान् बनने के लिए यह सब षड्यन्त्र रचा है?" मैंने समझ लिया कि देश-हितैषिता स्वार्थ त्याग और दारिद्र्य व्रत का माहात्म्य, इस स्थूलबुद्धि वाले अंग्रेज को समझाना दु:साध्य है, इसीलिए मैंने इसकी चेष्टा भी न की।

इस समय खाना तलाशी हो रही थी। यह भोर को साढ़े पांच बजे आरम्भ हुई और प्राय: साढ़े ग्यारह बजे समाप्त हुई। बाक्स के बाहर या भीतर जो कुछ कापी चिट्ठी-पत्री, अनुवाद आदि मिलता था, उसमें से कोई वस्तु भी इन सर्वग्रासी खाना तलाशी वालों से बच न सकती थी। खाना तलाशी के गवाहों में एक महाशय रक्षित भी थे, वे कुछ उदास दीख पड़ते थे। उन्होंने बड़े दु:ख के साथ मुझ से कहा पुलिस अचानक बिना कुछ कहे-सुने मुझ को यहां पकड़ लाई है। मुझ को इसकी कुछ खबर न थी कि ऐसे घृणित कार्य में मुझे सहायता करनी पड़ेगी। रक्षित महाशय ने बड़े करुणाभाव से इस हरण काण्ड की कथा सुनाई। समरनाथ नामक दूसरे गवाह का भाव कुछ और ही था, वह बड़ी फुर्ती के साथ एक सच्चे राजभक्त के समान खानातलाशी के कार्य को सुसम्पन्न करा रहा था।..... खानातलाशी के समय सिवाय बाक्स खोलने के मैंने और कुछ नहीं किया, मुझ को कोई कागज अथवा पत्र भी दिखलाया व सुनाया नहीं गया। केवल अलकधारी जी का एक पत्र क्लर्कसाहब ने अपने मनोरंजन के लिए उच्च स्वर से पढ़ा था। प्रियबन्धु विनोद गुप्त अपने स्वाभाविक ललितपद विन्यास से घर को विकम्पित कर रहे थे। अलमारी या किसी अन्य स्थान से समय-समय पर जो कागज पत्र निकालते, उसका "अति प्रयोजनीय! अतिप्रयोजनीय!!" कह कर क्रेगन साहब के हवाले करते थे। मैं नहीं समझ सका कि ये अति प्रयोजनीय कागज क्या थे और न उसके जानने की मुझ को उत्कण्ठा ही थी, क्योंकि मैं जानता था कि मेरे मकान में विस्फोटक पदार्थ बनाने अथवा षड्यन्त्र रचने के सम्बन्ध का कोई कागज होना असम्भव था।

पुलिस हमारे कमरे की अच्छी तरह तलाशी लेने के पीछे हम लोगों को पास के कमरे में ले गई। क्रेगन साहब ने उस दूसरे कमरे में जाकर मेरी छोटी मौसी के बाक्स को खोला, दो एक बार उनकी चिट्ठियों पर दृष्टि डाली और फिर यह कह कर कि औरतों की चिट्ठियां लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। उन पत्रों को वहीं छोड़ दिया। इसके बाद

पुलिस सब से नीचे की मंजिल पर आई यहां पर क्रेगन साहब ने चाय पानी किया। मैंने भी एक प्याला कोको और थोड़ी सी रोटी खाई। इस समय साहब अपने राजनीतिक विचारों को युक्ति और तर्क से साबित करने की चेष्टा करने लगे। मैं अविचलित चित्त से इस मानसिक कष्ट को सहता रहा। यदि यह बात मान भी ली जाये कि शरीर पर अत्याचार करना पुलिस की सनातन प्रथा है तो भी चित्त के ऊपर ऐसा अमानुषिक अत्याचार करना न जाने किस (Unwritten law) बिना लिखे कानून की सीमा में आता है। मैं आशा करता हूं कि हमारे परम मान्यवर देश हितैषी श्रीयुत योगेन्द्रचन्द्रघोष इस विषय में व्यवस्थापक सभा में प्रश्न उठावेंगे।

जब पुलिस नीचे के कमरों और "नवशक्ति" संवादपत्र के दफ्तर की अच्छी तलाशी ले चुकी, तब फिर एक लोहे का सन्दूक खोलने के लिए दो मंजिले पर गई। यह सन्दूक नवशक्ति के दफ्तर का था। परन्तु आधा घण्टा चेष्टा करने पर भी जब सन्दूक न खुल सका तब उन्होंने उस सन्दूक को थाने पर ले जाना ही ठीक समझा। इस समय पुलिस के एक साहब ने मकान में से एक दो चक्र का विमान (बाइसिकल) ढूंढ निकाला। उस बाइसिकल पर 'कुष्टियार' रेलवे स्टेशन का लेबल लगा हुआ था। फिर क्या था! उन्होंने ये समझकर कि कुष्टियार के साहब को जिसने गोली से मारा है, यह बाइसिकल उसी का है, कहकर बड़े आनन्द के साथ उस दृढ़ प्रमाण को अपने साथ ले लिया।

प्राय: साढ़े ग्यारह बजे हम लोग अपने मकान से चले। फाटक के बाहर मेरे मौसा और श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु गाड़ी पर बैठे हुए दिखाई दिये। मौसा जी ने पूछा-"कहो किस अपराध में गिरफ्तार हुए हो।" मैंने उत्तर दिया-"मैं कुछ नहीं जानता, ये लोग मेरे घर में घुसकर मुझे पकड़ लाये हैं, मेरे हाथों में हथकड़ी डालदी गई, परन्तु कोई मेरे नाम का वारण्ट (Body warrant) मुझे नहीं दिखलाया गया। मेरे मौसा ने हाथों में हथकड़ी डालने का कारण पूछा। उस पर विनोद बाबू ने कहा-"महाशय, मेरा इसमें कुछ भी अपराध नहीं है, आप अरविन्द बाबू से पूछ सकते हैं कि मैंने स्वयं कहकर उनके हाथों की हथकड़ी खुलवा दी थी।" जब भूपेन्द्र बाबू ने मेरा अपराध पूछा तो गुप्त महाशय ने 'नरहत्या' की धारा दिखा दी। यह सुनते ही भूपेन्द्र बाबू एक बार तो हक्के-बक्के से रह गये और कुछ उत्तर न दे सके।.....

विनोद बाबू हम तीनों को थाने पर ले जाने के लिए नियत हुए उन्होंने थाने पहुंचकर हम लोगों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया।

हम लोग थाने पर ही पहुंच नहा धोकर और भोजन करके लाल बाजार की ओर रवाना हुए। कई घण्टे लाल बाजार में बैठाए रखने के पीछे हम लोग रायड स्ट्रीट में पहुंचा दिये गये। सायंकाल हम लोगों ने अपना समय उस शुभ स्थान में ही बिताया।.....

शैलेन्द्र और मैं दोनों लाल बाजार के थाने में दो मंजिले पर एक बड़े कमरे में रखे गये। वहां पर हम लोगों को भोजन न कराकर थोड़ा सा जलपान मात्र करा दिया गया। थोड़ी देर के पीछे दो अंग्रेजों ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। बाद को मैंने सुना कि उसमें से एक पुलिस कमिश्नर हैलिडे साहब थे। हैलिडे साहब हम दोनों को एक साथ देख कर सारजेण्ट पर अत्यन्त क्रोधित हुए और मेरी ओर संकेत करके कहने लगे खबरदार! इस आदमी के साथ कोई दूसरा रहने अथवा बातचीत न करने पाये। उसी समय शैलेन्द्र एक दूसरे कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया गया। जब सब लोग वहां से चले गये, तब हैलिडे साहब ने मुझ से पूछा–"क्या इस का पुरुषों के योग्य दुष्कर्म में लिप्त होने पर आप को लज्जा नहीं आती? मैंने उत्तर दिया कि "आपको इस बात के मान लेने का क्या अधिकार है कि मेरा इस काम से सम्बन्ध था?" हैलिडे साहब ने कहा–'यह केवल मान ही नहीं लिया है किन्तु मैं सब कुछ जानता हूं।" मैंने उत्तर दिया "कि आप जानते हो वा न जानते हो किन्तु मैं कदापि नहीं मान सकता कि मेरा इस हत्याकाण्ड से कुछ सम्बन्ध है।" हैलिडे साहब ने फिर उत्तर न दिया।.....

रविवार का समस्त दिन जेल में कटा, हमारे मकान के सम्मुख एक सीढ़ी थी, सुबह को मैंने देखा कि एक थोड़ी सी उमर के युवक सीढ़ी से उतर रहे हैं, उनको मैं पहचानता न था, किन्तु अनुमान से मैंने समझ लिया कि ये लोग भी इस मुकद्दमे में पकड़े हुए हैं। पीछे से मालूम हुआ कि ये सब लड़के मानिकतल्ला बाग के थे। एक महीने पीछे जेल में ही इन लोगों से मेरा परिचय भी हुआ। थोड़ी देर बाद हाथ-मुंह धोने के पीछे मुझे नीचे ले गये। परन्तु नहाने का कुछ प्रबन्ध न था, इस कारण मैं स्नान न कर सका, उस दिन प्रातःकाल मुझे केवल उबली हुई दाल और भात भोजन करने को मिला। बड़ी कठिनाई से एक दो ग्रास ज्यों त्यों कर पेट में डाला। परन्तु अन्त में उसे छोड़ देना ही पड़ा। सन्ध्या समय भोजन के लिए केवल लाई मिली। तीन दिन तक हम लोगों का यही आहार था। किन्तु सोमवार को सारजेन्ट ने मुझ पर प्रसन्न हो कर चुपचाप चाय और रोटी खाने को दी।.....सोमवार के दिन हम लोगों को

कमिश्नर साहब के सामने उपस्थित किया गया। हम लोगों को भिन्न-भिन्न दलों में ले गये। मेरे साथ शैलेन्द्र और अविनाश थे। हम तीनों अपने पूर्व जन्म के संचित पुण्य कर्मों के कारण कुछ पहले गिरफ्तार हो जाने से कानून की जटिलता को कुछ-कुछ समझते थे और इसी कारण कमिश्नर साहब के सामने हरेक बात के प्रकट करने से हम लोगों ने इन्कार किया। दूसरे दिन हम लोगों को मजिस्ट्रेट थार्नहिल के इजलास में ले जाया गया। इस समय श्रीयुत कुमार कृष्णदत्त मेन्युएल साहब और मेरे एक नातेदार से हमारी पहली मुलाकात हुई। (Menual) साहब ने मुझ से पूछा कि पुलिस कहती है कि आपके मकान में बहुत से सन्देहजनक लेख मिले हैं। क्या इस प्रकार की कोई चिट्ठी अथवा कागज आपके यहां था? मैंने उत्तर दिया कि "बिना किसी सन्देह के मैं कह सकता हूं कि ऐसे किसी कागज या चिट्ठी का मेरे मकान में रहना नितान्त असम्भव है। हां, उस समय मिष्टान्न पत्र (Sweets letter) अथवा (Scribbling) की बात का मुझे पता न था। मैंने अपने नातेदार से कहा घर में कह दीजियेगा कि किसी प्रकार का भय न करें। मेरी निर्दोषता सम्पूर्ण रूप से साबित हो जायेगी।" मेरे हृदय में यह दृढ़ विश्वास था कि मैं सम्पूर्ण रूप से निर्दोषी प्रमाणित हूंगा। पहले-पहल निर्जन कारावास में मेरा मन कुछ-कुछ विचलित हुआ किन्तु तीन दिन की प्रार्थना और ध्यान के पीछे निश्चल शान्ति व अविचलित विश्वास ने फिर से मेरे पास में आ सिंहासन जमाया।

मेरी कोठरी नौ फीट लम्बी और पांच फीट चौड़ी थी इसमें कोई खिड़की न थी, इसके सामने बड़े-बड़े लोहे के सींखचे लगे हुए थे, यह पिंजरा ही मेरे रहने की जगह थी। कमरे के बाहर एक पक्का आंगन और ईटों की ऊंची-ऊंची दीवारें थी। सामने लकड़ी का एक बड़ा दरवाजा था, उस दरवाजे में मनुष्य की आंखों की ऊंचाई पर छोटे-छोटे गोल सुराख बने हुए थे। जिस समय दरवाजा बन्द कर दिया जाता था उस समय पहरे वाले उन सुराखों से झांक कर देखा करते थे कि कैदी क्या कर रहा है किन्तु मेरे आंगन का दरवाजा प्रायः खुला ही रहता था। इस प्रकार के पास-पास छः कमरे थे। इन कमरों को डिक्री कहते हैं। डिक्री का अर्थ अधिक दण्ड वालों का कमरा है। जज अथवा जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट के हुक्म के अनुसार जिन लागों को निर्जन कारावास का दण्ड मिलता था, उनको इन छोटे-छोटे आगारों में रहना पड़ता था। इस निर्जन कारावास में भी न्यूनाधिक दण्ड होता था। जिन लोगों को

अधिक दण्ड मिलता, उनके आगे का दरवाजा बन्द रहा करता था, वे लोग मनुष्य समाज से सब प्रकार से वंचित रहते थे। केवल मात्र पहरे वालों और दोनों वक्त भोजन देने वाले कैदी को छोड़ उनका जगत् की और किसी वस्तु से कोई सम्बन्ध न था। खुफिया पुलिस वाले हेमचन्द्रदास को मुझसे अधिक भयंकर समझते थे, इस कारण उसके लिए भी इसी प्रकार का दण्ड नियत किया था। इस पर भी अधिकता यह थी कि हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ियाँ पहनकर निर्जन कारावास में रहना पड़ता था। इस प्रकार की कड़ी सजा केवल शान्ति भंग करने वालों अथवा मारपीट करने वालों ही को नहीं दी जाती थी, किन्तु जो लोग जेल का काम करने में बेपरवाही करते थे, उनके लिए भी यही दण्ड था। मुकदमा होने के पहले ही निर्जन कारावास के कैदियों को इस प्रकार का कष्ट देना नियम विरुद्ध है, किन्तु **स्वदेशी** अथवा **'वन्देमातरम्'** वाले कैदी भी नियम के बाहर समझे जाते थे और पुलिस की इच्छानुसार उन लोगों का प्रबन्ध किया जाता था।

थार्नहिल साहब के इजलास से हम लोगों को गाड़ी में बैठाकर अलीपुर ले गये। इस दल में निरापद, दीनदयाल, हेमचन्द्रदास इत्यादि थे। इन सब में मैं केवल हेमचन्द्रदास ही को पहचानता था। क्योंकि एक बार मेदनीपुर में मैं उनके मकान पर उतरा था। उस समय कौन जानता था कि इस कैदी होने की दशा में उनसे जेल के रास्ते पर फिर मुलाकात होगी? जब तक हम लोग अलीपुर के मजिस्ट्रेट की कचहरी में थे, तब तक हम लोगों को मजिस्ट्रेट साहब के सामने उपस्थित नहीं किया गया। केवल भीतर से वे लोग हुक्म लिखाकर ले आते थे। हम लोग फिर गाड़ी पर सवार हुए····· फिर कचहरी से हम लोग जेल पहुंचाकर वहां के कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिये गए। जेल ले जाने के पहले हम लोगों को स्नान करवाया गया। जेल के कपड़े पहने गये और हम लोगों के कुर्ते और धोतियां धुलने के लिये ले गये। चार दिन के पीछे स्नान करके हम लागों ने मानो स्वर्ग सुख अनुभव किया। स्नान के पीछे हम लोग अपनी-अपनी कोठरियों में पहुंचा दिये गये। मैं भी ज्यों ही अपने निर्जन कारावास में घुसा त्यों ही मेरी छोटी सी कोठरी का दरवाजा बन्द कर दिया गया। अलीपुर का कारावास ५ मई से आरम्भ हुआ और ६ मई को (ठीक एक साल २ दिन पीछे) वहां से हम लोगों का छुटकारा हुआ।

इस प्रकार का स्थान हम लोगों को रहने के लिए मिला, किन्तु इसके अतिरिक्त हमारे कृपानिधान कार्यकर्ताओं ने हमारी मेहमानदारी

करने में भी कोई बात उठा न रखी! हम लोगों के माल-असबाब में एक थाली और कटोरा था।

एक मास तक इस कटोरे द्वारा ही धींगाधींगी घृणा को संयम करना सिखाया गया। शौच क्रिया का सारा प्रबन्ध मानो इसी घृणा को संयम कराने के लिए किया गया था। मैं ऊपर कह चुका हूं कि निर्जन कारावास एक विशेष दण्ड है और इस दण्ड का मूल तत्त्व मुक्त आकाश और मनुष्य समाज से पृथक् रखना है। कमरे के बाहर शौच का प्रबन्ध करने से कहीं यह तत्त्व भंग न हो जावे, इस कारण कमरे के अन्दर ही दो टोकरी कोलतार से रंगी हुई रखी गई थी। सवेरे और सायंकाल को मेहतर आकर उन टोकरियों को साफ किया करता था, परन्तु तीव्र आन्दोलन करने और मर्मस्पर्शी वक्तृता देने पर अन्य समय पर भी आकर वह उनको साफ कर जाता, किन्तु असमय पाखाना जाने से प्रायः प्रायश्चित्त के रूप में कई घण्टे दुर्गन्ध सहनी पड़ती थी। दूसरी बार निर्जन कारावास मिलने पर इस विषय में कुछ सुधार (रिफार्म) किया गया। किन्तु अंग्रेज लोगों के रिफार्म में पुरानी बातों के मूल तत्त्व को पूर्णरूप से कायम रखकर केवल शासनप्रणाली में थोड़ा सा उलट-फेर ही होता है। इस बात के कहने की कोई आवश्यकता नहीं मालूम नहीं होती कि ऐसे छोटे से कमरे में शौच का प्रबन्ध रहने के कारण प्रायः सर्वदा और विशेषकर भोजन के समय और रात्रि को बड़ा ही कष्ट भोगना पड़ता था। मैं जानता हूं कि सोने के कमरे में ही पाखाने का प्रबन्ध होना विलायती सभ्यता का एक अंग है, किन्तु एक छोटे से कमरे में सोने, खाने और पाखाने तीनों का होना विचित्र बढ़ी हुई सभ्यता (Too much of a good thing) है। आदत बिगड़ी हुई होने के कारण हम भारतवासियों के लिए सभ्यता के इतने ऊंचे सोपान पर पहुंचना बड़ा ही कष्टकर है।

हम लोगों के सामान में और भी कई ऐसी चीजें थीं। नहाने के लिए एक बाल्टी थी। पानी रखने के लिए एक दूसरी टीन की नलनुमा बाल्टी थी और जेल के दो कम्बल थे। नहाने की बाल्टी आंगन में रखी होती थी, वहीं पर मैं स्नान किया करता था।.....

कैदी लोग कार्यकर्त्ताओं की इस दया को "कौव्वा नहान" कहकर उसका उपहास करते थे। सच है, मनुष्य को सन्तोष कभी नहीं होता। नहाने के प्रबन्ध से, पीने के पानी का प्रबन्ध और भी अच्छा था। वह ग्रीष्म ऋतु का समय था। मेरे छोटे से कमरे में वायु के प्रवेश की बिल्कुल ही मनाही थी किन्तु मई के महीने की उग्र और प्रचण्ड धूप बिना किसी

रोक-टोक के मेरे कमरे में आ सकती थी। वह मेरा छोटा-सा कमरा थोड़ी देर में जलती हुई भट्टी के समान हो जाता था। उस भट्टी में सिद्ध होते-होते जल की उत्कट प्यास को कम करने का एक मात्र उपाय उस टीन की बाल्टी का सील-गरम जल था। मैं एक बार उसी को पीता था, प्यास तो कहाँ बुझ सकती थी, वरन् पसीना निकलने लगता था और फिर प्यास भड़कती थी, परन्तु किसी-किसी के आंगन में एक मिट्टी का घड़ा रखा हुआ था। वे लोग उसको पूर्व जन्म की तपस्या का फ़ल समझकर अपने को धन्य समझते थे। उस अवस्था में घोर पुरुषार्थवादी को भी अदृष्ट पर विश्वास करना ही पड़ता था।..... इस गरम कमरे में जेल के बने हुए दो मोटे कम्बल मुझे बिछाने के लिए मिले। कोई तकिया मेरे पास न था इस कारण एक कम्बल को लपेट कर मैंने एक तकिया बनाया और दूसरे को बिछौना बनाया। जब गर्मी का कष्ट असहनीय हो जाता तब मैं जमीन पर लोट-पोट कर कुछ आराम अनुभव करता था। उस समय मुझे इस बात का अनुभव होता था कि वसुन्धरा माता के शीतल अंक को स्पर्श करने में कितना आनन्द है किन्तु जेल की मिट्टी का स्पर्श भी कुछ अधिक कोमल न था, इसलिए निद्रा में बाधा पड़ती और अन्त में कम्बल की शरण लेनी पड़ती थी। जिस किसी दिन पानी बरसता उस दिन बड़ा ही आनन्द आता था। किन्तु इसमें एक बड़ी भारी असुविधा यह थी कि आंधी और मेह के कारण बहुत-सी राख, पत्ते, तृण आदिक ताण्डव नृत्य करते-करते मेरे पिंजरे में आकर पानी के ऊपर इधर-उधर तैरने लगते थे। उस समय रात का भीगा कम्बल लेकर कमरे के कोने में भागने के अतिरिक्त और कुछ बन न पड़ता था। प्रकृति की यह लीला समाप्त होने पर भी जल से भीगी हुई मिट्टी जब तक सूख न जाती, तब तक निद्रा की आशा त्यागकर चिन्ता का ही आश्रय लेना पड़ता था। क्योंकि शौच क्रिया की टोकरी जहां पर रखी हुई थी, केवल एक वहीं पर सूखा रहता था किन्तु उस जगह कम्बल बिछाने की इच्छा न होती थी। यह सब असुविधा होते हुए भी मैं आंधी-पानी का आदर के साथ स्वागत करता था, क्योंकि बहुत-सी शुद्ध वायु आने से उस घर की गर्मी दूर हो जाती थी। मैंने जो अलीपुर के 'सरकारी होटल' का वर्णन किया है और आगे चलकर भी करूंगा, वह अपने कष्ट का दुखड़ा रोने के लिए नहीं किया, किन्तु यह दिखलाने के लिए कि सुसभ्य ब्रिटिश राज्य में मुकद्दमे में कैदियों के साथ कैसा अद्भुत सलूक किया जाता है। निर्दोषियों को दीर्घ काल के लिए कैसी यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। मैं अंग्रेज जाति के इतिहास व उनके आजकल के

आचार को देखकर उनके विचित्र और रहस्यमय चरित्र को बहुत पहले ही से ही जान गया था। इस कारण अपनी ओर से उन लोगों का ऐसा व्यवहार देखकर मुझे आश्चर्य व दु:ख न हुआ। साधारण दृष्टि से हम लोग सब भद्र सन्तान थे। बहुत बड़े-बड़े जमीनदारों के लड़के थे। कई एक वंश, विद्या, गुण और चरित्र में इंग्लैण्ड के शीर्ष स्थान मनुष्यों के समान थे। हम लोग जिस अभियोग में पकड़े हुए थे, वह कोई सामान्य हत्या, चोरी अथवा डकैती न थी। स्वदेश के लिए विदेशी राजपुरुषों के साथ युद्ध की चेष्टा करने अथवा समरोद्योग का षड्यन्त्र रचने का दोष हम पर लगाया गया था। इसके अतिरिक्त बहुत से लोगों का दोषी प्रमाणित होना भी असम्भव था। केवल पुलिस के सन्देह पर ही हम लोग पकड़े गये थे। ऐसी अवस्था में हम लोगों को चोर, डाकुओं के समान रखने से, चोर क्या, पशुओं के समान पिंजरे में बन्द करके पशुओं के लिए जो पदार्थ अखाद्य है, वे भोजन के लिए हमें देने से जल का कष्ट, भूख, प्यास, धूप, मेह, गर्मी, जाड़ा सहन करवाने से ब्रिटिश राजपुरुषों और ब्रिटिश जाति का गौरव कुछ बढ़ नहीं गया, किन्तु यह उनके जातीय चरित्र का दोष है। अंग्रेज के शरीर में क्षत्रियों के से गुण होने पर भी अपने शत्रु अथवा विरुद्धाचरण करने वालों के साथ व्यवहार करते समय वे लोग पूरे बनिये ही होते हैं।.....

कारावास में पहला दिन बड़ी शान्ति के साथ बीता। चारों ओर नई-नई चीजें देखकर मन में बड़ा ही आनन्द होता था। इस बाजार की लाल बाजार के थाने से तुलना करने पर मुझे यह अवस्था ही अधिक प्रिय मालूम होती थी। साथ ही भगवान् पर भरोसा था, इस कारण निर्जनता भी कुछ अधिक दु:ख न देती थी। जेल के अद्भुत भोजन देखकर भी मेरा मन कुछ विचलित न हुआ। मोटे-मोटे चावल उनमें मिट्टी, कंकर, मकौड़े, बाल इत्यादि तरह-तरह का मसाला पड़ा हुआ, फीकी दाल, जिसमें अधिक पानी ही होता था, तरकारी की जगह उबली हुई घास-पात, यही हम लोगों का भोजन था। इससे पहले मुझे यह पता न था कि मनुष्य के भोजन को इतना स्वादहीन और नि:स्सार भी बनाया जा सकता है। इस गाढे काले और रोते हुए साग को देख कर मैं एक बार डर-सा गया। दो एक कौर खाकर मैंने बड़ी भक्ति के साथ उसको प्रणाम किया और बाकी छोड़ दिया। सब कैदियों को एक ही प्रकार ही तरकारी मिलती है और यदि एक बार कोई तरकारी मिलने लगे तो अनन्तकाल तक फिर वही चलती रहती। इस समय साग का राज्य था। दिन बीते, पक्ष बीते, महीना बीत गया, किन्तु दोनों समय वही दाल, वही भात और

वही साग। चीजों का बदलना तो दूर रहा, उनके रूप तक में लेशमात्र का परिवर्तन भी न होता था। उन सबका वही नित्य सनातन अनाद्यनन्त अद्वितीय रूप ही रहा करता था। दो दिन में ही कैदी को इस नश्वर माया जगत् के वास्तविक स्थायित्व का पता लग जाता था। भोजन के बारे में भी मेरा भाग्य और कैदियों से कुछ अच्छा था। इसका कारण डाक्टर साहब की दया थी। उन्होंने मेरे लिए अस्पताल से दूध का बन्दोबस्त कर दिया, जिससे कि मैं कई दिन तक साग के दर्शन से बचा रहा।

पहली रात को मैं कुछ जल्दी सो गया, किन्तु निश्चिन्त हो निद्राभोग करना निर्जन कारावास के नियमों के विरुद्ध है। निश्चिन्त निद्रा भोग से कहीं कैदियों में सुख की लालसा जागृत न हो जावे, इसलिए यह नियम रखा गया है कि जितनी बार पहरा बदला जावे उतनी बार चिल्ला चिल्लाकर कैदी उठाये जावें। और जब तक कैदी आवाज न दें, उनको छोड़ा न जाय। जो लोग छः डिग्री की ओर पहरा देते थे, वे कभी-कभी इस कर्तव्य को पालन करने से विमुख भी रहते थे। सिपाहियों में कठोर कर्तव्य परायणता की अपेक्षा दया और सहानुभूति का भाव ही अधिक पाया जाता था, विशेषकर हिन्दुस्तानी सिपाहियों में। परन्तु कई एक सिपाही अपने कर्तव्य को नहीं भूले। वे हम लोगों को जगाकर पूछते थे, बाबू अच्छे हो न? यह असमय की दिल्लगी हर बार अच्छी न मालूम होती थी। लेकिन मैं यह समझता था कि जो लोग ऐसा करते हैं वे बेचारे सरल चित्त से केवल नियम पालन करते हैं। उनका जगाना प्रतिदिन बहुत बुरा लगने पर भी कई दिन मैंने उसको सहा, किन्तु अपनी निद्रा की रक्षा करने के लिए अन्त में मुझ को उन्हें डांटना पड़ा। दो चार दिन डांटने पर रात को कुशल संवाद लेने की प्रथा उठ गई।

दूसरे दिन सवेरे चार बजकर पन्द्रह मिनट पर जेल का घण्टा बजा। यह घण्टा कैदियों के जगाने का पहला घण्टा था। उसके कई मिनट पीछे दूसरा घण्टा बजता है। जिस पर कि कैदी लोग कतार बांधकर बाहर आते हैं और हाथ मुंह धोकर, लपसी खाकर काम करना आरम्भ करते हैं। घण्टे की ठनाठन में नींद आना असम्भव समझकर मैं भी उठ बैठा। पांच बजे जेल का दरवाजा खोला जाता है। मैं भी हाथ मुंह धो कमरे में आ बैठा। थोड़ी ही देर पीछे लपसी मेरे दरवाजे पर भी हाजिर हुई किन्तु उस दिन मैंने वह लपसी न खाई, केवल आँखों से देख लिया। इस घटना के कई दिन पीछे एक परमान्न का भोग लगाया।..... केवल लपसी ही बंगाली कैदियों के लिए एक मात्र पुष्टिकारक भोजन है और सब पदार्थ सर्वथा सार शून्य हैं, परन्तु लपसी का स्वाद इस प्रकार होता

है कि उसे केवल भूख ही के समय खाया जा सकता है और वह भी अत्यन्त कष्ट के साथ, मन को बहुत कुछ समझाकर, तब उसका खाना सम्भव है।

मैंने उस दिन साढ़े ग्यारह बजे स्नान किया। पहले चार पांच दिन मुझे उन्हीं कपड़ों को पहनना पड़ा जिनको कि मैं अपने घर से पहन कर आया था। परन्तु गोशाला का बूढा वार्डर (Warder) कैदी जो मेरी निगरानी करने के लिए नियत किया गया था, मेरे नहाने के लिए एक छोटी सी डेढ हाथ चौड़े कपड़े की लंगोटी ढूंढ लाया। जब तक मेरा एकमात्र कपड़ा सूख न जाता तब तक मैं उसी लंगोटी को पहन कर बैठा रहता था। मुझे अपनी धोती कचारना अथवा बर्तन मांजना नहीं पड़ता था, इस काम को भी गोशाला ही का एक कैदी मेरे लिए किया करता था। ग्यारह बजे दिन को भोजन मिलता था। कमरे के भीतर की कोठरियों से दूर रहने के लिए मैं प्राय: गर्मी की तेज धूप को सहकर आंगन में ही भोजन करता था। पहरे वाले भी इस में किसी प्रकार की बाधा न डालते थे। सायं काल को पांच-साढे पांच बजे भोजन मिलता था। इसके पीछे फिर दरवाजा खोलने की पूरी मनाही थी। सात बजे सायं काल का घण्टा बजता था, उस समय जमादार वार्डर कैदियों को एकत्रित कर उच्च स्वर से सब के नाम पुकारता था, उसके पीछे कैदी लोग अपने-अपने स्थान पर जाते थे। थके मांदे कैदी इस समय निद्रा देवी की आराधना करके जेल खाने के एकमात्र सुख को अनुभव करते थे। जिनके चित्त दुर्बल होते, वे इस समय अपने दुर्भाग्य और जेल के भविष्य के कष्ट को सोच सोचकर रोते थे। भगवद् भक्त रात्रि के एकान्त में ईश्वर की निकटता को अनुभव कर ध्यान अथवा प्रार्थना में नियुक्त हो आनन्द भोग करते थे। वह अलीपुर की जेल जो कि अभागे, पतित और समाज पीड़ित तीन सहस्र ईश्वर के जीवों के लिए बहुत बड़े कष्ट की जगह है, रात को बिल्कुल सुनसान हो जाती थी।

इस अभियोग में मेरे साथ और जो लोग पकड़े गये थे, उनसे मेरी मुलाकत बहुत कम होती थी। वे लोग एक दूसरे स्थान पर रहते थे। छ: डिकरी के पीछे की ओर छोटे-छोटे कमरों की दो कतारें थीं। उन दो कतारों में सब मिलाकर चवालीस कमरे थे, इसी कारण उसको चवालीस डिकरी कहते थे। इसी डिकरी की एक पंक्ति में अधिकतर असामी ही रहते थे। वे लोग छोटी कोठरी (Cell) में रहने पर भी निर्जन कारावास के कष्ट को नहीं जानते थे, क्योंकि एक-एक कमरे में तीन-तीन आदमी

तक रह सकते थे। जेल की दूसरी ओर एक और डिकरी थी जिसमें बारह-बारह आदमी तक रह सकते थे। जिनको भाग्य से यह डिकरी मिलती थी वे लोग अधिक सुख में रहते थे। उस डिकरी में बहुत से लोग एक ही कमरे में रहते थे। उन लोगों को रात दिन बातचीत करने का अवसर मिलता और मनुष्य संसर्ग होने के कारण वे बड़े सुख से अपना दिन बिताते थे। परन्तु उन लोगों में भी एक मनुष्य इस सुख से वंचित था। ये हेमचन्द्रदास थे। मैं नहीं जानता कि कार्यकर्त्ताओं को इनसे इतना भय अथवा इन पर क्रोध क्यों था। उन लोगों ने इतने मनुष्यों में निर्जन कारावास का कष्ट भोगने के लिए केवल इनको ही चुना। हेमचन्द्र स्वयं यह समझते थे कि जब पुलिस बहुत चेष्टा करने पर भी उनसे उनके दोष स्वीकार न करा सकी, तब उनके ऊपर यह क्रोध प्रकट किया गया। उनको इस डिकरी के एक बहुत ही छोटे से कमरे में बन्द करके उसके बाहर का दरवाजा बन्द कर दिया जाता था। मैं ऊपर कह आया हूं कि निर्जन कारावास दण्ड की अन्तिम अवस्था है।

समय-समय पर पुलिस अनेक जाति के, अनेक वर्ण के, अनेक रूप के गवाहों को ला-ला कर पहिचानवाने का खेल करती थी। उस समय हम सबों को दफ्तर के सामने एक लम्बी कतार में खड़ा होना पड़ता था। जेल के कार्यकर्त्ता लोग हम लोगों के साथ जेल के भिन्न भिन्न मुकदमों के असामियों को मिलाकर उन लोगों से पहचानवाते थे। इन असामियों में शिक्षित अथवा भद्र पुरुष एक भी न था।..... गिरफ्तारी के पीछे इसी प्रकार एक दिन के परेड में मैंने अपने भाई वारीन्द्र को पहले पहल देखा, किन्तु उस समय मेरी उससे कोई बात न हुई।

नरेन्द्रनाथ गुसाई इस समय प्रायः मेरे पास ही खड़े होते थे इस कारण मेरा अधिक परिचय उनसे ही हुआ। गुसाई लम्बा, साफ, बलिष्ठ और सुन्दर जवान था, किन्तु उसकी आंखों के भाव से कुवृत्ति प्रकट होती थी। बातचीत से भी मैंने उसमें कोई बुद्धिमानों का लक्षण नहीं पाया। इस बारे में और अन्य युवकों में बड़ा भेद था। उन लोगों के मुखों पर प्रायः उच्च और पवित्र भावों का ही अधिक प्रकाश दीखता था, उनकी बातों से तीक्ष्ण बुद्धि, ज्ञान की लालसा और महत् स्वार्थहीन आकांक्षा ही प्रकट होती थी। गुसाई की बातें भी निर्बोध और लघु चेतस् मनुष्यों की सी होने पर भी तेज और साहस से भरी हुई होती थीं। उनको उस समय अपने छूट जाने का पूर्ण विश्वास था। वे कहा करते थे, मेरे पिता मुकद्दमे के कीड़े हैं, उनसे पुलिस कभी भी न जीत सकेगी। मेरा बयान

भी मेरे विरुद्ध न होगा और बात प्रमाणित हो जायेगी कि पुलिस ने मुझे शारीरिक कष्ट देकर मुझ से बयान लिये हैं। मैंने पूछा इस बात का गवाह कौन है? गुसाई ने वैसे ही उत्तर दिया मेरे पिता ने सहस्त्रों ही मुकद्दमे किये हैं, वे इन सब बातों को खूब समझते हैं। गवाहों की कमी न होगी! इसी प्रकार के मनुष्य सरकारी गवाह (Approver) बना करते है।

जेलर योगेन्द्र बाबू दक्ष और योग्य पुरुष थे, बहुमूत्र रोग से पीड़ित होने पर भी स्वयं सब काम देखा करते थे। वे साहब के चरित्र को खूब समझते थे, इस कारण जेल में सदा न्याय का पालन और निष्ठुरता को नष्ट करने का प्रयत्न किया करते थे।..... अलीपुर की जेल में बम के अभियोग के असामियों को देख हमारे जेलर महाशय बड़े भयभीत और चिन्तित हो रहे थे। वे बेचारे यह सोचकर और भी घबराया करते कि न जाने ये सब उग्र स्वभाव के तेजस्वी बंगाली लड़के किस दिन क्या कर बैठें। वे अपने लिए कहा करते थे कि ताड़ के पेड़ की चोटी तक पहुंचने में केवल डेढ इन्च ही बाकी है। किन्तु वे उस डेढ इन्च का आधा ही चढ पाये। अगस्त के अन्त में बुकानन साहब ने आकर जेल प्रबन्धों को देखकर बहुत ही संतोष प्रकट किया। जेलर महाशय ने बड़े आनन्दित होकर कहा कि मेरे रहते साहब का अन्तिम आना है, अब मेरी पेंशन के विषय में कोई डर की बात नहीं रही। हां ! मनुष्य अन्धा होता है। किसी कवि ने सच कहा कि भगवान् ने दु:खी मनुष्यों के ऊपर दो बड़े उपकार किये हैं, पहला मनुष्य के भविष्य को घोर अन्धकार से ढक रखना है और दूसरा उसकी एक मात्र सहारा देने वाली और ढाढस बंधाने वाली अन्धी आशा है। इस घटना के दो चार दिन पीछे ही नरेन्द्र गुसाई कन्हैयालाल दत्त के हाथ मारा गया। बुकानन साहब जल्दी-जल्दी जेल में आने लगे। उसका फल यह हुआ कि योगेन्द्र बाबू असमय में ऊपरी नौकरी से अलग कर दिये गये। इस पर उनका रोग और भी बढ़ गया। और इसी से उनका देह छूटा।.....

जिस प्रकार जेल के भिन्न भिन्न विभागों के कर्त्ताधर्ता बाबू योगेन्द्रनाथ नामक एक बंगाली थे, वैसे ही अस्पताल के भी बंगाली डाक्टर बाबू वैद्यनाथ ही मुख्य थे। उनके अफसर डाक्टर डेली एमर्सन साहब के सदृश दयावान् तो न थे। किन्तु बड़े ही भद्र और समझदार मनुष्य थे। वे बालकों के शान्त आचरण तथा उनकी प्रफुल्लता और आज्ञा पालन को देख बहुत ही प्रशंसा किया करते और थोड़ी उमर वाले बालकों के साथ हंसी-दिल्लगी तथा दूसरे असामियों से राजनीति, धर्म और विषय में

चर्चा किया करते थे। डाक्टर साहब आयरलैण्ड निवासी थे, उस उदार जाति के बहुत से गुण उनमें भी थे, उनमें निठुराई कुछ भी न थी।.....

ये भूल से समझते थे कि यदि जेल में किसी प्रकार की कोई दुर्घटना होना सम्भव है तो केवल मजबूत बालकों ही से, परन्तु अन्त में इसका ठीक उल्टा हुआ। हस्पताल में जो घटना हुई, उसके करने वाले व्याधि के फंसे हुए अत्यंत दुर्बल और सूखी हुई काया वाले सत्येन्द्र नाथ वसु, रोगक्लिष्ट, धीर और स्वभाव से ही कम बोलने वाले कन्हैयालालदत्त ही थे। डाक्टर डेली में अनेक गुण होते हुए भी बाबू वैद्यनाथ ही उनको सत्कर्म की ओर ले जाते थे। वास्तव में बाबू वैद्यनाथ के सदृश हृदयवान् मनुष्य मैंने न कभी पहले देखा था और न आगे देखने की आशा ही है, उन्होंने मानो दया और उपकार करने के लिए ही जन्म लिया था। किसी के दु:ख की बात सुनते ही उसके दु:खों को कम करने के लिए दौड़ना, उनके चरित्र का मानो स्वाभाविक गुण था।..... साधारण कैदियों और **'वन्देमातरम्'** के कैदियों में वे किसी प्रकार का भेद न रखते थे। किसी को पीड़ित देखते ही वे बड़े यत्न से अस्पताल ले जाकर रखते और जब तक पूर्ण रूप से वह स्वास्थ्य लाभ न कर लेता तब तक उसको छोड़ने की इच्छा न करते थे। यही दोष उन के नौकरी से निकाले जाने का कारण हुआ। गुसांई की हत्या के पीछे कार्यकर्ताओं ने उनके आचरण पर सन्देह प्रकट कर, अन्याय के साथ उनको नौकरी से निकाल दिया।.....

निर्जन कारावास में पहले दिन जो कुछ मेरे मन की अवस्था थी, वह मैं वर्णन कर चुका हूं। यहां पर मुझे कुछ दिन बिना किसी पुस्तक इत्यादि के ही बिताने पड़े। इसके पीछे एक दिन एमर्सन साहब ने आकर मुझे अपने मकान से धोती, कुर्त्ता और पढ़ने की किताबें मंगवाने की आज्ञा दे दी। मैंने जेल के कर्मचारियों से दवात, कलम और जेल का छपा हुआ चिट्ठी का कागज मंगवाकर एक पत्र अपने पूजनीय मौसा जी को, जो 'संजीवनी' पत्र के सुप्रसिद्ध सम्पादक थे, धोती, कुर्त्ता और पढ़ने की किताबों में गीता और उपनिषद् भेजने को लिखा। दो चार दिन पीछे ये पुस्तकें मेरे हाथ में पहुंचीं। इनके पहले निर्जन कारावास के महत्त्व को समझने का मुझे अवसर मिल चुका था। मैंने जान लिया कि इस प्रकार के कारावास में दृढ और सुप्रतिष्ठित बुद्धि भी क्यों नष्ट होने लगती है और मनुष्य थोड़े ही दिनों में उन्माद की अवस्था को क्यों प्राप्त हो जाता है। किन्तु साथ ही मैं यह भी समझ गया कि इस प्रकार के निर्जन कारावास में ही भगवान् की असीम दया को अनुभव करने

और उनके साथ युक्त होने का कैसा दुर्लभ अवसर मिलता है।.....
किन्तु लम्बे-लम्बे दिनों को बिताने का कोई भी उपाय न था। मैंने अपने मन को समझाया। जबरदस्ती उसमें चिन्ता को प्रवेश कराया, किन्तु इस पर भी दिनों दिन मेरा मन विद्रोही बनकर हाहाकर मचाने लगा। मानो काल उसको असहनीय बोझ के समान पीड़ा दे रहा था। उस बोझ से मेरा मन टुकड़े-टुकड़े होने लगा। उसमें अब सांस लेने तक की शक्ति न रही, जैसे स्वप्न में शत्रु द्वारा आक्रमण किया हुआ दम घुट कर मरने पर भी हिलने-डोलने अथवा हाथ पैर फैंकने की शक्ति नहीं रखता, इस प्रकार की अपनी अवस्था को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैं कभी बेकार अथवा निश्चेष्ट रहना पसन्द न करता था, किन्तु मैंने कई बार अकेले रह कर चिन्ता में अपना समय व्यतीत किया। परन्तु इस समय न जाने ऐसी क्या मन की दुर्बलता हुई कि थोड़े ही दिनों की निर्जनता से मैं इतना व्याकुल हो गया। मैं सोचने लगा कि शायद उस स्वेच्छा से प्राप्त निर्जनता और इस जबरदस्ती की निर्जनता में बड़ा भेद है। अपने घर में अकेले बैठकर समय बिताना एक और बात है और दूसरे की इच्छा से कारागार में निर्जनवास करना दूसरी बात है। अपने घर में जब चाहे तब ही मनुष्य का आश्रय लिया जा सकता है। पुस्तकों के ज्ञान और उनकी ललित भाषा मित्रों के प्रिय सम्भाषण रास्ते का कोलाहल तथा जगत् के विविध दृश्यों से मन को तृप्त और हृदय को शीतल किया जा सकता है, किन्तु यहां पर कठिन नियमों में रह कर दूसरों की इच्छा के अनुसार समस्त मनुष्य समाज से दूर रहना पड़ता है। कहावत है जो निर्जनता को सह सकता है वह या तो देवता है और नहीं तो पशु है। यह संयम साधारण मनुष्य से बाहर है। पहले मैं भी इस बात पर विश्वास नहीं करता था, परन्तु अब मैं समझ सकता हूँ कि योग साधना करने वालों को भी यह साधन सहज नहीं है। इटली देश के राजहत्याकारी ब्रेशी का भयानक परिणाम मुझे इस समय याद आया। उनके निठुर न्यायाधीशों ने उनको प्राण दण्ड न देकर सात वर्ष के लिए निर्जन कारावास का ही दण्ड दिया था। एक वर्ष बीतते-बीतते वे पागल हो गये, परन्तु उन्होंने तो भी इतने दिन सहन किया ही था। क्या मेरे मन की दृढता इससे भी कम थी? उस समय मेरी समझ में यह न आया कि भगवान् मेरे साथ केवल खेल ही न खेल रहे थे, किन्तु खेल के बहाने वे मुझे कोई प्रयोजनीय अग्नि शिक्षा दे रहे थे। प्रथम यह कि मन की दृढ अवस्था होने से निर्जन कारावास का कैदी जन्मतत्त्व की ओर जाने लगता है। भगवान् ने यह सब दिखाकर मुझे निर्जन कारावास की अमानुषिक निठुराई

को समझाया और मुझको यूरोप की जेल प्रणाली का घोर विरोधी बना दिया जिससे कि मैं अपनी शक्ति भर अपने देश के लोगों और जगत् के मनुष्यों के चित्तों को इस अन्याय से हटाकर, उनको दया से भरी हुई जेल के पक्ष में लाने की चेष्टा करूँ। मुझे याद पड़ता है कि पन्द्रह वर्ष हुए, जब मैं विलायत से लौटकर अपने देश को आया था उस समय बम्बई में इन्दुप्रकाश नामक संवाद पत्र में मैंने कांग्रेस की निवेदन नीति (Begging policy) के विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद पूर्ण लेख लिखना आरम्भ किया था। उस समय स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे ने युवकों के हृदय पर इन लेखों का प्रभाव पड़ता देखकर लेखों के बन्द करने के उद्देश्य से मेरे साथ आधे घण्टे तक तर्क किया था और इस कार्य का परित्याग करने के लिए कांग्रेस के किसी कार्य को ग्रहण करने के लिए मुझे उपदेश दिया था। रानाडे महोदय की इस अचिन्तित युक्ति से मैं भी बहुत ही हैरान और असन्तुष्ट हो गया था। और उस भार को अपने ऊपर लेने से मैंने इन्कार कर दिया था।

उस समय मैं नहीं जानता था कि यह बात केवल एक दूर के भविष्य का पूर्वाभास है और एक दिन स्वयं भगवान् एक वर्ष के लिए जेल में रख कर उस प्रणाली की निठुराई तथा उसके संशोधन की आवश्यकता मुझे समझायेंगे, लेकिन मैं यह समझता हूं कि आजकल की राजनीतिक अवस्था में इस जेल की प्रणाली का संशोधन होना असम्भव नहीं है, किन्तु इस बात के भय से कि कहीं स्वराज्य प्राप्त भारत में भी यह विदेशी सभ्यता का नारकीय अंश न रह जाय तथा इस युक्ति को दिखाने के लिए मैंने जेल में ही अपनी अन्तरात्मा के सामने इसका प्रचार करने की प्रतिज्ञा की। भगवान् का दूसरा उद्देश्य मेरे मन के सम्मुख रख कर उसका चिरकाल के लिए नाश कर देना था। जो मनुष्य योगसाधना करना चाहता है उसके लिए जनता और निर्जनता एक समान होनी चाहिए। वास्तव में थोड़े ही दिनों में मेरी यह दुर्बलता जाती रही। अब मुझे ऐसा मालूम होता है कि यदि मैं दस वर्ष अकेला रहूं तो भी मेरा मन तनिक न घबराये। मंगलमय भगवान् अमंगल से भी परम मंगल उत्पादन करते हैं। तीसरी शिक्षा मुझे यह मिलनी थी कि केवल मेरी ही चेष्टा से योग साधन नहीं होगा। श्रद्धा तथा पूर्ण आत्मसमर्पण सिद्धि लाभ करने का उपाय है। भगवान् स्वयं प्रसन्न होकर जो शक्ति सिद्धि अथवा आनन्द देंगे, उसी को ग्रहण कर, उनके ही कार्य में लगना मेरी योग लालसा का एक मात्र उद्देश्य होना चाहिए।.....

अभियुक्त बालकों की हंसी दिल्लगी सुनने और उनका आमोद-प्रमोद देखने में बड़ा आनन्द मालूम होता था, नहीं तो अदालत का समय बड़ा ही रूखा मालूम होता था। साढ़े चार बजे बड़े आनन्द के साथ कैदियों की गाड़ी पर सवार हो हम लोग जेल लौट आया करते थे।

पन्द्रह सोलह दिन की कैद के पीछे स्वाधीन मनुष्य जीवन के संसर्ग से तथा एक दूसरे से बातचीत करने का अवसर प्राप्त होने से कैदियों को बड़ा ही आनन्द हुआ। गाड़ी में बैठते ही उन लोगों में हंसी दिल्लगी का फव्वारा खुल जाता था और दस मिनट तक, जब तक वे गाड़ी पर रहते मुहूर्त्त मात्र के लिए भी वह स्रोत बन्द न होता। पहले दिन बड़े ही सम्मान के साथ हम लोगों को अदालत में ले गये। हम लोगों के साथ एक यूरोपियन सार्जेण्ट की छोटी पलटन थी। उन सब के पास भरी हुई पिस्तौलें रहा करती थी। गाड़ी पर चढ़ते समय शस्त्रधारी पुलिस का एक दल हम लोगों को घेरकर खड़ा हो जाता और गाड़ी के पीछे से कूच की आवाज करता। गाड़ी से उतरते समय भी यही प्रबन्ध था।..... बोध होता है कि इसी कारण इन लोगों को इतने बड़े सम्मान के साथ ले जाते हैं, कई दिन तक यही ठाठ रहा। परन्तु पीछे से यह ठाठ धीरे-धीरे कम होने लगा। अन्त में केवल दो चार सार्जेंट हम लोगों को ले जाया करते और ले आया करते थे। गाड़ी से उतरते समय भी वे लोग हम लोगों पर कुछ अधिक दृष्टि न रखते थे, वे यह भी न देखते थे कि हम लोग जेल में किस प्रकार घुसते हैं। हम लोग जेल में इस प्रकार प्रवेश किया करते कि मानो स्वाधीन भाव से घूम-फिर कर लौट रहे हैं। अब हम लोग बिना किसी रोक-टोक के पुस्तकें, रोटी, चीनी जो चाहते अदालत के भीतर ले जाते। पहले-पहल छिपाकर और फिर खुल्लमखुल्ला ले जाया करते थे। सार्जेण्टों का शीघ्र विश्वास हो गया कि हम लोग वहां पर पिस्तौल अथवा बम का गोला न चलावेंगे। किन्तु मैंने देखा कि एक भय सार्जेण्टों के हृदय से दूर न हुआ। वह यह था कि न जाने किस दिन किस के मन में मेजिस्ट्रेट साहब के माननीय मस्तक पर जूता फेंकने की बुरी इच्छा उत्पन्न हो जाय और यदि ऐसा हुआ तो सर्वनाश हो जायेगा। इसी कारण जूता पहन कर भीतर जाना निषिद्ध था। इस विषय में सार्जेण्ट लोग सर्वदा होशियार रहते थे और किसी बात पर मैंने उनको विशेष सावधान रहते नहीं देखा।

मुकद्दमे का स्वरूप कुछ विचित्र ही था। मेजिस्ट्रेट, वकील, गवाह, गवाही सबूत के पदार्थ (exhibit) तथा असामी सब ही विचित्र थे।

प्रतिदिन गवाहों तथा पदार्थों का अविराम स्रोत जारी रहता था। वकीलों का नाटक का सा अभिनय उस बालक स्वभाव मैजिस्ट्रेट की बालकों की सी चपलता और लघुता, उन अपूर्व असामियों के अपूर्व भाव इत्यादि देखते-देखते अनेक बार यह कल्पना हृदय में उत्पन्न होती थी कि हम लोग ब्रिटिश न्यायालय में नहीं बैठे हैं, वरन् किसी नाटक घर के तमाशे में अथवा कल्पना पूर्ण उपन्यास के राज्य में बैठे हुए हैं। अब मैं उस स्वराज्य के विचित्र जीवों का संक्षिप्त वर्णन करता हूं।

इस नाटक के प्रधान अभिनेता सरकार बहादुर के वकील नार्टन साहब थे। वे प्रधान अभिनेता इसलिए थे क्योंकि वे ही इस नाटक के रचने वाले सूत्रधार (Stage manager) तथा गवाहों के स्मारक (prompter) भी थे। ऐसी विचित्र प्रतिभा के मनुष्य इस जगत् में विरले ही होते हैं। नार्टन साहब मद्रासी हैं इस कारण ऐसा बोध होता है कि बंगाल देश की बैरिस्टर मण्डली की प्रचलित नीति और भद्रता से वे अनभ्यस्त, अनभिज्ञ हैं। वे किसी समय जातीय महासभा के एक नेता भी थे, इस कारण ऐसा बोध होता है कि विरुद्धाचरण वा प्रतिवाद सहने में वे असमर्थ हैं तथा विरुद्धाचरण करने वाले पर शासन करने के अभ्यस्त हैं। इस प्रकार की प्रकृति को लोग सिंह स्वभाव कहते हैं। मैं नहीं कह सकता कि नार्टनसाहब कभी मद्रास कार्पोरेशन के सिंह भी थे कि नहीं, परन्तु निस्सन्देह अलीपुर कोर्ट के वे सिंह ही थे। उनके कानूनी ज्ञान की गम्भीरता में मुग्ध होना कठिन था। कानून का ज्ञान उनको ऐसा ही था जैसा गर्मी में जाड़ा। किन्तु उनकी वक्तृता का अनर्गल स्रोत उनकी बातों की चिकनाहट बातों के बल से छोटी सी गवाही को बड़ा बनाने की अद्‌भुत शक्ति अमूलक वा अल्पमूलक उक्तियों की दुःसाहसिकता, गवाहों और छोटे (Junior) बैरिस्टरों पर तम्बीह तथा सफेद को काला बताने की मनमोहिनी शक्ति में नार्टन साहब की अतुलनीय प्रतिभा को देख मुग्ध होना पड़ता था।..... नार्टन साहब उस समय केवल अपना धर्म पालन कर रहे थे। सरकार बहादुर उनको प्रतिदिन हजार रुपया देती थी और नार्टन साहब भी जान लड़ा कर इस बात की चेष्टा करते थे कि इस वृथा अर्थ व्यय से कहीं सरकार बहादुर का नुकसान न हो। परन्तु जो मुकदमा राजनीतिक होता है, उसमें विशेष उदार भाव से अभियुक्त को हर प्रकार की सुविधा देना तथा सन्देह युक्त अथवा अनिश्चित प्रमाणों पर अधिक दृष्टि न डालना ये ब्रिटिश कानून के दो नियम हैं। यदि नार्टन साहब इन नियमों का सर्वदा स्मरण रखते तो हम समझते हैं कि उनके अभियोग में कोई हानि होनी सम्भव न थी। दूसरी ओर कई एक निर्दोषी

मनुष्यों को निर्जन कारावास की यन्त्रणा भोगनी न पड़ती तथा दीन और निरीह अशोक नन्दी का जीवन भी न जाता। वकील साहब की सिंह प्रकृति ही इस दोष का मूल कारण थी। जिस प्रकार हलिगशेद, हल व प्लूटार्क ने शेक्सपीयर (एक अंग्रेजी कवि) के लिए ऐतिहासिक नाटक के उपादान पहले ही से संग्रह कर रखे थे। हम लोगों के इस नाटक के शेक्सपीयर नार्टन साहब थे। परन्तु शेक्सपीयर और नार्टन में मैंने एक बड़ा भेद यह पाया कि शेक्सपीयर संग्रह किये हुए उपादानों में कई एक अंक अंश बीच बीच में छोड़ देते थे, परन्तु नार्टन साहब अच्छा, बुरा, झूठा, सच्चा, संलग्न, असंलग्न, "अणोः अणीयान् महतो महीयान्" जो कुछ पाते कुछ भी नहीं छोड़ते और उनके अतिरिक्त उन्होंने स्वयं अपनी कल्पना से बहुतेरे उपक्षेप, अनुमान तथा संकेत (Suggestions inferences hypotheses) इकट्ठा कर ऐसा सुन्दर प्रबन्ध (Plot) रचा कि शेक्सपीयर, डैफो इत्यादि सर्वश्रेष्ठ कवि व उपन्यास लेखक भी इन महाप्रभु से हार गये। निन्दा करने वाले यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार फालूमटाफ के होटल के हिसाब में एक आने का भोजन और असंख्य पीपे शराब का समावेश रहता था उसी प्रकार नार्टन के प्रबन्ध में एक रत्ती सच्चे प्रमाण के साथ दस मन अनुमान वा प्रक्षेप होता था, किन्तु इस प्रकार निन्दा करने वाले को भी इस प्रबन्ध की सुन्दरता तथा रचना कौशल की प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। नार्टन साहब ने इस नाटक का नायक बनाना मुझे ही पसन्द किया। इस बात को देख मैंने भी बड़ा आनन्द अनुभव किया। जिस प्रकार मिल्टन की 'Paradise lost' नामक पुस्तक में शैतान नायक है उसी प्रकार मैं भी नार्टन साहब के (Plot) के कल्पनाप्रसूत महाविद्रोह का केन्द्रस्वरूप था। मैं एक असाधारण, तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न, क्षमावान् तथा प्रतापशाली था। मैं ही राष्ट्रीय आन्दोलन का आदि अन्त तथा स्रष्टा और ब्रिटिश साम्राज्य के संहार का प्रयत्न करने वाला था। किसी उत्तम और तेजस्वी अंग्रेजी लेख को देखते ही नार्टन साहब उछल पड़ते और उच्च स्वर से कहते 'अरविन्द घोष!'। आन्दोलन के जितने कुछ भेद्य अभेद्य सुशृङ्खलित अंग अथवा अप्रकाशित फल हैं, वे सब ही अरविन्द घोष की सृष्टि है, तथा अरविन्द घोष की सृष्टि में सूक्ति सिद्ध होने पर भी निश्चय कोई न कोई भेद्य अभिसन्धि गुप्त भाव से निहित होगी ही। मैं समझता हूं कि नार्टन साहब का विश्वास था कि यदि अरविन्दघोष पकड़ा न जाता, तो प्रायः दो वर्ष के भीतर ही अंग्रेजों के भारत साम्राज्य का विध्वंस हो जाता। यदि मेरा नाम किसी फटे हुए कागज के टुकड़े पर भी लिखा मिलता तो वे बड़े प्रसन्न होते

और बड़े आदर के साथ उस परम मूल्यवान् प्रमाण को मजिस्ट्रेट साहब के चरण कमलों में अर्पण करते। दु:ख इस बात का है कि मैंने अवतार रूप से जन्म ग्रहण नहीं किया था, नहीं तो उसी समय मेरे प्रति नार्टन साहब की इतनी भक्ति थी कि मेरे ध्यान में मुग्ध हो, वे तत्काल ही मुक्ति प्राप्त करते, और हम लोगों के कारावास के समय तथा गवर्नमेण्ट के अर्थ व्यय दोनों में कमी हो जाती। जिस समय सेशन जज की अदालत में मैं निर्दोषी प्रमाणित हुआ, उसी समय नार्टन साहब के बनाये हुए प्रबन्ध (Plot) का तथा उसका गौरव सब नष्ट हो गया। अरसिक जज बीचक्राफ्ट ने हैमलेट नाटक (एक अंग्रेजी नाटक) से (हैमलेट नाटक के नायक) को निकाल कर बीसवीं शताब्दी के इस श्रेष्ठ काव्य को कुरूप बना दिया। यदि समालोचकों को ही काव्य परिवर्तन करने का अधिकार दिया जाये तो भला इस प्रकार की दुर्दशा क्यों न हो? नार्टन साहब को एक और दु:ख यह था कि कई एक गवाह भी इसी प्रकार के अरसिक थे और उनके रचे हुए प्रबन्ध के अनुसार गवाही देने में सहमत न थे। इस कारण नार्टन साहब क्रोध में लाल हो जाते और सिंह के समान गर्जन कर गवाहों के प्रमाण को विकम्पित कर उनको सुखा देते।.....

यदि नार्टन साहब को इस नाटक के रचयिता, प्रधान अभिनेता व सूत्रधार कहा जावे तो मेजिस्ट्रेट बर्ले को उसका पृष्ठ पोषक (Patron) कहना चाहिए। बोध होता है कि बर्ले साहब स्काच जाति के गौरव हैं। उनके चेहरे पर स्काटलैण्ड के स्मारक चिह्न हैं। उनका रंग अति सफेद, डील लम्बा तथा शरीर दुर्बल है, उनके उस लम्बे लकड़ी से देह पर एक छोटा सा मस्तक देख यह मालूम होता था कि मानो अभ्रभेदी आक्टरलोनी मानुमंट पर एक छोटा सा आक्टरलोनी बैठा हुआ है। अथवा क्लियोपैटरा के odelisk की चोटी पर एक पक्का नारियल लगा हुआ है। उनके सिर के बाल मटियाले रंग के थे (Sandy haired) तथा स्काटलैण्ड का समस्त हिम वा बर्फ मानो उनके मुख पर जमा हुआ था। जिनका देह इतना लम्बा हो, उनकी बुद्धि भी तदनुसार होनी चाहिए, नहीं तो प्रकृति की विभाग-नीति में सन्देह उत्पन्न होता है। किन्तु इस विषय में बर्ले की सृष्टि होते समय प्रकृति देवी मानो बेपरवाह थी। एक अंग्रेज कवि मरली ने इस विभाग-नीति का वर्णन करते समय यों कहा हैं–"Infinite riches in a little room" वास्तव में इस दीर्घ-देह में इतनी थोड़ी विद्या और बुद्धि देखकर दु:ख होता था। इस बात को सोचकर कि इसी प्रकार के थोड़े से शासन-कर्त्ताओं द्वारा तीस कोटि भारतवासी

शासित हैं। अंग्रेजों की महिमा और ब्रिटिश शासन-प्रणाली के ऊपर बड़ी भक्ति उदय होती थी। बर्ले साहब की विद्या श्रीयुत व्योमकेश चक्रवर्ती की जिरह करते समय खुल जाती थी। इतने दिनों मेजिस्ट्रेटी करने के पीछे इस बात का निर्णय करते समय कि स्वयं उन्होंने कब मुकद्दमे को अपने कर कमलों में ग्रहण किया अथवा जिस प्रकार से मुकदमा उनके पास आया, बर्ले साहब के सिर में चक्कर आ गया था।..... मुझे वे कभी भी मेजिस्ट्रेट प्रतीत नहीं होते थे। ऐसा मालूम होता था कि मानो कोई स्कूल का छात्र हठात् शिक्षक बन, शिक्षक के उच्च पद पर बैठा हो। उसी प्रकार वे कोर्ट का काम भी चलाते थे।..... कई एक गवाहों ने बड़े ही साहस के साथ गवाही दी। नार्टन के गर्जन की कुछ परवाह न की, किन्तु जब कभी ऐसा होता तो वह अंग्रेज बैरिस्टर भी यह बात देख अपनी जातीय प्रथा के अनुसार एकदम नरम हो जाता। इसी प्रकार कितने ही गवाह आये और कितने ही प्रकार की गवाहियां दे दे कर चले गये, किन्तु एक ने भी पुलिस के उल्लेख योग्य कोई सुविधा की बात न कही। एक गवाह ने तो साफ-साफ यह कहा कि 'मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानता। मुझे यह भी नहीं मालूम कि पुलिस मुझे यहां क्यों घसीट लायी है।' प्रतीत होता है कि इस प्रकार मुकद्दमा करने की प्रथा भारत ही में चल सकती है। यदि अन्य देश होता तो जज इस प्रकार की बातों से नाराज हो जाते और पुलिस को तीव्र गर्जना के साथ शिक्षा देते। बिना किसी बात का ठीक-ठीक पता लगाये तथा दोषी निर्दोषी का बिना विचार किये सैकड़ों गवाहों को लाकर कटघरे में खड़ा करना, देश के धन को नष्ट करना तथा निरर्थक असामियों को दीर्घकाल के लिए कैद की यन्त्रणा में रखना केवल इस देश की पुलिस को ही शोभा देता है। किन्तु बेचारी पुलिस भी क्या करे? वे केवल नाम मात्र को ही खुफिया हैं। परन्तु योग्यता उनमें न होने के कारण इस प्रकार की गवाही के लिए विशाल जाल फैला कर उत्तम, मध्यम, अधम सब तरह के गवाहों को इकट्ठा कर अटकलपच्चू कटघरे में उपस्थित कर देना ही उनके लिए एकमात्र उपाय है। चाहे वे गवाह कुछ जानते हों तथा किसी प्रकार का प्रमाण भी दे सकते हों वा न दे सकते हों।

असामियों के पहचानने का प्रबन्ध भी विचित्र ही था। पहले गवाह से पूछा जाता कि-"क्या तुम इनमें से किसी को पहचान सकते हो?" गवाह यदि कहता, "हाँ! पहचान सकता हूँ" तो नार्टन साहब प्रफुल्लित हो कटघरे में Identification parade (पहचानने का तमाशा) का प्रबन्ध कर देते तथा गवाह को उसी जगह पर अपनी स्मरण शक्ति को

चरितार्थ करने की आज्ञा देते। यदि कहता, "मैं नहीं जानता, शायद पहचान सकूं।" तो नार्टन साहब कुछ उदास हो कहते "अच्छा जाओ! चेष्टा करो।" यदि कोई यह कहता कि "नहीं, मैं नहीं पहचान सकूंगा, इन लोगों को मैंने कभी नहीं देखा।" तो भी नार्टन साहब उनको न छोड़ते। वे इस विचार से कि प्रायः मुखों को देखकर गवाह के पूर्व जन्म की कोई स्मृति जाग उठे, परीक्षा करने के लिए भेजते।..... एक दो नहीं वरन् इस अवसर पर प्रत्येक पुलिस पुंगव में इस प्रकार की विचित्र अभ्रान्त स्मरण शक्ति देखने में आई। इस सब से C.I.D. (खुफिया पुलिस) वालों के ऊपर हम लोगों की भक्ति तथा श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ने लगी। परन्तु दुःख की बात यह है कि सेशन्स कोर्ट में पहुंचने पर इस भक्ति को कम करना पड़ा। मैं यह नहीं कह सकता कि मेजिस्ट्रेट साहब की अदालत में हम लोगों के चित्त में दो एक बार सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ था। क्योंकि जब मैंने लिखे हुए बयानों में यह देखा कि शिशिर घोष अप्रैल के महीने में बम्बई में थे, किन्तु ठीक उसी समय कई एक पुलिस गवाहों ने उनको कलकत्ता की स्काट्स लेन वा हैरिसन रोड में भी देखा था। तब ही मुझे कुछ-कुछ सन्देह होने लगा था। जब श्रीहट्ट (एक स्थान का नाम) निवासी वीरेन्द्रचन्द्र सेन का स्थूल शरीर वानियाचंग (एक जगह का नाम) में अपने पिता के भवन में रहता था, उसी समय बगीचे और स्काट्स लेन में-इस बात का अखण्डनीय प्रमाण, लिखे हुए गवाही के कागजों में मिला कि वीरेन्द्र स्काट्स लेन का ठिकाना तक नहीं जानता था-उनका सूक्ष्म शरीर C.I.D. वालों की सूक्ष्म दृष्टि में पड़ा था, उस समय मुझे और भी सन्देह हुआ। विशेषकर जिन लोगों ने कभी भी कलकत्ता की स्काट्स लेन पर पदार्पण नहीं किया था, उन लोगों ने उन लोगों को अनेक बार यहां देखा है, तब उन लोगों के चित्त में सन्देह का उत्पन्न होना कुछ अस्वाभाविक नहीं था। मेदनीपुर के एक गवाह ने जिसे मेदिनीपुर के असामियों ने खुफिया पुलिस वाला बतलाया, यह कहा कि "मैंने श्रीहट्ट के हेमचन्द्रसेन को तमलूक नगर में वक्तृता देते देखा था।" यद्यपि हेमचन्द्र ने इस स्थूल चक्षु से कभी तमलूक नगर नहीं देखा, परन्तु तो भी उनके छायामय शरीर ने श्रीहट्ट से दूर तमलूक पहुंचकर और वहां पर एक तेजस्वी राजद्रोहपूर्ण स्वदेशी वक्तृता दे कर गोइन्दा महाशय के आंख कान को तृप्त किया था। चन्दननगर निवासी चारुचन्द्र राय के छायामय शरीर ने मानिकतल्ला में पहुंचकर और भी अद्‌भुत कार्य सम्पन्न किया था। दो पुलिस कर्मचारियों ने शपथ लेकर कहा कि "हमने अमुक समय में चारु बाबू को श्याम बाजार में

देखा था, वह श्याम बाजार से एक प्रधान षड्यन्त्रकारी के साथ मानिकतल्ला के बगीचे में पैदल गये थे, हम लोगों ने भी वहां (मानिकतल्ला) तक उनका पीछा किया। हमने बहुत निकट से उनको देखकर पहचान लिया था, भूलचूक होने का कोई कारण नहीं है।" वकीलों की जिरह से वे दोनों तनिक भी न टले। **'व्यासस्य वचनं सत्यम्'** के अनुसार पुलिस की गवाही भी मिथ्या नहीं हो सकती। क्योंकि चन्दननगर के ड्यूप्ले कॉलेज के अध्यक्ष की गवाही से प्रमाणित हो गया था कि ठीक उसी दिन उसी समय चारु बाबू कॉलेज से छुट्टी लेकर कलकत्ता में उपस्थित थे, किन्तु आश्चर्य की बात है कि ठीक उसी दिन उसी समय चारु बाबू चन्दन नगर के मेजर तारदीवाल महाशय, उनकी पत्नी, चन्दननगर के गवर्नर और कई एक सम्भ्रान्त तथा भद्र युरोपियन्स के साथ बातचीत करते हुए हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। इन लोगों ने सब बातें स्मरण कर चारु बाबू के पक्ष में गवाही देने का विचार किया। फ्रेंच गवर्नमेण्ट की चेष्टा से पुलिस ने चारुबाबू को छोड़ दिया। इस कारण अदालत के सामने यह रहस्य खुल न सका। मेरी चारु बाबू के लिए यह राय है कि वे पुलिस के इन सब प्रमाणों को syschical Research Society में भेज कर मनुष्य जाति के ज्ञान संचय में सहायता दें। पुलिस वालों की गवाही कभी झूठी नहीं हो सकती। विशेष कर सी. आई. डी. वालों की। अतएव थियोसोफी (ब्रह्म विद्या) का आश्रय लिये बिना हम लोगों के पास और कोई उपाय नहीं है। संक्षेप से यह कहना चाहिए कि इस बात का दृष्टान्त कि ब्रिटिश कानून की प्रणाली से कितने निर्दोषी सहज में कारादण्ड, कालापानी और फांसी तक पा सकते हैं, मुझे इस मुकद्दमे में पद-पद पर मिलता था। स्वयं कटघरे में खड़े हुए बिना पाश्चात्य विचार प्रणाली की मायावी असत्यता को हृदयंगम नहीं किया जा सकता। यूरोप की न्याय-प्रणाली जुए के समान है, इसमें मनुष्य की स्वाधीनता, मनुष्य के सुख-दुःख, उसके और उसके परिवार व बन्धुजन की जीवन भर की यन्त्रणा, अपमान तथा जीते जी की मौत के साथ जुआ खेलना है। इससे कितने दोषी बच जाते हैं, कितने निर्दोषी मारे जाते हैं, इसका निर्णय नहीं किया जा सकता। यूरोप में Socialism (समाजवाद) और Anarchism (अराजकता) के प्रचार और प्रभाव के कारण इस जुए के खेल में एक बार पड़ जाने से भली प्रकार समझ में आ जाता है। ऐसी अवस्था में अनेक उदारचेता दयालु मनुष्यों का यह कहना कि इस समाज को तोड़ कर चकनाचूर कर दो, कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इतने पाप, इतना दुःख, इतने निर्दोषियों के उष्ण श्वास

तथा हृदय के रक्त से ही यदि समाज की रक्षा हो सकती है तो ऐसी रक्षा करना निष्प्रयोजन है।

मेजिस्ट्रेट की अदालत में एक मात्र विशेष उल्लेख करने योग्य घटना नरेन्द्रनाथ गुसाई की गवाही थी। उस घटना का वर्णन करने से पहले मैं अपने विपत् के साथी बालक असामियों की कुछ बातें कहना चाहता हूं। अदालत के भीतर इन बालकों का आचरण देखकर मुझे यह भली भांति प्रतीत होता था कि बंगाल में एक नवीन युग का आरम्भ हुआ है, एक नयी सन्तान माता की गोद में वास करने लगी है। ये सब नूतन युग, नूतन जाति तथा नूतन कर्म स्रोत के लक्षण हैं। ये लोग यदि हत्याकारी हों भी तो कहना पड़ेगा कि हत्या की रक्तमय छाया उनके स्वभाव पर नहीं पड़ी थी। क्रूरता, उन्मत्तत्ता अथवा पाशविक भाव उन लोगों में बिल्कुल ही न थे। उन लोगों ने भविष्य की अथवा मुकद्दमे के फलाफल की लेश मात्र भी चिन्ता न करते हुए, कारावास के दिन बालकों के आमोद, प्रमोद, हंसी, खेल, पढ़ने तथा समालोचना करने में ही बिता दिये।..... इसके पीछे यह अद्‌भुत दृश्य दिखाई देता कि एक ओर मुकदमा चल रहा है। तीस, चालीस असामियों के समस्त भविष्य के साथ खेंचातानी हो रही है, जिसका कि फल फांसी अथवा जीवन भर के लिए द्वीपान्तर हो सकता है और दूसरी ओर असामी लोग उस ओर दृष्टि भी न डालते हुए कोई बंकिम का उपन्यास, कोई विवेकानन्द का राजयोग अथवा Science of Religious कोई गीता, कोई पुराण तथा कोई यूरोप के दर्शनशास्त्र को एकचित्त हो पढ़ रहे हैं। अंग्रेज सार्जेण्ट अथवा देशी सिपाही कोई भी उनके इस आचरण में बाधा न डालते। वे लोग सोचते थे कि यदि इतने ही से ये पिंजरे में बंद किए गए बाघ शान्त बैठे रहे तो हम लोगों का काम भी कुछ कम हो जावे और इसमें किसी का नुकसान भी नहीं था। किन्तु एक दिन बर्ले साहब की दृष्टि इस दृश्य की ओर आकर्षित हुई। मेजिस्ट्रेट साहब इस आचरण को न सह सके, इसलिए दो दिन तक उन्होंने भी कुछ न कहा परन्तु तीसरे दिन वे न रह सके और किताबों का आना बन्द करने की आज्ञा दे दी। वास्तव में बर्ले साहब के सुन्दर विचारों को सुनकर आनन्द उठाने के बदले किताब पढ़ने लगना मानों बर्ले के गौरव और ब्रिटिश जस्टिस की महिमा की ओर असम्मान करना था।

हम जितने दिनों स्वतन्त्र, स्वतन्त्र कोठरियों में बन्द रहे, केवल गाड़ी में मजिस्ट्रेट के आने के पूर्व एक वा आध घण्टा और कुछ टिफिन के

समय बातें करने का अवसर पाते। जिनका परस्पर परिचय वा आलाप था, वे इस समय Cell की नीरवता और निर्जनता की शोध लेते। हंसी, आमोद और भिन्न-भिन विषयों की आलोचना में समय कटता। किन्तु ऐसे अवसर पर अपरिचित आदमी के साथ बातें करने की सुविधा नहीं होती। इसलिए अपने भाई वारीन्द्र और अविनाश के सिवा मैं और किसी के भी साथ अधिक बातें नहीं करता। उनकी हंसी और किस्से सुनता, स्वयं उसमें योग नहीं देता। किन्तु एक आदमी बीच-बीच में हमारे पास खिसक कर आ जाता, वह भावी Approver नरेन्द्रनाथ गोस्वामी था। दूसरे लड़कों की तरह उसका शान्त स्वभाव नहीं था। वह साहसी, लघुचेता और चरित्र, कथन एवं कार्य में असंयत था। पकड़े जाने के समय नरेन्द्र गुसाईं ने अपना स्वाभाविक साहस और प्रगल्भगता दिखाई थी। किन्तु लघुचेता होने से कारावास में यत् किंचित् दु:ख और असुविधा सहन करना उसके लिए असाध्य हो गया था। वह जमींदार का लड़का था, इसलिए सुख विलास एवं दुर्नीति में लालित होकर कारागृह के कठोर संयम और तपस्या में अत्यन्त कातर हो गया था और अपने उस भाव को सब के सामने प्रकाश करने में भी वह कुण्ठित नहीं होता था। जिस किसी उपाय से भी हो, इस यन्त्रणा से मुक्त होने की उत्कट वासना उसके मन में दिनों दिन बढ़ने लगी। पहले उसे यह आशा थी कि उसे शारीरिक यन्त्रणा देकर दोष स्वीकार कराया है। वह हमारे समक्ष कह चुका था कि उसके पिता ऐसी मिथ्या साक्षी जुटाने के लिए कृत संकल्प हुए हैं। किन्तु थोड़े दिनों में और एक भाव प्रकाश होने लगा। उसके पिता और एक मुख्तार ने उसके पास जेल में बार-बार आना-जाना आरम्भ किया, अन्त में शमसुलआलम भी उसके पास आकर अनेक क्षण एकान्त में बातें करने लगा। इसी समय अचानक गुसाईं के कौतूहल और प्रश्न की प्रवृत्ति हुई देख बहुतों को सन्देह हो गया। भारतवर्ष के बड़े-बड़े लोगों से उनका परिचय वा घनिष्ठता थी कि नहीं, गुप्त समिति को किस किसने आर्थिक सहायता दी थी, अब कौन समिति कार्य चलावेगा, शाखा-समिति कहाँ हैं ? इत्यादि छोटे बड़े कितने ही प्रश्न वह वारीन्द्र और उपेन्द्र से करता। गुसाईं की इस ज्ञान-तृष्णा की कथा शीघ्र ही सब के कर्णगोचर हो गयी और शमसुलआलम से घनिष्ठता की बात भी अब गोपनीय प्रेमालाप, नहीं Open Secret हो उठी। इसको लेकर कई बार आलोचना होती रहती और कोई कोई तो यह भी लक्ष्य करता कि पुलिस दर्शन के बाद ही सदा ऐसे नये प्रश्न गुसाई के मन में उठते हैं।

यह कहना व्यर्थ है कि वह इन सब प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर नहीं पाता। प्रथम जब यह बात असामियों के बीच चली, तब गुसाईं ने स्वयं स्वीकार किया कि पुलिस उसके पास आकर "राजा का साक्षी" बनने के लिए भांति-भांति के उपाय समझाने की चेष्टा कर रही है। उसने मुझे कोर्ट में एक दिन यही बात कही थी। मैंने उससे जिज्ञासा की थी–"आपने क्या उत्तर दिया है?" उसने कहा–"मैं क्या सुनूंगा ! और सुन कर भी मैं क्या जानूं कि उनके मन के अनुकूल साक्षी दूंगा?"

इसके कुछ दिनों बाद फिर जब यही बात उठी, तब मैंने देखा कि बात बहुत कुछ आगे बढ़ गई है। जेल में Identification parade के समय मेरे पार्श्व में गुसाईं खड़ा था, उस समय वह मुझ से बोला–"केवल पुलिस मेरे पास आयी।" मैंने उपहास कर कहा–"आप यह बात क्यों नहीं कहते कि सर एण्ड्रूफ्रेजर गुप्त समिति के प्रधान पृष्ठपोषक थे, यह होने पर उसका परिश्रम सार्थक होगा।" गुसाई ने कहा–"इसी तरह की बात कही है।" मैंने स्तम्भित होकर उससे जिज्ञासा की–"इस बात के कहने का क्या प्रयोजन था?" गुसाईं बोला मैं.....का श्राद्ध करके छोड़ूंगा। इसी तरह की और भी खबरें दी हैं। बेटे Corroboration ढूंढ ढूंढ़कर मारो। कौन जाने, इस उपाय से मुकदमे फांसे भी जा सकते हैं।" इसके उत्तर में मैंने केवल इतना ही कहा–"यह दुष्टता छोड़ दो। उनके साथ चालाकी करने में खुद ही ठगे जाओगे।" नहीं जानता गुसाई की बात कहां तक सच थी। और सब असामियों का यह मत था कि हमारी आंखों में धूल झोंकने के लिए ही उसने यह बात कही थी। मैं समझता हूं, उस समय भी गुसाईं Approver बनने का पूरा निश्चय नहीं कर चुका था, उसका मन उस तरफ बहुत कुछ अग्रसर हो गया था अवश्य, किन्तु पुलिस को झांसा देकर उसका मुकदमा मिट्टी कर देने की आशा भी उसको थी। चालाकी और असदुपाय से कार्य सिद्धि, दुष्प्रवृत्ति की स्वाभाविक प्रेरणा है। उस समय मैं समझ गया कि गुसाई पुलिस के वश होकर सच-झूठ उसका जैसा प्रयोजन है-कह कर अपनी रक्षा की चेष्टा करेगा। एक नीच स्वभाव का और भी निम्नतर दुष्कर्म की ओर अध:पतन हमारी आंखों के सामने नाटक की भांति अभिनीत होने लगा। मैंने देखा कि दिनों दिन गुसाईं का मन किस प्रकार बदलता जा रहा था, उसके मुख, भावभंगी कथा-वार्ता में भी परिवर्तन हो रहा है। वह जो विश्वासघातकता करके अपने संगियों का सर्वनाश करने का आयोजन कर रहा था, उसके समर्थन के लिए क्रम-क्रम से नाना अर्थ-नीतिक

और राजनीतिक युक्ति प्रकट करने लगा। ऐसी "Interesting psychological study" प्राय: नहीं पायी जाती। प्रथम किसी ने भी गुसाईं को नहीं जानने दिया कि उसकी अभिसन्धि को सभी समझ गये हैं। यह भी ऐसा निर्बोध था कि अनेक दिन कुछ भी नहीं समझ सका। वह समझता था कि मैं खूब छिपकर पुलिस की सहायता करता हूं। किन्तु कई एक दिनों बाद जब यह हुक्म हुआ कि हमें निर्जन कारावास में न रखकर एक साथ रखा जायेगा, तब इस नई व्यवस्था से परस्पर में रात-दिन की देखा-देखी और बातों से अधिक दिनों तक कुछ भी छिपा रखने की सम्भावना नहीं थी। इसी समय दो एक लड़कों से गुसाईं का झगड़ा हो गया। उनकी बातों और अप्रीतिकर व्यवहार से गुसाईं समझ गया कि उसकी अभिसन्धि किसी से अज्ञात नहीं है। जब गुसाईं ने गवाही दी, तब कई एक अंग्रेजी पत्रों से यह खबर निकली कि असामियां इस अप्रत्याशित घटना से चमत्कृत और उत्तेजित हो गयीं। कहना न होगा कि यह निरी रिपोर्टरों की कल्पना थी। कई दिनों पहले ही सब ने समझ लिया था कि इस प्रकार की साक्षी दी जायेगी। यहां तक कि किस दिन क्या साक्षी दी जायेगी, यह भी ज्ञात हो गया था।

इस समय एक आदमी ने गुसाईं के पास जाकर कहा कि- भाई ! अब मुझ से भी यह सब कष्ट सहा नहीं जाता है, मैं भी सरकारी गवाह बनूंगा। तुम शमशुलआलम से कह दो कि वे मेरी भी खलासी का प्रबन्ध करें।

गुसाईं ने यह बात मान ली और कई दिन पीछे उनसे कहने लगे कि गवर्नमेंण्ट के पास से इस विषय की चिट्ठी आई है कि तुम्हारे निवेदन पत्र पर अनुकूल निर्णय (Eavonarable consideration) होने की सम्भावना है। यह कह गुसाईं ने उन्हें उपेन्द्र प्रभृति से गुप्त समिति की शाखा समितियां कहां-कहां है? उनके नेता कौन-कौन हैं? इत्यादि इस प्रकार की कई एक आवश्यकीय बातें निकाल लेने के लिए कहा। नकली Approver (सरकारी गवाह बनने की इच्छा प्रकट करने वाला) आमोदप्रिय और रसिक व्यक्ति था। उसने उपेन्द्रनाथ से सलाह करके गुसाईं को कई एक कल्पित नाम बता दिये और कहा कि मद्रास में विश्वम्भर पिल्ले, सतारा में पुरुषोत्तम नाटेकर, बम्बई में प्रोफेसर भट्ट तथा बड़ोदा में कृष्ण देशपाण्डे जीराव गुप्त समिति की शाखा समितियों के नेता हैं। गोसाईं ने प्रसन्न हो यह योग्य समाचार पुलिस को बता दिया। पुलिस ने भी मद्रास का कोना-कोना छान मारा, अनेक छोटे बड़े पिल्ले

मिले, परन्तु विश्वम्भर अथवा अर्ध विश्वम्भर पिल्ले एक भी न मिले। सतारा के पुरुषोत्तम नाटेकर ने भी अपने अस्तित्व को घने अन्धकार में छिपाये रखा। बम्बई में एक प्रोफेसर भट्ट मिले, वे भी निरीह राजभक्त तथा भद्र पुरुष थे। उनके अधीन किसी प्रकार की गुप्तसमिति के होने की सम्भावना न थी। किन्तु गुसाईं ने गवाही देते समय उपेन्द्रनाथ से सुनी बात पर विश्वास कर अपने कल्पना राज्य में निवास करने वाले विश्वम्भर पिल्ले इत्यादि षड्यन्त्र के महारथियों को नार्टन साहब के श्रीचरणों पर बलि दे, उनकी अद्‌भुत prosention Theory को पुष्ट किया। वीर कृष्ण राव जी भाउ को ले पुलिस ने एक और तमाशा किया। उन्होंने मानिकतल्ला के बगीचे में से किसी घोष महाशय के भेजे हुए बड़ोदा के कृष्ण जी राव देशपाण्डे के नाम के एक तार की नकल निकाल बाहर की। यद्यपि बड़ौदा निवासी इस बात का कुछ पता न लगा सके कि उस नाम का कोई मनुष्य बड़ौदा में था भी वा नहीं, तो भी यदि सत्यवादी गोसाईं ने बड़ोदावासी कृष्ण जी राव भाउ का नाम लिया है तो निश्चिय कृष्ण जी राव भाउ और कृष्ण जी राव देशपाण्डे दोनों एक ही हैं। और यदि कोई कृष्ण जी राव देशपाण्डे भी न हो, तो मेरे श्रद्धास्पद बन्धु केशवराव देशपाण्डे का नाम चिट्ठी पत्रियों में अवश्य मिला था। अतः एक कृष्ण जी राव भाऊ, कृष्ण जी राव देशपाण्डे तथा केशवराव देशपाण्डे सब एक ही मनुष्य हैं। इससे साबित हुआ कि केशवराव देशपाण्डे गुप्त षड्यन्त्र के एक प्रधान पण्डा थे। इस प्रकार के समस्त असाधारण अनुमानों पर ही नार्टन साहब की विख्यात Theory प्रतिष्ठित थी।

यदि गोसाईं की बातों पर विश्वास किया जाये, तो यह भी मान लेना पड़ेगा कि उन्हीं के कहने से हम लोगों के निर्जन कारावास का अन्त होकर हम सब एक स्थान पर रखे गये। उन्होंने हम से कहा था कि पुलिस ने मुझे सब के साथ रख षड्यन्त्र की गुप्त बातों का पता लगाने के उद्देश्य से यह व्यवस्था की है। गोसाईं यह न जानते थे कि हम सब पहले ही उनके इस नये व्यवसाय की बातों को जान गये थे। इस उद्देश्य से वे इस प्रकार के अनेक प्रश्न किया करते थे कि कौन-कौन षड्यन्त्र में लिप्त है? कहां-कहां शाखा समितियां हैं? कौन रुपये देते हैं अथवा उनकी सहायता करते हैं, इस समय गुप्त समितियों के कार्य को कौन चलावेगा? इत्यादि। इस बात का दृष्टान्त मैं ऊपर दे चुका हूं कि इन सब प्रश्नों के उन्हें किस प्रकार के उत्तर मिलते थे किन्तु गुसाईं की

अधिकतर बातें झूठी ही थीं। डाक्टर डेली ने हम लोगों से कहा था कि मैंने स्वयं एमर्सन साहब से कह कर यह परिवर्तन कराया है। सम्भवतः डेली का कहना ही सच था। प्रायः पुलिस ने इसके पीछे नयी व्यवस्था को देख कर उस व्यवस्था से इस प्रकार का लाभ उठाने की चेष्टा की होगी।..... उस रात को जिस कमरे में हेमचन्द्रदास, शचीन्द्रसेन इत्यादि गाने वाले थे, वह कमरा और कमरों से बड़ा था, अधिकतर आसामी उसी जगह एकत्रित थे, दो तीन बजे रात तक कोई भी सो न सका। सारी रात हंसी की लहर, गाने का अविराम स्रोत तथा इतने दिनों की रुकी हुई गप्पें बरसात की नदियों के चढ़ाव के कारण वह सुनसान कारागृह कोलाहल से गूंजने लगा। मैं सो गया, किन्तु जितनी बार मेरी नींद खुली, उतनी बार ही मैंने वही गाना, वही हंसी तथा वही गप्पों का एक समान वेग पाया। पिछले पहर वह स्रोत धीमा पड़ गया, गाने वाले सो गये और लोगों का वार्ड भी नीरव हो गया।

❑❑

कर्जन वायली से उसी की धरती पर प्रतिशोध लेने वाले

क्रान्तिकारी वीर मदनलाल धींगड़ा

कर्जन वायली की भूमि पर जाकर दमनकारी अंग्रेज अधिकारी कर्जन वायली से बदला लेने वाले वीर मदनलाल धींगड़ा अमृतसर के एक खत्री परिवार में उत्पन्न हुए थे। बी.ए. पास करने के बाद वे शिक्षा प्राप्त करने के लिए लंदन चले गये। वहां लंदन में स्थापित 'भारतीय भवन' में पहुंचकर वे उसके सदस्य बन गये और वीर सावरकर से घनिष्ठता हो गयी। मदन लाल के हृदय में कर्जन वायली के लिए प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। एक दिन उसने सावरकर को अपनी दिल की बात कह ही दी। सावरकर ने उसकी परीक्षा ली। हाथ धरती में रखने को कहा और ऊपर से सूवा गाड़ दिया। मदनलाल ने ऊफ तक न की। सावरकर ने सूवा फेंक कर मदनलाल को गले लगा लिया। श्री मदन लाल ने कर्जन वायली के सारे कार्यक्रम की जानकारी ली और १ जुलाई १९०९ को जहांगीर हाल में भरी सभा में उसको गोली से उड़ा दिया। १६ अगस्त १९०९ को मदनलाल को फांसी पर लटका दिया। खुशी-खुशी फांसी के तख्ते पर खड़े मदनलाल ने 'वन्दे मातरम्' का उद्घोष कर शहादत प्राप्त की। **(सम्पादक)**

"अब फिर यह बताने की जरूरत नहीं कि भारतवर्ष की आजादी के लिए जितनी कुर्बानी पंजाब प्रान्त ने की है, उतनी किसी और प्रान्त ने नहीं की। बीसवीं सदी के शुरू होने के साथ ही भारत में एक बार नयी अशान्ति की लहर दौड़ गयी, जिसका परिणाम स्वदेशी-आन्दोलन की शक्ल में प्रकट हुआ। तब भी पंजाब ही बंगाल का साथ दे रहा था। गुलामी की जंजीरें दिनों दिन जकड़ी देखकर जब दर्द शुरू हुआ तब बहुत-से नौजवान अपने देशप्रेम में पागल हुए दिलों को केवल लेक्चरबाजी और प्रस्ताव बाजी मात्र से सन्तोष न दे सके और कुछ दिल-जले लोगों ने युग पलट आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन उन देशप्रेमी युवकों को अपनी ओर खींचने में सफल हो गया और इन परवानों ने स्वतन्त्रता देवी के चरणों में अपने जीवन तक बलिदान कर दिये और मुर्दा देश को फिर मृत्यु के प्रति निर्भयता दिखाकर पुराने बुजुर्गों की याद ताजा कर दी।

यह युग पलटने वाले या विद्रोही लोग कैसे विचित्र होते हैं, इसका

कुछ वर्णन बंगाल के विद्रोही कवि नजरुल इस्लाम ने अपनी 'विद्रोही' कविता में किया है। मौत के हाथ में हाथ डालकर खेल करने वाले, गरीबों के सहायक आजादी के रक्षक, गुलामी के दुश्मन, जालिमों, अत्याचारियों और मनमानी करने वाले शासकों के शत्रु इन विद्रोही वीरों के दिल का, मन का, स्वभाव का, इच्छा का बड़ा सुन्दर चित्र उन्होंने अपनी कविता में खींचा है। पहले ही वे कहते हैं–

बोलो वीर–
चिर उन्नत मम शीर, शिर नेहरि आमारि,
नत शिर ओई शिखर हिमाद्रीर!

यानी हे विद्रोही वीर! तुम एकदम यह कहते हो कि मैं कब से सिर उठाये खड़ा हूँ। मेरा ऊंचा सिर देखकर हिमालय ने भी अपना सिर शर्म के मारे झुका दिया।

आगे जाकर उसकी सख्ती और नरमी का वर्णन किया है कहीं वह मौत से (के साथ) नाच कर रहा है, कहीं वह संसार का एक ही बार सर्वनाश करने पर तुला हुआ है। वह बिजली की तरह चमकता है, वह संगीत की तरह मीठा है। विधवा, गुलाम, मजलूम, गरीब, भूखे और पीड़ित लोगों में बैठकर वह लगातार रोता रहता है। ऐसे विचित्र जीव की विचित्र महिमा का वर्णन करते हुए अन्त में वे विद्रोही के मुंह से कहलवाते हैं–

मह विद्रोही रणक्लान्त, अमि शेई दिन हॅबो शान्त,
जॅबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन-रोल आकाशे बाता से ध्वनिबे ना।
अत्याचारीर खड्ग कृपाण भीम रणभूम रणिवे ना,
विद्रोही रणक्लान्त आमि शेई दिन हॅबो शान्त !

अर्थात् मैं विद्रोही अब लड़ाई से थक गया हूँ। और मैं भी उसी दिन शान्त हो जाऊंगा जिस दिन किसी दु:खी की आह या चीत्कार आकाश में जाकर आग न लगा सकेगी, यानी कोई दु:खी न रहेगा, और जालिमों, अत्याचारियों की भयानक तलवार मैदान में चलनी बन्द हो जायेगी, यानी बाकी ही न रहेंगी, तब और तभी मैं शान्त हो सकूंगा और हो भी जाऊंगा।

ऐसे विचित्र विद्रोही जीव जो पूरे विश्व से टकरा जाते हैं और स्वयं को जलती आग में झोंक देते हैं, अपना ऐशो-आराम सब भूल जाते हैं और दुनिया की सुन्दरता, शृंगार में कुछ वृद्धि कर देते हैं और उनके बलिदानों से ही विश्व में कुछ पूजनीय देवता जन्म लेते हैं, ले रहे हैं

और लेते रहेंगे। हिन्दुस्तान में से भी पंजाब ने ऐसे रत्न अधिक दिये हैं, बीसवीं शती के ऐसे ही सब से पहले शहीद मदनलाल ढींगरा हैं।

वे कोई लीडर तो थे नहीं कि उनके जीते-जी उनका जीवन-चरित्र छापकर दो-दो आने में बिक जाता। वे अवतार भी नहीं थे कि ज्योतिष से भविष्य बताकर शोर मचा दिया जाता कि हम तो पहले ही समझ गये थे कि वे बहुत 'बड़े' आदमी थे। उनकी किन्हीं ऐसी बातों का भी हमें पता नहीं कि हम लिख सकें कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'।

वह गरीब और एक बदकिस्मत विद्रोही था। उसके पिता ने उसे अपना पुत्र मानने से इन्कार कर दिया था। देशभक्त और खुशामदी सभी अख़बारों में और उस समय के गर्म नेता विपिनचन्द्र पाल तक ने उन्हें कोस-कोसकर गालियां दी। तो फिर बताओ इन हालात में, आज बीस साल बाद उनके बारे में तथ्यों को फिर से इकट्ठा करने की कोशिश में किसी को कितनी सफलता मिल पायेगी?

इन कठिनाइयों में हम आज उनका जीवन-वृत्तान्त लिखने बैठ गये हैं। धीरे-धीरे हम लोग, उनका नाम भी न भूल जायें, यही सोचकर आज उनके बारे में जैसे भी तथ्य मिल सकते हैं, यह वृत्तान्त पाठकों के सामने रख रहे हैं।

आप शायद अमृतसर के रहने वाले थे। घर से अच्छे थे। बी० ए० पास कर पढ़ने के लिए इंग्लैण्ड चले गये। कहा जाता है कि वहां आप कुछ ऐय्याशी में फंस गये। यह बात यकीन से नहीं कहीं जा सकती, लेकिन यह कोई अनहोनी बात भी नहीं है। उनका मन बड़ा रसिक व भावुक था, इस बात का प्रमाण भी मिलता है। इंग्लैण्ड के खुफिया विभाग (Scotland yard) के प्रसिद्ध जासूस श्री ई० टी० वुडहाल ने (Union Jack) यूनियन जैक नामक साप्ताहिक अखबार में अपनी डायरी छापी थी। मार्च, १९२५ के अंक में उन्होंने श्री मदनलाल ढींगरा का हाल लिखा है। यह जासूस उनके पीछे लगाया गया था। वह लिखता है-

"Dhingra was an extraordinary man. Dhingra's passion for flowers was remarkable."

यानी ढींगरा एक असाधारण व्यक्ति था। ढींगरा का फूलों के प्रति जबरदस्त लगाव था। आगे जाकर उन्होंने लिखा है कि वे बाग के किसी सुन्दर कोने में जाकर बैठ जाते थे और घण्टों तक फूलों को एक कवि की तरह मस्त होकर निहारते रहते और कभी उनकी आंखों से बड़ी तेज

चमक कौंध उठती थी। उसी चमक को देखकर ई० टी० वुडहाल उस्ताद सिकलाहिन आगे लिखता है–

"There is a man to keep an eye on. He will do something desaperate some day."

यानी उस व्यक्ति पर आंख रखनी चाहिए। किसी न किसी दिन वह कुछ धमाका करेगा, खैर।

बात कर रहे थे कि शायद ऐय्याशी में फंस गये थे। उस कहानी के आगे यों है कि फिर स्वेदेशी आन्दोलन का असर इंग्लैण्ड तक भी पहुंचा और जाते ही श्री सावरकर ने इण्डियन हाउस नामक सभा खोल दी। मदनलाल भी उसके सदस्य बने।

इधर हिन्दुस्तान में खुले आन्दोलन को दबाने के कारण युग–पलट लोगों ने खुफिया सोसाइटियां स्थापित कर लीं। यहां तक कि १९०८ में अलीपुर की साजिश का मुकदमा बन गया। श्री कन्हाई और श्री सत्येन्द्रनाथ को फांसी मिल गयी थी। ये खबरें इंग्लैण्ड में भी पहुंची और इन गरम नौजवानों में आग लग गयी। कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक मशविरा करते रहे। अपनी जान तक दे देने की हिम्मत दिखाने की परीक्षा में मदनलाल को जमीन पर हाथ रखने के लिए कहकर सावरकर ने हाथ पर सुआ गाड़ दिया लेकिन पंजाबी वीर ने आह तक न भरी। सुआ निकाल लिया गया। दोनों की आखों में आंसू भर आये। दोनों एक–दूसरे के गले लग गये। आहा, वह समय कैसा सुन्दर था, वह अश्रु कितने अमूल्य व अलभ्य थे। वह मिलाप कितना सुन्दर महिमामय था। हम दुनियादार क्या जानें, मौत के विचार तक से डरने वाले हम कायर लोग क्या जानें कि देश की खातिर कौम के लिए प्राण दे देने वाले वे लोग कितने ऊंचे, कितने पवित्र और कितने पूजनीय होते हैं।

अगले दिन से ढींगरा फिर इण्डियन हाउस, सावरकर वाली सभा में नहीं गये और भारतीय विद्यार्थियों और विशेष खुफिया पुलिस का प्रबन्ध करने वाले और उनकी छोटी–मोटी आजादी को कुचलने वाले सर कर्जन वायली, जो कि Secretary of State for India के एड० डी० कैंप Aid-di-Camp थे, द्वारा चलायी हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की सभा में जा शामिल हुए। यह देखकर इण्डियन हाउस वाले लड़कों को बड़ा जोश आया और उन्होंने उन्हें देशघातक, देशद्रोही तक कहना शुरू कर दिया, लेकिन उनका गुस्सा भी तो सावरकर ने यह कहकर शान्त किया कि आखिर उन्होंने हमारी सभा को चलाने के लिए भी तो सर

तोड़ प्रयत्न किया था और उनकी मेहनत के फलस्वरूप ही हमारी सभा चल रही है, इसलिए हमें उनका धन्यवाद करना चाहिए। खैर कुछ दिन तो चुपचाप गुजर गये।

१ जुलाई, १९०९ को इम्पीरियल इंस्टीच्यूट के जहांगीर हॉल में एक बैठक थी। सर कर्जन वायली भी वहां गये हुए थे। वे दो और लोगों से बातें कर रहे थे कि अचानक ढींगरा ने पिस्तौल निकालकर उनके मुंह की ओर तान दी। कर्ज़न साहब की डर के मारे चीख निकल गयी, लेकिन कोई इन्तजाम होने से पहले ही मदनलाल ढींगरा ने दो गोलियां उनके सीने में मारकर उन्हें सदा की नींद सुला दिया। फिर कुछ संघर्ष के बाद वे पकड़े गये तो बस फिर क्या था। दुनियाभर में सनसनी मच गयी। सब लोग उन्हें जी-भरकर गालियां देने लगे। उनके पिता ने पंजाब से तार भेजकर कहा कि ऐसे बागी, विद्रोही और हत्यारे आदमी को मैं अपना पुत्र मानने से इन्कार करता हूँ। भारतवासियों ने बड़ी बैठकें की। बड़े-बड़े भाषण हुए। बडे-बड़े प्रस्ताव पास हुए। सब उनकी निन्दा में, पर उस समय एक वीर सावरकर थे, जिन्होंने खुल्लमखुल्ला उनका पक्ष लिया। पहले तो उनके खिलाफ प्रस्ताव न पास होने देने के लिए यह बहाना पेश किया कि अभी तक उन पर मुकदमा चल रहा है और हम उन्हें दोषी नहीं कह सकते। आखिर में जब इस प्रस्ताव पर वोट लेने लगे तो सभा के अध्यक्ष श्री विपिनचन्द्र पाल यह कह रहे थे क्या यह सभी की सर्वसम्मति से पास समझा जाये, तो सावरकर साहब उठ खड़े हुए और आपने व्याख्यान शुरू कर दिया। इतने में ही एक अंग्रेज़ ने इनके मुंह पर घूंसा मार दिया और कहा-"Look! how straight the English fist goesa! (यानी) देखा, अंग्रेज़ी घूंसा कैसे ठिकाने पर पड़ता है।" अभी वह कह ही रहा था कि (एक) नौजवान ने उस अंग्रेज़ के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा-"Look ! how straight the indian Club goesa ! (यानी) देखा, यारों का हिन्दुस्तानी घूंसा कैसे ठिकाने पर पड़ता है!" शोर मच गया। बैठक बीच में छूट गयी। प्रस्ताव भी ऐसे ही रह गया, खैर।

मुकदमा चल रहा था। मदनलाल बड़े खुश थे। बड़े शान्त थे। सामने दर पर मौत खड़ी देखकर भी वे मुस्करा रहे थे। निर्भय थे। आहा! वे वीर विद्रोही थे। आपने जो बयान दिया व आपकी नेक-दिली, आपकी देशभक्ति और योग्यता का बड़ा भारी सबूत है। हम उनके ही शब्दों में देते हैं। यह १२ अगस्त के Daly News (डेली न्यूज) में छपा था-

"I admit the other day, I attempted to shed blood as an humble revenge for the inguman hangings and deportations of patriotic Indian youth. In the attempt Ihave consulted none but my own conscience, I have conspired with none but my duty,"

"I believe that a nation held down by foreign baynot is in a perpetual state of war. Since open battle is rendered impossible to disarmed races, I attacked by surprise, since guns were denied to me I drew forth my pistol and fired."

"As an Hindu, I fell that wrong to my country is insult to God. Her cause is the cause of Shri Rama, her service is the service of Shri Krishna. Poor in wealth and intellect, a son like myself has nothing else to offer but his own blood, snd so I have save sacrificed the same on her alter."

"The only lesson required in India at presaent is to learn how to die, and the only way to teach it is by dying ourselves. Therefore! die and I glory in my martydom."

"This war will continue, as long as the Hindu and English race last if this present unnatural relation does not cease,"

"My only prayer to God is - "May I be reborn of the same mother and may I readie in the same secred cause Till the cause is succesasful, and she stanos free for the good of humanity and to the glory of Good, - Vande Matram."

अर्थात् मैं मानता हूँ कि मैंने उस दिन अंग्रेज़ का खून किया और कहता हूँ कि यह उन निर्दयता भरी सजाओं का मामूली-सा बदला है जो कि हिन्दुस्तानी देशभक्त नौजवानों को फाँसी और कालेपानी की दी गयी है। मैंने इस काम में अपने आत्मा के सिवा किसी और की सलाह नहीं ली। अपने फर्ज के सिवा किसी से साजिश नहीं की।

मेरा विश्वास है कि एक राष्ट्र जिसे विदेशी लोगों ने बंदूकों से दबाया हो, वह हमेशा युद्ध की स्थिति में होता है और चूंकि हथियार छीनकर खुली लड़ाई असम्भव बनादी जाती है, मैंने छिपकर बिना बताये हमला किया है। क्योंकि हमें बन्दूकें रखने से मना किया जाता है, इसलिए मैंने पिस्तौल खींच लिया और चला दिया।

मैं एक हिन्दू के रूप में समझता हूं कि मेरे देश के साथ किया

अंग्रेजों भारत छोड़ो

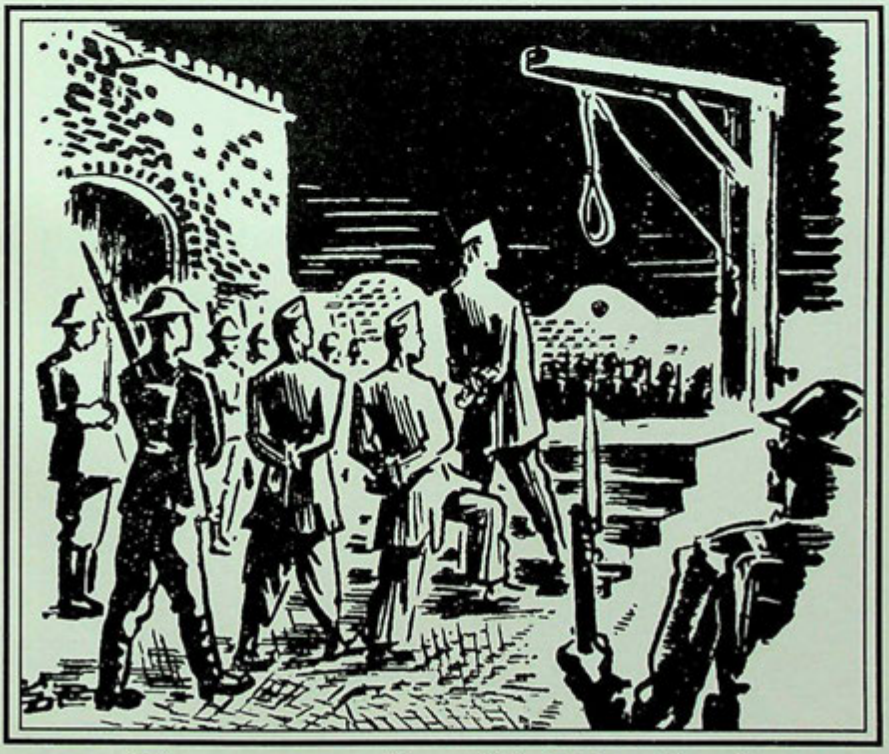

भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव फाँसी के लिए ले जाते हुए

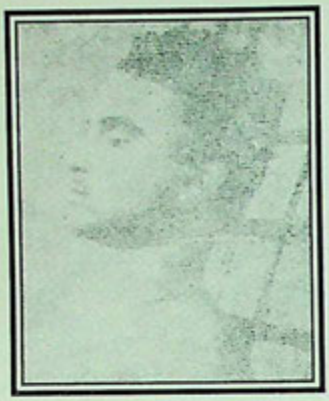

प्रफुल्ल चाकी
फांसी के बाद

श्री सत्येन्द्र कुमार बसु

कन्हाईलाल दत्त

उल्लासकर दत्त

भाई परमानन्द

श्री वारीन्द्रकुमार घोष
श्री उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याया

श्रीयुक्त विपिनचन्द्रपाल

लाला लाजपत राय
लाहौर में लाठियों से मारा

वीर युवक खुदीराम बोस

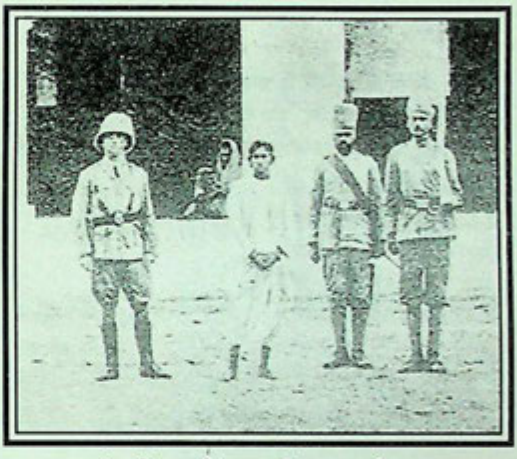

बन्दी-वेश में खुदीराम बोस

जेल के कटघरे में
खुदीराम बोस

फांसी से पूर्व खुदीराम बोस

तात्याँ टोपे

स्वामी रामतीर्थ

नाना साहेब पेशवा

करतारसिंह सरामा

वीर मदनलाल धींगरा

सन्तासिंह

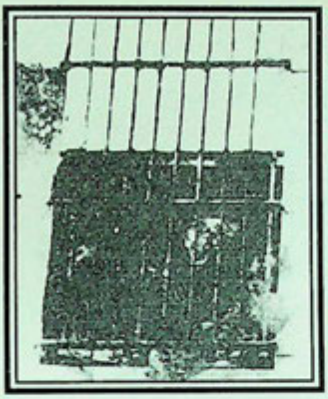

बाबू हरिनाम सिंह

श्री भाई भागसिंह

श्री वतनसिंह

पं० काशीराम

श्री किशन सिंह गर्गज्ज

श्री नन्दसिंह

श्री रास बिहारी

जगत सिंह

डॉ० मथुरा सिंह

श्री बलवन्त सिंह

वीर बन्तासिंह

डॉ० अरुड़सिंह

तपोनिष्ठ श्री अरविन्द घोष
जेल से छूटने के बाद का चित्र

सूफी अम्बा प्रसाद

भाई बालमुकन्द
(विद्यार्थी-जीवन में)

मा० अमीरचन्द

अवधबिहारी

रास बिहारी बोस

श्री बन्तासिंह धामियां

श्री वर्यामसिंह जी

श्री विष्णुगणेश पिंगले

श्री करतारसिंह

मि० के० के० अथावले, सम्पादक–पञ्जाबी
ला० जसवन्तराय एम०ए० 'पञ्जाबी' के मालिक

गया अन्याय ईश्वर का अपमान है, क्योंकि देश की पूजा श्री रामचन्द्र जी की पूजा है और देश की सेवा श्री रामचन्द्र की सेवा है।

एक गरीब और मूर्ख मेरे जैसे नौजवान के पास अपनी माता की सेवा में भेट करने के लिए अपने रक्त के सिवाय और क्या हो सकता है? सो मैंने अपना रक्त माता के चरणों पर चढ़ाया है।

इस समय यदि हिन्दुस्तान को किसी सबक की जरूरत है तो यह है कि मरना कैसे चाहिए? और इसे सिखाने का तरीका यह है कि हम खुद मर कर दिखायें। इसीलिए मैं मर रहा हूं। इसीलिए मुबारक हो शहीदाना मौत !

यह लड़ाई तब तक जारी रहेगी जब तक हिन्दुस्तानी और अंग्रेज़ दो राष्ट्र रहेंगे और इनका वह अस्वाभाविक गठबन्धन बना रहेगा। मेरी ईश्वर के आगे यही प्रार्थना है कि मैं फिर इसी मां की गोद में जन्म लूं और जब तक वह स्वतंत्र न हो जाए और मानव-समाज की पूर्ण सेवा और उन्नति योग्य न बन जाये, मैं यहीं जन्मता रहूं और मरता रहूं। -वन्दे मातरम्!

१६ अगस्त १९०९ का दिन भी इतिहास में याद रहेगा। उसदिन इंगलैण्ड में हिन्दुस्तानी युग पलट पार्टी की आवाज गुंजाने वाला ढींगरा वीर अपनी मतवाली चाल चलता हुआ तख्ते पर जा चढा था। श्रीमती एग्निस स्मेंडले एक जगह इस घटना का जिक्र करती हुई लिखती है -

"He walked to the scaffoled with his head high and shook of hands of those who offered to support him, saying that he was not afraid of death."

आहा! सहारा देकर ले जाने वाले व्यक्तियों के हाथ पीछे झटककर वह कहने लगा -मैं मौत से नहीं डरता। अहा! धन्य है मृत्युंजय!

"As he stood on the sacaffoled he was asked if he had a last word to say. He answered ?Vande Matram."

मां से इतना प्यार ! फाँसी के तख्ते पर खड़े हुए से पूछा जाता है - कुछ कहना चाहते हो? तो उत्तर मिलता है **'वन्दे मातरम् !'** मां ! भारत मां, तुम्हें नमस्कार ! वह वीर फाँसी पर लटक गया और उसकी लाश भी भीतर ही दफना दी गयी और हिन्दुस्तानियों को उसकी दाह क्रिया आदि कराने की इजाजत नहीं दी गयी! धन्य था वह वीर ! धन्य है उसकी याद ! मुर्दा देश के अमूल्य हीरे को बारम्बार नमस्कार! (मार्च १९२८ 'किरती' से) ❑❑

एक हाथ के वीर देशभक्त

सूफी अम्बाप्रसाद

सूफी अम्बाप्रसाद का जन्म मुरादाबाद में सन् १८५८ ईस्वी में हुआ। जन्म से उनका दायां हाथ नहीं था। बड़े होकर वे कहा करते थे–'सन् १८५७ की क्रान्ति में अंग्रेजों से लड़ते हुए मेरा हाथ कट गया था। अब देश को आजाद कराने के लिए तथा अंग्रेजों से संघर्ष करने के लिए मेरा पुनर्जन्म हुआ है, किन्तु वह पुनर्जन्म कटे हाथ ही हो गया।' देशभक्ति की ऐसी धुन के अद्‌भुत धनी थे सूफी अम्बाप्रसाद ! एक हाथ होते हुए भी उन्होंने स्वयं को किसी से कम नहीं समझा और देश की आजादी के लिए दूसरों की तरह भरपूर योगदान किया और यातनाएं सहीं।

आपने मुरादाबाद, बरेली, जालंधर, लुधियाना आदि स्थानों पर रहकर वकालत तक की परीक्षा पास की किन्तु वकालत नहीं की, क्योंकि उनका लक्ष्य ही देश की आजादी का था।

सूफी जी उर्दू के प्रतिभाशाली लेखक थे इस कारण उन्होंने लेखन कार्य को ही अपनाया। दायां हाथ न होने के कारण आप दायें पैर के अंगूठे-उंगली से कलम पकड़कर भली-भांति लिख लेते थे। १८९० में देशभक्ति विषयक एक उत्तेजक लेख लिखने पर आप पर राजद्रोह का मुकदमा चला और डेढ़ वर्ष की सजा हुई। सजा काटकर आने के बाद फिर अंग्रेज सरकार की आलोचना में लेख लिखे और सरकार के काले कारनामों का भाण्डाफोड़ किया। परिणामस्वरूप फिर गिरफ्तार कर लिया गया और छह वर्ष की सजा हुई। साथ ही सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली गई।

सूफी जी का सारा जीवन विचित्र एवं रोचक घटनाओं से भरा हुआ है। उस समय भोपाल स्टेट में अंग्रेज रेजीडेंट था। वह छल-प्रपंच से स्टेट को हड़पना चाहता था। 'अमृत बाजार पत्रिका' की ओर से सूचनाएं एकत्र करने के लिए सूफी जी को भेजा गया। सूफी जी अर्धशिक्षित व्यक्ति का रूप धारण करके सीधे रेजीडेंट के पास पंहुच गये और घरेलू नौकरी देने के लिए गिड़गिड़ाये। रेजीडेंट ने इन्हें घरेलू नौकर के रूप में रख लिया। ये बर्तन मांजते, सफाई करते, बाजार से सामान लाते और अशिक्षित व्यक्ति की तरह गंवारू हरकत करते। अन्दरूनी सारे छल-प्रपंचों,

षड्यन्त्रों की सूचना पत्रिका को भेजते रहते। सूचनाओं के आधार पर एक रहस्योद्घाटक लेख लिखा गया। षड्यन्त्रों का भेद खुलने से अंग्रेज सरकार की खूब बदनामी हुई। रेजीडेंट को उस स्टेट से हटा दिया गया। रेजीडेंट इस भेद खुलने से इतना क्रोधित हुआ कि उसने घोषणा कर डाली कि जो कोई भेद खोलने वाले की जानकारी देगा, उसे मैं पारितोषिक दूंगा।

एक दिन सूफी अम्बाप्रसाद कोट-पैंट पहन, हैट लगा, बाबू बनकर रेजीडेंट के सामने पंहुच गया और धाराप्रवाह अंग्रेजी में बात करने लगा। रेजीडेंट अशिक्षित समझे गये नौकर को इस प्रकार देखकर जहां भौंचक्का रहा गया, वहां घबरा भी गया। उसने आश्चर्य से पूछा-'तुम यह वेश बदलकर किसलिए आये हो?'

'आपने घोषणा की थी कि जो कोई मेरा भेद खोलने वाले की जानकारी देगा, उसे मैं पारितोषिक दूंगा।' अम्बाप्रसाद ने कहा।

'हां, कहा था, तो तुमने पता लगा लिया?' रेजीडेंट ने पूछा।

'हां' अम्बाप्रसाद ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

'कौन है वह?' रेजीडेंट ने खुशीभरी उत्सुकता में पूछा।

'वह मैं ही हूँ' अम्बाप्रसाद ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। रेजीडेंट क्रोध में तमतमा गया। बोला-'यदि राज्य में रहते पता लग जाता तो तेरी बोटी-बोटी कटवा देता। किन्तु अब मेरे अधिकार छिन चुके हैं।'

'तो अब आप अपनी घोषणा को पूरा कीजिए।' अम्बाप्रसाद ने मुस्कराते हुए रेजीडेंट को कहा।

रेजीडेंट ने सूफी को एक सोने की घड़ी दी और उसकी प्रतिभा को देखते हुए कहा कि 'यदि तुम गुप्तचर विभाग में काम करना चाहो तो मैं तुम्हें एक हजार रुपये मासिक वेतन दिलवा सकता हूँ।'

सूफी अम्बाप्रसाद को धन की चाह नहीं थी। उन्होंने उत्तर दिया-'यदि वेतन ही लेना होता तो आपके बर्तन साफ करने का काम क्यों करता?'

छह वर्ष की सजा की अवधि में अम्बाप्रसाद को एक गन्दी तंग कोठरी में बंद रखा गया। वहां वे बीमार हो गये। जान-बूझ कर दवाई-पानी का उचित प्रबन्ध नहीं किया। जेलर सोचता था कि यह इसी प्रकार मर जायेगा। रोज प्रातः जेलर यह सोचकर जाकर देखता कि आज वह मर चुका होगा किन्तु वह जीवित मिलता। जेलर कटाक्ष करता-'सूफी, अभी तू जिन्दा ही है?'

जेल से छूटकर सूफी हैदराबाद चले गये। निजाम हैदराबाद उनका

सम्मान करता था। निजाम ने उनकी खूब आव-भगत की और रहने के लिए एक सुन्दर भवन दिया तथा वहीं रहने के लिए अनुरोध किया। किन्तु सूफी का मन वहां नहीं लगा। निजाम द्वारा दी गयी सारी सुख-सुविधाओं को छोड़कर वे पंजाब आ गये। वहां 'हिन्दुस्तान' समाचार पत्र में नौकरी करने लगे। उनकी गुप्तचरीय प्रतिभा को देखकर पंजाब सरकार ने उनको गुप्तचर विभाग में कार्य करने के लिए १८०० रुपये मासिक वेतन का प्रलोभन दिया किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन्हें कोई प्रलोभन स्वीकार नहीं था। उनका लक्ष्य तो देश की सेवा करना था चाहे उसके लिए भूखा रहना पड़े।

पंजाब में उन दिनों सरदार अजीतसिंह ने 'भारतमाता सोसाइटी' की स्थापना की। सूफी जी भी उसमें सम्मिलित हो गये और देश की आजादी के लिए प्रयत्न करने लगे। १९०६ में सोसाइटी के सदस्यों की धर-पकड़ शुरू हुई। ये सरदार अजीत सिंह के भाई किशनसिंह और सोसाइटी के मन्त्री आनन्द किशोर मेहता के साथ नेपाल चले गये। नेपाल के तत्कालीन गवर्नर राणा जंगबहादुर ने सूफी जी का सम्मान किया और आश्रय भी दिया। इस बात से विक्षुब्ध होकर अंग्रेज सरकार ने राणा को उनके पद से हटा दिया और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली। सूफी अम्बा प्रसाद को पकड़कर लाहौर जेल में लाया गया और उन पर लाला पिण्डीदास के पत्र 'इंडिया' में उत्तेजक लेख लिखने का झूठा मुकदमा चलाया गया। किन्तु दोष सिद्ध न होने के कारण उनको छोड़ना पड़ा। सरदार अजीत सिंह को भी छोड़ दिया गया।

सन् १९०८ में सरदार अजीत सिंह ने सूफी अम्बाप्रसाद के साथ मिलकर 'भारतमाता बुक सोसाइटी' की स्थापना की। उसकी ओर से ''विद्रोही ईसा'' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी जिसे अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया।

इसी वर्ष लोकमान्य तिलक को छह वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया। तब सारे देश में देशभक्तों की पकड़ शुरू हुई। सूफी अपने 'देशभक्त मण्डल' के सभी सदस्यों के साथ साधु बनकर पर्वतों में चले गये। वहां भी एक गुप्तचर ने उनका पीछा किया। सूफी जी तीव्र बुद्धि थे। उन्होंने गुप्तचर को पहचान लिया और फटकार लगाकर उसे इतना शर्मिन्दा किया कि उसने क्षमा याचनापूर्वक कहा कि 'क्या करें, नौकरी के लिए यह सब करना पड़ता है।' सन् १९०९ में उन्होंने लाहौर लौटकर 'पेशवा' नामक अखबार निकाला। उन दिनों बंगाल में क्रान्ति की आंधी चल

रही थी। पंजाब में भी उसका प्रभाव पड़ रहा था। अंग्रेज सरकार ने लाला हरदयाल को गिरफ्तार कर देश निकाला की सजा दी। सूफी जी पर भी सरकार की वक्रदृष्टि थी। वे सरदार अजीतसिंह और जिया-उल हक के साथ ईरान चले गये।

ईरान में भी गुप्तचर इनके पीछे पड़े थे। जिला-उल हक को लालच आ गया। उसने सोचा कि इन दोनों को पकड़वा कर इनाम प्राप्त कर लूं और ठाठ से रहूं। चतुर सूफी जी हाव-भाव से हक के मन की बात भांप गये। उन्होंने नीति का सहारा लेकर हक से कहा कि 'जाओ, पुलिस को खबर कर दो कि हम यहां हैं। तुम छूट जाओगे। हमें धक्के नहीं खाने पड़ेंगे, जेल में समय ठीक से बीत जायेगा।' जिला-उल हक लोभवश चला गया। पीछे से छुप गये और वह पकड़ा गया।

ईरान में एक बार वे किसी व्यापारी के घर बैठे थे। एक गुप्तचर की सूचना पर सिपाहियों ने व्यापारी के घर को घेर लिया। किन्तु सूफी जी व्यापारी की सहायता से सुरक्षित बच निकले। एक दूसरे अवसर पर जब ये एक अमीर के घर बैठे थे, पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। घर की तलाशी ली गयी किन्तु सूफी जी हाथ नहीं लगे। अमीर ने उनको बुर्का पहनाकर जनानखाने में बैठा दिया था। जब पुलिस की सक्रियता कम हुई तो वहां उन्होंने 'आबे हयात' पत्र निकाला और कई पुस्तकें लिखीं। ईरान में ये इतने लोकप्रिय हो गये कि वहां के लोग उन्हें 'आका' कहकर पुकारने लगे।

सन् १९१५ में अंग्रेजों ने ईरान पर कब्जा करने का प्रयास किया। उस समय अनेक लोग पकड़े गये। सूफी अम्बाप्रसाद को भी गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजों की फौजी अदालत ने उन्हें मौत की सजा सुनायी। यह आदेश दिया गया कि उनको फांसी के बजाय गोली से उड़ा दिया जाये। वे कालकोठरी में बंद थे। मृत्युदण्ड के निर्धारित समय पर जब जेलर उन्हें लेने पंहुचा तो देखा कि उनका शरीर मृत पड़ा है। सूफी जी ने अंग्रेजों से मृत्युदण्ड पाने की बजाय स्वयं मृत्यु का वरण करना उचित समझा। योग के द्वारा उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये थे। सरकार हाथ मलती रह गयी। ईरानी जनता को सूफी जी के देहान्त का समाचार मिलते ही हजारों लोगों की भीड़ वहां एकत्रित हो गयी। जनता ने बड़े सम्मान के साथ उनके शव को दफनाया और वहां एक कब्र बनायी। वहां पर अब भी मेला लगता है और जनता उनकी कब्र पर दीप जलाकर उनकी पूजा करती है। देशभक्त का यही सबसे बड़ा सम्मान है। ❑❑

दिल्ली बम काण्ड और उसके बलिदान

देश को आजाद कराने के लिए एकता के साथ काम कर रहे हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालने और व्यापक राष्ट्रीय भावना को नष्ट करने के लिए लार्ड कर्जन ने १९०५ में बंगाल को हिन्दू और मुस्लिम प्रान्त के रूप में विभाजित कर दिया। सारे देश में तीव्र विरोध के बावजूद २० जुलाई १९०५ को इस विभाजन पर भारत-सचिव ने मुहर लगा दी। बंग-भंग के बाद आन्दोलन और तेज हो गया। यद्यपि १९११ में बंगाल को फिर से एक कर दिया किन्तु आन्दोलन का ज्वार नहीं थमा। तब अंग्रेज अपनी राजधानी कलकत्ता से दिल्ली ले आये। सोचा था, यहां शान्ति रहेगी। किन्तु क्रान्तिकारियों ने दिखा दिया कि अंग्रेज कहीं जाये, वो पीछा नहीं छोडेंगे। और उन्होंने दिल्ली में उनका स्वागत तो किया, किन्तु बम के धमाके से।

लार्ड हार्डिंग को नया वायसराय बनाकर दिल्ली भेजा गया। अंग्रेज सरकार ने योजना बनायी कि दिल्ली में वायसराय के प्रवेश के बाद एक शानदार जुलूस निकाला जाये जिससे भारतीय जनता पर अंग्रेजी प्रभुत्व का प्रभाव गहरा जाये। २३ दिसम्बर १९१२ को बड़ी धूमधाम से और भारी सुरक्षा के बीच लार्ड हार्डिंग का जुलूस निकला। वैभव और राजशक्ति का अद्‌भुत प्रदर्शन था। जनता उसे देखकर वास्तव में सोचने लग रही थी कि अब अंग्रेज शासन सदा-सदा के लिए स्थायी हो गया।

जुलूस चांदनी चौक में कोतवाली के सामने से होता हुआ मारवाड़ी लायब्रेरी के सामने आया था कि अचानक किसी अज्ञात दिशा से एक बम वायसराय की सवारी पर गिरा। बम कुछ निशाना चूक गया इसलिए वायसराय बच गया किन्तु सिर के पीछे कुछ चोट लगने से वह मूर्च्छित हो गया। उसका एक अंगरक्षक वहीं मारा गया। जुलूस में भगदड़ मच गयी। रोब और शक्ति-प्रदर्शन बिखर गया। सारे चांदनी चौक को घेर लिया किन्तु तुरन्त कुछ भी जानकारी नहीं मिली। खोजबीन करके इस केस में ये तेरह अभियुक्त बनाये गये—मास्टर अमीचन्द, भाई बालमुकुन्द, अवधबिहारी, वसन्तकुमार विश्वास, लाला हनुमन्तसहाय, खुशीराम, चरणदास, बलराज, रामलाल, मन्नूलाल, रघुवर शर्मा; दीनानाथ तथा सुल्तान चन्द ये दोनों बाद में सरकारी गवाह बन गये थे।

भाई बालमुकुन्द – दिल्ली के क्रूरतम मुसलमान बादशाह औरंगजेब ने, इस्लाम स्वीकार न करने पर गुरु तेग बहादुर को मरवा दिया और उनके साथ भाई मतिदास को आरे से चिरवा कर मार डाला। उसी शहीद भाई मतिदास के वंश में फिर से बलिदान देने के लिए दो क्रान्तिकारी तैयार हुए, वे थे– भाई बालमुकुन्द और भाई परमानन्द एम.ए.। बालमुकुन्द, परमानन्द के चचेरे भाई थे। पंजाब के जिला झेलम के करियाला में जन्मे बालमुकुन्द ने डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से बी.ए. पास करने के बाद देशसेवा का व्रत लिया। लाला लाजपतराय के सम्पर्क में आने से वे अछूतोद्धार आदि सामाजिक सुधार के कार्यों और स्वतन्त्रता–आन्दोलनों में भाग लेने लगे। यह वह समय था जब गदर पार्टी की प्रेरणा से देशभक्त विदेशों से स्वदेश लौट रहे थे। बंगाल और पंजाब में अनेक क्रान्तिकारी सक्रिय थे, उस समय १९१० में आपने लाहौर में सभी क्रान्तिकारी युवकों को संगठित किया और उनकी एक कार्यकारिणी गठित की। लाहौर की कार्यकारिणी का दायित्व आपको सौंपा गया। आपके उस दल की ओर से अनेक बार गुप्तरूप से 'लिबर्टी' (आजादी) नामक पर्चे बांटे गये थे जिसमें स्वाधीनता–प्राप्ति के लिए आह्वान किया गया था। २३ दिसम्बर १९१२ को दिल्ली बम–काण्ड हो गया। इसमें आपको मुख्य अभियुक्त बनाकर फांसी पर लटका दिया गया। शेष जानकारी आगे क्रान्तिकारी भगतसिंह के शब्दों में दी जा रही है।

"कलकत्ता के राजा बाजार में तलाशी लेने पर अवधविहारी के नाम का पता लगा। पता लगाने पर पुलिस ने यह भी मालूम किया कि अवधबिहारी मास्टर अमीचन्द के घर में रहते हैं। तदनुसार पुलिस ने मास्टर साहब के घर की तलाशी ली। उस तलाशी में कई क्रान्तिकारी परचे, एक बम की टोपी तथा कुछ पत्र मिले। इस पर अमीचन्द, उनके भतीजे सुलतानचन्द और अवधबिहारी गिरफ्तार कर लिए गए। इन पत्रों में कुछ एम० एस० के दस्तखती पत्र थे। पुलिस ने पता लगाते लगाते कई दिनों में यह पता लगाया कि एम० एस० का असली नाम दीनानाथ है। अब दीनानाथ की खोज होने लगी। कई व्यक्ति दीनानाथ के धोखे में पकड़े गए। अन्त में असली दीनानाथ पकड़े गए। वह हजरत पकड़े जाते ही मुखबिर हो गए और जो कुछ भी उसे मालूम था वह सब उगल दिया। किन्तु इस व्यक्ति को भी वायसराय पर बम फैंकने का पता न था। सरकार ने १३ अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया। दीनानाथ के अतिरिक्त अमीचन्द का दत्तकपुत्र सुलतानचन्द भी मुखबिर हो गया। ७ महीने तक

मुकदमा चलने के बाद ५ अक्तूबर १९१४ को मास्टर अमीचन्द, अवधबिहारी तथा बालमुकुन्द को फाँसी की सजा हो गई। चीफ कोर्ट में फैसला और भी सख्त हो गया अर्थात् वसन्तकुमार को भी फांसी की सजा दी गई" (**सम्पादक**)

भाई बालमुकुन्द जी

(क्रान्तिकारी भगतसिंह द्वारा लिखित)

(क्रान्तिकारी भगतसिंह ने विद्रोही नाम से यह लेखमाला 'किरती' पत्रिका में अगस्त-सितम्बर १९२८ में निकाली थी।)

"आज हम दिल्ली षड्यन्त्र के शहीद भाई बालमुकुन्द जी की जीवनी लिख रहे हैं। अगली बार हम दिल्ली-षड्यन्त्र का इतिहास भी देंगे और हम उनके साथ के और शहीदों की हालात भी लिखेंगे।

श्री गुरु तेगबहादुर साहब की जब औरंगजेब ने दिल्ली में हत्या करवाई थी तब उनके साथ एक ब्राह्मण भाई मतिदास भी थे। और उन्हें भी आरे से चीर कर शहीद किया गया था। तब से उनके खानदान को भाई का खिताब मिला हुआ है। भाई बालमुकुन्द जी इसी खानदान में से थे। आप करियाला जिले झेलम के रहने वाले थे। भाई परमानन्द जी के चाचा के लड़के थे। आप ने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी।

आप जब राजा के लड़कों को पढ़ाते थे, तब आपको गिरफ्तार किया गया था। वहां आपके घर की तलाशी हुई, लेकिन कोई ऐसी चीज न मिली जिससे कि आपके खिलाफ कुछ साबित किया जा सके।

वास्तव में १९०७ में जो आन्दोलन चला था, उसके साथ ही कुछ आदमियों में जोश भर गया था। १९०८ की भारत माता बुक सोसायटी और लाला हरदयाल के प्रचार ने भी कुछ और रंग चढा दिया। उसके बाद बंगाल के एक दो आदमी इधर आये। उन्होंने इनमें बहुत से नौजवानों को एक खुफिया पार्टी में शामिल किया। १९१० में श्री रासबिहारी बोस ने आकर पंजाब का काम स्वयं संगठित किया जिसमें कि भाई बालमुकुन्द को ही लाहौर का जत्थेदार नियत किया गया।

दिसम्बर १९१२ में दिल्ली में वाइसराय का जुलूस निकल रहा था। बड़ी शानो शौकत, बड़ी रौनक और हो हल्ला मचा हुआ था। चांदनी चौक में से जुलूस जा रहा था। वाइसराय लार्ड हार्डिंग हाथी पर चौकी में सवार थे। अचानक एक ओर से बम गिरा। वाइसराय घायल हो गया और एक नौकर मारा गया। बड़ा शोर हुआ। बड़े हाथ पाव मारे गये लेकिन कुछ पेश न चली। कुछ पता न चला कि यह काम किसने किया।

पांच-छह महीने गुजर गये। लाहौर के लारेंस गार्डन में मिंटगुमरी हॉल में गोरों का नाच हो रहा था। हॉल से बाहर एक बम फट गया, इससे एक हिन्दुस्तानी चपरासी मर गया। उस समय कोई गिरफ्तारी न हो सकी। फिर कहा जाता है कि एक बम लाहौर के किले में चला, उसका भी कुछ पता न चल सका।

लारेंस बाग में बम चलने से कोई सात आठ महीने बाद बंगाल में किसी जगह तलाशी थी। अवधबिहारी का दिल्ली का पता हाथ लग गया। उसकी तलाशी हुई और एक पत्र लाहौर से आया पकड़ा गया।। उस पर मेहरसिंह के दस्तखत थे। पूछने पर उन्होंने बता दिया कि यह पत्र दीनानाथ का लिखा हुआ है। कई दीनानाथ लाहौर में पकड़े गये। आखिर में असली दीनानाथ भी मिल गया, जिसने कुछ दिनों में पूरा भेद खोल दिया और सरकारी 'वायदा माफ गवाह' बन गया। उसके बयान पर कोई बारह आदमी और पकड़े गये। जोधपुर से भाई बालमुकुन्द जी भी पकड़े गये।

दिल्ली में मुकदमा चला। सबसे बड़ा आरोप था लारेंस गार्डन का बम और तख्ता पलटने के पर्चों की योजना। भाई बालमुकुन्द चूंकि लाहौर के जत्थेदार थे और बड़े योग्य और बड़े कट्टर देशभक्त थे, इसलिए आपके खिलाफ कुछ भी सबूत न होने के बाबजूद फांसी की सजा दे दी गयी।

चीफ कोर्ट का जज अपील के फैसले में स्वयं लिखता है-

"Firstly, it is pointed out rightly enough that in search of his houses at Jodhpur and Karyala, his home in the Jhelum District,Failed to reveal anything in his possession any conditions literature. Secondly admittedly he had no direct connectin with the Lahore bomb outrage or that July leaflets."

यानी यह तर्क पेश किया गया है कि उनके घरों की तलाशी से कोई कागज ऐसा नहीं निकला जो कि प्रचार करने वाला हो और दूसरी बात यह भी ठीक है कि लाहौर बम से और जुलाई में बांटे गये तख्ता पलट पर्चों से भी उनका कोई सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता और इस मुकदमे में और किसी बम का जिक्र भी नहीं, फिर भी उन्हें मौत की सजा क्यों दी गयी? जज लिखता है कि क्या हुआ यदि उनसे लाहौर में बम चलाने से पहले नहीं पूछा गया, क्या हुआ कि यदि वे उन दिनों लाहौर में नहीं थे, क्या हुआ यदि इस बात का प्रमाण नहीं कि बाद में भी उन्हें बम

चलाने की खबर दी गयी। आखिर वह षड्यन्त्र का सदस्य तो था ही। वह साजिश में शामिल तो हो ही चुका था। बस इसी से वह हत्या का जिम्मेदार है और कानून के अनुसार उसे फांसी की सजा मिलनी चाहिए। कानून की विशेषताओं का अब क्या जिक्र करें? हद ही हो गयी है। आपको फांसी की सजा दी गयी, क्योंकि आप बड़े कट्टर तख्ता पलटने वाले थे और बड़े योग्य थे। देशभक्ति की भावना बड़े जोरों से भरी हुई थी और दूसरी बात यह थी कि दिल्ली बम के चल जाने के बाद भी उसके चलाने वालों का पता न चल सकने से सरकार का रोब खत्म हो गया था। O-Dyer (ओडायर) नया-नया लाट बनकर आया था। वह यह बर्दाश्त नहीं कर सका। सारा क्रोध इसी मुकदमे पर निकाला गया। एक सज्जन बड़े सुन्दर शब्दों में ओडायर की पालिसी का जिक्र करते हैं, वे कहते हैं कि ओडायर की पालिसी थी -

"Guilty or not guilty, a few must be punished to maintain the prestige of the Govt."

अर्थात् यानी चाहे अपराधी हो या निर्दोष, कुछ आदमियों को सजा जरूर दी जाये, ताकि सरकार के रोब में कमी न हो।

खैर ! आपको फांसी की सजा हुई। आपने बड़ी प्रसन्नता से सुनी। अपील खारिज हो चुकने के बाद आपको १९१४ में फांसी पर लटका दिया गया। लोग बताते हैं कि आप बड़े चाव से दौड़े दौड़े गये। फांसी के तख्ते पर चढ़ गये और अपने हाथों से ही फांसी की रस्सी को गले में डाल लिया।

भाई बालमुकुन्द जी की अपनी शहादत बड़ी ऊंची और पूजा योग्य है लेकिन उनके बलिदान को धर्मपत्नी के अतुलनीय प्रेम से सती होने से चार चांद लग गये।

भाई बालमुकुन्द जी जेल में कैद थे। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामरखी उनसे मिलने आयी। पूछा, "रोटी कैसी मिलती है?" उत्तर मिला, "आधी रेत और आधे आटे की जली हुई, बिल्कुल कच्ची रोटी मिलती है।" नमूना ले लिया। घर जाकर वैसा ही आटा तैयार किया वैसी ही रोटी पकाई। कहा, "जब मेरे प्रीतम आप ऐसी रोटी खाते हैं तो मैं अच्छी कैसे खा सकती हूं।" वैसी ही रोटी खाती रही। फिर एक मुलाकात हुई पूछा, "इतनी सख्त गर्मी में सोते कहां हैं?" जबाब मिला, "अंधेरी कोठरी में, सख्त गर्मी में दो कम्बल मिलते हैं।" घर आ गयी। घर की सब से पिछली कोठरी में जाकर सो गयीं। मच्छर काट-काट कर खाते थे। क्या

करती? वहीं सोना था। सखी सहेली ने कहा, "पगली यह भी कोई जिन्दा रहने वालों का तरीका है?" श्रीमती रामरखी ने पूछा, "तो क्या ऐसे रहने वाले बचते नहीं?" सखियों ने कहा, "और क्या। इस तरह करने वाले भी क्या बचे है?" उनकी आंखें भर आयी। सहेलियां चुप होकर बैठ गयी। वह वहीं सोती रही। एक दिन वे भीतर निढाल पड़ी थी कि बाहर से औरतों के रोने-चिल्लाने की आवाजें आयी। सब समझ लिया कि उनके प्रीतम भाई बालमुकुन्द जी को फांसी हो चुकी है। उनकी लाश भी नहीं दी गयी। उठी। नहायी-धोयी, सुन्दर-सुन्दर कपड़े और आभूषण पहनकर फर्श पर अपने पति के ध्यान में मग्न होकर बैठ गयी। फिर वे उठीं नहीं। धन्य थे भाई बालमुकुन्द और धन्य श्रीमती रामरखी। उन्होंने हिन्दुस्तान क्रान्ति को कितना सुन्दर बना दिया।

(अगस्त १९२८ 'किरती' से)

"पिछली बार हमने दिल्ली-साजिश का कुछ हाल भाई बालमुकुन्द जी के जीवन से दिया। भाई बालमुकुन्द जी जैसा कि पिछली बार बताया गया था गिरफ्तारी के समय महाराजा जोधपुर के लड़कों को पढ़ाते थे। एक दिन मोटर में राजकुमार के साथ बैठ सैर को जा रहे थे कि अंग्रेज़ अधिकारी उनके गिरफ्तारी के वारण्ट लेकर पहुंच गया। वहीं गिरफ्तार कर लिये गये। वहीं आपके घर की तलाशी ली गयी। सरकारी गवाह दीनानाथ ने पहले ही जो बयान दिया था, उसके मुताबिक भाई बालमुकुन्द जी पंजाब के नेता चुने गये थे और दो बम दिये गये थे। दीनानाथ के कथनानुसार वे दो बम भाई बालमुकुन्द जी के पास ही थे। कहीं लौटाये नहीं गये। इसी ख्याल में घर की तलाशी हुई। सारा घर कमर तक खोद डाला। छतें उधेड़ दी गयी, लेकिन बम नहीं मिले। खैर, **उनके पास से कोई कागज पत्र ऐसा वैसा नहीं मिला जिससे कोई खास सबूत मिल सकता। लेकिन फिर भी उन्हें फांसी की सजा मिली।** भाई बालमुकुन्द जी पहले लाला लाजपतराय के अछूतों के कार्यक्रम में काम करते रहे थे और पहाड़ों में जहां कि छूतछात बहुत मानी जाती है वहीं वे प्रचार के लिए निकल गये थे। वहां के उनके साथी उनकी योग्यता की बड़ी प्रशंसा करते हैं।"

मास्टर अमीचन्द

इस केस में चार आदमियों को फांसी की सजा हुई थी। उनमें मास्टर अमीचन्द जी कोई ५० साल की उम्र के थे। वे बड़े लायक और योग्य आदमी थे। आप दिल्ली के रहने वाले थे। उच्च शिक्षा प्राप्त थे।

बड़े धर्मात्मा थे। मिशन स्कूल दिल्ली में पढ़ाते थे। आपके दिल में हिन्दुस्तान की उन्नति का बहुत ख्याल था। आप उर्दू और अंग्रेज़ी के बड़े अच्छे लेखक थे। पहले जब स्वामी रामतीर्थ पंजाब में आये, तब आपने उनके धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण विचारों का प्रचार बड़े जोरों से किया। आपने 'खतूते राम' आदि कई पुस्तकें छपवायी। बाद में लाला हरदयाल जी एम० ए० अपनी छात्रवृत्ति छोड़ विलायत से अंग्रेज़ी शिक्षा का बहिष्कार कर भारत लौट आये। आपने यहां आकर एक तरह से संन्यासी वालंटियर पैदा करने का विचार किया और उन्होने बहुत से विद्यार्थियों को शिक्षा से हटाया और उन्हें साथ लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करने लगे। १९०८ के आखिर में ही लाला हरदयाल को हिन्दुस्तान छोड़कर चले जाना पड़ा। सरकार कहती है कि जब वे जाने लगे तो उन्होंने अपनी सम्पत्ति मा० अमीचन्द जी के हवाले कर दी जिन्होंने कि उनकी शिक्षा जारी रखी। पहले-पहले दीनानाथ और जितेन्द्रनाथ चटर्जी उनके पास गये। बाद में अवधबिहारी आदि से उनका परिचय हुआ। लेकिन असल में अवध बिहारी पहले ही दिल्ली के रहने वाले थे और पहले से ही परिचित थे।

खैर, मास्टर अमीचन्द बड़े जिन्दादिल, बड़े नेकदिल और कट्टर आजादी परस्त थे। आप कहा करते थे कि दिल्ली में बन्दर मास्टर का घर पूछते ही मेरा घर मिल जायेगा।

दिल्ली में वाइसराय पर बम चल गया, लेकिन सरकार हाथ मलती रह गयी। कुछ भी पता न चला। बाद में एक बम लाहौर लारेंस गार्डन में चल गया, लेकिन उसका भी कुछ पता न चला। आखिर राजा बाजार कलकत्ता की तलाशी में श्री अवधबिहारी का नाम व पता निकल आया। मा० अमीचन्द को पहले ही शक की निगाह से देखा जाता था। अवधबिहारी उन्हीं के पास रहते थे।

एक दिन अवधबिहारी की तलाशी हुई। बम की टोपी मिल गयी और लाहौर का एक पत्र मिल गया जिस पर कि मेहरसिंह की ओर से एम० एस० आई० दस्तखत किये थे। पूछने पर आपने बता दिया कि यह खत दीनानाथ की ओर से है। दीनानाथ की गिरफ्तारी की गयी। वह फूट पड़ा और उसने वह सारा भेद खेल दिया। उसने बताया कि लारेंस गार्डन का बम श्री अवधबिहारी और वसन्तकुमार ने रखा था। खैर, मुकदमा चला।

मास्टर अमीचन्द ने अपने भतीजे सुलतानचन्द को उत्तराधिकारी बनाया था और उससे अपने पुत्रों जैसा प्यार करते थे। उसे अपनी

इच्छानुसार शिक्षा देते थे। देशभक्त बनाना चाहते थे। आप पर मुकदमा चला। वही पुत्र आपके खिलाफ गवाह बन गया। जरा सोचो बेचारे मास्टर अमीचन्द जी के बारे में ! जिसे अपना पुत्र बनाया था वही सरकारी गवाह बनकर आपके खिलाफ गवाही दे रहा है। कैसी दर्दनाक स्थिति है। आज जब मुसीबत का समय आया तो अपने दिल का टुकड़ा, अपना पुत्र भी साथ न दे सका। उर्दू के एक शायर ने क्या खूब कहा है–

बाग़वां ने आग दी जब आशियाने को मेरे ।
जिनपे तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे ॥

मुकदमा चलता रहा। गवाह भुगतते रहे। सबूत मिला कि वह एक साजिस के सदस्य भी हैं और चूंकि वह बड़े लायक और बुद्धिमान् है इसलिए हत्या आदि करने की साजिश के लिए नौजवानों को बरगला सकते हैं। और –

"One who spent his life furthering murderous schemes which he was too timid to carry out himself."

(यानी) हत्या का प्रचार करने में जिसने अपनी पूरी जिन्दगी लगा दी उसके बारे में वह स्वयं साहसहीन था।

उन्हीं दिनों तख्ता पलट पार्टी की ओर से Liberty (आजादी) नाम का एक पर्चा बांटा जाता था। एक पर्चे का मसौदा मास्टर जी के हाथ का लिखा उनके घर में मिल गया। उसमें ऐसे वाक्य आपत्तिजनक माने गये–

We are so many that we an seize and snatch from them their connon.

Reforms will not do. Revolution and general massecre of all the foreigners specially the English will and alone can serve our purpose.

यानी हम संख्या में इतने हैं कि हम उनकी तोपें छीन सकते हैं। यह सड़े सुधार या योजनाएं किसी काम नहीं आयेंगी। एक बसर तख्ता पलट दो और फिरंगी को मार खत्म करो। खैर, इन्हीं वाक्यों के कारण ही उन्हें बड़ा खूंखार कातिल समझा गया और कहा गया।

आपके चरित्र के सम्बन्ध में केनन आलनट और मिस्टर एस० के० रुद्र आदि बतौर गवाह पेश हुए। उन्होंने आपकी बहुत तारीफ की, लेकिन जज लिखता है कि मास्टर अमीचन्द लामिसाल देशभक्त, बड़े नेक, दर्दमन्द और ऊंचे चरित्र के थे।

मतलब यह है कि आपको उस केस में फांसी की सजा दी गयी। आपने हंसते हुए सुनी और आखिर में बड़ी हंसी-खुशी से फांसी पर लटक कर जान दे दी।

मिस्टर अवधबिहारी

आप बड़े होनहार नौजवान थे। बी० ए० पास कर सेण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज, लाहौर से बी० टी० पास की। आप पर कई लिबर्टी पर्चे लिखने का आरोप था। आपको यू० पी० और पंजाब की पार्टी का प्रमुख नियत किया गया था। 'बन्दी जीवन' के लेखक श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल ने आपकी बड़ी तारीफ की है। कहते हैं कि आप बड़े जिन्दादिल थे और आमतौर पर गुनगुनाते रहते थे–

एहसान ना खुदा का उठाये मेरी बला ।
किश्ती ख़ुदा पे छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं ॥

इस शेर से ही पता चलता है कि वे कितने मस्ताने वीर थे। आप पर पर्चे लिखने और लारेंस गार्डन में बम चलाने का आरोप था। आपको भी फांसी की सजा हुई। आपने बड़ी खुशी से सुनी। **कहते हैं कि फांसी लगने के दिन आपसे पूछा गया, अखिरी इच्छा क्या है?"**

जवाब दिया, "यही कि अंग्रेज़ों का बेड़ा गर्क हो।"

कहा गया "शान्त रहो। आज तो शान्ति से प्राण दो।" कहने वाला एक अंग्रेज़ था। उससे आपने कहा, देखो जी! आज शान्ति कैसी? मैं तो चाहता हूं कि आग भड़के। चारों ओर आग भड़के। तुम भी जलो, हम भी जलें। हमारी गुलामी भी जले। आखिर में हिन्दुस्तान कुन्दन बनकर रहे।" आपने झट उछलकर स्वयं गले में फांसी का फन्दा डाल लिया। इस तरह वह वीर भी आजादी-देवी के चरणों में अपने प्राण बलिदान कर गया।

जज आपके बारे में लिखता है–

Awadh Behari is a youngman of great intellectual ability. He stood second in the Ist division of the Punjab University B.T.Examination.,

कि अवधबिहारी (२५ वर्ष का) नौजवान है और बहुत ही योग्य है। वह पंजाब विश्वविद्यालय की बी. टी. की परीक्षा में पंजाब-भर में दूसरे स्थान पर रहा है। उनके खिलाफ यह सबूत पेश हुआ कि आपका मास्टर अमीचन्द से बहुत प्रेम भी इस बात का प्रमाण है कि वे साजिश के सदस्य थे और प्रेम का सबूत यह है कि आपको मास्टर अमीचन्द

जी ने Dear Awadhji (प्यारे अवध जी) लिखा था।

श्री बसन्तकुमार विस्वास

आप नदिया जिला (बंगाल) के रहने वाले नौजवान थे। आपकी उम्र २३ वर्ष थी। अच्छे पढ़े-लिखे सज्जन थे। पहले आपको रासबिहारी अपने साथ ले आये व अपने घर में कर्मचारी बनाकर रखा। बाद में आपको लाहौर भेज दिया गया और वहां वह पापुलर डिस्पेन्सरी में कम्पाउण्डर भरती हो गये। दिल्ली में बम के दिनों आप लाहौर से कई दिन गायब रहे।

कहा जाता है कि लारेंस गार्डन का बम आपने ही अवधबिहारी के साथ मिलकर रखा था। बाद में आप दो और बम लाये। जो कि दीनानाथ के कथनानुसार भाई बालमुकन्द के पास थे। दिसम्बर १९१३ में आप बंगाल लौट गये और १९१४ में वहीं से पकड़कर लाहौर लाये गये। ओडायर को दिल्ली में बम चलाने वालों का पता न चलने से बड़ा गुस्सा आ रहा था, इसलिए तब आपकी उम्रकैद की सजा बढ़ाने की सिफारिश की। चीफ कोर्ट के जज ने लिखा है कि कहा जाता है, वह कोई बहुत बुद्धिमान् आदमी नहीं था। साधारण बुद्धि का आदमी था, इसलिए उसे टूल बनाकर उससे काम लिया जाता था और रासबिहारी के हाथों में खेलता था। यह गलत है। वह लिखता है–

He is not a boy, for at 23 an Indian has long reached maturity..... He looked to me a man of some force of character, without the familiar marks to weakness in his face.,

यानी वह लड़का नहीं, २३ वर्ष की उम्र में हिन्दुस्तानी पूरा आदमी हो जाता है। वह बड़ा दिलेर, समझदार और दिल का मजबूत आदमी है। उसके चेहरे पर कोई कमजोरी के निशान नजर नहीं आते।

और इस सवाल पर कि आपका केन्द्रीय कमेटी में कोई जिक्र नहीं है। इसलिए उन्हें बड़ा आदमी समझकर टूल बनाया गया था। जज कहता है–

"Basant Kumar Biswas had a long training and was quit ready for anything though he was kept purposely outside of the inner circle, so that, if caught, he would not be able to give much information to his captors."

यानी, बसन्तकुमार को चूंकि बहुत दिनों से सारा काम सिखाया गया था, इसलिए उसे सिर्फ किसी खतरनाक काम के लिए ही अलग

रखा गया था, ताकि यदि कहीं पकड़ा भी जाये, तो ज्यादा खबरें न दे सके।

खैर! चीफ कोर्ट के जज ने आपको फांसी की सजा सुना दी, और आपने बड़ी खुशी से सुनी। एक बात खास काबिले गौर है कि आपके मुकदमे के लिए बंगाल से एक वकील मि० सेन आया था। जबकि हमारे लोगों का यह हाल था कि महात्मा हंसराज को एक और आदमी, जिसका पुत्र इनके लड़के बलराज के साथ इसी मामले में पकड़ा हुआ था, मिलने आया ताकि मुकदमे सम्बन्धी सलाह कर सके। महात्मा जी के मकान से उसे धक्के मार बाहर निकाल दिया गया और आर्यसमाज के लाईफ मेंम्बर या जिन्होंने अपनी पूरी उम्र आर्यसमाज को दे दी थी, ने भी उनकी कोई मदद न की। यह बात जरा खास काबिले-गौर है।

सर माइकल ओडायर कहता है कि फांसी लगने से एक दिन पहले बसन्तकुमार ने मान लिया था कि दिल्ली में वाइसराय के ऊपर बम उसने ही फेंका था। क्या जाने सच है या नहीं। जो भी हो, आखिर इनमें से ही किसी का काम था।

आपने भी बड़ी वीरता से फांसी पर लटककर अपने प्राण देश और कौम की आजादी के लिए बलिदान कर दिये।

(सितम्बर, १९२८ 'किरती')

जिनकी गिरफ्तारी पर इनाम की घोषणा थी

क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस

(मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

जिन दिनों लाला हरदयाल उत्तर भारत में काम कर रहे थे, उन्हीं दिनों रासबिहारी बोस भी उत्तर भारत में काम करने के लिए आए। उनके पिता विनोदबिहारी बोस पटना के सरकारी छापेखाने में एक लिपिक थे। कहा जाता है कि रासबिहारी जब क्रान्तिकारी विचारों की ओर बढ़े तो फौज में भर्ती होना चाहते थे, पर उन दिनों बंगालियों के लिए फौज में भर्ती होना सम्भव नहीं था। इस कारण उन्हें उसकी आशा छोड़ देनी पड़ी और वे देहरादून की जंगल-शोध संस्था में लिपिक लग गए।

लिपिक लगने के बाद उनको ख्याल आया कि यदि लिपिक ही रह गया तो क्रान्ति का स्वप्न तो अधूरा ही रह जाएगा, इसलिए वे अब दूसरी तरफ देखने लगे। उन्होंने जल्दी ही अपने कुछ नौजवान साथी तैयार कर लिये और षड्यन्त्र चलाने लगे। सब से पहले यह समझा गया कि क्रांतिकारी साहित्य तैयार करना चाहिए। तदनुसार लिबर्टी नाम से

एक के बाद एक कई पर्चे निकाले गए। ये पर्चे केवल जनता में ही नहीं, फौजों में भी बांटे जाते थे। रासबिहारी एक बहुत अच्छे संगठनकर्ता थे, अतः जल्दी ही छोटे-छोटे गुटों में काम करने वाले दूसरे क्रांतिकारियों को अपने साथ कर लिया। इन गुटों में सबसे महत्त्वपूर्ण गुट मास्टर अमीचन्द और लाला हनुमन्तसहाय का था। लाला हनुमन्तसहाय की गिनती दिल्ली के रईसों में थी और उन्होंने तन, मन, धन सब क्रान्ति के सुपुर्द कर दिया था। देशभक्ति के जोश में उन्होंने अपनी बहुत अच्छी चलती बजाज की दुकान बन्द कर दी क्योंकि उसमें विदेशी कपड़े बेचे जाते थे।

मास्टर अमीचन्द कैम्ब्रिज मिशन हाई स्कूल के शिक्षक थे। वे उर्दू और अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे और लेख भी लिख लेते थे। कहते हैं लिबर्टी पर्चों में बहुत से उन्हीं के द्वारा लिखे हुए थे। इन पर्चों में यह लिखा था कि गीता, वेद, कुरान सब का कहना यही है कि स्वतन्त्रता हमारा लक्ष्य होना चाहिए और बिना स्वतन्त्रता के जीने का कोई अर्थ नहीं होता। कहते हैं मास्टर अमीचन्द बड़े मजाकिया थे और अपने ही मुंह से स्वयं को बन्दर मास्टर कहते थे क्योंकि वे देखने में अच्छे नहीं थे। पर वे अपने को जो कुछ भी कहें, उन्हें जानने वाले यह जानते थे कि वे बहुत पवित्र चरित्र के सच्चे आदमी हैं।

जब लाला हनुमन्तसहाय ने अपने घर में एक राष्ट्रीय स्कूल खोल दिया तो उसमें मास्टर अमीचन्द पढ़ाने लगे। इसके अलावा उनके साथी गणेशीलाल और अवधबिहारी नाम के भी युवक पढ़ाने लगे। अवधबिहारी अमीचन्द के छात्र थे और उनसे लगभग बीस साल छोटे थे। वे पढ़ने-लिखने में बहुत अच्छे थे, बी० ए० में उन्हें स्वर्ण पदक मिला था। मास्टर अमीचन्द के कारण अवधबिहारी एक बहुत पक्के क्रान्तिकारी विचारों के युवक बन गए।

रासबिहारी का इन युवकों से परिचय हुआ तो वे बहुत खुश हुए। साथ ही काशी में उन्हें शचीन्द्रनाथ सान्याल नामक एक युवक से परिचय हुआ, जो बहुत ही आदर्शवादी थे और वहां नवयुवकों का एक व्यायाम क्लब चलाते थे। शचीन्द्रनाथ सान्याल के भी इर्द-गिर्द कई होनहार क्रान्तिकारी थे जिनमें दामोदर स्वरूप सेठ, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य आदि थे।

काशी में एक बड़ा केन्द्र था और दूसरा केन्द्र दिल्ली में था। पंजाब में धीरे-धीरे केन्द्र कायम होते जा रहे थे। इन्हीं दिनों ब्रिटिश सरकार ने यह तय किया कि राजधानी कलकत्ता से हटा दी जाए। ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि सरकार यह समझती थी कि बंगाल में राजधानी

रखने में खतरा है क्योंकि वहाँ क्रान्तिकारी आन्दोलन धीरे-धीरे जोर पकड़ता जा रहा था। इसलिए यह सोचा गया था कि दिल्ली में राजधानी स्थापित की जाए। सम्राट् जार्ज पंचम के आने पर १२ दिसम्बर १९११ को एक दरबार हुआ जो दिल्ली दरबार के नाम से मशहूर है। इसमें भारत के सारे राजे-महाराजे, नवाब आदि बुलाए गए, ठाट-बाट का बोलबाला रहा और उसमें यह घोषणा की गई कि अब राजधानी दिल्ली में लाई जाती है। घोषणा तो उस मौके पर हुई पर इसका बाकायदा समारोह २३ दिसम्बर १९१२ को होने वाला था। इस अवसर पर उस युग के बड़े लाट साहब या वायसराय लार्ड हार्डिंग एक विराट् शानदार जुलूस में चलने वाले थे और उनके बाद से दिल्ली राजधानी होने वाली थी। जुलूस चांदनी चौक के अन्दर से गुजर रहा था। लार्ड हार्डिंग एक बहुत ही ऊंचे भव्य हाथी पर सवार थे जिस पर बहुमूल्य हौदा लगा हुआ था और हाथी का सारा शरीर कीमती कामदार कपड़े से ढका हुआ था। सम्राट् के प्रतिनिधि का जुलूस जो ठहरा। ऐसे सम्राट् का जिसके साम्राज्य में सूर्यास्त होता ही नहीं था। दिल्ली महानगरी किसी न किसी रूप में सैकड़ों वर्षों से भारत की राजधानी रही है। पाटलिपुत्र आदि नगर प्रान्तीय महत्त्व के नगर होकर रह गये जबकि दिल्ली की शान बराबर बनी रही। अब दिल्ली की उस शान में कुछ इजाफा होने जा रहा था। क्योंकि अखिल भारत के ही नहीं आस्ट्रेलिया, कनाडा और जाने कितने छोटे-मोटे देशों और टापुओं के सम्राट् के प्रतिनिधि अब दिल्ली को राजधानी बनाकर उसे फिर महानगरियों की रानी बनाने वाले थे। फिर एक बार दिल्ली के यश का गौरव सारे संसार में फैलने वाला था।

जुलूस बड़ी शान से आया था। सम्राट् और साम्राज्य की जय-जयकार हो रही थी। उसी जुलूस में स्थान पाकर राजा-महाराजा नवाब अपने को धन्य मान रहे थे। साधारण जनता उस विराट् तमाशे की कुछ झलक पाने के लिए तोप की खुराक के रूप में मौजूद थी। यह सब शान इसलिए तो थी कि जनता पर प्रभाव पड़े। इतना प्रभाव पड़े कि कभी सिर उठाकर न देखे उसकी कमर झुकी रहे। वह कभी उठने न पाए, इसी के लिए यह सारा षड्यन्त्र था।

दूसरी तरफ कुछ इने-गिने क्रान्तिकारी यह चाहते थे कि सारा समारोह व्यर्थ हो जाए और जनता पर जो असर सरकार अफीम के रूप में डालना चाहती थी वह न पड़ पाए। इसलिए जब जुलूस चांदनी चौक की ओर बढ़ रहा था तो बड़े जोर से धड़ाका हुआ और जब लोग सम्भल पाए तो वे समझ गए कि सम्राट् के परम श्रेष्ठ प्रतिनिधि पर बम पड़ा है। भयंकर

बमचख और भगदड़ मच गई। सब लोग घबराए कि हाय यह क्या हो गया। अब तो बहुत भारी अत्याचार होगा। भारतीय प्रजा की यह दशा थी कि वह अत्याचार के डर से हर समय सिकुड़ी रहती थी। अब तक क्रान्तिकारियों ने छोटे मोटे अफसरों पर ही हमला किया था, पर अब की बार तो स्वयं वायसराय पर हमला था।

बाद में पता चला वायसराय सही सलामत बच गए, पर उनके एक ए० डी० सी० मारे गए। लाखों रुपया खर्च करके ब्रिटिश सरकार ने जनता पर जो रोब डालना चाहा था, वह नष्ट हो गया। सारे साम्राज्य की पुलिस फौरन दौड़ने लगी। इसके बाद ही पर्चा भी बांटा कि भारत अब स्वतंत्र होने को है। बहुत समय तक कुछ सुराग नहीं मिला कि यह सब कौन लोग कर रहे हैं पर जब कलकत्ता के राजा बाजार में रासबिहारी को पकड़ने के लिए गए तो रासबिहारी लापता थे। फिर पुलिस को कुछ पत्र मिले। इनमें एक एम० एस० का नाम मिला। पता लगा कि एम० एस० माने दीनानाथ। बहुत से दीनानाथ गिरफ्तार हुए। पहले तीन दीनानाथ ने तो कहा कि कुछ नहीं जानते पर चौथे दीनानाथ पकड़े गए तो वे रोने लगे और उन्होंने मुखबिर बनकर सारी बात खोल कर पुलिस के सामने रख दी। पता लगा कि इस षड्यन्त्र में कई आदमी हैं और बसन्तकुमार विश्वास और रासबिहारी बसु ने बम फेंकने में भाग लिया था। मास्टर अमीचन्द ने सुल्तानचन्द नामक एक नवयुवक को गोद ले रखा था। वह गवाह के रूप में सामने आ गया। जब वह युवक गवाह के रूप में अदालत में पेश किया गया तो मास्टर अमीचन्द भावुकता से रो पड़े। दीनानाथ और सुल्तान की गवाहियों के कारण अमीरचन्द, अवधबिहारी, भाई बालमुकुन्द और बसन्तकुमार विश्वास को फांसी की सजा दी गई और हनुमन्तसहाय, बलराज भल्ला को सात साल की कालेपानी की सजा हुई।

मास्टर अमीचन्द तथा उनके साथियों ने फांसी की सजा बड़े साहस के साथ ली। फांसी की सजा सुनकर भाई बालमुकुन्द ने कहा मेरे पूर्वज भाई मतिदास ने धर्म और स्वतंत्रता के लिए प्राण दिया था, मुझे भी यह सौभाग्य है कि मैं अपनी मातृभूमि के लिए प्राण देने जा रहा हूं।

भाई बालमुकुन्द की पत्नी एक आदर्श प्रेमिका निकली। अभी सालभर पहले शादी हुई थी। जब बालमुकुन्द को फांसी लग गई तो उन्होंने खाना पीना छोड़ दिया और डाक्टर पता नहीं इसके लिए क्या कहेंगे वे भी मर गई। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने इस घटना को अपने बंदी जीवन में लिखा है—बालमुकुन्द की गृहिणी तुम धन्य हो। ऐसी पत्नी के बिना ऐसा पति

कैसे हो सकता है। हाय रे भारत का भाग्य, ऐसी पत्नी और ऐसा पति का बना रहना तेरे भाग्य में न था।

रासबिहारी को अभी तक किसी ने दु:ख में नहीं देखा था, पर जब उन्होंने सुना कि चारों और साथियों को फांसी हो गई, तो वे रो पड़े। इन चारों में सभी बहादुर निकले। इन चारों में बसन्तकुमार विश्वास कि उम्र सब से कम थी। सबसे पहले उन्हें आजन्म काले पानी की सजा हुई थी। पर अपील में सजा बढ़ कर फांसी की हो गई। अवधबिहारी ने फांसी चढने से पहले एक अंग्रेज़ अफसर के इस प्रश्न के उत्तर में कि तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है, कहा था–**मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि ब्रिटिश राज्य का जल्दी अन्त हो।**

इस पर उस अंग्रेज़ अफसर ने पूछा–इस कथन से तुम्हें इस समय क्या लाभ पहुंच रहा है? अपनी अन्तिम घड़ी में तुम शान्ति क्यों नहीं रखते?

इस पर अवधबिहारी ने कहा इस समय मैं शान्त रहूं? शान्ति की बात भली चलाई। मैं बल्कि यह चाहता हूं कि चारों तरफ ज्वाला बनकर आग तुम्हें, तुम्हारे साम्राज्य को और हमारी गुलामी को जला दे और भारत का पुनर्जन्म हो।

रासबिहारी ने काशी का जो संगठन किया था वह भी पुलिस के हमले के आगे ज्यादा न टिक सका। धन की बहुत कमी थी और कोई भी संगठन बिना धन के नहीं हो सकता। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा है कि एक तरफ तो अपार धन बल और जन बल था और दूसरी तरफ गरीब क्रान्तिकारी दल था। इतना गरीब कि एक दिन रासबिहारी ने शचीन्द्रनाथ सान्याल आदि से कहा मुझे अंग्रजों के हवाले करके साढ़े सात हजार रुपये वसूल कर लो। दल के साथ लोगों की सहानुभूति थी। वे उसे मदद भी करना चाहते थे पर डरते थे।

फिर भी रासबिहारी निराश न हो कर काम कर रहे थे। उनके साथ उस समय कोई न कोई रहता था। क्रान्तिकारी छावनियों में पहुंच रहे थे। ब्रिटिश फौजों में जो भारतीय थे, उनमें देशभक्ति थी और वे चाहते थे कि अंग्रेज़ों से छुटकारा मिल जाए, पर साथ ही वे डरते थे। उन्हें यह विश्वास कैसे होता कि ये कम उम्र के युवक जो सम्पूर्ण रूप से साधनहीन हैं, किस प्रकार ब्रिटिश शासन का तख्ता उलट सकते हैं? फिर भी दल की ओर से करतारसिंह तथा अन्य क्रान्तिकारी भी छावनियों में जाते रहे। इस प्रकार छावनियों में जाने वाले महाराष्ट्रीय युवक पिंगले भी थे।

दिल्ली में भी फिर से संगठन होने लगा। पर लोग अभी डरे हुए थे और ऐसा लगा कि कम से कम कुछ दिनों तक संगठन नहीं हो सकता। यद्यपि रासबिहारी वर्षों तक भागे हुए रहे, पर अब लग रहा था कि सब से बड़ी कमी यह है कि भारत में क्रान्तिकारियों के पास यथेष्ट अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। इसके लिए यूरोप से अस्त्र-शस्त्र मंगाना जरूरी था। रासबिहारी ने देखा कि लोगों में जोश है पर अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। इसलिए यह निश्चय हुआ कि यदि नए सिरे से संगठन करना है तो अस्त्र-शस्त्रों की जरूरत पड़ेगी। इसके लिए यह तय हुआ कि रासबिहारी विदेश जाएं। पहले तो वे राजी नहीं हुए, फिर उन्होंने कहा—अच्छी बात है, भारत के प्रत्येक युवक और युवती को सशस्त्र कर देना होगा, फिर उसके बाद देखेंगे कि अंग्रेज़ भारत पर किस प्रकार शासन करते हैं।

यह तय हुआ कि रासबिहारी विदेश जाकर यथेष्ट संख्या में माउजर पिस्तौलें और गोलियां भेजेंगे और बाद को जब संगठन कुछ तैयार हो जाएगा तो वे लौट आएंगे। वे अप्रैल, १९१५ को देश छोड़ने को तैयार हो गए। रासबिहारी ने जाते समय बड़े स्नेह के साथ शचीन्द्रनाथ सान्याल को कहा था—भाई, देश छोड़ते मुझे कितना कष्ट हो रहा है, यह तुम से क्या कहूं। देखो, सावधानी से रहना। देश के काम को ठीक ढंग पर लाकर तुम भी मेरे पास चले आना।

रासबिहारी के साथ शचीन्द्रनाथ सान्याल की यही अन्तिम बातचीत थी। शचीन्द्र सान्याल पर भी गिरफ्तारी वारण्ट निकल चुका था, इसलिए वे बहुत कुछ बेकार हो चुके थे। सार्वजनिक कार्य में जो नेता जितना नामी होता है, वह उतना काम कर सकता है। पर गुप्त संगठन में कोई व्यक्ति नामी हुआ कि मारा गया। जिस पर वारंट निकल जाये तो और भी बेकार हो जाता है। इसलिए शचीन्द्रनाथ सान्याल चले जाते तो ठीक ही था। पर देश में अलग-अलग काम करने वाले क्रान्तिकारी गुटों को मिलाने वाले शचीन्द्रनाथ सान्याल ही थे।

कुछ भी हो, रासबिहारी घूम घाम कर जापान पहुंचे। वहां वे अच्छे प्रसिद्ध हुए। जापानियों को अंग्रेज़ी पढ़ाते रहे, जापानी भाषा में लेख लिखते रहे और भारत के पक्ष में प्रचार-कार्य करते रहे। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें जापान से पकड़कर मंगाने की चेष्टा भी की थी। पर कुछ जापानी अफसरों के कारण उन्हें ब्रिटिश पुलिस के हाथ नहीं सौंपा गया। रासबिहारी जापानी सरकार की प्रजा बन गए।

शचीन्द्रनाथ सान्याल उसी प्रकार से अपने केन्द्र के नेता थे, जैसे

दिल्ली केन्द्र के नेता मास्टर अमीचन्द थे। रासबिहारी के चले जाने के बाद शचीन्द्रनाथ अपने कई साथियों के साथ गिरफ्तार हो गये और बनारस षड्यन्त्र नाम से एक मुकदमा चला। इस मुकदमे में शचीन्द्रनाथ सान्याल को कालेपानी की सजा मिली और वे अण्डमान भेज दिए गये। उन्होंने 'बन्दी जीवन' नामक पुस्तक में अपनी पूरी कहानी लिखी है, जिसका सार यह है कि प्रथम महायुद्ध में ब्रिटिश पक्ष की जीत हो जाने की खुशी में जो आम माफी हुई, उसमें वे अण्डमान से छोड़ दिए गए। इसके बाद वे किस तरह फिर क्रान्तिकारी आन्दोलन में पड़े और काकोरी षड्यन्त्र के नेता बने, यह बाद की बात है। उनका सारा परिवार देशभक्त रहा है। उनके भाई जितेन्द्र सान्याल, रवीन्द्र तथा भूपेन्द्र सान्याल सभी क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण जेल में गए थे। इसी पर शचीन्द्रनाथ सान्याल ने बड़े गर्व के साथ अपने 'बन्दी जीवन' में लिखा था कि न मालूम कितने जन्मों की सुकृतियों का फल यह था कि मैंने ऐसी माता पाई थी जो हमें अनुप्रेरणा देती रहती थी। शचीन्द्रनाथ सान्याल की कहानी यहीं समाप्त होगी, इसलिए यह बता देना जरूरी है कि वे पहले खेमे के क्रान्तिकारियों की तरह धार्मिक विचारों के थे। वे इतने प्रकाण्ड विद्वान् थे कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में ही नहीं, राजनीतिक आन्दोलन में ऐसे थोड़े ही व्यक्ति थे। काकोरी षड्यन्त्र में उन्हें आजीवन कालेपानी की सजा हुई थी, फिर बारह साल जेल में रहने के बाद पहली कांग्रेस सरकार ने १९३७ में उन्हें छोड़ दिया। फिर दूसरा महायुद्ध छिड़ने के बाद ही वे फिर गिरफ्तार कर लिये गए और देवली जेल में नजरबन्द रखे गए। वहां से वे तपेदिक की बीमारी से ग्रस्त होने के कारण बहुत बुरी हालत में पहले सुल्तानपुर जेल भेजे गए। और जब वहां भी ठीक नहीं हुए तो छोड़ दिये गए और उनकी मृत्यु उसी रोग से हुई। **जब उनकी मृत्यु हुई तो देश की अजीब हालत थी। सारे देशभक्त जेलों में बन्द थे, जिनकी संख्या पचास हजार के करीब थी। न किसी ने फूलमालाएं चढ़ायी और न कोई सभा हुई। इसी हालत में वे इस संसार से चले गए।** पर 'बन्दी जीवन' में हम उनके धड़कते हृदय का स्पन्दन सुन सकते हैं और आशा करते है कि जब बहुत से लोग, जो अखबारों की सुर्खियां बनाते हैं, मर और भुला दिए जाएंगे, तब उनका 'बन्दी जीवन' पढ़ा जाएगा जिसमें न केवल उनका और रासबिहारी का दर्शन होता है, बल्कि कापले, पिंगले, करतारसिंह आदि कितने ही देशभक्तों के दर्शन होते हैं, जो किसी भी प्रकार किसी अन्य वीर या शहीद से घटकर नहीं थे।

जब रासबिहारी जापान में थे तो वे बैठे नहीं थे। अवश्य उन्होंने

एक जापानी महिला से शादी कर ली और गृहस्थ जीवन बिताने लगे, पर वह आग जलती रही। मास्टर अमीचन्द, अवधबिहारी, बालमुकुन्द और विश्वास को शहीद हुए अनेक वर्ष हो गए, यहां तक कि शचीन्द्रनाथ सान्याल भी कालेपानी की सजा के बाद तपेदिक से मर रहे थे, पर रासबिहारी के हृदय में जो आग जल रही थी, उसे मौका तब मिला, जब जापान भी दूसरे महायुद्ध में शरीक हो गया।

रासबिहारी जून, १९१५ में राजा पी० एन० टैगोर नाम से पहुंचे थे और शंघाई में पहुंचकर वहां से जर्मन अस्त्र-शस्त्र भारत भेजना चाहते थे। पर वह कार्यक्रम सफल नहीं हो सका। इसलिए रासबिहारी टोकियो लौट गए, पर वहां भी उन्होंने देश में क्रान्ति करने का स्वप्न नहीं छोड़ा। जापान में उन्हें लाला लाजपतराय और हेरम्बलाल गुप्त मिले। वे जापानी भाषा नहीं जानते थे और जापानियों में थोड़े ही लोग अंग्रेज़ी जानते थे; फिर भी उन्होंने जापान के एक शहर में एक सभा की और उसमें ब्रिटिश विरोधी भाषण दिया। ब्रिटिश दूतावास को इसके सम्बन्ध में मालूम हुआ और उन्होंने पहचान लिया कि राजा पी० ए० टैगोर और कोई नहीं रासबिहारी वसु हैं।

तब ब्रिटिश दूतावास ने यह जोर डाला कि इन तीन भारतीयों को जापान से निकालकर उन्हें ब्रिटेन के हवाले कर दिया जाए। जब यह दबाव पड़ रहा था तो लाला लाजपतराय अमरीका चले गये और हेरम्बलाल और रासबिहारी वसु जापान में रह गए। थोड़े दिनों में हेरम्बलाल ने भी जापान छोड़ दिया।

तब रासबिहारी अकेले रह गए, पर उन्हें अब जापानी सैनिक पुनरुत्थान के नेता मितसूई तोयामा का आश्रय मिला। तोयामा का प्रभाव सम्राट् के प्रासाद से लेकर सारे जापान में फैला हुआ था। अब तोयामा और ब्रिटिश दूतावास में रस्साकशी हुई और इसमें जापानी सरकार ने तोयामा का पक्ष लिया। फिर भी रासबिहारी पर खतरा बना रहा। क्योंकि ब्रिटिश दूतावास के किराये के लोग रासबिहारी को जीवित या मृत पकड़कर चुपचाप बाहर भेज सकते थे। तोयामा ने ही रासबिहारी की भलाई के लिए जापान की रस्मों को तोड़कर उच्चकुल की एक जापानी तरुणी से उनकी शादी करा दी। रासबिहारी की सास श्रीमती सोमा बहुत शक्तिशाली महिला थी और अब उनकी पत्नी तोसिको भी पूर्ण रूप से उनकी रक्षा करने लगी। तोयामा के संरक्षकत्व में इन दो महिलाओं की सहायता से ही रासबिहारी १९२३ तक जापान में ही फरार बने रहे। ब्रिटिश दूतावास के षड्यन्त्रों से बचने के लिए उन्हें सत्रह बार जगह बदलनी पड़ी। जब

उन्हें अन्ततोगत्वा जापानी नागरिकता प्राप्त हुई, तभी ब्रिटिश दूतावास ने खुल्लमखुल्ला षड्यन्त्र करना छोड़ दिया।

रासबिहारी अपने अज्ञातवास के दिनों में भी जापान के जनमत को भारतीय स्वतन्त्रता के पक्ष में शिक्षित करते रहे। पर १९१४-१८ के युद्ध में जापान अंग्रेज़ों के पक्ष में था; इस बहाने सफलता नहीं मिल सकी। अब जापान में ऐसा प्रचार-कार्य करने लगे कि अगले महायुद्ध में जापान भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन करे।

रासबिहारी ने जापानी भाषा सीख ली थी। इसी बीच चीन के डॉक्टर सनयात सेन भी जापान में आश्रय लेकर तोयामा की ही संरक्षकता में रहे। कई बार वे दोनों देशभक्त बैठकर एक साथ अपने-अपने देश की स्वतन्त्रता का स्वप्न देखा करते थे। सनयात सेन के सामने भी वही प्रश्न थे जो रासबिहारी के सामने थे, रासबिहारी के सम्बन्ध में यह लिखा गया है कि उनके पास काफी साधन हो गये थे और अब सनयात सेन को जापान से बीस हजार जापानी मुद्रा की सहायता दिलवाई। रासबिहारी ने तोकियो में एक होटल भी खुलवाया, जहां भारतीय इकट्ठे होते थे और वहां उन्हें भारतीय खाना मिलता था। उस युग के सभी भारतीय, जो जापान में थे, यहां आते थे, रासबिहारी से किसी न किसी प्रकार की सहायता प्राप्त करते थे।

कवीन्द्र रवीन्द्र एक बार घूमते-घामते जापान पहुंचे तो उन्होंने भी, रासबिहारी ने जापान में भारतीयों के पक्ष में जो कार्य किया था, उसकी प्रशंसा की। कवीन्द्र रासबिहारी के घर में गए और उनके परिवार तथा रिश्तेदारों के साथ बैठे, जिसका चित्र मौजूद है। इसके बाद जब कवीन्द्र भारत लौट गए तो उन्हें मालूम हुआ कि हाल के भूकम्प से रासबिहारी का मकान भी क्षतिग्रस्त हुआ। इस पर उन्होंने सहायता के प्रतीक के रूप में छः सौ रुपये भेजे। केवल कवीन्द्र ही यह साहस कर सकते थे कि रासबिहारी की इस प्रकार सहायता करें, क्योंकि उस समय तक ब्रिटिश राज्य भारत में बहुत जोर से तप रहा था। रासबिहारी ब्रिटिश आंखों में एक फरार ही थे।

रासबिहारी ने न्यू एशिया नाम से एक पत्र का प्रकाशन किया, जिसमें विशेषकर भारत पर लिखा जाता था। वे हर साल तोकियो में जलियांवाला दिवस मनाते थे। जापानी भाषा में भी बराबर लिखते रहे। उन्होंने जापानी भाषा में सोलह पुस्तकें लिखीं, जिनमें भारतीय स्वतन्त्रता, संस्कृति, लोककथा, रामायण, भगवद्गीता और रवीन्द्र काव्य का अनुवाद भी

था। उन्होंने अपनी जापानी रचनाओं के द्वारा जापानियों के हृदय में बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया।

१९३८ में जब दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ, तब रासबिहारी समझ गए कि अब शायद उन्हें कार्य करने का मौका मिले, जो प्रथम महायुद्ध में नहीं कर पाये थे। वे भीतर ही भीतर तैयारी करते रहे। इन दिनों डी० ए० देशपाण्डे नामक एक महाराष्ट्रीय युवक उनके सचिव के रूप में काम कर रहे थे। १९४१ के ८ दिसम्बर को महायुद्ध में जापान ने जर्मनी के पक्ष में योगदान किया, बस इस पर उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने तोकियो में भारतीयों को बुलाया और एक कार्यक्रम बनाया और युद्ध-घोषणा के अट्ठारहवें दिन तोकियो के भारतीयों ने रासबिहारी के नेतृत्व में भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी, और साथ ही उन्होंने एक योजना बनाई कि कैसे भारत को स्वतन्त्र किया जाए। इस उद्देश्य से इण्डियन इंडिपेण्डेन्स लीग या आई० आई० एल० की स्थापना तोकियो के सनो होटल में हुई।

यद्यपि रासबिहारी भारतीयों के नेता के रूप में सामने आए और जापानी सरकार का उन पर विश्वास था, फिर भी रासबिहारी स्वयं समझते थे कि भारतीय उनको भूल चुके हैं। नये जनप्रिय नेताओं में कोई आ जाए तो अच्छा रहेगा। कहा जाता है कि उन्होंने ही सुभाषचन्द्र बोस को वीर सावरकर के जरिये से अपने कार्य और तैयारियों के विषय में खबर भेजी।

जापान ने युद्ध में आते ही दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों पर बहुत जल्दी कब्जा कर लिया। जिन-जिन देशों में जापानियों का अधिकार होता गया, उन-उन देशों में भारतीयों को संगठित करके आई० एन० ए० या आजाद हिन्द फौज का संगठन होने लगा। दक्षिण-पूर्व एशिया में लाखों भारतीय बसे हुए थे और उनकी तरफ से तन, मन, धन देकर आजाद हिन्द फौज का संगठन हुआ। जैसे गदर पार्टी के नेतृत्व में लोगों ने अपनी सारी कमाई चन्दे में ही दे दी थी, उसी प्रकार से रासबिहारी के नेतृत्व में दक्षिण-पूर्व एशिया के भारतीयों ने अपने को संगठित किया और सर्वस्व अर्पण कर दिया।

सुभाषचन्द्र बोस के भारत से भागकर आ जाने से आजाद हिन्द फौज में एक नई चमक आ गई। यद्यपि रासबिहारी बोस सुभाषचन्द्र से कहीं पुराने देशभक्त थे और उनके सिर के पास फांसी का फंदा लटक रहा था, फिर भी उन्हें एक असुविधा थी, वह यह कि जापानी उन पर हावी रहते थे। रासबिहारी पर जापानियों के इतने एहसान थे कि वे उनके

बोझ से दबे थे। इसके अलावा जापान में रहते-रहते वे उस जापानी प्रचार-कार्य के एक हद तक इच्छुक या अनिच्छुक शिकार हो चुके थे, जिसके अनुसार यह विश्वास किया जाता था कि जापान का साम्राज्य माने स्वतन्त्रता है। रासबिहारी जापानी साम्राज्यवाद के नंगे रूप को समझ नहीं पाये थे, ऐसा न भी कहा जाए तो यह कहना पड़ेगा कि वे उसके विरुद्ध जा नहीं सकते थे। इसके विपरीत सुभाषचन्द्र बोस किसी प्रकार भी जापानी सरकार से बंधे नहीं थे। वे एक क्रान्तिकारी नेता के रूप में गए थे, इसलिए सारी बात को समझकर १९४३ की जुलाई को आजाद हिन्द फौज का मुख्य सेनापतित्व सुभाषचन्द्र बोस को सौंप दिया गया। यह उत्सव जब हुआ था, तो रासबिहारी ने व्याख्यान देते हुए कहा था—मैं बूढ़ा हो गया हूं।.....यह एक मुझ से जवान व्यक्ति का काम है, और सुभाषचन्द्र बोस सौभाग्य से भारत में जो कुछ भी श्रेष्ठ है, उसका प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस प्रकार रासबिहारी ने एक बहुत ही उचित कार्य किया और यह दिखलाया कि किस प्रकार नेतृत्व योग्यतर व्यक्ति के हाथ में सौंपा जाता है। यहां यह विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है कि किस प्रकार आजाद हिन्द फौज ने सुभाष के नेतृत्व में कार्य किया और जब जापानी हार गये और साथ ही साथ आजाद हिन्द फौज के अफसर पकड़कर लाल क़िले में लाये गये तो उनके मुकदमों से एक ऐसी लौ निकली जिससे भारतीय आजादी के मार्ग का अन्तिम रोड़ा यानी भारतीय फौज ऐसी हो गई कि ब्रिटेन का उस पर भरोसा नहीं रहा और इसके फलस्वरूप ब्रिटेन को भारत छोड़कर जाना पड़ा। अक्सर इस घटना को कम करके दिखाया जाता है, पर 'राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास' में इसकी पूरी कहानी लिखी है।

१९४५ की २१ जनवरी को आजाद हिन्द फौज की अन्तिम हार होने के पहले ही रासबिहारी का देहान्त हो गया और जापानी राजमहल से भेजे हुए वाहन पर उनकी लाश ले जाई गई। एक राजकीय घोषणा में उनकी मृत्यु का समाचार दिया गया और उनकी गैर सरकारी लोगों के लिए प्राप्त सब से उच्च सम्मान के साथ अन्त्येष्टि क्रिया की गई। इस प्रकार एक महान् जीवन का अन्त हुआ।

('भारत के क्रान्तिकारी' से)

❑❑

मि० अथावले

(दो तीन घण्टे जेल में)

जेल में हमारे कपड़े उतरवाये गये। कैदियों के कपड़े पहनने को दिये गये। इनमें घुटनों तक का एक सूती पायजामा, एक कुर्ता, कम्बल की एक कुर्ती, एक कणटोप, सब कपड़े बड़े मैले और बदबूदार थे। पता नहीं कितने खूंखार चोर डाकू इन्हें पहन चुके थे। जूंए भी खूब थीं, जिन्होंने पहनते ही आग सी लगा दी। अपने-अपने कपड़ों की गठरी बांधकर जमादार के साथ इधर-उधर घूमे। पता नहीं वह कहां-कहां घुमाता फिरा। इसके बाद हम को एक लकड़ी का बाक्स उठाने को कहा गया। हम ने उसे उठा लिया और खेतों की ओर रवाना हुए। यहां इसने बहुत सी मिट्टी मिला हुआ आटा और अनाज इसमें भरा। इसके बाद मुझे और लाला जसवन्तराय एम० ए० को अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया गया। इन कोठरियों में चक्की लगी हुई थी। पास ही मक्का भी पड़ा हुआ था, जिसकी ओर संकेत करके कहा गया कि खूब बारीक पीसो नहीं तो सुपरिण्टेण्डेण्ट नाराज होकर सजा देंगे, परन्तु हमें छोड़कर वह जाना ही चाहता था कि इतने में डाक्टर साहब आ गये। उन्होंने कहा कि किस की आज्ञा से तुम ने इन को यह काम दे दिया? चौकीदार बेचारा इसका क्या उत्तर देता। वह मुंह ही मुंह में कुछ बड़बड़ाकर रह गया। फिर डा० साहब ने डाक्टरी परीक्षा के लिए अस्पताल भेजा। यहां लाला जसवन्तराय एम० ए० का वजन ११५ पौण्ड और मेरा १०५ पौण्ड निकला। इतने में ही 'वन्दे मातरम्' की मधुर ध्वनि बाहर से सुनाई दी। हम ने समझा कि लोग हमारी जमानत की आज्ञा स्वीकार करा लाये हैं। हमें वहां बैठने की आज्ञा दी गई। इतने ही में हमारी जमानत की स्वीकारी पर हमारी रिहाई की आज्ञा भी पहुंची, क्योंकि लाला जसवन्तराय के कपड़े उतरवाते ही सूती होने के कारण धुलाने को भेज दिये गये थे, अत: इनके दूसरे कपड़े आने की प्रतीक्षा में हमें वहां कुछ देर ठहरना पड़ा। जब कपड़े आ गये, तब हम लोग जेल से बाहर लाये गये और नियमानुसार जेल की कानूनी कार्यवाही समाप्त होने पर रिहा हुए। बाहर आते ही हमें लोगों ने घेर लिया। फूलों की मालाएं हमारे गले में डाली गई। समस्त बाजार में हमारे ऊपर फूल बरसे और 'वन्दे मातरम्' की ध्वनि में ही एक बड़े लोक-समूह के साथ हम लोग 'पंजाबी' के आफिस में पहुंचे और जनता का हृदय से धन्यवाद किया। ❑❑

जेल के भयानक कष्ट सहने वाले

श्रीयुत पं० अच्युतराव कोल्हटकर

"देशसेवक" (नागपुर) के भूतपूर्व सम्पादक देशभक्त पण्डित अच्युतराव कोल्हटकर बी०ए०, एल०एल०बी० अरविन्द बाबू के व्याख्यान (जो कलकत्ता हाईकार्ट में निर्दोष सिद्ध हो चुके हैं।) छापने के कारण जेल भेजे गये थे। वे अपनी १५ महीने की जेल भोग कर जब आये, तब उनसे केसरी के प्रतिनिधि ने मिलकर बातचीत की थी। उस प्रश्नोत्तरी का सारांश हम नीचे देते हैं।

(१) मेरा छुटकारा १ मार्च को होना चाहिए था, किन्तु न जाने क्यों, मैं २८ फरवरी को ही छोड़ दिया गया। यहां तक कि जेल के अधिकारियों को भी मालूम नहीं था कि मैं दो दिन पहले छोड़ा जाऊंगा। शाम को एक पुलिस अधिकारी ने आकर जेल वालों को मेरे छोड़ने का फरमान सुनाया और उसके आधे घण्टे बाद मैं छोड़ दिया गया। कैदी अक्सर सवेरे छोड़े जाते है परन्तु न जाने क्यों मैं शाम को छोड़ा गया। उस पुलिस अधिकारी ने कहा कि बाहर तांगा खड़ा है, यदि आप चाहें तो उसी में चलें। उसके पूछने पर मैंने कहा कि मैं पहले अपने पिता के दर्शन करना चाहता हूं किन्तु घर में किसी के न होने से मैंने सीधे प्रिय और सम्माननीय मित्र डाक्टर मुञ्जे के यहां जाने की इच्छा प्रकाशित की।

(२) जेल में जाते ही मेरा चश्मा मुझसे छीन लिया था। यहां तक कि मैं जब हिरासत में था, तभी चश्मा ले लिया गया था, किन्तु पीछे बड़ी मुश्किल से जेलर ने इस शर्त पर मुझे चश्मा दिया कि मैं उसे सुपरिण्टेण्डेण्ट के सामने न लगाऊंगा। जिस समय मैं जेल में गया था, उस समय मेरा वजन १३५ पौण्ड (६८ सेर) था। मुकदमा चलते-चलते मेरा वजन घटकर ११४ पौण्ड (५७ सेर) तक आ गया था। मालूम होता है कि घर से भोजन भेजा जाने पर भी जेल की अव्यवस्थित पद्धति के कारण उसके समय पर पहुंचने में गड़बड़ी होती थी। इसी कारण वजन घट गया। हर पन्द्रह दिन पीछे कैदी तोला जाता था। परन्तु यह मुझे व्यर्थ की झंझट मालूम होती थी क्योंकि इस प्रकार वजन घटने का कारण मुझ से कभी भी पूछा नहीं गया। सजा होने पर पहले सप्ताह

में मेरा वजन ११० पौण्ड (५५ सेर) हो गया। इसके बाद मैं बीमार हुआ। अवश्य ही उस समय मेरा वजन १०० पौण्ड (५० सेर) हो गया होगा।

(३) यदि मैं अपनी बीमारी का विस्तार पूर्वक वर्णन करने बैठूं तो जेल की कितनी ही भीतरी बातें बतानी पड़ेंगी। इसलिए मैं अपनी बिमारी के विषय में इतना ही कहना चाहता हूं कि इतनी खराब स्थिति होने पर भी सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को यही शक था कि बीमारी का बहाना करता हूं। नागपुर जेल के उत्तरचक्र और दक्षिणचक्र दो बड़े चक्र (Octagons) हैं। उत्तर में पहली बार के कैदी रखे जाते हैं और दक्षिण चक्र में दो, तीन, चार बार के दागी कैदी रखे जाते हैं। मैं जेल का पहला पाहुना होने पर भी दागी कैदियों के विभाग में रख गया। वहां की देख-रेख शिवराजमिश्र नामक एक युक्तप्रदेशीय ब्राह्मण के जिम्मे थी। बीमार होने पर मैं हस्पताल नहीं पहुंचाया गया बल्कि मेरे लिए हुक्म हुआ कि उसी कोठरी में दवा दी जाए और दवा देने के समय डाक्टर साहब अकेले में ना जाएँ, बल्कि शिवराजसिंह को साथ लेकर जाएँ। यद्यपि सुपरिंटेण्डेण्ट साहब को शक था, तो भी रोग ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। इतना होने पर भी मुझे हस्पताल देखना नसीब न हुआ। सारी बीमारी मुझे कोठरी में बितानी पड़ी। हस्पताल में बीमार कैदियों को गेहूं की रोटी और दाल आदि चीजें मिलती हैं परन्तु बीमारी में भी जेल की पनेथियों ने मेरा साथ न छोड़ा। हस्पताल के बीमार कैदियों को चारपाई दी जाती है परन्तु उस बीमारी में भी जमीन ही मेरी चारपाई और टाट ही एक मात्र बिस्तर रहा। कुछ दिन के लिए दूध का हुक्म मिलने के सिवाय बीमारी की कोई खुराक मुझे न दी गई। जब पहले मैं जेल गया तो सवेरे नमक डाली हुई लस्सी दोपहर को चार जुआर की रोटी, अरहर की दाल और जैसी-तैसी बनाई हुई भाजी दी जाती थी। शाम को भी दोपहर के समान भोजन मिलता था। पहले दिन किसी तरह तीन पनेथियां मैंने ठूंस कर पेट में डाली और भाजी भी ठेल-ठाल कर गले के भीतर उतारी। परन्तु यहां की दाल किसी तरह ठेलने-ठालने पर भी पेट के भीतर न गयी। बहुत दिनों तक उस दाल की बास भी मुझे नहीं सुहाती थी। कोई यह कल्पना न करे कि दाल-रोटी और भाजी जैसी यहाँ लोग खाते हैं वैसी को जेल में स्थान नहीं मिल सकता। जेल के इस त्रिवर्ग का अनुभव होने के लिए उसका प्रत्यक्ष दर्शन ही होना चाहिए। एक दिन बड़ी दिल्लगी हुई। मैंने देखा कि मेरी लोहे की थाली में केवल दो ही चीजें आई और

उस दाल का रंग-ढंग बिल्कुल निराला था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि अब दाल और भाजी एक में ही पकाने का हुक्म हुआ है। इस आज्ञा से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब यदि कोई आकर कहे कि दाल-भाजी और आटा एक ही में सान कर कैदियों को देने का हुक्म हुआ है तो मुझे उस कथन पर अविश्वास नहीं मालूम हो सकता। तब से अब तक नागपुर जेल में जुआर की पनेथी और यह दो भाजी का मिक्सचर ही कैदियों को दिया जाता।

(४) जुआर की जो नौ रोटी हैं उनसे, औरों की राम जाने, परन्तु मुझे पेट भर जाने का अनुभव नहीं हुआ। ये नौ रोटियां गरीब लोगों के घर की चार-पांच रोटियों के बराबर होती होंगी। खण्डवा जेल में उतने ही आटे की ग्यारह रोटी होती हैं। परन्तु उनसे भी पेट की आग नहीं बुझती। जब मेरा ऐसा हाल था तब जो स्वभाव से ही ताकतवर थे और मजदूर वर्ग के लोग हैं उनके हाल पूछना ही व्यर्थ है। मुझे तो इतनी भूख लगती थी कि यदि कोई लकड़ी का बुरादा खिलाता तो वह भी हजम हो जाता। खण्डवा में आठ-साढ़े आठ महीने रहा। इस अवधि में पहले दो महीने मुझे पत्थर की गिट्टियां फोड़नी पड़ती थीं। एक कैदी को प्रतिदिन छः घन फीट गिट्टी फोड़नी पड़ती हैं। हथौड़ी की चोट से अंगुलियां फूट-फूटकर भरता हो जाती हैं। गिट्टी छिटक-छिटक कर देह में लगती हैं। यदि दांत व होठ पर लग गई तो शरीर झल्ला जाता है। पहले खण्डवा में पारसी सुपरिण्टेण्डेण्ट था। उसके जाने पर, वहां गोरा सुपरिण्टेण्डेण्ट आया और उसने मुझे गिट्टी के काम से रोटी बनाने के काम में नियुक्त किया। तब से अन्त तक खण्डवा में रोटी के ही काम में रहा। खण्डवा में दाल और भाजी अलग-अलग बनती हैं। मुझे मालूम हुआ कि अकोला, अमरावती, यवतमाल और बरोदा में भी 'मिक्सचर' नहीं बनता। खण्डवा में रोटी बनाने की रीति अच्छी है। मैं एक घण्टे में सौ सवा सौ रोटियां बना डालता था। यद्यपि गिट्टी फोड़ने की अपेक्षा रोटी बनाने का काम अधिक परिश्रम का है। और शिकायत होने का डर रहता है तो भी उसमें चोट लगने का डर नहीं और भूखों को पेट भरने की सुविधा होने के कारण वह मुझे पसन्द आया था।

(५) जब मैं नागपुर जेल में गया, तब चक्की पीसने का काम सब से कठिन कहा जाता था। जिन लोगों को गिट्टी फोड़ना भी कुछ नहीं मालूम होता, ऐसे हट्टे-कट्टे और जोरदार कैदियों को भी चक्की पीसने में रोते देखा गया है। मैं समझता था कि मुझे पीसने का काम नहीं

दिया जायेगा क्योंकि वहां दर्जीखाना, लोहारखाना, बढ़ईखाना, दरीख़ाना, छापा- खाना, इमारती काम, मुहर्रिरी, टाईपराइटरी, प्रूफ के काम हैं। मैं समझता था कि इन्हीं में से कोई काम मुझे मिलेगा किन्तु मुझे पीसने का ही काम दिया गया। नित्य खड़े रहकर २० सेर जुआर मुझे पीसनी पड़ती थी। कैदियों को आटा पीसने की आदत न होने से पहले छः दिनों की सुविधा दी जाती है, परन्तु तीसरे ही दिन मुझे किसी ने हुक्म दिया कि २० सेर पीसना होगा। नागपुर जेल में मैं साढ़े पांच महीने था। इस अवधि में आदि से अन्त तक पीसने का काम मुझ से लिया गया। मेरे सामने कितने ही कैदी इस काम में आये और इससे दूसरे काम में बदल दिये गये, परन्तु पीसने के काम में मेरे समान आधार-स्तम्भ कोई न मिला। साढ़े पांच महीने बाद मेरी खण्डवा की बदली हुई, तब वहीं जाकर जोते की मुठिया से मेरा पहला वियोग हुआ, किन्तु यह वियोग भी अन्तिम नहीं था, क्योंकि जेल से छूटने के पहले आठ दिनों के लिए मैं खण्डवा से नागपुर आया। उस समय नागपुर में फिर वही २० सेर पीसने का काम मुझे दिया गया।

(६) आपत्ति कभी अकेली नहीं आती। मैं समझता था कि मैं सभ्य मनुष्य (Gentleman) हूं, इसलिए जेल में मुझ से कोई अनुचित वर्ताव नहीं होगा। मुझ को विश्वास था कि काम की अड़चन के सिवा मैं कोई कलंक अपने ऊपर नहीं लगने दूंगा। परन्तु मेरा अन्दाज गलत निकला। **साढ़े पांच महीने में मेरी २० रिपोर्टें हुईं, जेलखाने में जितनी सजाएं दी जाती हैं, वे सब मुझे भुगतनी पड़ीं। हथकड़ी, बेड़ी, भुजदण्ड बेड़ी, जंघ बेड़ी (Cross Bar Fetters) और गनीक्लोदिंग सभी सजाएं मिली। एक बार मुझ से कहा गया कि "तुम्हारा चाल चलन बहुत बदमाशी का है। इसलिए शीघ्र ही तुम्हें बेतों से पीटने की सजा देनी पड़ेगी।"** यदि खण्डवा की मेरी बदली न हो गयी होती तो बेंत खाने की नौबत आ जाती। मनुष्यों को बांधकर उन्हें जोर-जोर से अच्छे बेंत से तीन तड़ाके लगाये जाते हैं। कैदियों को प्रत्येक महीने में तीन दिन की माफी मिलती है, परन्तु इन बीस रिपोर्टों के सपाटे में मेरी माफी भी जब्त की गयी। मार्च, अप्रैल और मई ये महीने मध्यप्रदेश में बड़ी भीषण गर्मी के होते हैं, परन्तु इन तीनों महीने मुझे दुर्भाग्य से गनीक्लोंदिग अर्थात् चुभने वाला रोयेंदार टाट का कोट पहनना पड़ा। कैदियों को एक कुर्ता, एक लंगोट और एक कमर में लपेटने का अंगोछा दिया जाता है, परन्तु जिन कैदियों को गनीक्लोदिंग की सजा दी जाती है, उन्हें नागपुर

जेल में टाट का कुर्ता और टाट का लंगोट दिया जाता है। अन्य कैदी इच्छानुसार अपना कपड़ा गर्मी में उतार सकते हैं, परन्तु गनीक्लोदिंग वालों को चौबीसों घण्टे बराबर वह कांटेदार पोशाक पहने रहना पड़ता है। वह गनीक्लोदिंग पहने हुए पसीने में उसका खरखरापन और रोएं बाहों में चुभते थे और लेटने में पीठ में गड़ते थे। पीसने में जाड़े के दिनों में दस पन्द्रह मिनट में पसीना आ जाता है और ऊब लगती है। फिर गर्मी के दिनों में घबराहट मालूम हो तो आश्चर्य ही क्या? अन्य पीसने वालों के लिए नियम हैं कि पीसने के पहले टाट का कुर्ता उतार डालें, किन्तु गनीक्लोदिंग वालों को उस कुर्ते को पहने ही पीसना पड़ता था। अप्रैल, मई के दिन, लखलखाती धूप की गर्मी, भुजा कण्ठ से छिले हुए शरीर, पसीने से लथपथ, नहाने की सुविधा नहीं, पसीना पोंछने के लिए पास अंगोछा नहीं, ऐसी स्थिति में कल्पना कीजिए कितनी यातना और दुर्दशा हुई होगी। टाट के कपड़े में पसीने की दुर्गन्ध के कारण सैकड़ों चीलर और जूएं पड़ गईं। शरीर के सम्पूर्ण भाग में चीलर दौड़ते और जगह-जगह काटते थे, उस दुर्गन्ध के कारण अन्न खाने की भी रुचि जाती रही। परन्तु यदि अनाज न खावें तो पीसा न जाये, इसलिए ज़बरदस्ती खाना पड़ता था। ऐसी यमयातना में रात को नींद आना असम्भव था। दिन की मेहनत और रात के जागरण के कारण जब थकान से बेहोशी आती, तभी जरा सी आंखें मुंदती थी। शरीर में टाट के कपड़े तो थे ही कि मुझे अन्दरूनी बुखार चढ़ता और दोपहर को उतर जाता और शाम को फिर बुखार आता और सवेरे उतरता था। एक दिन जिस समय बुखार चढ़ा हुआ था, उसी समय मैंने डाक्टर को बुलाया। डाक्टर देख कर चला गया। बुखार भी शाम को जाता रहा। मेरी और चक्की की दोस्ती ऐसी मजबूत थी कि वह ज्यों की त्यों कायम रहती। यदि ऐसी ही स्थिति में मैं और रहता, मुझे क्षयरोग हो जाता, परन्तु शीघ्र ही मैं खण्डवा पहुंचाया गया। नागपुर के स्टेशन पर डाक्टर चोलकर आदि मित्रों ने मुझे इसी स्थिति में देखा था।

(७) खण्डवा में जब पहले दिन मुझे पारसी सुपरिण्टेंडेंट के सामने पेश किया गया, तब उन्होंने मेरा 'हिस्टरी टिकट' देख कर कहा "मालूम होता है तुमने नागपुर जेल के अधिकारियों को बहुत सताया है। यद्यपि इस प्रान्त में तुम्हारे पिता ने नाम कमाया है (सेशन जज रहे हैं) तथापि मैं तुम्हें निश्चय पूर्वक कहता हूं कि तुम्हारे विरुद्ध यदि एक भी रिपोर्ट हुई तो पहली ही रिपोर्ट में मैं तुम्हें बेंतों से पीटने की सजा दूंगा। गिट्टी

फोड़ने के काम में मैं नया था। इसलिए सुपरिण्टेण्डेण्ट ने पूरा काम करने के लिए छः दिन की मोहलत दी। नागपुर का विचित्र अनुभव गिट्टी फोड़ने का अड़बड़ काम, इधर यह मालूम नहीं कि हथौड़ा कैसे पकड़ना होता है, उधर सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब की यह धमकी कि पहली ही रिपोर्ट में बेंतों का भयानक दण्ड, मेरे दिल में हड़बड़ी मचाने लगा। मैंने सोचा कि नागपुर में अभी कम बेइज्जती हुई है। इसीलिए बेंत लगाकर उसे पूरा करने के लिए मेरा दुर्भाग्य मुझे यहां ले आया है, परन्तु उस दयामय जगदीश्वर की कृपा से छठे दिन में छः फुट गिट्टी फोड़ने में समर्थ हुआ और एक महीने तक यद्यपि नित्य मेरी गिट्टी नापी जाती थी, परन्तु वह कभी कम नहीं हुई। जिस समय मैं हाजत में था उस समय जो पुस्तकें मुझे पढ़ने को मिली थीं, वे मेरे साथ खण्डवा आयी थी। एक महीने के बाद मैंने प्रार्थना की कि उनमें से कुछ पुस्तकें मुझे पढ़ने को दी जायें। जेल के कायदे के अनुसार उनमें से कुछ अदल-बदल कर एक घण्टे दोपहर के समय दी जाती थी। खण्डवा में हर महीने की पहली तारीख को "डिप्टी कमिश्नर" जेल देखने के लिए आते थे। नागपुर में मुझे तीन महीने की दण्ड-बेड़ी की सजा दी गई थी। उसके दो महीने नागपुर में हो चुके थे। शेष एक महीने की सजा खण्डवा के डिप्टी कमिश्नर ने माफ कर दी। इसी तरह जंघ दण्ड की सजा भी उन्होंने सितम्बर महीने में माफ कर दी। पहला पारसी सुपरिण्टेण्डेण्ट अगस्त में चला गया और उसकी जगह पर आये हुए गोरे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझे गिट्टी फोड़ने के काम से बदल कर रसोई पकाने के काम में नियुक्त किया। उन्होंने मेरी कमजोरी देख कर ताकत की दवा दी। उन्होंने यह भी हुक्म दे दिया कि पढ़ने की पुस्तक दिन भर पास रखें। इन सुपरिण्टेण्डेण्ट के समय में मेरा वजन १०३ पौण्ड से १२६ पौण्ड तक बढ़ा।

(८) नागपुर की २० पेशियों ने मुझे अपने मित्रों से मिलने से वंचित रखा, नहीं तो तीन महीने में एक बार अपने कुटुम्बी या इष्ट मित्रों से मिलने या पत्र भेजने की इजाजत है। खण्डवा में एक भी रिपोर्ट न होने से मैं तीन बार अपने मित्रों से मिल सका। मांगने से मुझे बाइबिल की पुस्तक मिल गई थी। मैं रूस के क्षेपक भाग को पढ़ता और सोचता कि रूस में कैसी-कैसी तकलीफों का वर्णन है, उनके सामने मेरी तकलीफें कुछ भी नहीं हैं। मैं सोचता था कि अपनी भारत भूमि के सर्ववन्द्य शुभ चिन्तक श्रीमान् बालगंगाधर तिलक की छः वर्ष की सजा के आगे मेरी सवा वर्ष की सजा बहुत थोड़ी है। खण्डवा जेल के सिपाही जब अपनी

आदत के अनुसार मुझे बहुत-सी गालियां देते थे, तब यह सोचकर मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता था कि क्या थाने की जेल भोगते समय श्रीयुत पराञ्जपे और साबरमती जेल में कड़ी सजा काटते समय महाभाग तिलक को भी इसी तरह कोई सिपाही गाली देता होगा। जेल में कोई एक-दो मिनट से अधिक पाखाने में नहीं बैठने पाता, यदि जरा भी देर लगी तो सिपाही हाथ पकड़कर घसीट लाता है। कुसमय पाखाने जाना वहाँ अपराध समझा जाता है। पन्द्रह दिन में एक बार नहाने दिया जाता है, जेल में प्रत्येक कैदी को जितना खाने के लिए दिया जाता, उतना हर एक को खाना ही पड़ता है। यदि कम खुराक वाला हो तो पेट भर जाने पर भी उसे ठूंस लेना पड़ेगा और यदि कोई अधिक खुराक वाला हो तो उसे उतना खाकर भूखे रहना पड़ेगा, क्योंकि उससे कम अथवा अधिक खाना अपराध गिना जाता है। नागपुर में मैं अन्य कैदियों के साथ नहीं रखा गया। जिस काल- कोठरी में रखा गया, उसी में आखिर तक रहा, परन्तु कायदे के अनुसार जिन्हें काल कोठरी (Solitary Cell) की सजा दी जाती है, उन्हें एक बार एक हफ्ते से अधिक दिनों तक उसमें नहीं रखा जाता। किसी मनुष्य को इस प्रकार बिना हिसाब कालकोठरी में रखने से न जाने कौन सा पुरुषार्थ साधित हुआ? खण्डवा में मैं अन्य कैदियों के साथ ही रहा, किन्तु वहां कोई आफत नहीं आई? खण्डवा के अधिकारियों ने साफ कहा कि उसे हम अकारण काल-कोठरी में नहीं रखेंगे। नागपुर की बीस रिपोर्टों का खण्डवा में इतना ही बुरा परिणाम हुआ कि सोने के लिए काल-कोठरी में जाना पड़ता था। खण्डवा की 'एकान्त कोठरियां' अच्छी हैं और वहाँ सोने के लिए मिट्टी का ऊंचा चबूतरा सा बना है और पाखाने की सण्डास भी जरा दूर है।, परन्तु नागपुर में पाखाने की जगह सिरहाने से कुछ ही फासले पर है। मुझे यह बात बिल्कुल नहीं मालूम हुई कि मेरे स्वास्थ्य के बारे में मेरे शुभचिन्तकों ने कुछ प्रयत्न किया है। मैं समझता था कि खण्डवा में जो कुछ आराम किया है, वह पार्लियामेंण्ट में प्रश्नों के कारण ही होगा। ❑❑

बड़े घर की सैर

लाहौर रायट केस

(एक पंजाबी देशभक्त)

३० जुलाई सन् १९०७ पांच बजे हम लोग डिस्ट्रिक्ट जेल में पहुंचे। जेल के द्वार पर सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट सशस्त्र सिपाहियों

सहित खड़े थे। हम लोग जब द्वार पर पहुंचे तो दारोगा साहब ने आज्ञा दी कि हमारे कपड़ों पर फिनाइल डाली जाये। हमारे कपड़ों पर फिनाइल डाली गयी। इसके बाद हम सब दफ्तर में गये। वहां हमें जेल के कपड़े पहनाये गये। इसके बाद हम लोगों को अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर दिया गया। रात को जो खाना मिला, वह बहुत ही खराब था। इसलिए बहुत थोड़ा खाया जा सका। इसके बाद आटा पीसने को दिया गया। शाम को एक कैदी मुन्शी हमें डाक्टर के पास ले गया और डाक्टर ने हमारी शारीरिक परीक्षा की। और लाला दीनानाथ, लाला पिण्डीदास तथा लाला लालचन्द फलक का स्वास्थ्य खराब बताया। अगले दिन हम सब को १५-१५ सेर और उपर्युक्त तीनों सज्जनों को दस-दस सेर अनाज पीसने को दिया गया। शाम को हम दो लोगों को चीफ कोर्ट में अपील स्वीकार हो जाने के कारण रिहा कर दिया गया, किन्तु बड़े खेद के साथ हमें मालूम हुआ कि लाला दीनानाथ, लाला पिण्डीदास तथा लाला लालचन्द फलक को सेण्ट्रल जेल में भेजा जा रहा है और वे रिहा नहीं हुए। इन तीनों वीरों से हम गले लगकर मिले और कहा गया कि शायद यह अन्तिम मिलाप है। हम लोग बड़े उदास थे, जब लाला पिण्डीदास आदि से अलग हुए। सच तो यह है कि इन लोगों के साथ रहकर जेल में भी हम प्रसन्न रहे और जेल के सब दु:ख भूल गये थे। इन दिनों में बारह दिन तक हमें चक्की का काम करना पड़ा। गर्मी बहुत अधिक थी, लाला गोवर्धनदास एक दिन चक्कर खाकर गिर पड़े और हस्पताल भेजे गये। उनका वजन १७ पौण्ड घट गया था। इसी बीच में हम दो आदमियों को तैल के कोल्हू में बैलों की जगह जोतकर चलाया गया। इधर हमारा वजन भी घट रहा था। हमने सुपरिण्टेण्डेण्ट से शिकायत की तो हुक्म हुआ कि इनको दो रोटी और अधिक मिला करें, परन्तु यह कृपा हमारे काम न आई। हमारी निर्बलता का कारण यह नहीं था। वह था, खराब रोटी का मिलना और उसका ठीक हजम न होना तथा कड़े अमानुषिक कामों में नियुक्त करना।

राजनीतिक कैदियों के साथ भारतीय जेलखाने में बहुत बुरा सलूक होता है। मेरा ख्याल तो यह है कि अगर किसी जेल का कोई कर्मचारी 'मुतास्सिब' हो तो राजनीतिक कैदियों के साथ दूसरे कैदियों से भी कभी-कभी बुरा बर्ताव होता है। और उन प्रतिष्ठित व्यक्तियों को घेर कर इतना कष्ट दिया जाता है जिसे वे कैद के और दु:खों से अधिक अनुभव करते हैं।

शनाख़त

भारतीय राजनीतिक कैदियों का जब-तब विचार होता ही रहता है, तब ही से उन्हें अपराधी समझकर जेल में ठोंक दिया जाता है। हालांकि बहुत से पीछे रिहा भी हो जाते हैं। सैकड़ों भारतवासी ऐसे हैं, जो सन्देह का शिकार बनाकर महीनों जेलों में सड़ाये गये और पीछे निर्दोष कहकर छोड़ दिये गये। उनकी प्रतिष्ठा, मानापमान तथा इज्जत का कुछ भी ख्याल न करके अनेक कष्ट दिये गये। जिस पुलिस की कृपा से वे गिरफ्तार हुए, उससे उसके उत्तरदायित्व की बात कभी नहीं पूछी जाती।

हमारी भी यही दशा हुई थी। न्याय के नाम पर हम सरकार से पूछते हैं, कि हमको क्यों पकड़ा गया? और पीछे निर्दोष छूट गये। क्या कारण है, हमारी प्रतिष्ठा को खाक में मिलाने वालों तथा निर्दोषों को दुःख पहुंचाने वालों को उचित सजा नहीं दी गयी?

('झंगस्याल' से संकलित)

नवरत्नों का निर्वासन

सन् १९०८ के दिसम्बर महीने में श्रीयुत सुबोधचन्द्र मलिक, बाबू अश्विनीकुमार दत्त, बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, बाबू कृष्णकुमार मित्र और बाबू मनोरंजन गुह ठाकुरता प्रभृति बंगाल के ९ नेताओं पर सरकार की वक्र दृष्टि पड़ी थी। नवरत्नों को सरकार ने अलग-अलग स्थानों में निर्वासित किया था। निर्वासित नवरत्नों में से गिरिडीह के प्रसिद्ध स्वर्गवासी मनोरंजन गुह ठाकुरता की निर्वास कहानी विशेष मनोरंजक होने से यहां संकलित की जाती है–

"प्रात:काल भ्रमण कर ७ बजे मैं बरामदे में बैठा था। उसी समय बामन बाबू ने आकर संवाद दिया कि कलकत्ता से श्रीयुत कृष्णकुमार मित्र महाशय को घर से बुला कर पुलिस ने न मालूम कहाँ छिपा दिया है। उनके बन्धु-बान्धव बहुत तलाश करने पर भी कुछ नहीं जान सके। आलोचना कर रहे थे कि स्थानीय पुलिस सब इन्सपेक्टर, दो अंग्रेज और एक मुसलमान ने अचानक हमारे मकान के बाहरी भाग में प्रवेश किया और कोकिल कण्ठ से मुझे सुनाई दिया "unpleasant duty" मैं क्षणमात्र में अवस्था को समझ गया और चाहे जो विपत् क्यों न आ रही हो, उसके लिए तैयार हो गया। दो अंग्रेज़ में से एक ने मेरा नाम पूछा और उत्तर पाकर कहा "come alone"। मेरे नाम कोई warrent है कि नहीं, मैंने जानना चाहा। जवाब मिला बाद में दिखाया जायेगा। दरवाजे पर मेरे घर की गाड़ी तैयार थी। (क्योंकि इस समय मैं प्रतिदिन गाड़ी में टहलने जाता था।) मैं गाड़ी में बैठा और दोनों अंग्रेज़ भी मेरी गाड़ी में बैठ गये। दूसरे आदमी भाड़े की गाड़ी में सवार होकर चले।

हमारे घर से गाड़ी के चलते समय पुलिस वाले अंग्रेज़ों ने बिछौना, शीत वस्त्र, कुछ रुपये साथ ले लेने को कहा। यह भी कहा कि इच्छा हो तो नौकर भी साथ ले सकते हैं। पूछने पर मुझे मालूम हूआ कि दोनों अंग्रेज़ कलकत्ता से आये हैं, डिटेक्टिव विभाग के आदमी हैं और दोनों ही सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। एक था खर्वाकृति रुग्णदेह और दूसरा जितना लम्बा उतना ही मोटा।

डाक बंगले में पहुंचने पर मैंने मोटे आदमी से पूछा-किस अपराध में मैं पकड़ा गया हूं और मेरे नाम का वारण्ट कहां है? उसने कहा मैं

कुछ भी नहीं कह सकता, बड़े साहब से पूछो। तब मैंने समझा कि जो आकार में छोटा है वही बड़ा साहब है। मैंने उससे पूछा तो उत्तर मिला कि "ट्रेन में बैठ जाने पर कहूंगा।" बस मुझे भी चुप हो जाना पड़ा। अपनी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में उनके व्यवहार से मुझे बड़ा आश्चर्यान्वित होना पड़ा। मेरा ऐसा विश्वास नहीं था कि कई एक अपरिचित आदमी किसी तरह का वारण्ट बिना दिखाये किसी आदमी को, एक ब्रिटिश प्रजा को अपने घर से किसी भी अज्ञात स्थान को ले जा सकते हैं। कानून चाहे जो कुछ कहे मनुष्य की सहजबुद्धि तो इस प्रकार की कार्यविधि का कभी समर्थन नहीं कर सकती किन्तु समय बड़ा प्रतिकूल था। किस अधिकार से उन्होंने मुझे गिरफ्तार किया है। यह जानने के लिए यदि मैं उनका अनुसरण करने में विलम्ब करता तो मेरा वह काम अनायास ही राजद्रोह गिना जा सकता था।

मेरे घर से खाना तैयार होकर आया, किन्तु बड़ा साहब वह खाना देने से नाराज हुआ। स्थानीय दारोगा बाबू रमणीमोहन घोषाल के घर से खाने की चीजें तैयार हो कर आयी। मैंने डाक बंगले के बरामदे में बैठकर भोजन किया। इस समय मुझे देखने के लिए सदर रास्ते में लोग एकत्र हो गये थे। सभी के चेहरे उदास थे। मेरा ज्येष्ठ पुत्र कपड़े, बिछौने, रुपये और एक नौकर लेकर डाक बंगले पर आया। १० बजे हमने गाड़ी पकड़ी। आखिरी घण्टा बजा। गार्ड ने निशान दिखलाया। गाड़ी ने धीरे-धीरे चलना आरम्भ किया और बिना विलम्ब बन्धुबान्धवों के मुख और चिरपरिचित मनोहर दृश्य सभी मेरी आखों से हट गये। कहां जा रहा हूं और कितने समय के लिए जा रहा हूं? कुछ भी जान न सका।

हमारी गाड़ी महेशमुण्डा स्टेशन पार कर गयी तो मैंने बड़े साहब से पूछा किस अपराध में पकड़ा गया हूं। क्या अब आप मुझे बतलायेंगे? उत्तर में साहब ने कहा–"१९१८ सन् की तीसरी धारा के अनुसार।" मैं बोला–"तो मैं निर्वासित हुआ?" उसने कहा हां।

साहब गाड़ी में मेरे साथ अच्छा व्यवहार करने लगे, किन्तु मैंने पूछा कि कहां जा रहे हैं तो इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया। अज्ञातवास समझकर मेरे मन में खूब बल आ गया। क्यों ऐसा हुआ, मैं कह नहीं सकता। तथापि यह समझ लिया कि मुझे चाहे जहां ले जायें, भगवान् के अधिकार से बाहर तो ले जा सकेंगे नहीं।

गिरीडीह के डाक बंगले में पुलिस ने मेरे पोकेट से दो चिट्ठियां

ली थीं जिनमें एक बंगला में थी। जो मेरी अभ्रक की खान से आयी थी। दोनों अंग्रेज़ों में से मोटा साहब बंगला भाषा लिखना-पढ़ना जानता था। उस चिट्ठी को लेकर दोनों में कानाफूसी होने लगी। असल रहस्य यह था कि चिट्ठी में लिखा था-"अद्य खाद इहते आठ "बोझा" माल एसे।" बोझा शब्द ने साहब बहादुर के जी में बौझा (बम) का विषम सन्देह उत्पन्न कर दिया।

अपराह्न में हमारी गाड़ी बर्दवान पहुंची। दोनों अंग्रेज़ मुझे लेकर नीचे उतर गये। उस समय मेरे मन की अवस्था-"**यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि**" थी। दो गाड़ी भाड़े की की गयी। एक में मैं और दोनों अंग्रेज़ बैठे और दूसरी में मेरा नौकर, कई एक पुलिस के आदमी तथा चीजें रखी गयीं। कुछ मिनटों में गाड़ी बर्दवान जेल के दरवाजे पर उपस्थित हुई। जेल में जेलर साहब के मकान से सटे हुए एक छोटे कम्पाउन्ड के एक घर में मेरे रहने का स्थान निर्दिष्ट हुआ। भोजन कर निश्चिन्त हो मैं सो गया। मेरा नौकर चिन्तामणि मेरे पास नहीं रहने पाया। दूसरे दिन जेलर मेरी खबर लेने आये, भोजन बनाने के लिए मुझे ब्राह्मण देना चाहा, किन्तु मैंने कहा-मैं खुद ही भोजन बनाऊंगा। अपना हाथ जगन्नाथ। जो कुछ बनाया अमृत की भांति स्वादिष्ट लगा।

रात के ११ बजे मुझे लोगों की कुछ ऊंची आवाजें सुनाई दी। नींद टूट गयी, मैंने देखा। एक जमादार, दो तीन कैदी और बंगाली सज्जन मेरे घर में आ रहे हैं, मुझे बंगाली सज्जनों ने कहा इसी समय आपको कहीं जाना होगा। मैं बिना कुछ पूछे पीछे-पीछे हो लिया। मेरी चीजें कैदियों ने अस्त-व्यस्त रूप से बांध दी। आफिस में प्रवेश कर मैंने देखा श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्त्ती महाशय एक चेयर पर बैठे हैं। मुझे देख कर उनके नेत्र कुछ प्रफुल्लित हुए।

रात के ११ बजे हम ने बर्दवान छोड़ा, कुछ प्रतीक्षा करने के बाद गाड़ी आयी। हम उसमें बैठे। सवेरे पांच बजे गाड़ी हावड़ा स्टेशन पहुंची। बड़े साहब ने कहा "come alone" हम उनके साथ चल पड़े। गंगा में एक छोटा आगा बोट तैयार था, साहबों ने उसमें बैठने का अनुरोध किया। हम दोनों बैठ गये। बोट छोड़ दिया गया और वह कलकत्ता हाईकोर्ट के घाट के पास आकर एक बड़े स्टीमर के साथ बांध दिया गया। हम बड़े स्टीमर में चढ़े। स्टीमर का नाम था "पटियाला"।

१५ दिसम्बर (१९०८) मंगलवार का सवेरा था। हमारी आखों के

सामने हाईकोर्ट ईडन गार्डन और भी बड़े-बड़े मकान मानो हमें विदा करने के लिए प्रभात में गंगातीर पर उपस्थित हुए हैं। सूर्योदय हुआ। जहाज में यात्री सवार हुए। उसमें बंगाली भी थे। अंग्रेज़, काबुली, पेशावरी, बर्मी और मुसलमान अधिक थे। जहाज छूटने की तैयारी थी। उस समय बड़े साहब ने मुझ को और श्याम बाबू को पास-पास खड़े होने को कहा। हम दोनों एक तरफ उसी तरह खड़े हो गए। एक अंग्रेज़ ने हमारा फोटो लिया।

थोड़ी देर बाद ही हमारे अदृष्टचक्र की भांति जहाज का चक्का घूमा और धूएं का भोट किनारा छोड़ कर भेरीरव करता हुआ विपुल विक्रम के साथ दक्षिण की ओर अग्रसर हुआ। देखते-देखते चिरपरिचित कलकत्ता पीछे रह गया।

हमें कहाँ जाना पड़ेगा, यह तो पता नहीं था किन्तु इतना मालूम हो गया कि जहाज रंगून जायेगा। इसने मंगलवार सवेरे ७ बजे कलकत्ता छोड़ा है। अविराम रात-दिन चलकर शुक्रवार को १० बजे यह रंगून पहुंचा। प्रति घण्टा १२ मील के हिसाब से ७६ घण्टे हमें चलना पड़ेगा। उसके बाद कितने घण्टे कहां जाना पड़ेगा कुछ भी मालूम नहीं।

१८ दिसम्बर शुक्रवार को ८ बजे समुद्री चील उड़ती हुई दिखाई दी। हम ने समझ लिया तीर भूमि पास है। आठ बजे के बाद जल का रंग बदल गया और चलते-चलते रंगून पोर्ट बांई तरफ रह गया। थोड़ी देर में जहाज किनारे लगा। उस समय १० बजे थे। बड़ा साहब हम चारों को छोड़ कर उतरा। हम १० बजे से ४ बजे तक तीर्थ के कौए की भांति आगमन-प्रतीक्षा करते रहे। सिपाहियों ने खाने को ला दिया। हमने जलपान किया। ४ बजे बड़ा साहब आया और हम घोड़ा गाड़ी में सवार हुए। यहीं से श्याम बाबू के साथ हमारा विच्छेद हुआ। सन्ध्या से कुछ पहले हम इनसेन पहुंचे। यह स्थान रंगून से ९ मील है। बड़ा साहब मुझे इनसेन जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट को सौंपकर वापस लौट गया। जो घर हमारे लिए निर्दिष्ट था। उसमें मैं और मेरा नौकर चिन्तामणि पहुंचाये गये।

३० दिसम्बर को मैं कुछ सबेरे सो कर उठा। ९ बजे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मेरे कमरे में पहुंचकर एक भारत सरकार की चिट्ठी दी और कहा कि "मुझे दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि इण्डिया गवर्नमेंण्ट से हुक्म हुआ है कि आपके साथ उड़िया नौकर भी नहीं रह सकेगा, आज ही

उसको रंगून भेजना होगा। कल वह वहाँ से यथास्थान जायेगा। हम आपको दूसरा नौकर देंगे। मैंने कहा, क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं है? उसने कहा–नहीं, मुझे बिना विलम्ब इस आज्ञा का पालन करना होगा। मैंने कहा–इस विषय में मेरा और कहा क्या पालन हो सकता है?"

गिरीडीह से रवाना होते समय मैं ठाकुर घर में प्रणाम कर के नहीं आ सका, इसका मुझे बड़ा क्लेश था। प्रति दिन हृदय में इस दु:ख के जागृत रहने से बड़ी अशांन्ति सी रहती थी। आज रात (४ जनवरी सोमवार १९०९) को स्वप्न में देखा, मैं अपने गिरीडीह के ठाकुर घर में साष्टांग प्रणाम कर रहा हूं। मेरा सारा क्षोभ दूर हो गया।

मैं क्यों निर्वासित किया गया इसका कारण सोचते-सोचते एक बात याद आ गयी। गत वर्ष शासन सम्बन्धी रिपोर्ट के छोटा नागपुर के कमिश्नर बहादुर का जो मन्तव्य प्रकाशित हुआ है, उसमें उन्होंने लिखा है कि छोटा नागपुर में एक मात्र गिरीडीह में ही (Sedition) राजद्रोह है। कमिश्नर साहब ने किस आधार पर यह लिखा, नहीं कहा जा सकता। हां, एक हिन्दुस्तानी पुलिस सब इन्स्पेक्टर ने मेरे और कई एक दूसरे लोगों के नाम मिथ्या Sedition का मुकदमा लगाया था। उसने हम में से प्रत्येक की दो-दो हजार की जमानत ली थी। किन्तु मुकद्दमे की अवस्था को समझ कर गिरीडीह के युरोपियन मजिस्ट्रेट ने आठ आने की जमानत पर मुझे और दो दो पैसे की जमानत पर दूसरे आसामियों को छोड़ दिया था। इसके बाद वह मुकदमा कोर्ट में नहीं उठा।

उसी पुलिस कर्मचारी ने भद्र-महिलाओं को थाने में जाकर गवाही देने के लिए सम्मन दिया था। उस व्यक्ति के कथन वा रिपोर्ट के आधार पर निर्भर होकर यदि अधिकारियों ने गिरीडीह में Sedition का उल्लेख किया तो बड़े क्षोभ का विषय है।

जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझे जो पुस्तकें दी थीं, उन सब में मुझे दो बड़ी अच्छी लगी। एक 'वृत्तिप्रभाकर' और दूसरी 'Gazetter to upper Burma and the Saim state' 'वृत्तिप्रभाकर' हिन्दी भाषा का वेदान्त ग्रन्थ है। प्राय: ३०० वर्ष पहले स्वामी निश्चलदास ने विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर की रचना की थी। वृत्तिप्रभाकर बड़ा चमत्कारी ग्रन्थ है। वर्तमान बंग भाषा के वैभवशालिनी होने पर इस श्रेणी के ग्रन्थ रत्न उसके भण्डार में नहीं पाये जाते।

निर्वासन के १४ महीने मुझे क्रमश: पांच सुपरिण्टेण्डेण्ट के

तत्त्वावधान में रहना पड़ा। मेरे इनसेन आने के कुछ दिन बाद ही मुझे एक संगिनी मिली। उसका नाम था 'सोहागी'। सोहागी वास्तव में स्त्री जाति के होने पर भी स्त्री नहीं थी, वह थी एक बिल्ली। सोहागी ने मार्च मास के अन्त में एक कन्या रत्न प्रसव किया। जीवन में अनेक बिड़ाल-बिड़ाली देखे हैं, किन्तु सोहागी के समान बिल्ली देखने का कभी सुयोग नहीं हुआ।

मेरा विश्वास था कि वर्ष भर में मैं छोड़ दिया जाऊंगा। वर्ष बीत गया भारत सरकार ने मेरे भेजे हुए पत्र के उत्तर में कहा कि मेरे सम्बन्ध में वह अपना मत परिवर्तन का कोई कारण नहीं देखती।

९ फरवरी (१९१०) को सवेरे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने बुलाया और एक तार मेरे हाथ में देकर कहा कि भारत सरकार के होम सेक्रेटरी का तार है कि आपको बिना विलम्ब छोड़ दिया जाय।

मैं रंगून पहुंचा। उसी रात श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती और प्रभात में श्रीयुत यतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशय अपना निर्वासन काल व्यतीत कर रंगून में आ कर उपस्थित हुए। ये रंगून से बड़ी दूर थे। गत वर्ष १९०८ के दिसम्बर महीने की १८वीं तारीख को रंगून में श्यामसुन्दर चक्रवर्ती से मेरा विच्छेद हुआ था। आज इतने दिनों के बाद रंगून में फिर मिलना हुआ। एक दिन वह और एक दिन आज।" ❑❑❑

अमेरिका में गदर पार्टी के संस्थापक

लाला हरदयाल

देश के लिए लाला हरदयाल का त्याग एवं योगदान अनुकरणीय एवं महत्त्वपूर्ण था। दिल्ली निवासी हरदयाल बचपन से ही प्रतिभासम्पन्न थे। ये अपनी श्रेणी में प्रथम रहते और एक बार पढ़ने से ही इन्हें विषय कण्ठस्थ हो जाता था। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। जिसमें ये प्रथम स्थान पर रहे। अंग्रेज सरकार ने इस प्रतिभाशाली छात्र को सरकारी छात्रवृत्ति देकर आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय लंदन में पढ़ने भेज दिया। उस समय लंदन में 'इंडिया हाउस' की स्थापना कर आर्यसमाजी देशभक्त श्याम जी कृष्णवर्मा समाचार पत्र निकाल कर भारत की स्वतन्त्रता के लिए वातावरण बना रहे थे। कुछ समय बाद भाई परमानन्द भी आर्य समाज तथा भारत की आजादी के लिए प्रचार-प्रसार करने हेतु वहां पंहुच कर इंडिया हाउस में रुके। लाला हरदयाल इंडिया हाउस आने लगे। दोनों आर्यसमाजी देशभक्तों की संगति और देशभक्ति का लाला जी पर गम्भीर प्रभाव पड़ा और उनके विचार बदल गये।

सरकार ने लाला हरदयाल को छात्रवृत्ति देकर भेजा तो इसलिए था कि वहां शिक्षा पाकर एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति अंग्रेजी सरकार का भक्त पैदा होगा। किन्तु, हो गया ठीक इसके विपरीत। लाला हरदयाल अंग्रेजी सरकार के विरोधी बन गये और सरकारी छात्रवृत्ति भी यह कहकर ठुकरा दी कि **''जिस जाति ने मेरे देशवासियों को संगीन के बल से परतन्त्र कर रखा है, उससे किसी तरह की वृत्ति लेना मैं पाप समझता हूं।''**

एक विद्यार्थी के रूप में हरदयाल का यह त्याग अद्‌भुत था। यदि वे चाहते तो आक्सफोर्ड में पढ़कर आने के तुरन्त बाद जज, कलेक्टर, सेनाधिकारी, गवर्नर जैसे उच्च पद को पा सकते थे किन्तु उन्होंने आजादी के समक्ष इन सबको तुच्छ समझा। अब उनके लंदन, पेरिस और बर्लिन के क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध बढ़ने लगे। उनका लक्ष्य देशसेवा बन गया।

सन् १९०८ में अपनी पढ़ाई छोड़कर हरदयाल भारत आ गये और यहां राजनैतिक जागृति में लग गये। १९०९ में इन्होंने अपने मकान चेलपुरी

में एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला जिसमें क्रान्तिकारी मास्टर अमीचन्द तथा अन्य देशभक्त पढ़ाया करते थे। ये अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते और स्वदेशीयता का प्रचार-प्रसार करते। लाला जी के प्रभाव से इनके साथी लाला हनुमन्तसिंह ने, जो विदेशी माल के प्रतिष्ठित व्यापारी थे, अपना लाभकारी व्यापार छोड़ दिया और केवल स्वदेशी वस्तुओं का व्यापार करने लगे। गुप्तचर आपके पीछे पड़े हुए थे। अपनी गिरफ्तारी की प्रबल संभावना देखकर आप भारत छोड़ पुनः लंदन चले गये।

सन् १९११ में भाई परमानन्द सेन फ्रांसिस्को (अमेरिका) में थे। भाई जी ने लाला जी को भी वहां बुला लिया और अपने एक मित्र डाक्टर की सहायता से एक हॉल किराये पर लेकर इनके हिन्दू संस्कृति पर भाषण कराये। फिर वर्कले विश्वविद्यालय का संस्कृत का एक प्रोफेसर इनका प्रशंसक बन गया। उसके प्रयासों से लाला जी चैम्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत तथा भारतीय दर्शन के प्रोफेसर नियुक्त हो गये। वहां पढ़ाते हुए आपने वेतन नहीं लिया, उससे आपका सम्मान और बढ़ गया।

लाला जी ने अमेरिका में बसे सभी भारतीयों को संगठित कर 'ग़दर पार्टी' की स्थापना की। 'गदर' नाम का एक समाचार पत्र भी निकालना शुरू किया। अपना स्वतन्त्र प्रेस लगाया जिसका नाम 'युगान्तर आश्रम' रखा गया। 'ग़दर' पत्र के माध्यम से अमेरिका तथा अन्य यूरोपीय देशों में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए अभियान छेड़ा गया। यह पत्र अमेरिका कैनेडा आदि में तो व्यापक स्तर पर वितरित होता ही था, भारत में भी गुप्तरूप से बंटता था। इसके साथ ही पार्टी के लोग जगह-जगह सभा करके अंग्रेजी सरकार की आलोचना किया करते थे। गुप्तचर पुलिस 'ग़दर पार्टी' का पीछा करती और सब नेताओं की रिपोर्ट अंग्रेज सरकार को भेजती। २५ मार्च १९१४ को लाला हरदयाल को अंग्रेज सरकार के प्रभाव के कारण अमेरिका में गिरफ्तार कर लिया गया। अमेरिकन समाचार पत्रों में जब यह समाचार छपा तो इनकी जमानत लेने के लिए अदालत में भीड़ लग गयी। यहां तक कि अमेरिकी साहूकार रुपयों की थैलियां लिये अदालत में उपस्थित थे। अदालत ने इनको जमानत पर छोड़ दिया। उसके बाद ग़दर पार्टी और पत्र की सारी जिम्मेदारी उसके प्रमुख सम्पादक पं. रामचन्द्र को सौंपकर ये स्विटजरलैंड चले गये। अन्य अनेक क्रान्तिकारियों को भी अमेरिका में या तो गिरफ्तार कर लिया था या देशनिकाला दे दिया था।

फिर लाला जी जर्मनी आ गये। जर्मनी के भूतपूर्व सम्राट् कैसर से भी इनकी भेंट हुई थी। प्रायः सभी जर्मन-मन्त्री और अधिकारी इनका सम्मान करते थे। ये कई यूरोपीय भाषाएं धारा-प्रवाह रूप से बोल लेते थे। जर्मन-युद्ध के समय वहां लाला जी को उप परराष्ट्र मन्त्री (उप विदेश मन्त्री) बनाया गया। वान जीमरमैन विदेश मन्त्री थे। जर्मनी में भी इन्होंने 'बर्लिन सोसायटी' नामक संस्था बनायी, जो भारत, ईरान, मिश्र आदि देशों में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति का वातावरण उत्पन्न करती थी। इसी सम्बंध में वे एक जर्मनी के दूत बनकर तुर्की के सुलतान से भी मिले थे। बंगाल में जर्मनी के सहयोग से रची जाने वाली सशस्त्र क्रान्ति के समय भी हथियार भिजवाने में इनका योगदान था किन्तु वह योजना सिरे नहीं चढ़ सकी।

जर्मन-युद्ध में जर्मन के हार जाने के बाद वहां इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि मित्र राष्ट्रों द्वारा समर्थित सरकार आ गयी। तब लाला जी की स्थिति बहुत संकटपूर्ण हो गयी। जिस अंग्रेज सरकार के विरोध के कारण और उसे उखाड़ने में योगदान करने के लिए वे जर्मनी गये थे, वही सरकार वहां भी स्थापित हो गयी। नवम्बर १९१९ में लाला जी ने स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से जर्मन मन्त्री से बर्लिन छोड़ने की अनुमति मांगी तो उसने स्पष्ट इन्कार कर दिया। उसे आभास हो गया कि अब यहां उन्हें कैद कर दिया जायेगा। एक दिन वे योजना बनाकर जर्मन वेश में वहां से भाग निकले और स्काटहोम (स्वीडन) पहुंच कर उसी जर्मन मन्त्री को तार दिया कि "आप को धन्यवाद है, मैं कुशलतापूर्वक स्वीडन पंहुच गया हूं।" जर्मन-मन्त्री सिर धुनकर रह गया। इतने चतुर और कुशल राजनीतिज्ञ थे लाला हरदयाल !

वे कुछ समय तक गुप्त रूप से रूस में भी रहे। इंग्लैंड में जब रेम्जे मैकडानल्ड प्रधानमन्त्री बने तो उन्हें वहां स्वतन्त्रतापूर्वक रहने की अनुमति मिल गयी। मैकडोल्ड इनके मित्र थे। वहां रहकर इन्होंने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। लंदन में इनके विरुद्ध कोई मुकदमा नहीं चलाया गया किन्तु भारतीय अंग्रेज सरकार का रवैय्या प्रतिशोधपूर्ण ही रहा। १९३७ में भारतीय सरकार ने घोषणा की थी कि "लाला हरदयाल के भारत आने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, किन्तु उनके भारत आने पर मुकदमा चलाया जायेगा।" लाला जी १८३८ तक इंग्लैंड में रहे। १९३८ के अन्त में उनसे 'सरकार के विरुद्ध किसी कार्य में सम्मिलित न होने का वचन' लेकर उन्हें भारत आने की अनुमति दे दी गयी। ❑❑

कामागाटामारू जहाज की कहानी

'कामागातामारू' जहाज की चर्चा के बिना भारत की आजादी का इतिहास पूरा नहीं होता। यह जहाज आजादी के क्रान्ति-आन्दोलन का एक स्रोत सिद्ध हुआ। दिल्ली-निवासी लाला हरदयाल जब सरकारी छात्रवृत्ति पर इंगलैंड पढ़ने गये तो वहां क्रान्तिकारियों के गुरु श्याम जी कृष्ण वर्मा और क्रान्तिकारी विनायक सावरकर से उनकी भेंट हुई। उनसे प्रभावित होकर उन्होंने सरकारी छात्रवृत्ति छोड़ दी। उसके बाद भाई परमानन्द के परामर्श से 'ग़दर पार्टी' नामक एक क्रान्ति-संगठन खड़ा किया। इसकी अमरीकी शाखा की स्थापना २० मई १९१३ को प्रवासी भारतीयों को संगठित करके कैलिफोर्निया के यूलो नामक नगर में की गयी। इसका 'ग़दर' नामक मुखपत्र भी प्रारम्भ हुआ। इस पत्र के द्वारा विदेशों में भारत की आजादी के लिए क्रान्ति का वातावरण बना। देश-विदेश में शस्त्र-संग्रह करने की योजना भी बनी। इस कार्य में कैनेडा के प्रवासी भारतीयों का विशेष योगदान था जिसमें सिखों की संख्या अधिक थी।

अंग्रेज सरकार को इन योजनाओं ने भयभीत कर दिया। उसने इन सारी योजनाओं को निष्फल करने का लक्ष्य बनाया। अंग्रेज सरकार के इशारे पर कैनेडा के इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग ने एक कानून बनाकर भारतवासियों के कैनेडा में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और सैकड़ों सिख नेताओं को कैनेडा से निकाल दिया गया। कैनेडा से वापस हुए सभी भारतीय हांगकांग में इकट्ठे होते गये। कैनेडा सरकार ने यह नियम बना दिया कि जिस देश का जहाज सीधा अपने देश से कैनेडा पहुंचेगा, केवल उसी जहाज के यात्रियों को कैनेडा में उतरने दिया जायेगा। अंग्रेज और कैनेडा की गोरी सरकारों की यह एक कूटनीति थी। वे जानते थे कि भारत में कोई जहाज है नहीं, अत: भारतीयों का प्रवेश स्वत: ही रुक जायेगा। हांगकांग में इकट्ठे हुए भारतीयों ने एक धनाढ्य सिख बाबा गुरुदत्तसिंह (अमृतसर निवासी) से अपनी व्यथा कही। देशभक्त बाबा गुरुदत्तसिंह ने भारतीयों का कष्ट दूर करने के लिए १९१० में 'गुरुनानक स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' की स्थापना की। इन्होंने 'कामागातामारू' नामक जापानी जहाज हांगकांग में एक जर्मन एजेंट के द्वारा किराये पर ले लिया और इसका नाम 'गुरु नानक जहाज' रखा।

कैनेडा जाने वाले यात्रियों की बुकिंग प्रारम्भ करके शंघाई, मौज, योकोहामा के यात्रियों को लेकर यह कलकत्ता आया और यहां से भारतीय यात्रियों को लेकर फिर हांगकांग पहुंचा। हांगकांग से ४ अप्रैल १९१४ को चलकर २३ मई को यह कैनेडा के वैंकोवर बन्दरगाह पर पहुंचा। कैनेडा सरकार का असली चेहरा अब सामने आया। उसने सीधे पहुंचने वाले जहाज को न तो किसी बन्दरगाह पर टिकने दिया और न यात्रियों को उतरने दिया। बन्दरगाह से दूर खड़े इस जहाज के यात्रियों के पास खाने-पीने के लिए भी पैसों की कमी होने लगी। कैनेडा सरकार ने दुखती रग पर एक और चोट की। जहाज का किराया किश्तों में देना था। कैनेडा सरकार ने जहाज के मालिक को बहका कर इस बात के लिए लोगों को बाध्य करवा दिया कि सारा किराया एक साथ देना होगा, तभी जहाज से उतरने दिया जायेगा। भूखे-प्यासे यात्रियों पर एक और मुसीबत टूट पड़ी।

इस मुसीबत की घड़ी में कैनेडा में रह रहे देशभक्त बलवन्तसिंह, भागसिंह आदि साथियों का दल सहायता के लिए सामने आया। उन्होंने बत्तीस हजार डालर इकट्ठे करके जहाज के मालिक को देकर उसका चार्टर अपने नाम करा लिया और एक नया घाट खरीदकर वहां यात्रियों के उतरने की व्यवस्था कर दी। किन्तु पक्षपाती कैनेडा सरकार ने वहां भी यात्रियों को उतरने नहीं दिया। जहाज को वापस खदेड़ने के लिए एक पुलिस-दल भेज दिया। यात्रियों ने पुलिस दल को भगा दिया। फिर कैनेडा सरकार ने सैनिकों से भरा एक जंगी जहाज भेजा। अन्ततः विवश होकर २३ जुलाई को 'कामागातामारू' (गुरु नानक) जहाज को वापस भारत लौटना पड़ा। भारतीयों की सहायता करने वाले देशभक्तों पर भी कैनेडा सरकार ने जुल्म किये। कैनेडा के इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग ने एक गद्दार के द्वारा वैंकोवर के गुरुद्वारे में भाई भागसिंह पर गोली चलवा दी। उस घटना में इनके साथ एक और साथी वतनसिंह भी मारे गये। उसके बाद बलवन्तसिंह आदि भी स्वदेश लौट आये थे।

अत्याचार और पक्षपात की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती अपितु बढ़ती चलती है। इसी बीच योरोप में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया। यात्री भारत नहीं आना चाहते थे। उन्हें आशंका थी कि अंग्रेज सरकार वहां मनमाने जुल्म ढायेगी। किन्तु हुआ वही। हांगकांग, सिंगापुर, शंघाई आदि रास्ते के किसी भी बन्दरगाह पर जहाज को नहीं रुकने दिया। विवश होकर इसे कलकत्ता लौटना पड़ा। इस जहाज ने २७ सितम्बर १९१४ को प्रातः ११ बजे हुगली नदी के संगम पर बजबज नामक स्थान पर

लंगर डाला। अंग्रेजों के खुफिया विभाग ने इस जहाज के बारे में सरकार को खतरे की रिपोर्ट भेज रखी थी। इसलिए सरकार ने सभी यात्रियों को उतारकर जेल में नजरबंद करने की योजना बना रखी थी। अंग्रेज सरकार ने जहाज को घेर लिया और यात्रियों की सघन जांच की। कड़े पहरे में उनको यहां से कलकत्ता ले जाया गया। (**सम्पादक**)

बजबज का गोलीकाण्ड

'कामागातामारू' जहाज के यात्रियों को पंजाब ले जाने के लिए अंग्रेज सरकार ने कलकत्ता रेलवे स्टेशन पर एक नि:शुल्क ट्रेन खड़ी कर रखी थी। सरकार की योजना थी कि सभी को पंजाब ले जाकर जेल में बंद किया जाये। बजबज से कलकत्ता आकर यात्री इधर-उधर जाने लगे। सैनिक उन्हें बलात् ट्रेन में बैठा रहे थे। इस बात को लेकर दंगा भड़क गया। सेना की गोली से १८ निर्दोष सिख मारे गये। बाबा गुरुदत्तसिंह को भी गोली लगी किन्तु उनके साथी उन्हें कन्धे पर उठा कर कहीं ले गये। सरकार ने उनकी सूचना देने वाले को दस हजार का पुरस्कार देने की घोषणा की किन्तु उनका पता ही न चला। जिन लोगों को बलात् पकड़कर लाया गया उनमें से ३२ को जेलों में बंद कर दिया, शेष को जाने दिया। इस अवसर पर पंजाब के जो सिख भागने में सफल रहे उन्होंने पंजाब पंहुचकर पुलिस की नजरों से बचकर अंग्रेजी-अत्याचार के विरुद्ध क्रान्ति का शंखनाद कर दिया। आजादी के इतिहास में इन घटनाओं का गम्भीर और व्यापक प्रभाव पड़ा। 'ग़दर' समाचार पत्र की प्रेरणा से, विदेशों में वहां की गोरी सरकारों के अत्याचारों से विक्षुब्ध हुए प्रवासी भारतीयों के दल के दल भारत लौटे और उन्होंने देश के सभी हिस्सों में क्रान्ति की हलचल मचा दी। अंग्रेज सरकार देशभक्तों का दमन करने के लिए जहां 'मारो-काटो' की बर्बर नीति पर कठोर होती गयी, देशभक्त भारतीय उतने ही 'करो या मरो' की नीति पर दृढ़ होते गये। (**सम्पादक**) ❑❑

सुन लो गोरो! सुन लो गोरो! देश आजाद करायेंगे।
गोली चाहे लाठी मारो, आंसू नहीं बहायेंगे।।

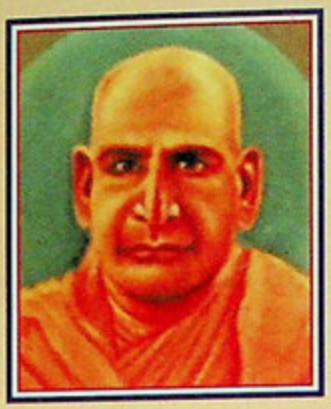

स्वामी श्रद्धानन्द

सरदार वल्लभभाई पटेल

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

राव तुलाराम (रेवाड़ी)

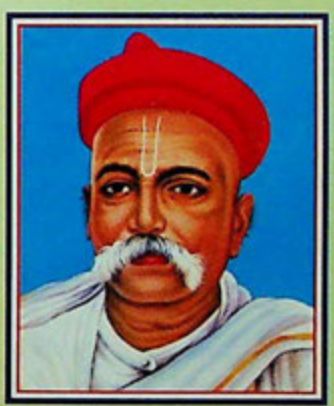

श्री बाल गंगाधर तिलक

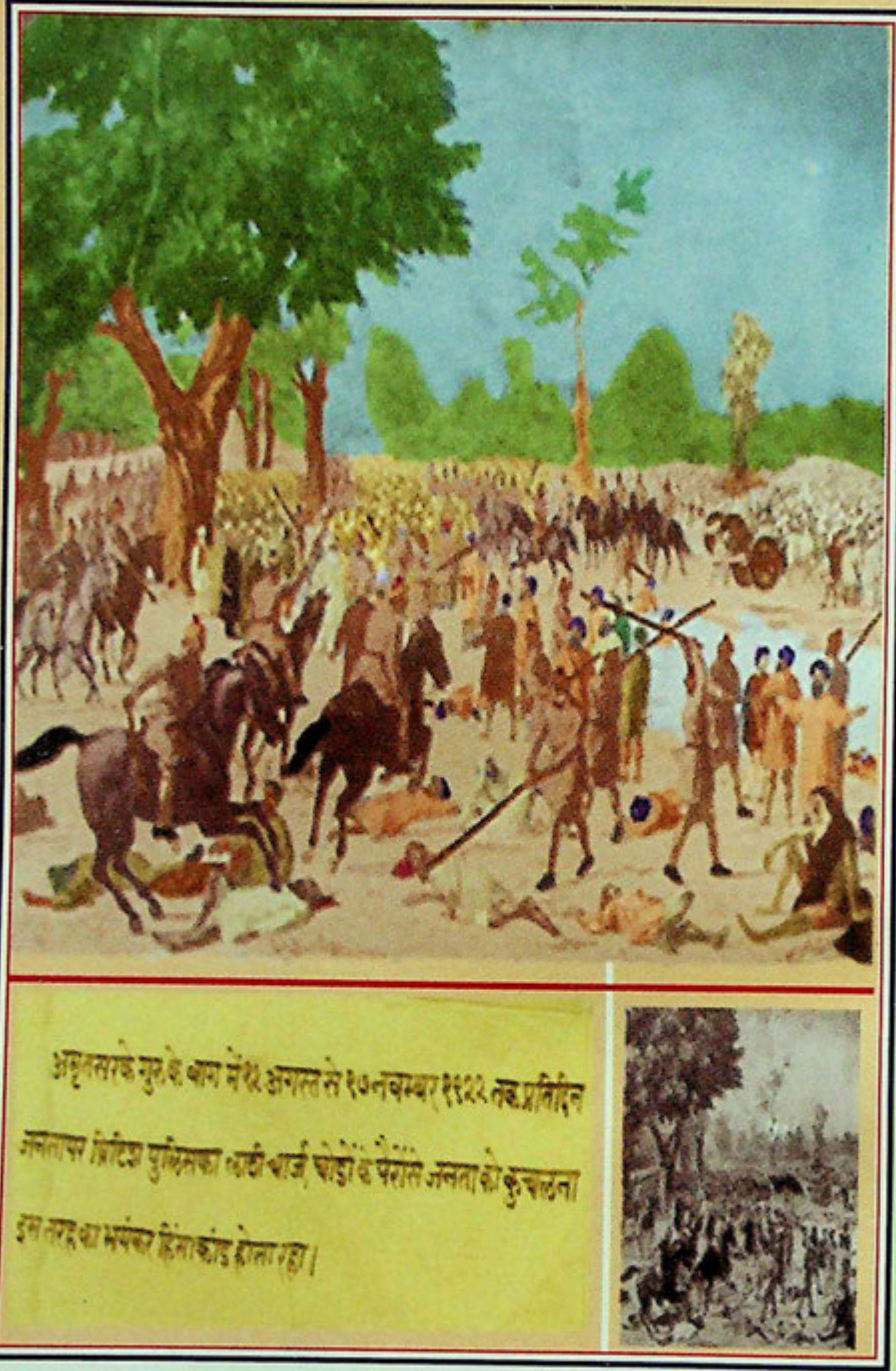

अमृतसर के गुरु के बाग में २२ अगस्त से १७ नवम्बर १९२२ तक प्रतिदिन जनता पर ब्रिटिश पुलिस का लाठी चार्ज, घोड़ों के पैरों से जनता को कुचलना इस तरह का भयंकर हिंसा कांड होता रहा।

अमृतसर के गुरु के बाग में २२ अगस्त से १७ नवम्बर १९२२ तक प्रतिदिन जनता पर ब्रिटिश पुलिस का लाठी-चार्ज घोड़ों के पैरों से जनता को कुचलना। इस तरह भयंकर हिंसा काण्ड होता रहा।

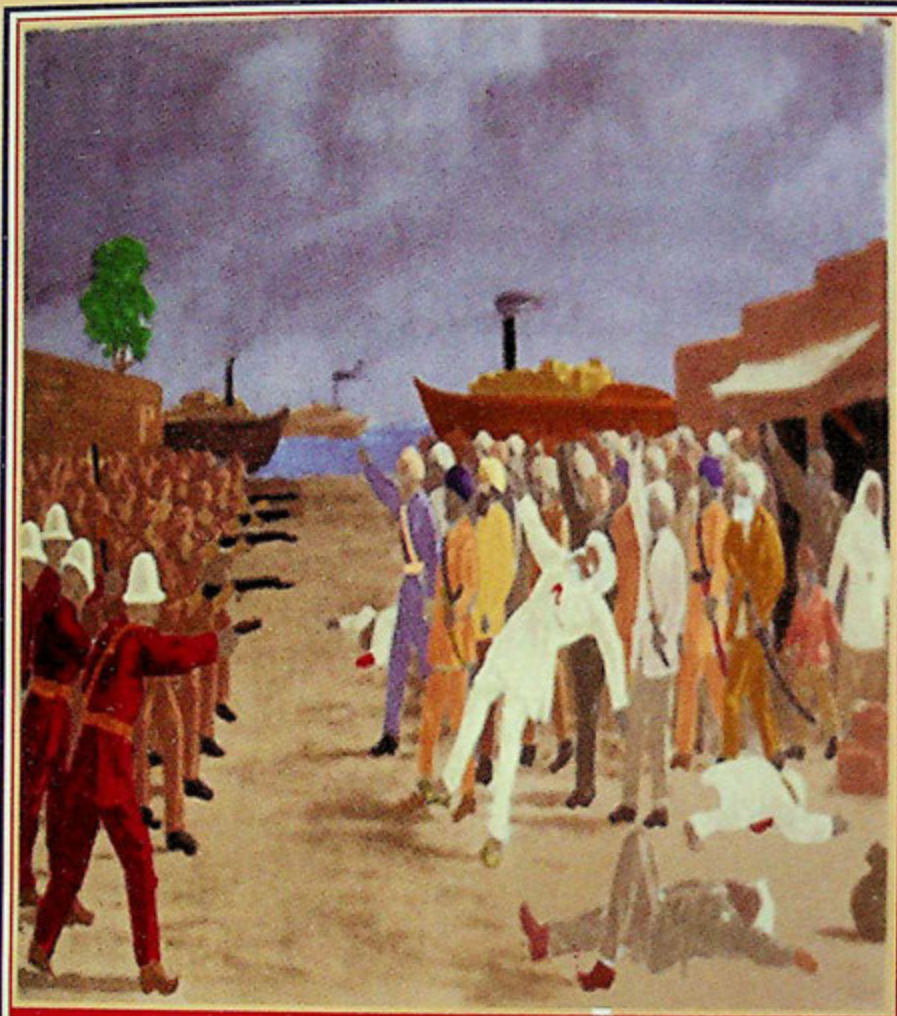

यह दृश्य 'बजबज' बन्दरगाह का है। सरहाली (पंजाब) का साहसी सुपूत बाबा गुरुदत्त सिंह 'कोमागट्टामारु' नामक जापानी जहाज किराये पर लेकर हांगकांग से भारतीय जनता को लेकर कनाडा गया। जहाज वानकोर पहुँचने पर भारतीय यात्रियों को धरती पर उतरने नहीं दिया गया। उसी तरह जहाज को समुद्र में ही २ मास तक ठहरना पड़ा। मजबूरन वानकोर से जहाज वापिस कलकत्ता पहुँचा। भारतीय अपनी जन्मभूमि पर पैर रखते ही पुलिस की गोलियों से उनकी निर्मम हत्या करा दी गई। दिनांक २६ सितंबर १९१४

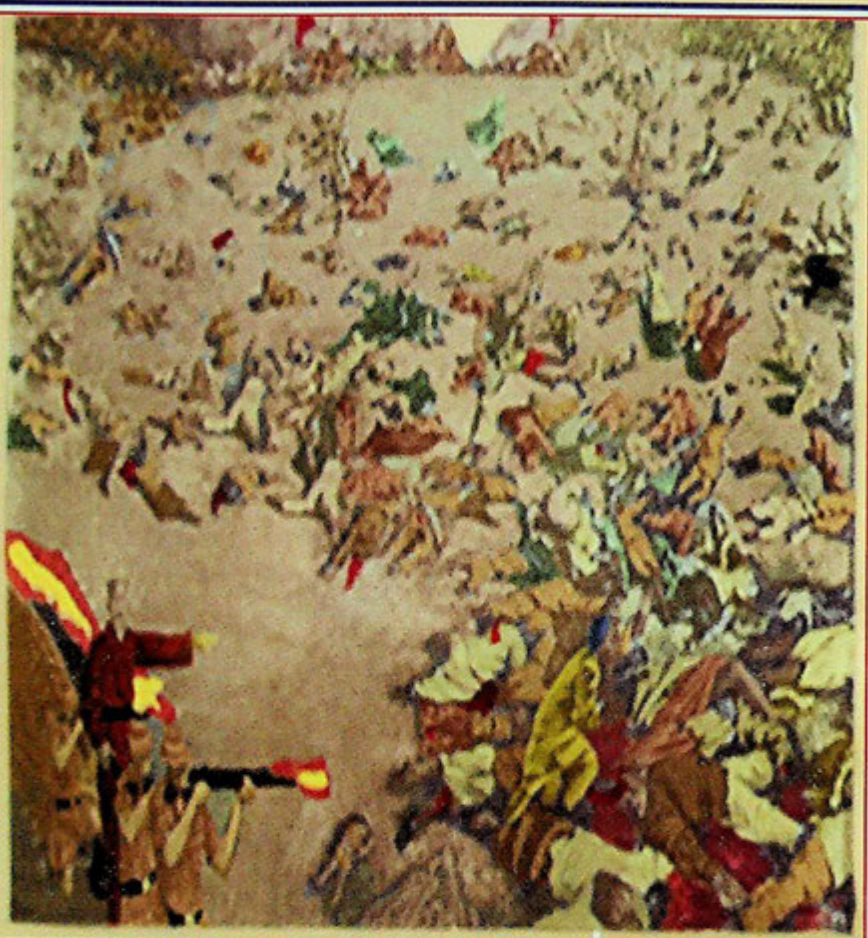

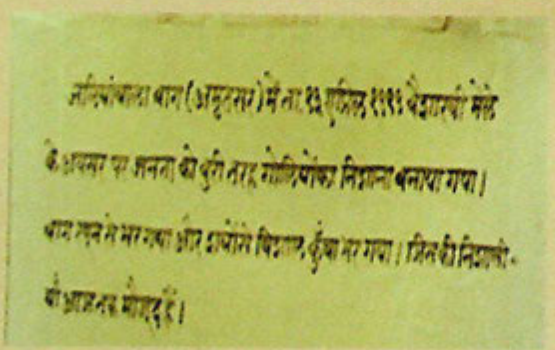

जलियांवाला बाग (अमृतसर) १३ अप्रैल १९१९ वैशाखी मेले के अवसर पर जनता को बुरी तरह गोलियों का निशाना बनाया गया। बाग खून से भर गया और शवों से विशाल कुंआ भर गया। जिसकी निशानियाँ आज तक मौजूद हैं।

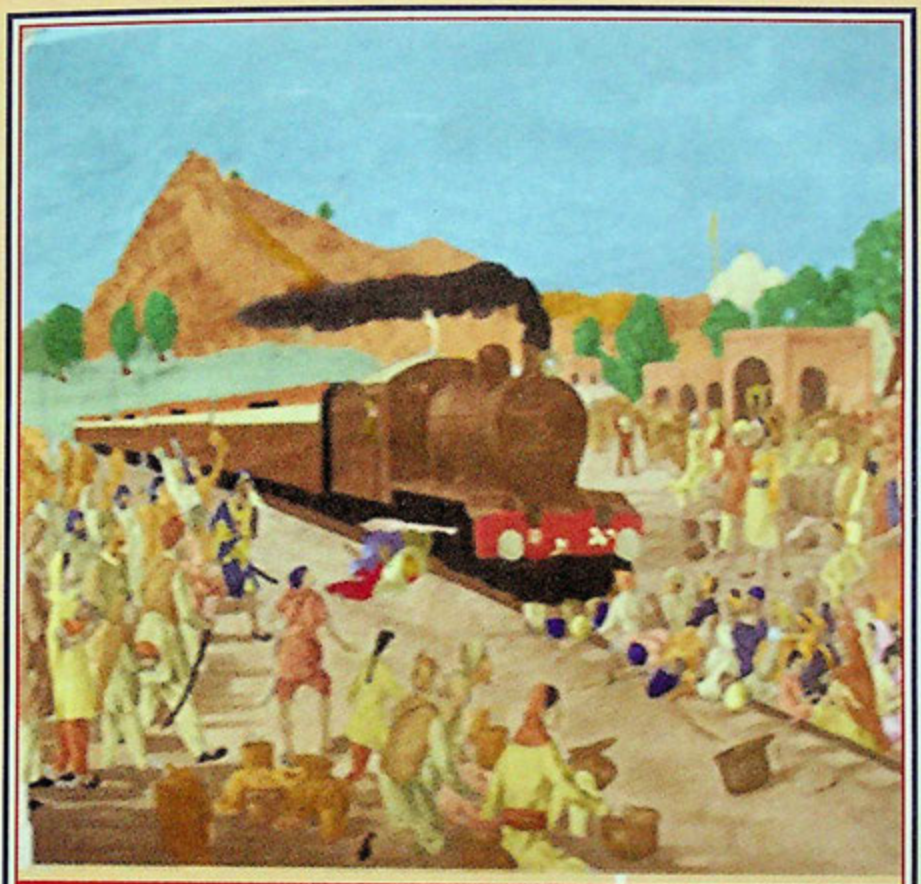

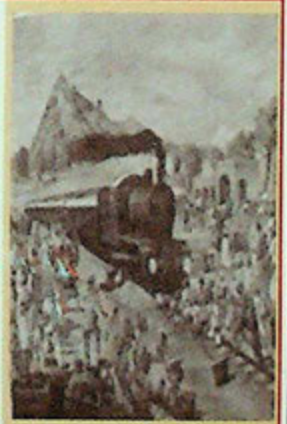

दिनांक ३० अक्तूबर १९२१ को रेलगाड़ी में अकाली कैदियों को लेकर अमृतसर से नौशेरा ब्रिटिश जेल को ले जा रहे थे। उन कैदियों को जनता अल्पाहार देना चाहती थी। पञ्जासाहेब स्टेशन पर रेल को रोकने के लिए जनता रेल की पटरियों पर बैठ गई। रेलगाड़ी नहीं रोकने से दो व्यक्तियों की निर्मम हत्या हुई।

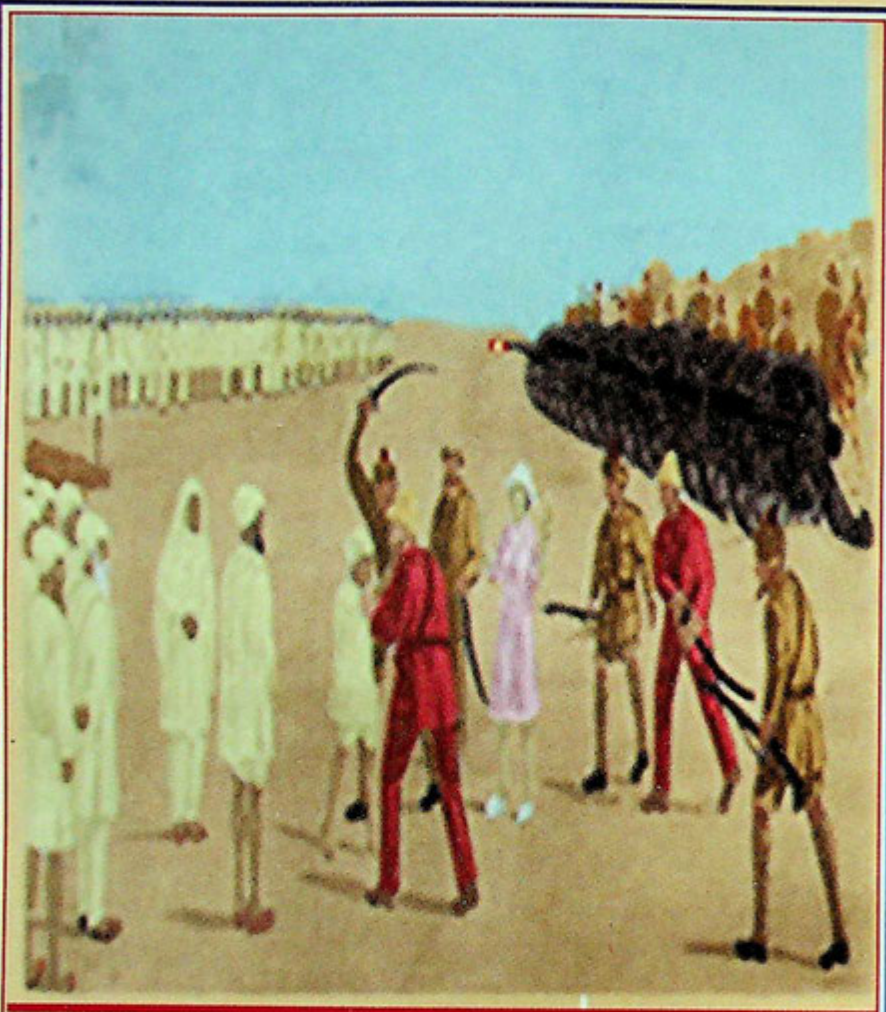

यह दृश्य मलेर कोटला (पंजाब) के सामूहिक हत्याकाण्ड (दिनांक १७-१८ जनवरी १८७२) का है। कूकों को एक-एक झुण्ड में लाकर तोपों से उड़ाया गया। एक नवयुवक ने पहरेदारों से छूटकर, एल०कोन डिप्टी कमिश्नर पुलिस लुधियाना की दाढ़ी को पकड़ कर हिलाया। उसी समय उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये।

श्री सुबग सिंह तथा उसके सुपुत्र शहबाज सिंह को मृत्यु दण्ड। भयंकर चर्खी पहियों पर बांध कर पीसा गया। पहले सुबग सिंह को बाद में सुपुत्र शहबाज सिंह को पीसा गया। ये दोनों अत्यंत साहस के साथ मृत्यु की चर्खी पर चढ़े। अकाल, अकाल ये उनके अंतिम शब्द थे।

१८५७ में अंग्रेजों के अत्याचार

देशभक्त बालकों को यातनापूर्ण
तरीके से फांसी पर लटकाना

घोड़ों के पीछे रस्सी से बाँधकर खिचवाना और
ऊपर से पत्थर मारना

देशभक्तों को शिंकजों में कसकर तड़पाकर मारते हुए।

रूह कंपा देने वाली यातनाएं सहने वाले

जेल में शहीद श्री भानसिंह

अंग्रेजों के पाशविक जुल्मों के शिकार निर्दोष नर-नारी भी हुए हैं, फिर क्रान्तिकारियों के साथ क्या बीती होगी, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। हाँ, भाई भानसिंह के जीवन-परिचय से उसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। पाठक पढ़कर अनुमान लगायें कि देश की आजादी के लिए स्वतन्त्रता-सेनानियों ने क्या-क्या अत्याचार सहा था !

आपका जन्म जिला लुधियाना के सुनेत नामक गांव में हुआ। फौज की नौकरी छोड़कर आप अमेरिका चले गये और कैलीफोर्निया में रहकर आप गदर पार्टी के कार्यक्रमों में भाग लेने लगे। जब प्रवासी भारतीयों का अमेरिका आदि पश्चिमी देशों से भारत लौटकर देश की आजादी में योगदान करने का अभियान चला तो आप भी भारत लौट आये। जहाज में आप क्रान्ति का प्रचार करते रहे। परिणाम यह हुआ कि २९ अक्तूबर १९१४ को कलकत्ता पंहुचते ही आपको गिरफ्तार कर लिया गया। नवम्बर के अन्त तक मांट-गुमरी जेल में बंद रखने के बाद आपको छोड़ दिया। इस घटना से कुछ क्रान्तिकारी आप पर सन्देह करने लगे, किन्तु आपने अपना प्रचार अभियान जारी रखा। पंजाब की क्रान्ति असफल होने के बाद जब गिरफ्तारी का दौर चला तो आपको भी पकड़ लिया गया। हत्या और डकैती के आरोप लगाकर अभियोग चलाया गया। ये सिद्ध न होने पर भी आपको आजीवन काला पानी की सजा सुना दी गयी। आतंक फैलाने और दमन करने के लिए अंग्रेज सरकार निर्दोषों के साथ ऐसा ही बर्ताव करती थी।

आपको अंडमान द्वीप में ले जाकर सेल्युलर जेल में बंद कर दिया। वहां के जेल-अधिकारी अपनी क्रूरता के लिए कुख्यात थे। क्रूर और निर्दयी स्वभाव के लोगों को वहां छांट-छांट कर भेजा जाता था ताकि देशभक्तों को कठोर-से-कठोर यातना दी जा सके। यही कारण था कि यहां अधिकारियों और कैदियों में सदा झगड़ा चलता रहता था। एक बार कोई उत्सव मना था। जेल-अधिकारियों ने राजनैतिक कैदियों को

भी मिठाई बांद दी और कुछ कैदियों ने लेकर खा भी ली। भानसिंह उनकी इस बात पर बहुत रुष्ट हुए और उन्हें खरी-खोटी सुनायी। देशप्रेमी कैदियों ने आपसे माफी भी मांग ली। इस बात की जानकारी जब जेल-अधिकारी को हुई तो उसने आपको भद्दी गालियां देकर अपमानित किया। आपने इसके विरोध में अगले दिन काम करने से इंकार कर दिया। जेलर ने आपको डंडा-बेड़ी पहनाकर काल कोठरी में बंद कर दिया और भोजन तथा पानी की आधी खुराक कर दी। उस गर्मी प्रधान प्रदेश में आप प्यासे तड़पते रहते किन्तु पीने का पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता था। फिर भी देशप्रेम का प्याला पीकर आप इन भूख-प्यास के कष्टों को सहते रहे। कष्टों को सहन करते-करते आप दु:ख-सुख, जीवन-संसार के भावों से ऊपर उठ चुके थे।काल-कोठरी में एक दिन आप मस्त होकर एक पंजाबी का भजन गाने लगे-

''मित्र प्यारे नूं हाल मुरीदाँ दा कहना''

अर्थात्- 'सबके प्यारे मित्र प्रभु को उनके भक्तों का हाल सुना देना।'

जेलर ने आपको भजन न गाने का आदेश दिया। आपको लगा कि ईश्वर की भक्ति में भी बाधा डालने वाला यह कौन होता है ? आपने भजन जारी रखा। दण्डस्वरूप आपको दूसरी मंजिल की तंग कोठरी में बंद कर दिया गया। किन्तु भजन वहां भी जारी रहा। फिर तीसरी मंजिल की ढाई वर्ग फीट की सन्दूकनुमा कोठरी में आपको बंद कर दिया गया। आपका भजन वहां भी जारी रहा। जेलर की क्रोध की सीमा न रही। उसने भानसिंह को पीटने की आज्ञा दी। इतना पीटा, इतना पीटा कि कई हड्डियां टूट गयीं। लेकिन प्रभु से लौ लगाने वाले इस देशप्रेमी भक्त को अब प्रभु के अतिरिक्त कुछ भी प्रिय नहीं रह गया था, न शरीर, न जीवन, न भोजन, न पानी। जेलर का अत्याचार भी प्रभु-भजन का गायन बंद नहीं करा सका।

जेल-अधिकारी उसे फिर मारने को दौड़े। तब तक अन्य कैदियों को भी इस अत्याचार का पता चल गया। उसे बचाने के लिए वे कैदी भी दौड़े किन्तु तीसरी मंजिल का द्वार बंद कर दिया। भानसिंह पर फिर मार पड़नी शुरू हुई किन्तु भजन चालू रहा। मार-पीट भी जारी रही और भजन भी जारी रहा....तब तक भजन जारी रहा जब तक भानसिंह बेहोश होकर न गिर पड़ा। अगले दिन उसकी हालत यह हो गयी कि

मुंह में पानी जाना बंद हो गया। जेल-अधिकारी बदनामी के भय से यह नहीं चाहते थे कि कोई जेल में मरे। भानसिंह को जेल से बाहर एक हस्पताल में भेज दिया। वे जीवित तो तभी रहते जब उनमें जीवन छोड़ा होता ! मनुष्य शरीरधारी उन राक्षसों ने उनका जीवन तो जेल में ही छीन लिया था। और आखिर कुछ दिन के बाद वे अपने "प्यारे मित्र" प्रभु के पास "मुरीदाँ दा हाल" (भक्त शिष्यों का हाल) कहने के लिए उसकी शरण में चले गये। तथाकथित सभ्य अंग्रेजों के राज्य में भजन गाना भी मृत्युदण्ड योग्य अपराध था !

पाठकवृन्द ! आप जान गये होंगे कि देशभक्तों ने क्या-क्या जुल्म सहे। ये लोग वास्तव में असाधारण पुरुष थे।

❑❑

मांडले (बर्मा) की क्रान्ति के शहीद

बाबू हरिनाम सिंह

न्याय का नाटक और कानूनी प्रक्रिया का पाखण्ड करने वाले अंग्रेज, किसी व्यक्ति को अपने रास्ते से हटाने के लिए किस निम्न स्तर तक जाते थे और निरपराधों पर अत्याचार करते थे, इसकी जानकारी हमें हरिनाम सिंह के जीवन से मिलती है।

हरिनामसिंह का जन्म जिला होशियारपुर के साहरी नामक गांव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लाभसिंह था। मैट्रिक कक्षा तक पंहुचते ही आप पढ़ाई छोड़कर सेना में भरती हो गये। वहां आप अपना अलग मंडल बनाकर शब्द-कीर्तन करते थे। आपके हृदय में गुलामी की पीड़ा थी। बातचीत में आप प्राय: कह दिया करते कि 'हमारा भी क्या जीवन है ! दस-ग्यारह रुपये के लिए गुलामी कर रहे हैं और विदेशी जाति को और बढ़ावा दे रहे हैं। इससे अच्छा तो भूखे रहना या मर जाना है।' आपके मित्र पूछ बैठते-'फिर क्यों नौकरी कर रहे हो? जाओ छोड़कर।' हरिनाम सिंह कहते-'मैं पैसे के लिए नौकरी नहीं कर रहा। मेरा लक्ष्य कुछ और ही है।' हाँ उनका लक्ष्य था सेना में आजादी के प्रति जागृति पैदा करना। सेना में क्रान्तिकारी बलवन्तसिंह का आप पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके साथ ही नौकरी छोड़कर घर आ गये। इनके और क्रान्तिकारी भागसिंह के साथ आपका अत्यधिक प्रेम था।

कुछ दिन घर रहने के बाद आप बर्मा पंहुचे। वहां से हांगकांग जाकर 'ट्राम-कम्पनी' में नौकरी कर ली। कैनेडा और अमेरिका जाने के इच्छुक बहुत-से भारतीय पहले हांगकांग पंहुचते थे। वहां से इमिग्रेशन विभाग वाले उन्हें वापस घर लौटा देते थे। तब उनके पास किराया-खाना कुछ नहीं बचता था। हरिनाम सिंह उनकी इस विपत्ति में आर्थिक सहायता करते थे।

१ दिसम्बर १९०७ को आप अमेरिका चले गये। वहां विक्टोरिया नगर में रहकर आपने धन एकत्रित किया और शिक्षा के प्रचार के लिए भारत भेजा। १ जनवरी १९०८ को आप कैनेडा चले गये। वहां सीएटल शहर में रहकर एक स्कूल में पढ़ने लगे। तीन वर्ष में आपने गम्भीर अध्ययन किया। वहां आपने भारतीयों के साथ मिलकर एक 'इंडियन ट्रेडिंग कम्पनी' खोली। एक अंग्रेज को मैनेजर रख लिया। कम्पनी ने शीघ्र खूब उन्नति की। गोरों को यह उन्नति नहीं सुहाई। अंग्रेजों ने उसे असफल करने के लिए अंग्रेज मैनेजर को अपने साथ मिला लिया। वह बेईमानी करके कम्पनी को असफल करने का प्रयत्न करने लगा। आपने

उसको हटा दिया। अंग्रेजों की नजरों में आप खटकने लगे। गोरी सरकार आप पर झूठे आरोप लगाकर आपको जेल में डालना चाहती थी। अमेरिका में रहने वाले इनके एक अंग्रेज मित्र थे – मजिस्ट्रेट रैमिसबर्ग। वे कैनेडा जाकर आपको साथ ले आये। इस प्रकार आप बच गये।

कुछ समय बाद आप फिर कैनेडा चले गये। वहां 'दि हिन्दुस्तान' पत्र निकालना शुरू किया। उसमें आप भारत की स्थिति और आजादी की प्रेरणा पर प्रेरक लेख लिखते थे। गोरी सरकार ने आपकी कोशिशों को समाप्त करने के लिए आप पर बम बनाने, रखने, चलाना सिखाने और विद्रोह करने के आरोप लगाकर अड़तालीस घण्टे में देश छोड़ने का आदेश दिया। आपके मित्र रैमिसबर्ग ने कैनेडा सरकार को तार दिया कि 'इन्हें निर्वासन दण्ड न दिया जाये। मैं इन्हें लेने आ रहा हूँ।' और वे जाकर उन्हें ले आये। कुछ दिन बाद आपको फिर कैनेडा जाने की अनुमति मिल गयी। वहां आप वर्कले यूनिवर्सिटी में पढ़ने लगे। साथ ही लाला हरदयाल के 'ग़दर' समाचार पत्र की, जो अमेरिका से निकलता था, सभी प्रकार की सहायता करने लगे।

इधर दो क्रान्तिकारी भाई गुरदत्तसिंह और भाई दलीप सिंह को एक बम-केस में पकड़ लिया गया। जब कामागातामारू जहाज बन्दरगाह पर आया तो आप अपने कुछ साथियों के साथ उनसे मिलने के लिए गये तो आपको वहीं गिरफ्तार कर लिया। अन्य सभी को छोड़ दिया और आपको देशनिकाला दण्ड मिला। आप अमेरिका से भारत आने के लिए चीन, जापान होते हुए और ग़दर पार्टी का प्रचार करते हुए बर्मा पहुंचे। १९१५ में सिंगापुर के विद्रोह के दमन के बाद बहुत से क्रान्तिकारी नेता बर्मा पंहुच गये थे। वे वहां विद्रोह करने की तैयारी करने लगे। विद्रोह के लिए २५ दिसम्बर १९१५ का दिन तय हुआ। इसी बीच आपको मांडले में गिरफ्तार कर लिया गया। आप पर तरह-तरह के झूठे आरोप लगाये गये। अंग्रेज सरकार को बदला लेने का मौका मिल गया। न्याय का नाटक किया गया और आपको बिना किसी पर्याप्त कारण के फांसी की सजा दे दी गयी। एक बार आप मांडले जेल से भाग निकले किन्तु फिर पकड़े गये और आपको फांसी पर लटका दिया गया। हरिनामसिंह अपने लिए नहीं, देश के लिए जीये और देश के लिए ही शहीद हुए।

मरने से पहले आपने अपनी पत्नी से आग्रह कर उसका विवाह अपने छोटे भाई से करा दिया। इस प्रकार आप रूढ़िवादी नहीं, अपितु तार्किक विचारों के पक्षधर थे। आपने ऐसा कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जिसके फलस्वरूप आप को कारावास और फांसी का दण्ड मिलता किन्तु न्याय का दम्भ भरने वाली गोरी सरकार की काली करतूतें प्रकट हुए बिना न रह सकीं। ❑❑

बर्मा विद्रोह काण्ड और उसके बलिदान

श्री सोहनलाल पाठक–सन् १९१४-१५ में 'गदर पार्टी' के प्रभाव से जब हजारों आप्रवासी भारतीय विदेशों से स्वदेश लौट रहे थे तब पाठक जी को 'गदर पार्टी' की ओर से बर्मा में क्रान्ति करने के लिए जनता को तैयार करने और क्रान्तिकारी संगठन बनाने के लिए भेजा गया। इनके साथ एक श्री हसन खां थे। क्रान्तिकारियों की योजना थी कि २१ फरवरी १९१५ को सारे भारत में जब एक साथ क्रान्ति मचे तो बर्मा भी अछूता न रहे। किन्तु एक गद्दार कृपालसिंह द्वारा पंजाब में यह राज खोल देने से यह योजना सफल नहीं हो सकी।

पाठक जी ने बर्मा पंहुचकर क्रान्ति के प्रचार का काम जोर-शोर से आरम्भ कर दिया। इस कार्य में एक देशभक्त श्री नारायणसिंह भी उनका साथ दे रहे थे। आप पहले बैंकाक और फिर रंगून आ गये। एक दिन, अगस्त १९१४ में मेमियो के तोपखाने में भारतीय सिपाहियों के सामने अंग्रेज सरकार के विरुद्ध क्रान्ति का प्रचार कर रहे थे तो आपको सेना के एक जमादार ने गिरफ्तार कर लिया। यद्यपि उस समय आपके पास तीन पिस्तौल और २७० कारतूस थे तो भी आपने उस जमादार पर यह समझकर वार नहीं किया कि भाई को भाई पर वार नहीं करना चाहिए। आप गिरफ्तार हो गये और वहीं एक दिन आपको फांसी पर लटका दिया।

सोहनलाल पाठक उस वीर का नाम है, जिसके सामने अंग्रेज़ अधिकारी ने फांसी के तख्ते पर भी यह प्रस्ताव रखा था कि 'यदि अब भी तुम माफी मांग लो तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं।' **प्रत्युत्तर में इस वीर ने कहा–'माफी, कभी नहीं। माफी तो अंग्रेजों को हमसे मांगनी चाहिए।' यह कहकर उन्होंने खुद अपने हाथ से गले में फांसी का फंदा डाला और देखते-देखते फांसी पर झूल गये।**

श्री नारायण सिंह - आपकी गिरफ्तारी के पांचवें दिन नारायणसिंह को भी गिरफ्तार कर लिया गया। दोनों पर 'बर्मा षड्यन्त्र' का केस चलाया गया। पाठक जी के साथ आपको भी वहीं फांसी पर लटका दिया।

(सम्पादक)

गदर पार्टी के अग्रणी

क्रान्तिकारी सोहनलाल पाठक

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

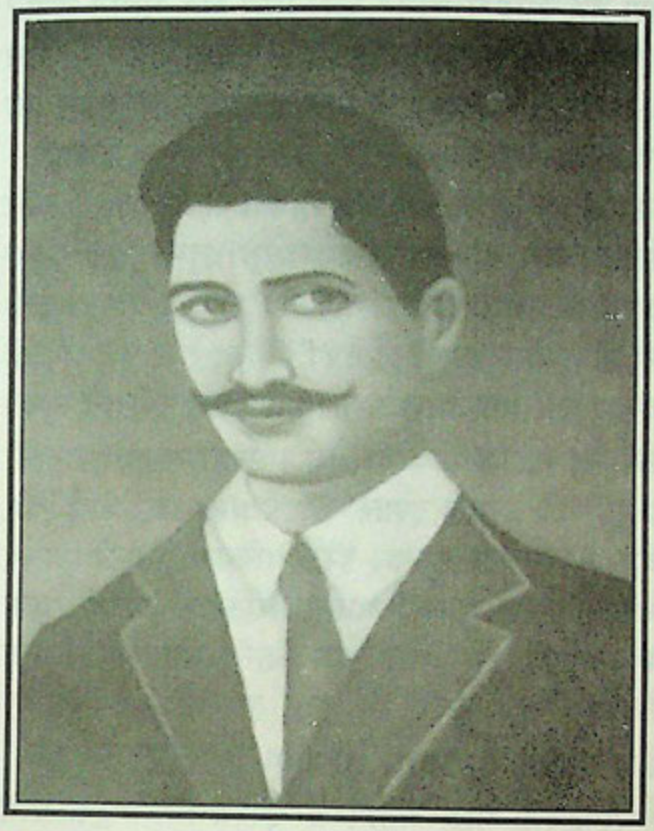

सोहनलाल सन फ्रांसिस्को से गदर पार्टी के दूत बनाकर भेजे गए थे। वह विशेषकर फौजों को क्रान्ति की वाणी सुनाने में ही लगे रहे। एक दिन जब कि वह इसी प्रकार तोपखाने की पलटन को अपनी वाणी सुना रहे थे और कह रहे थे—भाइयो! क्यों फजूल के लिए इन अंग्रेज़ों के लिए जान दोगे, यदि मरना ही है तो देश के लिए मरो। तुम्हारी भुजाओं के बल से तुम्हें आजादी मिले, यह अच्छा है या यह कि तुम अंग्रेज़ों के लिए मर जाओ यह अच्छा है?" तब एक जमादार उन्हें बैठे-बैठे ताड़ रहा था। इस जमादार पर उनकी बातों का कोई असर नहीं हो रहा था, वह तो केवल उनको पकड़वाने की फिराक में था। यह एक देशद्रोही, कृतघ्न पशु था। सिपाहियों के बीच में सोहनलाल बेखटके विचरते थे, उनसे उनको कोई डर ही क्या था? क्या उन्होंने अपना सर्वस्व अपने आदर्श के लिए अर्पण नहीं कर दिया था? फिर डर किस बात का होता? किन्तु वह जमादार और उसकी क्रूर आंखें? सोहनलाल जब बोल चुके तो सब सिपाही चले गए, किन्तु वह जमादार करीब आ गया। सोहनलाल ने सोचा कि जमादार कोई भेद की बात बताने आया है, वह बोले—"बोलो।" बड़ी देर तक दोनों एक-दूसरे को आंखों से वजन करते रहे, जमादार की आंखों में खून था, वह महापापी थर-थर कांप रहा था। एकाएक

उसने सोहनलाल के एक हाथ को पकड़ लिया और भर्राई हुई आवाज में कहा–"साहब के पास चलो।" सोहनलाल तो भारतीय क्रान्ति का सुख-स्वप्न देख रहे थे, एकाएक वह चौंक पड़े, किन्तु उन्होंने न तो हाथ छुड़ाने की कोशिश की और न भागने की। फिर वह भागते क्यों? जमादार उनसे तगड़ा जरूर था किन्तु निहत्था था। उनकी जेब में तीन ऑटोमैंटिक पिस्तौल और २७० कारतूस थे, चाहते तो उस बदमाश को उसके पाप की सजा दे देते, और उसकी लाश की छाती पर बैठकर कहते– "चलो चलें, चलते क्यों नहीं!" किन्तु सोहनलाल उस समय किसी और ही सतह पर थे। वह बोले–"क्यों तुम हमें पकड़ाओगे? तुम? जरा सोचो तो सही, तुम क्या कर रहे हो, भाई होकर भाई को पकड़ा दोगे? कैसे भाई हो? क्या गुलामी में ही तुम्हें मजा आता है?" किन्तु उस पशु प्रकृति जमादार पर कोई असर न हुआ, वह उनका हाथ पकड़कर खींचने लगा।

सोहनलाल ने इतने पर भी बांया हाथ जेब में नहीं डाला। उनकी पिस्तौल आग से भरी हुई थी उनके इशारे की प्रतीक्षा कर रही थी, किन्तु सोहनलाल ने जेब में हाथ न डाला। इस विश्वासघात से शायद उनका मन खिन्न हो गया हो, शायद वह अपनी परीक्षा ले रहे थे। एक बार उनका बांया हाथ जेब की ओर गया भी, किन्तु वह लौट आया अपने ही एक भाई को क्या मारें।

सोहनलाल गिरफ़्तार हो गए

तलाशी ली जाने पर उनके पास जहान-ए-इस्लाम की एक प्रति मिली, जिसमें हरदयाल का लेख था, कुछ फतवे थे, जिसमें मुसलमानों से अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ने को कहा गया था। बम का एक बहुत ही अच्छा नुस्खा था और गदर-पत्रिका का एक अंक था।

सोहनलाल जेल गए जरूर, किन्तु जेल के न हो सके। वहां उन्होंने जेल के किसी भी नियम को मानने से इन्कार कर दिया। जेल के अधिकारी जब जेल देखने आते थे तो वह उनसे भद्र पुरुष की भांति मिलते थे, किन्तु यह नहीं कि उनकी खुशामद करें। वह कहते थे, जब हम अंग्रेज़ी सल्तनत को ही नहीं मानते तो उनकी जेल के कानून को ही क्यों मानने लगे। जब 'बड़े साहब' आते थे वह उठकर खड़े नहीं होते थे। जब बर्मा के लाट साहब आने वाले हुए जो जेलर ने उनसे कहा कि कम से कम उनकी ताजीम में तो खड़े हो जाइएगा; किन्तु वह राजी न हुए। हां, उनका यह कायदा था कि जब कोई खड़े-खड़े उनसे बातें करता था तो वह

भी खड़े हो जाते थे। अब लाट साहब के सामने वह खड़े नजर आयें, इसके लिए जेलर ने यह जाल रचा कि वह लाट साहब से पहले स्वयं आकर खड़े-खड़े उनसे बातें करने लगा। इस प्रकार लाट साहब की इज्जत बच गई।

फाँसी या माफी

लाट साहब ने दो घंटे तक सोहनलाल से बातचीत की। **उन्होंने कहा-यदि तुम माफी मांगो तो तुम्हारी फाँसी मैं अपनी कलम से रद्द कर दूं। इस पर सोहनलाल हँसे, यह हँसी वह हँसी थी, जिसको केवल शहीद लोग ही हँस सकते हैं। वह बोले-"महाशय, यह अच्छी रही कि मैं आपसे माफी मांगू। माफी तो आपको मुझ से मांगनी चाहिए, क्योंकि जो कुछ जोरो-जुल्म है, वह तो सब आपकी ओर से हुआ है, और हो रहा है। मुल्क हमारा है, आप उस पर राज्य कर रहे हैं। उसे हम आजाद करना चाहते हैं, आप उसमें रोड़े अटकाते हैं। अब उलटा मुझ से ही माफी मांगने को कहा जा रहा है।** यह खूब रही! लाट साहब! भलेमानस और इन्साफ का तकाजा तो यह है कि आप मुझ से माफी मांगें"-क्या इस कथन में कुछ झूठ था? किन्तु न्याय की बातें साम्राज्यवाद के एक एजेण्ट को क्यों भातीं? ये बातें केवल बातें ही नहीं थीं, इन बातों को कहने के लिए कहने वालों को दाम देना पड़ा था, और वह दाम भी कैसा? अपने जीवन का दाम। वीरता की यह पराकाष्ठा थी।

यह कहा जाता है कि मामूली जल्लाद ने सोहनलाल के गले में फांसी का फन्दा डालने से इन्कार किया। उसका कहना था-मुझे गोली मार दो। मैं इस देवता के गले में फंदा नहीं डालूंगा। इससे मेरा वंश नष्ट हो जाएगा। उसे लालच दिया गया, डराया-धमकाया गया, पर वह राजी नहीं हुआ। फिर अन्य कर्मचारी से कहा गया, वे भी राजी नहीं हुए। अन्त में विलियन नामक एक ईसाई इसके लिए तैयार हुआ, पर यह कहां तक सत्य है, पता नहीं। एक जीवनी लेखक ने तो यहां तक लिख डाला कि बाद को क्रांन्तिकारियों ने उसे बाल-बच्चों के साथ मार डाला, पर इसका प्रमाण नहीं मिलता।

फाँसी के दिन

फाँसी का सब सामान तैयार था, प्लेटफार्म के भाषण का मौका नहीं था कि जोशीली बातें कही और तालियां पट-पट बज गई। मां का लाडला सोहनलाल फाँसी के तख्ते पर खड़ा था, जल्लाद एक इशारे

पर गले में रस्सी डालने को तैयार था, उसके बाद एक इशारे पर तख्ता पैर के नीचे हटाने को दूसरा व्यक्ति तैयार था, यह कोई नाटक नहीं था, एक सत्य घटना थी–निर्मम, भयानक, क्रूर सत्य। साम्राज्यवाद की सब तैयारी सम्पूर्ण थी। बाहर फौज खड़ी थी। सोहनलाल इस भीड़ में अकेला था, भारतवर्ष में यहां से एक हजार मील की दूरी पर उसका जन्म हुआ था, जन्मभर वह क्रांति की मशाल हाथ में लेकर भटकता रहा, कितने उसके साथी थे, किन्तु आज वह अकेला था। अपने स्वप्न में वह विभोर खड़ा था, क्या उसे पता था कि उसकी हत्या होने जा रही थी। शायद पता था, किन्तु उसके चेहरे पर, अरे, एक बल भी तो नहीं था।

अपने नजदीक वह शायद अमर थे, उनका सिर ऊंचा था, छाती तनी हुई थी, क्यों न होती वह एक क्रांतिकारी था। जल्लाद चारों ओर देख रहा था, यह देरी क्यों? साहब हुक्म क्यों नहीं देते। सभी लोग आश्चर्य में थे, इस दृश्य को जल्दी खत्म क्यों नहीं किया जाता? इतने में वहां जो सब से बड़े राजपुरुष थे, वह एक कदम आगे बढ़े और पुकारा–सोहनलाल!

सोहनलाल अपने स्वप्न से चौंक पड़े। बोले–'कहिए।' अब भी यदि तुम जुबान से माफी मांगो तो मुझे यह अधिकार है कि मैं फांसी रद्द कर दूं, सोचो।

सोहनलाल यों तो बड़ी शान्त प्रकृति के थे, किन्तु शहीद होने के समय ऐसी अजीब बात सुनकर उनका चेहरा तमतमा गया, आंखों से मानो खून निकलना ही चाहता था, **वह बोले–"गुस्ताख अंग्रेज़, यदि मांफी मांगनी ही है तो तुम्हें हम से माफी मांगनी चाहिए, न कि मुझे तुम से।"** इस पर अंग्रेज़ ने फिर समझाया कि व्यर्थ प्राण गंवाने से लाभ नहीं। तो वह जरा ठिठके और पूछा कि अच्छा यदि वह माफी मांगे तो क्या वह फौरन छोड़ दिये जायेंगे। इस पर उस अंग्रेज़ ने कहा कि यह अधिकार उसे प्राप्त नहीं है। तब उन्होंने झट से अपने हाथ से गले में फंदा डाल लिया। जब लोगों को ठीक तरह से होश आया तो उन्होंने देखा कि सोहनलाल फांसी पर झूल चुके हैं।

आज तक किसी क्रान्तिकारी को इस प्रकार फांसी के तख्ते पर ऐसा प्रलोभन नहीं दिया गया, सोहनलाल की शहादत का इतिहास इस दृष्टि से शहीदों में विशिष्टता रखता है।

❑❑

कैनेडा में शहीद हुए देशभक्त

इकलौते पुत्र को कौम के लिए समर्पित करने वाले

भाई भागसिंह

आजाद स्वभाव के भाई भागसिंह का जन्म जिला लाहौर के 'भिक्खीविण्ड' गांव में सन् १८७८ में हुआ था। आपके पिता सरदार नारायणसिंह थे और माता का नाम मानकुंवरी था। आपका परिवार गरीब था अत: आप गरीबों के दु:खों को समझते थे। आपने अपने जीवन में देशसेवा के साथ गरीबों या असहायों की भी तन-मन-धन से सहायता की थी।

बीस वर्ष की आयु में आप सेना में भरती हो गये। सेना का गुलामीभरा वातावरण आपको पसन्द नहीं आया। पांच साल बाद नौकरी छोड़कर चीन चले गये। वहां हांगकांग पुलिस में भरती हो गये। वहां भी आपकी नहीं बनी। वहां से शंघाई आकर नगरपालिका पुलिस में नौकरी की और फिर कैनेडा पहुंच गये। कैनेडा में इस समय भारतीयों के साथ बहुत ही भेदभाव, दुर्व्यवहार तथा अन्याय हो रहा था। कैनेडावासी भारतीयों को रहने के लिए स्थान नहीं देते थे और अत्याचार भी करते थे। वहां आपकी भेंट प्रसिद्ध देशभक्त भाई बलवन्तसिंह, भाई हरिनामसिंह, भाई सुन्दरसिंह, अर्जुनसिंह आदि से हुई। इस मित्रमण्डली ने मिलकर वहां भारतीयों के प्रति होने वाले अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठायी। **पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस समय कैनेडा में भारतीयों को मृतक का दाह संस्कार नहीं करने दिया जाता था, उनको दफनाना पड़ता था। इस मित्रमंडली ने प्रयत्न करके सर्वप्रथम दाहसंस्कार प्रारम्भ कराया।** सिख होने के नाते बैंकूवर में पहला गुरुद्वारा भी निर्मित कराया।

इस बीच कैनेडा के इमिग्रेशन विभाग (आप्रवासी विभाग) ने नये भारतीयों का प्रवेश वर्जित कर दिया। कैनेडा में रहते हुए आपको अनुभव हुआ कि गुलाम देश के वासियों के साथ सब जगह गुलामों जैसा बर्ताव होता है। कैनेडा के अन्याय-अत्याचारपूर्ण व्यवहार ने आपको समाजसेवा के साथ देशसेवा करने के लिए भी प्रेरित किया। उन दिनों भारतीय स्वतन्त्रता प्रेमियों का समाचार पत्र 'ग़दर' अमेरिका से निकलता था। आपने उसको आर्थिक और प्रचारात्मक सहयोग दिया और वह कैनेडा

में खूब प्रसारित होने लगा। अब आप पर सरकार की वक्रदृष्टि पड़ने लगी।

उधर कैनेडा सरकार भारतीयों को कैनेडा में बसने नहीं देना चाहती थी, भारत से भारतीयों से भरा कामागाटामारू जहाज कैनेडा पहुंच गया। इस जहाज वालों को जो यातनाएं सहन करनी पड़ीं उनका गत पृष्ठों में मार्मिक वर्णन है। यहां इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि कैनेडा सरकार ने इस जहाज को किसी भी बंदरगाह पर रुकने की अनुमति नहीं दी। लोगों के भूख-प्यास, बीमारी से मरने की स्थिति आ गयी। भाई भागसिंह ने मित्रों के साथ मिलकर एक नया घाट खरीदा और उस पर जहाज को खड़ा किया गया। जहाज के मालिकों का यात्रियों से यह समझौता हुआ था कि किराया और खर्च किश्तों में लिया जायेगा। कैनेडा सरकार ने फिर यह चाल चली कि जहाज के मालिक पर दबाव डालकर यह नियम लागू करवा दिया कि जो यात्री एक बार सारा खर्च देगा उसे ही जहाज से उतरने दिया जायेगा। लोगों के पास पैसा था नहीं। समस्या विकट हो गयी। आखिर भाई भागसिंह आदि ने सबका रुपया देकर जहाज का चार्टर अपने नाम लिखवा लिया। कैनेडा सरकार हाथ मलती रह गयी। उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ये समाजसेवी और देशसेवीजन गोरी सरकार की आंखों में खटकने लगे।

स्वदेश-प्रवासियों की इस समस्या को निपटाकर आप साउथ ब्रिटिश कोलम्बिया में अपने साथियों से कुछ विचार-विमर्श के लिए गये थे कि आपको हरनामसिंह और बलवन्तसिंह के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में बलवन्तसिंह और आपको छोड़ दिया। आप पुनः कैनेडा लौटकर भारतीय प्रवासियों की सेवा और भारत की स्वाधीनता के प्रचार-प्रसार के कार्य में लग गये। कैनेडा की गोरी सरकार का क्रोध आपके प्रति बढ़ता जा रहा था। **इमिग्रेशन विभाग के एक अधिकारी से एक दिन जोश में यह वाक्य निकल ही गया कि ''इसको तो गोली से उड़वाना पड़ेगा।''**

आपने इस धमकी को सुना किन्तु भयभीत नहीं हुए और सोचा कि काम करने वाले लोगों को धमकियों और संकटों का सामना तो करना ही पड़ता है।

और एक दिन यह धमकी सच हो गयी। एक दिन किसी सिख भाई का अन्तिम संस्कार कराकर, गुरुद्वारे में आकर आप गुरुग्रन्थ साहब का पाठ करने पर जब अरदास के बाद मत्था टेकने के लिए झुके तो

पीछे बैठे हुए गद्दार बेलासिंह ने आप पर पिस्तौल से गोली दाग दी। गोली पीठ में से होती हुई फेफड़े में अटक गयी। भाई वतनसिंह ने उस गद्दार को पकड़ने की कोशिश की किन्तु गोलियों की बौछार से वे वहीं मारे गये। भाई भागसिंह को अस्पताल ले जाया गया। आप्रेशन हुआ। आप्रेशन के बाद आपके इकलौते सुपुत्र जोगिन्द्रसिंह को आपसे मिलने के लिए लाया गया। आपने एक वीर के समान कहा –

''यह लड़का मेरा नहीं, अपितु कौम का है। इसे मेरे पास क्यों लाये हो ? इसे कौम के लिए दरबार को सौंप दो।''

अस्पताल में दर्शकों की भीड़ थी। आपकी दशा खराब होती जा रही थी। आपने अन्तिम समय उपस्थित लोगों के सामने कहा था –

''मेरी तो इच्छा थी कि आजादी की लड़ाई में आमने-सामने दो-चार हाथ करके प्राण देता, किन्तु भाग्य में बिस्तर पर पड़े-पड़े मरना लिखा था। अस्तु, ईश्वर की यही इच्छा थी।'' और चवालीस वर्ष की अवस्था में आप इस संसार से चल बसे।

अन्याय का नंगा खेल

गद्दार बेलासिंह को पकड़कर उस पर मुकदमे का नाटक किया गया। न्याय का दम्भ भरने वाली कैनेडा की गोरी सरकार ने खुले आम अन्याय का नंगा खेल प्रदर्शित किया। हत्यारे ने खुली अदालत में स्पष्ट शब्दों में ब्यान दिया –

''मैं सरकार का एक वफ़ादार नौकर हूं। मैंने वह हत्या इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग के अध्यक्ष के कहने पर की है।''

और·····हत्यारे को छोड़ दिया गया।

गुलाम देश के वासी होकर न्याय की इच्छा ? और वह भी गोरी सरकार से? व्यर्थ की आशा थी। आखिर वही हुआ जो गुलामों के साथ हुआ करता है !!

साथी की प्राणरक्षा के लिए शहीद होने वाले भाई वतनसिंह

गद्दार बेलासिंह ने कैनेडा इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग के षड्यन्त्र के अनुसार जब गुरुद्वारे में अरदास करते भाई भागसिंह पर गोली चलायी तो उनकी स्वाधीनता मण्डली के साथी भाई वतनसिंह उनके पास ही बैठे थे। भागसिंह पर गोली चलती देख वतनसिंह ने हत्यारे बेलासिंह को ललकारा और उसे पकड़ने के लिए दौड़े। तभी हत्यारे की एक गोली

वतनसिंह की छाती को चीरती हुई निकल गयी। किन्तु वे डरे नहीं, पीछे नहीं हटे। हत्यारे को झपटने के लिए आगे बढ़ते गये। फिर दूसरी, तीसरी करके सात गोलियों ने वतनसिंह का सीना छलनी बना दिया। आखिर हत्यारा उनकी पकड़ में तो आ गया किन्तु शरीर में शक्ति क्षीण हो जाने के कारण वह छुड़ा कर भागने में सफल हो गया। वतनसिंह गुरुद्वारे की पवित्र भूमि पर सदा के लिए सो गया। भागसिंह को अस्पताल में भरती कराया गया जहां कुछ दिन बाद उनका देहान्त हो गया। इस प्रकार कुछ ही समय में मण्डली के दो बहादुर शहीद हो गये। यह घटना जहां कैनेडा की गोरी सरकार के काले कारनामों को उजागर करती है वहां मृत्यु से न डरने वाले भारतीय देशभक्तों के बुलन्द हौंसले का भी परिचय देती है।

अपनी मण्डली के साथी की प्राणरक्षा के लिए शहीद होने वाले वतनसिंह का जन्म पटियाला राज्य के 'कुम्बड़वाल' नामक गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम भाई भगेलसिंह था। २२-२३ वर्ष की अवस्था में आप सेना में भरती हो गये। उस समय अधिकांश समय बर्मा में बीता। पांच साल बाद नौकरी छोड़ देने के बाद कुछ वर्ष घर पर बिताकर आप हांगकांग में जेल-पुलिस में भरती हो गये। वहां की नौकरी छोड़ कैनेडा में बैंकूवर नामक शहर में पहुंच गये। कोई परिचित नहीं था अतः गुरुद्वारा की जानकारी मिलने पर वहीं जाकर शरण ली। उन्हें क्या पता था कि यही गुरुद्वारा उनकी शहादत का स्थान बनेगा।

गुरुद्वारे में कुछ दिन रहने के बाद आप मुड़ीपोर्ट नामक स्थान पर लकड़ी के एक कारखाने में काम करने लगे। वहां भाई भागसिंह भी काम करते थे। वहीं ये भागसिंह के स्वाधीनता सम्बन्धी विचारों और कार्यों से प्रभावित हुए। कैनेडा में रहकर उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि गोरी सरकार के लोग भारतीयों के साथ किस प्रकार गुलामों जैसा अपमानजनक व्यवहार करते हैं, और किस प्रकार अत्याचार करते हैं। उस व्यवहार को देखकर इनके स्वाधीनता सम्बन्धी विचार और दृढ़ हो गये। सन् १९११ में आप पुनः वेंकूवर आ गये और देशभक्त भाई भागसिंह तथा भाई बलवन्तसिंह के दल के साथ मिल कर जागरूकता का कार्य करने लगे। एक तरफ आप गुरुद्वारा के प्रति समर्पित थे, साथ ही भारतीयों में स्वाधीनता के प्रति जागरूकता पैदा करने तथा विपत्ति में उनका सहयोग करने का कार्य भी करते थे। इमिग्रेशन विभाग को आप सब साथी इन्हीं कारणों से खटकते थे। उनके अत्याचारों से तंग आकर अनेक भारतीय वापस

लौट आये थे किन्तु आपने वहीं जमे रहने का ही निश्चय किया। जिस दिन आप गद्दार बेलासिंह की गोली का शिकार बने उस समय आपकी अवस्था पचास वर्ष की थी। इस शहादत ने आपका नाम भारत के आजादी के इतिहास में अंकित कर दिया।

कैनेडा में भारतीयों के प्रति घृणा का अन्त करने वाले
श्री मेवासिंह

कैनेडा की गोरी सरकार ने मन में भारतीयों के प्रति कितनी घृणा और द्वेषभाव था इसकी जानकारी भाई भागसिंह और भाई वतनसिंह के परिचय में दी जा चुकी है। कैनेडा के इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग वालों ने बेलासिंह नामक एक देशद्रोही को तैयार कर इन दोनों देशभक्तों की हत्या करवा दी। यह हत्या जान-बूझ कर बैंकूवर के गुरुद्वारे में उस समय करायी गयी जब गुरुग्रन्थ साहब का पाठ हो रहा था ताकि भारतीयों की भावनाओं को गहरी चोट लगे और वे ऐसे भयभीत हो जायें कि स्वयं को अपने धर्म-स्थानों पर भी असुरक्षित समझकर कैनेडा से भाग जायें। उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाता था, घृणापूर्ण भाषा का प्रयोग किया जाता था। गुरुद्वारे में हुई इन नेताओं की हत्याओं से भाई मेवासिंह को गहरा आघात लगा।

आघात का यह घाव तब और गहरा हो गया जब भाई भागसिंह और भाई वतनसिंह के मुकदमे में हत्यारे बेलासिंह ने यह बयान दिया कि **''मैंने ये हत्याएं इमिग्रेशन विभाग के अधिकारियों हॉपकिन्सन और रीड के कहने पर की हैं।''** इस घाव पर नमक तब छिड़क दिया गया जब हत्यारे को निर्दोष मान कर छोड़ दिया। इन अत्याचारों और अन्यायों से भाई मेवासिंह का खून खौलने लगा। मन को शान्त करने के लिए उन्होंने प्रभु-भक्ति में अधिक समय लगाना आरम्भ कर दिया किन्तु वेदना कम नहीं हुई। और एक दिन उनके मुख से पीड़ा-भरे ये शब्द निकल ही पड़े-

''यह अपमानभरा और पग-पग पर ठुकराया जाने वाला जीवन अब असह्य हो उठा है।''

इन मार्मिक शब्दों को किसी ने गम्भीरता से नहीं लिया। सुनने वालों ने सोचा होगा कि क्षणिक दु:ख में निकल गये होंगे।

मेवासिंह ने रिवाल्वर और बन्दूक चलाने का अभ्यास शुरू कर दिया। इस बात को भी किसी ने गम्भीरता से नहीं लिया, क्योंकि चारों

ओर क्रान्ति का वातावरण बनने के कारण देश-विदेश में रहने वाले अनेक भारतीय इस प्रकार का अभ्यास करने लगे थे। फिर एक दिन बाजार जाकर अपना फोटो बनवा लाये और घर लाकर रख दिया। इस बात पर भी किसी का ध्यान नहीं गया। ज्वालामुखी भीतर ही भीतर सुलग रहा था, अवसर आते ही विस्फोट होना था। किसी को कोई खबर नहीं थी।

किसी मुकदमे की तारीख थी। अदालत की कार्यवाही को देखने के लिए भाई मेवासिंह भी पंहुच गये और चुपचाप बैठ गये। उस दिन इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग के अध्यक्ष हॉपकिन्सन को बयान देना था। कार्यवाही शुरू हुई। अदालत में खामोशी थी।

'धांय.....धांय' की आवाज ने एकाएक उस खामोशी को भंग कर दिया। अचूक निशाने से हापकिन्सन धरती पर लोटते दिखायी पड़े।

अदालत में भगदड़ मच गयी। जज कुर्सी-मेजों के नीचे छिप गये। वकील और श्रोता कोई बैंचों के नीचे दुबक गया, कोई फाइल-किताबें फेंक बाहर भागा। पुलिस के सिपाही दीवार की आड़ में चिपक गये।

''घबराइये नहीं.....भागिए नहीं.....किसी पर भी गोली नहीं चलाऊंगा। मेरा लक्ष्य पूरा हो चुका है। आप निश्चिन्त होकर लौट आइये।'' ऊंची आवाज में मेवासिंह ने सबको तसल्ली दी। हॉपकिन्सन को धराशायी देखकर मेवासिंह ने रिवाल्वर जज की मेज पर रख दिया और पुलिस वालों को बुलाकर आत्म-समर्पण कर दिया। वे चाहते तो भाग सकते थे, किन्तु भागे नहीं, एक वीर की तरह वहीं डटे रहे।

गिरफ्तारी हुई। मुकदमा आरम्भ हुआ। बयान में आपसे हॉपकिन्सन को मारने का कारण पूछा तो आप खिलखिलाकर हंस पड़े और कहा कि आज मुझे वास्तविक शान्ति प्राप्त हुई है। बयान में आपने कहा कि ''मैंने हॉपकिन्सन को सोच-समझकर मारा है। मारना तो मैं दूसरे अधिकारी रीड को भी चाहता था किन्तु वह उस दिन नहीं था। इसलिए बच गया। मैंने ऐसा अपने दो देशभक्त साथियों की हत्या का, देश-धर्म के अपमान का, भारतीयों के प्रति घृणा और अत्याचार का बदला लिया है। और इस पर मैं गौरव का अनुभव करहा हूँ।''

भाई मेवासिंह को मौत की सजा सुनायी गयी। मौत की सजा सुनने के बाद वे तनिक भी दुखी नहीं हुए। **कालकोठरी में वे इतने आह्लादित रहते थे कि फांसी के दिन तक उनका तेरह पाउण्ड वजन बढ़ गया**

था। आह्लादित इसलिए कि वे पराधीन और अपमानित जीवन जीना ही नहीं चाहते थे।

हॉपकिन्सन की हत्या के बाद भारतीयों के प्रति घृणा और अपमानजनक सम्बोधन और व्यवहार समाप्त हो गये। भारतीयों की तिरस्कारपूर्ण जिन्दगी का अन्त हो गया। सम्मानपूर्ण जीवन के युग का प्रारम्भ हुआ।

जेल में एक दिन एक स्त्री-स्वर सुनायी दिया

''मैं उस वीर के दर्शन करना चाहती हूं जिसने भरी कचहरी में मेरे पति को गोली मारी है और बड़े धैर्य के साथ आत्मसमर्पण किया है।'' हॉपकिन्सन की पत्नी ने अधिकारियों के सामने इच्छा प्रकट की थी। अधिकारियों ने उसे उस वीर के दर्शन करा दिये।

निर्धारित दिवस पर भाई मेवासिंह को फांसी-घर में ले जाया गया। वे **''हरि-यश, रे मन, गाय ले, जो संगी है तेरा।''** शब्द गाते-गाते खुशी-खुशी फांसी के तख्ते पर चढ़ गये।

जेल के बाहर उस वीर के स्वागत तथा अन्तिम दर्शन के लिए कैनेडा स्थित प्रवासी भारतीयों और अंग्रेजों की भीड़ लगी हुई थी। इस भीड़ में अंग्रेज महिलाओं की भी काफी संख्या थी। भाई मेवासिंह के सम्मान में विशाल जुलूस निकाला गया। अन्तिम संस्कार के बाद एक सप्ताह तक वैंकूवर के उसी गुरुद्वारे में इनकी याद में उत्सव मनाया गया था। ❑❑

फिरोजपुर के थानेदार-हत्याकाण्ड के शहीद

पं० काशीराम

आजादी की क्रान्ति की आग में पं० काशीराम आहुति बनकर स्वाहा तो हो गये किन्तु वे गोरी सरकार के न्याय का जनाजा निकाल गये। हुआ यह कि फिरोजपुर (पंजाब) के पास क्रान्तिकारियों के साथ मुठभेड़ में एक थानेदार मारा गया। सरकार ने सात लोगों को अभियुक्त बनाया और सजा के रूप में उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। उनमें एक पं० काशीराम थे। जब असली अपराधी श्री गन्धासिंह पकड़े गये तो उन्हें फांसी की सजा सुनाते हुए जज को लिखना पड़ा-

''जो सात मनुष्य पहले फांसी पर लटकाये गये थे, वे वास्तविक अपराधी नहीं थे। असली अपराधी तो यह (गन्धासिंह) है जिसे हम आज फांसी दे रहे हैं।'' उन सात में एक पं. काशीराम थे।

तो यह था गोरी सरकार का न्याय और निर्दोष भारतीय जनता पर जुल्म !!

पं० काशीराम का जन्म अम्बाला जिले के 'मड़ौली कलां' गांव में भादों सुदी द्वादशी, सम्वत् १९३८ (सन् १८८१) में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० गंगाराम था। आप पर आजादी का दीवानापन छाया था। दस वर्ष की अवस्था में आपकी शादी हो गयी थी किन्तु इन्ट्रेन्स (१२वीं) पास करते ही आप घर छोड़कर निकल गये और देशसेवा के कार्यों में लगे रहे। उसके बाद १९१४ में कुछ समय के लिए आप घर आये थे तब तक आपके वियोग में धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था।

आपने कुछ समय, दिल्ली में नौकरी की और फिर हांगकांग होते हुए अमेरिका चले गये। वहां एक बारूद के कारखाने में नौकरी की किन्तु उसमें गुलामी की अनुभूति हुई तो उसे छोड़कर भारत आ गये। थोड़ी देर के लिए गांव पहुंचे तो आपको देखने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। आप लाहौर बैंक से पैसे निकालने का बहाना बनाकर घर और भीड़ से पीछा छुड़ाकर आ गये और क्रान्ति के कामों में लग गये। बस यही आपकी अपने घर की अन्तिम यात्रा थी।

लाहौर पंहुचने के बाद आपको साथियों के साथ किसी योजना

को क्रियान्वित करने के लिए फिरोजपुर भेजा गया। फिरोजपुर के पास एक गांव में अचानक आपके दल की पुलिस से मुठभेड़ हो गयी। दोनों ओर से चली गोली में थानेदार मारा गया। क्रान्तिदल के तेरह लोगों मे से कुछ भाग गये, सात गिरफ्तार कर लिये गये। उनमें एक पं० काशीराम भी थे। सातों को फांसी की सजा सुना दी गयी।

फांसी की सजा की प्रतीक्षा में लाहौर सेंट्रल जेल में बंद काशीराम से पिता पं० गंगाराम मिलने आये। पुत्र को कालकोठरी में बंद देख बहुत सारे उलाहने दिये, अपने और उसकी माता के बुढ़ापे की दुहाई दी। माता इनके बिछोह में पागल हुई जा रही थी। वे खूब रोये। पं० काशीराम ने निर्विकार भाव से पिता को उत्तर दिया-"**पूज्यवर, इस संसार में न कोई किसी का पुत्र है, न पिता। यह तो एक भावना मात्र है, अतः आप इन सम्बन्धों को लेकर दुखी न हों।** रही सेवा-संभाल, खाने-पीने की बात, जिस परमात्मा ने हमें उत्पन्न किया है, वह खाने को भी देगा। आप सभी भारतीयों को अपना पुत्र समझिए।" भाई को आता देखकर आपने कहा-"**खबरदार आंखों में आंसू मत लाना**। मैंने कोई पाप नहीं किया है, मैंने जो कुछ किया है देशहित के लिए किया है। इस प्रकार मरने पर मुझे देशभक्तों के चरणों में स्थान मिलेगा। इसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ।

घरवाले नहीं माने। आपकी फांसी की सजा के विरुद्ध ऊपर गवर्नर के पास अपील की। अंग्रेजों के न्याय का एक और उदाहरण देखिए-अपील पर निर्णय आने से पहले ही आपको १७ मार्च १९१५ को फांसी दे दी गयी। लाहौर जेल की सूची में एक शहीद का नाम और जुड़ गया।

श्री रहमत अली शाह

इन सात निर्दोष फांसी पाने वालों में एक श्री रहमत अली शाह भी थे जिनके बारे में जज ने कहा था कि निर्दोषों को फांसी गलती से दे दी गयी। इससे अधिक जानकारी इनके बारे में उपलब्ध नहीं है।

मैं देश के लिए फांसी पर चढ़ने ही आया हूँ

श्री गन्धासिंह

८ मार्च १९१६ का दिन था।

सुबह पांच बजे वार्डर नहाने के लिए पानी लेकर आया और उसे देते हुए गन्धासिंह से पूछा-"आपको पता है न आज आपको फांसी होनी है ?

''फांसी ? फांसी मेरे लिए कोई विशेष बात नहीं है। जिस दिन मैं अमेरिका से भारत लौटा था तो सोचकर आया था कि मुझे फांसी तो चढ़ना ही है।'' गन्धासिंह ने यह वीरतापूर्ण उत्तर बड़े साधारण ढंग से दिया।

फांसी हो चुकने पर वार्डर ने अपने दूसरे साथियों से कहा-''मैंने अपनी तीस साल की नौकरी में १२५ आदमियों को अपने हाथों फांसी के तख्ते तक पहुंचाया है। जो उत्साह और दृढ़ता मैंने गन्धासिंह में देखा वह किसी और में नहीं था।'' और यों बात करते-करते कर्मचारी रो पड़े थे।

फांसी की सजा होने के बाद गन्धासिंह को देखकर एक अंग्रेज सिपाही ने कहा था-**''गन्धासिंह बहुत खुश दिखाई देता है। ऐसा लगता है जैसे उस पर फांसी का भय नहीं, नशा छाया हो।''**

ऐसे बहादुर दिल के थे गन्धासिंह जो देश की आजादी के लिए खुशी-खुशी फांसी के तख्ते पर झूल गये।

आपका जन्म जिला लाहौर के 'कच्चरमन' गांव में हुआ था। आपका नाम भगतसिंह था किन्तु सिख धर्म की दीक्षा के बाद रामसिंह रखा गया, परन्तु आप प्रसिद्ध गन्धासिंह के नाम से ही रहे। छुटपन में आप अमेरिका चले गये थे। अमेरिका में आप गदर पार्टी के प्रमुख व्यक्तियों में से थे। भारत में क्रान्ति का वातावरण बनने पर आपको भारत लौटने का निर्देश हुआ। १९१४-१५ की क्रान्ति की योजना में आपके दल का महत्त्वपूर्ण हाथ था। आप सारे-सारे दिन घूमकर गांवों में क्रान्ति का प्रचार करते थे। सारे दिन पैदल चलकर भी थकते न थे, जैसे क्रान्ति की उमंग छाई हो।

एक दिन आप अपने दल के तेरह साथियों के साथ जिला फ़िरोजपुर (पंजाब) के 'घल खुर्द' गांव पास जा रहे थे कि पुलिस ने आ घेरा। संयोग से इस थानेदार ने आपको बचपन में पाला-पोसा था। थानेदार ने क्रान्तिदल के एक साथी को गालियां देते हुए मुंह पर तमाचा मारा। उस साथी ने इस अपमान को इसलिए चुपचाप सह लिया कि थानेदार गन्धासिंह का जानकार था। आजादी के लिए घर छोड़कर खाक छानने वाले विद्रोही को यह अपमान असह्य प्रतीत हुआ। गन्धासिंह की ओर देखकर उसकी आंखों में आंसू आ गये। गन्धासिंह ने भी अनुभव किया कि एक देशभक्त का घोर अपमान हुआ है। गन्धासिंह ने अपना रिवाल्वर ताना और थानेदार

पर गोलियां बरसा दीं। थानेदार तथा एक अन्य कर्मचारी मौत की नींद सो गये। पुलिस दल में भगदड़ मच गयी। इनका दल भी भाग-दौड़ में तितर- बितर हो गया।

एक दिन फिर पुलिस का सामना हो गया। दोनों ओर से गोली चली। क्रान्ति दल का गोला-बारूद समाप्त हो गया। कुछ लोग मारे गये, कुछ भाग निकले। बच निकलने वालों में गन्धासिंह भी एक थे। पकड़े गये सातों लोगों को फांसी पर चढ़ा दिया गया। गन्धासिंह का पुलिस पर ऐसा रौब हुआ कि पता लगने पर भी पुलिस किनारा कर लेती थी। वे घूम-घूम कर क्रान्ति के प्रचार में लगे रहे।

खन्ना के पास एक गांव में दीवान हो रहा था। वहां आपकी मुलाकात ज्ञानी नत्थासिंह नामक एक मास्टर से हुई। यह लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में नौकर था और सरकार का दलाल था। विश्वास में लेकर वह भाई गन्धासिंह को अपने साथ ले गया। रास्ते में एक स्थान पर जहां बहुत-से लोग खड़े थे, उसने आपको पीछे-से पकड़ लिया और डाकू-डाकू कहकर शोर मचा दिया। लोगों ने भी आपको पकड़ने में सहायता की। लोगों की सहायता से आपके दोनों हाथ कसकर पीछे बांध दिये और गांव में लाकर एक कोठरी में औंधे मुंह पटक कर बंद कर दिया गया। रात भर इसी प्रकार पड़ा वह तड़पता रहा। दूसरे दिन सवेरे पुलिस कप्तान ने आकर दरवाजा खोला। उस समय गन्धासिंह के दोनों हाथ सूजकर जांघ के समान मोटे हो गये थे और वह पीड़ा से व्याकुल था।

गिरफ्तार कर उस पर मुकदमा चलाया गया और फांसी की सजा हुई। गन्धासिंह बाद के उन लोगों में से था जिन्हें थानेदार हत्याकाण्ड में दूसरा मुकदमा चलाकर फांसी दी गयी। उस मुकदमे के फैसले में जज ने लिखा था कि **''पहले जिन सात लोगों को फांसी दी गयी, वे असली अपराधी नहीं थे। असली अपराधी तो ये लोग हैं।''** यह था गोरी सरकार का न्याय !!

एक विश्वासघाती सरदार भाई ने अंग्रेजों की वाह-वाही लूटने के लिए अपने भाई को फांसी चढ़वा दिया ! वह गद्दार आज कहीं नाली की गंदगी में पड़ा बिलबिला रहा होगा, परन्तु गन्धासिंह का नाम भारत के आजादी के इतिहास में अमर है।

❑❑

बब्बर अकाली दल के शहीद

श्री किशनसिंह गर्गज्ज (संस्थापक)

अंग्रेजों द्वारा पंजाब में लोगों पर किये गये जुल्मों और सिखों के साथ हुए दुर्व्यवहारों एवं अन्यायों की प्रतिक्रिया में 'बबर अकाली दल' का जन्म हुआ। उस दल के संस्थापक किशनसिंह गर्गज थे। आपका जन्म जालन्धर जिला के वारिंग नामक गांव में श्री फतेहसिंह के घर हुआ। स्कूली शिक्षा पाने के बाद आप सेना में भरती हो गये और मार्च १९२१ तक सिख रिसाले में हवलदार के पद पर रहे। जब देश में असहयोग और क्रान्ति का वातावरण बना तो आप नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। २० फरवरी १९२१ को 'ननकाना साहब' गुरुद्वारा में सिखों के साथ हुए अंग्रेजों के अपमानजनक व्यवहार से क्षुब्ध होकर आप अकाली दल के सक्रिय कार्यकर्ता बन गये और अप्रैल में मन्त्री नियुक्त हुए। आपने गुप्त क्रान्तिकारी योजनाएं बनानी शुरू कीं। अभी ठीक से योजनाओं पर काम शुरू भी नहीं हुआ था कि दो कार्यकर्त्ताओं की असावधानी से सब भेद खुल गया। छह कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हो गये किन्तु आप चार साथियों के साथ भाग निकले। कुछ दिन मालवा के जीन्द राज्य में मस्तुमना नामक स्थान पर रहने के बाद १९२१ की सर्दियों में फिर दोआब (सतलुज और व्यास के बीच का क्षेत्र) में आ गये।

दोआब में आने के बाद आपने स्वतन्त्र 'चक्रवर्ती दल' की स्थापना की। फिर यही दल अनेक कार्यकर्त्ताओं को मिलाकर 'बबर अकाली दल' कहलाया। इसमें सभी क्रान्तिकारी विचारों के देशभक्त थे। उन्होंने जहां एक ओर क्रान्ति के माध्यम से देश को आजाद कराने के लिए प्रचार किया वहीं साथ ही गद्दारों और पुलिस के भेदियों को मृत्युदण्ड भी दिया। किशनसिंह ने गांव-गांव घूमकर इस दल के अनेक केन्द्र स्थापित किये जिनमें हथियार, बम, बारूद आदि संग्रह करने की योजना बनाई थी ताकि १८५७ जैसा विप्लव किया जा सके। क्रान्तिकारी के साथ-साथ किशनसिंह अच्छे वक्ता भी थे। गिरफ्तारी तक वे ३२७ व्याख्यान विभिन्न स्थानों पर दे चुके थे। अन्ततः वे भी एक दिन पकड़े गये। उन्होंने अपने लिखित बयान में उन कारणों पर प्रकाश डाला था जिन्होंने उनको क्रान्ति का मार्ग अपनाने के लिए विवश किया था। उन्होंने लिखा था -

"जब मै फौज में नौकरी कर रहा था, तभी सरदार अजीतसिंह की नजरबंदी, दिल्ली के गुरुद्वारा रकाबगंज की दीवार तोड़े जाने, बजबज में निर्दोष यात्रियों पर गोली चलाने, रौलट एक्ट और जलियांवाला बाग की दुर्घटना और मार्शल लॉ आदि बातों के कारण मेरे हृदय में घृणा उत्पन्न हो गयी थी और अन्त में गुलामी के बोझ को और अधिक न सह सकने के कारण, मैंने सरकार की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया।"

किशनसिंह पर मुकदमा चलाया गया। उन्होंने सभी सत्य बातों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपने बयान में बड़े स्पष्ट शब्दों में जज को कहा-

"मैं सरकार का कट्टर शत्रु था और इसीलिए जिस तरह भी हो, अंग्रेजों को भारत से निकाल, बाहर करने की इच्छा से ही यह सब कुछ किया था।"

जैसा कि पहले से ही पता था, उन्हें फांसी की सजा सुनायी गयी और फिर एक दिन लाहौर सेंट्रल जेल में उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। 'बबर अकाली दल' के संस्थापक का नाम बलिदानियों की सूची में अंकित हो गया किन्तु उनका दल अभी उनके मार्ग पर चलने के लिए कटिबद्ध था। कोई भी फांसी की घटना क्रान्तिकारियों के मार्ग को रोक नहीं सकी।

"शादी जैसे घरेलू काम के लिए कौम का काम नहीं रोकना चाहता"

श्री नन्दसिंह

श्री नन्दसिंह का जन्म जिला जालन्धर के 'घुड़ियाल' गांव में श्री गंगासिंह के यहां १८३५ ईस्वी में हुआ था। आपके माता-पिता का देहान्त आपकी छोटी आयु में ही हो गया था। रावलपिंडी में आपके बड़े भाई ने आपकी देख-भाल की। पन्द्रह वर्ष की छोटी आयु में आपकी शादी हो गयी। कुछ समय तक घर पर बढ़ई का काम करने के बाद आप बसरा (इराक) चले गये। ननकाना साहब गुरुद्वारा में सिखों के साथ हुए अंग्रेजी सरकार के अत्याचारपूर्ण व्यवहार के बाद आप कौम के लिए काम करने के लक्ष्य से भारत लौट आये। 'गुरु के बाग' सम्बन्धी सत्याग्रह में आपको छह महीने की सजा हुई और जेल में खूब मार पड़ी। सजा पूरी होने के बाद फिर आप सरकार के विरुद्ध योजनाओं के

पालन में लग गये। आपके भाई ने आपसे अनुरोध किया – ''बड़े भाई का देहान्त हो चुका है। लड़के की शादी करनी है। आप फिर जेल चले गये तो शादी भी नहीं होगी। आपने अपने भाई को बड़ा ही मार्मिक उत्तर देते हुए कहा–

''भाई ! यदि बड़े भाई के बिना शादी हो सकती है तो मेरे बिना भी हो सकती है। शादी जैसे घरेलू मामलों के लिए मैं कौम का काम नहीं रोकना चाहता।'' देश के लिए इतना दीवानापन था नन्दसिंह के हृदय में।

सत्याग्रह में हुई सजा के दौरान भी जेल में पुलिस की मार पड़ने पर नन्दसिंह की विचारधारा ही बदल गयी। वे अब शान्ति का मार्ग छोड़ क्रान्तिमार्गी बन गये और 'बबर अकाली दल' में सम्मिलित हो गये। उन्होंने निर्दय पुलिस वालों की मार खाने की बजाय मारने और मरने का निश्चय किया। वे अकाली दल के गद्दारों को सजा देने के कार्यक्रम में शामिल होने लगे। 'बबर अकाली दल' में भाग लेने के बाद उन्हें गांव का सूबेदार गेंडासिंह बहुत तंग करने लगा और पुलिस को झूठी सूचना दे-देकर उन्हें फंसाने के षड्यन्त्र रचने लगा। तंग होकर आपने दल के सदस्यों के साथ मिलकर उसकी हत्या कर दी। पुलिस ने सारे गांवों को तंग करना शुरू किया, ग्यारह दिन तक पुलिस गांव को तंग करती रही। गांव को परेशानी में देख आपने पुलिस वालों से कहा– ''तुम लोग व्यर्थ गांव वालों को तंग कर रहे हो, जो कुछ किया है मैंने किया है।''

आपको गिरफ्तार करके मुकदमा चलाया गया और फांसी की सजा हुई। आपने अपने अन्तिम संदेश में गांव एवं घर वालों से कहा था–

''मैं किसी बुरी मौत नहीं मर रहा हूं। मुझे इस बात की खुशी है कि मेरे प्राण देश के काम आ रहे हैं। मैंने इमारत की नींव डाल दी। अब यह देश का फ़र्ज है कि यदि वह आजाद होना चाहता है तो उस नींव पर मकान बनाकर खड़ा करे।''

आपने यह भी कहा कि फांसी होने वाले हम सभी साथियों को एक ही चिता पर जलाना और हमारी राख को रावी नदी में प्रवाहित कर देना।

२७ फरवरी १९२६ को लाहौर सेंट्रल जेल में अन्य पांच साथियों

के साथ आपको फांसी पर लटका दिया गया। सम्बन्धी और गांव वालों ने आपकी इच्छानुसार सभी का एक स्थान पर अन्तिम संस्कार किया और राख को रावी में प्रवाहित कर दिया। देश के शरीर की मिट्टी देश की धरती में मिलकर एक हो गयी।

"मैंने जो कुछ किया, देश के भले के लिए किया"

श्री सन्ता सिंह

"मैंने जो कुछ किया है, वह देश के भले के लिए किया है। इस सरकार से मुझे न्याय की कोई आशा नहीं है। इसलिए मैं किसी भी आरोप का कोई जवाब नहीं देना चाहता।" अदालत में यह स्पष्ट घोषणा सन्तासिंह ने उस समय की थी जब उस पर अनेक हत्याओं का आरोप लगाया गया। आपको फांसी की सजा सुनाकर २७ फरवरी १९२६ को लाहौर सैंट्रल जेल में अन्य पांच-छह साथियों के साथ फांसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार अकाली आन्दोलन के एक और देशभक्त से देश वंचित हो गया।

श्री सन्तासिंह जिला लुधियाना के 'हरयों खुर्द' गांव के रहने वाले थे। आपके पिता श्री सूबासिंह थे। स्कूली शिक्षा पाने के बाद आप खालसा हाई स्कूल लुधियाना में क्लर्क रहे। फरवरी १९२० में आप सेना में भरती हो गये। २६ जनवरी १९२२ को वहां से त्यागपत्र देकर आप अकाली दल के सक्रिय कार्यकर्ता बन गये। अंग्रेज सरकार के काले कारनामों ने आपको सरकार के विरुद्ध और देश की आजादी के लिए सशस्त्र संघर्ष करने के लिए विवश कर दिया। अन्य अकाली कार्यकत्ताओं की तरह आप भी क्रान्ति का प्रचार करते और गद्दारों को सजा देते थे। कुछ ही समय में आप अकाली दल के प्रमुख नेताओं में गिने जाने लगे।

आपने जिन गद्दारों या अंग्रेज सरकार के भेदियों का सफाया करने में साथ दिया उनमें बिशनसिंह जैलदार, बूटा, मिस्त्री लाभसिंह, हजारासिंह, राला, दित्तू, सूबेदार गेंडासिंह, नौगल शमां गांव के नम्बरदार आदि थे। बबर अकाली दल के कामों में आप कितना बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे, इसका प्रमाण अदालत का वह फैसला है जिसमें जज ने कहा था -

"अकालियों के कुछ-एक कार्यों को छोड़कर इस अभियुक्त ने प्राय: सभी में भाग लिया है और इस षड्यन्त्र की आयोजना में किशनसिंह और कर्मसिंह के बाद इसी का अधिक हाथ था।"

एक विश्वासघाती सम्बन्धी के कारण आपकी गिरफ्तारी हुई थी।

जज से फांसी देने का आग्रह करने वाला साहसी किशोर

दलीप सिंह

पता नहीं कुछ लोग मां के दूध के साथ दीवानगी का कौन-सा अमृत पी कर आते हैं, जो वे न झुकते हैं, न घबराते हैं, न कष्टों से डरते हैं, न मौत का भय मानते हैं। इसी प्रकार वे अमर हो जाते हैं। ऐसे ही एक किशोर थे दलीपसिंह। सुन्दर मुखाकृति, भोला-भाला चेहरा, केवल १७ वर्ष की थोड़ी-सी आयु, किन्तु बहादुरी में बड़े-बड़े लोगों से भी आगे !

इस किशोर का जन्म सन् १९०९ ईस्वी में जिला होशियारपुर के धमियां कलां गांव में हुआ। इसके पिता का नाम लाभसिंह था। अभी यह स्कूल में पढ़ ही रहा था कि सिखों के तीर्थस्थान ननकाना साहब में अंग्रेजी सरकार द्वारा सिखों पर किये अत्याचारों के समाचार पढ़ कर इसके हृदय पर गहरी चोट पंहुची। फिर १९२३ में अकालियों पर किये जाने वाले अत्याचारों के समाचार पढ़े तो इसकी सहनशक्ति जवाब दे गयी। चौदह-पन्द्रह वर्ष की छोटी-सी अवस्था में यह घर-बार को छोड़कर अकाली दल में शामिल हो गया और अंग्रेजों के दमन के विरुद्ध योजनाओं में काम करने लगा। अकाली दल के सदस्यों ने उन अनेक गद्दारों का सफाया किया जो अंग्रेज सरकार से मिलकर देशभक्तों के साथ धोखा करते थे।

१२ अक्तूबर १९२३ को दलीपसिंह अकाली दल के सन्तासिंह के साथ 'कन्दी' नामक स्थान पर अंग्रेज-विरोधी पर्चे बांट रहे थे ! अचानक पुलिस ने आ घेरा और दोनों को गिरफ्तार करके जंजीरों से जकड़ दिया। फिर उन्हें मुलतान जेल में बंद कर दिया। पुलिस दलीपसिंह को पकड़ने के बाद बहुत खुश हुई। सोच रही थी इस बालक से अकाली दल की सारी योजनाओं की जानकारी आसानी से मिल जायेगी। बच्चा है, थोड़े-से डर से सब कुछ उगल देगा। किन्तु जब पुलिस की आशा पूरी नहीं हुई तो उसने दलीप सिंह को यातना पर यातना दी। फिर भी दलीप सिंह ने कुछ नहीं बताया। पुलिस क्रोध में दांत पीसकर रह गयी। आखिर पुलिस ने उसकी गुस्ताखी की सजा देने के लिए अन्य देशभक्त अकालियों पर चल रहे हत्या के मुकदमों के साथ दलीपसिंह को भी सम्मिलित कर लिया।

अदालत में अभियोग शुरू हुआ। मि॰ टैप सैंशन जज थे। दलीपसिंह

के बालवय और भोलेपन को देखकर उन्हें लगता कि इस बालक पर ये झूठे मुकदमे बनाये गये हैं। जो कोई गवाह दलीपसिंह पर हत्या का आरोप लगाता अथवा उसे सिद्ध करने की कोशिश करता तो जज साहब उस गवाह पर झुंझला उठते। अभियोगकर्त्ताओं के साथ दलीपसिंह को भी यह स्पष्ट हो गया कि जज साहब दया करके उसको छोड़ देना चाहते हैं। गवाहियां कई दिन चलीं। जब गवाहियां पूरी हो गयीं तब एक दिन दलीपसिंह हाथ जोड़कर जज महोदय के सामने कटघरे में खड़ा हो गया और बोला-

''आपने मुझ पर बड़ी दयादृष्टि दिखायी है। इसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं। यदि मैं आज छूट जाऊंगा तो फिर यही सब काम करूंगा। आप मुझे जीवित रखना चाहते हैं और मैं फांसी पर लटककर बलिदान देना चाहता हूं। ईश्वर की कृपा से मेरा यह देह अब तक पवित्र है। मैं इसे मातृभूमि को अर्पित करना चाहता हूँ। कौन जाने आगे जीवित रहा तो यह पवित्रता रह पाये या न रह पाये। इसलिए आप मेरा ब्यान लिख लीजिए कि पुलिस ने जो कुछ मेरे ऊपर आरोप लगाये हैं, वह सब कुछ मैंने किया है।''

जज उस बालक की ओर हैरान होकर देखता रहा। भरी अदालत में अपराधों की स्वीकृति करने के बाद जज क्या करता? उसके मन की इच्छा मन में ही रह गयी। अन्य क्रान्तिकारियों के साथ दलीपसिंह को भी फांसी की सजा हो गयी। २७ फरवरी, १९२६ को प्रातः काल सत्रह वर्ष के बालक दलीपसिंह का कोमल शरीर फांसी के फंदे पर झूल गया। सर्दियों का समय था। ओस पड़ रही थी। ओस के बहाने आकाश मानो इस बालक की नृशंस मौत पर आंसू बहा रहा था।

पाठकवृन्द ! जानते हैं, न्याय का दम्भ भरने वाली गोरी सरकार ने इस बालक पर क्या आरोप लगाये थे? आरोप थे कि यह बालक बूटा लम्बरदार, राला, दित्तू, लाभसिंह मिस्त्री, हजारासिंह, अता मुहम्मद, लाभसिंह और बिशनसिंह इन आठ लोगों की हत्या में शामिल था। चौंक गये न आप ? किन्तु चौकिए मत। यह तो अंग्रेज सरकार का रोज का काम था।

सात शत्रुओं को साथ लेकर मरने वाले
श्री धन्नासिंह

उत्साह और साहस के धनी धन्नासिंह उन लोगों में से एक हैं जो

गोरी सरकार द्वारा भारतीयों पर किये जाने वाले अत्याचारों से व्यथित होकर शान्तिमय आंदोलन को छोड़ क्रांति के आन्दोलन में सम्मिलित हो गये थे। उन्हीं दिनों 'बबर अकाली दल' की नींव पड़ी तो आप भी उसमें सम्मिलित हो गये। 'बबर अकाली दल' क्रान्ति के प्रचार के साथ उन लोगों को दण्ड देने के कार्य भी करता था जो देशभक्तों के साथ गद्दारी करके उन्हें पुलिस के जाल में फंसाते थे। अर्जुन सिंह पटवारी, रानी थाना गांव के बिशनसिंह जैलदार, बूटा नम्बरदार, मिस्त्री लाभसिंह तथा २७ मार्च १९२३ को बइबलपुर के हजारासिंह की हत्या में आप सम्मिलित थे। 'बबर अकाली दल' इन पुलिस के भेदियों की हत्या को 'सुधार' का नाम देता था। हजारासिंह की हत्या के बाद 'बबर अकाली दल' ने जो इश्तिहार लगाया था, उसमें यह लिखा गया था –

''इनाम.....आज १७ मार्च को बइबलपुर के हजारासिंह को जमीन के तीन स्क्वेयर्स दिये अर्थात् तीन गोलियां दी गयीं।''

यह अभियान चलता रहा। पुलिस और आपके दल की आंखमिचौनी होती रही। एक दिन आप ज्वालासिंह नामक परिचित व्यक्ति के पास, अकाली दल के साथी दलीपसिंह की गिरफ्तारी के बारे में जानकारी लेने गये। उसने धन्नासिंह को गन्नों के खेत में रहने के लिए कहा और जानकारी लाकर देने का विश्वास दिलाया। ज्वालासिंह ने चुपके से जाकर पुलिस सब इंस्पेक्टर गुल्जारा सिंह को धन्नासिंह का भेद दे दिया। फिर इन दोनों ने होशियारपुर जाकर पुलिस अधीक्षक हार्टेन को जानकारी दी। हार्टेन ने भेदिए ज्वालासिंह को कहा कि ''तुम जिला होशियारपुर के मननहाना गांव के कर्मसिंह के घर में धन्नासिंह को लाकर ठहरा दो।'' ज्वालासिंह धन्नासिंह को विश्वास में लेकर वहां ले आया और रात को दोनों बैलों के बाड़े में चारपाइयों पर साथ-साथ सो गये। योजना के अनुसार पुलिस के आते ही ज्वालासिंह भाग निकला। पुलिस ने उसे जाने दिया। धन्नासिंह भी उसी ओर भागने लगा तो चालीस सिपाहियों के दल ने उसे घेर लिया। हमला करने के लिए धन्नासिंह रिवाल्वर निकाल ही रहा था कि गुल्जारा सिंह ने आप पर लाठी का वार किया। उससे आप गिर गये। गिरते ही आप को पुलिस वालों ने दबोच लिया और हथकड़ी में जकड़ दिया। बाद में पता चला कि दलीप सिंह की जानकारी लेने वे ज्वालासिंह के पास गये थे उसी ने दलीपसिंह को भी पकड़वाया था। दुर्भाग्य से धन्नासिंह भी वहीं पर पहुंच गया और फंस गया।

धन्नासिंह को हथकड़ी पहनाकर बिठा दिया गया। कुछ पुलिस

वाले उसको घेरकर खड़े हो गये। दो सिपाही उसके हथकड़ी लगे हाथों को ऊपर करके पकड़े खड़े थे, एक पीछे की ओर से पकड़े हुए था। कुछ मिनट बाद मौका पाकर आपने हाथों को ऐसा झटका दिया कि हाथ नीचे आ गये और कमर के पास छिपे हुए बम पर कोहनी की ऐसी चोट दी कि बम का विस्फोट हो गया। चारों ओर भगदड़ मच गयी। धन्नासिंह के बैठने के स्थान पर रक्त, मांस और छितराये अंग बिखरे पड़े थे। धन्ना सिंह सहित पांच सिपाही उसी स्थल पर मारे गये, तीन गंभीर रूप से घायल हुए जिनमें पुलिस अधीक्षक हार्टन भी था। बाद में हार्टेन और एक अन्य सिपाही ने अस्पताल में दम तोड़ दिया। धन्नासिंह तो देश की बलिवेदी पर बलि हो गया। किन्तु मरते-मरते भी अपने साथ अत्याचारी गोरी सरकार के सात लोगों को यमलोक भेज गया। २५ अक्तूबर १९२३ का वह दिन क्रान्तिकारियों के इतिहास में एक स्मरणीय दिन बन गया।

डाकू से क्रान्तिकारी बन प्रायश्चित्त करने वाले बन्तासिंह धामियां तथा दल के साथी ज्वालासिंह, वर्यामसिंह

बबर अकाली दल आन्दोलन के क्रान्तिकारियों में बन्तासिंह धामियां का नाम अग्रणी नामों में आता है। वे 'मुण्डेर युद्ध' की घटना के मुख्य सूत्रधार थे।

बन्तासिंह धामियां का जन्म सन् १९०० के लगभग पंजाब के धामियां कलां नामक गांव में हुआ था। बचपन में आप चंचल और उद्दण्ड थे किन्तु खेलकूद में अव्वल और दौड़ में तीव्रधावक थे। युवा होने पर आप फौज में भरती हो गये और ५५ नंबर सिख पलटन में काम करते रहे। कुसंगति के कारण आप डाके डालने लगे। इसी बीच आजादी के लिए बबर अकाली आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। बबर अकालियों की देशभक्तिपूर्ण घोषणाओं से आप बहुत प्रभावित हुए और डकैती छोड़कर देशसेवा के कार्यों में लग गये। संस्कार सुधरने पर आप कहा करते थे कि 'मेरे पापों का प्रायश्चित्त तो केवल देश के लिए बलिदान देने से ही हो सकता है।' इस कारण आप मृत्यु से कभी घबराये नहीं। जान हथेली पर रखकर चलते थे। अब वे डकैती डालते भी थे तो देश सेवा और क्रान्तिकारियों के लिए।

३ मार्च १९२३ को ऐसी ही एक डकैती जमशेर नामक स्टेशन

के स्टेशन मास्टर के घर डाली। स्टेशन मास्टर की रूपवती पत्नी को देखकर आपके दल के एक व्यक्ति ने उस पर कुदृष्टि डाली। इतने में उस कमरे में धामियां भी आ गये। उन्होंने सामने स्त्री को देख बड़े सभ्य ढंग से कहा –

''माता ! अपने आभूषण उतारकर स्वयं दे दो। हम आपके शरीर को छूना नहीं चाहते।''

तब उस स्त्री ने रोते हुए व्यंग्यात्मक लहजे में कहा– ''अब इतना महात्मापन दिखाने का ढोंग कर रहे हो। तुम्हारा यह साथी तो आभूषणों के साथ मेरी इज्जत लूटने जा रहा था।'' स्त्री ने पास खड़े साथी की ओर इशारा किया।

इस घिनौनी बात को सुनकर बन्तासिंह की आंखों में खून उतर आया। क्रोध में आग–बबूला बन्तासिंह साथी की गर्दन पर गंडासा चलाने ही वाला था कि एक अन्य साथी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे रोक दिया। बन्तासिंह ने गुस्से में कहा कि 'ऐसे नीच लोगों से हमारा स्वराज्य कार्यक्रम नहीं चल सकता। ये हमें बदनाम कर देंगे। हम देशसेवा का पवित्र कार्य नहीं कर पायेंगे।' इतने बदल चुके थे बन्तासिंह धामियां।

धामियां के दल का एक लक्ष्य था–'गद्दारों का सफाया करना।' ११–१२ मार्च को ही उन्होंने नम्बरदार बूटासिंह को उसके घर में मार गिराया। वह देशसेवा के आन्दोलन को कुचलने में सरकार की विशेष सहायता करता था। क्रान्तिकारियों और देशभक्तों के भेद देता था। इस प्रकार उन्होंने कई गद्दारों को मारा। सरकार ने धामियां को पकड़ने पर बहुत बड़ा इनाम घोषित कर रखा था। कई पुलिस टुकड़ियां विशेष रूप से लगा रखी थीं किन्तु पुलिस स्वयं उसके दल से भय खाती थी। दीख जाने पर भी आखें बचा जाती थी।

एक दिन एक रोचक घटना घटी। बबर अकालियों को पकड़ने के लिए तैनात एक घुड़सवार पुलिस की टुकड़ी जंगल में इन्हें ढूंढती फिर रही थी। उनसे आमना–सामना हो गया। वे इन्हें देखकर भी आगे खिसक गये। इन्होंने अकेले ही उन्हें ललकारा। तब टुकड़ी के सरदार ने कहा–''जब हम आपको न गिरफ्तार कर रहे हैं, न आप पर आक्रमण कर रहे हैं, फिर आप क्यों हमारे साथ बलात् मुकाबला करना चाहते हैं? आप लोगों की बदौलत हमें ज्यादा वेतन–भत्ते मिल रहे हैं, हमारी कद्र हो रही है। हमें क्या जरूरत है आपको पकड़ने की।'' यह कहकर

वे आगे चल दिये। आप किसी भी संकट से नहीं घबराते थे। एक दिन एक छावनी में अकेले ही घुसकर रिसाले के पहरेदार से उसकी घोड़ी और राइफल छीन कर ले आये।

पुलिस के साथ बहुत दिनों की आंख-मिचौनी के बाद १२ दिसम्बर १९२३ को आप पुलिस के घेरे में आ गये। हुआ यह कि जालन्धर के निकटवर्ती गांव 'शाम चुराती' के जगतसिंह को पुलिस ने सन्देह के आधार पर पकड़ लिया। उसके विरुद्ध कुछ प्रमाण नहीं मिला, किन्तु उसको डरा-धमका कर पुलिस ने इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वह धामियां को गिरफ्तार करवाने में सहयोग करेगा तो उसे छोड़ दिया जायेगा। हवालात में रहकर छूटने के बाद वह सरकार को बुरा-भला कहने का नाटक करता रहा। उसने एक दिन विश्वास में लेकर बन्तासिंह धामियां और उनके निकटतम साथी ज्वालासिंह और वर्यामसिंह को 'मुण्डेर' गांव के किसी जानकार के घर टिका दिया और चुपचाप पुलिस को सूचना दे दी। कुछ घण्टे दिन रहते पुलिस ने गांव को घेर लिया। पता लगते ही तीनों साथियों ने चौबारे में घुसकर मोर्चा ले लिया। घंटों मुकाबला होता रहा किन्तु ये वश में नहीं आये। बर्बर अंग्रेज अफसर ने पम्प की सहायता से मकान पर तेल डालकर आग लगवा दी। अब तीनों आग की लपटों और मशीनगन की गोलियों में घिर गये। इस बीच पहले ज्वालासिंह को गोली लगी। खिड़की में से निकलकर भागने की कोशिश में बन्तासिंह धामियां को भी गोली लगी। वे वहीं घायल होकर गिर गये। उन्होंने वर्यामसिंह को कहा - 'भाई वर्यामसिंह ! बच सको तो तुम भाग जाओ। फिर कभी इनसे हमारा बदला लेना। यह लो रिवाल्वर एक गोली सिर या छाती में मेरे मारते जाओ। शत्रु के हाथों बंदी होकर या उनकी गोली से नहीं मरना चाहता।'

बन्तासिंह घायल पड़ा था। उसने अपनी अन्तिम इच्छा भी अपने साथी को बतला दी। किन्तु कितना कठिन था एक साथी को गोली मारना? न जाने कितने लोगों का पल झपकते वध करने वाले वर्यामसिंह के हाथ कांप रहे थे बन्तासिंह को गोली मारने के नाम पर ! आखिर उसकी हिम्मत नही हुई उसने रिवाल्वर भरकर बन्तासिंह के हाथ में देकर विदा लेते हुए कहा- 'लो यह रिवाल्वर, जो चाहे करना। मैं अपने प्यारे साथी पर गोली नहीं चला सकता।' और वह बन्तासिंह को एक बार छाती से लगाकर विदा हो घेरे में निकल भागा। एक-दो पुलिस

वालों ने वर्यामसिंह को रोकने की कोशिश की किन्तु रिवाल्वर से उन्हें घायल करते हुए वह निकल भागा। पीछा करने की हिम्मत पुलिस में नहीं हुई।

उधर मकान धू-धू कर जलने लगा। बीच-बीच में गोलियों की आवाज भी आती थी। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनकी मृत्यु स्वयं की गोली से हुई अथवा आग में भस्म होने से। किन्तु इस आग में दो देशभक्त सदा के लिए स्वाहा हो गये। बलिदान के समय बन्तासिंह धामियां की आयु केवल २३ वर्ष की थी। यह घटना आजादी के इतिहास में 'मुण्डेर युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

शहीद वर्यामसिंह

बन्तासिंह धामिया के परिचय में पाठकों को वर्यामसिंह के कार्यों की जानकारी दी जा चुकी है। वर्यामसिंह 'बब्बर अकाली आन्दोलन' में सम्मिलित होकर बन्तासिंह धामियां के दल के सदस्य बन गये थे। आपका जन्म जिला होशियारपुर (पंजाब) के गांव 'घुग्गा' में सन् १८९२-९३ के लगभग हुआ था। आपका शरीर शक्तिशाली, सुदृढ़ एवं सुगठित था। फौज में भरती होकर कई वर्षों तक वहां नौकरी की। घरेलू शत्रुता ने वर्यामसिंह को डकैती, हत्या आदि के गलत रास्ते की ओर धकेल दिया। फौज में नौकरी के दौरान एक दिन ये शाम को हाजरी होने के घरेलू शत्रुता का बदला लेने के लिए चोरी से भाग निकले। बीस मील तक भागे हुए गये और उस व्यक्ति की हत्या कर रात को ही वापस लौट आये। सुबह की हाजरी में उपस्थित हो गये। इस मुकदमे में तो आपका कुछ नहीं बिगड़ा किन्तु गलत संस्कारों के उभरने पर वर्यामसिंह डाकू बन गये और दोआबा क्षेत्र के प्रसिद्ध डाकुओं में गिने जाने लगे।

'बब्बर अकाली जत्था' की स्थापना होने पर आप भी डकैती को छोड़कर देशसेवा के काम में लग गये और बन्तासिंह धामियां के साथ मिलकर काम करने लगे। १२ दिसम्बर १९२३ को 'मुंडेर' गांव में पुलिस द्वारा घिरने और फिर मकान में आग लगाये जाने के बाद केवल आप ही बचकर भाग सके थे। आपके दो साथी बन्तासिंह और ज्वालासिंह का वहीं शरीरान्त हो गया।

वहां से भागकर आप जिला लायलपुर में चले गये और एक सम्बन्धी के घर रुक गये। उसी सम्बंधी ने बचपन से आपका पालन-पोषण किया था। किन्तु अब स्वार्थ ने उसको पशुता से भी नीचे गिरा दिया था। एक

दिन वर्यामसिंह से उसने कहा कि 'अपने हथियारों को खेतों में छिपाकर रखदो जिससे किसी को सन्देह न हो।' वर्यामसिंह ने वैसा ही किया। सम्बन्धी वर्यामसिंह को घर ले आया और भोजन आदि कराया। भोजन करने के बाद वर्याम ने कहा –'अब मैं खेतों में ही जा रहा हूं। हथियार साथ न होने से मन को तसल्ली नहीं हो रही है। इस बीच उसके सम्बन्धी की सूचना पर पुलिस और सेना ने गांव को घेर लिया था। पुलिस सुपरिंटेंडेंट डी. गेल था जो सेना में अधिकारी रह चुका था। वह अनुभवी भी था और शक्तिशाली भी। उसका विचार वर्यामसिंह को जीवित पकड़ कर फांसी पर लटकाने का था। वर्यामसिंह फांसी पर नहीं अपितु लड़ते हुए मरना चाहता था। वह घर से निकलकर खेतों की ओर चल दिया। कुछ दूर चलने पर वह जान गया कि गांव को पुलिस और सेना ने घेर रखा था। वह एक स्थान पर आड़ लेकर खड़ा होकर सोचने लगा कि 'इस हालत में क्या किया जाये ?' इतने में डी. गेल की आवाज सुनाई पड़ी – 'वर्यामसिंह, तुम घिर गये हो। आत्मसमर्पण कर दो।'

एक बार हथियार लेने दो। हिम्मत है तो फिर मुकाबला करके दिखाना। इस प्रकार वर्यामसिंह ने भी उत्तर में ललकारा।

८ जून १९२५ की अंधेरी रात थी। डी. गेल ने चुपके से पीछे से आकर वर्यामसिंह के दोनों हाथों को पकड़ लिया। वर्यामसिंह ने जैसे तैसे एक हाथ छुड़ाकर कृपाण निकाली और गेल के हाथों व बाजुओं पर वार करके उसे घायल कर दिया। घायल गेल उसे छोड़कर एक तरफ हट गया। कुछ सिपाहियों ने आगे बढ़कर उसे पकड़ना चाहा किन्तु कृपाण उठाये उसके उग्र रूप को देखकर वे पास नहीं आये। डी. गेल ने जीवित पकड़ने की योजना सफल न होते देख सिपाहियों को गोली चलाने का आदेश दिया। कुछ ही क्षणों में उसका शरीर गोलियों से छलनी होकर धरती पर जा गिरा। एक देशभक्त के रक्त से पंजाब की धरती फिर एक बार रंजित हो गई। वर्यामसिंह के शव को लायलपुर लाया गया। उसके अन्तिम संस्कार में हजारों नर-नारियों ने सम्मिलित होकर उसको श्रद्धापूर्ण अन्तिम विदाई दी। 'मुण्डेर युद्ध' का बचा हुआ यह अकाली सैनिक एक गद्दार के कारण शहीद हो गया।

❑❑

बोमेली युद्ध के चार शहीद

१. श्री कर्मसिंह　　२. श्री उदयसिंह
३. श्री बिशन सिंह　　४. श्री महेन्द्रसिंह

ये चारों बबर अकाली आन्दोलन के वे क्रान्तिकारी थे जिन्होंने देश और विदेशों में भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के अपमानजनक व्यवहार और अत्याचारों से विक्षुब्ध होकर असहयोग आन्दोलन का मार्ग छोड़कर क्रान्ति का मार्ग अपनाया। इन्हें यह निश्चय हो गया था कि निर्दोष लोगों तक को यातनाएं देकर मारने वाली गोरी सरकार भय के बिना शासन नहीं सौंपेगी। उनकी सोच बिल्कुल सही थी। यदि क्रान्तिकारियों का भय और आजाद हिन्द सेना का दबाव न बनता तो केवल असहयोग आन्दोलन के द्वारा आजादी प्राप्त करना संभव नहीं था।

उक्त चारों में कर्मसिंह दौलतपुर के, उदयसिंह रामगढ़ झुगियां के, बिशनसिंह मंगत के और महेंद्रसिंह 'पिंडोरी गंगासिंह' गांव के रहने वाले थे। कर्मसिंह और उदयसिंह 'बबर अकाली दल' के मुख्य कार्यकर्ताओं में गिने जाते थे। चारों ही बहादुर, साहसी और देशप्रेम के दीवाने थे। आप सब गांव-गांव घूम कर लोगों में व्याख्यान देते थे और उन्हें समझाते थे कि एक विदेशी सरकार जो हम पर जुल्म ढा रही है उसका कारण हमारी कायरता है। जब तक हम गुलामी को उखाड़ नहीं फैंकते तब तक हम यों ही ठोकरें खाते रहेंगे। इनके खिलाफ गिरफ्तारी के वारंट जारी हो गये। फिर सब भूमिगत होकर कार्य करने लगे।

कर्मसिंह 'बबर अकाली' नामक समाचार पत्र के सम्पादक भी थे, अच्छे वक्ता भी थे और विश्वासघातियों को दण्ड देने में कठोर भी थे। आपका कहना था कि 'मैं एक बार दुश्मन को तो छोड़ सकता हूं किन्तु अपने देश के गद्दारों को क्षमा नहीं कर सकता।' यही कारण था कि आपने क्रान्ति के प्रचार के साथ-साथ गद्दारों को भी सजाएं दी। इन लोगों ने अपराध कम होने पर किसी को केवल सम्पत्ति छीनकर छोड़ दिया तो किसी को अधिक अपराध करने पर मौत के घाट उतारा। १४ फरवरी १९२३ को हैयतपुर के दीवान को मारा क्योंकि वह 'बबर अकालियों' की गुप्तचरी कर सरकार को भेद देता था। २० मार्च १९२३ को इसी गद्दारी के कारण बइबलपुर गांव के हजारासिंह को मार गिराया। इनके भय से गद्दारी कम होने लगी, तो सरकार को सूचनाएं कम उपलब्ध

होने लगी। सरकार की चिन्ता बढ़ गई। सरकार ने इन देशभक्तों की गिरफ्तारी पर इनाम घोषित कर दिया। फिर भी गिरफ्तारी न होने पर इनाम की राशि और बढ़ा दिया, किन्तु वे आसानी से पकड़ में नहीं आये।

१ सितम्बर १९२३ का दिन क्रान्तिकारियों के लिए दुर्भाग्य लेकर आया। उस दिन ये चारों जिला कपूरथला के बोमेली गांव के पास थे। किसी गद्दार ने इसकी सूचना पुलिस अधीक्षक स्मिथ को दे दी। स्मिथ ने कुछ पैदल और कुछ घुड़सवार सैनिकों को लेकर उन्हें सामने की ओर से घेरा और पीछे की ओर से घेरने के लिए सब इंस्पेक्टर फतेह खां को पचास सैनिक देकर भेजा। स्मिथ को पीछा करता जानकर इन्होंने पास के चौंता साहब के गुरुद्वारे में शरण लेने का विचार बनाया। यह सोचकर पीछे हटने लगे। दोनों ओर से गोलियों की बौछार हो रही थी। गुरुद्वारे के चारों ओर एक नाला था। मुकाबला करते हुए ये उस नाले तक पहुंच गये। वहां पहुंचते ही दूसरी ओर छिपे फतेह खां के सैनिकों ने गोली चलाना शुरू कर दिया। ये चारों वीर अब दो सेनाओं के बीच फंस गये थे। फिर भी जब तक वश चला, खूब मुकाबला किया। सामना करते हुए उदयसिंह और महेंद्रसिंह को गोली लगी और वे पानी में ही लुढ़क गये।

कर्मसिंह किसी तरह गोलियों से बचते हुए नाला पार कर गये। दूसरे किनारे की आड़ लेकर फतेह खां के सैनिकों पर गोली चलाने लगे। फतेह खां ने दूर से पुकारकर कहा –''आत्म समर्पण कर दो।'

''नहीं !!'' एक जोरदार आवाज में कर्मसिंह ने उत्तर दिया और साथ ही एक गोली भी दागी। दुर्भाग्य से वह फतेह खां का निशाना चूक कंर निकल गयी। तभी दूसरी ओर से फतेह खां ने गोली चलायी जो वीर कर्मसिंह के माथे में लगी और वह भी निष्प्राण होकर नाले के पानी में लुढ़क गया।

इधर चौथा साथी बिशनसिंह अवसर पाकर नरकुल घास की झाड़ियों में छिप गया। दो सिपाहियों को उसको ढूंढने के लिए भेजा गया। एक झाड़ी में हलचल देखकर वे सिपाही उसे देखने के लिए पास पहुंचे। पास आते ही बिशनसिंह 'सत् श्री अकाल' कहकर तलवार लेकर उन पर झपटा। एक वार से एक सिपाही घायल हो गया लेकिन दूसरा बच निकला। बिशनसिंह ने नाला पार करके जाने की कोशिश की किन्तु उस सिपाही ने पीछे से गोली चला दी जो बिशनसिंह को लगी और वह भी अपने तीन साथियों की तरह नाले में लुढ़क गया। इस प्रकार चार देशभक्त वीरों की तरह सामना करते हुए बलिदान हो गये। ❑❑

मैनपुरी काण्ड के अग्रणी शहीद

पं० गेंदालाल दीक्षित

(क्रान्तिकारी पं० रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित)

आपका जन्म यमुना तट पर वटेश्वर के निकट मई ग्राम में हुआ था। आपने मैट्रिकुलेशन (दसवां) दर्जा अंग्रेजी का पास किया था। आप जब औरैया जिला इटावा में डी० ए० वी० स्कूल के टीचर थे, तब आपने शिवाजी समिति की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था, शिवा जी की भांति दल बनाकर लूटमार करवाना। उसमें से चौथ लेकर हथियार खरीदना और उस दल में बांटना। इसी की सफलता के लिए आप रियासत से हथियार ला रहे थे, जो कुछ नवयुवकों की असावधानी के कारण आगरा में स्टेशन के निकट पकड़ लिये गये थे। आप बड़े वीर तथा उत्साही थे। शान्त बैठना जानते ही न थे। नवयुवकों को सदैव कुछ न कुछ उपदेश देते रहते थे। एक-एक सप्ताह तक बूट तथा वर्दी न उतारते थे। जब आप ब्रह्मचारी जी के पास सहायता लेने गये तो दुर्भाग्यवश गिरफ्तार कर लिए गये। ब्रह्मचारी के दल ने अंग्रेज़ी राज्य में कई डाके डाले थे। डाके डालकर ये लोग चम्बल के बीहड़ों में छिप जाते थे। सरकारी राज्य की ओर से ग्वालियर महाराज को लिखा गया। इस दल को पकड़ने का प्रबन्ध किया गया। सरकार ने तो हिन्दुस्तानी फौज भी भेजी थी। जो आगरा जिले में चम्बल के किनारे बहुत दिनों तक पड़ी रही। पुलिस सवार तैनात किये, फिर भी ये लोग भयभीत न हुए। विश्वासघात से पकड़े गये। इन्हीं में का एक आदमी पुलिस ने मिला लिया। डाका डालने के लिए दूर एक स्थान निश्चय किया गया, जहां तक जाने के लिए एक पड़ाव देना पड़ता था। चलते-चलते सब थक गए। पड़ाव दिया गया। जो आदमी पुलिस से मिला हुआ था, उसे भोजन लाने को कहा, क्योंकि उसके किसी सम्बन्धी का मकान निकट था। वह पूरी बनवाकर लाया। सब पूरी खाने लगे। ब्रह्मचारी जी जो सदैव अपने हाथ से बनाकर भोजन करते थे या आलू अथवा घुइयां भूनकर खा लेते थे, उन्होंने भी उस दिन पूरी खाना स्वीकार किया। सब भूखे तो थे ही, खाने लगे। ब्रह्मचारी जी ने भी एक पूरी खाई। उनकी जबान ऐंठने लगी जो अधिक खा गये थे वे गिर गये। पूरी लाने वाला पानी लाने के बहाने चल दिया। पूरियों में विष मिला हुआ था। ब्रह्मचारी जी ने पूरी लाने वाले पर गोली चलाई। ब्रह्मचारी की गोली का चलना था, कि चारों ओर से गोली चलने लगी। पुलिस छिपी हुई थी गोली चलने से ब्रह्मचारी जी के कई गोलियां

लगी। तमाम शरीर घायल हो गया। प० गेंदालाल जी की आंख में छर्रा लग गया। बाईं आंख जाती रही। कुछ आदमी जहर के कारण मरे, कुछ गोली से मारे गये। सब पकड़ करके ग्वालियर के किले में बन्द कर दिये गए। किले में हम लोग पण्डित जी से मिले, तब चिट्ठी भेजकर उन्होंने हम को सब हाल बताया। एक दिन किले में हम लोगों पर भी सन्देह हो गया था। बड़ी कठिनता से एक अधिकारी की सहायता से हम लोग निकल सके।

जब मैनपुरी षड्यन्त्र का अभियोग चला, पण्डित गेंदालाल जी को सरकार ने ग्वालियर राज्य से मंगवाया। ग्वालियर के किले का जलवायु बड़ा हानिकारक था। पण्डित जी को क्षय रोग हो गया था। मैनपुरी स्टेशन से जेल जाते समय ग्यारह वार रास्ते में बैठकर जेल पहुंचे। पुलिस ने जब हाल पूछा तो उन्होंने कहा-"बालकों को क्यों गिरफ्तार किया है? मैं हाल बताऊंगा।" पुलिस को विश्वास हो गया। आपको जेल से निकाल कर दूसरे सरकारी गवाहों के निकट रख दिया। वहां पर सब विवरण जान, रात्रि के समय एक और सरकारी गवाह को लेकर पण्डित जी भाग खड़े हुए। भागकर एक गांव में एक कोठरी में ठहरे। साथी कुछ काम के लिए बाजार गया हुआ था और फिर लौट कर न आया। बाहर से कोठरी की जंजीर बन्द कर गया था। पण्डित जी उसी कोठरी में तीन दिन बिना अन्न जल बन्द रहे। समझे कि साथी किसी आपत्ति में फंस गया होगा। अन्त में किसी प्रकार जंजीर खुलवाई। रुपये वह सब साथ ही ले गया था। पास एक पैसा भी न था। कोटा से पैदल आगरा आये। किसी प्रकार अपने घर पहुंचे। बहुत बीमार थे। पिता ने यह समझकर कि घरवालों पर आपत्ति न आए, पुलिस को सूचना देनी चाही। पंडितजी ने पिता से बड़ी विनय-प्रार्थना की और दो तीन दिन में घर छोड़ दिया। हम लोगों की बहुत खोज की। किसी का कुछ पता न पा दिल्ली में एक प्याऊ पर पानी पिलाने की नौकरी कर ली। अवस्था दिनों दिन बिगड़ रही थी, रोग भीषण रूप धारण कर रहा था, छोटे भाई तथा पत्नी को बुलाया। भाई किंकर्तव्यविमूढ़। वह क्या कर सकता था? सरकारी हस्पताल में भर्ती कराने ले गया। पण्डित जी की धर्मपत्नी को दूसरे स्थान पर भेजकर जब वह हस्पताल आया तो जो देखा उसे लिखते हुए लेखनी कम्पायमान होती है। पण्डित जी शरीर त्याग चुके थे। केवल उनका मृत शरीर मात्र ही पड़ा हुआ था। स्वदेश की कार्य सिद्धि में पं० गेंदालाल दीक्षित ने जिस नि:सहाय अवस्था में अन्तिम बलिदान दिया उसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। पण्डित जी की प्रबल इच्छा थी कि उनकी मृत्यु गोली लग कर हो। भारतवर्ष की एक महान् आत्मा विलीन हो गई और देश में किसी ने जाना भी नहीं।..... (रामप्रसाद बिस्मिल की 'आत्मकथा' से)

❑❑

लाहौर का पहला मुकद्दमा

पूर्व वर्णित अत्याचारों की प्रतिक्रिया में जब देश में क्रान्ति का शंखनाद हुआ तो उसमें पंजाब का विशेष योगदान रहा। पंजाब में देशभक्तों की धर-पकड़ हुई और उन पर तरह-तरह के मिथ्या अभियोग लगाये गये। लाहौर में ६१ लोगों पर पहला मुकदमा चलाया गया जिसे अंग्रेज सरकार ने **'पहला लाहौर षड्यन्त्र केस'** कहा है। इस मुकदमे में ४०४ गवाह सरकार की ओर से पेश किये गये जबकि २२८ गवाह अभियुक्तों ने सफाई में पेश किये। अंग्रेज जज पुलिस की इच्छानुसार निर्णय देते थे। २३ सितम्बर १९१६ को इस मुकदमे का निर्णय सुनाया गया। इसमें करतारसिंह, विष्णु गणेश पिंगले, भाई परमानन्द, जगतसिंह, पृथ्वीसिंह, मानसिंह, पं. परमानन्द (झांसी वाले) आदि में से २४ देशभक्तों को फांसी की सजा सुनायी गयी, बहुतों को काला पानी का आजीवन कारावास हुआ और कुछ को कम सजाएं हुईं। कुछ की सजाएं बाद में कम कर दी गयीं। फांसी की सजा प्राप्त लोगों को १९१५-१६ में लाहौर सैंट्रल जेल में फांसी पर लटका दिया गया। **(सम्पादक)**

श्री करतारसिंह

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

पंजाब ने यों तो भारतवर्ष के इतिहास को बहुत से वीर दिए हैं, किन्तु जिस युग का जिक्र हम कर रहे है उस युग में देश के लिए सिर देने वाले सरदारों में शायद करतारसिंह सब से कम उम्र के थे इसलिए हम उनकी जीवनी की कुछ विस्तृत आलोचना करेंगे। करतारसिंह का जन्म १८६६ ई॰ में पंजाब प्रांत के लुधियाना जिले के सरावा नामक गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार मंगलसिह था, लड़कपन में ही करतारसिंह को पितृवियोग हुआ। करतार के अभिभावक उनके दादा ही थे। उन्होंने बचपन से ही उनका पालन-पोषण किया तथा शिक्षा आदि दी। लुधियाना के खालसा हाई स्कूल में वे भर्ती कराए गए, किन्तु वे स्वभाव के ऊधमी थे। पढ़ने-लिखने में उनका मन न लगता था। वे खेलों तथा ऊधम में सब से आगे रहते थे। वे एक तरह से लड़कों के स्वाभाविक नेता थे। करतार की स्कूली शिक्षा अभी पूर्ण भी नहीं हुई थी कि वे उड़ीसा चले गये। वहीं उन्होंने एण्ट्रेस पास किया और उनकी

रुचि राजनैतिक साहित्य की ओर मुड़ी। दिल में विपत्तियों में कूद पड़ने की लालसा तो थी ही तिस पर उन दिनों सैकड़ों पंजाबी समुद्र लांघकर अमेरिका जा रहे थे। करतार को भी सूझा कि वे भी ऐसा क्यों न करें। बस उन्होंने अपने दादा से कहा। दादा भी राजी हो गए। करतारसिंह अमेरिका पहुंच गए।

करतारसिंह ने अमेरिका जाकर देखा कि पश्चिम के लोग यों तो हर वक्त आजादी, भ्रातृत्व आदि शब्द अपने मुँह में रखते हैं, किन्तु भारतीयों से घृणा करते हैं। उन्होंने गहराई से सोचा तो समझ गए कि भारतीयों से ये लोग जो घृणा करते हैं, इसकी वजह है कि भारतवासी गुलाम हैं। इस प्रकार बड़ी अच्छी माली हालत होने पर भी गुलामी की ग्लानि उन पर हमेशा रहने लगी वे अपने साथी भारतीयों से सदा इस बात की आलोचना किया करते कि गुलामी कैसे दूर हो। सच बात यह है कि वे कुछ करने के लिए छटपटाने लगे, किन्तु ऐसा कोई रास्ता ही नहीं मालूम होता था। इतने में पंजाब से निकाले हुए श्री भगवानसिंह आ पहुँचे। एक तजुर्बेकार व्यक्ति के आ जाने से सब काम चमक गया, और अमेरिका के भारतवासियों में जोरों से काम होने लगा। दल की ओर से एक अख़बार 'गदर' निकाला जाने लगा। करतारसिंह इसके सम्पादकों में थे। 'गदर' अख़बार के सम्पादक के माने केवल सम्पादक नहीं था, बल्कि सम्पादक खुद ही कम्पोज करते, मशीन चलाते, छापते और बेचते थे। करतारसिंह इस अखबार पर मेहनत करते कभी अघाते नहीं थे, बराबर हंसते और गीत गाते थे। करतारसिंह ने इस प्रकार छापने का काम तो सीख ही लिया, साथ ही अलग से जहाज के भी सारे काम सीखे।

जब महायुद्ध छिड़ा तो करतारसिंह ने कहा—अब विदेश में रहने का कोई अर्थ नहीं होता, यही तो मौका है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद इस वक्त एक मुसीबत की गिरफ्त में है। देश में क्रान्ति की तैयारी होनी चाहिए। उस जमाने में देश में लौटना खतरे से खाली नहीं था। जो आता था, वही करीब-करीब भारत रक्षा कानून में गिरफ्तार कर लिया जाता था, किन्तु करतारसिंह किसी तरह बचकर भारत की भूमि पर पहुँच गए। उस दिन से करतारसिंह के लिए बैठना हराम हो गया। वे सारे देश का दौरा करने लगे। याद रहे कि इस समय करतारसिंह की उम्र केवल अठारह साल की थी। करतारसिंह रासबिहारी से बनारस में मिले। रासबिहारी ने उनसे कहा—'जाओ पंजाब को तैयार करो इधर हम तैयार हो रहे हैं।' करतार पंजाब चले गए और वहां के संगठन को मजबूत बनाने लगे।

शस्त्र इकट्ठे होने लगे, दल की नई-नई शाखाएं खोली जाने लगीं, धन एकत्र करने के लिए डाके डाले गए।

२१ फरवरी १९१५ का दिन सारे भारत में क्रान्ति के लिए मुकर्रर था। करतारसिंह इसके पहले ही लाहौर छावनी मेगजीन पर हमला करने वाले थे। एक सिपाही उनसे मिल गया था। इसने वादा किया था कि समय उपस्थित होने पर वह उन्हें मेगजीन की कुंजी दे देगा। किन्तु करतार जब वहां दल बल सहित पहुँचे तो मालूम हुआ कि वह सिपाही एक दिन पहले बदल गया। किन्तु इस प्रकार निराश होने पर उनका दिल नहीं टूटा। वे पिंग्ले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों की गश्त करने निकल पड़े। छावनियों में कमेंटियाँ बन गई थीं। २१ फरवरी को विद्रोह होना निश्चित था, इसी बीच में दल के ही एक व्यक्ति कृपालसिंह ने सारा रहस्य खोलकर सरकार के सामने रख दिया। ब्रिटिश सरकार कुछ इस प्रकार की बातों के अस्तित्व का मन ही मन अनुमान लगा रही थी। इतने में यह भांडाफोड़ हो गया। बस फिर क्या था, दमन चक्र बड़ा जोरों से चलने लगा, गिरफ्तारियों की धूम मच गई, पुलिस का राज्य हो गया। जहां-जहां छावनियों में शक था कि वहां फौजी विद्रोह में भाग लेंगे, वहां सारी फौज के शस्त्र ही छीन लिये गए। इन सब बातों से इतनी गड़बड़ी फैल गई कि भगदड़ मच गई, काम कौन करता?

करतारसिंह को भी लोगों ने भागने की सलाह दी। वे भागने के अलावा करते ही क्या? उस समय काम कुछ हो नहीं रहा था। कृपालसिंह की कृपा के कारण लोग इस प्रकार डर चुके थे कि कोई किसी की सुनने को तैयार न था। इस हालत में करतारसिंह भी दो साथियों सहित ब्रिटिश भारत के बाहर पहुंचे। अब उन पर कोई विपत्ति नहीं थी, न आ सकती थी, क्योंकि उनका पता किसी को भी नहीं मालूम था, किन्तु इस प्रकार इतने ही से उनके मन को शान्ति नहीं मिली। वे भावुक तो थे ही, उन्होंने सोचा इस प्रकार भागने से क्या हासिल होगा? जब एक साथ लड़े तो एक साथ विपत्ति का सामना भी करेंगे। बस उन्होंने अपनी यात्रा की दिशा बदल दी। ऐसी जगह पर आते ही जहां लोग उन्हें जानते थे, वे गिरफ्तार कर लिए गए और जेल पहुंचाए गए। इस प्रकार निश्चित गिरफ्तारी में अपने को झोंक देना बेवकूफी भले ही हो, किन्तु इसमें जो बहादुरी है, इसकी हम तारीफ किए बिना रह नहीं सकते।

जेल में भी वह चिर विद्रोही चुप न रह सका। वहां उसने सब

साथियों को इस बात पर राजी कर लिया कि जेल से भाग चला जाये और बाहर चलकर लाहौर छावनी मेगजीन पर कब्जा कर लिया जाए। फिर क्या है लड़ाई छेड़ दी जाए। करतारसिंह की यह योजना भी सफल न हो सकी। भेद खुल गया और सब को बेड़ियां पड़ गई। कहा जाता है कि करतारसिंह की सुराही के नीचे जमीन में सब औजार बरामद हो गए।

करतारसिंह ने अदालत में अपने से सम्बन्ध रखने वाली सब बातों को स्वीकार किया। वीर करतार की यह समझ ही में नहीं आ रहा था कि आखिर इन बातों को करके उसने कौन-सा बुरा काम किया। उसे न तो यह पता था और न इसकी कोई परवाह थी कि उसका मुकदमा बिगड़ जाएगा। सच बात तो यह है वह मुकदमे में विश्वास ही नहीं रखता था। उसने सब बातें कबूल करने के अनन्तर यह कहा **'मैं जानता हूं, मैंने जिन बातों को कबूल किया है उनके दो ही नतीजे हो सकते हैं कालापानी या फांसी। इन दो बातों में मैं फाँसी को ही तरजीह दूंगा क्योंकि उसके बाद फिर नया शरीर पाकर मैं अपने देश की सेवा कर सकूंगा। यदि मैं भाग्यवश अगले जन्म में स्त्री ही होऊँ तो मैं अपनी कोख से विद्रोही सन्तान को पैदा करूंगा।'**

करतार की बातें सच थीं। जज ने उसे फांसी की सजा दी। फांसी घर में उसका वजन दस पौण्ड बढ़ गया था।.....

फांसी की सजा के बाद करतारसिंह फांसी-घर में बन्द थे उनके माथे पर न बल था, न भय। उनके दादा आए और बोले-'करतार तुम फांसी किन के लिए जा रहे हो। वे तो सब तुम्हें गालियां दे रहे हैं।' करतार के माथे पर एक बल आया किन्तु क्षणभर के लिए, वाकई यह दु:ख की बात थी जिनके लिए वह यहां बन्द था, वे ही उसे बुरा कहें। फिर भी करतार दबने वाला या हिम्मत हार जाने वाला जीव नहीं था। उसने अपने एक दो मरे हुए रिश्तेदारों का नाम लेकर पूछा वे कहां गए? दादा ने कहा वे मर गए। इस पर करतार ने कहा वे मर गए। हम भी मरने जा रहे हैं, फिर नई बात क्या है?

अपने हाथों गले में फांसी का फंदा डालने वाले
विष्णु गणेश पिंगले

युवा इंजिनीयर और क्रान्तिकारी विष्णुगणेश पिंगले का जन्म महाराष्ट्र में पूना के पहाड़ी प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गणेश पिंगले था। पिता ने इन्हें इंजिनीयरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के लिए

अमेरिका भेज दिया। वहां ये देशभक्तों के सम्पर्क में आये और इंजिनीयर के साथ-साथ क्रान्तिकारी भी बन गये। अमेरिका से जब ये भारत लौटे तो नौकरी करने के लिए नहीं अपितु अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध विप्लव करने के लिए लौटे। इसीलिए ये घर न जाकर सीधे कलकत्ता गये और वहां बंगाल तथा पंजाब के क्रान्तिकारी दलों से सम्पर्क साधा। इन्होंने क्रान्तिकारी संगठनों को विस्तार और प्रगति दी। अधिक से अधिक बम बनाने की व्यवस्था की।

रासविहारी के दल से मिलकर ये काशी पहुंचे। वहां से पंजाब की स्थिति की जानकारी लेने गये। क्रान्ति की सारी व्यवस्था को सुनिश्चित करके एक सप्ताह बाद रासविहारी को पंजाब ले जाने के लिए फिर काशी आये। किसी कारणवश रासविहारी की जगह शचीन्द्रनाथ सान्याल को जाना पड़ा। पंजाब में ये अमृतसर के गुरुद्वारे में रुके और करतार सिंह के साथ मिलकर वहां के क्रान्तिकारी संगठन को मजबूत किया। कुछ दिन बाद वहां रासविहारी भी पंहुच गये। २१ फरवरी १९१५ का दिन पंजाब में क्रान्ति करने का निश्चित हुआ किन्तु पुलिस के एक गुप्तचर गद्दार क्रान्तिकारी ने सारी योजना को मिट्टी में मिलवा दिया। क्रान्ति दल के लोग पकड़े जाने लगे। सारा दल छिन्न-भिन्न हो गया। लोग जेलों में ठूंसे जाने लगे।

पिंगले रासविहारी के साथ बनारस लौट आये। आते समय वे जवानी के अति उत्साह में क्रान्ति के लिए सैनिकों को भड़काने के लिए मेरठ-छावनी में घुस गये। छावनी में एक मुसलमान हवलदार ने पिंगले को क्रान्ति में साथ देने का विश्वास दिलाया। पिंगले उस पर विश्वास करके उसे साथ ही बनारस ले आया। पिंगले ने बनारस से दस शक्तिशाली बम साथ लिये और हवलदार के साथ मेरठ में विस्फोट करने के लिए लौट आया। रासविहारी ने उसे काफी मना किया किन्तु वह नहीं माना। विवश होकर उसे जाने की अनुमति देनी पड़ी।

रासविहारी का सन्देह सत्य निकला। मुसलमान हवलदार ने पिंगले को मेरठ छावनी में बमों के साथ गिरफ्तार करवा दिया। जज रौलट ने उन बमों के बारे में अपने निर्णय में लिखा था-''बम इतने शक्तिशाली थे कि एक बम ही आधी रेजिमेंट को उड़ाने में सक्षम था।'' अदालत ने पिंगले को फांसी की सजा सुनायी। १६ नवम्बर को प्रातःकाल फांसी के तख्ते पर ले जाया गया। जेल अधिकारी ने अन्तिम इच्छा पूछते हुए कहा-''कुछ कहना चाहते हो तो कहो।'' पिंगले ने कहा- ''परमात्मा

से प्रार्थना करने के लिए दो मिनट का समय चाहिए।'' अधिकारी के आदेश से दो मिनट का समय दे दिया गया और हथकड़ी खोल दी। पिंगले ने हाथ जोड़कर परमात्मा से प्रार्थना की–

''भगवन्! तुम हमारे हृदयों को जानते हो। जिस पवित्र कार्य के लिए आज हम जीवन की बलि दे रहे हैं, उसकी रक्षा का भार तुम पर है। भारत स्वाधीन हो, यही अन्तिम कामना है।''

इसके बाद उन्होंने फांसी के फंदे को स्वयं अपने हाथों गले में डाल लिया। तख्ता खिंचते ही शरीर निर्जीव हो गया। एक सुशिक्षित युवक आजादी के लिए देश की बलिवेदी पर अर्पित हो गया।

रासबिहारी ने बाद में पिंगले के विषय में अपनी डायरी में लिखा था–''यदि मैं जान पाता कि पिंगले अब मुझे फिर न मिल सकेगा तो उसके लाख आग्रह करने पर भी अपने पास से न जाने देता। उस सुदृढ़ गोरे शरीर वाले वीर के अभिमान भरे ये शब्द कि **'मैं एक वीर सैनिक की हैसियत से केवल कर्म करना जानता हूँ'** अब भी कानों में गूंजते रहते हैं और उनकी तीव्रबुद्धि और सुन्दरता का परिचय देने वाली वे बड़ी-बड़ी आंखें भुलाने पर भी नहीं भूलती।''

भाई परमानन्द की कैद कहानी

भाई परमानन्द एम०ए० पंजाब के सारस्वत ब्राह्मण हैं। बचपन से आपने आर्यसमाज की दीक्षा पाई है। तभी से आपने प्रण किया था कि आजन्म आर्यसमाज की सेवा करूंगा। सुतरां एम०ए० पास करने पर आपने लाहौर के डी०ए०वी० कॉलेज को अपना जीवनदान दिया और बरसों ७५ रुपये मासिक पर वहां प्रोफेसर रह कर सेवा करते रहे तथा दक्षिण अफ्रीका और मद्रास में बहुत दिन तक इसी समाज के मिशनरी बनकर प्रचार करते रहे। सन् १९०७ और ८ में बंगाल का स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ हुआ तो उसकी हवा

पंजाब में भी पंहुची। 'एक इन्तकाल अराजी' के मामले ने वहां भयंकर रूप धारण कर रखा था। लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह के नेतृत्व में होता हुआ पंजाब आन्दोलन में शामिल हो गया। पीछे उपर्युक्त दोनों नेता और कितने ही समाचार पत्रों के सम्पादक तथा कार्यकर्त्ता लोग पकड़े जाकर कैद किये गये। किन्तु उनमें से कुछ आदमी रिहा कर दिये गये थे। इन दिनों भाई परमानन्द मद्रास से पांच मास बाद लाहौर में आये थे। भाई परमानन्द जिस मकान में पहले रहते थे, उनके मद्रास चले जाने पर वह सरदार अजीतसिंह और उसके भाई किशनसिंह ने ले रखा था। इसी समय अजीतसिंह बर्मा से वापस आये। उसी मकान में भारतमाता का आफ़िस भी था। सरदार अजीतसिंह को जब यह मालूम हुआ कि सरकार उनका दमन करना चाहती है तो वे अपने मित्र सूफी अम्बाप्रसाद के साथ करांची हो कर ईरान को भाग गये और आज तक भारत में नहीं लौटे। सरदार अजीतसिंह के चले जाने पर भाई परमानन्द ने उसी मकान को अच्छा समझ कर फिर किराये पर ले लिया। सरदार किशनसिंह का सामान अभी वहीं पड़ा था कि भाई परमानन्द भी वहीं रहने लगे। पुलिस सरदार अजीतसिंह की तलाश में बड़ी सरगर्मी दिखा रही थी। उस मकान में उन्हें रहता देख कर उसने समझा यह भी कोई पंछी फंसा। अन्त में पुलिस ने एक दिन मकान को घेरा डालकर वहां भी तलाशी ली। इसमें सरदार अजीतसिंह के बहुत से कागजात मिले। भाई परमानन्द के बॉक्स में से भी लाला लाजपतराय की कुछ चिट्ठियां मिली। पर उनमें कोई ऐसी बात नहीं थी, जो आपत्तिजनक होती। हां, उनके कागजात में से दो एक लेख मिले जो उनके ख्यालात थे। एक कागज में लिखा था कि भविष्य में भारत का संगठन इस प्रकार से होना चाहिए कि यहां की राजधानी देहली या शिमला में रहे। रियासतों के लिए एक अलग हाऊस ऑफ लार्ड्स की तरह चेम्बर हो। और जिसका अध्यक्ष नयपाल (नेपाल) जैसी रियासत का राजा हो। भाई परमानन्द का ख्याल था कि हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा इस तरह से तय हो सकता है कि सिन्ध के पार का भाग अफ़गानिस्तान से और सीमाप्रान्त में मिला कर एक बड़ा मुसलमान साम्राज्य हो जाना चाहिए। वहां के हिन्दू सब इधर आवें–और यहां के मुसलमान सब वहां चले जायें।

बस इन्हीं बातों के आधार पर तलाशी के एक मास बाद जब भाई परमानन्द घर लौटे तो लाहौर के स्टेशन पर ही गिरफ्तार कर लिए गये। इनकी यह गिरफ्तारी ११० धारा के अनुसार हुई थी। लाहौर के वकील

श्री लाला रघुनाथसहाय के कोशिश करने पर ३ आदमियों ने इनकी १५ हजार रुपये की तीन बरस के लिए जमानत दी और अब की बार यह रिहा हो गये परन्तु जिस आर्यसमाज के लिए इन्होंने जीवनदान दे रखा था और बरसों से जिसकी सेवा कर रहे थे, इस समय उस आर्यसमाज से भी राजभक्ति का प्रशंसापत्र लिये बिना न रहा गया। **लाहौर की अनारकली समाज इससे पहले लाला लाजपतराय का भी उनके निर्वासन होने पर नाम काट चुकी थी। इस बार इसने भाई परमानन्द का नाम साफ किया और कॉलेज की प्रोफेसरी से अलग कर दिया गया। हालांकि इनका कोई दोष प्रमाणित नहीं हुआ था।** भाई परमानन्द हताश होकर अपने गांव चले गये और वहां दो-तीन मास रह कर जब उकता गये, तब उन्होंने विदेश यात्रा का विचार किया और चले गये। बस इसी दिन से इन पर राहु की दशा आई और बराबर दस बरस तक बेचारे परेशान किये गये। इस परिचय के साथ हम एक बात और बता देना चाहते हैं और वह यह कि भाई परमानन्द एक बड़े पुराने देशभक्त खानदान के हैं। धर्म और देश के लिए बलिदान होने की उनमें स्वाभाविक शक्ति है। औरंगजेब के शासनकाल में भाई मतिदास को उसने आरे से चिरवा डाला था, तभी देहली षड्यन्त्र में इनके चचेरे भाई बालमुकुन्द बी०ए० को भी देहली में फांसी दे दी गई थी। इसके बाद भाई परमानन्द ने यूरोप यात्रा की। वहां रह कर डाक्टरी पास की तथा इसी दौर में लाला हरदयाल और सरदार अजीतसिंह से मिले। 'कामागाटामारू' जहाज की घटना से यूरोप प्रवासी पंजाबी भारतीयों में कैसे जोश फैला और कैसे-कैसे षड्यन्त्र करके प्रवासी पंजाबी देश में वापस आये तथा उन द्वारा अनेक घटनाएँ घटने पर कैसे गिरफ्तार हुए, तथा यहां पर भाई परमानन्द झूठमूठ से उनके कैसे लीडर समझे जाकर पकड़े गये और मुकदमा चलने पर फांसी का हुक्म हुआ। पीछे कालापानी में यह सजा परिणत हो गई। यह सब आत्मकथा भाई परमानन्द के शब्दों में नीचे दी जाती है।

अमेरिका यात्रा

"तीन बरस के लिए मेरा मुंह और हाथ बन्द कर दिये गये। १५ हज़ार की जमानत ली जाने पर मैं चार मास घर पर बैठा रहा, पर वहां दिल नहीं लगा। मैंने विचार किया कि मैं अमेरिका जाकर पश्चिमी ढंग से देशी दवाइयाँ तैयार करने की शिक्षा प्राप्त करूं। सुतरां मैं घर से चलकर बम्बई पहुंचा और वहां से एक फ्रेन्च कम्पनी के जहाज में तीसरे दर्जे का टिकट ले कर मारसेलीज होता हुआ पेरिस पहुंचा। फ्रान्स से अमेरिका

जाने का विचार था परन्तु मालूम हुआ कि लाला हरदयाल राजनीतिक कामों से हताश होकर फ्रान्स के 'मारटीनेक' नामक द्वीप में तपस्या कर रहे हैं। मैं वहां से एक डच जहाज में सवार हो कर न्यूयार्क पहुंचा और वहां जा कर किसी तरह से कहीं ठहर गया।

स्वामी विवेकानन्द का मठ

अमेरिका में स्वामी विवेकानन्द के मतानुयायी स्त्री-पुरुष हजारों की तादाद में हैं। वे लोग भारतीयों से प्रेम करते हैं और उनकी बातें बड़ी उत्सुक्ता से सुनते हैं। न्यूयार्क में इन लोगों द्वारा स्थापित एक मठ है जो विवेकानन्द सोसाइटी के नाम से पुकारा जाता है। मैं वहीं पहुंचा, पर मालूम हुआ कि स्वामी विवेकानन्द के शिष्य लोग भारतीयों से नहीं मिलते।

लाला हरदयाल से भेंट

यूनिवर्सिटी में दाखिल होने की तारीख बीत चुकी थी। इसलिए मैंने विचार किया कि इतने दिन ब्रिटिश गायना में ही जा कर रहूं। निदान मैं वहां से चल दिया। रास्ते में ही 'मारटीनेक' भी आता है। मुझे मालूम था कि लाला हरदयाल यहीं हैं। उनसे मिलने के लिए मैं यहां उतर पड़ा और किसी तरह से पता पूछ कर मैं उनकी कुटी में पहुंचा। लाला हरदयाल वहां नहीं थे। मालिक मकान ने कहा कि वे पास की पहाड़ी में रोज तपस्या करने जाते हैं। मालिक मकान ने एक लड़के को भेज कर उन्हें बुलवा दिया। वह बड़े घबड़ाये हुए आए परन्तु मुझे देख कर प्रसन्न हो गये और स्वयं जहाज पर जाकर मेरा सामान उतरवा लाये। लाला हरदयाल सचमुच तपस्वी जीवन बिता रहे थे। एक समय आलू वगैरह खाकर दिन काट देते थे और थोड़ी देर कुछ पढ़ने के बाद दिन भर भगवान् के ध्यान में लग जाते थे। मैंने इसका रहस्य पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं एक नया मत स्थापित करना चाहता हूं और इसलिए इस तपस्या द्वारा अपने को तैयार कर रहा हूं। मैंने कहा कि मैं सब मत-मतान्तरों को एक समझता हूं। जर्मनी का सम्राट् फ्रेडरिक तीन बड़े पैगम्बरों का नाम लेकर कहा करता था कि संसार को उन्होंने धोखे में डाल दिया है। यदि आपको करना ही है तो सच्चे संन्यासी की तरह से अमेरिका में जाकर आर्य सभ्यता का पुनरुद्धार करिये। स्वामी विवेकानन्द के बाद वहां का काम बन्द सा हो गया है। निदान महीने भर के बाद लाला हरदयाल मेरी बात से सहमत हुए। और एक दिन मैं ब्रिटिश गायना की ओर और वे अमेरिका को प्रस्थान कर गये।

ब्रिटिश गायना में

पहले मैं ब्रिटिश गायना, ट्रिनिडाड, जमैका और डच गायना में व्याख्यान देता रहा। पहले तो भाषणों का प्रबन्ध करने में कुछ कष्ट हुआ परन्तु पीछे वहां के अधिवासी लोग बड़ी उत्सुकता से मेरे भाषण सुनने लगे। जब मैं चलने लगा तो वहां के लोगों ने मुझ से वहीं रहने के लिए बहुत आग्रह किया।

अमेरिका में

उपर्युक्त स्थानों में घूम फिर कर मैं अमेरिका में सानफ्रांसिस्को स्थान में पहुंचा और वहां के एक डाक्टर की कोशिश से शीघ्र ही 'फ़ारमेसी कॉलेज' में भरती हो गया और पढ़ने लगा। अमेरिका निवासी साम्यवाद के सिद्धान्तों से प्रेम करने वाले होते हैं। हिन्दू धर्म में आस्था रखने वाले भी बहुत से अमेरिकन हैं। वे प्राय: हर एक पढ़े लिखे भारतवासी से आत्मविद्या की बातें पूछा करते हैं।

अमेरिका में भारतवासी

अमेरिका में बहुत से भारतवासी रहते हैं। इनको कई विभागों में विभक्त करना चाहिए। एक विभाग छात्रों का है। दूसरा खेती-मजदूरी करके धन उपार्जन करने वालों का। तीसरा जो भ्रमण करने आते हैं और इधर-उधर घूमकर चले जाते हैं उनका है। इसी तरह से लगभग बीस हजार भारतवासी अमेरिका में बसे हुए हैं। उनमें भी अधिक संख्या पंजाबियों की है। वे लोग खेती बाड़ी करके खूब रुपया कमाते हैं। पढ़े-लिखे न होने से वे व्यसनों में पड़ जाते हैं पर उनसे भारतीय विद्यार्थी लोगों को खूब सहायता मिलती है। छुट्टियों में मैं भी उनके पास चला गया था और फूल तोड़ने का काम करके ७ रुपये प्रतिदिन मिल जाते थे। इसी तरह से दो चार मास काम करने से कुछ रुपया मिल जाता है जिससे काम करने में सहायता मिलती है।

फिर लाला हरदयाल

लाला हरदयाल जहां जाते थे उनकी प्रतिष्ठा खूब बढ़ जाती थी और कहीं तो उन्हें हिन्दू ऋषि कहकर पुकारा जाता था। इसका कारण यह था कि उनमें भाषण करने और लिखने की कमाल की शक्ति है। दूसरे वे हमेशा त्याग और तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे। उनका स्वभाव ऐसा रहा है कि उनमें व्यक्तिगत स्वार्थ का तो लेश भी नहीं है। जब वे अमेरिका में आये तो मैंने चेष्टा की कि मैं उनके 'वहम' और भ्रम किसी तरह से दूर करूं और देश का जिस काम से वस्तुतस्तु उपकार

हो सके उस काम में लगाऊं। वे वहां के एक विश्वविद्यालय में संस्कृत के अवैतनिक प्रोफेसर होकर काम करने लगे थे। लाला हरदयाल ने अपने त्याग और तपस्वी जीवन से अमेरिका के समाचापत्रों को मुरीद बना लिया था। वहां के सभी लोग उनकी खूब प्रतिष्ठा करते थे। लाला जी पहले राजनीति से हताश हो चुके थे। इस बार उन पर फिर रंग चढ़ा। वे हमेशा कभी बीच की श्रेणी में नहीं रहते थे। राजनीतिक विचार भी उनके साधारण नहीं थे। जब उनका मन झुका तो वे एकदम क्रान्तिकारक बन गये। मैंने उन्हें बहुत समझाया कि वे समझ सोचकर शान्ति से काम करें पर वे खुला राजद्रोह का प्रचार बड़े जोरों से करने लगे। और विश्वविद्यालय से ननु नच होने पर अलग हो गये। कुछ दिन मेरे साथ रहे। पर मेरे विचार जब उनसे न मिले तो मुझ से अलग हो गये। काम करने से उनका एक विद्यार्थियों और सिखों का दल तैयार हो गया था।

मुझे उपाधि मिल गयी थी और मैं देश को वापस आने को तैयार था। तभी लाला हरदयाल ने पोर्टलेन्ड (सेण्टजान) में एक सभा की। मेरी राय थी कि चन्दा जमा करके भारतवासी विद्यार्थियों के लिए छात्रगृह बनवाये जायें और उनकी राय थी कि छापाखाना खोलकर पेपर चलाया जाये और प्रचार करके क्रान्ति की तैयारी की जाय। अन्त में यही हुआ। मैंने कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि मुझे देश वापस जाना था। मैं इग्लैण्ड के लिए रवाना हुआ और लाला हरदयाल छापाखाना खोलकर 'गदर' आदि अखबार निकाल कर और भी जोरों से क्रान्ति का प्रचार करने लगे।

लंदन में कई मास ठहरा। क्योंकि दवाइयां तैयार करने की कई मशीनें खरीदनी थीं, परन्तु मेरे पीछे पुलिस लगी हुई थी और मेरी निगरानी करती थी। लंदन में काम समाप्त करके मैं इटली होता हुआ 'जेनोवा' पहुंचा। वहां मुझे सरदार अजीतसिंह के दर्शन हुए। उन्होंने यूरोप की प्रायः समस्त भाषाओं का खूब अभ्यास कर लिया था। और अंग्रेज़ी पहले से ही जानते थे। वे सहशिक्षक का काम करके निर्वाह करते थे, परन्तु राजनीतिक विचार और भी उग्र थे। यहां से मैं बम्बई पहुंचा। बन्दरगाह पर ही मेरी तलाशी हुई। दो तीन दिन बम्बई में रहा। पुलिस पीछे-पीछे घूमती रही। वहां से रेल में सवार हुआ। और पुलिस लाहौर तक निगरानी करती हुई मेरे साथ चली आई। लाहौर में पुलिस के कई भारतीय अफसर स्टेशन पर मिले। मुझे जो आदमी स्टेशन पर लेने आये थे, उनसे मैंने कहा कि ये अर्दली लोग बराबर बम्बई से मेरे पीछे लगे हैं। इस पर पुलिस के एक अफसर ने लज्जित होकर कहा कि यदि आप एक दिन लाट साहब से मिलकर सब शिकायतें रफा कर दें, सब ठीक हो जायेगा।

इस पर मैंने कहा कि मैं अपराधी नहीं हूं जो सफाई दूं। हां, वे मुझे याद करेंगे तो अवश्य उपस्थित हो जाऊंगा।

पंजाब में ग़दर की तैयारी, पंजाब गवर्नमेंण्ट की कार्यवाही

मुझे लीडर कैसे बनाया गया?

सर ओ डायर की गवर्नमेंण्ट और भारत सरकार यह समझती थी कि अमेरिका आदि देशों से लौटकर जो भी भारतवासी आते हैं वे प्रायः सभी राजद्रोही हैं। इसलिए पंजाब सरकार ने एक तरफ से प्रवासी भारतवासियों को पकड़ कर कैद करना और नजरबन्द करना आरम्भ कर दिया, परन्तु होशियार गवर्नमेंण्ट के हाथ में से भी बहुत से प्रवासी कलकत्ता से जहाजों में से साधारण-सा बहाना करके भाग गये और सरकार उन्हें न पकड़ सकी। परन्तु उन लोगों में से बहुत से उत्तेजित नवयुवक चारों तरफ से धर पकड़ देख कर फिर मौन न रह सके और उन्होंने देशोद्धार के लिए जहां-तहां डकैतियां डालनी आरम्भ कर दीं। अण्डमान में मैंने कितने ही इसी तरह के अपराधी बंगाली कैदियों से कई बार पूछा कि इस तरह की मारकाट और डाकेजनी से भारतोद्धार कैसे हो सकेगा? परन्तु मेरे कई बार चेष्टा करने पर भी कभी मुझे संन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। निदान बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के बाद में, बंगाल में जैसी डाकेजनी शुरू हुई थी, ठीक वैसे ही पंजाब में भी अमेरिका प्रवासी सिख और दूसरे नवयुवकों ने डकैतियां डालनी आरम्भ कर दीं। इन नवयुवकों में बहुत से नवयुवक मुझे जानते थे और दो चार नवयुवकों ने मेरे द्वारा लाहौर में अमेरिका के सोने के सिक्के भी बेचे थे। बस मेरा असली अपराध यही था, परन्तु मैंने इसे एक छोटी सी तुच्छ सेवा और शिष्टाचार समझ कर ऐसा किया था।

रासबिहारी

मिस्टर पिंगले नामक एक महाराष्ट्र नवयुवक पहले बंगाल की गुप्त समितियों से सम्बन्ध रखता था। पीछे अमेरिका चला गया। वहां उसे और उत्तेजना मिली। लौटने पर उसने प्रसिद्ध रासबिहारी बोस को बनारस से ले जाकर पंजाब में जा भिड़ाया और उसका परिणाम देहली का षड्यन्त्र केस हुआ। उस समय उसकी पुलिस ने खूब तलाश की, परन्तु उसका कुछ पता न लगा और बड़ी दृढ़ता के साथ एक वर्ष बाद पंजाब में आकर इन लोगों में वह सम्मिलित हो गया। और धर पकड़ होने पर फिर भाग गया और आज तक उसका पता नहीं कि वह कहां क्या करता

है और कौन है?

डाकेजनी और व्यर्थ की मारकाट से मेरी कभी सहानुभूति नहीं थी और इसे हमेशा मैं घृणा की दृष्टि से देखता रहा हूं, पर मेरी इस घृणा और नापसन्दगी का क्या मूल्य हो सकता था ? क्योंकि उन लोगों से सिवा इसके कि उसमें से बहुत आदमियों को मैंने अमेरिका में देखा था, मेरा कोई सम्बन्ध नहीं था। हां ! इसे मैं स्वीकार करता हूं कि उनमें से एक दो ने अपने इस गुप्त आन्दोलन को प्रशस्त और व्याप्त करने के लिए आपस में मेरा नाम लेकर दूसरे से लीडर कहकर परिचय दिया। पढ़े-लिखे पंजाब के सब आदमी मुझे जानते थे ही, इसलिए उन पर जिनको कि वे अपने जमघटे में मिलाना चाहते थे, मुझे अपना सबसे बड़ा लीडर बता देते थे। परन्तु मेरा उनसे जरा सा भी सम्पर्क नहीं था। हां, इस मारकाट और बचपने से घृणा अवश्य थी क्योंकि मैंने पर्याप्त शिक्षा पाई है और यूरोप के प्रायः सभी देशों का पर्यटन कर आया हूं इसलिए खूब जानता हूं कि ऐसे संगठनों से कभी किसी देश को स्वाधीनता नहीं मिली। लड़के लोग बचपन और अनुभव शून्यता से ऐसे उत्पात करते हैं और बिना कोई उपकार किये ही मातृभूमि की बलिवेदी पर स्वतः स्वाहा हो जाते हैं।

इधर पुलिस को इनके काम का पता लगा और उसने इनका पीछा किया। ये लोग इधर-उधर पर्यटन करके डाके मारने लगे। अन्त में पेशावर में जगतराम पकड़ा गया। अम्बाला में पृथ्वीसिंह गिरफ्तार किया गया। फ़िरोजपुर से एक घोड़ागाड़ी पर बैठकर जाते हुए सात आदमी अपने चालचलन के ढंग से पकड़े गये। पुलिस ने इनको ठहरा कर इनकी तलाशी लेनी चाही। इनके पास पिस्तौल थे। इन्होंने फायर कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कुछ सिपाही और एक इंस्पेक्टर मारा गया। ये लोग जंगल में भाग गये। पुलिस ने गांव के आदमियों को लेकर इनको घेर लिया और पकड़े जाने पर मुकदमा चला और फांसी पर लटका दिये गये। इनमें पं० काशीराम नाम का एक आदमी था, जिसकी चालीस हज़ार रुपये की सम्पत्ति सरकार ने जब्त कर ली। इसी तरह से सन्देह होने पर लाहौर में एक तांगे पर तीन आदमी जाते हुए पकड़े जाने लगे तो उन्होंने भी पिस्तौल से फायर कर के एक सार्जेण्ट पुलिस को मार दिया। इनमें से दो भाग गये। एक पकड़ा जाकर फांसी लटकाया गया।

इसी तरह से अमृतसर के पास एक गांव में डाका डाला गया। और एक धनाढ्य ब्राह्मण को बुरी तरह से मारा गया। इसी गांव में लूट

मार करते समय बम और गोलियां चलाई गई। और आदमी तो सब भाग गये परन्तु उनका एक लोहार साथी पकड़ा गया। उसने इस षड्यन्त्र का लीडर भूलासिंह को बताया। इसका पता लगाने के लिए पुलिस ने कृपालसिंह को नियुक्त किया। भूलासिंह को अमृतसर स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया। कृपालसिंह भी इनमें मिल गया था। इन लोगों को इस पर सन्देह भी हुआ, परन्तु फिर भी यह इनका लीडर बना ही रहा। गदर करने की तारीख २२ फरवरी सन् १९१९ नियत हुई। इसको भी इसका पता लगा और रात को ही इसने पुलिस की गारद को बुलाकर रात को सोते हुए सात आदमी गिरफ्तार करा दिये। लाहौर में अमरसिंह इनका लीडर था, वह भी पकड़ा गया।

मेरी गिरफ़्तारी

सरकार की ओर से मुकद्दमे में कहा गया कि मैं ही इस आन्दोलन का लीडर था और अमेरिका में सलाह-मशवरा करके ही मैं वापस आया था। हालांकि मैं यहां युद्ध से एक साल पहले ही अमेरिका से वापस आ गया था। इसका उत्तर सरकार की ओर से बड़ा बे सिर पैर का दिया गया। कहा गया कि जर्मनी के युद्ध का पता हमें पहले से ही था। पर मेरी समझ में नहीं आता कि 'कामागाटामारो' जहाज की घटना को क्यों मैं पहले से ही जानता था?

इसके बाद देहली षड्यन्त्र केस चला। चार आदमियों को फांसी दी गयी। उनमें मेरे चाचा का लड़का भाई बालमुकुन्द भी एक था। बलराज और हनुमन्तसहाय को सात-सात वर्ष की जेल हुई। इसमें भी रासबिहारी शामिल था, पर वह पकड़ा नहीं जा सका।

ग़दर का लीडर

करतारसिंह १९ वर्ष का एक सिख विद्यार्थी था, जो इस उपद्रव का लीडर था। वह १९ वर्ष की अवस्था में लुधियाना के खालसा स्कूल में पढ़ता था। पढ़ना छोड़कर अमेरिका चला गया। वहां वह कुछ दिन तक पढ़ता रहा। अन्त में वहां भी उस पार्टी में जा मिला जो मुद्दतों से भारत में गदर करने की तैयारियां कर रही थी। अमेरिका में भी उसने हवाई जहाज बनाना सीखा। वहां युद्ध की तैयारियां देखकर फिर भारत लौट आया। आते ही उसने अपने स्कूल के बहुत से विद्यार्थियों में अपने विचार फैला दिये। उनमें से प्रायः सभी क्रान्तिवादी हो गये। और इधर-उधर से और भी बहुत से आदमी मिल गये, तो वह उनका लीडर बन गया।

जब कभी उसके काम में कोई सन्देह करता, तो वह अमेरिका से ही मुझे जानता था, अतः मेरा नाम लेकर कहता कि भाई परमानन्द की भी सम्मति है। लोग मान जाते। गिरफ्तारी की हालत में मैंने इससे यह बात पूछी भी थी, पर इसने इन्कार किया कि मैंने ऐसा कभी नहीं कहा। मेरा अपना ख्याल ऐसा है कि उसने ऐसा अवश्य कहा है क्योंकि यह उसका ख्याल था।

उसने लड़कों को समझाया कि अब शीघ्र ही जर्मनी यहां आता है। उससे मैं तुमको बड़े-बड़े पद दिलवा दूंगा। सब जगह दिन और रात वह ये ही बातें करता था।

एक बार तो रेल में जाते समय एक हवलदार से कहा कि तुम नौकरी क्यों नहीं छोड़ देते। हवलदार ने उसे जोशीला लड़का समझकर कह दिया कि मीयांमीर छावनी के मैगजीन की चाबियां मेरे पास रहती हैं। तुम लोग तैयार हो जाओ, मैं तुम्हें सुपुर्द कर दूंगा। इस पर उसने अपने दल में यह बात कही तो लोगों ने उपहास किया। इस पर उसने कहा कि अच्छा मैं भाई परमानन्द से पूछ आता हूं। अगले दिन उसने झूठ-मूठ कह दिया कि भाई जी से पूछ आया, ठीक है। बस इसी के अनुसार १९ नवम्बर को रातभर १०० आदमियों का एक दल मियांमीर की छावनी में चक्कर लगाता रहा। इस पर सरकारी गवाह नवाब कहता है कि मैंने उसे झाड़ा। किन्तु उसने कहा कि यह सब गलतियां भाई परमानन्द करा रहा है।

अगर यह सत्य है तो करतारसिंह को अवश्य मालूम हुआ कि कहीं उसकी लीडरी में बट्टा न लगे। इन लोगों ने इस तरह से कई दल तैयार किये, जिनमें फिरोजपुर पलटन को साथ मिलाने की कोशिश भी की थी। सुतरां एक रात को सौ डेढ सौ सवार घोड़े कसकर तैयार हो गये थे, परन्तु इन्हें इस पार्टी का कोई आदमी न मिला। इन सबके कामों में लड़कपन की झलक थी। परन्तु यह निःसन्देह है कि करतारसिंह को मौत का डर नहीं था। वह अत्यन्त जोशीला और ढीठ था।

लुधियाना की पुलिस उसकी तलाश में लगी थी। एक दिन एक गांव में पुलिस तलाश कर रही थी। अकस्मात् एक साइकिल पर वह भी जा निकला, परन्तु वह वहां उतरा और पानी का गिलास पीकर, फिर चलता बना। पुलिस को संदेह तक नहीं हुआ। करतारसिंह का एक सरदार मित्र उस को साजिश करके पकड़वाना चाहता था परन्तु किसी

तरह से उसे मालूम हो गया और उसे कत्ल कर दिया गया।

करतारसिंह हथकड़ी और बेड़ियों से जकड़ा हुआ जब लाहौर स्टेशन पर पहुंचा तो इन्सपेक्टर जनरल पुलिस को सम्बोधन करके कहा–'मिस्टर टामकिन! कुछ खाने को ला दो, भूख लगी है।

जेल में भी वह छोटे अफसरों से बड़ी बेपरवाही से बातचीत करता था। जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट बहुत हैरान होकर उसकी बातें सुनता था। एक बार मैंने जेल में उससे पूछा कि यह तुमने क्या किया? आराम से अमेरिका मैं बैठे थे। यहां आकर जेल में सड़ रहे हो? **उसने तुरन्त उत्तर दिया कि मैं मरने के लिए भारत लौटकर आया हूं। जब अमेरिका में वहां के गोरे 'नेटिव' कहकर गाली देते थे, तो हृदय कांप उठता था।** हृदय ये सब बातें सहन नहीं कर सका। मैं फिर बोला कि भले आदमी मुझे क्यों फंसाया? उसने उत्तर दिया कि जो कुछ मैंने किया है, उसके आप जिम्मेदार हैं। मैं हैरान हो गया कि यह क्या कह रहा है। इस पर मैंने कारण पूछा तब उसने अमेरिकन ड्रगस्टोर की बात याद दिलाई–जहां पर मुझे वह मिला था। वह बोला कि मेरे हाथ में जब चोट लगी थी और आपके हस्पताल में भरती होने को आया था। और रात को आपने मुझसे पूछा था कि इण्डियन की कुछ हिस्ट्री जानते हो। तब मैंने कहा था, हां ! इस पर आपने पूछा कि यह बताओ कि वह जाति जो इतनी मुर्दा और दास हो चुकी थी उस पर सात सौ साल से बराबर पश्चिम और उत्तर के लोग धावे करते रहे। हजारों आदमियों के सर भेड़ों और बकरियों की तरह से उड़ा दिये गये, परन्तु पंजाब की हिस्ट्री में हम देखते हैं मुर्दा जाति में से एक शक्ति उत्पन्न हुई थी कि उसने न केवल आपदाओं को ही रोक दिया किन्तु देश में एक और ही तरह की हवा चलने लगी थी। करतारसिंह सोचता रहा। तब बताया गया कि गुरु गोविन्दसिंह को जानते हो। उन्होंने कहा था कि –

चिड़ियों से मैं बाज मराऊं। तब ही नाम गोविन्दसिंह पाऊं।

गुरु ने निर्भयता सिखाई। पिता–पुत्रों को जाति और देश की बलि वेदी पर स्वाहा कर दिया। आप भी उसी पर कुर्बान हो गये। मृत्यु का डर चला गया। जीवन आ गया। क्या उस जाति में अब कोई है?

करतारसिंह ने कहा कि बस उसी दिन मैंने देश के लिए सिर देने का दृढ निश्चय किया था। वह कहता था कि लाहौर में वह एक बार मुझ से मिला। पर उसकी बच्चों जैसी बातें सुनकर मैंने टाल दिया था।

अदालत में उसने बयान किया था कि मेरा इरादा था कि देश को स्वाधीन करने की कोशिश करूं और उसके लिए जो जैसा जंचा, किया; किसी और का अपराध नहीं है। जो कुछ किया, मैंने किया, और देश के लिए किया। मैं उसका दण्ड भोगने के लिए तैयार हूं।

सरकारी वकील पेटैन ने मुकद्दमे में मेरे साथ बड़ा अच्छा वर्ताव किया था। उसने गवर्नमेंट से मेरे ऊपर से मामला उठा लेने को कहा था। परन्तु यह डायरशाही को स्वीकार न था।

फांसी की कोठरी

सितम्बर की १३ तारीख को फैसला होना था। हम सब लोगों को जेल की अदालत में पेश किया गया। २४ आदमियों को फांसी की आज्ञा हुई। बाकी को कालापानी। तीन चार आदमियों को केवल बरी किया गया था। मुझे फांसी की सजा वालों की तंग कोठरियों में बन्द कर दिया गया। कई अभियुक्त इस जीवन से हाथ धोने की तैयारी देखकर तरह-तरह से देशभक्ति के गीत गाते थे।

फांसी का हुक्म सुनते हुए कई आदमियों ने कई तरह के भाव प्रकट किये। **एक भाई को काले पानी की सजा हुई तो उसने कहा मैं फांसी मांगता हूं। उत्तर मिला कि इसके लिए अपील करो। जब करतारसिंह को फांसी का हुक्म सुनाया गया, इसने कहा था 'थैंक यू' एक दूसरे ने फांसी का हुक्म सुनने पर कहा, 'बस इतना ही।'**

मुझे बताया गया कि तुम्हारी बाबत जजों में मतभेद है। दो की राय फांसी की है और एक की कालेपानी की। तुम अपील करो। मैं चुप रहा। अब तक हम लोग अपने कपड़े पहने हुए थे। अब हम को फांसी के कपड़े पहना दिये गये। कई अपराधियों से कहा गया कि अपील करो, परन्तु कुछ को छोड़कर किसी ने दया की प्रार्थना नहीं की।

मैंने अपनी स्त्री को पत्र लिखा कि आकर मिल जाए। परन्तु किसी प्रकार का शोक प्रकट न करना। वह दूसरे सम्बन्धियों के साथ मिलने आई। मैं प्रसन्न था। तीसरे दिन फिर मिलने आई।

मेरी स्त्री ने लाला रघुनाथ सहाय वकील को बुलाया। वे शिमला में जा कर मालवीय जी से मिले। और मेम्बरों ने भी इस फैसले को सुनकर आश्चर्य प्रकट किया। दो मास तक पंजाब सरकार और भारत सरकार में लिखा-पढ़ी होती रही। पंजाब के लाट साहब सर ओ डायर की सरकार कहती थी फांसी होनी चाहिए। और पंजाब को इसी तरह

से दबा कर भयभीत रखना चाहिए। भारत सरकार यह नहीं चाहती थी। अन्त में यही हुआ भी अर्थात् २४ में से १७ को फांसी की जगह कालापानी की सजा हुई। मैं भी उनमें से एक था।

मेरे साथियों में से केवल दो ऐसे आदमी थे, जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए डाके डालने में सहायता दी थी। वे फूट-फूटकर रोते थे। बाकी **सब दिन भर देशभक्ति के गीत गाते रहते थे। लोग पूछते थे कि क्या तुम किसी बारात में जा रहे हो या फांसी पर लटकने की तैयारी में हो। वे लोग इस फांसी की खुशी को नहीं समझ सकते थे।**

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का सब से बड़ा जहाज 'टाईटानिक' समुद्र के हिमगिरि से टकराकर जिस समय डूबने लगा था तब जहाज के कप्तान ने बैण्ड बाजे वालों को बाजा बजाने को कहा था कि अपने औजार उठा कर भगवान् के भजन गाओ। उन्होंने बाजा बजाना शुरू किया। बाजा कहता था Nearer, O My Lord, thee "समीप अधिक समीप, हे मेरे परमात्मा तुम्हारे।" इसी तरह पानी बढ़ता गया। जहाज नीचे उतरता गया। और उसकी आवाज दूसरे लोक में सुनाई देने लगी।

मैं समझता था कि वे लोग बड़े बहादुर होंगे जो इस तरह से गा-बजाकर मृत्यु का आलिंगन करते थे। पर इस कोठरी में रहकर मेरी समझ में आया कि मनुष्य का हृदय मृत्यु को सामने देखकर कैसे गम्भीर हो जाता है। हम लोगों में करतारसिंह विशेष प्रसन्न था, वह बार-बार कहता था, फांसी में अब क्या देर है?

मेरे मन में कोई साध न थी—हां, दो बातों की मेरी इच्छा थी। एक तो धूप को महीनों से नहीं देखा था। दूसरे महायुद्ध का परिणाम देखने की इच्छा थी।

शायद १५ नवम्बर को हमारी फांसी की सजा को कालेपानी की सजा में बदल देने का हुक्म सुनाया गया था। अगले दिन प्रातःकाल बाकी के सात आदमियों को फांसी होनी थी। उनको दो बार में फांसी घर में ले जाया गया। करतारसिंह और महाराष्ट्र ब्राह्मण पिंगले को जब फांसी हुई तो उनसे कहा गया कि वे कुछ चाहते हैं? उत्तर में पिंगले ने कहा, दो मिनट की छुट्टी भगवान् से प्रार्थना करने के लिए दी जाय। उसकी हथकड़ी खोल दी गई और उसने प्रार्थना की—

"भगवन्, तुम हमारे हृदय को जानते हो जिस पवित्र कार्य के लिए जान देते हैं उसकी तुम रक्षा करो। यही अन्तिम मानसिक कामना है।"

इसके बाद स्वयं गले में फांसी की रस्सी डालकर अन्तिम सांस

लेने को तैयार हो गया। नीचे का पटरा पांवों के नीचे से सरक गया और क्षण भर में ही बेजान लाशें लटक गई। फांसी की सजा पाने के पहले अभियुक्त गाते थे–

यही पाओगे महशर में जवां मेरी बयाँ मेरा।
मैं बन्दा हिन्दवालों का हूं है हिन्दोस्तां मेरा।।
मैं हिन्दी ठेठ हिन्दी, खूं हिन्दी जात हिन्दी हूं।
यही मजहब यही फ़िरका यही है ख़ानदां मेरा।।
मैं उजड़े हुए इस भारत की एक खण्डहर का ज़र्रा हूं।
यही बस इक पता मेरा यही नामों निशां मेरा।।
कदम लूं मादरे भारत तेरे मैं बैठते उठते।
कहां किस्मत मेरी ऐसी नसीबा यह कहां मेरा।।
तेरी ख़िदमत में ऐ भारत! ये सर जाये जान जाये।
तो मैं समझूंगा यह मरना हमारा जादवाँ मेरा।।

प्राय: एक सप्ताह के बाद हमारा वजन किया गया। और दो-दो आदमियों के हाथ, हथकड़ियों से जकड़ दिये गये। पांवों में बेड़ियां डाल दी गई। वहां के कपड़े उतार कर कालेपानी जाने की धारीदार पोशाक पहना दी गई। पुलिस के पहरे में मियांमीर की छावनी पहुंचाये गये और गाड़ी में बन्द करके रातोंरात पंजाब का मार्ग तय हो गया। तीसरे दिन आधी रात के समय कलकत्ता की प्रेसीडेन्सी जेल के कालेपानी जाने वाले कैदियों के बारक में हम को बन्द कर दिया गया। छ: दिन के इन्तजार के बाद काले पानी जाने वाले जहाज के एक तहखाने में बैठा कर तीन दिन और तीन रात के बाद कालापानी की भूमि पर हम को उतारा गया।

अण्डमान में लगभग पचास टापू हैं। पोर्टब्लेयर सब से बड़ा है जहां के किले में कैदी रखे जाते हैं। यहां के असली अधिवासी अण्डमाज हैं। वे जंगलों में रहते हैं। कपड़े नहीं पहनते। धनुष विद्या में प्रवीण हैं। समुद्र में आंखें खोलकर तैर सकते है। भाले से मछलियों को मार डालते हैं। इनका खाद्य पदार्थ मांस है। अंग्रेजों और देशी आदमियों की बस्तियों के पास ये लोग नहीं रहते।

अण्डमान में 'फ्री' लोग भी रहते हैं। जो कैदी आदमी और औरतें नेक चलनी के कारण किसी विशेष अवधि के बाद छोड़ दिये जाते हैं वे आपस में विवाह करके वहां मेहनत मजदूरी करते हैं। ये फ्री लोग

इन्हीं लोगों की सन्तान हैं।

कालेपानी की जेल में राजनीतिक कैदियों के साथ बहुत बुरा सुलूक होता है। उनको कोल्हू में जोतकर तैल निकलवाया जाता है। रस्सी बंटवाई जाती हैं। और नारियल के हुक्के तथा ईट भी पथवाई जाती हैं। कई बार बड़े उच्च कुलीन राजनीतिक कैदी इस बुरे व्यवहार से तंग आकर आत्महत्या कर चुके हैं। इन्दुभूषण ने इसी तरह से प्राण दिये। रामरक्षा का यज्ञोपवीत उतारा गया उसने उपवास करना शुरू कर दिया और बड़ी वीरता के साथ अपने धर्म की मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण दे दिये। कई बार मुझे भी कड़े कड़े काम करने पड़े। अण्डमान में रहने वाले राजनीतिक कैदियों में दो पर्टियां हैं। बंगाली अपने को बुद्धिमान् समझते हैं और महाराष्ट्रियन अपने को। यू० पी० और पंजाब के कैदियों को ये लोग मूर्ख समझते हैं और पंजाब के कैदी अपने को वीरता का ठेकेदार। कई बार जेल वालों से झगड़ा होने पर ये लोग परस्पर मिल भी जाते थे, क्योंकि सब बातें अलग अलग होने पर भी ये प्रायः सभी विप्लववादी थे। मैं इन लोगों के आन्दोलन में कभी शामिल नहीं हुआ। उदासीनता के साथ मैं इनके कार्यकलापों को बराबर देखता रहा। हां, एक बार जब भारत के समाचार पत्रों में मेरे सम्बन्ध में मेरी एक घरू चिट्ठी के आधार पर टीका टिप्पणी हुई तो मुझे अस्पताल के लिखा पढ़ी के काम से हटाकर कड़े कामों में लगाया गया और अन्त में मुझे भी अन्यान्य राजनीतिक कैदियों के साथ सत्याग्रह में शामिल होना पड़ा। वहां की जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट बारी साहब बड़ा कड़ा आदमी है। वह बीस बरस से वहां का अफसर है। सच पूछो तो वहां का भाग्य विधाता वही है। यद्यपि वह एक आयरिश पढ़ा लिखा साधु आदमी है, पर कालेपानी की कैद में जो दूसरी तरह के अपराधी जाते हैं वे प्रायः किसी न किसी भारी दुष्टता के कारण वहां पहुंचते हैं और वहां जाकर उनका सुधार तो एक ओर रहा, बल्कि जो कुछ कमी यहां रह जाती है, वहां के बदमाश और पतित खूंखार लोगों में रह कर पूरी हो जाती है। बस समझ लीजिए, इन्हीं लोगों के शासक बारी साहब हैं और वे भी बड़े भयंकर समझे जाते हैं। हजारों बार उनके साथ कैदियों का झगड़ा हो चुका है।

कालेपानी के कैदखाने में औरतों का अलग स्थान है। औरतें प्रायः अपने पति को विष देने के अपराध में ही कालेपानी जाती हैं। और तीन बरस के बाद रिहा कर दी जाती हैं। पीछे वे किसी स्वतंत्र कैदी से विवाह कर लेती हैं।

कालेपानी की जेल में युद्ध के समाचार बड़ी उत्सुकता से सुने जाते थे। कई तरह की अफ़वाहें उड़ती थीं। कैदी लोग अंग्रेज़ों के हारने की झूठमूठ की बातें सुनकर इसलिए बड़े प्रसन्न हो जाते थे कि अब ये लोग विदा हो जायेंगे।

एक दिन प्रातःकाल फिर हमारा वजन हुआ। उसी जहाज पर बैठकर मुझे कलकत्ता लाया गया। और रेल में बैठाकर सीधा लाहौर पहुंचाया गया तथा स्टेशन पर छोड़ दिया गया। यह मुझे पहले से मालूम हो गया था कि मेरे देशवासियों की कृपा से राजकीय घोषणा के अनुसार मुझे छोड़ा जा रहा है। छुटकारे पर और सब बातें हुईं, पर एक बात मन में रही। और वह यह कि मेरे साथी कैसे इस पापपङ्क से छुटकारा पावें? कालेपानी से चलते समय मैंने उन लोगों से प्रतिज्ञा की थी कि जैसा होगा मैं तुम लोगों के छुटकारे के लिए प्रयत्न करूंगा।

जब मैं लाहौर स्टेशन पर पहुंचा तो मुझे वहां पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मिला उसने पूछा कि अब कहां जाओगे? मैंने कहा मेरी स्त्री यहां कहीं रहती है। उसी का पता लगा कर वहां जाऊंगा। अगर आपको पता मालूम हो तो बताइए। उसने खेद प्रकट कर कहा मुझे पता नहीं। उसने मुझसे हाथ मिलाया और मैं अपना बधना बोरियां लेकर पैदल अनारकली समाज में पहुंचा और वहां से एक आदमी को लेकर अपनी स्त्री के मकान पर पहुंच गया। मेरी स्त्री ने मेरी अनुपस्थिति में स्कूल में साधारण सी नौकरी करके दिन काटे थे। मुझे उस पर बड़ी श्रद्धा हुई। वह मुझे देखकर अवाक् रह गयी। कालेपानी से जब मैं चलने लगा, तब जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मुझसे पूछा था कि अब क्या काम करोगे? तब मैंने कहा था मैं नहीं जानता। हां ! मेरी स्त्री ने मुझे छुड़ाने के लिए महात्मा गान्धी और मि० एण्ड्रुज़ से मिलकर जो-जो उपाय मेरी रिहाई के लिए किए हैं और स्वयं एक हिन्दू और ब्राह्मण वर्ण की मर्यादा की रक्षा के लिए थोड़ी सी मेहनत मजदूरी के वेतन से अपनी और अपनी लड़कियों की रक्षा की है-अब मैं उसी की आज्ञाओं का पालन करूंगा। **वह कन्या पाठशाला में लड़कियों को पढ़ावेगी और मैं उसकी जगह घर का कामकाज करके अपने जीवन को पवित्र करूंगा।**

❑❑

लाहौर का दूसरा मुकद्दमा

देशभक्तों के दमन के क्रम में अंग्रेज सरकार ने पंजाब प्रान्त से अन्य १०० लोगों को फिर पकड़ा और उन पर भी भयंकर अपराध करने का अभियोग लगाया गया। इस मुकद्दमे में भाई बलवन्त सिंह, डॉ. मथुरासिंह, वीरसिंह, बन्तासिंह सगवाल, रंगासिंह आदि इन छह देशभक्तों को फांसी दी गयी और ८२ देशभक्तों को आजीवन कालापानी के कारावास की सजा दी गयी। इन देशभक्तों को अलग-अलग दिन लाहौर सेंट्रल जेल में फांसी पर लटका दिया। सरकार ने इसे "लाहौर षड्यन्त्र का दूसरा केस" नाम दिया। **(सम्पादक)**

आजादी के लिए विदेशों से सम्पर्क साधने वाले
डॉ० मथुरा सिंह

देश को स्वाधीन कराने के लिए अपना जीवन समर्पित करने वाले डॉ० मथुरासिंह का जन्म १८८३ ईसवी में जिला झेलम के 'ढुढिचाल' गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम सरदार हरिसिंह था। आप तीव्र बुद्धि छात्र थे। मैट्रिक पास करने के बाद आप रावलपिण्डी में स्थित 'मेसर्स जगतसिंह एण्ड ब्रदर्स' की दूकान पर रहकर प्राइवेट तौर पर डाक्टरी का कार्य सीखने लगे। तीन चार वर्ष में प्रशिक्षित होकर 'नौशेरा छावनी' में आपने अपनी स्वतंत्र दूकान कर ली। अभी काम चला ही था कि आपकी पत्नी और पुत्री दोनों का स्वर्गवास हो गया। चिकित्सा में अधिक प्रवीणता प्राप्त करने के लिए आपने अमेरिका जाने का कार्यक्रम बनाया। १९१३ में आप वहां जाने के लिए निकले। पर्याप्त धन न होने के कारण आपको शंघाई में ही रुकना पड़ा। वहां आपने चिकित्सा कार्य शुरू कर दिया जिसमें अच्छी सफलता मिली। कुछ समय बाद आपने कैनेडा जाने का विचार बनाया और वहां पहुंच गये। किन्तु वहां के इमिग्रेशन (आप्रवासी) विभाग द्वारा भारतीयों के साथ किये जाने वाले भेदभाव एवं अन्याय के कारण आपको वापिस लौटना पड़ा। गुलाम भारतीयों के साथ कैनेडा में कैसा दुर्व्यवहार हो रहा था, इसको आपने स्वयं अनुभव किया और प्रत्यक्ष देखा।

डॉ० मथुरा सिंह फिर शंघाई लौट आये। वहां आकर उन्होंने प्रवासी भारतीयों की दीन-हीन दशा की जानकारी प्रवासी भारतीयों को दी। कैनेडा

के आप्रवासी विभाग का कहना था कि जो जहाज अपने देश से सीधा कैनेडा आयेगा, केवल उसी जहाज से वे यात्रियों को उतरने देंगे। मथुरासिंह ने बाबा गुरुदत्तसिंह को अपना जहाज लेने की प्रेरणा दी जिससे भारतीय बिना किसी परेशानी के कैनेडा जा सकें। इनकी प्रेरणा से बाबा गुरुदत्तसिंह ने 'कामागाटामारू' नामक जहाज किराये पर ले लिया और उसका नाम 'गुरुनानक जहाज' रखकर उसको कैनेडा भेजा। किन्तु कैनेडा की गोरी सरकार ने न केवल उस जहाज को वापिस कर दिया अपितु 'कामागाटा मारू' के यात्रियों पर अनेक अत्याचार भी किये। डॉ० मथुरासिंह इस जहाज पर नहीं जा पाये थे। आप उस समय हांगकांग पहुंचे हुए थे। वहां अमेरिका से निकलने वाला 'गदर' अखबार आता था। आप वहां पर उस समाचार पत्र का प्रचार करते और एक अन्य गुप्त अखबार के द्वारा अंग्रेज सरकार के काले कारनामों का पर्दाफाश करते रहे। आपने हांगकांग, शंघाई में लोगों को भारत लौटकर स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय योगदान करने के लिए प्रेरित किया। आपके साथ बहुत से लोग भारत लौटने के लिए तैयार हो गए और कार्यक्रम तय किया कि कैनेडा से वापस लौटाये गये 'कामागाटामारू' जहाज में भारत लौटेंगे। अंग्रेज सरकार को जब डॉ० मथुरासिंह की इस योजना का पता चला तो उसने उस जहाज को शंघाई के बंदरगाह पर रुकने ही नहीं दिया। फिर ये सब अन्य जहाजों से कलकत्ता पहुंचे। सरकार ने इन सबको पंजाब का टिकट दिलाकर रेलगाड़ी में बैठा दिया। इस बीच बजबज गोली-कांड हो गया। उसे सुनकर सभी प्रवासी और अधिक क्रुद्ध हो उठे। पंजाब पहुंचकर सभी लोग सार्वजनिक क्रान्ति की तैयारी में जुट गये। आपको बम बनाने का काम सौंपा गया।

गद्दार कृपालसिंह द्वारा भेद खोल देने के कारण पंजाब की क्रान्ति विफल हो गई। सभी की धर-पकड़ शुरू हुई। आपके पीछे भी पुलिस पड़ी हुई थी। एक दो बार गुप्तचरों से आपका सामना भी हुआ किन्तु अकेले आपको पकड़ नहीं सके। आपको भुलावे में डालकर गिरफ्तार कराने की उनकी योजना भी सिरे नहीं चढ़ पायी। पुलिस की कुदृष्टि देखकर आपने काबुल की ओर प्रस्थान किया। पुलिस से बचते-बचाते आप काबुल पहुंच गये और वहां चिकित्सा करने लगे। आपकी योग्यता को देखकर वहां की सरकार ने आपको काबुल का चीफ मैडिकल आफिसर नियुक्त किया।

उस समय काबुल में भारत की एक 'अस्थायी सरकार' स्थापित

हो चुकी थी जो जर्मनी के सहयोग से भारत की स्वतंत्रता के लिए काम कर रही थी। आप भी उसके साथ जुट गये। इस सम्बंध में आप जर्मनी और ईरान आदि देशों में भी गये। अस्थायी सरकार की ओर से यह निश्चय किया गया कि एक पत्र रूस के जार को इस आशय का भेजा जाये कि वह भारत की आजादी की क्रान्ति में सहयोग करे। इस कार्य के लिए पर्याप्त सामान ऊंटों पर लाद कर सेवकों के साथ आप चले। किसी भेदिए ने यह सूचना अंग्रेज सरकार को दे दी। आपको ताशकन्द में गिरफ्तार कर लिया गया और फिर ईरान लाया गया। उसके बाद लाहौर लाया गया। यहां जनरल ओडायर के अत्याचारों का जोर था। अदालत के सभी फैसले उसके दबाव में होते थे। कुछ दिन न्याय का नाटक करने के बाद आपको भी फांसी की सजा सुना दी गयी।

फांसी की सजा होने पर आपसे छोटा भाई मिलने के लिए जेल में आया और रोने लगा। आपने उसको धैर्य बंधाते हुए कहा –**'क्या सिख लोग देश के लिए बलिदान होते समय रोया करते हैं ? मुझे तो बहुत खुशी है कि आजादी प्राप्त करने के लिए मुझसे जो कुछ बन सका, वह मैंने किया है। मैं बड़ी शांति से फांसी के तख्ते पर प्राण त्याग करूंगा। ऐसे साहसी और धैर्यवान् थे मथुरासिंह।**

क्रान्तिकारियों के वध के लिए कुख्यात लाहौर की सैंट्रल जेल में २७ मार्च १९१७ को डॉ० मथुरासिंह को फांसी पर लटका दिया। वे फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूल गये।

श्री बलवन्त सिंह

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

विदेश से लौटे हुए जिन पंजाबियों को क्रान्तिकारी आन्दोलन में फांसी हुई थी उनमें बलवन्तसिंह भी थे। १८८२ ई० में आपका जन्म जालन्धर के खुर्दपुर गांव में हुआ था। थोड़ी शिक्षा के बाद ही फौज में भर्ती हो गए किन्तु दस साल उसमें रहने के बाद उनका जी ऊब गया और आप विदेश रवाना हो गए। अब आप अमेरिका जाने के बजाय कैनेडा गए और वहीं पर काम करने लगे। कैनेडा में उन दिनों कोई गुरुद्वारा नहीं था। इसके अतिरिक्त भारतीयों को अपने मुर्दे जलाने का अधिकार भी नहीं था। उन्होंने पहले पहल इन्हीं बातों को ले कर सार्वजनिक आन्दोलन में प्रवेश किया और इसमें वे सफल रहे। भारतीयों को गोरे कुली बहुत ना-पसन्द थे, क्योंकि भारतीय उनसे अधिक मेहनत करते

थे। गोरे यह आन्दोलन करने लगे कि भारतीय हंडूरास द्वीप में भेज दिए जाएँ। इस पेच को भी वहां के भारतीयों ने काट दिया। इस आन्दोलन में श्री बलवन्त सिंह का मुख्य भाग था। किन्तु वह केवल इन्हीं बातों से सन्तुष्ट होने वाले जीव नहीं थे। लड़ाई छिड़ चुकी थी। विदेश की स्वाधीन आबोहवा में पले हुए हिन्दुस्तानी सैकड़ों की तादाद में देश वापस आने लगे ताकि यहाँ आकर क्रान्ति की आग भड़का सकें, क्योंकि इस समय ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आंखें कहीं और लगी थी। आप भी शंघाई पहुंचे। किन्तु वहां से हिन्दुस्तान न जाकर आप श्याम की राजधानी बैंकाक पहुचे। श्याम की सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया। लाहौर षड्यन्त्र में आपको सम्मिलित कर लिया गया और मृत्युदण्ड की सजा हुई।

फांसी घर में रहते समय आप पर जुर्म लगाया गया कि आपने अपने सिर पर जो कम्बल का टुकड़ा बांध रखा है उसमें अफीम है और उस अफीम का मतलब बताया गया कि वे इस अफीम को खाकर आत्महत्या करने वाले हैं। इस पर उन्होंने जबाव दिया वाह खूब रहा जब हमें गौरवपूर्ण ढंग से मरने का मौका दो चार दिन में मिलने वाला है तो मैं इस प्रकार कायरों की मौत क्यों मरूँ? यथा समय इनको फांसी दे दी गई। (–भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन इतिहास से)

फांसी की कोठरी में जिसका वजन बढ़ गया था
वीर बन्तासिंह (सगवाल)

मौत का नाम सुनकर बहादुर लोगों की भी रूह कांप जाती है किन्तु मौत का नाम सुनकर जो नहीं घबराते, जो मौत को निडर भाव से गले लगाते हैं, जो खुशी–खुशी फांसी के फंदे को चूमते हैं, ऐसे बहादुर विरले ही होते हैं। उनमें से एक थे वीर बन्तासिंह सगवाल जिनका फांसी की कोठरी में रहते, फांसी के दिन तक ग्यारह पाउण्ड वजन बढ़ गया था।

अन्यायी अंग्रेजों द्वारा दी गयी मौत को चिड़ाने वाले वीर बन्तासिंह का जन्म १८९० ईस्वी में जिला जालन्धर (पंजाब) के 'सगवाल' गांव में एक जाट सिख परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री बूटासिंह था।

कहावत है–'पूत के पांव पालने में ही दिख जाते हैं', पढ़ाई में तीव्रबुद्धि बन्तासिंह में समाज सेवा के संस्कार बालपन से ही दिखाई

पड़ने लगे थे। जालन्धर के डी.ए.वी. हाई स्कूल में उनके अध्ययन काल के दौरान १९०४-१९०५ में कांगड़ा में भारी भूकम्प आया जिसके कारण भारी तबाही हुई। आपने विद्यार्थियों का एक दल बनाकर पीड़ित लोगों की इतनी सेवा-संभाल की कि बड़े-बड़े लोग चकित रह गये। बाद में उस दल को आपने दीन-दुखियों की सहायता के लिए स्थायी समिति का रूप दे दिया और आवश्यकता पड़ने पर आपका दल उस क्षेत्र में सहायता करने लगा। हाई स्कूल पास कर आप व्यवसाय के लिए पहले चीन गये, वहां से फिर अमेरिका चले गये। अमेरिका में रहते हुए आपने गुलाम भारत के साथ जब वहां भी गुलामों जैसा हीन व्यवहार देखा तो आपके दिल को ठेस लगी और आप देश को स्वतन्त्र कराने की प्रतिज्ञा के साथ लौट आये। आपको अनुभव हुआ कि गुलामी के जीवन से तो मौत अच्छी है।

भारत लौटकर शिक्षा के प्रसार के लिए आपने एक स्कूल खोला और झगड़ों के नि:शुल्क निपटारे के लिए एक पंचायत बनायी। लोग आपकी पंचायत द्वारा किये गये स्वतन्त्र और निष्पक्ष फैसलों को खुशी-खुशी शिरोधार्य करते थे। बन्तासिंह नहीं चाहते थे कि गांव की गरीब जनता अंग्रेजों की अदालत में जाकर लुटे-पिटे। बन्तासिंह अपने क्षेत्र में बेहद लोकप्रिय और प्रभावशाली बन गये थे।

एक दिन एक निराली घटना घटी। हाई कोर्ट का एक फैसला आपके पास विचारार्थ आया। आपने उस फैसले को बदल दिया और दोनों पक्षों ने खुशी-खुशी उसको स्वीकार कर लिया। बात असाधारण थी। सरकारी अफसरों तक पहुंची। सरकार के कान खड़े हुए। सरकारी अधिकारियों को बन्तासिंह का यह प्रभाव फूटी आंख भी नहीं सुहाया। इसके अतिरिक्त इनका घर अमेरिका से लौटे हिन्दुस्तानियों का केन्द्र भी बना हुआ था। एक दिन पुलिस ने आपके घर छापा मारा। घर में आप नही थे। पुलिस आपके घर से बहुत-से कागजात और आप द्वारा लिखे ट्रैक्ट (छोटी पुस्तिकाएं) उठा ले गयी। उनके आधार पर आपके खिलाफ गिरफ्तारी के वारंट जारी हुए और आपको पकड़वाने के लिए पुरस्कार घोषित किया गया। किन्तु आप पकड़े नहीं जा सके।

एक दिन लाहौर के अनारकली बाजार में देशभक्तों की गुप्त मीटिंग थी। दोपहर का समय था। आप उसमें सम्मिलित होने के लिए अपने साथी श्री सज्जनसिंह फीरोजपुरी के साथ जा रहे थे। रास्ते में एक सब

इंस्पेक्टर से आमना-सामना हो गया। उसने आपकी तलाशी लेने की जिद्द की। आपने उसे काफी समझाया कि शरीफ लोगों से इस प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया करते। किन्तु सब इंसपेक्टर अपने पुलिसिया अभिमान में तलाशी लेने की जिद्द पर अड़ा रहा। बन्तासिंह ने कहा-'ठीक है, लीजिए तलाशी।' जब वह तलाशी लेने के लिए आगे बढ़ा तो बन्तासिंह ने धीरे से पिस्तौल निकाली और कहा कि- 'तलाशी न लेते तो अच्छा था। हमारे पास तो यही छोटी-सी चीज है। लो इसी को ले लो।' कहकर उस पर गोली दाग दी। सब इंसपेक्टर वहीं ढेर हो गया। आप अपने साथी के साथ भाग निकले। पुलिस पीछे भागी। कुछ दूर भागने पर आपके साथी को ठोकर लग गयी और वह गिर गया। पीछे से पुलिस आ गयी। आपने पिस्तौल के बल पर पुलिस को पास नहीं आने दिया। परन्तु चोट अधिक लगने के कारण आपका साथी भाग न सका। आप उसे एक तरफ छोड़कर स्वयं भाग निकले और मियांमीर स्टेशन पहुंचे। किसी प्रकार ट्रेन के एक डिब्बे में सवार हो गये। थोड़ी देर में देखा कि उसमें बहुत-से पुलिस वाले भी चढ़ लिये। आप समझ गये कि आज पुलिस की गिरफ्त में आ गया। लेकिन, अटारी स्टेशन पर जब ट्रेन रुकने वाली थी तो आप चलती ट्रेन से कूदकर नौ-दो-ग्यारह हो गये। पुलिस हाथ मलती रह गयी।

आपने निश्चय किया था कि देशद्रोहियों को दण्ड देना चाहिए। उस समय गदर पार्टी के प्रमुख कार्यकर्ता भाई प्यारासिंह को, जिला होशियारपुर के गांव नंगल कलां के जैलदार चन्दासिंह ने धोखे से गिरफ्तार करवा दिया था। आप अपने मित्रों भाई बूटासिंह और जिवन्दसिंह को साथ लेकर उसके घर पहुंचे और वहीं उसका काम पूरा कर दिया। इसके बाद आपने अमृतसर का एक पुल भी डाइनामाइट से उड़ा दिया था।

इसके बाद पुलिस से मुठभेड़ होना आपके लिए आम बात हो गयी। लेकिन अधिकांश पुलिस वाले आपसे भय खाते थे, इसलिए देखकर भी अनदेखा कर जाते थे। जिस तरह क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ मुखर्जी को 'बंगाल पुलिस के लिए आतंक' कहा जाता था उसी तरह आपको **'पंजाब पुलिस के लिए आतंक'** कहा जाता था। एक बार आपके साथ अविश्वसनीय किन्तु सत्य घटना घटी। घुड़सवार पुलिस ने एक बार आपका पीछा किया। आप साठ मील तक भागते चले गये किन्तु पुलिस के हाथ नहीं आये। उस दिन आपके पांव छलनी हो गये, स्वास्थ्य खराब हो गया। चिकित्सा सुविधा न होने के कारण आपका स्वास्थ्य गिरता

गया। विवश हो आप घर आ गये। कुछ दिन तक सुरक्षित रहे। एक दिन एक सम्बन्धी इलाज के बहाने अपने घर ले गया। उस रिश्तेदार ने चुपचाप पुलिस को बुला लिया। पुलिस ने घर को चारों ओर से घेर लिया। आपके कमरे का दरवाजा खुलते ही जब आपने पुलिस को सामने खड़ा देखा तो आप खिलखिलाकर हंस पड़े और रिश्तेदार की ओर देखकर बोले-''**भाई ! पुलिस को बुलाना था तो मुझे एक दम निहत्था क्यों कर दिया? पिस्तौल-रिवॉल्वर नहीं तो एक लाठी-डंडा ही रहने देते। उससे लड़ता-लड़ता एक वीर सैनिक की तरह प्राण तो दे सकता था !**''

'तो हमें क्या कायर समझ रखा है आपने ?' पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने रौब दिखाते हुए कहा।

बन्तासिंह ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया- 'इस समय एक कोठरी में निहत्था बंद देखकर आप लोग गिरफ्तार करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। जरा हथियार दें और बाहर निकलने दें, फिर देखूं कौन पकड़ सकता है?' कितना निर्भीक और आत्मविश्वासपूर्ण उत्तर था बन्तासिंह का।

उसे गिरफ्तार कर लिया गया। होशियारपुर के डिप्टी कलक्टर की अदालत में उन्हें पेश किया गया। आपकी गिरफ्तारी की खबर दोआबा क्षेत्र में बिजली की तरह फैल गयी। हजारों लोग जमा हो गये। कचहरी का हाता खचाखच भर गया था। अदालत से बाहर निकले तो भारी संख्या में दर्शनार्थ उमड़े जनसमूह को सम्बोधित करने की अनुमति आपने डिप्टी कलेक्टर से मांगी। वह मना न कर सका। आपने जनसमूह को अन्तिम सम्बोधन में कहा - ''**प्यारे भाइयो ! आज हमें इस तरह बेड़ियों और जंजीरों में जकड़ा देखकर आप निराश न हों। हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे बलिदान व्यर्थ नहीं जायेंगे। वह दिन शीघ्र आ रहा है जबकि भारत पूर्णतया स्वतन्त्र हो जायेगा और अकड़बाज गोरे लोग आपके पांवों पर गिरेंगे। आप सब लोगों को भी स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर प्राण देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।**''

आपको लाहौर ले जाया गया। क्रान्तिकारी बलवन्त सिंह के साथ आप पर भी अभियोग चलाया गया। अंग्रेज गुलाम देशों में न्याय का नाटक किया करते थे। जो कुछ करना होता था वह पहले से ही निश्चित होता था। ऐसा ही नाटक बन्तासिंह के मामले में किया गया। तुरत-फुरत सब कुछ हो गया और बन्तासिंह को मृत्यु दण्ड की सजा सुनायी गयी।

फांसी की सजा सुनकर आपने प्रसन्नता के साथ कहा– "हे परमात्मा ! तेरा कोटिश: धन्यवाद है जो तूने मुझे देश की सेवा में जीवन बलिदान करने का सुअवसर प्रदान किया है।"

फांसी के फैसले का आप पर तनिक भी दुखद और चिन्तापूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा अपितु **देश सेवा में अपनी बलि देकर आप इतने आनन्दित थे कि मृत्युदण्ड के दिन तक आपका ग्यारह पाउंड वजन बढ़ गया था।** निर्धारित दिन आपको प्रात:काल फांसी पर लटका दिया गया। इस प्रकार एक और देशभक्त का नाम बलिदानों की सूची में स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया।

पुलिस से हथियार लूटने में सक्रिय
श्री रंगासिंह

लाहौर सैंट्रल जेल के शहीदों में श्री रंगासिंह का भी एक साहसी देशभक्त के रूप में नाम है। आपका जन्म जालन्धर जिले के 'खुर्दपुर' गांव में श्री गुरुदत्तसिंह जी के घर सन् १८८५ के लगभग हुआ था। २३ वर्ष की आयु तक सेना के ३० नम्बर रिसाले में नौकरी करने के बाद सन् १९०८ में आप अमेरिका चले गये। वहां आपने भारतीयों के साथ गुलामों जैसा व्यवहार देखा तो आप में स्वाधीनता की आग प्रज्वलित हो गयी। उस समय अमेरिका में स्वाधीनता-प्रेमियों की 'ग़दर पार्टी' बन चुकी थी। और 'ग़दर' पत्र के माध्यम से वहां तथा अन्य देशों में स्वाधीनता-प्राप्ति की भावना को फैलाया जा रहा था। आप भी उसमें सम्मिलित हो गये। छह वर्ष वहां रहने के बाद स्वतन्त्रता की क्रान्ति में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के लिए आप २१ दिसम्बर १९१४ को भारत लौट आये। एक मास तक घर पर रहकर आपने घर का सारा प्रबन्ध किया और फिर गांव-गांव घूमकर क्रान्ति के माध्यम से आजादी प्राप्त करने का प्रचार करने लगे।

१९१४-१५ में क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस ने अपने अनेक साथियों के साथ मिलकर पंजाब में २१ फरवरी १९१५ को एक व्यापक क्रान्ति करने की योजना बनाई थी। दुर्भाग्य से यह योजना सरकार की जानकारी में आ गयी। पंजाब के सभी देशभक्त नेता और संदेहास्पद क्रान्तिकारी पकड़ कर लाहौर जेल में ठूंस दिये गये। रंगासिंह पकड़ में नहीं आये। क्रान्ति की असफलता और देशभक्तों की गिरफ्तारी से इन्हें हार्दिक पीड़ा हुई। लाहौर जेल से देशभक्तों को छुड़ाने की योजना बनाकर इन्होंने कपूरथला

का शस्त्रागार लूटने का निश्चय किया किन्तु अधिकांश देशभक्तों की गिरफ्तारी के कारण पर्याप्त जन न मिलने पर यह कार्यक्रम टालना पड़ा। फिर एक छोटी योजना बनायी गयी कि बाला के पुल पर तैनात पुलिस वालों से हथियार छीने जायें। इसके लिए एक टीम का गठन कर दिया। टीम पुलिस वालों की पर्याप्त सतर्कता के कारण योजना को साकार न कर सकी। इस बात को सुनकर रंगासिंह को काफी रोष हुआ। उन्होंने कहा कि 'यदि इसी प्रकार कार्यक्रम स्थगित होते रहे तो क्रान्ति का काम आगे कैसे बढ़ेगा?' इन्होंने कुछ लोगों को अपने साथ लिया और बाला के पुल पर तैनात पुलिस वालों से हथियार छीन लिये। मुकाबले में चारों पुलिसकर्मी मारे गये। अगली योजना को क्रियान्वित कर पाते उससे पूर्व, २६ जून १९१५ की रात को ये एक शरबत वाले की दूकान पर छिपकर सो रहे थे कि पुलिस को भेद मिल गया और उसने आकर इनको घेर लिया। गिरफ्तार करने के बाद इन्हें लाहौर जेल में रखा गया। कुछ दिन मुकदमे का नाटक करने के बाद इन्हें फांसी की सजा सुना दी गयी। और फिर एक दिन वहीं फांसी पर लटका दिया गया।

निर्दोष होते हुए भी फांसी की सजा पाने वाले
श्री वीरसिंह

आपका जन्म जिला होशियारपुर में 'बहोवाल' गांव में सरदार बूटासिंह के घर हुआ। १९०६ में आप कैनेडा चले गये। देश में क्रान्ति की लहर उत्पन्न होने पर आप भी भारत लौट आये और देशसेवा के कार्यों में लग गये। घूम-घूम कर आपने क्रान्ति का प्रचार किया।

पंजाब की क्रान्ति विफल होने के बाद सरकार की कुदृष्टि आप पर भी पड़ी। ६ जून १९१५ को आपको 'चिट्ठी' गांव में एक कुएं पर नहाते हुए घेर लिया। गिरफ्तार करके आपको लाहौर लाया गया। अन्य सौ लोगों के साथ आप पर भी मुकदमा चलाया गया। आप पर शस्त्रागार लूटने का षड्यन्त्र करने और डाके डालने के झूठे दोष लगाकर फांसी की सजा दे दी गयी। ❑❑

बाधाएं कब बांध सकी हैं, आगे बढ़ने वालों को।
विपदाएं कब रोक सकी हैं, मर कर जीने वालों को॥

लाहौर का तीसरा मुकदमा

(पंजाब में दो मुकदमे चलाकर अनेक देशभक्तों को फांसी और कालापानी की सजा देने के बाद अंग्रेज सरकार ने फिर १२ देशभक्तों पर मुकदमा थोपा। उनमें से डॉ. अरुड़सिंह, उत्तमसिंह, केहरसिंह और जीवनसिंह को फांसी की सजा सुनायी गयी। इस कार्यवाही को अंग्रेज सरकार ने ''तीसरा लाहौर षड्यन्त्र केस'' नाम दिया।) **(सम्पादक)**

एक मनमौजी क्रान्तिकारी और गुप्तचर

डॉक्टर अरुड़सिंह

गुप्तचर कार्य में दक्ष और मनमौजी स्वभाव के क्रान्तिकारी डॉ. अरुड़सिंह जिला जालन्धर के सगवाल गांव के थे। भाई बन्तासिंह भी इसी गांव के थे। आप दोनों साथ मिलकर क्रान्ति-सम्बन्धी प्रचार कार्य करते थे और योजनाएं बनाते थे। आपकी काली, भरी हुई दाढ़ी और बड़ी आंखों को देखकर साधारण आदमी भयभीत हो जाता था किन्तु आपका स्वभाव बहुत ही मधुर था। जिन दिनों आपकी गिरफ्तारी के वारंट जारी हो चुके थे और पुलिस आपकी तलाश में थी, तब भी आप गांव-गांव घूम कर क्रान्ति की जोत जला रहे थे। चालीस-चालीस मील प्रतिदिन चलने पर भी आप थकते नहीं थे। **आप प्रतिदिन प्रभुभक्ति के समय यह प्रार्थना करते थे कि हे प्रभु ! मेरी मृत्यु गोली या फांसी से हो।** आप में इतनी निर्भयता थी।

आप में एक चतुरता यह थी कि आप पुलिस वालों के इर्द-गिर्द रहकर और किसी भी थाने में जाकर वहां की सारी सूचनाएं ले आया करते थे और क्रान्तिकारी दलों को दे देते थे। पुलिस वालों को पता भी नहीं चलता था।

पुलिस की पकड़ में न आने के कारण आपके फोटो जगह-जगह लगा दिये गये-थानों, जेलखानों, चौराहों, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों पर। इतना होने पर भी आपको अपने एक अमेरिकन मित्र से मिलने की इच्छा हुई और फिर चल दिये लाहौर सेंट्रल जेल में मिलने। वहीं वे गिरफ्तार थे। उन्हें आप गुरु कहा करते थे। जेल के अन्दर जाकर आराम से मिल आये और जेल का सारा भेद भी ले आये। इस तरह बार-बार

आप वहां जाते और भेद लेकर आ जाते। किसी भेदिए ने पुलिस को सूचना दी कि अरुड़सिंह जेल में आता है। फिर भी आप भयभीत नहीं हुए और न आपका आना ही बंद हुआ।

एक दिन आप जेल के दरवाजे के बाहर खड़े शायद अपने गिरफ्तारी के इश्तिहारी फोटो को देख रहे थे कि एक पुलिस अफसर ने आकर पूछा–

''कौन हो तुम?''

''मैं अरुड़सिंह हूं।'' आपने स्पष्ट उत्तर दिया।

''कौन अरुडसिंह?'' पुलिस-अधिकारी ने पूछा।

''वही, जिसको ढूंढते-ढूंढते तुम थक गये हो।'' अरुड़सिंह ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया। पुलिस अधिकारी को विश्वास ही नहीं हुआ और वह इन्हें छोड़कर चलता बना।

मनमौजी अरुड़सिंह के मन में पता नहीं क्या आया कि लौट गये उस अधिकारी को फिर बुलाया और कहा- ''क्या तुम्हें विश्वास नहीं हुआ कि मैं अरुड़सिंह हूँ। ये देखा मेरा फोटो जेल की दीवार पर लगा है।'' पुलिस अधिकारी ने आकृति मिलने पर उसे गिरफ्तार कर लिया। अभियोग चला तो अरुड़सिंह ने सारी बातें यथावत् स्वीकार कर लीं। अभियोग के दौरान पुलिस अधिकारी सुक्खासिंह ने इनको कुछ चुभने वाली बात कह दी। अरुड़सिंह ने उसे फटकारते हुए कहा –

''कायर ! तेरे जैसों को मैं बटेर समझता हूं। मैं चाहता तो कभी का तुम्हारी गर्दन मरोड़कर तुम्हारा काम तमाम कर सकता था, किन्तु तुम्हारे जैसे कायर, गुलामों के खून से हाथ रंगना मैं पाप समझता हूं।''

''तो तुम मुझसे पहले भी मिले हो?'' थानेदार सुक्खासिंह ने उससे पूछा।

''तुम मिलने की बात कहते हो, मेरी डायरी में तो तुम्हारे सारे कारनामे दर्ज हैं।'' थानेदार घबराकर चुप हो गया।

जैसी कि संभावना थी, अरुड़सिंह को फांसी की सजा हुई। फांसी की कोठरी में ये मस्ती के साथ रहते और अपने साथ वालों को कहानियां सुनाकर उनका मनोरंजन करते। **जिस दिन आपको फांसी लगनी थी, उस दिन भी आप गहरी नींद में सो रहे थे।** वार्डर ने आकर आपको जगाया और कहा कि **''उठो, आज तुम्हें फांसी लगनी है।'' यह सुनकर आप उठे और एक जोरदार उद्घोष किया–**

"वंदे मातरम्"

सारी बैरक इस उद्घोष से गूंज गयी। कोठरियों में बंद कैदी समझ गये कि आज फिर कोई देशभक्त बलिवेदी पर बलिदान होने जा रहा है। इसके बाद तैयार होकर आप हंसते-हंसते फांसी के स्थल पर पहुंचे और फांसी के फंदे पर झूल गये। इसके साथ ही एक मस्ताने क्रान्तिकारी की कहानी इतिहास के पन्नों में समा गयी। पता नहीं किस मिट्टी से बने थे ये साहसी लोग ?

क्रान्ति के लिए पीतल के लोटों से ही बम बनाने वाले
श्री उत्तमसिंह

श्री उत्तमसिंह क्रान्ति-सम्बन्धी कामों के लिए वस्तुतः उत्तम कार्यकर्त्ता सिद्ध हुए। इनका जन्म जिला लुधियाना के 'हंस' गांव में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जीत सिंह था। आपका दूसरा नाम राधोसिंह भी था। आप व्यवसाय के लिए अमेरिका चले गये थे। वहां गदर पार्टी में आप एक मुख्य कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करते रहे। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए दिसम्बर १९१४ में भारत लौट आये। लौटते हुए आप जहाज में, भारत लौटने वालों में और भारतीय सैनिकों में क्रान्ति का प्रचार करते हुए आये थे। क्रान्तिकारी करतारसिंह से आपकी पहले से ही जान-पहचान थी। भारत आकर इनका गंधासिंह, अर्जुनसिंह, गणेश पिंगले से भी परिचय हो गया और साथ मिलकर पंजाब में सार्वजनिक क्रान्ति की योजना बनाने लगे।

युवा करतारसिंह ने जब १९ फरवरी १९१५ को केवल पचास आदमियों को साथ लेकर ब्रिटिश सरकार की एक मजबूत छावनी फ़िरोजपुर पर सशस्त्र हमला किया था तो उसमें आप भी शामिल थे। यद्यपि उसमें सफलता नहीं मिल पायी किन्तु उससे क्रान्तिकारियों का साहस और विश्वास कम नहीं हुआ। १९ फरवरी का विराट् विप्लव गद्दारों द्वारा पहले ही भेद दे देने के कारण असफल हो गया। अंग्रेज सरकार ने व्यापक स्तर पर पागलों के समान धर-पकड़ शुरू कर दी। उत्तमसिंह के नाम भी वारंट जारी हुआ किन्तु ये पुलिस की पकड़ में नहीं आये।

गिरफ्तारी से बच गये स्वतन्त्रताप्रेमी क्रान्तिकारियों को इस बात से मार्मिक पीड़ा हुई कि व्यापक क्रान्ति का महल पूरा होने से पहले ही ढह गया और अनेक सक्रिय और निर्दोष लोगों को पकड़कर जेलों में ठूंस दिया गया। उन्हें यातनाएं भुगतनी पड़ीं। और अब वे फांसी से कम

सजा नहीं पायेंगे, यह सोचकर शेष बचे क्रान्तिकारियों ने मिलकर योजना बनायी कि जेल पर हमला करके साथी क्रान्तिकारियों को छुड़ाया जाये। इस योजना को पूरा करने के लिए ये लोग अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने की आयोजना में लग गये। उत्तमसिंह स्वयं भी बम बनाना जानते थे। एक बार आपने पीतल के लोटों से ही बम बना लिये थे।

इस दल ने पहले कपूरथला राज्य के मैगजीन को लूटने का विचार बनाया किन्तु उसे रद्द कर दिया क्योंकि दल में बहुत कम लोग रह गये थे, अधिकांश गिरफ्तार हो चुके थे। फिर इनके दल ने 'बाला पुल' पर तैनात पन्द्रह सिपाहियों पर हमला करके १५ रायफलें और ७५० कारतूस छीन लिये। यह काम कुछ लोगों ने ही किया। हथियार मिलने पर अब जेल पर हमला करने की योजना बनायी जाने लगी। अभी योजना बन ही रही थी कि उससे पूर्व ही जब आप १९ सितम्बर १९१५ को फरीदपुर राज्य के 'माना-बघवाना' गांव के एक साधु की कुटिया में एक साथी के साथ ठहरे हुए थे, पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। पकड़े जाने पर आप दोनों ने ''वंदे मातरम्'' का उद्घोष किया और देशभक्ति के गीत गाने शुरू कर दिये। आपने अपनी गिरफ्तारी पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा था-

''मुझे केवल इतना ही दु:ख है कि गिरफ्तारी के समय मेरे पास रिवाल्वर या राइफल नहीं थी।''

पाठक इस प्रतिक्रिया से अनुमान लगा सकते हैं कि यदि उत्तमसिंह के पास हथियार होता तो वे अंग्रेजी पुलिस के कई सिपाहियों को मारकर गिरफ्तार होते। इतना साहस उनमें था।

लाहौर के तीसरे षड्यन्त्र नामक अभियोग में आपको फांसी की सजा हुई। लाहौर की सेंट्रल जेल में एक दिन आपको फांसी पर लटका दिया गया। लाहौर की जेल पर एक और क्रान्तिकारी के खून का धब्बा लग गया।

अज्ञात विवरण वाले दो शहीद-

१. **श्री केहरसिंह**

२. **श्री जीवन सिंह**

आप दोनों को लाहौर के तीसरे षड्यन्त्र-काण्ड में फांसी दी गयी थी। आप दोनों का जीवन परिचय उपलब्ध नहीं हो सका।

❑❑

२१ फरवरी १९१५ की क्रान्ति का गद्दार भेदिया

कृपालसिंह

जैसा कि पाठकों ने स्थान-स्थान पर पढ़ा है कि २१ फरवरी १९१५ को सारे भारत में एक व्यापक क्रान्ति करने की तैयारी क्रान्तिकारी संगठनों ने कर ली थी। यदि यह क्रान्ति सफल हो जाती तो देश बहुत पहले आजाद हो जाता। बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब यहां तक कि बर्मा तक शस्त्रास्त्रों के भंडार इकट्ठे कर लिये गये थे। क्रान्तिकारी संगठन अपने स्थानों पर पहुंच चुके थे। यह सब कुछ विफल किया एक सिख कृपालसिंह ने। वैसे ऐसे नीच व्यक्ति के साथ 'सिख' शब्द लगाना सारी सिख कौम को कलंकित करना है इसलिए इसका केवल नाम से ही परिचय दिया जायेगा। पाठकों को गद्दारों की भी जानकारी होनी चाहिए।

पंजाब के एक मुसलमान पुलिस उपअधीक्षक (डी.एस.पी.) ने लालच देकर कृपालसिंह को गुप्तचर बना क्रान्तिकारियों का भेद लेने को कहा। वह अपने दूर के भाई से सम्बन्ध बनाकर क्रान्तिकारी दल में शामिल हो गया। क्रान्तिकारियों को इस पर सन्देह तो हो गया था किन्तु उन्होंने उसको इसलिए नहीं मारा कि क्रान्ति के दो-चार दिन पहले कोई बखेड़ा खड़ा न हो जाये। इसने २१ फरवरी की क्रान्ति की सूचना अधिकारियों तक पहुंचा दी। क्रान्तिकारियों ने इस पर निगरानी शुरू करके योजना बदलकर १९ फरवरी की तारीख तय कर दी। यह सूचना देने के लिए जो संदेशवाहक आया तो उसने सहजभाव से यह सूचना रासबिहारी को दी। उसे भी इसने सुन लिया। शाम को मौका मिलते ही वह खिसक गया और एक निकट के गुप्तचर को यह सूचना भी दे आया। चारों ओर व्यापक स्तर पर जोरशोर से छापे पड़े और धर-पकड़ शुरू हो गयी। धरपकड़ के कारण १९ फरवरी की सूचना तब तक नहीं पहुंच पायी। इस प्रकार यह क्रान्ति विफल हो गयी। १९ फरवरी को ७०-८० लोगों को लेकर केवल करतार सिंह ही फीरोजपुर छावनी पर आक्रमण करने पहुंचा किन्तु वहां व्यापक पहरा देखकर वापस लौट आया। इस प्रकरण में सैकड़ों क्रान्तिकारी पकड़े गये जिनमें से अधिकांश को फांसी या काला पानी का आजीवन कारावास हुआ। (**सम्पादक**)

❑❑

अमेरिका से लौटने वाले एक और स्वतन्त्रता प्रेमी

क्रान्तिकारी ऊधमसिंह

जिला अमृतसर के 'कसैल' नामक गांव में जन्मे ऊधमसिंह का अधिक विवरण ज्ञात नहीं है। उनके विषय में इतनी ही जानकारी प्राप्त है कि जब 'ग़दर' समाचार पत्र द्वारा प्रवासी भारतीयों को देश में लौट कर आजादी के आन्दोलन में भाग लेने का आह्वान किया गया तो लौटने वाले उन व्यक्तियों में आप भी थे। अमेरिका से ३५० प्रवासी भारतीयों को लेकर एक जहाज भारत लौटा तो सारे भारतीयों को गिरफ्तार कर जेल में ठूंस दिया गया। अपनी ही भूमि पर अपनी यह दुर्दशा देकर ऊधमसिंह सहित सभी स्वतन्त्रता प्रेमियों के हृदय पर आघात लगा। इससे भी अधिक अत्याचारपूर्ण घटना यह घटी कि सन् १९१५ के फरवरी मास में आयोजित पंजाब के विप्लव के विफल हो जाने पर वहां से देशद्रोह के आरोप में अमेरिका से लौटने वाले लोगों को भी घसीट लिया गया और कितने ही निर्दोष लोगों को फांसी या आजीवन कैद की सजा सुना दी गयी। ऊधमसिंह को उम्रकैद की सजा सुनाकर कालेपानी (अंडमान जेल में) भेज दिया गया। १९२१ के अन्त में आपको मद्रास की बेलारी जेल में लाकर एक सुनसान कोठरी में बंद कर दिया। एक दिन सवेरे अधिकारी ने आकर देखा तो कोठरी पर ताला बंद था किन्तु आप गायब थे। वहां से भागकर आप काबुल पंहुचे। देश की याद आने पर आप फिर भारत लौट आये। यहां आपके गिरफ्तारी-इश्तिहार लगे हुए थे। पुलिस द्वारा तलाश जोरों पर थी। आपको पुन: काबुल लौट जाना पड़ा। वहां से एक दिन फिर भारत आने के लिए जब आप सरहद पर पहुंचे तो किसी ने आपको गोली मार दी। हत्यारा कौन था, यह रहस्य आज तक भी बना हुआ है। अंग्रेजों ने निर्दोष लोगों के साथ कैसा-कैसा नारकीय व्यवहार किया है, इसका एक प्रमाण उधमसिंह है। ❑❑

क्रान्तिकारी जगत सिंह

देशभक्त जगतसिंह के बारे में इतनी ही जानकारी उपलब्ध है कि क्रान्ति का वातावरण बनने पर अमेरिका से जब सिखों सहित अनेक भारतीय भारत लौट आये तो उनमें जगतसिंह भी थे। पंजाब की क्रान्ति

विफल होने के बाद पुलिस का आतंक बढ़ गया था। ऐसी परिस्थितियों में आपको दो साथियों के साथ किसी क्रान्ति-सम्बन्धी काम के लिए भेजा गया। आप तीनों एक तांगे में सवार होकर निकले।

रास्ते में तीन सिखों को एक साथ तांगे में सवार देख पुलिस ने रोक लिया और तीनों को थाने में चलने के लिए विवश करने लगे। थाने में जाने का मतलब था नरक की यातनाएं भुगतना या क्रान्ति-योजना का भेद बताना। इनको दोनों ही बातें स्वीकार नहीं थीं। आपके दल ने पुलिस का मुकाबला शुरू कर दिया। तीनों में से एक मारा गया, दो भाग निकले। सरदार जगतसिंह हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-तगड़े भीमकाय व्यक्ति थे। दूर से ही पहचाने जाते थे। जगतसिंह एक स्थान पर पानी पीकर हाथ पोंछ रहे थे कि पीछे से आकर इनसे भी शक्तिशाली एक मुसलमान इनकी दोनों टांगों से मजबूती से चिपट गया। धक्का-मुक्की में ये गिर गये और गिरफ्तार कर लिये गये। फांसी की सजा देकर इनका भी जीने का अधिकार छीन लिया। ❑❑

रोलट एक्ट और जलियांवाला बाग की बर्बर घटना

तब प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१९१९) चल रहा था उसी समय भारत को अंग्रेजों से आजाद कराने के लिए भारत तथा विदेशों में अनेक प्रकार की गतिविधियां प्रारंभ हो गयी थीं। इनमें क्रान्तिकारी कार्यक्रमों का आयोजन मुख्य लक्ष्य था। भारतवासी तथा भारत के प्रवासी यह मनौती कर रहे थे कि इस युद्ध में अंग्रेज गठबन्धन हारे और जर्मनी जीत जाये, क्योंकि जर्मनी भारत की आजादी का समर्थक और सहयोगी था, किन्तु भारतीयों की यह मनौती पूरी नहीं हुई। जर्मनी हार गया और इसके साथ ही भारतीयों का भाग्य भी हार गया। इस प्रकार आजादी का लक्ष्य भी अधूरा रह गया।

अंग्रेज सरकार की विजय होने के बाद भी अंग्रेज भारतीयों को किसी प्रकार की ढिलाई नहीं देना चाहते थे। उन्होंने इस अवधि में उठे जन-आंदोलनों को जड़ से कुचल देने का इरादा बनाया और इसके लिए एक राजद्रोह निवारण समिति (सिडीशन कमेटी) बनायी जिसके अध्यक्ष अंग्रेज न्यायाधीश रोलट थे। इस कमेटी ने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक से लेकर सभी क्रान्तिकारी और गैर क्रान्तिकारी कार्यक्रमों की समीक्षा की और उनका दमन करने के लिए सुभाव दिया। इस समिति की सिफारिशों को क्रियान्वित करने के लिए एक विधेयक बना जिसे 'रोलट एक्ट' नाम दिया गया। इस विधेयक के द्वारा भारतीयों के आजादी प्राप्त करने के सारे अवसर छीन लिये गये थे।

सारे देश में इसके विरुद्ध आन्दोलन खड़े हो गये। इसी अवसर पर दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकार के लिए लड़ चुके महात्मा गांधी भी कार्यक्षेत्र में आये और उन्होंने घोषणा की कि यदि सरकार यह कानून बनायेगी तो देश में असहयोग आंन्दोलन शुरू किया जायेगा और अंग्रेजों का भारत में रहना असम्भव कर दिया जायेगा। इस एक्ट के द्वारा अंग्रेज सरकार ने जितना दमन करने की सोची थी, विद्रोह उतना ही व्यापक स्तर पर भड़क उठा।

इसी रोलट एक्ट के विरोध में जलियां वाला बाग में एक विशाल

जनसभा का आयोजन किया गया था।

१३ अप्रैल १९१९ को वैसाखी का पवित्र त्यौहार था। लगभग २०-२५ हजार आबाल वृद्ध-नरनारी अमृतसर के जलियांवाला बाग में रोलट एक्ट का शान्तिपूर्ण विरोध करने के लिए एक जनसभा के रूप में एकत्रित हुए थे। यह बाग चार दीवारी से घिरा था और इसमें से निकलने का एक ही रास्ता था। अंग्रेज सरकार को स्वाधीनता के लिए जुटी इतनी बड़ी भीड़ नहीं सुहाई। आजादी के इच्छुक भारतीयों को भयभीत करने के लिए कुख्यात और क्रूर जनरल डायर एक पलटन को लेकर आया। उसने पहले बाग के रास्ते को रोक लिया और फिर सेना ने बाग को घेर लिया। फिर शान्त एवं निहत्थी उस जनसभा पर गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। रास्ते की ओर सेना खड़ी थी। हथियारबंद सैनिकों को देखकर लोग दीवार फांदने लगे। सैनिकों ने दीवार फांदने वालों को विशेष रूप से निशाना बनाया। हजारों की भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चल रही थीं। पलटन के पास जब तक आखिरी गोली रही, गोली चली। गोलियां समाप्त होने के बाद बर्बर जनरल डायर की गोरी पलटन रोते-बिलखते, चीखते-चिल्लाते, घायल बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं, युवकों को वहीं जैसा का तैसा छोड़कर चली गई। **बाग में लाशों के ढेर लग गये थे। पन्द्रह मिनट में कुल १६५० राउण्ड गोलियां चलीं।** एक गोली कई-कई लोगों को घायल करती या मारती गयी। डर के मारे जहां भीड़ और गहरी हो गई वहीं पर इशारा करके गोली चलवायी गयी। जन. डायर को जैसे हत्या का पागलपन सवार था।

दुनिया के इस सबसे अधिक नृशंस काण्ड में एक हजार के लगभग लोग मारे गये और दो हजार के लगभग घायल हुए। सभ्यता के इतिहास में इतना क्रूर और घृणित हत्याकांड कभी नहीं हुआ।

इस जघन्य व्यापक हत्याकाण्ड के विरोध को दबाने और इस पर लीपापोती करने के लिए अंग्रेज सरकार ने इसकी जांच के लिए हण्टर कमीशन बैठाया। जनरल डायर ने उसके सामने जो बयान दिया उसमें पश्चात्ताप का रत्तीभर भी अंश नहीं था, अपितु उसने जले पर और नमक छिड़क दिया। जब उससे पूछा गया कि क्या उसने लोगों को पहले तितर-बितर करने का प्रयास किया ? और क्या गोलीकाण्ड के बाद घायलों की मदद की ? बर्बर डायर ने बड़े अहंकार के साथ उत्तर दिया कि **''मैंने लोगों को तितर-बितर करने की आवश्यकता नहीं समझी**

और उस समय घायलों की मदद करना मेरा कर्तव्य नहीं था।'

भारतीय जनता की इस पीड़ा को पंजाब के गवर्नर माइकल ओडायर ने और बढ़ा दिया। उसने एक तार भेजकर डायर के कार्य को न केवल उचित ठहराया अपितु उसकी प्रशंसा भी की। ऐसे बर्बर लोगों का इलाज शान्ति नहीं, क्रान्ति ही को सकती है। क्रन्तिकारी ऊधमसिंह ने जनरल डायर के देश इंग्लैंड जाकर उसकी हत्या से इस नृशंस काण्ड का कुछ बदला तो चुका ही लिया।

भारतीय जनता को आतंकित करने के लिए अंग्रेज सरकार ने जलियांवाला बाग का घृणित काण्ड किया किन्तु इससे स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जोश और उत्साह में कमी नहीं आयी अपितु यह काण्ड स्वाधीनता- प्राप्ति का एक प्रमुख कारण बना। यह काण्ड अंग्रेजी सिंहासन का पलीता बनकर सामने आया। (**सम्पादक**)

❑❑

डायर से निहत्थे लोगों के खून का बदला लेने वाले

वीर सरदार ऊधमसिंह

साहस, शौर्य और अत्याचार के विरुद्ध प्रतिशोध की प्रतिमूर्ति के प्रतीक वीर ऊधमसिंह का नाम आजादी के इतिहास में सदा सम्मान के साथ याद किया जाता रहेगा। भारत माता के इस सपूत ने जलियां वाला बाग में निहत्थे हजारों लोगों को मौत के घाट उतारने वाले अत्याचारी जनरल डायर को उसी के देश में जाकर गोली से उड़ाकर बदला लिया था और इस प्रकार देश के स्वाभिमान को जीवन्त रखा था।

ऊधमसिंह का जन्म २६ दिसम्बर १८९९ को पंजाब की पटियाला रियासत के सुनाम नामक कस्बे में कम्बोज वंश में हुआ था। उनके पिता का नाम रहलसिंह था। वे रेलवे में गेटमैन थे। बचपन में ऊधमसिंह की माता का देहान्त होने के बाद उनके पिता अमृतसर में आकर रहने लगे। कुछ समय बाद उनके पिता का भी देहान्त हो गया। अब ऊधमसिंह और उनके बड़े भाई साधु सिंह अनाथ हो गये। जीवन निर्वाह का उपाय न देख रिश्तेदारों ने दोनों भाइयों को अनाथालय में भरती करा दिया। कुछ समय बाद बड़े भाई साधुसिंह का भी देहान्त हो गया। ऊधमसिंह बिल्कुल अकेला रह गया। उसने स्वयं को निराशा में डूबने नहीं दिया, साहस से काम लिया और एन्ट्रेंस परीक्षा पास कर ली। साथ में कुछ कारीगरी का काम भी सीख लिया।

इस बीच भारत की आजादी के इतिहास में एक बर्बर और महत्वपूर्ण घटना घटी जो ऊधमसिंह के युवा मन पर गहरा और अमिट प्रभाव छोड़ गयी। रोलट एक्ट के विरोध में देश भर में व्यापक उत्तेजना फैली हुई थी। वैशाखी का पवित्र पर्व था। पंजाब में १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर के जलियां वाला बाग में रौलट एक्ट के विरोध में विशाल जनसभा हो

रही थी जिसमें पच्चीस हजार के लगभग बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्रियां सभी उत्साह से सम्मिलित हुए थे। सभी लोग निहत्थे थे, शान्त थे। सभा शान्तिपूर्वक चल रही थी। कुछ ही देर में बर्बर स्वभाव के लिए बदनाम अंग्रेज फौज का जनरल डायर गोरी फौज को लेकर आया और सभास्थल को घेर लिया। बिना किसी चेतावनी के उसने निहत्थे लोगों पर गोलियां बरसाना शुरू कर दिया। बाग से निकलने का एक ही तंग रास्ता था। गोरी पल्टन उस रास्ते की ओर खड़ी हो गयी और उधर आने वालों तथा दीवार फांदकर भागने वालों पर गोलियां बरसायी गयीं। पन्द्रह मिनट में १६५० राउंड गोलियां चलाई गयी। जलियां वाला बाग में अब सभा की जगह लाशों के ढेर लग गये थे। गोलियां बरसाकर जनरल डायर चलता बना। घायल बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं, युवाओं की चीखों-कराहों और बहते खून की धाराओं से सारा वातावरण नरकमय दिखाई पड़ता था। इस कांड में लगभग एक हजार लोग मारे गये थे और कई हजार घायल हुए थे। संसार में ऐसा नृशंस कांड शायद ही कोई हुआ हो। सरदार ऊधमसिंह ने इस कांड को अपनी आंखों से देखा था। गोलियों से घायल हुए लोगों को संभालने और सेवा करने की जिम्मेदारी अनाथालय के विद्यार्थियों को भी सौंपी गयी थी। सरदार ऊधमसिंह भी उनमें एक थे। बस इस दर्दनाक दृश्य को देखकर उसी दिन ऊधमसिंह के मन में आततायी डायर से बदला लेने का विचार बैठ गया था। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इस नरक जैसी गुलामी में जीने से तो देश के लिए बलिदान हो जाना अच्छा है और इस आततायी डायर को जीवित नहीं छोड़ना चाहिए।

इस बीच उनका एक लकड़ी के ठेकेदार से सम्पर्क हुआ। उसका अमेरिका में कारखाना था। वे उसके साथ अमेरिका चले गये। कुछ ही समय में अपनी मेहनत से वे नौकर से कारखाने के भागीदार बन गये। उस समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन जोरों पर था। भारत के स्वतंत्रता सेनानी आजादी के लिए लाठी-गोली खा रहे थे, फांसी के फंदे पर झूल रहे थे, बलिदान पर बलिदान हो रहे थे और अंग्रेजों के क्रूर अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। अमेरिका के समाचार पत्र में इस प्रकार के दर्द भरे समाचार पढ़कर उनका हृदय कसमसा उठता था। सरदार भगतसिंह के साथ पत्र व्यवहार ने उस कसमसाहट को और बढ़ा दिया। वे आजादी के आन्दोलन में भाग लेने के लिए अमेरिका में जमा-जमाया धंधा छोड़कर आ गये। भारत आकर उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतीक रूप में अपना नया नाम रखा -'राम मुहम्मद आजाद' और आजादी के आन्दोलन

में कूद पड़े। शीघ्र ही उनको गिरफ्तार कर लिया गया और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली गई। उन्हें चार वर्ष के कारावास की सजा मिली।

चार वर्ष बाद ऊधमसिंह जेल से छूटे। इस बीच जन. डायर इग्लैंड जा चुका था। अपनी प्रतिज्ञा को पूरा करने के लक्ष्य से ऊधमसिंह इग्लैंड पहुंच गये। वे वहां छह-सात वर्षों तक रहे और इस अवसर की प्रतीक्षा करते रहे कि आततायी डायर से बदला लेने का सुनिश्चित मौका कब मिले।

फिर एक दिन वह मौका मिल ही गया। १३ मार्च १९४० के दिन लंदन के 'इंडिया हाउस' में एक सभा का आयोजन किया गया। उसका मुख्य वक्ता था वही डायर। ऊधमसिंह भी श्रोता के रूप में सभा में पहुंच गया और उपयुक्त स्थान पर बैठ गया। वक्ता के रूप में डायर की बारी आयी। बड़ी अकड़ के साथ वह खड़ा हुआ और बड़े अभिमान के साथ अपने क्रूर कारनामों की शेखी बघारने लगा। आजादी के आन्दोलन में भाग लेने वाले भारतीय नेताओं के प्रति वह अपमानजनक शब्दों का प्रयोग कर रहा था।

तभी ठांय.....ठांय.....ठांय, गोलियों की आवाज गूंजी।

आततायी और अभिमानी डायर खून से लथपथ मंच पर पड़ा था। उसकी अभद्र वाणी शान्त हो चुकी थी और दुष्ट हाथ शिथिल हो चुके थे। सभा में भगदड़ मच गयी। लोग भाग निकले।

.....किन्तु एक युवक वहां पिस्तौल हाथ में लिए निडर खड़ा था। वह युवक था वीर ऊधमसिंह। चाहता तो वह भागकर छिप सकता था किन्तु भागने को वह कायरता समझता था, इसलिए भागा नहीं, किसी और को उसने कुछ नहीं कहा।

ऊधमसिंह को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। अदालत में मुकदमा चला। मजिस्ट्रेट ने पूछा -'तुमने डायर की हत्या क्यों की ?' ऊधमसिंह ने निर्भीक भाव से उत्तर दिया -**'उस पापी ने मेरे देश के हजारों निहत्थे और शान्त लोगों की हत्या की थी। उस हत्यारे से बदला लेना मेरा राष्ट्रीय कर्तव्य था। मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया है। मुझे न इसका अफसोस है और न मृत्युदण्ड का भय। देश के स्वाभिमान के लिए मैं खुशी-खुशी बलिदान होने को तैयार हूं।'**

मजिस्ट्रेट ने ऊधमसिंह को मृत्युदण्ड की सजा सुनाई। १२ जून १९०० ईस्वी को उस वीर को लंदन की पैटन विला जेल में फांसी पर लटका दिया गया। बलिदानियों की सूची में एक वीर का नाम और अंकित हो गया। ❑❑

शहीद खुशीराम

(क्रान्तिकारी भगतसिंह द्वारा लिखित)

"१९१९ का वर्ष भी हिन्दुस्तान के इतिहास में हमेशा याद रहेगा। ताजी-ताजी लड़ाई खत्म हुई थी। हिन्दुस्तानियों और विशेषत: पंजाबियों ने प्राणों पर खेलकर अंग्रेज़ों को जीत हासिल करवाई थी, लेकिन अहंकारी अंग्रेज़ों ने अहसान का खूब बदला चुकाया। रोलट-एक्ट पास कर दिया। तूफान मच गया। पंजाब में खास तौर पर जोश बढ़ गया। पंजाब में तो अभी पिछले युद्ध की याद ताजा थी,उन्हें रोलट-एक्ट देखकर हद दर्जे की हैरानी हुई। हड़तालें, जुलूस व मीटिंग होने लगी। जोश बहुत बढ़ा। नौबत जलियांवाला और मार्शल लॉ तक आ गयी।

लोग डर गये। कौन कह सकता था कि निहत्थों पर भी गोली चलायी जा सकती है। आम लोगों ने गिरते-पड़ते पीठ में ही गोलियां खायीं। लेकिन उनमें भी श्री खुशीराम जी शहीद ने छाती पर गोलियां खा-कर कदम आगे बढ़ाया और बहादुरी की लाजवाब मिसाल कायम कर दी।

आपका जन्म २७ सावन, संवत् १९५७ में गांव सैदपुर, जिला झेलम में लाला भगवानदास के घर हुआ था। इनकी जाति अरोड़ा थी। पैदा होने पर आपकी जन्म-पत्री बनाई गयी और बताया गया कि वह बालक बड़ा बहादुर और तगड़ा होगा और इसका नाम भी खूब प्रसिद्ध होगा। इसलिए उस समय आपका नाम श्री भीमसेन रखा गया, लेकिन बाद में खुशीराम के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। आप अभी बहुत छोटे ही थे, जब आपके पिता का देहान्त हो गया। आपका खानदान बहुत गरीब था और आपका पालन-पोषण लाहौर नवांकोट अनाथालय में हुआ था। वहीं पहले-पहल आपकी शिक्षा शुरू हुई। वक्त गुजरता चला गया। आप

फिर डी० ए० वी० कालिज, लाहौर में पढ़ने लगे। १९१९ में १९ वर्ष की आयु में आपने पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा दी थी और छुट्टियां बिताने जम्मू चले गये।

सुना कि तीस मार्च के बाद महात्मा गांधी जी ने आदेश दिया कि ३ अप्रैल को देश-भर में हड़ताल की जाये और जलसे-जुलूस निकाले जायें। आप भी लाहौर पहुंचे। आकर पूरी तरह काम को सफल बनाने का प्रयत्न करने लगे। कालेजों के लड़कों ने नंगे सिर बड़े-बड़े जुलूस 'हाय-हाय रोलट-एक्ट' कहते हुए निकाले थे। यह सब आपके यत्नों का फल था। दो चार दिन बड़ी रौनक रही। १२ अप्रैल को बादशाही मस्जिद, लाहौर में जलसा हुआ। भीड़ का कोई शुमार न था। हजारों आदमी थे। गर्मागर्म भाषण हुए। धुआंधार भाषणों के बाद जुलूस बनाकर लोग शहर को चल पड़े। हीरामण्डी जब पहुंचे और शहर में घुसने लगे, उसी समय नवाब मुहम्मद अली सेना के साथ आगे तैनात था। उसने हुक्म दिया कि जुलूस को भंग कर दो। लेकिन वे दिन बड़े अजीब थे। खुशीराम आगे-आगे झण्डा उठाये जा रहे थे। कहा, "यह जुलूस कभी वापस नहीं लिया जा सकता और जुलूस की शक्ल में ही शहर में घुसेगा।" नवाब ने हवा में गोली चला दी। लोग भाग छूटे। शेरमर्द लाला खुशीराम ने गरज की, एक बार तो लोगों को खूब लानत दी। कहा, "तुम्हें शर्म नहीं आती, इस तरह गीदड़ों की तरह भागते हो।" लोग एकत्र हो गये। लाला खुशीराम आगे जा रहे थे। नवाब ने फिर गोलियां चलाई। इस बार गोली हवा में नहीं, बल्कि सीधे महाशय खुशीराम की छाती में लगी। गोली लगी तो आप जख्मी शेर की तरह झपटकर आगे बढ़े। और गोली लगी तो आप और आगे बढ़े। एक-एक कर सात गोलियां छाती में लगीं लेकिन खुशीराम का कदम आगे ही बढ़ता चला गया। आखिर आठवीं गोली माथे के दायीं ओर और नवीं गोली बायीं ओर आ लगी। शेर तड़फकर गिर पड़ा। खुशीराम सदा की नींद सो गये, लेकिन आज उनका नाम जिन्दा है। उनकी बहादुरी व हिम्मत आज भी उसी तरह ताजा है। आपकी लाश का बड़ा भारी जुलूस निकला। आम ख्याल किया जाता है कि कम से कम पचास हजार लोग इस जुलूस में शामिल थे।

इस तरह उस वीर ने अपने और अपने राष्ट्र के गौरव के लिए प्राणों की बाजी लगा दी। और अपना नाम अमर कर गया। कुछ वर्षो बाद एक कवि ने एक बड़ी दर्द भरी कविता लिखी थी।" ('विद्रोही' नाम से अक्तूबर, १९२८, 'किरती' में) ❑❑

असहयोग आन्दोलन के प्रणेता

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

आजादी के आन्दोलन के कर्णधार महात्मा गांधी आज किसी परिचय की अपेक्षा नहीं रखते। असहयोग एवं अहिंसात्मक आन्दोलनों के द्वारा जन-जागरण कर आजादी प्राप्त कराने में गांधी जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कारण आपको 'राष्ट्रपिता' कहकर स्मरण किया जाता है।

आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। पिताश्री का नाम कर्मचन्द था। आपका जन्म गुजरात में कठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर २ अक्तूबर १८६९ को हुआ। आपने विदेश में वकालत की शिक्षा प्राप्त की और फिर वकालत करने लगे। एक बार आप दक्षिण अफ्रीका गये तो वहां गोरों का भारतीयों के प्रति अपमानजनक व्यवहार देखकर आपका हृदय व्याकुल हो उठा। एक दिन आप रेल के उस डिब्बे में चढ़ गये जिसमें गोरे बैठे थे। आपका बिस्तर बाहर फेंककर आपको नीचे उतार दिया गया। इन घटनाओं ने सामाजिक-समानता के संघर्ष के लिए प्रेरित किया। दक्षिण अफ्रीका में आपने पर्याप्त कार्य किये। भारत में आजादी के प्रति भावनाएं उभरने पर आप यहां आ गये। आपने असहयोग एवं अहिंसात्मक तरीके से अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किये। अनेक बार जेल की यातनाएं सहीं। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आपने अनेक बार अनशन किया। १९२० में आपने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की। १३ मार्च १९२२ को आपको गिरफ्तार किया गया।

आपने तत्कालीन गवर्नर लार्ड इर्विन को पर्याप्त समझाने का प्रयास किया कि अंग्रेजों को भारत छोड़ कर चले जाना चाहिए। जब इर्विन नहीं माना तो कांग्रेस ने ३१ दिसम्बर १९२९ को लाहौर में पूर्ण स्वराज्य की घोषणा कर दी और स्थान-स्थान पर आन्दोलन शुरू कर दिया। डांडी यात्रा कर नमक न बनाने की सरकारी आज्ञा को भंग किया। ९ अगस्त १९४२ को 'भारत छोड़ो' आन्दोलन आरम्भ किया। गांधी जी को पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलनों और साथ ही क्रान्तिकारियों के आतंक से डरकर १५ अगस्त १९४७ को देश आजाद हुआ। ३० जनवरी १९४९ को नत्थूराम गोडसे की गोली से महात्मा

गांधी शहीद हुए। आगे प्रस्तुत है उन्हीं की लेखनी से लिखा जेल का एक अनुभव। (**सम्पादक**)

असहयोग आन्दोलन और चौरी चौरा काण्ड

अंग्रेजी शासन के अत्याचारों से सारे देश में नीचे-नीचे विद्रोह की आग सुलगने लगी। ऐसे अवसर पर कांग्रेस ने भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कार्यक्रम आरम्भ कर दिये। महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन चला और सफल रहा। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का नारा दिया। स्कूल, कॉलेजों का भी बहिष्कार किया गया। परिणाम यह निकला कि लगभग २५,००० देशभक्तों को जेलों में बंद कर दिया। महात्मा गांधी को छोड़कर सभी बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये।

इसी समय जिला गोरखपुर के 'चौरी चौरा' नामक स्थान पर ५ फरवरी १९२२ को एक घटना घटी जिसका असहयोग आन्दोलन पर तो नकारात्मक प्रभाव पड़ा ही, कांग्रेस में भी फूट उभर आयी। 'चौरी चौरा' स्थान पर देशभक्त लोग जुलूस निकाल रहे थे। पुलिस ने उसको रोककर तितर-बितर होने के लिए कहा किन्तु भीड़ उसी प्रकार बनी रही। पुलिस ने जुलूस पर तब तक गोलियां दागीं जब तक गोलियां समाप्त न हो गयीं। गोलियां समाप्त होते ही पुलिस वाले डरकर थाने में चले गये और थाने को अन्दर से बंद कर लिया। जनता ने थाने को आग लगा दी, गोली चलाने वाले २० पुलिसकर्मी उसमें जल कर मर गये। महात्मा गांधी ने जब यह खबर सुनी तो १२ फरवरी १९२२ की कार्यसमिति में यह कहकर असहयोग आन्दोलन बंद करने की घोषणा कर दी कि 'अभी जनता सत्याग्रह करने के योग्य नहीं हुई है।'

महात्मा गांधी के इस निर्णय से साधारण कांग्रेसियों के अतिरिक्त उनके प्रमुख शिष्य और कुछ बड़े नेता भी रुष्ट हो गये। उनमें से चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू आदि ने पृथक् 'स्वराज्य दल' की स्थापना कर ली। जो क्रान्तिकारी क्रान्ति को छोड़कर असहयोग आन्दोलन की ओर झुके थे, वे फिर से क्रान्तिकारी गतिविधियों में लग गये। इनमें चन्द्रशेखर आजाद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नये क्रान्ति दल भी उभरने लगे।

अंग्रेज सरकार ने, जो महात्मा गांधी की गिरफ्तारी से होने वाली क्रान्ति से घबरा रही थी, यह देखकर कि आपस में फूट पड़ गयी है,

उनको १३ मार्च को गिरफ्तार कर लिया। इस निर्णय से आजादी की प्राप्ति का लक्ष्य कई वर्ष पीछे चला गया। उत्साही किन्तु नेतृत्वविहीन जनता विचलित स्थिति में फंसकर रह गयी। (**सम्पादक**)

नमक आन्दोलन और डांडी यात्रा

नमक आन्दोलन के लिए की गयी डांडी-यात्रा महात्मा गांधी के जीवन की उल्लेखनीय घटना है। कांग्रेस द्वारा ३१ दिसम्बर १९२९ में की गयी 'पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति' की घोषणा के बाद भी जब अंग्रेज सरकार नहीं झुकी तो गांधी जी ने १८ मार्च १९३० में साबरमती में हुई कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में नमक कानून तोड़कर सत्याग्रह करने की घोषणा की और कहा कि सबसे पहला सत्याग्रही मैं बनूंगा। उन्होंने कहा कि जैसे जल और वायु पर सबका अधिकार है उसी प्रकार नमक पर भी सबका प्राकृतिक अधिकार है।

अंग्रेजों के समय जनता पर नमक बनाने का कानूनी प्रतिबन्ध था। ५ अप्रैल १९३० को गांधी जी साबरमती के पास डांडी नामक स्थान पर पहुंचे और वहां नमक बनाकर कानून तोड़ा। किन्तु सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। आन्दोलन को सक्रिय करने के लिए नेताओं की गिरफ्तारी जरूरी थी। गांधी जी ने निश्चय किया कि पास ही धारसना नामक स्थान पर स्थित सरकारी नमक-गोदाम पर कब्जा करके नमक पर सरकार का एकाधिकार समाप्त किया जाये। उन्होंने अपनी योजना की सूचना सरकार को दे दी। अब सरकार के लिए उनको गिरफ्तार करना अनिवार्य हो गया। फलत: ५ मई १५१६ को दोपहर उनको गिरफ्तार कर लिया गया। गांधी जी की गिरफ्तारी से सत्याग्रह और आन्दोलन का जोर फिर से शुरू हो गया। (**सम्पादक**)

महात्मा गांधी की जेल-कहानी

(जेल के अनुभव)

१ जनवरी सन् १९०८ शुक्रवार की दोपहर को मुझे मेरे कुछ अन्य साथी स्वदेशवासियों के साथ, दो मास की साधारण कैद की सजा इस अपराध के कारण दी गई कि हमने 'एशियाटिक एमेण्ड मेण्टला' के अनुसार रजिस्ट्री का सार्टीफिकेट नहीं लिया था। जोहान्सबर्ग में सब से पहले मेरा मुकदमा पेश हुआ। हुक्म सुनने और कुछ देर कैदियों के अहाते में खड़े रहने के बाद एक कैदियों की सींखचों की बन्द गाड़ी में सवार कराया गया। जब मैं गाड़ी पर ले जाया गया, तब अदालत के

बाहर हजारों की संख्या में लोग बाहर खड़े होकर प्रतीक्षा कर रहे थे। पर मुझे चुपचाप अदालत की गाड़ी में बैठाकर जेल की ओर रवाना किया गया। मेरे मन में अनेक तरह के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे। पहले मुझे ख्याल आया कि मुझे मेरे स्वेदशवासियों के साथ रखा जायेगा या क्या होगा?

जेल के दरवाजे पर गाड़ी पहुंची तब हम लोगों को उतारा गया और 'स्वागत-भवन' में पहुंचाया गया। वहां पर हमारे नाम दर रजिस्टर हुए। हमारे अंगूठों के निशान लिये गये तथा नाप तोल करके और हमारे असली कपड़े उतारकर जेल की वर्दी पहनाई गयी। और पुलिस को हमारी पहुंच की रसीद एक परवाने के रूप में दे दी गयी। इसके बाद हम लोगों को अफ्रीका के वहशियों या जंगलियों की कोठरियों में बन्द कर दिया गया। हम में कितने ही उच्च-शिक्षा प्राप्त तथा कुलीन भारतवासी थे, पर उनकी किसी की जंगलियों से अधिक कुछ कद्र नहीं समझी गई।

जिस कमरे में मैं बन्द किया गया था, उसमें १६ आदमियों के रहने की जगह थी। रोशनी का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। रात के लिए हमें एक डोल तथा एक टीन का ग्लास दिया गया। हमारे बिस्तर के लिए तख्त, दो कम्बल, बोरियां और सिरहाने के 'माफी' ! हमारी दरख्वास्त पर गवर्नर ने एक मेज और दो बेंचें हमारे कमरे में रख देने की अनुमति दे दी।

सुबह छः बजे हमारी कोठरियां खोल दी जाती थीं, और शाम को बन्द कर दी जाती थीं। हमें ६ छटांक खाना दिया जाता था। हम में से कई आदमी उसे खा भी नहीं सकते थे, और न इनका पेट भरता था। रविवार को ६ छटांक मांस भी मिलता था, पर हम लोग उसे नहीं खाते थे। इसलिए उसके बदले में पाव भर आलू ले लेते थे। खाने पीने में बड़ी गड़बड़ी थी पर हम लोंग कोई किसी तरह की प्रार्थना नहीं करना चाहते थे। गवर्नर ने एक दिन हम से जेल में आकर पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं? इसका उत्तर दिया गया कि सब अच्छा है।

इसके बाद बहुत दिन तक वह खाने का पहला इन्तजाम न रह सका और किसी तरह से तीन मास बिताकर हमने छः मास की यह कारावास की जीवनी समाप्त की।

❑❑

श्रीयुत लाला हरकिशनलाल

(आत्मकथा)

"मेरी गिरफ्तारी एकाएक हुई। मेरी कल्पना भी न थी कि मैं गिरफ्तार किया जाऊंगा। मैं और मेरे साथी हड़ताल बन्द करवाने की बहुत चेष्टा कर रहे थे। महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के कारण लाहौर में भी हड़ताल हुई थी। १० और १८ तारीख़ को बिना अपराध भारतीयों पर गोली चलाई गई, इससे हड़ताल ने और भी विराट् रूप धारण कर लिया, साथ ही लोगों का जोश भी उमड़ पड़ा। इसी बीच में लाहौर के अन्यान्य लीडरों के साथ मुझे भी गिरफ्तार किया गया।

जेल में सुलूक

गिरफ्तारी के समय और फैसले के बाद मेरे साथ अच्छा बर्ताव रहा, परन्तु अमृतसर और गुजरांवाला के लीडरों के साथ कठोर व्यवहार किया गया था। अन्यान्य शहरों और गांवों के कैदियों के साथ तो साधारण कैदी और भी खूंखार हो जाते हैं। नई कौंसिलों का गठन होने पर जेलखानों की पाशविकता को हटाकर मनुष्यता की रक्षा करनी चाहिए।

पहले पंजाब की दशा

१० अप्रैल १९१९ से पहले पंजाब में बिल्कुल शान्ति थी। हां, सर ओडायर पंजाब में सार्वजनिक जीवन का नाश करना चाहते थे। उन्होंने अपने शासन में इसके लिए बहुत चेष्टाएं कीं। बहुत कुछ सफलता भी हुई। इसके साथ ही लार्ड चेम्सफोर्ड की सरकार भी सहमत थी, नहीं तो कोई कारण नहीं था कि पंजाब में हम लोगों के ठीक-ठाक सूचना देते रहने पर भी इस तरह से लोगों पर अत्याचार हो। पंजाब में जो कुछ हुआ है, यद्यपि इसकी आशा नहीं थी, पर सर ओडायर के कठोर शासन से उकताकर हर पढ़ा-लिखा पंजाबी घृणा करने लगा था। मेरे ख्याल में अशान्ति का कारण सर ओडायर था और उसने ही अपने निकम्मे शासन से ब्रिटिश शासन पर एक तरह का बदनुमा धब्बा लगा दिया।

सरकार और लीडर

पंजाब सरकार और उसके गुरगे हमेशा यह समझते रहे हैं कि भारतीयों, खासकर पंजाबियों का राजनीति से क्या सम्बन्ध? ये सब तो

उन की दृष्टि में वन पशु हैं। बातचीत में साधारणतया जिन्हें आजकल पंजाब के लीडर कहा जाता है बेशक इनके साथ सर ओडायर और उसकी सरकार ने कभी अच्छा बर्ताव नहीं किया। बराबर यह ख्याल किया जाता रहा कि पंजाबी जंगली हैं, उनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। राजनीति के लिए पश्चिमवासियों ने ही जन्म लिया है और उनकी ही बपौती है। पंजाब की सरकार जो कुछ आज्ञा दे, उसे पालन करना मात्र पंजाबियों का कर्त्तव्य है। इसी भूल और भ्रम के कारण अगर बस चलता, तो सर ओडायर पंजाबी नेताओं को मार्शल-ला से पहले ही कुचल डालता। अब उसने साधारण-सी घटना से अनुचित फायदा उठाया और पंजाब के फूंस के ढेर में अशान्ति की आग की चिनगारी लगाकर उसे प्रचण्डता के साथ प्रज्वलित कर दिया। मेरे ख्याल में मार्शल-ला के कारण मृतप्राय: पंजाब में फिर जीवन का संचार हुआ और वह ऐसा हुआ जो शायद तिलक, गांधी और गोखले जैसे लीडरों के आन्दोलन से इतना शीघ्र कभी न होता।

नये लाट

सर एडवर्ड़ मेंकलेगन नये लाट की भूमिका खासी है। पर आरम्भ में ही उसके सम्बन्ध में कुछ निश्चय कर सकना भविष्यवादिता ही होगी। मेरे ख्याल में सर ओ डायर के साथी चारों ओर से उन्हें घेरे हुए हैं। उनकी उपस्थिति में कोई किसी तरह का परिवर्तन कर सकना सर मेंकलगन के अधिकार से बाहर की बात मालूम होती है। हां, भारत सरकार स्वयं कुछ शासन में परिवर्तन कर दे तो दूसरी बात है। वरन् अभी बहुत दिनों तक के लिए विपत्तियों के बादल हमारी और सरकार की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पंजाबी कला-कौशल

पंजाब में कोई ऐसा काम नहीं हो रहा है जिससे गरीब पंजाबी किसी तरह का व्यापार और स्वदेशी कला कौशल की उन्नति कर सके। जब से सर ओ डायर की सरकार ने पंजाब के बैंकों पर हाथ साफ किया है और धड़ा-धड़ बैंक बन्द हुए हैं, तब से व्यापारिक उन्नति के लिए पंजाब सिर नहीं उठा सका। इस सम्बन्ध में कमीशन बैठा था। यदि उसकी स्कीम के अनुसार पंजाब सरकार ने कुछ उदार स्वभाव दिखाया तो सम्भव हो सके।"

❑❑

श्रीयुत लाला गोवर्द्धनदास

"लाला गोवर्द्धनदास लाहौर में किसी बैंक के मैनेजर थे और चुपचाप देश के राजनीतिक कार्यों में भाग लेते रहे। **पंजाब में जब मार्शल-ला जारी हुआ तब निरीह भारतीयों पर गोली चलाकर बुरी तरह से मारा जाने लगा। सरे बाजार प्रतिष्ठित पुरुषों को नंगे करके कोड़े लगने लगे तथा तरह-तरह के अत्याचार किये गये।** तब लाला गोवर्द्धनदास भी चुप न रह सके। उन्होंने सोचा कि जो कुछ अत्याचार यहां पर हो रहे हैं, अभी उनकी ठीक खबर पंजाब से बाहर नहीं जा सकती। चुपचाप पंजाब को रसातल में भेजा जा रहा है। उसके लीडर पकड़े जा रहे हैं। ऐसी दशा में यह कठिन काम था कि कोई आदमी पंजाब में रह कर सर ओ डायर के अत्याचारों के सामने शिर उठाकर कुछ कह सकता। उसी हालत में लाला गोवर्द्धनदास ने अपना सब काम काज छोड़कर दिल्ली, कराची, बम्बई और मद्रास में जोरदार भाषण दे कर सर ओ डायर का भाण्डा फोड़ा और बाम्बे क्रानिकल में ओ डायर के उन अत्याचारों का वर्णन करके देश की आखें खोलीं, जो सर ओ डायर शान्ति का नाम लेकर पंजाब पर कर रहा था। देश भर में हलचल मच गई। पंजाब सरकार की भी निद्रा टूटी और उसने मद्रास से लाला गोवर्द्धनदास को गिरफ्तार कर मंगवाया। वहीं से यह कहानी आरम्भ होती है जो देशभक्त गोवर्द्धनदास जी ने लिखी है। मार्शल-ला के दिनों में लाला गोवर्द्धनदास जी ने जो निर्भीकतापूर्ण कार्य किया है उसके लिए समस्त देश उनकी प्रशंसा करता है।

(आत्मकथा)

मुझे १२ मई सन् १९१९ को मद्रास में गिरफ्तार किया गया और विशेष पहरे में लाहौर लाया गया। लाहौर में पहले मुझे मि० बोरंग पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के सामने पेश किया गया। मि० काक्स डिप्टी इंस्पेक्टर पुलिस भी वहाँ पर मौजूद थे। पास में सर उमरहयात खां टिवाना भी कुरसी नशीन थे। दोनों पुलिस अफसरों ने कहा कि तुमने पंजाब गवर्नमेंण्ट का मुंह काला कर दिया है और तुम ही समस्त भारतवासियों को अधिकारियों का विरोधी बनाने वाले हो। इस पर उमरहयात ख़ां भी चुप न रह सके और आपने कहा कि आज अगर मुसलमानों का राज होता

तो ज़मीन में गड़वाकर इसका बदला लिया जाता।

जेल की तंग कोठरी में

मुझे २१ मई सन् १९१९ को लाहौर की सेण्ट्रल जेल की एक एकान्त और अन्धकारमय कोठरी में बन्द कर दिया गया। अफसर मुझे एक भयंकर खूंखार आदमी समझते थे, इसलिए मैं एकान्तवास में रखा गया था। सुबह और शाम को केवल १० मिनट मुझे बाहर निकलने की आज्ञा मिलती थी।

नजरबन्दी और कैदी

६ जून को मुझ पर मुकदमा चलाने का फ़ैसला किया गया, परन्तु तुरन्त ही इसके बाद मुकदमा वापस ले लिया गया। फिर साथ ही भारत रक्षा कानून के अनुसार मुझे नजरबन्द कर दिया गया। एक मास तक मैं नजरबन्द रहा। ५ जुलाई १९१९ को बाम्बे क्रानिकल में मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसके आधार पर मुझ पर मुकदमा चलाया गया। मुझ से पैरवी करने को कहा गया किन्तु उस अन्याय के युग में मैंने सत्याग्रह करना उचित समझा और बिल्कुल पैरवी नहीं की। परिणाम यह हुआ जो हर हालत में होना था कि मुझे ३ वर्ष का सपरिश्रम कारावास और एक हजार जुर्माना की सजा दी गयी।

खास कैद

एंग्लो इण्डियन समाचार पत्रों के लेखों के अनुसार मुझे उन ३७ कैदियों में रखा गया जिनके साथ खास वर्ताव की दुहाई दी जाती थी। हम लोगों को बहुत बुरी रोटी और गन्दी दाल दी जाती थी। सुबह को बड़ा खराब घी और शाम को तैल मिलता था। सप्ताह में एक बार खराब मांस या हलुआ।

पांच सौ कैदी

मार्शल ला के शिकार और पांच सौ कैदी बहुत बुरी हालत में थे। उनसे गर्मी के मौसम में आठ घण्टे कुलियों से भी कड़ा काम लिया जाता था। उनमें कितने ही प्रतिष्ठित और शिक्षित भी थे। उनको खाना-पीना इतना बुरा मिलता था कि उसको लिखने के लिए मेरे पास शब्द नहीं। **इससे बढ़कर उन कैदियों के साथ बहुत बुरा सलूक हुआ जो लोहे के ५ फुट लम्बे और ३ फुट चौड़े पिंजरों में गर्मी के दिनों में बन्द किये गये थे। उधर धूप कड़ाकेदार पड़ती थी और वे खड़े भी नहीं हो सकते थे। गुंजरावाला के रईस-ए-आजम-दीवान मंगलसेन, मि०**

फतेहसिंह बी०ए० तथा मि० सर्वदयाल बैरिस्टर को भी इन ही पिंजरों में बन्द किया गया था। १२ और १४ वर्ष के लड़कों के चूतरों पर केवल लंगोटी मात्र बंधी रहने देकर बुरी तरह बेंतें लगायी जाती थीं।

साधारणतया कैदियों को गर्मी में पांच बजे और सर्दी में ७ बजे उठाकर १५ मिनट में शौचादि से निवृत्त होने दिया जाता था। स्नान करने की कोई सुविधा नहीं थी। **कभी कभी तो पीने का भी पर्याप्त पानी नहीं मिलता था। कई बार मैंने अपनी आखों से प्यास के मारे कैदियों को बेहोश पड़े देखा है।**

कैदियों को बैरकों में जो चारों ओर से खुली रहती हैं सोना पड़ता है। पंजाब में यद्यपि सर्दी बहुत सख्त पड़ती है पर इनके पास केवल तीन कम्बल होते हैं, जो खालिस ऊनी नहीं होते। हस्पताल की भी खराब हालत है, वहां बीमार होकर भी प्राय: कैदी जाना पसन्द नहीं करते। क्योंकि वहां पर कोई परवाह नहीं की जाती। बीमारों को जो दूध मिलता है उसमें ७० फीसदी पानी होता है। जेलखानों की हालत सुधारने और उनको 'रिफ़ारमेंटरी' ढंग से बनाने की जरूरत है।" ❑❑

श्रीयुत पं० रामभजदत्त चौधरी

(आत्मकथा)

"१४ अप्रैल सन् १९१९ को लाहौर की म्युनिसपैलिटी के सेक्रेटरी की एक चिट्ठी लाला हरकिशनलाल, लाला दुनीचन्द और मुझे मिली जिसमें हमें टेलीग्राफ-आफिस में सलाह करने के लिए बुलाया गया था। पर वहां जाने पर हमें मालूम हुआ कि सेक्रेटरी की चिट्ठी का तो बहाना था, वास्तव में हम को डिप्टी कमिश्नर ने बुलाया था। डा० गोकुलचन्द नारंग को एक अलग कमरे में इस तरह बुलाकर ले जाया गया और हम तीनों को दूसरे कमरे में। वहां डिप्टी कमिश्नर ने हम को भारतरक्षा कानून के अनुसार निर्वासित किये जाने के तीन आज्ञापत्र पढ़ सुनाये जिन में मुझे डेरा गाज़ी ख़ां और लाला हरकिशनलाल को केम्बलपुर तथा लाला दुनीचन्द को भी वहीं। इसके बाद हम तीनों को एक मोटर में बैठाकर मियांमार की छावनी को रवाना किया गया और वहां से हम लोगों को एक स्पेशल ट्रेन में बैठा कर अमृतसर की ओर को ले जाया गया और वहां से यथा स्थानों को भिजवा दिया गया।

डेरा गाज़ी ख़ाँ में

डेरा गाजी खां में मैं तीन दिन रहा। मेरे रहने के लिए एक कोठी खाली करवाई गयी और २० दिन तक मैं वहां अच्छी तरह से रहा। मेरे पास बहुत से लोग आते थे मगर सिवा एक वकील के और कोई मारे डर के कभी मेरे पास नहीं आया।

अभियोग की तैयारी

६ मई सन् १९१९ को वहाँ के डिप्टी कमिश्नर ने मुझे एक तार दिखाया जो १२ एफ० इण्डियन पैनल कोड के अनुसार मुझे गिरफ्तार करने के लिए गवर्नमेण्ट ने भेजा था। डिप्टी कमिश्नर ने मुझे सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा कि आशा है आप निर्दोष हो कर छूट जायेंगे। इसके बाद मुझे पुलिस की हिरासत में लाहौर को भेजा गया।

अगले दिन रात के ११ बजे लाहौर पहुंचा। स्टेशन पर खाना खाया और इसके बाद लाहौर की सेण्ट्रल जेल में पहुंचा दिया गया। पुलिस का वर्ताव इस समय तक मेरे साथ अच्छा था। मुझे भयंकर कोठरी में रखने की आज्ञा थी। जमादार एक धुन्धली सी कोठरी में ले जाकर मुझ

से कहने लगा कि तुम इसमें अपना बिस्तर कर लो। मैंने उसमें अपना बिस्तर कर लिया और जमादार चला गया। पहले मेरी इस कोठरी में गुरदासपुर के वकील लाला पेशावरीमल थे जो बाहर निकाल दिये गये और उनको पास की एक कोठरी में रखने का हुक्म हुआ। उक्त वकील साहब ने पास की और कोठड़ियों में आवाज दी। मि० मुहिसिनशाह बैरिस्टर, मि० कालीनाथ सम्पादक ट्रिब्यून और मि० दीवानचन्द बैरिस्टर तथा मि० कृष्ण बी०ए० सम्पादक उर्दू प्रताप आदि पंजाब के अनेक गण्यमान्य नेता लोग सड़ रहे थे। उन लोगों ने अपनी अपनी कोठड़ियों से वन्देमातरम् की आवाजें दे कर मेरा स्वागत किया।

भयंकर कोठरी का दृश्य

जिस कोठड़ी में मुझे रखा गया था, वह ९ फुट लम्बी थी। इस कोठड़ी में पेशाब टट्टी जाने के लिए दो दो ईंटें रखी हुई थी। गर्मी असह्य थी, इधर मच्छरों और डांसों ने आक्रमण कर रखा था। उधर नाक दुर्गन्ध के मारे फटी जा रही थी। मैंने सोने की बहुत चेष्टा की, पर वहां नींद कहां थी। अन्त में राम-राम करके कहीं २ बजे आंख लगी। दुर्भाग्य से थोड़ी देर में पहरा बदलने का समय हो जाने से पहरा बदला और

कौन जवान ! उठो जवान !! बोलो जवान !!!

की बीभत्स आवाज आई। मैं नहीं जानता था कि यहां पहरा देने का यही रिवाज है और हर एक कैदी का बोलना अनिवार्य है। इसीलिए मैंने कहा—आइए महाशय, पधारिए और कहिए क्या हुक्म हकाम है? मगर महाशय इतना सुनकर ही वहां से चले गये और इन्होंने पधारने की कृपा नहीं की!

मेरे साथी भी जेल में

सुबह उठकर मालूम हुआ कि लाला हरकिशनलाल और मि० दुनीचन्द भी सेण्ट्रल जेल से वापस आ गये हैं। साथ ही मुझे यह भी मालूम हुआ कि मुझे, मि० दुनीचन्द और डा० किचलू को जेल में खूब सख्ती और सावधानी से रखने की आज्ञा दी गयी है। हम लोग एक दूसरे से मिल न सकें, इसका खास तौर पर ध्यान रखने की चेतावनी दी गयी है।

कठोर व्यवहार

मेरे साथी सभी कैदियों को प्रायः बहुत बुरी कोठरियों में रखा गया

था। २४ घण्टे में केवल १५ मिनट बाहर निकलने की आज्ञा थी। इधर रात को प्रथम तो नींद ही नहीं आती थी और जब सुबह थोड़ी बहुत आंख लगती तो अनेक कुत्सित अपराधों के कारण दण्ड पाये हुए अशिक्षित कैदी पहरे वाले बहुत बुरी तरह से बुलाकर जगा देते और न बोलने पर बुरी गालियां देते जो उनके कुत्सित और घृणित चरित्र की परिचायक होती थी।

कैदियों की सहानुभूति

एक दिन मैं इसी तरह से सो रहा था तब कि पहरेदार कैदी ने आकर आवाज दी। मैं नहीं बोला उसने फिर आवाज दी, मैंने चुप रहना मुनासिब समझा। इस पर वह फिर कड़कड़ाकर बोलना ही चाहता था कि मैंने उसे डांटकर कहा कि जाओ, जेलर साहब को हमारा 'पैगाम' दो कि हम ये गालियां नहीं सह सकते। हम लोग चोर, जार या डाकू तथा ख़ूंख़ार असभ्य खूनी कैदी नहीं हैं। ये सब गालियां नहीं सह सकते। जमादारों को भी मैंने समझाया और दूसरे दिन हम लोगों ने यह बड़े आश्चर्य से देखा कि जेल के सभी कैदी कर्मचारियों का वर्ताव हमारे साथ अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण हो गया है। मेरा ख्याल है कि शायद उन लोगों ने पहले यह ख्याल किया होगा कि ये भी कोई ऐसे ही हरामख़ोर कैदी होंगे किन्तु जब उनको गरीब देश के साथ प्रेम करने के कठोर अपराध के कारण जेल में आने का मामला किसी तरह से मालूम हुआ तो उन कुत्सित कर्म करने वाले बदमाश कैदियों के हृदयों में सहानुभूति का समुद्र उमड़ पड़ा। मार्शल-ला के प्रायः सभी कैदियों का वे लोग बड़ा सम्मान करने लगे।

कोठरी से छुटकारा

जिस कोठरी में २४ घण्टे हम लोग कैद रहते थे और रात को बुरी तरह तड़फड़ाते थे अन्त में कम से कम रात को सोने के लिए छुटकारा मिला। लोहे के सिंखचों से घिरे मैदान में हम लोगों को सोने की अनुमति मिल गयी। यद्यपि बीस-बीस हाथ ऊंची दीवारों पर से हवा आनी कठिन थी किन्तु हमारे भाग्य से कुछ आ सकती थी। उससे हम वंचित न रहे। पर वहां जमीन पर सोना होता था इसलिए प्रायः चीटियां और कीड़े बिस्तरों पर चढ जाते थे जिससे बड़ा कष्ट होता था। एक दिन मुझे सोते सोते बिच्छू ने काट खाया जिससे बड़ा कष्ट हुआ। क्योंकि गर्मी का मौसम था इसलिए उसका जहर बड़े जोर से चढ़ा और मुझे व्याकुल कर दिया।

सरला की दरख्वास्त

मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सरलादेवी ने जेल में पहुंचते ही सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल को दरख्वास्त दी कि मुझे युरोपियन वार्ड में रखा जाये और फल आदि घर से पहुंचाने की व्यवस्था होने दी जाय। कई दिन तक बराबर इसकी कोशिश जारी रही और सुपरिण्टेण्डेण्ट टालमटोल करता रहा। अन्त में बड़ी कठिनता से कुछ थोड़े फल पहुंचाने देने की अनुमति मिल सकी।

दूसरे भाइयों से भेंट

मन में बड़ी इच्छा थी कि लाला हरकिशनलाल और लाला दुनीचन्द आदि से किसी तरह से भेंट हो। क्योंकि लाला हरकिशनलाल दूसरे अहाते में कैद थे, उनकी तो कोई खबर ही न लगती थी। हां एक दिन डा० सत्यपाल और डा० किचलू को दूर से जाते देखा और एक दिन लाला दुनीचन्द का सन्देश भी मिल गया कि वे प्रसन्न हैं, किसी तरह की चिन्ता मत करो।

जेल में भजन

मेरे साथ की कोठरियों में मि० मजहर अली वकील बटाला, बाबू धनपतराय वकील कसूर तथा मि० रतनचन्द (रत्तो) और गण्डासिंह कैद थे। प्रात: काल ये लोग बड़ी मधुरध्वनि से सस्वर गीत गाते थे। बड़ा मन लगता था, साथ ही समय भी अच्छी तरह से व्यतीत हो जाता था। एक दिन मेरा एक साथी मेरे कहने पर भजन गाने लगा। जब वह गा रहा था कि एक कैदी जमादार ने आकर उसे बहुत फटकारा। अपने साथी के इस अपमान को मैं न सह सका और मेरी आखों से आंसू गिरने लगे। मेरे लिए यह पहला ही अवसर था जब कि इन विपत्ति के ओ डायर शाही दिनों में मेरे आंसू आये।

जेल की रोटी

दूसरे देशों के राजनीतिक कैदियों के साथ कैसा सलूक होता है जब यह बात याद आती थी तो कलेजा कांप उठता था। और माता भारत वसुन्धरा के गले में पड़ी गुलामी की तौक को देख कर आखें डबडबा आती थीं। हम को जो रोटियां दी जाती थीं, उनका रंग काला और मसूर की दाल भी वैसी ही बदबूदार काली होती थी। मालूम होता था रोटी में एक हिस्सा अन्न है और ३ हिस्सा मिट्टी आदि कूड़ा करकट, मेरा साहस न हुआ कि इन रोटियों को खाऊँ।

थोड़ी देर बाद मेरे दूसरे साथियों की रोटियां आई जो २० मासिक देते थे। उन्हें ३ रोटियां कच्ची या जली हुई तथा एक ऊटपटांग शाक। हां, दूध भी मिलता था। दूध मिलने की अनुमति आध सेर की थी, किन्तु कठिनता से मिलता था। मगर अत्यन्त खराब कच्चा बदबूदार होता था जिसे पीने को मन नहीं चाहता था। लाला दीवानचन्द भण्डारी बैरिस्टर ने एक दिन अपने घर को पत्र लिखा। जिसमें लिखा था कि खाने-पीने का प्रबन्ध इतना खराब है कि हम उसे खाने में असमर्थ हैं। हम लोगों के सब पत्र सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल में देख लेता था। वह पत्र भी देखा गया। इस पर सुपरिण्टेण्डेण्ट बिगड़ कर बोला लाला दीवानचन्द की यह बदमाशी है इसलिए उसकी पेशी की जाय।

बदमाशी की परिभाषा

जेल में अपनी नियमित रोटी को न खाना, भूख न हो और किसी दूसरे कैदी को कुछ हिस्सा दे देना ऐसी बातें भी जेल में बदमाशी में शामिल हैं। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल को अधिकार है कि वह ऐसे आदमियों को तरह-तरह की सजाएं दे कर सतावें। सुतरां भण्डारी साहब की पेशी की बात सुनकर हम लोगों में इसकी बड़ी चर्चा हुई। निदान भण्डारी जी की पेशी हुई और उन्होंने साफ कह दिया कि ऐसी रोटी को कुत्ते भी नहीं खा सकते जो हम लोगों को दी जाती है हालांकि हम से इसके रुपये भी वसूल कर लिये जाते हैं। हम लोगों को भूखों मरना स्वीकार है, पर ऐसी रोटी नहीं खा सकते। हमें रोज मरना पड़ता है। ऐसी सड़ी हुई रोटी हम ने जन्म भर नहीं खाई। इन साफ-साफ बातों के बाद सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने भण्डारी जी को माफी दे दी। और ३० मासिक देने पर रोटी कुछ अच्छी मिलने लगी।

जेल में सरला बी० ए०

मेरी धर्मपत्नी सरला बी०ए० १० मई को जेल में मुझसे मिलने आई। जेल में दारोगा के कमरे में मुझसे उन्हें मिलने दिया गया। जेल सुपरिण्टेंडेंट मि० कावन भी हमारे पास बैठे थे और उन्होंने हम को एक दूसरे के खूब फासले से बैठने दिया जिससे वह स्वयं हम दोनों की बात सुन सकें। हम दोनों में पहली बात मुकद्दमें की पैरवी के सम्बन्ध में हुई। मैंने कहा कि नज़रबन्दी के बाद गिरफ्तारी कानून ठीक नहीं है। दूसरे विशेष समरी कोर्ट द्वारा जो हमारे मुकद्दमात का विचार होगा वह भी उचित नहीं है तथापि पैरवी के लिए अच्छे बैरिस्टरों का आयोजन होना

चाहिए। कई बैरिस्टरों के नाम लिये गये किन्तु अन्त में निश्चय हुआ कि मेरी पैरवी के लिए मि० नार्टन और प्रयाग से डा० तेजबहादुर सप्रू को बुलाया जाये। जब यह बात हो ही रही थी, तो मेरी धर्मपत्नी ने मि० कावन साहब से कहा कि मैं आशा करती हूं कि आप उस पादरी का कर्त्तव्य पालन करेंगे, जिसके सामने ईसाई अपने पापों का प्रायश्चित्त करता है। अर्थात् हम लोगों की बातचीत जो आप सुन रहे हैं इसको आप गोपनीय रखेंगे और किसी को न बतायेंगे। कावन साहब ने कहा कि यह गलत है मैं ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। इसके बाद हमने फिर ठीक ढंग से बातें कीं।

पादरी का पाप

श्रीमती सरला मेरी धर्मपत्नी है उसकी और मेरी बातें किसी दूसरे का सुनना और उससे अनुचित लाभ उठाना कम से कम हमारे धर्मशास्त्रों के अनुसार अत्यन्त अनुचित है। मुझे खेद है कि मि० कावन सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने अपने उस अधिकार से अत्यन्त अनुचित लाभ उठाकर हमें गहरी हानि पहुंचाई और बिना बैरिस्टरों के हम अपने मुकद्दमे की कुछ भी पैरवी न कर सके क्योंकि मैंने अपने मुकद्दमे के बहुत से रहस्य जो अपनी धर्मपत्नी को नोट करवाये थे वे मि० कावन ने ब्यूरोक्रेसी के सहवारों को बता दिये। साथ ही वकील बैरिस्टरों द्वारा पैरवी की बात भी वह अपने मन में न रख सका। परिणाम यह हुआ कि मि० नार्टन को जब कि उनकी फीस का चैक काटकर भेज दिया गया था और वे आने को तैयार थे, किन्तु दो ही दिन के बाद पंजाब की ओ डायरशाही गवर्नमेंट ने एक बेहूदी आज्ञा जारी कर दी कि हम लोगों की पैरवी के लिए दूसरे प्रान्त से कोई कानून पेशा आदमी न आ सकेगा। यह सब मि० कावन की करामात का नमूना था जो उसने सभ्यता की ठेकेदारी के देश में जन्म लेकर कर दिखाया। तात्पर्य यह है कि पंजाब की ओ डायरशाही ने एक एड़ी चोटी का ज़ोर लगाकर हमारी पैरवी के सब द्वार अपने अधिकार से अनुचित लाभ उठाकर अवरुद्ध कर दिये थे। परिणाम यह हुआ कि हम को मनमानी सजाएं दे कर ओ डायर ने सन्तोष किया।

हमारे साथी

सेण्ट्रल जेल में पहुंचने पर मुझे मालूम हुआ कि मेरे सामने और आस पास तथा पीछे संगीन कोठरियों में मेरे अन्य भाई भी उसी तरह से

कैद हैं जैसे मैं। डा० कर्मचन्द हितैषी और अन्यान्य वकील बैरिस्टर भी मेरे पास ही कोठरियों में कैद थे। मुझे यह भी मालूम हुआ कि हमारे गुजरांवाला के भाई अभी तक इसी जेल में थे, आज गुजरांवाला भेज दिये गये है।

जेल के अफ़सर

दारोग़ा जमादार वा सुपरिण्टेण्डेण्ट के सिवा जेल में कालीवाला, पीलीवाला तथा मुन्शी कैदी जैसे लोग भी जेल के अफसरों की तरह से ही माने जाते हैं। जो लोग अनेक तरह के भयंकर अपराध करने के कारण दस-दस और बीस-बीस वर्ष के लिए कैद होते हैं, उन्हीं में से कुछ लोग मुन्शी और काली, पीली वाले बना दिये जाते हैं। लाहौर की सेण्ट्रल जेल के कैदी काली, पीलीवाले और मुन्शी कैदी भी हमारे अफसर थे। ये लोग कभी-कभी अपने अधिकार की महिमा दिखाते थे। एक दिन हम लोग आपस में मिलकर दुआ सलाम करते थे, तो एक काली पीली वाला चिल्लाकर बोला-तुम लोग क्या करते हो। चले जाओ यहां मत खड़े हो। यह मेल-मिलाप की जगह नहीं है। असिस्टेण्ट जेलर भी कभी सुबह और कभी शाम को आते थे।

महाशय कृष्ण की अधीरता

जब मि० कालीनाथराय का मुकदमा चल रहा था तो महाशय कृष्ण बी०ए० सम्पादक प्रताप और उर्दू प्रताप बड़े अधीर हुए। वे बोले कि अन्त में कैद तो होनी ही है, शीघ्र इसका फ़ैसला क्यों नहीं हो जाता। व्यर्थ ही यहां पड़े क्यों सड़ाये जाते हैं। इतने दिन कैद में कम होते। महाशय कृष्ण चापलूसी की बातचीत करना नहीं जानते या आप इस तरह से बातचीत करना पसन्द नहीं करते। इसी कारण से आपको जेल में और कैदियों से अधिक कष्ट उठाना पड़ा। जब मैं जेल में पहुँचा तो मालूम हुआ मि० महाशय कृष्ण सब से अधिक कष्ट उठा रहे हैं। उनके साथ कोई रियायत नहीं की जाती थी। मैंने और बाबा धनपतराय वकील ने परस्पर में यह फ़ैसला किया कि इन काली, पीलीवालों और जमादारों को समझावें कि ये लोग इनके साथ भी और कैदियों जैसा वर्ताव करें।

मार्शल-ला

एक जमादार का नाम हम लोगों ने मार्शल-ला रख छोड़ा था। वह दूर से आते ही काली, पीलीवालों को गालियां देता था और बाहर निकले

हुए प्रतिष्ठित कैदियों को सख्त सुस्त कहता था। और सब को कोठरियों के भीतर बन्द करके ताला लगा देता था। हम लोग बहुत समझाते थे, मगर वह वीर किसी की न सुनता था और अपने अधिकार का प्रयोग कर दिखाता था।

काली पगड़ीवाला सिख

जिस पाइप पर मैं और मेरे साथी कैदी स्नान करते थे, मैंने कई बार देखा उस पर काली पगड़ीवाला सिख भी स्नान करता है। मैंने समझा कि यह कोई जमादार या काली पीली वाला होगा, परन्तु जब हम पर मुकदमा चला और पहले दिन हम लोग सींखचों से बन्द कैदियों की गाड़ी बैठे तो वह भी हम लोगों के पास आ बैठे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे भी हम लोगों के साथ षड्यन्त्र में शामिल समझे जाकर यहां पहुंचे हैं। हालांकि मैंने उन्हें आज से पहले कभी नहीं देखा था। इन सरदार साहब का नाम सरदार मोतासिंह था। इन पर भी हमारे साथ मुकदमा चलाया गया।

मि० कालीनाथराय को कैद

जिस दिन कालीबाबू सम्पादक 'ट्रिब्यून' का फैसला हुआ, उसी दिन इनको कैद की आज्ञा सुना दी गई। समरीकोर्ट से जब ये जेल को वापिस आये तो ये उन कोठरियों में न ले जाए जाकर मुन्शी खाने में पहुंचाये गये। हम लोगों ने जब इनको देखा तो दौड़कर हम लोग इनके पास गये। कालीबाबू से कपड़े उतरवाये जा रहे थे। बाद में इन्हें जांघिया और कैदियों का एक कुर्ता पहनने के लिए दिया गया। काली बाबू ने पूछा कि मैं स्नान कैसे करूंगा? तो उत्तर मिला जैसे हो। हम क्या जानें ? छः मास तक इन्हीं कपड़ों से काम चलाना होगा। और छः मास बाद ये कपड़े वापस ले लिये जायेंगे और इसी के साथ दूसरे दे दिये जायेंगे।

राजद्रोही लड़के

कसूर के पन्द्रह और सोलह वर्ष के दो लड़के भी हमारी साथ की कोठरी में कैद थे। मैंने उन्हें इधर-उधर कई बार हंसते-खेलते देखा। मैंने समझा कि ये लड़के कर्मचारियों के लड़के होंगे जो मौज से खेलते और हंसते फिरते हैं। इसी तरह से एक दिन ये घूम फिर रहे थे जब कि उन्हें एक कैदी जमादार ने गालियां दे कर धमकाया और कहा कि जाओ कोठरी में बन्द हो जाओ। किसलिए बाहर खेलते-कूदते हो, इतनी देर हो गई। **तब बाबा धनपतराय वकील से मालूम हुआ कि ये लड़के**

महामान्य शक्ति सम्पन्न सम्राट् के विरुद्ध राजद्रोह करने के अपराध में गिरफ्तार हुए हैं! इनमें से एक का कसूर यह था कि कसूर के स्टेशन पर ट्रेन रोकने के समय उस झमेले में यह भी शामिल था। पहले इन दोनों को अलग कोठरी में रखा गया था किन्तु इन दोनों के भोजन छोड़ देने पर एक कोठरी में रखना पड़ा।

जमादारों का आचरण

जेल में बहुत से कैदी जो दस-दस और बीस-बीस वर्ष के लिए कैद होते हैं प्राय: उन्हें ही काली, पीलीवाला और जमादार बनाया जाता है। और अन्यान्य कैदियों की कोठरियों की चाबियां इन्हें मिल जाती हैं। और वही बाहर निकालते और कोठरियों में बन्द करते हैं। क्या हम यह ख्याल नहीं कर सकते कि ऐसे छोटे-छोटे निरपराध बच्चों को इनके सुपुर्द कर देना जैसा ये कसूर के दो बालक थे, भयावह नहीं है?

देशभक्त बालक सी०आई०डी० जेल में

कसूर के दोनों बालक प्राय: हम लोगों की कोठरियों पर जमादारों के हुक्म से गन्दे पानी और मिट्टी से लिपाई किया करते थे। एक दिन साथ की एक कोठरी पर लिपाई करने को कहा गया तो उन्होंने साफ जवाब दे दिया कि इस नर पिशाच की कोठरी पर हम लोग कभी लिपाई न करेंगे और चाहे सब कोठरियों पर लिपाई करनी पड़े। जब इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि इस कोठरी में एक शरीफ सिख की शक्ल का नराधम रहता है वह खुफिया पुलिस का आदमी है। इस बेईमान ने हजारों रुपये निरीह लोगों से लेकर अपनी जेब गर्म की है और अनेक निरपराधों को इस विपत्ति में फंसाया है। हमारे बहुत से साथी कैदियों का ख्याल था कि इनके साथ बहुत से सी०आई०डी० के आदमी कैदी बना कर रखे गये हैं।

भंगियों की शुभ कामना

जब पहले दिन हम जेल में से मुकद्दमे के लिए समरी कोर्ट में जाने को कोठरियों से निकलकर जेल की ड्योढ़ी पर पहुंचे तो रास्ते में खड़े मेहतरों ने बड़े करुणापूर्ण हृदय से आवाजें देकर कहा कि 'मुल्क दे वास्ते जान देण वल्यां दी फतह हो!' यह आवाज सुन हमारी आंखों से देश प्रेम से विह्वल हो आंसू टपकने लगे।

वृद्ध देशभक्त लोहे के पिंजरे में

एक दिन जब हम अपने मुकद्दमे में आ रहे थे, हमने अपनी कोठरियों

के पास अमृतसर के वीर कैदियों को देखा। पं० कोटूमल ने मुझे आवाज़ दी। **मैंने बड़े खेद के साथ देखा कि डा० सत्यपाल के पूज्य वृद्ध पिता लोहे के पिंजरे में बुरी तरह से बन्द हैं।** मैंने देखा कि उन के चेहरे पर बिल्कुल उदासी न थी। वे केहरी शेर की तरह से उस लोहे के कठोर और मजबूत पिंजरे में बन्द थे जो ज्येष्ठ और आषाढ़ के दिनों में मांस और रक्त से बने इस मानव देह को पिघला देता है। दूसरी तरफ बिल्कुल **एकान्त कोठरी में वृद्ध देशभक्त पिता के देशभक्त पुत्र डा० सत्यपाल कैद थे।** हमें इन वृद्ध केहरी शेर की दशा देख कर अत्यन्त क्लेश हुआ। इनके साथ ही पंजाबी वीर रत्तो और बुग्गा पिंजरे में बन्द थे। मालूम होता था, मानो ये पंजाबी केहरी अपने दन्त नखों से इस लोहे के तुच्छ पिंजरे को अब तोड़-फोड़ डालेंगे। हमें किसी के मुख पर उदासी के चिह्न नजर नहीं आये। अमृतसरी वीरों ने जब देखा कि हम लोग उनकी दशा देखकर बड़े चिन्तित हैं तो उन्होंने साहसपूर्वक कहा कि कुछ चिन्ता न कीजिए, हम लोग बहुत आराम में हैं। कर्त्तव्य पालन होने दीजिए।

जेल का भोजन

एक दिन मैं मालखाना में पीलीवाले के साथ कपड़े लेने जा रहा था रास्ते में कैदियों की दो लम्बी जमातें बैठी थी और उनको रोटी दी जा रही थी। मुझे आश्चर्य हुआ कि शाक के इन कच्चे और सड़े हुए डण्ठलों और मोटी मोटी जली सड़ी और कच्ची धूल मिली हुई रोटियों को ये लोग कैसे खाते हैं। यही दुर्दशा देखता हुआ मैं उनके बीच से होकर निकल गया। इसी तरह की रोटियां सुबह ६ बजे और शाम को ५ बजे कैदियों को दी जाती हैं और चार बजे सुबह उठा दिया जाता है।

निर्लज्जता की पराकाष्ठा

कैदखाना हिन्दू कैदियों के लिए तो कम से कम साक्षात् नरक द्वार है। सुबह ६ बजे कैदियों को एक ही लाईन में पास पास बैठा कर शौच से निवृत्त होने के लिए विवश किया जाता है। और एक सौ आदमी को एक ही नल की गन्दी नाली से अपना शरीर साफ करना होता है। कई बार ऐसा होता है कि नाली में पानी न रहने से इससे भी लोग प्रायः वंचित रह जाते हैं। इसके साथ ही फिर कैदियों को वहीं पास बैठ कर रोटी खाने के मजबूर किया जाता है। इधर लोगों के हाथ पर रोटी पहुंची और उधर जल्दी करो ! जल्दी करो !! का तकाजा शुरू हुआ।

अदालत में पेशी

१४ मई सन् १९१९ को हम ११ आदमियों को ख़ास समरी कोर्ट के सामने पेश किया गया। लाला हरकिशनलाल, पं० रामभजदत्त, लाला दुनीचन्द, लाला धर्मदास सूरी, लाला गोकुलचन्द नारंग, मि० मथुराप्रसाद, मि० हबीबुल्ला खां, डा० कर्मचन्द हितैषी, सय्यद मुहसिन साह, मि० अल्लादीन, सरदार मोता सिंह। उपर्युक्त हम ११ आदमियों को अदालत में ले जाया गया।

अदालत का दृश्य

लाहौर सेशनकोर्ट में यह समरीकोर्ट बैठा था। इसमें प्रेसीडेण्ट मि० हेरिसन और एक अंग्रेज़ तथा मियां साहब बस इन तीन आदमियों का कमीशन बैठा था। इसका हावभाव और ढंग देखने से मालूम होता था कि मानो न्याय के आसनों पर साक्षात् नौकरशाही के अवतार बैठे हुए हैं।

पहले हम को चार्जशीट पढ़ कर सुनाया गया हमने समझा था कि हम पर राजद्रोह का इलजाम लगाया गया होगा, उसी कानून की धारा के अनुसार हम पर वारण्ट भी जारी किया गया था। पर पंजाब के जीवन को नष्टभ्रष्ट करने की कामना करने वाले सर ओ डायर और उसके भयंकर साथियों ने यह सोच लिया था कि जब तक इन (हम लोगों) का अस्तित्व न मिटा दिया जायेगा, तब तक ऐसा करना असम्भव है। इसलिए पहले से ही सब बातें सोच रखी गई थीं। इसी के अनुसार हम पर पहला अपराध लगाया गया–

महामान्य सम्राट् के विरुद्ध और साथ ही युद्ध करने का षड्यन्त्र रचने का अपराध लगाया गया। चार्जशीट हम लोगों को सुनाया गया। चार्जशीट सुनकर हमें बड़ी हंसी आई और साथ ही आश्चर्य भी हुआ। इसके बाद आज्ञा दी गई कि मामला सोमवार को पेश होगा तुम अपने गवाहों की सूची पेश करो। किसी वकील या अंग्रेज़ को बतौर गवाह के रूप में पेश न करो। कमीशन द्वारा उत्तर दिया जायेगा।

हमारी ओर से कहा गया कि जब तक सरकार की ओर से शहादतें मालूम न हो सफाई के गवाह कैसे पेश किये जा सकते हैं? आज्ञा मिली कि चुप रहो! बैठ जाओ!! यह मार्शल-ला कमीशन है, समरीकोर्ट मार्शल-ला के अधिकार में है। हमने केवल इस सप्ताह में फैसला कर डालना है। हम चेष्टा करेंगे कि जिन गवाहों की सूची तुम दाखिल करोगे

उन्हें हाजिर कराया जाये। यदि कोई गवाह पेश न हो सका या तामील न हो सका तो हम जिम्मेदार नहीं।

लाहौर के वकील

मेरी धर्मपत्नी सरला चौधरानी ने जब देखा कि मि० नार्टन आदि कोई वकील या बैरिस्टर लाहौर में हम लोगों की पैरवी के लिए नहीं आ सका तो लाहौर दर-दर फिरना पड़ा। खेद है कि एक भी माई का लाल ऐसा न निकला, जो मैदान में आता। केवल मेरी ओर से मि० अब्दुलरशीद बैरिस्टर अदालत में आये और लोगों की ओर से एक दो वकील थे। हम लोगों को कोई सूचना नहीं दी गई थी कि हम पर कब मुकदमा चलेगा। जब जेल से हम लोग अदालत को जा रहे थे तब बाजार के लोगों ने हमारे घर पर सूचना दी जिससे दो एक वकील आ सके।

अदालत

जज ने चार्ज शीट पढ़कर सुनाया। बोलने का स्वर ऐसा तेज था कि हमारे वकील बैरिस्टर कुछ नहीं बोल सकते थे। हमारी तरफ से अगर कोई दलील पेश की जाती तो बोलने वाले को फटकार दिया जाता। अत: ठीक तौर पर हमारी ओर से कोई किसी तरह की ठीक पैरवी नहीं की जा सकती थी।

सी० आई० डी० की रिपोर्ट

हमारे वकीलों की प्रार्थना करने पर हम को खुफिया पुलिस की रिपोर्ट देखने को मिली। मैंने और धर्मदास सूरी ने उनकी नकलें करनी आरम्भ की। हम आपस में बातें करके यह कह रहे थे कि इन रिपोर्टों से बहुत लाभ पहुंचेगा। सी०आई०डी० के दूतों ने जो परछाई की तरह से हमारे पीछे लगे रहते थे, सुनकर बड़े अफसरों को इसकी सूचना दे दी जिससे सावधानी हो गई। हम अभी नकल कर ही रहे थे कि चार बजते ही मिसलें हमारे हाथ से छीन ली गई। अगले दिन हमारे विशेष अनुनय विनय पर हम को फिर देखने के लिए मिसलों का वह पुलिन्दा दिया गया, किन्तु उसमें से बादशाही मसजिद वाली सभा की दो रिपोर्टें गुम थी। मैंने बहुत कुछ इधर-उधर टटोलकर देखा और रीडर को कहा, पर न मिली। वे दोनों रिपोर्टें हमारे लिए बड़ी काम की थी और पहले दिन पेश की जा चुकी थी। इसलिए मैंने कोर्ट के प्रेसीडेण्ट से लिखित प्रार्थना की, कि वे दोनों रिपोर्टें भी शामिल मिसल की जायें। जज ने लिखकर उत्तर दिया कि वे दोनों रिपोर्टें पुलिस ने वापस ले ली हैं, और

शायद मामले में पेश करने की दरकार नहीं पड़ेगी। निदान मैंने बार-बार मुकद्दमे के दौरान में उन रिपोर्टों की बात कही, पर अन्त तक भी वे पेश नहीं की गई। हमारे वकील मि० हसन इमाम ने भी मांगी, पर कोरा जवाब मिला। मैंने २५ वर्षों तक वकालत की है पर पुलिस और मैजिस्ट्रेट का यह समझौता आज तक नहीं देखा। अभियुक्तों के काम की चीज को इस तरह से जबर्दस्ती गुम कर देना, सरासर अन्याय था।

जजों का सलूक

समरी कोर्ट के तीन जजों में दो तो यूरोपियन थे, और एक मुसलमान। चीफ जज इस नाटक का प्रधान अभिनेता था। मुसलमान तो हां हूं करके ही कर्त्तव्य पालन करते थे। चीफ जज हमारे साथ ऐसा बुरा सलूक करता था, जैसा कि शायद महायुद्ध में जर्मन सिपाहियों के साथ ब्रिटिशों ने न किया होगा। पहले दिन हम को बड़ी बेइज्जती के साथ अदालत के कमरे में श्रेणी बांधकर खड़ा होने का हुक्म दिया गया। पीछे एक दीवार के सहारे हमारी कुर्सी रख दी गयी। हमारे वकीलों का टेबल इतनी दूर था कि हम को बार-बार उठकर उन्हें बातें बतानी पड़ती थी। और हमारे उठने पर चपरासियों को आज्ञा दी जाती थी कि बैठा दो। साथ ही वकीलों को कह दिया जाता था कि-अपने मुवक्किलों को बैठाओ और स्वयं उनके पास जाकर उनकी बात सुन आओ। हमारे दो एक वकीलों को छोड़कर सब नये और अनुभव शून्य थे-इसलिए वे भी दब जाते थे। दो एक बार जजों के सलूक का मैंने प्रतिवाद किया तो उत्तर मिला यह मार्शल-ला समरी कोर्ट है। हमारी इच्छा है कि हम कुछ लिखें, चाहें न लिखें। मेरे प्रतिवाद करने पर हमारे ही वकील कहते थे कि चुप रहो। अपने ही लिए फांसी तैयार मत करो। कुछ आदमी इसी तरह की चिट्ठी हमारे घर से भी लिखवा लाये थे कि परमेश्वर के लिए अपने लिए न सही, हमारे लिए ही सही, इस तरह से जजों की बातों का प्रतिवाद न करो। इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। चीफ जज जो पहले गार्डन पार्टियों में हम से हाथ मिलाकर खुश हुआ करते थे, उन्हें हम से अब बदबू आती थी। और मान-हानि कारक स्वर में बार-बार हम से बैठ जाओ! बैठ जाओ!! कहते थे। कम से कम और कुछ नहीं तो अंग्रेज़ी राज्य में भंगी और ब्राह्मण एक जगह खड़े होकर पैरवी कर सकते हैं, यह तो मैं समझता था, परन्तु जिन्हें गवर्नमेंण्ट ने स्वयं लीडर या प्रजा का नेता स्वीकार किया था और जजों से किसी तरह भी कम हैसियत नहीं रखते थे, उनसे अछूतों की तरह से सलूक किया जा रहा था और वह भी इसलिए

नहीं कि हम कोई खूनी, चोर या डाकू थे, बल्कि इसलिए कि देश की गर्दन पर छुरी फेरने वाले एक कानून का विरोध किया था। और अपने देश से प्रेम करते थे। जिस समय हम को उमर भर के लिए काले पानी की सजा का हुक्म सुनाया गया, तो हम को क्लेश नहीं हुआ, किन्तु अदालत के उस अपमान और जजों की बदसलूकी की आज भी कभी-कभी याद आ जाती है तो एक बार हृदय कांप उठता है।

पहले दिन जब मामला पेश हुआ तो चीफ़ जज ने बाहर से आये हुए कई वकीलों के तार पढ़कर सुनाये, जिनमें अदालत से आज्ञा मांगी गयी कि हम पैरवी करने के लिए आ रहे हैं। परन्तु जजों ने कहा कि-उनको रोक दिया गया है, बाहर का कोई वकील पैरवी के लिए नहीं आ सकता। इसी तरह से मेरे एक वकील जो पहले दिन आये थे, अगले दिन इसलिए नहीं आये कि मियां महुम्मदशफ़ी भी मामले में पेश होंगे, ये उन पर जिरह न कर सकेंगे। क्योंकि इन वकील साहब के वे बुजुर्ग हैं। लाला गंगाराम साहब वकील स्यालकोट और मि० सन्तानम् बैरिस्टर ने अन्त तक अपने हजार काम छोड़ हमारे सब के लिए दिल खोलकर पैरवी की और इसी एक काम में बिना किसी तरह की फीस लिये रात और दिन एक कर दिया, जब कि और वकील जो कि पांच सौ रुपया मासिक भी न कमाते थे-आज एक दिन के पांच सौ मांगते थे।

हमारे साथ जब चीफ जज बदसलूकी करते थे, तो मुसलमान जज बेचारे ब्लाटिंग लगाने का काम किया करते थे। और अन्त तक हिन्दुस्तान की इज्जत को चुपचाप सम्भाले बैठे रहते थे। जब उन्होंने देखा कि अभियुक्त सिर से टोपी और दुपट्टे उतारकर बैठते हैं और कोई ननुनच नहीं करता, तब कहीं आपका साहस हुआ कि अपनी पगड़ी नीचे उतारकर रख दें। इसी बीच में जब एक दिन पुलिस के सुप० मि० बौरंग सी० आई० डी० की रिपोर्ट पेश कर रहे थे तो मैंने कहा असली रिपोर्ट भी पेश करिये तो वकीलों और आसपास के लोगों ने भी चीफ जज की भृकुटी देख कर मुझे कहा-बैठ जाओ, बैठ जाओ! पर इसी बीच में मि० बेनीप्रसाद खोसला बैरिस्टर ने बड़े साहस के साथ कहा कि अगर अदालत हम को प्रश्न करने नहीं देती तो हम लोगों का पैरवी करना व्यर्थ है। तब उस दिन से अदालत ने अपनी कठोर प्रणाली में कुछ थोड़ा-सा परिवर्तन किया और अन्यान्य वकील भी कुछ बोलने लगे। इसी दौरान में बाहर प्रजा के लोगों और पं० मोती लाल नेहरू और मालवीय जी का आन्दोलन और विलायत को तारें दी गयी और सर शंकरन् नैयर का त्याग पत्र तथा

रवीन्द्र टैगोर का उपाधित्याग, ये सब बातें खाली न गयी और अदालत का दिमाग जरा ठिकाने आया। मेरी धर्मपत्नी श्रीमती सरला देवी बी० ए० और मि० सन्तानम् बैरिस्टर ने शिमला जाकर कोशिश की, क्योंकि सर ओ डायर हमारा दुश्मन है, इसलिए यह मुकदमा पंजाब में न होकर बाहर होना चाहिए। पर यहां नौकरशाही ने जो कुछ सोचा हुआ था। उसमें मीन-मेख कैसे हो सकता था ? अन्त में इस कोशिश का भी परिणाम न हुआ।

यूरोपियन-वार्ड

मुकदमा अभी चल ही रहा था कि लाला हरकिशनलाल, डा० गोकुलचन्द, लाला धर्मदास सूरी, सैयद साह बैरिस्टर तथा पीछे से मुझे भी यूरोपियन कैदियों के वार्ड में ही रखा गया। डा० किचलू और डा० सत्यपाल तथा लाला दुनीचन्द बैरिस्टर इन सबको भी वहीं रखा गया था।

भाई परमानन्द की कोठरी में

यूरोपियन वार्ड में रहते अभी मुझे कुछ ही दिन हुए थे, जब कि दरोग़ा साहब जेल का हुक्म हुआ कि बम्बई से कोई साहब बहादुर कैदी आ रहे हैं, इसलिए तुम लोग नम्बर १६ की कोठरी में जाओ। यह वह कोठरी थी जिसमें अमेरिका से आये हुए अनेक देशभक्तों के साथ भाई परमानन्द एम० ए० को रखा गया था और यहीं पर अदालत का कटघरा लगाकर इण्डिया डिफेन्स ऐक्ट की जंजीर हिलाकर भाई परमानन्द आदि को फांसी की सजा सुनाई गयी थी। इस कोठरी में घुसते ही हमारे आंसू आ गये। हमारे एक साथी ने कहा कि हम ने देश के लिए बड़ा पाप किया था जो भाई परमानन्द आदि के मामले में कुछ भी उन लोगों को भय के मारे कानूनी सहायता नहीं दी। मालूम होता है उसी पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए आज हम लोग यहां पहुंचे हैं। गुजरांवाला के वकील लाला अमरनाथ और लाला मोहनलाल को नम्बर १२ के वार्ड में रखा गया था, जहां फांसी वालों को रखा जाता है। वे कहते थे कि जिनको फांसी की सजा मिलनी होती थी, वे बड़ी सुरीली और अन्तरात्मा से वैराग्य के गीत गाया करते थे, जो हृदय चीरते चले जाते थे।"

❑❑

श्रीयुत दीवान मंगलसेन

(रईस ए-आज़म, गुजरांवाला)

(आत्मकथा)

"मेरी प्रधानता में चलने वाली इन्शुरेन्स कम्पनी का काम बहुत बढ़ गया था, क्योंकि वह लिमिटेड कम्पनी है, अत: उसके शेयर होल्डरों ने यह निश्चय कर लिया था कि इसका प्रधान कार्यालय बम्बई में रखा जाये। यदि पंजाब में भंयकर काण्ड न हुआ होता तो अब तक कभी का मेरा प्रधान कार्यालय बम्बई पहुंच गया होता। मेरे शहर के लोगों की मुझ पर कृपा है कि वे सभी मुझ से प्रेम करते हैं। मेरे कार्यालय के बम्बई जाने की बात सुनकर सभी नगर निवासी विदाई का एक भोज देकर जलसा करना चाहते थे पर मुझे अवकाश नहीं था। अत: मैंने इन्दौर से अपने उन मित्रों को तार देकर, यह सम्मानसूचक कार्य स्थगित करने की प्रार्थना की, किन्तु वह स्वीकार नहीं हुई। जब मैं देहली वापस आया तो मालूम हुआ कि वह तजवीज मुलतवी कर दी गई। यह सब बातें २१ अप्रैल सन् १९१९ की हैं। मैंने उस समय यही उचित समझा कि मैं इस समय वापस गुजरांवाला चला जाऊं। सुतरां मैं उसी दिन रेल में बैठकर गुजरांवाला को रवाना हुआ। रास्ते में जो सरकारी चहल पहल थी, वह भी देखी। ३० तारीख की देहली वाली घटना पर सभी भारतवासी नाराज थे। रेल में भी उसकी चर्चा थी। जब मैं ५ तारीख को लाहौर पहुंचा तो मालूम हुआ कि लाहौर में रोलेट बिल के विरोध में लोगों में बड़ी सनसनी फैल रही है। मेरी गाड़ी कुछ लेट थी इसलिए मैं एक बजे गुजरांवाला पहुंचा। सफर की वजह से कुछ थकावट थी, इसलिए मैं घर पर ही रहा, बाहर नहीं गया।

शाम को ६ बजे भक्त व्रजभूषण बैरिस्टर जो मेरे बहुत समीप के सम्बन्धी हैं, कचहरी से सीधे मेरे पास आये। उन्होंने रोलेट बिल के आन्दोलन के सम्बन्ध में इधर-उधर जो आन्दोलन हो रहा था, उसका कुछ विवरण सुनाया और कहा कि यहां भी आज एक विरोध सभा होगी, आप भी आयें। साथ ही उन्होंने मेरे आफिस का 'पायेनियर' का फाइल मांगा और कहा कि उसमें रोलेट बिल निकल चुका है और मैं उसे पढ़ना चाहता हूं। साथ ही भक्त ने यह भी कहा कि यहां के डिप्टी

कर्नल ओब्राइन ने चार-पांच वकील बैरिस्टरों को बुलाकर फटकारा है और कहा है कि खबरदार इस आन्दोलन में शामिल मत होना, परन्तु वकीलों ने उसे स्पष्ट शब्दों में अपना कर्त्तव्य पालन करने की बात कही है।

शाम को मैं भी सभा में गया। उस समय ला० मेलाराम लिखा हुआ भाषण पढ़ रहे थे। लोगों की उपस्थिति ५ या ६ हजार होगी। मेरे पहुंचने पर लोगों ने समारोह में मेरा स्वागत किया-मुझे कुछ बोलने का आग्रह किया गया, क्योंकि मैं कानून नहीं जानता हूं इसलिए मैंने खड़ा होकर देहली में ३० तारीख़ को जो घटना हुई थी, उसके खेद और विरोधसूचक प्रस्ताव का समर्थन मात्र ही किया। लोग ५ तारीख़ को हड़ताल करने पर तुले हए थे। इधर जी हजूर लोग भी कर्नल ओब्राइन को तरह-तरह के विश्वास दिलाकर सब्ज़ बाग दिखा रहे थे। आनरेरी मेजिस्ट्रेट और म्युनिसिपल कमिश्नरों तथा उपाधियों पर लट्टू होने वाले लोगों की म्युनिसिपल आफिस में एक सभा हुई। जिसमें ६ तारीख़ की हड़ताल के सम्बन्ध में विचार हुआ, पर वहां भी कोई सम्मति स्थिर न हो सकी और अन्त में रामभरोसे जो कुछ हो-की बात तय हुई। क्योंकि अगर ये लोग यह तय कर लेते कि हड़ताल न हो, तब भी इसके पास होने का कोई मूल्य नहीं था, क्योंकि हड़ताल तो जरूर होनी ही थी।

अन्त में ६ तारीख़ को सारे बाजार में हड़ताल हुई और प्रस्ताव पास हुए पर किसी तरह की कोई अशान्ति नहीं हुई।

८ तारीख़ को मालूम हुआ कि कर्नल ओब्राइन डिप्टी कमिश्नर पंजाब के नादिरशाह लाट सर ओ डायर से पांच वारण्टों पर हस्ताक्षर करा लाया है और शीघ्र ही गिरफ्तारियां होने वाली हैं।

११ तारीख़ को डा० किचलू और डा० सत्यपाल के निर्वासन तथा महात्मा गांधी की गिरफ्तारी से बड़ी नाराजगी फैली है। इसके अतिरिक्त लाहौर में जो कुछ हुआ उससे लोग और भी असन्तुष्ट हो गये।

शाम को लाला अमरनाथ साहब वकील के घर पर डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी का एक अधिवेशन हुआ। उसमें महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के समय के सन्देश पर विचार किया गया। इधर ११ तारीख को कर्नल ओब्राइन बदलकर अम्बाला चला गया। देश के शत्रुओं ने उसे विदाई भोज दिया।

१२ तारीख़ को एक सभा हुई। जिसमें जालन्धर की प्रान्तीय कान्फ्रेन्स के लिए प्रतिनिधि चुने गये। इसी समय हमारे पास २०-२५ नवयुवक

आये। उन्होंने कहा कि आप लोग हमारे लीडर हैं, क्या कारण है शीघ्र हड़ताल का आप लोग फैसला नहीं करते। गांधी जी पकड़े गये। डा० किचलू और सत्यपाल निर्वासित हो गये। लाहौर में गोलियां चलाकर लोग मारे गये। अमृतसर में भयंकर काण्ड हो रहे हैं। आप लोग क्यों चुप बैठे हैं? इस पर जब देखा गया कि लोग हड़ताल करने पर उतारू हुए हैं, और लोगों में जोश फैल रहा है। तब निश्चय किया गया कि हड़ताल हो।

१३ तारीख को वैशाखी का पर्व था। मैं और मेरे कई वकील मित्र पैदल स्नान करने गये। आते समय जब हम स्टेशन के मार्ग से आये तो देखा, लोग बड़ी संख्या में गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कुछ लोग मेले की पोशाकें पहने हुए थे। जो रेलें वहां से होकर जाती थी उनके यात्री 'शेम, शेम' की ध्वनि करते थे, और आवाजें दे देकर कहते थे-तुम लोग यहां रंगरलियां करते हो, दूसरे शहरों में तुम्हारे भाई बुरी तरह से मारे जा रहे हैं।" शहर भर में इसकी धूम मच गयी, लोगों में बुरी तरह से जोश फैला और सारे शहर में हड़ताल हो गई।

शाम को मेरे मकान पर एक सभा हुई। उसमें शान्ति बनाये रखने पर विचार किया गया। साथ ही इस में ही मुझे विदाई का भोज दिया गया।

१४ ता० को हड़ताल रही। सभा भी हुई। उसमें हिन्दू मुसलिम एकता पर जोर दिया गया। **इसी समय मालूम हुआ कि पुलिस की शरारत से बाजार में एक गौ का बछड़ा मारकर टांग दिया गया है जिससे हिन्दू मुसलमानों में लड़ाई झगड़ा हो जाये, परन्तु पुलिस की इस चाल को फौरन भांप लिया गया।** हिन्दू नवयुवक स्वयं उसको उतार डालने के लिए तैयार हो गये। शाम को सदा की भांति वैशाखी देखने वजीराबाद जाने के लिए स्टेशन पर गये, परन्तु भीड़ होने के कारण बहुत से आदमी चढ़े और बहुत से रह गये। और इसी कोलाहल में गार्ड भी नीचे ही रह गया। कुछ लोग शराब पीये हुए थे। उन्होंने गुरुकुल के सामने के पुल को आग लगा दी। जब हम लोगों को पता लगा तो मि० लाभसिहं बैरिस्टर तथा लाला मोहनलाल और बा० दीन मोहम्मद ने आग बुझवा दी। कोई हानि नहीं हुई। लोग वापस घर चले गये।

लोगों पर फ़ायर

बहुत से अशिक्षित लोग जोश में आ गये थे उन्होंने जब उस बछड़े की बात सुनी तो वे और भी असन्तुष्ट हो गये। पुलिस ने समझा कि यह

किसी पर धावा करने जा रहे हैं। सुपरिण्टेंडेंट पुलिस की आज्ञा से लोगों पर फायर किये गये। इस पर लोगों में जोश फैल गया और उन्होंने कच्चे पुल को आग लगा दी, किन्तु वह थोड़ी देर में बुझा दी गई। इसी समय सुपरिण्टेण्डेण्ट ने लोगों को बुरी तरह से चिढ़ाया और गालियां दीं। इस पर एक नवयुवक ने सुपरिटेण्डेण्ट पर हमला किया। फिर गोलियां चलने लगीं। यह सब पुलिस की मूर्खता का ही परिणाम था। शराब की दुकानें बन्द करने के लिए मि० लाभसिंह बैरिस्टर ने कहा था, किन्तु कोई ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि अशिक्षित गंवार लोगों ने शराब के नशे में उपद्रव किया। इस पर पुलिस ने उन पर गोलियां चलाई और लोगों ने बिगड़ कर पोस्ट आफ़िस और रेलवे स्टेशन पर आग लगा दी। तीन दिन तक बराबर ये जलते रहे, किन्तु पुलिस या धोखेबाज जी-हजूरों ने उसे नहीं बुझाया। माार्शल-ला कोर्ट के सामने सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस ने स्वयं कहा है कि जहां मैं होता था पुलिस गोली चलाती थी, नहीं तो वह भी तमाशा देखती थी।

बम्बार्डमेन्ट

शाम को ६ बजे कुछ वर्षा हो गई। लोग अपने घरों में चले गये। उसी समय हम ने सुना कि कर्नल ओब्राइन फिर वापस आ गया। जिन लोगों को गिरफ्तार करना था उनकी एक सूची इकबाल नारायण सेक्रेटरी म्युनिसिपल के मकान पर बनाई गई। यह आदमी कर्नल ओब्राइन का कृपापात्र था। और उसी की कृपा से सेक्रेटरी बना था। यह आदमी जब स्टेशन वगैरह पर आग लगी हुई थी, बराबर वहां घूमता रहा, पर इससे भी यह न हुआ कि आग बुझा दे या इसका प्रबन्ध करे अथवा पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट या डिप्टी कमिश्नर को ऐसी सम्मति दे। हां, हम लोगों के मुकदमों में सरकारी गवाह बनकर उसने खूब राजभक्ति का प्रकाश किया। खैर, इसके बाद कर्नल ओब्राइन कचहरी की ओर चला गया और खजाने के मकान पर जाकर रहा। **थोड़ी ही देर बाद शहर के ऊपर हवाई जहाज घूमने लगे। मेरे मकान पर भी हवाई जहाज घूमा। बाद में सुना कि कई वकीलों और बैरिस्टरों के मकानों पर भी घूमा था। घूमघाम कर शहर के ऊपर बराबर एक घण्टे तक बम के गोलों की वर्षा की गई। कितने ही आदमी मरे और जख्मी हुए। एक घण्टे बाद 'जल्लाद' अपना काम समाप्त करके चले गये।** लोगों में बड़ी घबराहट और शोक छाया हुआ था, मैं घर से निकला और 'गुरुनानक खालसा फैक्टरी' के पास पहुंचा तो कुछ लोग मुर्दों के पास खड़े थे।

कई हिन्दु-मुसलमानों की लाशें पड़ी थीं। किसी का हाथ कटा था, किसी का सिर और किसी की हड्डी। स्त्रियां रो-पीट रही थीं। उन्हें ढाढ़स देने की चेष्टा की गई पर दृश्य बड़ा हृदय विदारक था। मैं मुसलमान भाइयों के पास सम्मति लेने जा रहा था कि इन लोगों की अन्तिम क्रिया कैसे की जाये, तभी तांगे में जाते हुए मि० लाभसिंह बैरिस्टर और लाला देशराज तथा मि० दीन मोहम्मद वकील मिले। मैंने पूछा कहां जा रहे हो तो उत्तर मिला कि कर्नल ओब्राइन ने बुलाया है, वहां जा रहे हैं।

इसके बाद यह तय हुआ कि अन्तिम क्रिया कल की जायेगी। क्योंकि रात अधिक हो रही थी, सुतरां मैंने घर से चारपाइयां भेजकर मुसलमान शहीदों को मस्जिद में और हिन्दू वीरों को मन्दिर में रखवाया। इसके बाद मैं अस्पताल चला गया। वहां कई घायल मरने लग रहे थे। लायलपुर के एक हिन्दु ठेकेदार जो किसी काम आये थे, अचानक बाजार में घायल हो गये थे। मैंने उन्हें देखा। वे बड़े साहस से मरे और अन्त समय तक कहते रहे कि 'धन्य हूं मैं जो बिना मातृभूमि की सेवा किये, उसके लिए आज बलिदान हो रहा हूं।' शहर के शिक्षित नवयुवक घायलों की ख़ूब सेवा कर रहे थे। इसी समय अस्पताल में मुझे भक्त व्रजभूषण के दर्शन हुए। वह बड़ा घबराया हुआ था और लोगों को गालियां दे रहा था कि शहर भर मेरा शत्रु हो गया है। इसका कारण यह था कि लोगों का ख्याल था कि गोलियों का चलना और शहर पर बम्बार्डमेंण्ट का होना, यह सब भक्त साहब की कृपा का फल था। इसी कारण से लोग इनसे बदला लेना चाहते थे। इस समय से इनके बाल-बच्चे की रक्षा का प्रबन्ध भी करना पड़ा। इधर भक्त साहब भी लोगों से बेतरह नाराज थे, और बड़बड़ाते चले गये। इसके बाद दर्शन, मार्शल-ला के समरीकोर्ट में सरकारी गवाह के रूप में हुए।

जब मैं वापस घर आया तो मि० लाभसिंह वग़ैरह मिले। उन्होंने कहा कि कर्नल ओब्राइन ने हम को खूब धमकाया और कहा है कि कुछ और कमी है? ला० कन्हैयालाल जो यहां आनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं, साथ ही उनका लड़का सी० आई० डी० में रहकर खूब रंग रहा था, इन्होंने कहा कि लीडर हर एक बात के उत्तरदाता हैं। अत: इनको खूब सजा मिलनी चाहिए।

शाम को गोरी फौज मशीन गनों सहित स्यालकोट से आ गई। लोगों में अफवाह गर्म थी कि बहुत शीघ्र ही गिरफ्तारियां होने वाली हैं। लाला सन्तराम ने मुझे इस अफवाह की सूचना सब से पहले दी। मैंने उनसे

कहा कि अगर मैं गिरफ्तार हो गया तो तुम मेरे घर को भी सम्भालना। तुम मेरे पुत्रों के समान हो। घबराना मत हम लोग निर्दोष हैं।

इसके बाद मैं सुबह को बाहर गया और परलोकवासी वीरों की अन्तिम क्रिया का काम आरम्भ किया गया। पहले मैं मि० दीन मोहम्मद वकील के पास गया। ये बहुत घबराये हुए थे। हकीम अब्बास अली बैरिस्टर भी उनके पास ही थे। उनकी भी वही दशा थी। मैंने उचित समझा कि अब इन सज्जनों को कष्ट न देना चाहिए। वहां से मैं ब्रह्म अखाड़ा में पहुंचा। हजारों लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। वहां जाने पर मालूम हुआ कि मुसलमान भाई तो मुसलिम शहीदों को रात को ही दफना चुके हैं, हिन्दू वीरों की यथेष्ट क्रिया की तैयारी की जा रही है। इतने में ही शहर के ऊपर फिर हवाई जहाज उड़ने लगे। लोग भयभीत हो कर अपने अपने घरों को भाग गये। शहर बन्द था। उचित समझा गया कि कुछ आदमी जाकर सब काम कर आवें। ११ बजे इस काम से आकर मैंने स्नान किया और भोजन करते कराते एक बज गया। मैं डाक पढ़ने लगा। इतने में ही मि० लाभसिंह बैरिस्टर, लाला हाकिमराय मेरे पास आये और निश्चय हुआ कि पंजाब के प्रायः सभी समाचार पत्र बन्द हो चुके हैं। इसलिए बेहतर है कि यहां का सब वृत्तान्त भी मालवीय जी तथा महात्मा गांधी और बाहर के पत्रों के पास भेजा जाय। अभी हम मसौदा बना ही रहे थे कि मि० लाभसिंह के पिता ने आकर कहा कि उनको डिप्टी कमिश्नर ने बुलाया है। मि० लाभसिंह यह कहकर चले गये कि आप लोग काम करते रहें, मैं अभी आता हूं।

मि० लाभसिंह को अभी १५ ही मिनट गये को हुए थे कि इतने में ही मेरे एक आदमी ने आकर मुझे सूचना दी कि इनको गिरफ़्तार कर लिया गया है और अब फौज हमारे मकान की ओर आ रही है। सैकड़ों गोरे और भारतीय सशस्त्र सिपाही मशीनगन लिये मेरे मकान की ओर बढ़ रहे थे। सिविल और मिलटरी के गोरे अफसर पिस्तौलें लिये मेरे मकान पर धावा करने आ रहे थे। पिछली ओर से मेरा मकान घेर लिया गया था। मैंने जब यह वृतान्त सुना तो मैं बाहर चबूतरे पर आ खड़ा हुआ। पुलिस के बहुत से अफसर अपनी फौजी पुलिस को लिए हुए बाहर खड़े थे। इधर डिप्टी कमिश्नर, असिस्टेंट कमिश्नर तथा डिप्टी इंसपैक्टर जनरल पुलिस और पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, अपनी किरचों को चमचमाते हुए मेरी कोठी के द्वार से होकर भीतर घुसने लगे। मैं अभी बाहर ही खड़ा था।

गिरफ़्तारी

सब इन्सपेक्टर परशुराम, सिकन्दरलाल मेरे 'टेबिल कोर्ट' में आकर घुसे और कहने लगे-दीवान साहब आइये।" मैंने पूछा, क्या मुझ को गिरफ्तार करना है? उत्तर मिला-'हाँ' मैं आगे चला गया। इतने में दौड़ते और हांफते हुए हेरिन साहब पुलिस कप्तान भी आ गये और जोर से बोले-क्या तुम ही मंगलसेन हो? मैंने कहा-'हाँ'।

कप्तान ने कहा कि मैं डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के हुक्म के अनुसार तुम्हें गिरफ्तार करना चाहता हूं। मैंने कहा कि मैं स्वयं अपने आपको पेश करता हूं। उसने कहा-अब पेश करने का प्रश्न नहीं है। मैंने कहा कि मैंने कब मनाही की थी?

मैं इस समय केवल एक कमीज पहने था। पैर में जूता और शिर पर कोई कपड़ा नहीं था, केवल एक धोती बांध रखी थी। मैंने कहा कि कपड़े पहन लूं? उत्तर मिला-कदापि नहीं, अब जेलखाने के कपड़े पहनना। मैंने कहा देश की सेवा के लिए यह साधारण बात है। वह रुष्ट होकर बोला-'चुप रहो।'

सिपाहियों को आज्ञा दी कि डबल हथकड़ी लाओ। इसके बाद हेरिन साहब ने स्वयं मेरे हाथों में हथकड़ी लगायी, फिर जंजीर लगायी और बाहर ले गया। बाहर ले जाकर फौज के पहरे में खड़ा कर दिया। लाला मेलाराम तथा मि० लाभसिंह बैरिस्टर एक-एक कुर्ता पहने इसी तरह से हथकड़ियों से जकड़े हुए फौजी पहरे में खड़े हुए थे। सिर झुकाकर हम ने परस्पर में अभिवादन किया।

मेरे बच्चों ने जो एक सात वर्ष का, दूसरा नौ वर्ष का था, रोना शुरू किया। वे दोनों बच्चे रोते-रोते कहते हैं कि पिताजी हमें भी साथ ले जाओ। मैंने ललकार कर कहा कि पुत्र कुछ दिन और प्रतीक्षा करो। अन्याय जारी रहा तो तुम्हारा बलिदान भी अनिवार्य होगा। **इतने में ओब्राइन डिप्टी कमिश्नर बोला, यह कौन रोता है? पुलिस ने कहा साहब, यह दोनों इनके बच्चे हैं। इस पर ओब्राइन ने कहा कि रोते हैं तो गोली मार दो।**

इस पर मेरा छोटा लड़का भागा हुआ आया और छाती खोल कर बोला-'मार दे गोली' डराता किसको है? हम भी मरने को तैयार हैं। इतने में मेरा एक आदमी दौड़ता हुआ आया कि मुझे मेरा चश्मा दे दे। इस पर इन्सपेक्टर जनरल पुलिस ने धमका कर कहा-जाओ ले जाओ,

वहां नाविल पढ़ने नहीं जा रहा है।

फिर सिपाही मेरे कमरों के भीतर घुसने लगे, परन्तु मेरी धर्मपत्नी ने कहा कि हरगिज ऐसा न होगा। मेरे रहते कोई भीतर न घुस सकेगा। अगर तलाशी लेनी है, तो किसी जिम्मेवार अफसर को लेकर तलाशी लो। इस पर एक डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस भीतर जाकर तलाशी ले आया।

इसके पश्चात् हमें रेलवे स्टेशन की ओर ले जाया गया। प्लेटफार्म पर धूप में खड़े कर दिये गये। कई बार पानी मांगने पर भी हमें नहीं दिया गया। सब कैदियों को बड़ी बेइज्जती के साथ फौजी पहरे में से संगीनों और गोलियों से धमका कर 'क्विकमार्च' कराया गया।

बाद में रेलवे स्टेशन ले जाकर गोरे अफसर ने धमकाया और कहा देखो तो सही कितना छोटा-सा आदमी है। राजनीतिक वक्तृताएं देता फिरता है।

इसके बाद हम को क्रमशः ज़ंजीरों से बांध और श्रेणीबद्ध करके एक खुले छकड़े को इंजन के साथ लगाया गया। लाहौर पहुंचते-पहुंचते हमारे मुंह धूंए से काले हो गये। रास्ते में बहुत बुरा वर्ताव किया गया। एक हमारे साथी पेशाब करना चाहते थे किन्तु आज्ञा नहीं मिली अतः विवश होकर वहीं करना पड़ा तथा हुक्मन वहीं बैठना पड़ा। कहा गया कि अगर वह पेशाब पर न बैठेगा तो संगीन से मार डाला जायेगा।

जब हम लोग लाहौर रेलवे स्टेशन पर रात्रि को पहुंचे तो वहां बिल्कुल अन्धकार था। फर्स्ट और सैकण्ड क्लास के बुकिंग आफ़िस के सामने केवल लेम्प जलता था। हम लोगों को छकड़ों से उतारा गया और एक युरोपियन अफसर ने हमारी हाजरी ली जो इसी काम के लिए वहाँ पहले से मौजूद था। फिर हमें बाहर जाने का हुक्म मिला। और एक मोटर गाड़ी में बैठाया गया। इसमें जहां-जहां से कुछ वायु आ सकता था, वे सब द्वार बन्द कर दिये गये। दो सशस्त्र फौजियों की मोटरें और एम्बूलेन्स की गाड़ियां हमारे साथ थीं। जिन पर सिपाही बैठे हुए थे, हवाई जहाज हमारे मोटर के चक्कर लगा रहे थे।

लाहौर सेण्ट्रल जेल में

९ बजे रात को हम समस्त कैदी लाहौर की सेण्ट्रल जेल में भेज दिये गये। ज्योंही हम वहाँ पहुचे हमें धक्के मारकर गाड़ी से उतारा गया- और इस भयंकरता से हमारे हाथ खींचकर धक्के लगाये गये जिससे मेरे एक हाथ में चोट लगी परन्तु सब से अधिक कष्ट लाला रलाराम

को हुआ जो ७० साल की अवस्था के वृद्ध थे। जब हम लोग जेल में प्रविष्ट हुए हमें घुटनों के सहारे दो-दो को बैठना पड़ा। फिर हाजरी ली गयी। हाजिर जनाब कहने के लिए विवश किया गया और जिसने न कहा बुरी तरह से गालियाँ दी गयी। इसके बाद हमारे पांवों में बेड़ियां डाली गयीं जो प्राय: फांसी की सजा पाने वालों के डाली जाती हैं। इसके बाद अन्धेरी कोठरियों में एक-एक को डालकर रात को दो-दो रोटी मिली। मच्छर बुरी तरह से सताते थे।

हमारे घरवालों को हमारा कुछ पता नहीं मिला। पांच दिन तक स्नान नहीं हो सका। बीस-बीस और तीस-तीस रुपये देकर भी हम लोगों को बहुत बुरी रोटी मिली। रात को इधर मच्छर और गर्मी तथा काल कोठरियों की दुर्गन्ध प्राण लिए लेती थी, उधर हर तीन घण्टे बाद गालियां देकर हाजिरी ली जाती थी। शाम को हमारे वकील और सम्बन्धी केवल दस-दस मिनट तक मिल सकते थे। पर यह सब कुछ सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के सामने होता था। अत: हम अपने मामले भी ठीक तरह से नहीं समझा सकते थे।

शनाख़त

६ मई को दुबारा हथकड़ियाँ लगाकर गुजरांवाला ले गये और लोगों को डांट डपटकर हमारी सनाखत कराई गई। इसके बाद लाहौर ले जाकर फिर जेल की काल-कोठरियों में बन्द कर दिया गया। पुलिस के अफसरों ने बड़ी बेईमानी के साथ सरकारी गवाह बनाये थे और जबरदस्ती चाहे जिन से जो कुछ कहलवाते थे।

मुकदमा

हमारा मुकदमा बहुत शीघ्र समाप्त किया गया जिससे मार्शल-ला की अवधि न समाप्त हो जाये। उमर भर के लिए काले पानी की सजा के सिवा मेरी सब सम्पत्ति जब्त करने का हुक्म हुआ। पहले मैं कुछ दिन लाहौर, पीछे मौण्टगुम्बरी रखा गया। लाहौर के डिप्टी कमिश्नर तथा कमिश्नर ने हमें दो बार आकर देखा। ८ दिसम्बर को पंजाब के नये लाट साहब ने भी भेंट की। आपका वर्त्ताव बड़ा सभ्योचित था। १६ दिसम्बर १९१९ को सम्राट् की घोषणा के अनुसार हमें छोड़ दिया गया।"

❑❑

श्रीयुत डा० सत्यपाल

(आत्मकथा)

"जब कि समस्त भारत में राजनीतिक जागृति हो रही थी और पंजाब से हर तरह से रंगरूट भरती करके तथा तरह-तरह के दबाव से युद्ध ऋण लेकर पंजाबियों को राजभक्ति का सर्टिफीकेट देकर शासन सुधार की उन सुविधाओं से भी वंचित किया जा रहा था जो और प्रांतों को दी जा रही थीं। आर्मज एक्ट में संशोधन हुआ, पर पंजाब की कोरी राजभक्ति के गीत गाकर उसे उस से भी वंचित रखा गया था। उन्हीं दिनों पंजाबियों के कान में राजनीतिक आन्दोलन का मन्त्र फूंकने के लिए लाहौर में एक प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का अधिवेशन किया गया। अमृतसर में भी आन्दोलन आरम्भ हुआ और देहली की कांग्रेस में आगामी वर्ष के लिए कांग्रेस को निमन्त्रण दिया गया। अमृतसर की जनता में अंग्रेज़ी शिक्षा का कम प्रचार है। कांग्रेस के अधिवेशन की तैयारी के लिए खेत तैयार किया जाने लगा और राजनीतिक आन्दोलन आरम्भ हुआ किन्तु जो कुछ होता था वह वैध था और कानूनी सीमा के भीतर होता था।

सर ओ डायर

सर ओ डायर जैसे कड़े दिमाग का आदमी पंजाब का कभी लेफ्टीनेण्ट गवर्नर नहीं हुआ था। उसकी बातों और कार्यक्रम से यह स्पष्ट मालूम होता था कि वह देश के राजनीतिक जीवन को खाक में मिला सकता है, यदि यह उसके हाथ की बात हो। उसने इम्पीरियल कौंसिल के अधिवेशन में अनधिकार चर्चा करते हुए एक बार कहा था कि पंजाब के विभिन्न प्रांतों के वे माननीय मेम्बर जो बड़ी कौंसिल में एक मेम्बर जितनी राजभक्ति दिखायें तो मैं समझूं, वे भी राजभक्त हैं।

माननीय मालवीय जी के अपमान से शिक्षित भारतवासियों में बड़ा असंतोष फैला। पंजाब के अन्यान्य शहरों में कई बार जब उसने दरबार किये तो भारतीय राजनीतिक आन्दोलन से घृणा प्रकट की और पंजाब के भंयकर काण्ड से पहले वह पंजाब को बहुत बुरी तरह से दबाये रहा तथा उसकी राजभक्ति के गीत गाता रहा। पर सच पूछो तो पंजाब का राजनीतिक जीवन उसने नष्ट कर दिया था। देहातों में रंगरूट भरती करने में उसके आदेशानुसार खूब ज़बरदस्ती की गई। युद्ध ऋण भी इसी ढ़ंग

से लिया गया। 'कामागाटामारो' नामक जहाज के उन यात्रियों को जो दु:खी होकर क्षुब्ध भाव से भारत लौटे थे, इसने सैकड़ों की संख्या में कैद किया और काले पानी भेजा। कितने पंजाबियों को फांसी पर लटका कर उनका काम तमाम किया गया। भाई परमानन्द एम० ए० जैसे साधु आदमी काले पानी भेजे गये। निरपराध लालचन्द फलक और बलराज वगैरह जेल में बरसों सड़े। इसी की कृपा से देहली और लाहौर के षड्यन्त्र रचे गये और कितने ही भारतीय नवयुवकों को फांसी पर लटका दिया गया। झंग आदि की ओर जो एक बार हल्लागुल्ला हुआ वह भी इसके शासन की श्रेष्ठता का ही नमूना था। इन ही सब बातों से ठोक पीट कर पंजाबियों को वैद्यराज बनाया जा रहा था। पंजाब के शिक्षित अब अधिक दिन तक ओ डायर की इन करतूतों को सहन न कर सके और उन्होंने थोड़ा बहुत आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सर ओ डायर की तेज निगाह इधर लगी हुई थी।

अमृतसर रेलवे प्लेटफार्म पर कोई कितना ही बड़ा प्रतिष्ठित भारतीय हो बिना प्लेटफार्म टिकट के नहीं जा सकता था। और छोटी से छोटी हैसियत के गोरे के लिए कोई रोक-टोक नहीं थी। उन्हीं दिनों मैंने इसके लिए विशुद्ध आन्दोलन किया और जिस को अन्त में मेरे राजद्रोह के कारणों में से एक समझा गया। हालांकि स्टेशन के कर्मचारियों से बड़ी शान्ति के साथ हमारा फैसला हो गया था। किन्तु तब भी सुपरिण्टेण्डेण्ट को कत्ल करने का अभियोग हम पर लगाया गया था। इधर बहुमूल्य समस्या ने लोगों को बुरी तरह से परेशान कर रखा था। इन ही दिनों में भारतीयों के द्वारा एक आवाज से विरोध करने पर भी रोलेट एक्ट पास कर ही दिया गया। जब इसकी गुरुतर क्रूरता का ख्याल करके महात्मा गांधी जैसे त्यागी नेता ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया तो समस्त भारत के साथ पंजाब भी मौन न रह सका। अमृतसर में सभायें होने लगीं और सत्याग्रह का सिद्धान्त समझाया जाने लगा। पर इधर सर ओ डायर किंकर्त्तव्यकविमूढ हो रहा था और उसके पेट में चूहे कूद रहे थे। ३० मार्च को हड़ताल होने वाली थी। २९ मार्च १९१९ को सुबह के ११ बजे पुलिस सब इंसपेक्टर मेरे पास आया और उसने मेरी जबानबन्दी की आज्ञा दी। जिसमें लिखा था कि मैं न कुछ बोल सकता हूं और न लिख सकता हूँ। चुपचाप मैंने हुक्म लेकर रख लिया और पूरी तरह से उसका पालन किया। हां इतना जरूर हुआ कि ६ तारीख की हड़ताल के लिए जो नोटिस छपे थे उसके निवेदकों में मेरा भी एक नाम छपा

हुआ था। ६ तारीख को हड़ताल हुई और बड़ी शान्ति के साथ हुई। किसी तरह की कोई अशान्ति नहीं हुई। पर नवमी का जुलूस भी इसी शान से निकला। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक लाख की संख्या में जुलूस बनाकर बाजारों में निकले। कोई किसी तरह की हलचल नहीं हुई। पर सर ओ डायर यह सब कुछ कैसे देख सकता था। सत्याग्रह की ३० तारीख की पहली सभा में जिन लोगों ने व्याख्यान दिया था उनकी भी मेरी तरह से जबान बन्द कर दी गई और तो और स्वामी अनुभवानन्द जो कि एक आर्यसमाजी उपदेशक हैं और जिन्होंने हिन्दू-मुसलिम मेल पर व्याख्यान दिया था उनकी भी जबान बन्द कर दी गई।

इधर हड़ताल और आन्दोलन को जी हजूरों, आनरेरी मजिस्ट्रेटों तथा म्युनिसिपल कमिश्नरों का दबाव डालकर बन्द करना चाहा, पर उनका असर न पड़ा। क्योंकि लोग, उन लोगों के प्रभाव में नहीं आ सकते थे। नौकरशाही का जब यह बाण खाली गया, तब बड़ी चिन्ता हुई। और उस चिन्ता में जो कुछ ओ डायर ने सोचा वह इतना बुरा था कि जलियांवाला बाग की दुर्घटना उसी का परिणाम थी।

निर्वासन

१० अप्रैल की सुबह को मुझे डिप्टी कमिश्नर की एक चिट्ठी मिली जिसमें लिखा था कि मैं दस बजे उनको बंगले पर मिलूं। मैंने साधारण पत्र समझा और यथा नियम अपने बीमारों को देखने गया। दस बजे पहले मैं बंगले पर पहुंचा। डा० किचलू भी वहाँ मौजूद थे। पुलिस के कुछ गोरे अफसर भीतर बाहर हो रहे थे। मि० वेकेट ने हम को भी बुलाकर निर्वासन का हुक्म सुनाया-और कहा कि अभी आप लोग अमृतसर छोड़ दें। सुतरां मोटर तैयार थे। दोनों फौजी पहरे के सांथ बैठाकर मि० रिहलस सुपरिण्टेंडेंट पुलिस हमारे साथ गये। मोटर इतनी तेजी से चली कि कर्तारपुर के डाक बंगला पर जाकर सांस लिया। इसके बाद वहां से हम लोग शाहपुर पहुंचे। वहां से एक मोटर में बैठकर हम लोग धर्मशाला को रवाना किये गये। अप्रैल में अमृतसर में गर्मी होती है अत: हम लोगों ने ठण्डे कपड़े पहने हुए थे। धर्मशाला पहाड़ी स्थान पर होने के कारण वहां खासी ठण्ड थी। मैंने एक वकील मित्र को बुलाकर दो बिस्तर और पहनने के कपड़े मंगाए और यद्यपि पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट से आज्ञा ले ली गयी थी। परन्तु तब भी मेरे उन मित्र को कष्ट दिया गया। हम लोग वहां अलग-अलग स्थानों में रखे गये और हमारी डाक पर सेन्सर रहा। हम दोनों आपस में नहीं मिल सकते थे। जो लोग हमारे पास आते थे

उनको तंग किया जाता था। इसलिए हम ने सब से मिलना छोड़ दिया था।

गिरफ़्तारी

अन्त में ६ मई को सुबह एक इंसपेक्टर पुलिस मेरे पास आया। उसने मुझे सूचित किया कि मुझे डाक बंगला को चलना चाहिए। मेरा सामान शीघ्रता से बांधा गया और पुलिस की निगरानी में डाक बंगला को रवाना किया गया।

थोड़ी देर बाद डा० किचलू भी आ मौजूद हुए। वहां पांच घण्टे के बाद वारण्ट के अनुसार हम को गिरफ़्तार किया गया। हमारी तलाशी ली गई और हमारी सब वस्तुओं पर पुलिस ने अधिकार कर लिया। बन्दूकों और संगीनों से सजे हुए सिपाहियों के पहरे में हम को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। उसने हमारा लाहौर के लिए चालान कर दिया। उसी पहरे में हम लोग पठानकोट बम्बूकाटों में बैठकर लाये गये। वहीं से जेल की गाड़ी में बैठकर हम को लाहौर छावनी में पहुंचाया गया, जहां हमारे हाथों में 'लोहे के आभूषण' पहनाये गये और उसी हालत में हम लोग सेण्ट्रल जेल लाहौर की काल-कोठरियों में बन्द कर दिये गये। उन में बड़ी बदबू और मच्छर थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट कावन का सलूक बड़ा खराब था और उसकी 'कृपा' से हम लोगों ने बड़ा कष्ट उठाया।

अभियोग

२ जून सन् १९१९ को मार्शल-ला कमीशन के सामने हमारा मुकदमा पेश हुआ। अमृतसर रेलवे प्लेटफ़ार्म का आन्दोलन मेरे लिए घोर राजद्रोह बताया गया। इसके सिवा मेरे ऊपर जो चार्ज लगाया गया। उसमें आग लगाना, कलह, विद्वेष, डकैती, सिडिशन विद्रोह तथा सम्राट् से युद्ध करना आदि सभी अपराध मुझ पर लगाये गये। हमारे गवाहों और वकीलों को बहुत बुरी तरह से दबाया जाता था। और अपने गवाहों का खर्चा हम को ही दाखिल करना पड़ा था। एक मास तक मुकद्दमे का यह बनावटी नाटक खेला जाता रहा। ५ जुलाई को हम को हुक्म सुनने के लिए जब अदालत में जाना पड़ा तो जेल की एक सड़क पर खड़ा कर बहुत बुरी तरह से हमारी तलाशियां ली और हमारे दुपट्टे तथा टोपियां उतार ली गई। लाला हरिकिशन जैसे हैसियत के आदमी भी हम में शामिल थे। यह दशा देख कर हृदय कांप उठा। हथकड़ियां लगाकर और बन्द गाड़ियों में बैठाकर हम को समरी कोर्ट में ले गये। मार्ग में जगह जगह सशस्त्र

कड़ा पहरा लगा हुआ था, वहां भी बड़ी तैयारी थी। हम में से किसी को रिहा कर दिया और किसी को उमर भर के लिए कालापानी, फांसी के हुक्म भी कितनों को ही सुनाये गये। डा० बशीर भी मुस्कराये और बिल्कुल भयभीत नहीं हुए। इसके बाद हम लोग अन्त तक जेल में रहे। मैं हस्पताल में काम करता था। परेड में भी दो बार हाजिर होना पड़ा। कई बार हम को क्षमा मांगने को कहा गया किन्तु क्योंकि हम लोग अपने को निर्दोष समझते थे, अतः क्षमा मांगने की जरूरत नहीं समझी गई। मुझे उमर भर के लिए जो कैद की सजा मिली थी, वह केवल इस अपराध पर दी गई थी कि मैंने जबान बन्दी का हुक्म होने पर भी हड़ताल में नोटिस पर क्यों हस्ताक्षर किये। हालांकि उस आदमी को रिहा कर दिया था, जिसने इस पर हस्ताक्षर ही नहीं बल्कि वह उस ६ तारीख की सभा का सभापति भी बना था। यह था मुकद्दमे का एक खेल, जो इस तरह से खेला गया था।

हण्टर कमेटी

जब यह कमेटी बैठी तो हम से गवाही देने को कहा गया। हम ने कहा सरकारी गवाहों पर जिरह की जायेगी और हमारे गवाह भी लेने होंगे तो हम गवाही देंगे। यह स्वीकार नहीं किया गया था। साथ ही कांग्रेस कमेटी की सब बातें स्वीकार न करने से उसने भी हण्टर कमेटी का बायकाट कर दिया था, इसलिए हमने भी यही उचित समझा कि गवाही देना व्यर्थ है। पं० मालवीय और नेहरू तथा मि० सी० आर० दास मुझे जेल में मिलने आये थे, उन्होनें भी मेरे विचार का अनुमोदन किया था।

सत्याग्रह

सत्याग्रह का आन्दोलन करने के लिए जब कि हम लोग अमृतसर में लोगों को तैयार कर रहे थे, तभी हम लोगों का निर्वासन हुआ। पीछे महात्मा गांधी पकड़े गये। अगर यह सब कुछ न होता और वैध आन्दोलन जारी रहता, साथ ही लोगों के समूहों पर बाजार और पुल पर गोलियां न चलायी जाती तो यह निश्चय है कि न तो लोगों में वह जोश आता और न अंग्रेज मरते। न मकान नष्ट-भ्रष्ट होते और न ही जलियांवाला बाग जैसी दुर्घटना ही होती। पर यह सब कुछ तो तब हुआ यदि सर ओ डायर का दिमाग सातवें आसमान पर न चढ़ जाता। सर ओ डायर ने जो कुछ पंजाब में किया है, भारत के इतिहास में खून के अक्षरों से लिखा

जायेगा और वह होगा ब्रिटिश राज्य पर सबसे बड़ा कलंक जो किसी तरह से भी छूट न सकेगा।

विद्रोह

कहा जाता है कि समस्त देश में विद्रोह करने की हमारी साजिश थी और हम लिप्त थे। हम बोलशेविकों से मिले हुए थे, अफगान अमीर से भी मिले थे, और वह केवल इसलिए कि देशभर में विद्रोहानल जल उठे और अंग्रेजी राज्य को उखाड़ कर फेंक दिया जाय। यह बात बिल्कुल बेजड़ और निर्मूल थी। ऊंटपटांग विद्रोह का स्वप्न देखकर नौकरशाही ने भयंकर भूल की है। जिसका प्रायश्चित्त अब तक नहीं हो रहा है क्योंकि हम जो कुछ करते थे, वह वैध और कानून की सीमा के भीतर, साथ ही वह स्पष्ट था। न हमारा अमीर से कोई सम्पर्क था और बोलशेविज्म का तो शब्दार्थ भी मैं अभी तक ठीक नहीं समझता। रही राजद्रोह की बात, सो अपने स्वत्वों के लिए आन्दोलन करना हमारा धर्म था। आगे भी हम इस से बाज न रह सकेंगे। संसार में ऐसा होता है हम भी उसे करेंगे। पर रही दूसरी किसी शक्ति को भारत में ला खड़ा करने की बात, वह बिल्कुल बेजड़ और निराधार है। महायुद्ध के समय मैंने बतौर एक डाक्टर के अपनी सेवा सरकार को समर्पित की थी और रणाङ्गण में जाकर ब्रिटिश सैनिकों की सेवा की थी। तात्पर्य यह कि अपनी गवर्नमेंट से घर में हम लड़ेंगे, स्वत्व मागेंगे, किन्तु दूसरा कोई आंख भरकर भी देश की ओर देखेगा तो हम **"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"** कहकर उसका विनाश करने के लिए ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के साथ होंगे। आज तक हम ऐसा करते रहे हैं। आगे भी ऐसा करेंगे। ऐसी दशा में हमारे देश की नौकरशाही सरकार ने पंजाब में जो कुछ किया वह अवश्य एक बड़ी भयंकर भूल थी।"

❑❑

श्रीयुत डा० सेफ़ुद्दीन किचलू

(आत्मकथा)

"जुलाई सन् १९१९ से पहले अमृतसर में किसी तरह की राजनीतिक जागृति नहीं थी। कांग्रेस कमेटी थी परन्तु सर ओ डायर की नादिरशाही सरकार के डर से वैध आन्दोलन करने से भी लोग भय खाते थे।

मेरे मन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने सोचा कि जब तक हिन्दू-मुसलिम प्रेम नहीं होगा कोई राजनीतिक काम होना कठिन है। इसी ख्याल से मैंने और मेरे साथी शिक्षित नवयुवकों ने हिन्दू-मुसलिम मेल का काम आरम्भ किया। इतने में देहली में कांग्रेस हुई और मैंने अपने साथियों की सम्मति से अगले साल के लिए अमृतसर में उसे निमन्त्रित कर दिया। अमृतसर के दूसरे साथियों ने यद्यपि इसका विरोध किया किन्तु कांग्रेस ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

देहली से अमृतसर आते ही मैंने कांग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाने के लिए चेष्टा आरम्भ कर दी और अपना अधिक समय इसी में लगाना शुरू कर दिया। पब्लिक रीडिंग रूम और लायब्रेरियां खोली गईं। मैं मुल्तान, लाहौर और जालन्धर गया तो वहां के आदमियों ने मुझे सहायता देने का वचन दिया और इसी तरह से स्वागतकारिणी सभा बनाने की तैयारी होने लगी।

सत्याग्रह

बड़ी बुरी घड़ी में रोलेट एक्ट पास हुआ था। कौंसिल में सभी गैर सरकारी मेम्बरों ने विरोध किया। और देश के एक सिरे से ले कर दूसरे सिरे तक उसके विरोध में आन्दोलन आरम्भ हुआ। महात्मा गांधी की तेज आंखों ने देखा कि इसका परिणाम बुरा होगा। इसलिए उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन को जन्म दिया।

अमृतसर में भी सत्याग्रह सभाएं हुईं। व्रत रखे गये, प्रस्ताव पास हुए, और काम आरम्भ हुआ। मेरे घर पर सत्याग्रह सभा का आफिस खोला गया। रोलेट बिल का विरोध होने लगा। पहले 'वन्दे मातरम्' हाल में सभाएं होती रहीं। लोगों का उत्साह इतना बढ़ा कि वहां बैठने को भी जगह न रहती। अन्त में जलियांवाला बाग में सभाएं होने लगीं। तीस-तीस हजार आदमी इकट्ठे होते थे। ३० तारीख को जो सभा हुई उसका मैं

सभापति चुना गया था। स्वामी अनुभवानन्द, पं० दीनानाथ सम्पादक 'वक्त' तथा पं० कोटूमल के व्याख्यान हुए। अगले दिन हम चारों की जबान बन्द कर दी गयी।

६ अप्रैल सन् १९१९ को एक सभा जलियांवाला बाग में हुई और मुझे उसमें भाग लेने से रोका गया। कहा जाता है कि इसमें ४० हजार आदमी थे। स्त्रियों ने भी भाग लिया था।

राम नवमी

९ अप्रैल को राम नवमी थी। हिन्दू-मुसलमानों का एक लाख आदमियों की संख्या में जुलूस निकला। पुलिस का कोई सरोकार नहीं था। तब भी बड़े आनन्द से सब काम समाप्त हुआ और हिन्दू मुसलमान-प्रेम दृढ़ हो गया। पर सर ओ डायर के गुरगे यह सब सहन न कर सके।

निर्वासन

१८ अप्रैल की सुबह को डिप्टी कमिश्नर अमृतसर की एक चिट्ठी मुझे मिली। उसमें मुझे १० बजे अपनी कोठी पर बुलाया था। मैं वहां पहुंचा। डा० सत्यपाल भी वहीं मिले। डिप्टी कमिश्नर के अतिरिक्त दो तीन मजिस्ट्रेट और कुछ पुलिस अफसर भी बैठे थे। डिप्टी कमिश्नर ने पंजाब सरकार का एक हुक्मनामा मुझे दिखाया। उसमें भारत रक्षा कानून के अनुसार धर्मशाला में नज़रबन्दी की आज्ञा लिखी थी। मैंने सहर्ष उस पर हस्ताक्षर कर दिये किन्तु डिप्टी कमिश्नर से कह दिया कि पंजाब गवर्नमेण्ट इस सम्बन्ध में भयंकर भूल कर रही है। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि उनका इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं है। पंजाब सरकार की ऐसी ही आज्ञा है। मैंने एक पत्र नजरबन्दी की सूचना का अपनी बेगम को लिखा और डिप्टी कमिश्नर ने उसे मेरे घर तक पहुंचा देने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद शिष्टाचार के अनुसार मैंने सब से हाथ मिलाया और कोठी से बाहर चला आया। बाहर दो मोटर तैयार थे। मि० रिहसल के साथ फौजी हथियारबन्दों के पहरे में मुझे और डा० सत्यपाल को अलग-अलग मोटरों में बैठाकर धर्मशाला के डाक बंगले पर पहुंचाया गया। इसके बाद शाम को हम लोग धर्मशाला पंहुचे। डिप्टी कमिश्नर को पहले ही हमारे साथ के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने तार दे दिया था। वहां हमारे लिए कोई प्रबन्ध नहीं था। डा० सत्यपाल के एक वकील मित्र ने हमारे लिए बिस्तरों और कपड़ों का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद हम दोनों को एक दूसरे से अलग रखा गया। मेरे पास कोई आदमी नहीं आ

सकता था। बाहर सैर को जाते समय छाया की तरह से मेरे आगे पीछे खुफिया पुलिस लगी रहती थी।

गिरफ़्तारी

मई के पहले सप्ताह में मेरे पास एक सब इंसपेक्टर पुलिस आया और उसने हुक्म सुनाया कि आज सेण्ट्रल जेल लाहौर को जाना होगा। सामान बांध लो। मेरा सामान बांधा गया और पैदल चल कर धर्मशाला पहुंचा। डाक बंगला पर डा० सत्यपाल भी मिले। हम दोनों को वहां के मजिस्ट्रेट के सामने पेश करके गिरफ्तार किया गया और पुलिस के जवानों के पहरे में तीसरे दिन लाहौर स्टेशन पर पहुंचे। प्लेटफ़ार्म पर जब उतरे तब हमारे हाथों में हथकड़ियां लगी हुई थीं। और वहां से बन्दगाड़ी में बन्द करके सेण्ट्रल जेल भेजे गये।

सेन्ट्रल जेल

जिस समय लाहौर की सेण्ट्रल जेल में पहुंचा तो ला० दुनीचन्द बैरिस्टर अपने भाई मि० गणपतराय से बात कर रहे थे। मैंने उन्हें अभिवादन किया। उस पर असिस्टेंट जेलर ने मुझे बुरी तरह डांटा। इसके बाद एक तंग और गन्दी काल कोठरी में बन्द कर दिया गया। उसी में टट्टी भी थी। पास ही पानी का एक घड़ा रखा था। शाम को मेरे लिए जेल की रोटी और शाक आया। रोटी में आधी मिट्टी थी और शाक में न जाने क्या घास फूंस मिला हुआ था। लोहे की बाटी में यह सब मुझे नसीब हुआ था। परन्तु उसे देखने से ही उल्टी आने को होती थी, इसलिए मैंने उसे नहीं खाया। शाम को उसी दिन मेरे पास सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के साथ डिप्टी कमिश्नर आया। मैंने अपनी हैसियत के अनुसार बैरिस्टर होने के कारण अच्छे भोजन और ठीक कपड़े की व्यवस्था कर देने को कहा। इसके लिए उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि ऐसा जरूर हो जाएगा। इसके बाद मेरी कोठरी में सफेदी करा दी गई। और दो दिन के बाद मैंने भोजन किया। मि० कावन सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल का वर्ताव मेरे साथ अच्छा न था। वह कई बार मुझे मिला और एक बार उसने कहा कि मुझे हुज़ूर कहकर बुलाया जाये और साथ ही सीधी तरह से नीचे हाथ डालकर बातें करूं। पर खेद है कि मैं उसकी आज्ञा का पालन न कर सका और उत्तर में मुस्कराकर रह गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल मुझे अपने वकीलों तथा अपने घर के आदमियों से भी बात नहीं करने देता था। यदि कभी आज्ञा देता भी तो स्वयं उपस्थित रहता इसलिए मैं अपने वकीलों को

मामला ठीक नहीं समझा सका। इसके बाद मि० आई० सी० लाल सुपरिंटेंडेंट आये। इनका वर्ताव सहानुभूतिपूर्ण था।

मुकदमा

४ जून को मुकदमा आरम्भ हुआ। जजों का बर्ताव बड़ा खराब था। सरकार स्वयं यह नाटक कर रही थी। और स्वयं नौकरशाही अभिनेताओं का पार्ट करती थी। हमारे गवाहों और वकीलों को बहुत बुरी तरह दबाया जाता था। जो सरकारी गवाह अभियुक्तों के पक्ष में कुछ कह देते थे, वह सब कुछ नहीं लिखा जाता था। यदि जजों से ऐसा करने के लिए कहा जाता तो बार-बार समरी कोर्ट कह कर भय दिखा दिया जाता था। कहा जाता था कि वह भी सरकारी दया है जो इतना भी हो रहा है। सरकारी गवाहों और पुलिस तथा सरकारी वकीलों से बड़ा घुल-मिलकर काम लिया जाता था। निदान इस समरी कोर्ट का न्याय बिल्कुल पक्षपातपूर्ण था और उसने जो कुछ किया वह पहले ही सोचा समझा हुआ था। और हम भी उसका अनुमान किये हुए थे और अन्त में हुआ भी वही। अर्थात् हम को वहीं सजाएँ मिलीं। सजा होने पर ला० दुनीचन्द बैरिस्टर और दीवान मंगलसेन सहित हम लोग मोण्टगोम्बरी जेल में भेजे गये। वहां हम एक ही कमरे में रहे। कोई काम हमारे मांगने पर भी हमको नहीं दिया जाता था। इसलिए स्वास्थ्य और भी खराब रहता था।

हण्टर कमेटी

इसी बीच में हण्टर कमेटी का काम आरम्भ हुआ। मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट द्वारा गवर्नमेण्ट से दरख्वास्त की कि मैं भी गवाही देना चाहता हूं। पर सरकारी गवाहों पर जिरह करूंगा और अपने गवाह पेश करूंगा। पंजाब सरकार की स्वीकृति आने पर मुझे लाहौर जेल भेजा गया। किन्तु मेरी शर्तें स्वीकार न होने से मैंने गवाही देना स्वीकार न किया। इसके बाद लाहौर के सेण्ट्रल जेल में रखा गया और १६ दिसम्बर १९१९ को राजकीय घोषणा के अनुसार शाम को छोड़ दिया गया।

राजनीतिक कैदियों से जेल में बहुत बुरा सुलूक होता है। उनकी इज्जत और प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखा जाता। इसके सिवा साधारण कैदियों को जिस दशा में रखा जाता है उससे उनका कुछ सुधार नहीं होता। थोड़े बदमाश लोग अधिक खूंखार और खूनी हो जाते हैं। जेल में बहुत शीघ्र सुधार की जरूरत है।" ❑❑

श्रीयुत मज़हर अली

बी०ए०, एल०एल०बी०

(आत्मकथा)

"गुरदासपुर के जिले में बटाला एक प्रसिद्ध स्थान है। वहां वह व्यापार का केन्द्र समझा जाता है। मुन्सफी और तहसील भी है इसलिए वकीलों की भी जरूरत है। उसी जरूरत के अनुसार वहां चार-पांच वकील भी रहते हैं, उनमें से ही एक मैं भी हूं। बटाला में भी रोलट एक्ट का प्रतिवाद हुआ था, साथ ही हड़ताल हुई थी। फिर हिन्दू और मुसलमानों में मेल हुआ और रामनवमी दोनों जातियों ने मिलकर मनाई। हिन्दू मुसलिम के इस प्रगाढ़ प्रेम की आड़ में सर ओ डायर की नारदिरशाही सरकार को राजद्रोह के भूत का चित्र दिखायी देने लगा। कमिश्नर साहब अपने साथियों सहित अमृतसर के खूनी हत्यारे जनरल को ले कर बटाला पहुंचे। वहाँ उनका दरबार हुआ। लोगों को बुलाकर जमा किया गया था। उस दरबार में गोरे, गोरखे और सिख जवानों का चारों ओर सशस्त्र पहरा था। मशीनगन और आर्मजकार आदि सभी सामान मौजूद था। मशीनगन का मुंह लोगों की तरफ किया गया था जैसे किसी प्रबल शत्रु से युद्ध करने की धूमधाम हो। बहुत से आदमी अपने बच्चों को लेकर दरबार में आये थे जैसे कि वहां कोई इनाम बांटा जाने वाला था पर हुआ उल्टा। जनरल डायर के आने पर अफसरों की चेतावनी के अनुसार सब लोग खड़े हो गये और आते ही आपने लेक्चर देना शुरू किया। आप जो कुछ बोले उर्दू में बोले और वह इस तरह से था—

"डेखो टुम लोग अहमक लोग के पीछे लग गया है। और फिसाड करटा है। रौलेट बिल क्या है? हमारे पास उसका भी बाप मौजूड है। डेखा अमृटसर में क्या हुआ? लड़टा है। हकूमत जबरडस्ट का है। हम हकूमट करटा है। हिन्दूस्टानी ३३ करोड़ है, क्या है? हठियार नहीं है कुछ नहीं, डो आडमी सब को काफ़ी है। टुम अहमक लोग के पीछे लगटा है जो मरने के बखट हट जाटा है। अहमक मट बनो। अहमक लोग के पीछे मट लगो। अमृटसर में फिसाड किया, साहब लोग मार डिया। मेम साहब को पीटा, यह मरडानगी है?"

इसके बाद आपने पूछा कि क्या कोई बदमाश है। उपस्थित हाकिमों ने

कुछ कानाफूसी करके वकीलों को पेश किया। वकील लोग टेबिल के चारों ओर खड़े हो गये। हर एक के पीछे सशस्त्र सिपाही था। डायर ने कहा–

"मोअजजीन! मैं नहीं जानटा कि आपको मोअजजीन कहूं या नहीं। टुम रोलेट बिल को बुरा कहटा है, उसको पढ़ो वह बुरा नहीं, अच्छा है। टुम रोलट बिल नहीं जानटा, हम जानटा है। हम टुमारा इमट्हान लेगा, खूब याड करो। जब फिर हम आवेगा टो इम्टहान लेगा।"

हमारे साथ मि० किचन कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर मि० हारकोर्ट का सुलूक बहुत बुरा था। इन्होंने पुलिस द्वारा बटाला के दरबार में चार पांच वकीलों के सिवा गुरुदासपुर के बैरिस्टरों और वकीलों को बुलाकर बहुत धमकाया और कहा कि मैं तुम लोगों को गिरफ्तार करने आया था तुम को जहन्नुम में पहुंचाने के लिए बहुत काफी मसाला तैयार हो चुका है, पर अभी कुछ लोगों के सम्बन्ध में जांच की जा रही है। मैं आज्ञा देता हूं कि आप लोग सरकारी गवाह बनने के लिए दरख्वास्तें दें, तो वायदा माफी दिया जायेगा। मगर मैं यह नहीं कह सकता कि किस किसको माफ किया जायेगा। इसके बाद कहा कि आज गिरफ्तारी स्थगित करता हूं लेकिन सावधान किये देता हूं कि बहुत शीघ्र तुम लोगों को गिरफ्तार किया जायेगा। यह सब ऊटपटांग बातें सुनकर हम लोग अपने घरों को लौट आये। नौकरशाही की इस मूर्खता का रहस्य हम सोचने पर भी कुछ न समझ सके।

२ मई १९१९ को हम को हुक्म मिला कि हम आज शाम को चार बजे डिप्टी कमिश्नर के बंगले पर हाजिर हों। इससे हम को अपनी धर पकड़ का पूरा निश्चय हो गया था। और सिवा इसके कि अब सरकारी गवाह बनकर, आत्मा का खून करें, देशद्रोही बनें और कोई मार्ग छुटकारे का नहीं था। ला० सन्तराम, हाजी अब्दुलरहमान, सरदार महेन्द्रसिंह और मैं गुरुदासपुर पहुंचे। वहां जाकर मालूम हुआ कि गुरुदासपुर के अन्यान्य वकील और बैरिस्टरों को भी कल सुबह हाजिर होना पड़ेगा। निदान रात को हम लोग वहां रहे और सुबह हम सब लोग नियत समय से कुछ पहले वहां पहुंचे। हमने देखा बंगले के चारों ओर सशस्त्र पुलिस और फौज के पहरे लगे हुए थे। निर्बलों पर अत्याचार करने का साजो सामान बड़ी शान से जमा किया गया था। हम सब को अन्दर बुलाया गया और जाते ही 'जामे' से बाहर होकर कड़े स्वर से गिरफ्तारी का हुक्म सुनाया गया। और कहा गया कि भारत रक्षा कानून की धारा १२ एफ० के अनुसार तुम को गिरफ्तार किया जाता है।

लोहे के आभूषण

पास ही एक पुलिस कर्मचारी खड़ा था। उसने एक गठरी जमीन पर फेंकी। जिससे गिरते ही झन्कार की आवाज आई। कपड़ा उठते ही मालूम हुआ था कि हथकड़ियां लगायी जायेंगी। डिप्टी कमिश्नर ने बड़े कर्कश स्वर से कहा–'हां! तुम्हारे साथ कैदियों–सा ही वर्ताव किया जायेगा।'

मन में विचार उठा कि जब गिरफ्तार ही हुए हैं तो हथकड़ियों बेड़ियों का अब क्या डर? सोने–चांदी के आभूषण स्त्रियों की शोभा होती है परन्तु मनुष्यों के आभूषण लोहे की जंजीरें ही हैं। यह देश भक्ति का प्रथम प्रसाद सिर झुकाकर सानन्द स्वीकार किया गया और दो–दो आदमियों के हाथ एक–एक हथकड़ी से बांध कर हम को जेल की ओर रवाना किया गया। हम को गोरी तथा काली फौज चारों ओर से घेरे हुए साथ जा रही थी। महामान्य सम्राट् की जेल की ड्योढ़ी में पहुंचते ही रजिस्टरों की उथला–पुथली शुरू हुई और हम लोगों के कालर नकटाई मालखाने में जमा कर दिये गये। भीतर जाकर हम लोगों को जेल की एक कोठरी में बन्द कर दिया गया। कोठरियां बड़ी गन्दी थीं। हमने आजतक कानून की किताबों के सिवा इन काल कोठरियों का कहीं हाल भी नहीं सुना था। दूसरे दिन हम लोगों के पायजामों के 'एजारबन्द' खुलवा लिए गये और वह इसलिए कि कदाचित् गले में डालकर हम लोग आत्महत्या न कर लें। हमें हंसी भी आई और देश की विवशता पर रोना भी। क्या दिल्लगी है कि एक ओर तो ब्रिटिश राज्य का भयंकर शत्रु समझकर हम को जेल में डाला गया, दूसरे हम लोगों को फिर इतने निर्बल आत्मा समझ लिया गया कि हम इतनी–सी बात से आत्महत्या भी कर डालेंगे।

खाना–पीना बहुत खराब था। उमर भर में हम को वैसी रोटी और दाल शायद कभी नसीब न हुई थी। अन्धेरी रात में पहली बार हमने जमीन पर घुटने टेककर भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और जो कुछ मिला था उसे पेट में डाल लिया।

३ मई की सुबह को एक डाक्टर साहब ने आकर हुक्म दिया कि हम अपने 'एजारबन्द' बहुत शीघ्र पायजामों में डालकर तैयार हो जायें क्योंकि हमारा चालान होने वाला है। मैंने डाक्टर से कहा शीघ्रता नहीं हो सकती। डाक्टर साहब ने बाहर से लकड़ी का एक टुकड़ा लाकर मेरे पयजामें में 'एजारबन्द' डाला और मैंने उसे एक ओर से पकड़ा। पाठकों से प्रार्थना करता हूं कि वे डाक्टर साहब को धन्यवाद दें।

हम लोगों को किसी तरह से खुदा जुदा करके तीसरे दिन कहीं उस कोठरी से छुटकारा मिला। जेल से बाहर आते ही फिर लोहे की जंजीरों से पुलिस ने जकड़ कर जेलर को हमारी रसीद दी।

स्टेशन पर पहुंचकर हम लोगों के भाई, बन्धु, बहनें, माताएँ तथा स्त्रियां हमसे मिलीं। वे सब रोते थे। हम लोगों ने उन्हें किसी तरह से सान्त्वना दी और रेल में बैठ गये। पुलिस का बड़ा कड़ा पहरा था। लाहौर पहुंचने पर सेण्ट्रल जेल में भेजे गये और वहाँ पहुँचकर देखा तो पंजाब के मनमाने नवाब सर ओ डायर की कृपा से सेण्ट्रल जेल कैदखाने की जगह महातीर्थ बन रहा है। लाहौर की सेण्ट्रल जेल में 'ट्रिब्यून' सम्पादक मि० कालीनाथ राय तथा मि० कृष्ण बी०ए० सम्पादक उर्दू प्रताप और डा० सत्यपाल तथा डा० किचलू आदि अनेक गणमान्य सज्जन मौजूद हैं। दो तीन दिन के बाद मालूम हुआ कि चौधरी रामभजदत्त, लाला हरकिशनलाल, लाला दुनीचन्द बैरिस्टर भी आये हैं।

जेल में कविता

लोग मुझे शायर कहते हैं और वैसी ही तबियत भी बतलाते हैं। उर्दू की तुकबन्दी मैं कभी-कभी ज़रूर कर लेता हूं। अत: वहां भी कुछ भाइयों के साथ मिलकर कभी-कभी मुशायरे होने लगे और हमने उस महातीर्थ में खूब गोते लगाये।

लीडरों का अपमान

५ जुलाई को जब लाहौर और अमृतसर के लीडर अपने मुकदमों का फैसला सुनने जाने लगे तो सब को जेल की एक सड़क पर खड़ा करके उनकी तलाशियां ली गयी। और जब लाला हरकिशनलाल तथा पं० रामभजदत्त के दुपट्टे और लाला दुनीचन्द और डाक्टर किचलू की टोपियां उतरवाई गई तो हम लोग अपने आंसू न रोक सके।

वापसी

जब हुक्म सुनाया गया था तब हम लोग ७ जुलाई को गुरुदासपुर को वापस हो गये। और इस बार भी उसी तरह के पहरे में गुरुदासपुर वापस लाये गये और वहां रात को जेल में रखकर सुबह डिप्टी कमिश्नर के यहां पेश कर दिया। डिप्टी कमिश्नर ने कहा कि सरकार ने नयी नीति का अनुसरण करके तुम्हें इस समय रिहा कर दिया है किन्तु चीफकोर्ट से तुम्हारे वकालत के लायसेन्सों के सम्बन्ध में रिपोर्ट की जायगी।

इसके बाद हम लोग बाहर आए और जो कुछ स्वागत सम्मान इस थोड़े से कष्ट के लिए देश ने हमारा किया है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।"

लाला लालचन्द फ़लक

(जेल की दास्तान)

"लाला लालचन्द फ़लक उर्दू के नामी राष्ट्रीय कवि हैं। पंजाब में जिस समय बड़े-बड़े यशस्वी और सच्चे देशभक्त लोगों ने काम करना आरम्भ किया था, उन ही लोगों के साथ रह कर काम करने का सौभाग्य फ़लक को भी प्राप्त है। उस समय के कितने ही लोग राजनीतिक भयंकर मतभेद के कारण थोड़ा बहुत काम करने के बाद ही इस देश में नहीं रह सके, परन्तु फलक तब से अब तक शान्ति- पूर्वक बराबर काम करते रहे। काम करने में बाधाएँ पहुंचाई गईं। बहुत से कष्ट उठाने पड़े। कई बार कानून के शिकंजों में फंसाकर बर्बाद करने की चेष्टाएँ हुईं, पर फ़लक उसी तरह अटल रहे। एक बार पंजाब में ऐसा दमन का दौर आया कि बड़े-बड़े काम करने वालों के दिमाग ठण्डे हो गये। सर माइकेल ओ डायर की सरकार ने लोगों को भयभीत किया। और समझने वाले लोगों ने भी अपना स्वर धीमा कर दिया। उस समय ला० लालचन्द फ़लक ने एक कविता लिखी थी जो नीचे दी जाती है। उससे स्पष्ट मालूम होता है कि पंजाब की उस समय कैसी दशा थी। कविता यह है—

तू भी बदल फ़लक कि ज़माना बदल गया ।
था जोश कौमियत जो दिलों में, निकल गया ।
सख़्ती की पोलिसी का अजब दाव चला गया ।।
बाकी नहीं है कौमपरस्ती की बू कहीं ।
हर शख़्स खैरख्वाही के सांचे में ढल गया ।।
बैठे हुए हैं कौमपरस्तों के आज दिल ।
हुक्काम का जिगर है ख़ुशी से उछल गया ।।
सूफ़ी ने और अजीत ने टरकी की राह ली ।
बाकी था लाजपत सो वो भी मैदाँ से टल गया ।।
जसवन्त से न निभ सका साथ मुल्क का ।
सद् हयेफ वो भी जान छोड़ कर निकल गया ।।
तसवीर सा ख़ामोश है सरदार किशनसिंह ।
ज़िंदा में बांके तिरछों का कश और बल गया ।।

सरला ने, दीनानाथ ने पकड़ी है रवश नई ।
इनका कदम भी राहे वतन से फिसल गया ।।
इकबाल की है बाग नई वो 'सदा' नहीं ।
गोया बड़े-बड़ों का कलेजा दहल गया ।।
बदला है पिण्डीदास ने महता ने रंग-ढंग ।
तू भी बदल फ़लक कि जमाना बदल गया ।।

बड़े-बड़े पंजाब के नेशनलिष्टों की जब यह दशा थी, उस समय हजरत फलक ने अन्योक्ति लिखकर अपने मन के भाव प्रकाशित किये थे। इससे फलक के दिल की आग का पूरा पता लगता है।

इन सब बातों के सिवा एक बात और बड़े गर्व की फलक ने की है। जिस समय पंजाब में नेशनलिज्म का खात्मा हो रहा था, उस समय हजरत फलक ने एक दर्जन के लगभग उर्दू राजनीतिक गद्य और पद्य की पुस्तकें लिख कर पंजाब को बेदार करने की चेष्टा की। और जब तक सर माइकल ओ डायर और उनके साथियों ने हजरत फलक को हमेशा के लिए जहन्नुम में भेजने के लिए गिरफ्तार न कर लिया, बराबर फलक यही काम करते रहे और स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि पंजाब के जीवन में राजनीतिक बेदारी का मन्त्र फूंकने का सौभाग्य राष्ट्रीय कवि फलक को भी प्राप्त है। फलक ने बचपन से ले कर देशभक्ति को कर्मयोग समझा और उस पर वे कई बार बलिदान हुए, परन्तु निर्भय पूर्वक अपने काम में लगे रहे। नीचे हम उनकी लिखी जेल कहानी ज्यों की त्यों देते हैं। इनकी भाषा का ओज न चला जाये इसलिए हम इसे उर्दू में ही दे रहे हैं।

निगरानी का मुकदमा

सन् १९०७ में पंजाब की पोलिटिकल हलचल में अमली हिस्सा लेने और एक्ट नौआबाद हाई पंजाब व 'एजादी माल गुजारी व आबयाना' के ख़िलाफ़ पुरजोर 'सदा' बुलन्द करने के मावजा में पंजाब के मुकदमा खुफिया पुलिस ने, पंजाब के मुहकमा खुफिया पुलिस ने, पंजाब के नामवर मुश्तवा पोलिटिकल शोर पसन्दों की फैहरिस्त में मेरा भी नाम लिख लिया था जिसकी वजह से मुझे कमाल तकलीफ व मुसायब का शिकार होना पड़ा। लाहौर या उससे बाहर जहां भी मैं जाता, मेरी कड़ी निगरानी की जाती। इस निगरानी से जो मुझे रोहानी सदमा महसूस होता, उसे मैं पूरे ९ साल तक बड़े सब्र व इस्तकबाल से बरदास्त करता रहा।

इसी से मैं मुल्क और कौम की खिदमत में बराबर मसरूफ रहा। तहरीर और तकरीर जिस तरह से भी हुआ मैंने कभी मुल्क को अपनी खिदमत से महरूम नहीं किया और करता भी किस तरह, जब कि मैं देशभक्ति को अपना धर्म और कौम की खिदमत को अपना कर्म मुकद्दस समझता हूं। दुनियां की कोई ज़बरदस्त से ज़बरदस्त ताकत, हत्ते कि मौत का आव वो गुल भी इस पाक मुकद्दस जज़बा को ज़ायल नहीं कर सकता।

वतन और कौम की उल्फ़त न मेरे दिल से निकलेगी।
ये वो तासीर है मर कर भी न मेरे गुल से निकलेगी।।

फरवरी सन् १९१४ में जब कि मैं आये दिन की खाना तलाशियों से तंग आ गया तो मैंने लाहौर के रोज़ाना अख़बारात में एक चिट्ठी लिखकर गवर्नमेंण्ट पंजाब और जिम्मेदार पुलिस अफसरों को समझाया कि वो मेहरबानी फरमाकर आइन्दा मुझे नाजायज व बेमहल तलाशियों से परेशान न करें। और मुझे एक लिटरेरी मुहब्बेवतन शहरी की ज़िन्दगी बसर करने दें। मैंने लाहौर के डिप्टी कमिश्नर से भी अरज की और कमाल मेरहबानी से पेश आते हुए गवर्नमेण्ट से मेरी सिफ़ारिश करने का इत्मीनान दिलाया, और यही वजह थी कि उस वक्त मेरा नाम उस काली फैहरिस्त से काट दिया गया लेकिन तंग दिल खुफिया अपने कमीनेपन से बाज न आई। और हमेशा मेरी झूठी सच्ची रिपोर्ट करती रही। जब लखनऊ में होमरूल का रिजोल्यूशन पास करने वाली कांग्रेस हुई तो मैं भी देखने गया। मेरे वापस आने पर खुफिया पुलिस ने फिर रिपोर्ट की। रिपोर्ट में कहा गया कि मैं मि० तिलक की खास हिदायत ले कर आया हूं। और अनकरीब लाहौर में 'तिलक होमरूल' खोल कर होमरूल के सरगम मेम्बरों को बुला कर पंजाब में पेलिटिकल हलचल मचाऊंगा। अगर-चे ऐसा करना कोई जुर्म नहीं था जब कि तमाम हिन्दुस्तान में होमरूल की लहर चल रही थी कि पंजाब में भी ऐसा किया जाता। लेकिन सर ओ डायर की सरकार ने उसे भी बागीपन समझ लिया। हलांकि ये सब रिपोर्ट गलत और बेबुनियाद थी, मगर तो भी सर ओ डायर ने जब कि लोकमान्य तिलक और बाबू विपिनचन्द्र पाल पंजाब में आने का इरादा भी नहीं रखते थे, उनका पंजाब में मुदाखिला बन्दी का हुक्म जारी कर दिया।

सब से पहले लाहौर की खुफिया पुलिस (जो उस वक्त सर ओ

डायर के आंखों का नूर बनी हुई थी) ने लाहौर के चन्द नौजवानों पर (जो गाहे बगाहे कौमी गीत गाया करते थे।) अपने एजेण्ट या भाड़े के टट्टू के जरिये २४ मार्च सन् १९१७ के रोज़ शराब और कवाब की दावत देकर चन्द कौमी गीत सुने। और २ अप्रैल को दोपहर को मुझे गिरफ्तार करके 'नौलखा थाने' में जेर हिरासत किया गया। मेरे घर और दुकान की भी बड़ी सख्ती के साथ तलाशी ली गई। लेकिन कोई काबिले एतराज अशियाय मेरे यहां से बरामद नहीं हुई। मेरे वालदीन को मुझ से नहीं मिलने दिया गया। मेरी गिरफ्तारी के वक्त मुझे उसकी कोई वजह नहीं बताई गई। मेरे गिरफ्तारी के वारण्ट पर भी कोई जुर्म लिखा हुआ नहीं था। दूसरे अल्फाज में मैं गोया बिल्कुल बेकसूर था और सी०आई०डी० मुझ पर कोई इलजाम लगाने के नाकाबिल थी लेकिन जंगे यूरोप से घबराये हुए अंग्रेज ने बेगुनाहों को हिरासत में देने के जो ज़ालिमाना इख्त्यारात दे रखे थे उनकी बदौलत पहले उसने मुझे आजादी से महरूम करके आहिनी पिंजरे में डाल दिया। और बाद में मेरे खिलाफ इल्जाम गढ़ने और शहाहद फराहम करने का काम शुरू कर दिया गया।

पुलिस बड़ी परेशानी के बाद १३ मई को अपना जाल मुकम्मिल कर सकी। और १४ तारीख को मुझे लाहौर सेण्ट्रल जेल की फांसी कोठरी में ले जाकर बन्द कर दिया गया। १२० दफा से लेकर १२४ दफात तक मेरे उपर लगा दी गई। २८ मई को जेल में ही बैठाये गये खास कमीशन के सामने मेरा मुकदमा शुरू हुआ।

सरकारी वकील मि० पेटमैन ने कहा कि यह मुकदमा पिछली साजिशों से कुछ ताल्लुक नहीं रखता। हां, इसे उस शोरिश की गूंज कह सकते हैं जो आज से १० बरस पहले पंजाब में फैली थी। उस वक्त भी लालचन्द फ़लक शामिल था उसे सजा भी हुई थी। लालचन्द फ़लक, हरदयाल और अम्बाप्रसाद मफ़रूर हो गये। लाजपतराय और अजीतसिंह को जलावतन किया गया। लालचन्द फ़लक, हरदयाल और अम्बाप्रसाद का मुद्दहा था। लाजपतराय और अजीतसिंह दोस्त थे। जिसके सबूत में हम लालचन्द की तसनीफ कर दी किताब 'ख्यालाते लाजपत' पेश करते हैं। जिसका दिवाचा मशहूर बागी हरदयाल का लिखा हुआ है और सूफी अम्बाप्रसाद और अजीतसिंह ने अपनी राय जाहिर की है। शायरों ने दुनिया के सियासी इंकलाबों में बड़ा हिस्सा लिया है। लालचन्द भी पंजाब का नामवर पोलिटिकल शायर है। इसने सन् १९०७ के पोलिटिकल जुलूसों में सख्त नजमें पढ़ी थीं। और सरकार के खिलाफ

बहुत सी बागियाना किताबें शाया की थी जिनके लिए १९०९ में इस पर मुकदमा चलाया गया था। इसके बाद सन् १९१४ तक इसका रूया अच्छा रहा। मगर जब गदर पार्टी के लोग हिन्दुस्तान में वापस आये तो इसका दबा हुआ जोश फिर गर्म हो उठा। और इसने भी पहले की तरह बागियाना तहरीकों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया और नौजवानों को बगावत आमेज साजिश करने, बागियाना गीत गाने और हथियार जमा करके एक बड़े जत्थे के साथ बादशाहत मुवज्जम के खिलाफ जंग करके इस हुकूमत का हिन्दुस्तान में खात्मा कर देने की तालीम देने लगा। इसने काफी नौजवानों को अपने गिरोह में जमा कर लिया था।

इसके बाद मि० पेटमैन सरकारी वकील ने कहा कि लालचन्द फलक अपने साथी नौजवानों को किस तरह की खतरनाक तालीम देता था। बम और हथियारों के जमा करने की तरकीब देता था। मुमकिन है कि अगर चन्द रोज यह और आजाद रहता तो एक बलवा करा देता। इन लोगों के पास हथियार भी थे। एक मुजरिम (जो सरकारी गवाह बन गया है।) के पास से एक पिस्तौल भी बरामद हुआ है।

सरकारी वकील की इफतताही तकरीर के बाद पुलिस के तोते की तरह पढ़ाये हुए सरकारी गवाह बयान देने लगे। और ग्रामोफोन के रिकार्डो की तरह अदालत लिखने लगी। आठ या दस रोज तक यह मजहकाखेज अदालती तमाशा जेल के अन्दर होता रहा। शहादतें ली गई। बयान हुए इस्तेगाशा और सफाई की तकरीरें हुई और ११ जून सन् १९१७ के शाम के ४ बजे करीब मुझे उमरभर कालेपानी में रहने का जालिमाना हुक्म सुना दिया गया। अंग्रेज़ी इंसाफ और अदालत के नाम की तौहीन करने वाली नामनिहाद इस अदालत ने भी तोते की तरह से ऊपर की सरकारी वकील की तकरीर को दुहरा दिया। मुझे और मेरे पास बैठने उठने वाले चन्द नौजवानों को बागी मुजरिम करार दे दिया।

इसके बाद जेल में रखा गया। पीछे सर ओ डायर ने बजाय उमर भर कालेपानी की सजा के १४ वर्ष की कैद की सजा बहाल रखी। लेकिन इसकी मुझे जरा भी खुशी नहीं हुई।

जेल में मेरे वालदीन मुझसे मिलने के लिए आये। मेरी माता बहुत रोती थी, मैंने उसे समझाया और कहा कि देश में एक ऐसा दौर आने वाला है जब कि मैं भी रिहा हो जाऊंगा। मैंने यह भी अफसोस जाहिर किया कि मेरी प्यारी मां अगरचे तुम को मेरे पैदा करने में इतनी तकलीफ

नहीं हुई होगी जितनी कि मेरी पोलिटिकल ख्यालात की वजह से तुम लोगों पर तकलीफों और मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा है। मगर माता याद रख–

खुद सह के जुल्म हस्ती मिटायेंगे ।
भारत के हाल ज़ार को बेहतर बनायेंगे ।।

मोण्टगुम्बरी जेल में

१४ सितम्बर सन् १९१७ को मुझे लाहौर सेण्ट्रल जेल से मोण्टगुम्बरी जेल में भेजा गया। वहाँ मुझे चक्की पीसने का काम दिया गया। मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल से कहा कि मैं पढ़ा–लिखा हूं। साहबे कलम हूं, पांच जबानें जानता हूं। पोलिटिकल कैदी हूं। मुझे इस तरह से दिन–रात कोठरी में बन्द रखना और चक्की पिसाना जेल के कायदे के खिलाफ है। सुपरिण्टेण्डेण्ट पर इसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। एक दिन मेरे बहुत कहने पर पैरों की बेड़ियां उतार दी गई और चक्की पीसते जब महीनों हो गये और दूसरा काम बदलकर नहीं दिया गया, तब मैंने मजबूर होकर खामोश मुकाबला करने का इरादा किया। और बराबर आठ दिन तक कुछ नहीं खाया पिया। मेरा सत्याग्रह देखकर जेल वालों के पितर कूच कर गये। और उन्होंने मेरा काम ढीला कर दिया और कोठरी से बाहर घूमने–फिरने की इजाजत दी गयी। मतलब यह कि जब तक मैं वहां रहा फिर कोई तकलीफ नहीं हुई।

२६ जनवरी सन् १९१८ का दिन था। मेरे पैरों में बेड़ियां और हाथों में हथकड़ी और कन्धे पर कम्बल पड़े थे। जेल के बाहर दर्जनों सिपाही तलवार, बन्दूकों और संगीनों से लैस खड़े थे। जेल का फाटक खुला। अटैन्शन कहा गया। मैं बाहर निकला। सिपाहियों ने झट बन्दूक और संगीनें सम्भालकर चारों ओर से मुझे घेर लिया। मार्च करने का हुक्म हुआ। हम सब आहिस्ता–आहिस्ता कदम उठाने लगे। बन्दूक और संगीनों से आरास्ता सिपाहियों के हल्का में चलते हुए मुझे महसूस हुआ कि नेपोलियन ट्वैलरज के महल से निकलकर अपनी खास मुहाफिज गारद के हमरा मैंदाने जंग की तरफ जा रहे हैं। साथ ही मुझे यह ख्याल आया कि नैपोलियन की तरह शायद मैं भी कोई अजीब हस्ती हूं जिसका स्टेशन तक पहुंचाने के लिए इस कदर इन्तज़ाम किया गया है। इस ख्याल से मुतास्सिर होकर मैंने सिपाहियों और उनके इन्चार्ज अफसर को खिताब करके निहायत ख़न्दापेशानी के साथ कहा मेरी मुहाफिज़

गारद के सिपाहियो! शाबाश! आज तुमने नेपोलियन की खास गारद के नामों वर सिपाहियों की मानिन्द फुर्ती से काम लिया है। तुम्हारे हलक में इस शान व शौकत के साथ चलते हुए आज 'फलक' ने भी अपने आपको नेपोलियन महसूस किया है और वो नेपोलियन की तरह तुम्हारी फुर्ती की दाद देता है। लेकिन इस बात पर अफसोस जाहिर करता है कि तुम अपने अहलेवतन के हुक्काम की तामील में नहीं बल्कि एक अजनबी हुकूमत के मातहत अपने एक हमदर्द और जाँनिसार हम वतन को जलावतन करने के लिए ले जा रहे हो। मेरे इन अलफाज पर कई एक सिपाहियों का दिल भर आया। उन्होंने पहले अपनी दिली हमदर्दी और बेबसी का इजहार किया। फिर कुछ इशार सुनने की फरमाइश की। मैंने निहायत मुहब्बत के साथ हस्बजेल इशार सुनाये-

कौम की ख़ातिर अगर दुनिया में ये तौकीर हो ।
हाथ में हो हथकड़ी पांवों पड़ी ज़ंजीर हो ।।
आखों खातिर तीर हो कि गले शमशीर हो ।
कैद हो फाँसी मिले या मौत दामनगीर हो ।।

सिपाहियों ने बार-बार मुझे मजबूर किया कि और कुछ इशार सुनाऊं और स्टेशन तक बराबर सुनाता ही चला गया। इतने में स्टेशन आ पहुंचा। रेल आई। एक बन्दी गाड़ी में मुझे भी चार और आगे से आये हुए पोलिटिकल कैदियों के साथ बन्द कर दिया गया। रेल चली और अगले रोज लाहौर पहुंची। हम लोग सेण्ट्रल जेल में पहुंचाये गये। दूसरी दोपहर को फिर जेल का फाटक खुला। हम पोलिटिकल कैदियों को हथकड़ियां और बेड़ियां लगाकर मवेशियों जैसी जंगलेदार गाड़ियों में बैठाया गया। गाड़ियों के ऊपर आगे पीछे सिपाही संगीनें निकाल कर बैठ गये और इर्द-गिर्द पुलिस के सवार अपने-अपने घोड़ों पर जा डटे। इन्चार्ज अफसर का इशारा पाकर घुड़सवारों ने घोड़े चलाए। हमारी गाड़ी के घोड़ों ने भी कदम उठाये। हमने **वन्दे मातरम्** और **सत् श्री अकाल** के नारे लगाये। सामने से बारात के बाजों की निहायत दिलकश आवाज आई। मैंने कहा-"दोस्तो ! शगुन निहायत अच्छा हुआ। परमात्मा ने चाहा तो हम पोलिटिकल दूल्हों की बारात बहुत जल्द आजादी देवी की डोली लेकर वापस आयेगी। मेरी बात सुनकर सब साथी हंस पड़े। हंसते-हंसते हम स्टेशन पर पहुंचे। वहां जाकर सींखचे वाली बन्द गाड़ी में बैठाये गये। रेल में भी हम को जंजीरों से जकड़ दिया गया। आगे-पीछे पुलिस बैठ

गई गार्ड ने सीटी बजाई। जेल और पुलिस के अफसरों ने हमें अलविदा कही। रेल रवाना हुई फिर **'वन्दे मातरम्'** और **'सत् श्री अकाल'** के नारे बुलन्द हुए। प्यारा लाहौर यारो अहबाब से पुर लाहौर, मेरा बचपन का दोस्त लाहौर, मेरी आंखों से दूर हो रहा था। मैं निहायत बेताबी के साथ दिल थामकर इसे हसरत भरी निगाह से देख रहा था।, जिससे शायद 'सेण्ट हेलिना' की तरफ जाते हुए नेपोलियन ने फ्रांस को भी न देखा होगा। आह! मेरे देखते ही देखते मेरा लाहौर मेरी निगाहों से अलग हो गया। २७ जनवरी की रात इसी तरह कट गई। लाहौर से चलते वक्त मां, बाप, बहन किसी से मिलने की इजाजत नहीं दी गई। २८ जनवरी सुबह को देहली स्टेशन पर रेल पहुंची। वहां मैंने एक आदमी से कहलाया कि देहली में मेरी धर्मपत्नी अपने वालीदान के साथ रहती है, मुझे मिल जायेगी। मगर आदमी उसके घर का पता न लगा सका और रेल चल पड़ी। दिल की दिल में ही रही, पूरी होने न पाई।

तीसरे दिन हम हजारी बाग जेल में पहुंचे। वहां हम जब तक रहे अच्छा सलूक किया गया। और कोई तकलीफ नहीं होने पाई। मगर कई महीने के बाद १८ पंजाबी पोलिटिकल कैदी जेलखाना की दीवार तोड़कर और जमादार को बांधकर भाग निकले। तब से आखिर तक मुसायब और तकलीफों का हमारे ऊपर पहाड़ टूटा रहा। कई बार हफ्तों फाकेकशी करने पड़ी। बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाईं। सख्त काम किया। खामोश मुकाबला करते-करते जेल के अफसर कभी जरा नरम हो जाते, लेकिन दो चार दिन के बाद 'वही रफ्तार बेढंगी' से काम लिया जाना शुरू हो जाता।

माण्टेगू-चेम्सफोर्ड स्कीम पास हुई। शाही एलान हुआ। हम सत्तरह अठारह कैदियों को रिहाई का हुक्म सुनाया गया। २६ मार्च १९२० की मुबारक शाम आई। हजारी बाग सेण्ट्रल जेल का फाटक खुला। हम बाहर निकले। आजाद हवा में सांस लेने लगे। मोटर और रेल का एक हजार मील से कुछ ऊपर का सफर तय हुआ। अजीजों और दोस्तों के साथ 'लालचन्द फलक के जय' के नारे कानों से सुने। गोया कि इस छोटी सी जिन्दगी में बकौले "दाग" मरहूम-

हमारी आंखों ने भी तमाशा अजब-अजब इन्कलाब देखा।
बुराई देखी, भलाई देखी, अजाब देखा, शबाब देखा॥"

❑❑

श्रीयुत सुन्दरलाल जी बी०ए०

(आत्मकथा)

"जेल के कर्मचारियों का व्यवहार जब्बलपुर, वर्धा और खण्डवा तीनों जगह मेरे साथ बहुत अच्छा रहा। मुझे किसी की कोई शिकायत नहीं है। हां, स्वास्थ्य खण्डवा जेल में अभी तक सर्वथा सन्तोषजनक नहीं रहा। २९ मई को मैं वहां आया था उस दिन मेरा वजन १०५ पौंड था। एक सप्ताह मुझ से कोई काम नहीं लिया गया। ६ जून को मेरा वजन १०६ पौंड हो गया। उस दिन से मुझे सन बटने को दिया गया। यही काम मैं अभी तक कर रहा हूं। एक सेर सन रोज बटना पड़ता है। काम आसान नहीं। दिन भर की पूरी मेहनत है। आरम्भ में उंगलियों में खूब दर्द हुआ। नीले दाग पड़ गये थे किन्तु अब बहुत कम हैं। केवल बाये अंगूठे में एक अजीब तरह की तकलीफ होती रहती है और थोड़ा-थोड़ा दर्द और उंगलियों में भी रहता है। फिर भी मैंने अब काम सीख लिया है। पहले का-सा कष्ट नहीं रहा। अब मैं अपना रोज का काम पूरा कर लेता हूं। बल्कि कभी-कभी कुछ अधिक भी कर लेता हूँ। वजन ६ जून से अब तक हर सप्ताह बराबर कुछ न कुछ कम होता जा रहा है। अब मेरा वजन पूरा १०० पौंड है। मुझे हृदय रोग (Dialatation of the heart) है जो कभी कभी आज कल भी कष्ट दिया करता है। इसके अतिरिक्त मैं दो बार राजयक्ष्मा (Consumption) का मरीज रह चुका हूं। एक १९१२ में और दूसरे १९१७-१८ में। ऐसी हालत में यह गजब का खटना और कमजोरी का बढ़ना कभी-कभी कुछ चिन्तित जरूर कर देता है किन्तु विशेषकर जब कि और कोई तकलीफ मुझे मालूम नहीं होती। अभी तक उचित यही समझता हूं कि इस मामले में बिल्कुल सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के ऊपर छोड़ दूं जो एक अच्छे डाक्टर भी हैं और विश्वास रखूं कि वे जो कुछ मेरे स्वास्थ्य के लिए सर्वोत्तम समझेंगे, वही करेंगे। अभी तक मैं ऐसा ही कर रहा हूं। भोजन के लिए आधा सेर दूध रोज और दोनों समय दाल, रोटी चावल मिलते हैं। दोनों समय स्नान करने की और थोड़ा बहुत बारक से निकल अहाते में टहल लेने की भी इजाजत है और सब तरह से अच्छा हूं। जितने पत्र मेरे नाम के जेल में

आते हैं वे दफ्तर में जमा होते रहते हैं और महीने में एक बार मुझे दे दिये जाते हैं। महीने में एक बार ही मुझे पत्र लिखने की इजाजत है और एक बार ही मुलाकात की। फुरसत के समय मुझे पुस्तकें पढ़ने की इजाजत है और इस इजाज़त का मैं पूरा-पूरा प्रयोग करता हूँ। पांच किताबें खत्म कर चुका हूँ। यह सब शरीर और मन के क्षेत्र की बातें हैं। सच्ची जागृति आत्मा पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। वजन के घट जाने पर भी मेरा हृदय वैसा ही सत्यता, श्रद्धा और प्रेम से भरा हुआ है। और मानव कल्याण की वेदी पर बलि के लिए उछल पड़ता है। जीवन की डोरी के कट जाने का मुझे भय प्रतीत नहीं होता और लोहे के बड़े-बड़े सीखचों और काली ऊंची दीवारों के अन्दर भी मैं अपने को स्वतन्त्र समझता हूं। मुझे अकसर यही महसूस होता है कि इन सींखचों और दीवारों के बाहर फिरने वाले अनेक मनुष्य अपने को आजाद समझते हुए भी वास्तव में कैद हैं जिन्होंने अपनी आत्माओं को सोने की तथा अन्य अनेक प्रकार की जंजीरों से जकड़ रखा है। इन दीवारों के भीतर रहते हुए भी मेरी आत्मा सच्चे अर्थों में आजाद है। इससे अधिक कुछ नहीं लिख सकता।"

❑❑

श्रीयुत पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी

सी० पी० के होम मेम्बर से आज्ञा लेकर श्रीयुत काशीप्रसाद पांडे और साथ में श्रीयुत कुंजबिहारीलाल जी एम०एल०ए० २७ जुलाई को चतुर्वेदीजी से मिलने गये थे। श्रीयुत कुंजबिहारीलाल जी ने बिलासपुर से चतुर्वेदीजी सम्बन्धी कुछ बातें 'कर्मवीर' में भेजी थी, जो नीचे प्रकाशित की जाती हैं–

"कोठरी के दरवाजे पर पहुंचते ही हमें सच्चे देशभक्त और दृढ असहयोगी चतुर्वेदी जी कैदियों की पोशाक में खड़े-खड़े रस्सी भाजते दृष्टिगोचर हुए। इन्हें इस दशा में देख कर दु:ख हुआ। शिष्टाचार के पश्चात् उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा कि आप ही के शुभागमन में आज दोपहर से सफाई की चहल पहल जारी थी, मुझे आश्चर्य था कि आज किसका आगमन हो रहा है कि जिसके लिए कर्मचारी सफाई करने की दौड़ धूप कर रहे थे। सुपरिण्टेण्डेण्ट की ओर देखने पर उन्होंने कहा कि आप लोगों के आने की सूचना जेलर को दे दी गई थी परन्तु कमरे आदि की लिपाई सप्ताह में एक बार होती है। चतुर्वेदी जी ने कहा कि यह कमरा दोपहर के बाद ही लीपा गया है। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने इस पर विश्वास नहीं किया। कहा कि यदि दोपहर को लीपा गया होता तो इतनी जल्दी सूखता? किन्तु हमें भी देखने से ऐसा ही मालूम हुआ कि दोपहर के बाद ही लीपा गया है। पांडे जी के पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे किसी प्रकार के कष्ट के लिए शिकायत नहीं करनी है। यदि यह कहो कि कष्ट देने से विचारों में कुछ परिवर्तन होगा तो भूल है। स्वास्थ्य में अवनति ही दिखाई दी। उस कोठरी में उन्हें दिन को कार्य करना पड़ता है। वे किसी से बात नहीं कर सकते और न अन्य कोई उनसे बात कर सकता है। दोपहर के दो घण्टे का समय खाने आदि के लिए मिलता है। रात्रि को उस कमरे में एक दूसरा कैदी रहता है। जो गर्मी या इसी किस्म की बिमारी का मरीज है। चतुर्वेदी जी ने यह भी कहा कि उसी कमरे में वह कैदी एक कोने में एक बर्तन में पेशाब करता है। और वह सुबह उठा लिया जाता है तथा इसी कमरे में चतुर्वेदी जी को भोजन करना पड़ता है। हम लोगों ने सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल से इस पर आपत्ति की कि यह बहुत ही अनुचित है कि छोटी कोठरी में वह पेशाब करे और इसी कमरे में इन्हें भोजन करना पड़े। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने कहा कि कोई ऐसा मरीज नहीं रहता। यदि कोई ऐसा होता तो अस्पताल में रखा जाता। यदि ऐसा हो कि जिसे ऐसा मर्ज कभी रहा हो और वह अच्छा

हो गया हो तो वह उन्हें मालूम नहीं और पेशाब का बर्तन तो सवेरे ही उठा लिया जाता है और कोठरी झाड़ कर साफ की जाती है तो फिर क्या एतराज हो सकता है? हम लोगों को यह सुनकर जरा आश्चर्य हुआ। कदाचित् नीचे कैदियों की देख-रेख करते रहने के कारण उनके सभ्य विचारों में कुछ फर्क आ गया हो क्योंकि हमें जब याद आने पर ही ग्लानि होती है तो उन्हें (चतुर्वेदी जी को) क्यों न ग्लानि होती होगी? सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने कहा कि आप जहां खाना पकाते हैं, वहां क्यों नहीं भोजन करते? उत्तर मिला कि जेलर साहब की आज्ञा हुई थी कि यह नियमानुकूल नहीं था। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने जेलर को आज्ञा दी कि भोजन अस्पताल में करने दिया करो। उस कोठरी में पत्थर की गिट्टी के ऊपर चूने की पिसाई और उसी पर मिट्टी की लिपाई हुई थी। तख्ती देखने से मालूम हुआ कि उन्हें पहले ६ छटांक रस्सी बांटनी पड़ती थी। चतुर्वेदी जी के कथनानुसार ८ घण्टे खड़े-खड़े काम करने से उनका स्वास्थ्य खराब हुआ और वजन कम होने लगा। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के अनुसार मलेरिया के कारण स्वास्थ्य खराब हुआ और उसके लिए वे अस्पताल में रखे गये थे। अब बिमारी से उठने के बाद उन्हें केवल ४ छटांक रस्सी बांटनी होती है। कमरे में जोर से पानी आने पर सामने की ओर से बौछार भी आ जाती है और ऊपर के रोशनदान से आती होगी। 'कर्मवीर' में निकले हुए लेख के पहले वे जिस कोठरी में थे वहां से अब दूसरी कोठरी में रखे गये हैं। पहले वाली में अब पागल रहता है। रात्रि को मच्छरों के कारण उन्हें नींद नहीं आती। एक तो वैसे ही डिस्पेप्सिया के कारण नींद नहीं आती, दूसरे मच्छर, फिर क्या कहना है। मच्छरों से बचने के लिए यदि ओढ़ना चाहे तो कम्बल का ओढ़ना बिलासपुर की गर्मी में असह्य है। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने चतुर्वेदी जी को उपरना या पतला कपड़ा ओढ़ने के लिए देने में असमर्थता प्रकट की। कान में दर्द के कारण एक दिन कार्य बन्द करने की आज्ञा मिली थी, फिर दूसरे ही दिन आज्ञा मिली कि काम यदि न करेंगे तो करेक्टर (चाल चलन) खराब लिखा जायेगा। इसलिए यद्यपि दर्द था तो भी काम कर रहे थे। कान पर पट्टी बंधी हुई थी।

यह भी मालूम हुआ कि उन्हें कोई समाचार पत्र या मासिक पत्र पढ़ने को नहीं दिये जाते। सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने पत्रादिक देने की आशा दिलाई है और अब सुना है दिये भी जाने लगे हैं। चतुर्वेदी जी का कथन था कि यदि कर्मवीर के पब्लिशर का डिक्लेरेशन उन्हीं के नाम से हो तो कर्मवीर की एक प्रति उनके पास भेजनी चाहिए।

उन्होंने पांडे जी से अपने कष्ट निवारणार्थ प्रान्तीय सरकार से किसी प्रकार की भी याचना न करने का आग्रह किया है।" ❑❑

महात्मा भगवानदीन की जेल-यात्रा

(एक दर्शक द्वारा)

पहली अगस्त को ७ बजे के लगभग हम लोग जेल में गये। आज्ञा प्राप्त करने में कुछ भी दिक्कत नहीं उठाना पड़ी। महात्मा जी बेतूल में आने पर अस्पताल में रखे गये थे। यह स्थान काफी हवादार और लम्बा चौड़ा था। थोड़ी ही देर में महात्मा जी की प्रशान्त मुद्रा सामने दिखाई दी। उस समय जो दशा हम लोगों की हुई उसका वर्णन करना इस छोटे से पत्र में असम्भव है। महात्मा जी केवल एक जांघिया और चादर से शरीर ढ़के हुए थे। सरकारी कोई भी वस्तु न लेने का उन्होंने प्रण किया है। नल सरकारी है सरकार को उनके लिए पानी देना पड़ता है, इसी कारण पानी भी नल का न लेकर कुंए का पीते हैं। जेल का कुर्ता, कम्बल कुछ भी नहीं लेते। अपने पैसे ही की चादर और चटाई का प्रयोग करते हैं। यहां कोई दूसरा आदमी बोलने चालने तक को नहीं आता तथा शरीर दुर्बल और पीला हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत समय से बीमार हैं। जठराग्नि के अत्यन्त निर्बल हो जाने से केवल फलाहार करते हैं। बहुत कुछ कहने से मट्ठा लेना आरम्भ किया है। हम लोग सींखचों के बाहर से मिलाये गये। बातचीत आरम्भ हुई। महात्मा जी ने अपनी सारी कहानी इस प्रकार सुनाई-

"सिवनी में सजा होने पर मैं सिवनी जेल में आया। उसी दिन मुझे जबलपुर लाया गया। पकड़े जाने पर मेरा वजन ११५ पौण्ड था, पर जबलपुर जाने से पहले १११ पौण्ड ही रह गया था। मैं जबलपुर आ गया, पर उस दिन मुझ से किसी ने भोजनादि की किसी भी बात के लिए नहीं पूछा। दूसरे दिन मेरे सामने जेल का भोजन लाया गया। मैंने जेल का भोजन खाने से इन्कार कर दिया। तीन दिन तक मैंने कोई भोजन नहीं किया। चौथे दिन से जेलर द्वारा यह बतलाये जाने पर कि अब बाहर से भोजन मिलेगा, खाना आरम्भ किया। पर एक कैदी के कहने पर कि खाना जेल ही से आता है और एक जमादार द्वारा कैदी की बात की पुष्टि करने पर मैंने जेलर से पूछा। उसने मुझे फिर यही विश्वास दिलाया कि भोजन बाहर से ही आता है, पर शंका समाधान न होने के कारण मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट से पूछा। उन्होंने सच-सच बतला दिया कि खाना जेल ही का है। यह जान कर मुझे बहुत दु:ख हुआ और मैंने

भोजन छोड़ दिया। अब की बार ५ दिन तक कुछ न खाया। शरीर बहुत गिर गया। वजन १०४ पौण्ड ही रह गया, पर भोजन कर लेना असम्भव था। पांचवां दिन परीक्षा का दिन था। ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर छूट जायेगा। हजार बहलाने का प्रयत्न करता था किन्तु बेचैनी दूर न होती थी। उसी समय मुझे 'मेकस्विनी' की याद आई। मैं सोचने लगा कि मेकस्विनी ७५ दिन तक जीवित नहीं रह सकता था। कम से कम उसने पानी तो अवश्य लिया होगा। अस्तु। वह दिन कट गया। छठे दिन सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब ने आकर बहुत कुछ समझाया और यह सीख कर गये कि प्रण किसे कहते हैं और कैसे पालन किया जाता है? अब श्रीयुत केलकर आये और मुझे बाहर का भोजन दिलाने का प्रबन्ध कर गये। खैर, मैंने खाना आरम्भ कर दिया पर दो तीन दिन ही के बाद जेल के अधिकारियों ने मुझे बतलाया कि अब से बाहर का खाना नहीं दिया जायेगा, सरकारी आज्ञा है। तीन दिन तक मुझे फिर खाना नहीं दिया गया। मैं भूखा ही रहा। अब तक रस्सी बंटने को दी जाती थी, अब चक्की पीसने की धमकी दी गई। प्रण की परीक्षा के लिए चक्की का दण्ड मैंने सहर्ष स्वीकार किया। सरकारी हुक्म आने पर भी मेरे प्रण की जांच के लिए उन्होंने खाना देना बंद कर रखा। उनके सब प्रयत्न फुसलाना और धमकियां मेरे कठिन दृढ संकल्प के आगे तनिक भी न ठहर सके। सब कोशिशें फिजूल गईं। मुझे बाहर का भोजन मिलना शुरू हो गया। मेरा वजन ११४ पौण्ड तक पहुंच गया था। चक्की दी जाने पर १०९ रह गया। अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी मैं १० सेर आटा नहीं पीस सकता था। पीसते-पीसते जब प्यासा हो जाता था, तो चक्की छोड़ते ही आकर भोजन न करके डटकर पानी पी लेता था। इसी ने मुझे नुकसान पहुंचाया और यही कारण था कि आगे चलकर मेरी जठराग्नि इतनी मन्द हो गई। कुछ दिन तक मुझे सेल (Cell) में रखा गया था, किन्तु स्वास्थ्य खराब होने पर मुझे रहने के लिए (European) यूरोपियन वार्ड में स्थान दिया गया। वहां रहने के थोड़े ही समय बाद मुझे बेतूल भेज दिया गया। अब मेरा वजन १०७ पौण्ड है। यद्यपि मैं वजन में इतना घट गया हूं और कमजोर दिखाई देता हूं जिसका कारण मैं अब तक नहीं खोज पाया हूं और न खोजने के प्रयत्न में ही हूं। मैं समझता हूं मुझमें ताकत उतनी ही बनी हुई है जितनी कि पहले थी। यह कहते-कहते उन्होंने अपना हाथ मेरे सामने फैला दिया और कहा कि देख लो मेरा शरीर कितना मजबूत और कितना सख्त है। रस्सी बटने का काम है। एक सेर सन मुझे रोजाना दिया जाता है जिसे कि मैं बड़ी आसानी से झटपट खत्म कर डालता हूं।

खाली वक्त मिलता है तो मैं ध्यान लगाता हूं। ध्यान में मुझे आनन्द आता है। नहीं तो किताब ही पढ़ता रहता हूं। किताब मुझे धार्मिक ही दी जाती है। मुझे यहां बड़ा आराम है और हर तरह से आराम देने की कोशिश की जाती है। सरकार तो मुझे सब कुछ देती है किन्तु मैं उसे अस्पृश्य समझकर दूर ही रखता हूं। कहीं भी किसी जेल के अधिकारी ने मेरे साथ कोई बुरा व्यवहार नहीं किया और न ऐसा करने की किसी तरह की इच्छा ही प्रकट की। उन्होंने मुझे सहानुभूति की दृष्टि से देखा और मैंने भी देखा कि उस सहानुभूति में अन्तःकरण के प्रति अपराधित्व और तदर्थ पश्चात्ताप की स्वीकारिता की पूरी-पूरी झलक थी।

मेरे पूछने पर कि आप अपने दो भाइयों के लिए कुछ कहना चाहते हैं? महात्मा जी ने कहा कि "मुझे विशेष कहना नहीं है।" बस यह समय है कि सब पूरी तरह से जुट पड़ें और सदा यह ध्यान रखें कि "Self Government is never demanded, it is earned." हां, उन्होंने कहा लोग इस तरह से मिलकर मुझे तंग न करें। न मुझे किसी तरह के पत्र ही लिखें। मैं नहीं चाहता कि तुम मुझसे मिलने के लिए ऐसी सरकार की इजाज़त मांगो जिससे कि तुम असहयोग करने को कहते हो! जेल में रहकर मिलने और पत्र लिखने में क्या आनन्द ? मिलना वह होगा और उसी मिलने में आनन्द भी होगा जब कि हम स्वतन्त्र होंगे। मैं पूरी तरह से आनन्द में हूं और रहूंगा। और क्या चाहते हो? बस, मुझे एकान्त में रहने दो।

सुन्दरलाल जी और चतुर्वेदी जी की बात छिड़ने पर उन्होंने उनके स्वास्थ्य के विषय में विशेष चिन्ता प्रकट की। सुन्दरलाल जी के बारे में उनके ये शब्द थे-"सुन्दरलाल जी का खूब ख्याल रखना। उसने बचपन में संखिया खा लिया था। अगर उसे आध पाव घी रोज न मिला तो वह मर जायेगा। जाकर उस के लिए घी का इन्तजाम जरूर करा देना।"

उनको सिर्फ तीन घण्टे भोजन पकाने के लिए अपने कमरे से बाहर आने की आज्ञा मिलती है। उनको किसी भी आदमी से मिलने नहीं दिया जाता। ड्रेस के कपड़ों में रखी हुई पीली टोपी से मालूम हुआ यह Third Class की कैदियों की श्रेणी में रखे गये हैं। और कैदियों के समान उनके गले में टिकट नहीं था। पहले उनको कागज पेंसिल मिलने की इजाजत नहीं थी, किन्तु अब वे कागज पेंसिल रख सकते हैं।

हर बात से महात्मा जी की अनुपम शक्ति टपकती थी। समय आया और लोगों को अपनी आराध्य मूर्ति से बिछुड़ना पड़ा। और देखते ही देखते दाढ़ी विहीन और पीला किन्तु तेजस्वी और प्रसन्न मुखमण्डल विलुप्त हो गया। ❑❑

श्रीयुत दीवान मंगलसेन रईस-ए-आज़म गुजरांवाला
अपने साथी वकीलों सहित गिफ्तारी की हालत में

डॉ० सत्यपाल

डॉ० सैफुद्दीन किचलू

ला० लालचन्द फलक

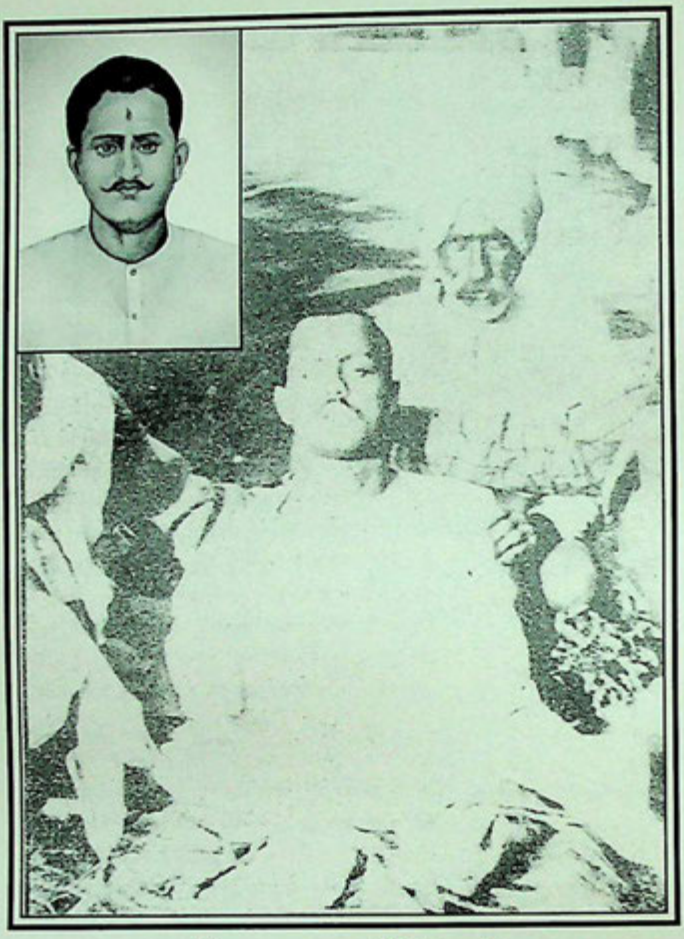

श्री रामप्रसाद 'बिस्मिल'

राजेन्द्रनाथ लहरी

रोशनसिंह

श्री केहरसिंह

श्री जीवनसिंह

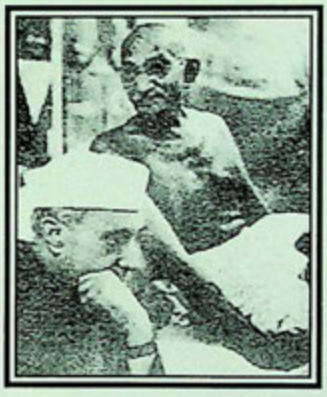

महात्मा गांधी और
पं० नेहरु (विचार-मग्न)

लाला हरकिशन लाल

लाला गोबर्द्धनदास

रामभजदत्त चौधरी

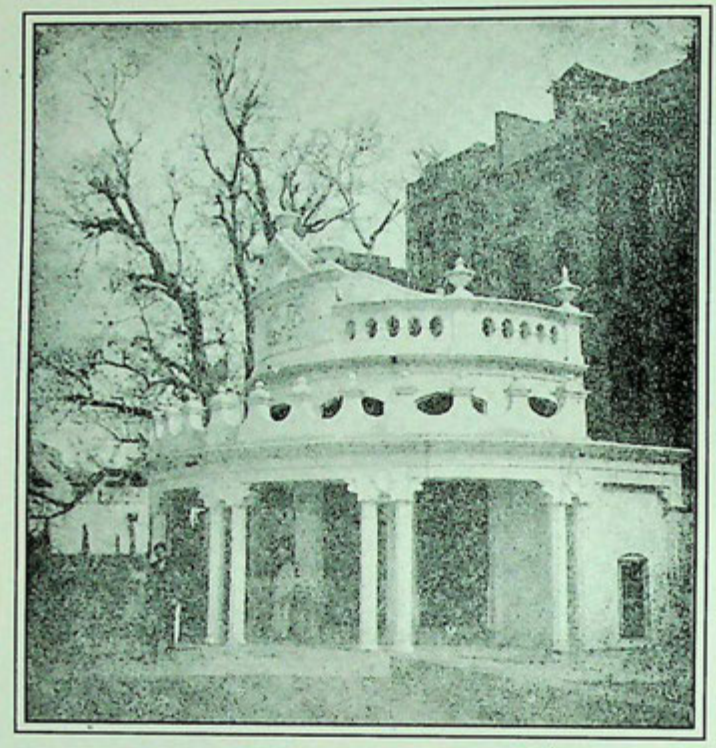

जलियाँवाला बाग, अमृतसर का कुआँ

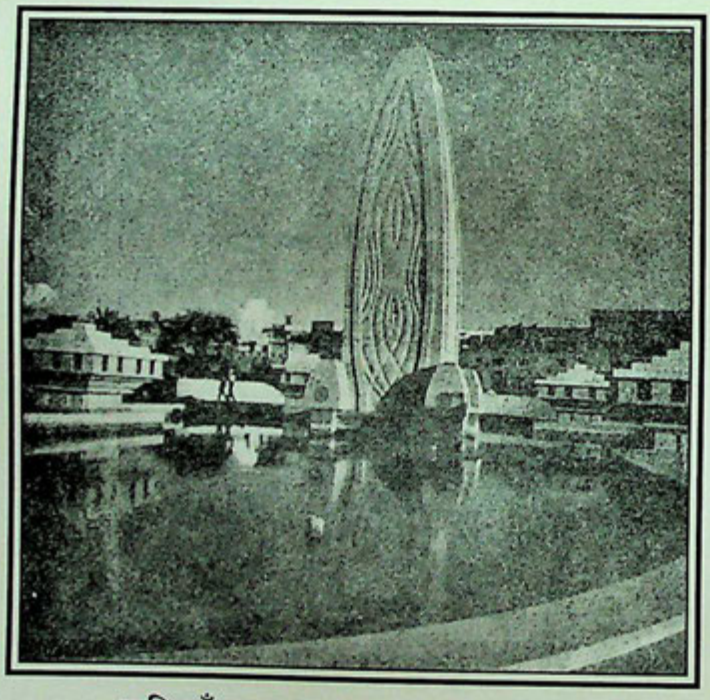

जलियाँवाला बाग-स्मारक, अमृतसर

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

गणेशशंकर विद्यार्थी

स्वामी श्रद्धानन्द

सरदार वल्लभ भाई पटेल

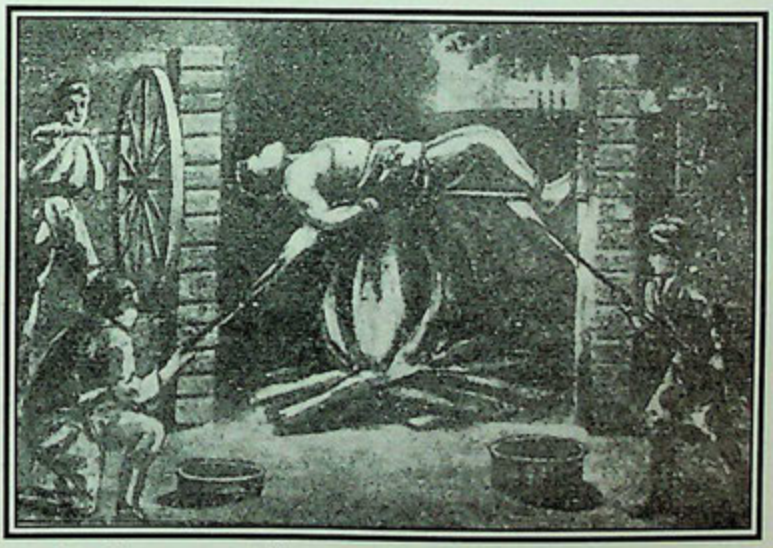

जलती हुई आग पर लौहे की शलाखों के ऊपर बाँधकर जलाना

श्रीमती मैडम कामा

अरुणा आसफअली

श्रीमती वसुमती शुक्ल

श्रीमती दुर्गा देवी बोहरा

सुशीला दीदी

कुमारी प्रीतिलता वद्देदार

अशफाकउल्ला खाँ

शचीन्द्रनाथ बख्शी

खड़े हुए–श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल, श्री मन्मथनाथ गुप्त
बैठे हुए–श्री योगेश चटर्जी ए०पी०, श्री विष्णुशरण दुबलिस

सरदार भगतसिंह

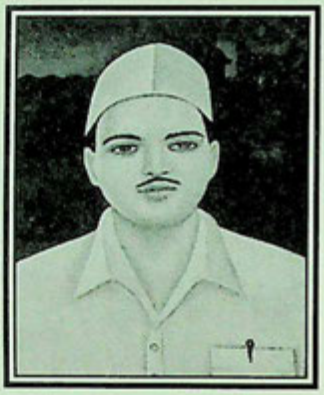

शिवराम राजगुरु

सुखदेव

भगवतीचरण बोहरा

यतीन्द्रनाथ दास

मन्मथनाथ गुप्त

काकोरी काण्ड और उसके शहीद

'काकोरी काण्ड' भी आजादी के इतिहास की प्रमुखतम घटनाओं में से एक है। १२ फरवरी १९२२ को कांग्रेस की कार्यसमिति में महात्मा गांधी द्वारा आजादी का आन्दोलन रोक दिये जाने पर क्रान्तिकारियों में आक्रोश पनप गया और उनकी ओर से पुन: जोर से क्रान्तिकारी-गतिविधियां करने की योजनाएं बनने लगीं। उन्हीं के अन्तर्गत 'काकोरी काण्ड' है। 'काकोरी' लखनऊ के पास एक स्टेशन है। सशस्त्र क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति सम्बन्धी कार्यों के लिए ९ अगस्त १९२५ को इस स्टेशन पर गाड़ी रोककर रेल का खजाना लूट लिया। अंग्रेज सरकार इस लूट से कांप गयी। व्यापक स्तर पर इसकी खोजबीन हुई। इस सम्बन्ध में २६ दिसम्बर १९२५ को ४०० के लगभग लोगों को गिरफ्तार किया गया जिनमें ६ अप्रैल १९२७ को दल के नेता रामप्रसाद बिस्मिल तथा अशफाक उल्ला खां, रोशनसिंह और राजेन्द्र लाहिड़ी को फांसी की सजा हुई तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल को आजीवन कालापानी की सजा। मन्मथनाथ गुप्त को १४, वर्ष, सर्वश्री योगेशचन्द्र चटर्जी, गोविन्द चरणकर, राजकुमार सिन्हा, मुकुन्दीलाल, श्रीराम कृष्ण रनमी, को १०-१० वर्ष(सुरेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य, बनवारीलाल, प्रेमकृष्ण खन्ना को ५-५ वर्ष, प्रणवेशकुमार चटर्जी को ४ वर्ष और रामनाथ पाण्डेय को ३ वर्ष की सजा हुई। शचीन्द्रनाथ बख्शी, और चन्द्रशेखर आजाद पकड़ में ही नहीं आये। इस काण्ड में सजा २० लोगों को हुई जबकि क्रान्ति में केवल दस व्यक्ति ही सम्मिलित थे। इस मुकदमे में पं. जगतनारायण सरकारी वकील था और पं. गोविन्दवल्लभ पन्त, श्री चन्द्रभानु गुप्त, मोहनलाल सक्सेना आदि अभियुक्तों के वकील थे। (**सम्पादक**)

पं० रामप्रसाद बिस्मिल

(आत्मकथा)

तोमरधार में चम्बल नदी के किनारे पर दो ग्राम आबाद हैं जो ग्वालियर राज्य में बहुत ही प्रसिद्ध हैं क्योंकि इन ग्रामों के निवासी बड़े ही उद्दण्ड हैं। वे राज्य की सत्ता की कोई चिन्ता नहीं करते।..... ये दोनों ग्राम अंग्रेजी राज्य की सीमा से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर हैं। यहीं के एक प्रसिद्ध वंश में मेरे पितामह श्री नारायणलाल

जी का जन्म हुआ था। वह कौटुम्बिक कलह और अपनी भाभी के असहनीय दुर्व्यवहार के कारण मजबूर हो, अपनी जन्मभूमि को छोड़, इधर-उधर भटकते रहे। अन्त में अपनी धर्मपत्नी और दो पुत्रों के साथ वह शाहजहांपुर पहुंचे। उनके इन्हीं दो पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्री मुरलीधर जी मेरे पिता हैं।

माताजी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी सोमदेव जी की कृपा का परिणाम है।

स्वदेश प्रेम

पूज्यपाद श्री स्वामी सोमदेव का देहान्त हो जाने के पश्चात् जब से अंग्रेजी के नवें दर्जे में आया, कुछ स्वदेश सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन आरम्भ हुआ। शाहजहांपुर में सेवा समिति की नींव पं० श्रीराम वाजपेयी जी ने डाली, उसमें भी बड़े उत्साह से कार्य किया। दूसरों की सेवा का भाव हृदय में उदय हुआ। कुछ समझ में आने लगा कि वास्तव में देशवासी बड़े दुःखी हैं। उसी वर्ष मेरे पड़ोसी तथा मित्र जिनसे मेरा स्नेह अधिक था, एण्ट्रेस की परीक्षा पास करके कालिज में शिक्षा पाने चले गये। कालिज की स्वतन्त्र वायु में उनके हृदय में भी स्वदेश के भाव उत्पन्न हुए। उसी साल लखनऊ में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का उत्सव हुआ। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। कतिपय सज्जनों से भेंट हुई। देश दशा का कुछ अनुमान हुआ और निश्चय हुआ कि देश के लिए कोई विशेष कार्य किया जाये। देश में जो कुछ हो रहा है, उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारतवासियों के दुःख-दुर्दशा की जिम्मेदारी गवर्नमेण्ट पर ही है, अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया। कांग्रेस में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण गरम दल के अधिक व्यक्ति आये हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ था। उसके दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला। लखनऊ स्टेशन पर बहुत बड़ा जमाव था। स्वागतकारिणी समिति के सदस्यों से मालूम हुआ कि लोकमान्य का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जायेगा और शहर में सवारी न निकाली जायेगी। जिसका कारण यह था कि स्वागतकारिणी समिति के प्रधान पं० जगत्नारायण जी थे। अन्य गणमान्य सदस्यों में पं० गोकरणनाथ जी तथा अन्य उदार दल वालों (माडरेटों) की संख्या अधिक थी। माडरेटों को भय था कि यदि लोकमान्य की सवारी शहर में निकाली गई, तो कांग्रेस के प्रधान से भी

अधिक सम्मान होगा, जिसे वे उचित न समझते थे। अतः उन सब ने प्रबन्ध किया कि जैसे ही लोकमान्य पधारें, उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर-बाहर निकाल ले जाएं। इन सब बातों को सुनकर नवयुवकों को बड़ा खेद हुआ। कालिज के एक एम०ए० के विद्यार्थी ने इस प्रबन्ध का विरोध करते हुए कहा कि लोकमान्य का स्वागत अवश्य होना चाहिए। मैंने भी इस विद्यार्थी के कथन में सहयोग दिया। इसी प्रकार कई नवयुवकों ने निश्चय किया कि जैसे ही लोकमान्य स्पेशल से उतरें, उन्हें घेरकर गाड़ी में बिठा लिया जाये और सवारी निकाली जाये। स्पेशल आने पर लोकमान्य सब से पहले उतरे। स्वागतकारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के स्वयं-सेवकों का घेरा बना कर लोकमान्य को मोटर में जा बिठाया। मैं तथा एम०ए० का विद्यार्थी मोटर के आगे लेट गये। सब कुछ समझाया गया, मगर किसी की एक न सुनी। हम लोगों की देखा-देखी और कई नवयुवक भी मोटर के सामने आकर बैठ गये। उस समय मेरे उत्साह का यह हाल था कि मुंह से बात न निकलती थी, केवल रोता था और कहता था, मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ। स्वागतकारिणी के सदस्यों से कांग्रेस के प्रधान को ले जानी वाली गाड़ी मांगी, उन्होंने देना स्वीकार न किया। एक नवयुवक ने मोटर का टायर काट दिया। लोकमान्य जी बहुत कुछ समझाते किन्तु वहां सुनता कौन? एक किराये की गाड़ी से घोड़े खोलकर लोकमान्य के पैरों पर सिर रख, उन्हें उसमें बिठाया और सब ने मिल कर गाड़ी खीचनी शुरू की। इस प्रकार लोकमान्य का इस धूमधाम से स्वागत हुआ कि किसी नेता की उतने जोरों से सवारी न निकाली गई। लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे कि एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाये। लोकमान्य पर फूलों की जो वर्षा की जाती थी, उस में से जो फूल नीचे गिर जाते थे, उन्हें उठाकर लोग पल्ले में बांध लेते थे। जिस स्थान पर पं० लोकमान्य के पैर पड़ते, वहां की धूल सब के मत्थों पर दिखाई देती। कुछ धूल को भी अपने रूमाल में बांध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।

क्रान्तिकारी आन्दोलन

कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ में ही मालूम हुआ कि एक गुप्त समिति है जिसका मुख्य उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना है। यहीं से क्रान्तिकारी गुप्त समिति की चर्चा सुनकर कुछ समय बाद मैं भी क्रान्तिकारी समिति के कार्य में योग देने लगा। अपने एक मित्र द्वारा

क्रान्तिकारी समिति का सदस्य हो गया। थोड़े ही दिन में मैं कार्यकारिणी का सदस्य बना लिया गया। समिति में धन की बहुत कमी थी, उधर हथियारों की भी जरूरत थी। जब घर वापस आया, तब विचार हुआ कि एक पुस्तक प्रकाशित की जाये और उसमें जो लाभ हो, उससे हथियार खरीदे जायें। पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए धन कहां से आये? विचार करते करते मुझे एक चाल सूझी। मैंने अपनी माता जी से कहा कि मैं कुछ रोजगार करना चाहता हूं, उसमें अच्छा लाभ होगा। यदि रुपये दे सकें तो बड़ा अच्छा हो। उन्होंने २०० रुपये दिये। '**अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली**' नामक पुस्तक लिखी जा चुकी थी, प्रकाशित होने का प्रबन्ध हो गया। थोड़े रुपये की जरुरत और पड़ी, मैंने माता जी से २०० रुपये और लिये। पुस्तक की बिक्री हो जाने पर माता जी के रुपये पहले चुका दिये। लगभग २०० रुपये और भी बचे। पुस्तकें अभी बिकने के लिए बहुत बाकी थी। उसी समय देशवासियों के नाम '**सन्देश**' नामक एक पर्चा छपवाया गया, क्योंकि पं० गेंदालाल जी, ब्रह्मचारी जी के दल सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गये थे। अब सब विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह के साथ काम करने की प्रतिज्ञा की। पर्चे कई जिलों में लगाये गये और बांटे गए। 'पर्चे' तथा 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' पुस्तक दोनों संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जब्त कर लिये।

हथियारों की ख़रीद

हम ने तीन राइफलें, एक बारह बोर की दो नाली कारतूसी बन्दूक, दो टोपीदार बन्दूकें, तीन टोपीदार रिवाल्वर और पांच कारतूसी रिवाल्वर खरीदे। प्रत्येक हथियार के साथ पचास या सौ कारतूस भी ले लिये। इन सब में लगभग चार हजार रुपये व्यय हुए। कुछ कटार तथा तलवारें इत्यादि भी खरीदी थीं।

मैनपुरी षड्यन्त्र

इधर तो हम लोग अपने कार्य में व्यस्त थे, उधर मैनपुरी के एक सदस्य पर लीडरी का भूत सवार हुआ। उन्होंने अपना पृथक् संगठन किया। कुछ अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित किये। धन की कमी की पूर्ति के लिए एक सदस्य से कहा कि अपने किसी कुटुम्बी के यहाँ डाका डलवाओ। उस सदस्य ने कोई उत्तर न दिया। उसे आज्ञा पत्र दिया गया और मार देने की धमकी दी गई। वह पुलिस के पास गया। मामला खुला। मैनपुरी में धर पकड़ शुरू हो गई। हम लोगों को भी समाचार

मिला। दिल्ली में कांग्रेस होने वाली थी। विचार किया गया कि 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' नामक पुस्तक जो यू० पी० सरकार ने जब्त कर ली थी, कांग्रेस के अवसर पर बेच दी जाय। कांग्रेस के उत्सव पर मैं शाहजहांपुर की सेवा समिति के साथ अपनी एम्बूलेन्स की टोली लेकर गया था। एम्बूलेन्स वालों को प्रत्येक स्थान पर बिना रोक जाने की आज्ञा थी। कांग्रेस पण्डाल के बाहर खुले रूप में नवयुवक यह कहकर पुस्तक बेच रहे थे यू० पी० में जब्त किताब **'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'**। खुफिया पुलिस वालों ने कांग्रेस का कैम्प घेर लिया। सामने ही आर्यसमाज का कैम्प था। वहां पर पुस्तक विक्रेताओं की पुलिस ने तलाशी लेना आरम्भ कर दिया। मैंने कांग्रेस कैम्प पर अपने स्वयंसेवक इसलिए छोड़ दिये कि वे बिना स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री या प्रधान की आज्ञा पाये, किसी पुलिस वाले को कैम्प में न घुसने दें। आर्यसमाज के कैम्प में गया। सब पुस्तकें एक टेण्ट में जमा थी। मैंने अपने ओवर कोट में सब पुस्तकें लपेटीं, जो लगभग दो सौ होंगी और उसे कन्धे पर डालकर पुलिस वालों के सामने से निकला। मैं वर्दी पहने था, टोप लगाये हुए था। एम्बुलेन्स का बड़ा सा लाल बिल्ला मेरे हाथ पर लगा हुआ था, किसी ने सन्देह भी न किया और पुस्तकें बच गई।

दिल्ली कांग्रेस से लौट कर शाहजहांपुर आये। वहां भी पकड़-धकड़ शुरू हुई। हम लोग वहां से चलकर दूसरे शहर के एक मकान में ठहरे हुए थे। रात्रि के समय मकान मालिक ने बाहर से मकान में ताला डाल दिया। ग्यारह बजे के लगभग हमारा एक साथी बाहर से आया। उसने बाहर से ताला पड़ा देख पुकारा। हम लोगों को भी सन्देह हुआ। सब के सब दीवार पर से उतर कर मकान छोड़कर चल दिए। अन्धेरी रात थी। थोड़ी दूर गये थे कि हठात् आवाज आई 'खड़े हो जाओ। कौन जाता है?' हम लोग सात आठ आदमी थे। समझे कि घिर गये। कदम उठाना ही चाहते थे कि फिर आवाज आई, खड़े हो जाओ, नहीं तो गोली मारते हैं। हम लोग खड़े हो गये। थोड़ी देर में एक पुलिस के दरोगा बन्दूक हमारी तरफ किये हुए रिवाल्वर कन्धे में लटकाए, कई सिपाहियों को लिये हुए आ पहुंचे। 'पूछा कौन हो?' 'कहां जाते हो?' 'हम लोगों ने कहा विद्यार्थी हैं स्टेशन जा रहे हैं', कहां जाओगे ? लखनऊ। उस समय रात के दो बजे थे। लखनऊ की गाड़ी पांच बजे जाती थी। दारोगा जी को शक हुआ। लालटेन आई। हम लोगों के चेहरे रोशनी में देखकर

उनका शक जाता रहा। कहने लगे–'रात के समय लालटेन लेकर चला कीजिए। गलती हुई माफ कीजिए।' हम लोग भी सलाम झाड़कर चलते बने। एक बाग में फूंस की मढ़ैया पड़ी थी उसमें जा बैठे। पानी बरसने लगा। मूसलाधार पानी गिरा। सब कपड़े भीग गये। जमीन पर भी पानी भर गया। जनवरी का महीना था। खूब जाड़ा पड़ रहा था। रातभर भीगते और ठिठुरते रहे। बड़ा कष्ट हुआ। प्रातःकाल धर्मशाला में जाकर कपड़े सुखाये। दूसरे दिन शाहजहांपुर आकर बन्दूकें जमीन में गाड़कर प्रयाग पहुंचे।

विश्वासघात

प्रयाग की एक धर्मशाला में दो-तीन दिन निवास करके विचार किया गया कि एक व्यक्ति बहुत दुर्बल आत्मा है, यदि वह पकड़ा गया, तो सब भेद खुल जायेगा, अतः उसे मार दिया जाये। मैंने कहा मनुष्य हत्या ठीक नहीं। पर अन्त में निश्चय हुआ कि कल चला जाये और इसकी हत्या कर दी जाये। मैं चुप हो गया। हम लोग चार सदस्य साथ थे। हम चारों तीसरे पहर झूंसी का किला देखने गये। जब लौटे तब सन्ध्या समय उपासना करने के लिए रेती पर बैठ गया। एक महाशय ने कहा यमुना के निकट बैठो। मैं तट से दूर एक ऊंचे स्थान पर बैठा था। मैं वहीं बैठा रहा। वे तीनों भी मेरे पास ही आकर बैठ गये। मैं आखें बन्द किये ध्यान कर रहा था। थोड़ी देर में खट से आवाज हुई। समझा कि साथियों में कोई कुछ कर रहा होगा। तुरन्त ही एक फायर हुआ। गोली सन से मेरे कान के पास से निकल गई। मैं समझ गया कि मेरे ऊपर ही फायर हुआ है। मैं रिवाल्वर निकालता हुआ आगे बढा। पीछे मुड़कर देखा वह महाशय माउजर हाथ में लिये मेरे ऊपर गोली चला रहे हैं। कुछ दिन पहले मुझसे उनका कुछ झगड़ा हो चुका था, किन्तु बाद में समझौता हो गया था। फिर भी उन्होंने यह कार्य किया। मैं भी सामना करने को प्रस्तुत हुआ। तीसरा फायर करके वह भाग खड़े हुए। उनके साथ प्रयाग में ठहरे हुए दो सदस्य और भी थे। वे तीनों भाग गये। मुझे देर इसलिए हुई कि मेरा रिवाल्वर चमड़े के खोल में रखा था। यदि आधा मिनट और उनमें से कोई भी खड़ा रह जाता तो मेरी गोली का निशाना बन जाता। जब सब भाग गये, तब मैं गोली चलाना व्यर्थ जान, वहां से चला आया। मैं बाल-बाल बच गया। मुझ से दो गज के फासले पर से माउजर पिस्तौल से गोलियां चलाई गई और उस अवस्था में जबकि मैं बैठा हुआ था। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं बच कैसे गया। पहला

कारतूस फूटा नहीं। तीन फायर हुए। मैं गद्‌गद होकर परमात्मा का स्मरण करने लगा।...

मैं हर वक्त यही विचार किया करता कि मुझे बदला अवश्य लेना चाहिए। एक दिन प्रतिज्ञा करके रिवाल्वर लेकर शत्रु की हत्या करने की इच्छा से मैं गया भी, किन्तु सफलता न मिली। इसी प्रकार की उधेड़बुन में मुझे ज्वर आने लगा। कई महीनों तक बीमार रहा। माता जी मेरे विचारों को समझ गई। माता जी ने बड़ी सान्त्वना दी। कहने लगी कि–'प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी हत्या की चेष्टा करने वालों को जान से न मारोगे।' मैंने प्रतिज्ञा करने में आनाकानी की तो वह कहने लगी कि–'मैं मातृऋण के बदले में प्रतिज्ञा कराती हूं, क्या जवाब है?' मैंने कहा–'मैं उनसे बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं।' माता जी ने मुझे बाध्य कर मेरी प्रतिज्ञा भंग कराई। अपनी बात पक्की रखी। मुझे ही सिर नीचा करना पड़ा। उस दिन से मेरा ज्वर कम होने लगा और मैं अच्छा हो गया।

पलायनावस्था

मैं ग्राम में ग्रामवासियों की भांति उसी प्रकार के कपड़े पहनकर रहने लगा। खेती भी करने लगा। देखने वाले अधिक से अधिक इतना समझते थे कि मैं शहर में रहा हूं, सम्भव है कुछ पढ़ा भी हूं। खेती के कामों में मैंने विशेष ध्यान दिया। शरीर तो हृष्ट-पुष्ट था ही, थोड़े ही दिनों में अच्छा खासा किसान बन गया। उस कठोर भूमि में खेती करना कोई सरल काम नहीं। बबूल नीम के अतिरिक्त कोई एक दो आम के वृक्ष कहीं भले ही दिखाई दे जाएं। बाकी वह नितान्त मरुभूमि है। खेत में जाता था। थोड़ी देर में ही झरबेरी के कांटों से पैर भर जाते। पहले पहल तो बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ। कुछ समय पश्चात् अभ्यास हो गया। जितना खेत उस देश का एक बलिष्ठ पुरुष दिन भर में जोत सकता था, उतना मैं भी जोत लेता था। मेरा चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया। थोड़े दिनों के लिए मैं शाहजहाँपुर की ओर घूमने आया, तो कुछ लोग मुझे पहचान भी न सके। मैं रात को शाहजहाँपुर पहुंचा। गाड़ी छूट गई। दिन के समय पैदल जा रहा था कि एक पुलिस वाले ने पहचान लिया। वह और पुलिस वालों को लेने के लिए गया। मैं भागा। पहले दिन का ही थका हुआ था। लगभग बीस मील पहले दिन पैदल चला था। उस दिन भी पैतीस मील पैदल चलना पड़ा।..... जब राजकीय घोषणा हुई और राजनैतिक कैदी छोड़े गये, तब शाहजहाँपुर आकर कोई व्यवसाय करने का विचार हुआ ताकि माता-पिता की कुछ सेवा हो सके। विचार किया

करता था कि इस जीवन में अब फिर कभी आजादी से शाहजहाँपुर में विचरण न कर सकूंगा। पर परमात्मा की लीला अपार है। वे दिन आये, मैं पुनः शाहजहाँपुर का निवासी हुआ।...

स्वतन्त्र जीवन

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब मैं शाहजहाँपुर आया, तो शहर की अद्‌भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस न करता था। जिसके पास मैं जाकर खड़ा हो जाता था, वह नमस्ते करके चल देता था। पुलिस का बड़ा प्रकोप था। प्रत्येक समय यह छाया की भांति पीछे-पीछे फिरा करती थी। इस प्रकार का जीवन कब तक व्यतीत किया जाए? मैंने कपड़ा बुनने का काम सीखना आरम्भ किया। जुलाहे बड़ा कष्ट देते थे। कोई काम सिखाना नहीं चाहता था। बड़ी कठिनता से मैंने कुछ काम सीखा।.....

अशान्त युवक दल

कुछ महानुभावों की प्रकृति होती है कि अपनी कुछ शान जमाना या अपने आपको बड़ा दिखाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। जिससे भयंकर हानियां हो जाती हैं। भोले-भाले आदमी ऐसे मनुष्यों में विश्वास करके उनमें आशातीत साहस, योग्यता तथा कार्य दक्षता की आशा करके उन पर श्रद्धा रखते हैं। किन्तु समय आने पर यह निराशा के रूप में परिणत हो जाती है।..... इस प्रकार के मनुष्य प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। इनसे क्रान्तिकारी दल भी मुक्त नहीं रह सकता। नवयुवकों का स्वभाव चंचल होता है, वे शान्त रहकर संगठित कार्य करना बड़ा दुष्कर समझते हैं। उनके हृदय में उत्साह की उमंगें उठती हैं। वे समझते हैं, दो चार अस्त्र हाथ आये कि हमने गवर्नमेंण्ट को नाकों चने चबवा दिए। मैं भी जब क्रान्तिकारी दल में योग देने का विचार कर रहा था, उस समय मेरी उत्कण्ठा थी कि यदि एक रिवाल्वर मिल जाय, तो दस बीस अंग्रेजों को मार दूं। इसी प्रकार के भाव मैंने कई नवयुवकों में देखे।..... रुपये का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक था। किन्तु वह हो कैसे? दान कोई देता न था, कर्ज भी न मिलता था और कोई उपाय न देख, डाका तय हुआ। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति Private property पर डाका डालना हमें अभीष्ट न था। सोचा, यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाये? इसी उधेड़बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन

मास्टर एक थैली लाया और गार्ड के डिब्बे में डाल गया। कुछ खटपट की आवाज हुई। मैंने उतरकर देखा कि एक लोहे का सन्दूक है। विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी देखा। अनुमान किया कि लोहे का सन्दूक गार्ड के डिब्बे में जंजीर सें बंधा होगा, ताला पड़ा रहता होगा आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे।.इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली आमदनी वाले सन्दूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उनमें जंजीर ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूंगा।

रेलवे डकैती

उसी समय से धुन सवार हुई। तुरन्त स्थान पर जा टाइम-टेबल देख कर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपये रोज की आमदनी होती होगी। सब बातें ठीक करके कार्यकर्ताओं को संग्रह किया। दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तार घर पर अधिकार कर लें और गाड़ी का सन्दूक उतार कर तोड़ डालें, जो कुछ मिले, उसे लेकर चल दें। परन्तु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी। इस कारण यह निश्चय किया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके, तब लूटा जाय। सम्भव है कि तीसरे दर्जे की जंजीर खीचने से गाड़ी न खड़ी हो, क्योंकि तीसरे दर्जे में बहुधा प्रबन्ध ठीक नहीं रहता है। इस कारण से दूसरे दर्जे का जंजीर खींचने का प्रबंन्ध किया। सब उसी ट्रेन में सवार थे। गाड़ी खड़ी होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुंच गये। लोहे का सन्दूक उतारकर छैनियों से काटना चाहा छेनियों ने काम न दिया तब कुल्हाड़ा चला।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी ताकि बिना गार्ड की गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडण्डी को छोड़कर घास पर खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें। एक सज्जन गार्ड के डिब्बे से उतरे। उनके पास भी माउजर पिस्तौल था। विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आए। माउजर पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा? उमंग

जो आई, सीधा करके दागने लगे। मैंने जो देखा तो डांटा, क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी (काम) ही न थी। फिर यदि कोई मुसाफिर कौतूहल वश बाहर को सिर निकाले तो उसके गोली जरूर लग जाये। हुआ भी ऐसा ही, जो व्यक्ति रेल से उतरकर अपनी स्त्री के पास जा रहा था, मेरा ख्याल है कि इन्हीं महाशय की गोली उसके लग गई। क्योंकि जिस समय यह महाशय सन्दूक नीचे डालकर गार्ड के डिब्बे से उतरे थे, केवल दो तीन फायर हुए थे। उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा और उसका पति उसके पास जा रहा था, जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया। मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबन्ध किया था कि जब तक कोई बन्दूक लेकर सामना करने न आये या मुकाबले में गोली न चले, तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पाये। मैं नर हत्या करा के डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था। फिर भी मेरा कहा न मानकर अपना काम छोड़, गोली चला देने का यह परिणाम हुआ। गोली चलाने की ड्यूटी जिनको मैंने दी थी, वे बड़े दक्ष तथा अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असम्भव है। उन लोगों को मैंने देखा कि वे अपने स्थान से पांच मिनट बाद फायर करते थे। यही मेरा आदेश था।

सन्दूक तोड़ तीन गठरियों में थैलियां बांधी। सब से कई बार कहा देख लो कोई सामान रह तो नहीं गया। इस पर भी एक महाशय चद्दर डाल आये। रास्ते में थैलियों से रुपया निकालकर गठरी बांधी और उसी समय लखनऊ शहर में जा पहुंचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो कहां से आये हो? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोककर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे जिनके पास बन्दूकें या रायफलें थीं। दो अंग्रेज सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शान्त रहे। ड्राइवर महाशय तथा एक इंजीनियर महाशय दोनों का बुरा हाल था। वे दोनों अंग्रेज थे। ड्राइवर महाशय इंजन में लेटे रहे। इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे। हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से न बोलेंगे, सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण मुसाफिर भी शान्ति पूर्वक बैठे रहे। समझे तीस चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतंक फैला दिया। साधारणत: इस बात पर बहुत से मनुष्य विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो बात वास्तव में यही थी। इन दस कार्यकर्त्ताओं में अधिकतर ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाइस वर्ष के होंगे और जो शरीर से बड़े पुष्ट भी न थे। इस सफलता को देखकर

मेरा साहस बहुत बढ़ गया। मेरा जो विचार था, वह अक्षरश: सत्य सिद्ध हुआ। पुलिस वालों की वीरता का मुझे अन्दाजा था। इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बंध गई। नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्जा था निपटा दिया। अस्त्रों की खरीद के लिए लगभग एक हजार रुपये भेज दिये। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ता को यथास्थान भेज कर दूसरे प्रान्तों में भी कार्य विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबन्ध किया। एक युवक दल ने बम बनाने का प्रबन्ध किया, मुझसे भी सहायता चाही। मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया। किन्तु कुछ त्रुटियां हुईं, जिससे सम्पूर्ण दल अस्त-व्यस्त हो गया।

मैं इस विषय में कुछ भी न जान सका कि दूसरे देश के क्रान्तिकारियों ने प्रारम्भिक अवस्था में हम लोगों की भांति प्रयत्न किया या नहीं। यदि पर्याप्त अनुभव होता तो इतनी साधारण भूलें न करते। त्रुटियों के होते हुए भी कुछ भी न बिगड़ता और न कुछ भेद खुलता, न इस अवस्था को पहुंचते। क्योंकि मैंने जो संगठन किया था, उसमें किसी ओर से मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी कारण आंख बन्द किये बैठे रहे। किन्तु आस्तीन में सांप छिपा हुआ था, ऐसा गहरा मुंह मारा कि चारों खाने चित्त कर दिया।

जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को।
वही अब नाग बन बैठे हमें ही काट खाने को॥

नवयुवकों में आपस की होड़ के कारण बहुत वितण्डा तथा कलह भी हो जाती थी, जो भयंकर रूप धारण कर लेती। मेरे पास जब मामला आता तो मैं प्रेमपूर्वक समिति की दशा का अवलोकन कराके सब को शान्त कर देता। कभी नेतृत्व को लेकर वाद-विवाद चल जाता। एक केन्द्र के निरीक्षण से वहां कार्यकर्त्ता अत्यन्त असंतुष्ट थे, क्योंकि निरीक्षक से अनुभवहीनता के कारण कुछ भूलें हो गई थीं। यह अवस्था देख मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि नेतागीरी का भूत सब से भयानक होता है। जिस समय से यह भूत खोपड़ी पर सवार होता है, उसी समय से सब काम चौपट हो जाता है। केवल एक दूसरे के दोष देखने में समय व्यतीत होता है। इस प्रकार के समाचार सुन, मैंने सब को एकत्रित कर खूब फटकारा। सब अपनी त्रुटि समझकर पछाताए और प्रीतिपूर्वक आपस में मिलकर कार्य करने लगे। फिर ऐसी अवस्था हो गई थी कि दलबन्दी

की नौबत आ गई थी। एक प्रकार से तो दलबन्दी हो ही गई थी। पर मुझ पर सब की श्रद्धा थी और मेरे वक्तव्य को सब मान लेते थे। सब कुछ होने पर भी मुझे किसी ओर से किसी प्रकार का सन्देह न था। किन्तु परमात्मा को ऐसा ही स्वीकार था, जो इस अवस्था का दर्शन करना पड़ा।

गिरफ़्तारी

काकोरी डकैती होने के बाद पुलिस बहुत सचेत हुई। बड़े जोरों के साथ जांच आरम्भ हो गई। शाहजहांपुर में कुछ नई मूर्तियों के दर्शन हुए। पुलिस के कुछ विशेष सदस्य मुझ से मिले। चारों ओर शहर में यही चर्चा थी की रेलवे डकैती किसने कर ली? उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक दो नोट निकल आये, अब तो पुलिस का अनुसन्धान और भी बढ़ने लगा। कई मित्रों ने कहा भी कि सतर्क रहो। दो एक सज्जन ने निश्चिन्तरूपेण समाचार दिया कि मेरी गिरफ्तारी जरूर हो जाएगी। मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने विचार किया कि यदि गिरफ्तारी हो भी गई, तो पुलिस को मेरे विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिल सकेगा। अपनी बुद्धिमत्ता पर कुछ अधिक विश्वास था। अपनी बुद्धि के सामने दूसरों की बुद्धि को तुच्छ समझता था। कुछ यह भी विचार था कि देश की सहानुभूति की परीक्षा की जाए। जिस देश पर हम अपना बलिदान देने को उपस्थित हैं, उस देश के वासी हमारे साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं? कुछ जेल का अनुभव भी प्राप्त करना था। वास्तव में मैं काम करते-करते थक गया था। भविष्य के कार्यों में अधिक नर हत्या का ध्यान करके मैं हत-बुद्धि-सा हो गया था। मैंने किसी के कहने की कोई भी चिन्ता न की।

रात्रि के समय ग्यारह बजे के लगभग एक मित्र के यहां से अपने घर पर गया। रास्ते में खुफिया पुलिस के सिपाहियों से भेंट हुई। कुछ विशेष रूप से उस समय भी वे मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने कोई चिन्ता न की और घर जाकर सो गया। प्रातःकाल चार बजने पर जगा शौचादि से निवृत्त होने पर बाहर द्वार पर बन्दूक के कुन्दों का शब्द सुनाई दिया। मैं समझ गया कि पुलिस आ गई है। मैं तुरन्त ही द्वार खोलकर बाहर आ गया। एक अफसर ने बढ़कर हाथ पकड़ लिया। मैं गिरफ्तार हो गया। मैं केवल एक अंगोछा पहने हुए था। पुलिस वाले को अधिक भय न था। पूछा यदि घर में कोई अस्त्र-शस्त्र हो तो दे दीजिए। मैंने कहा कोई आपत्तिजनक वस्तु घर में नहीं। उन्होंने बड़ी सज्जनता की।

मेरे हथकड़ी इत्यादि कुछ न डाली। मकान की तलाशी लेते समय एक पत्र मिल गया जो मेरी जेब में था। कुछ होनहार कि तीन-चार पत्र मैंने लिखे थे। डाकखाने में डालने को भेजे, तब तक डाक निकल चुकी थी। मैंने वे सब इस ख्याल से अपने पास रख लिए थे कि डाक के बम्बे में डाल दूंगा। फिर विचार किया जैसे बम्बे में पड़े रहेंगे वैसे जेब में पड़े हैं। मैं उन पत्रों को वापस घर ले आया। उन्हीं में से एक पत्र आपत्तिजनक था जो पुलिस के हाथ लग गया। गिरफ्तार हो कर पुलिस कोतवाली पहुंचा। वहां पर खुफिया पुलिस के एक अफसर से भेंट हुई। उस समय उन्होंने कुछ ऐसी बातें की, जिन्हें मैं या एक व्यक्ति और जानता था। कोई तीसरा व्यक्ति इस प्रकार से ब्योरेवार नहीं जान सकता था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु सन्देह इस कारण से न हो सका कि मैं दूसरे व्यक्ति के कार्यों पर अपने शरीर के समान ही विश्वास रखता था। शाहजहाँपुर में जिन-जिन व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई, वह भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। जिन पर कोई सन्देह भी न करता था, पुलिस उन्हें कैसे जान गई? दूसरे स्थानों पर क्या हुआ, कुछ भी न मालूम हो सका। जेल पहुंच जाने पर थोड़ा अनुमान कर सका कि सम्भवत: दूसरे स्थानों में भी गिरफ्तारियां हुई होंगी। गिरफ्तारियों के समाचार सुनकर शहर के सभी मित्र भयभीत हो गए। किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम लोगों के पास समाचार भेजने का प्रबन्ध कर देता।

जेल

जेल पहुंचते ही खुफिया पुलिस वालों ने प्रबन्ध कराया कि हम सब एक दूसरे से अगल रखे जाएं किन्तु फिर भी एक दूसरे से बातचीत हो जाती थी। यदि साधारण कैदियों के साथ रखते तब तो बातचीत का पूर्ण प्रबन्ध हो जाता। इस कारण से सब को अलग-अलग तन्हाई कोठरियों में बन्द किया गया। यही प्रबन्ध दूसरे जिले की जेलों में भी जहां-जहां भी इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियां हुई थीं, किया गया था। अलग-अलग रखने से पुलिस को यह सुविधा होती है कि प्रत्येक से पृथक्-पृथक् मिलकर बातचीत करते हैं। कुछ भय दिखाते हैं कुछ इधर-उधर की बातें करके भेद जानने का प्रयत्न करते हैं। अनुभवी लोग तो पुलिस वालों से मिलने से इन्कार ही कर देते हैं। क्योंकि उनसे मिलकर हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाचार जानने के लिए कुछ बातचीत करते हैं। पुलिस वालों से मिलना ही क्या है। वे तो चालबाजी से बात निकालने की रोटी खाते हैं। उनका

जीवन इसी प्रकार की बातों में व्यतित होता है। नवयुवक दुनियादारी क्या जानें? न वे इस प्रकार की बातें ही बना सकते हैं।

जब किसी तरह कुछ समाचार ही न मिलते, तब तो जी बहुत घबड़ाता। यही पता नहीं चलता कि पुलिस क्या कर रही है। भाग्य का क्या निर्णय होगा? जितना समय व्यतीत होता जाता था, उतनी ही चिन्ता बढ़ती जाती थी। जेल अधिकारियों से मिलकर पुलिस यह भी प्रबन्ध करा देती है कि मुलाकात करने वालों से घर के सम्बन्ध में बातचीत करें, मुकद्दमे के सम्बन्ध में कोई बातचीत न करें। सुविधा के लिए सब से प्रथम यह परमावश्यक है कि एक विश्वास पात्र वकील किया जाये जो यथासमय आकर बातचीत कर सके। वकील के लिए किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती। वकील के साथ अभियुक्त की जो बातें होती हैं उनको कोई दूसरा सुन नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार का कानून है यह अनुभव बाद में हुआ। गिरफ्तारी के बाद शाहजहाँपुर के वकीलों से मिलना भी चाहा, किन्तु शाहजहाँपुर में ऐसे दब्बू वकील रहते हैं, जो सरकार के विरुद्ध मुकद्दमे में सहायता देने से हिचकते हैं।

मुझ से खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले। थोड़ी सी बातें करके अपनी इच्छा प्रकट की कि मुझे सरकारी गवाह बनाना चाहते हैं। थोड़े दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी न पकड़ा जाय, बनारसीलाल से भेंट की और समझा-बुझा कर सरकारी गवाह बना दिया। बनारसीलाल बहुत घबराता था कि कौन सहायता देगा, सजा जरूर हो जायगी। यदि किसी वकील से मिल लिया होता, तो उसका धैर्य न टूटता। पं० हरकरननाथ शाहजहाँपुर आए। जिस समय यह अभियुक्त श्रीयुत प्रेमकृष्ण खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं० हरकरननाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझ से तथा दूसरे अभियुक्तों से मिल ले। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीलाल को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात्रि को पहले एक पुलिस इन्सपेक्टर बनारसीलाल से मिले। फिर जब मैं सो गया, तब बनारसीलाल को निकाल कर ले गए। प्रातःकाल पांच बजे के करीब जब बनारसीलाल की कोठरी में से कुछ शब्द न सुनाई दिया, मैंने बनारसीलाल को पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के सम्बन्ध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाता था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के सम्बन्ध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न

रह सकेगा। इस कारण उन सब ने उसे किसी प्रकार के गुप्त कार्य में लेने की मनाही की थी। अब तो जो होना था, सो हो ही गया।

थोड़े दिनों बाद जिला कलक्टर मिले। कहने लगे फांसी हो जायगी। बचना हो तो बयान दे दो। मैंने कुछ उत्तर न दिया। तत्पश्चात् खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले, बहुत सी बातें कीं। कई कागज दिखलाये। मैंने कुछ-कुछ अन्दाजा लगाया कि कितनी दूर तक ये लोग पहुंच गए हैं। मैंने कुछ-कुछ बातें बनाई ताकि पुलिस का ध्यान दूसरी ओर चला जाए, परन्तु उन्हें तो विश्वसनीय सूत्र हाथ लग चुका था, वे बनावटी बातों पर क्यों विश्वास करते? अन्त में उन्होंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का सम्बन्ध बताकर कुछ बोलशेविक सम्बन्ध के विषय में अपना बयान दे दूं तो वे मुझे थोड़ी सी सजा करा देंगे और सजा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैण्ड भेज देंगे और पन्द्रह हजार रुपये परितोषिक भी सरकार से दिला देंगे। मैं मन ही मन बहुत हंसता था। अन्त में एक दिन फिर मुझ से जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आये, मैंने अपनी कोठरी में से निकलने से ही इन्कार कर दिया। यह कोठरी पर आकर बहुत बातें करते रहे, अन्त में परेशान हो कर चले गए।

शिनाख्तें कराई गई। पुलिस को जितने आदमी मिल सके, उतने आदमी लेकर शिनाख्तें कराई। भाग्यवश श्री अईनुद्दीन साहब मुकद्दमे के मजिस्ट्रेट मुकर्रर हुए, उन्होंने जी भर कर के पुलिस की मदद की। शिनाख्तों के अभियुक्तों को साधारण मजिस्ट्रेटों की भान्ति भी सुविधाएं न दीं। दिखाने के लिए कागजी कार्यवाही खूब साफ रखी। जबान के बड़े मीठे थे। प्रत्येक अभियुक्त से बड़े तपाक से मिलते थे। बड़ी मीठी-मीठी बातें करते थे। समझते थे कि हमसे बड़ी सहानुभूति रखते हैं। कोई न समझ सका कि अन्दर ही अन्दर घाव कर रहे हैं। इतना चालाक अफसर शायद ही कोई दूसरा हो। जब तक मुकदमा उनकी अदालत में रहा, किसी को कोई शिकायत का मौका ही न दिया। यदि कभी कोई बात भी हो जाती, तो ऐसे ढंग से उसे टालने की कोशिश करते कि किसी को बुरा ही न लगता। बहुधा ऐसा भी हुआ कि खुली अदालत में अभियुक्तों से क्षमा मांगने में संकोच न किया। किन्तु कागजी कार्यवाही में इतने होशियार थे कि जो कुछ लिखा सदैव अभियुक्तों के विरुद्ध। जब मामला सेशन सुपुर्द किया और आज्ञा पत्र में युक्तियां दीं, तब सब की आंखें खुलीं कि कितना गहरा घाव मार दिया।

मुकदमा अदालत में न आया था, उसी समय रायबरेली में बनारसीलाल की गिरफ्तारी हुई। मुझे मालूम हुआ। मैंने पं० हरकरननाथ से कहा कि सब काम छोड़कर सीधे रायबरेली जाएं और बनारसीलाल से मिलें, किन्तु उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। मुझे बनारसीलाल पर पहले से ही सन्देह था, क्योंकि उसका रहन सहन इस प्रकार का था कि जो ठीक न था। जब दूसरे सदस्यों के साथ रहता, तब उनसे कहा करता कि मैं जिला संगठनकर्त्ता हूं। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा पालन किया करो। मेरे झूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिता-प्रिय भी था, प्रत्येक समय शीशा कंघा तथा साबुन साथ रखता था। मुझे इससे भय था, किन्तु हमारे दल के एक खास आदमी का वह विश्वास पात्र रह चुका था। उन्होंने सैकड़ों रुपये देकर उसकी सहायता की थी। इसी कारण हम लोग भी अन्त तक उसे मासिक सहायता देते रहे थे। मैंने बहुत कुछ हाथ पैर मारे, पर कुछ भी न चली। और जिसका मुझे भय था, वही हुआ। भाड़े का टट्टू अधिक बोझ न सम्भाल सका, उसने बयान दे दिये। जब तक कि यह गिरफ्तार न हुआ था, कुछ सदस्यों ने उसके पास जो अस्त्र थे, वे मांगे, पर वे न दिये। जिला अफसर की शान में रहा। गिरफ्तारी होते ही सब शान मिट्टी में मिल गई। बनारसीलाल के बयान दे देने से पुलिस का मुकदमा मजबूती पकड़ गया। यदि वह अपना बयान न देता, तो मुकदमा बहुत कमजोर था। सब लोग चारों ओर से एकत्रित करके लखनऊ जेल में रखे गये। थोड़े समय तक अलग अलग रहे, किन्तु अदालत में मुकदमा आने से पहले ही एकत्रित कर दिये गए।

मुकद्दमे में रुपये की जरूरत थी। अभियुक्तों के पास क्या था? उनके लिए धन संग्रह करना कितना दुष्कर था। न जाने किस प्रकार निर्वाह करते थे। अधिकतर अभियुक्तों का कोई सम्बन्धी पैरवी भी न कर सकता था। जिस किसी के कोई था भी, वह बाल-बच्चों तथा घर को सम्भालता या इतने समय तक घर बार छोड़कर मुकदमा करता? यदि चार अच्छे पैरवी करने वाले होते तो पुलिस का तीन चौथाई मुकदमा टूट जाता। लखनऊ जैसे जनाने शहर में मुकद्दमा हुआ, जहां अदालत में कोई भी शहर का आदमी न आता था। इतना भी तो न हुआ कि अच्छा प्रेस रिपोर्टर ही रहता जो मुकद्दमे की सारी कार्यवाही को, जो कुछ अदालत में होता था, प्रेस में भेजता रहता। इण्डियन डेली टेलीग्राफ वालों ने कृपा की। यदि कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया और जो कुछ अदालत की

कार्यवाही ठीक-ठाक प्रकाशित हुई, तो पुलिस वालों ने जज साहब से मिलकर तुरन्त रिपोर्टर को निकलवा दिया। जनता की कोई सहानुभूति न थी। जो पुलिस के जी में आया करती रही। इन सारी बातों को देखकर जज का साहस बढ़ गया। उसने जैसा जी चाहा सब कुछ किया। अभियुक्त चिल्लाये हाय-हाय, पर कुछ भी सुनवाई न हुई। और बातें तो दूर, श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ को पुलिस ने जेल में सड़ा डाला। लगभग एक वर्ष तक वे जेल में तड़पते रहे। सौ पौण्ड से केवल छियासठ पौंण्ड वजन रह गया। कई बार जेल में मरणासन्न हो गए। नित्य बेहोशी आ जाती थी। लगभग दस मास तक कुछ भी भोजन न कर सके। जो कुछ छंटाक दो छटांक दूध किसी प्रकार पेट में पहुंच जाता था, उससे इस प्रकार विकट वेदना होती थी, कि कोई उनके पास खड़ा होकर उस छटपटाने के दृश्य को देख न सकता था। एक मैडिकल बोर्ड बनाया गया, जिसमें तीन डाक्टर थे। उनकी कुछ समझ में न आया, तो कह दिया कि सेठ जी को कोई बीमारी ही नहीं है।.....

बड़ी भयंकर से भयंकर आपत्ति में भी मेरे मुख से आह न निकली, प्रिय सहोदर का देहान्त होने पर भी आंख से आंसू न गिरा किन्तु इस दल के कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी आज्ञा को मैं संसार में सबसे श्रेष्ठ मानता था, जिसकी जरा सी कड़ी दृष्टि भी मैं सहन न कर सकता था, जिनके कटु वचनों के कारण मेरे हृदय पर चोट लगती थी और अश्रुओं का स्रोत उबल पड़ता था। मेरी इस अवस्था को देखकर दो चार मित्रों को जो मेरी प्रकृति को जानते थे बड़ा आश्चर्य होता था। लिखते हुए हृदय कम्पित होता है कि उन्हीं सज्जनों में बंगाली तथा अबंगाली का भाव इस प्रकार भरा था कि बंगालियों की बड़ी से बड़ी भूल हठधर्मी तथा भीरुता की अवहेलना की गई। यह देखकर अन्य पुरुषों का साहस बढ़ता था। नित्य नई चालें चली जाती थीं। आपस में ही एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाते थे। बंगालियों का न्याय-अन्याय सब सहन कर लिया जाता था। इन सारी बातों ने मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला। सब कृत्यों को देख मैं मन ही मन घुटा करता।

एक बार विचार हुआ कि सरकार से समझौता कर लिया जाए। बैरिस्टर साहब ने खुफिया पुलिस के कप्तान से परामर्श आरम्भ किये। किन्तु यह सोचकर कि इससे क्रान्तिकारी दल की निष्ठा न मिट जाए, यह विचार छोड़ दिया गया। युवक वृन्द की सम्मति हुई कि अनशन व्रत करके सरकार से हवलाती की हालत में ही मांगें पूरी करा ली जाएं,

क्योंकि लम्बी-लम्बी सजाएं होंगी। संयुक्त प्रान्त की जेलों में साधारण कैदियों का भोजन खाते हुए सजा काटकर जेल से जिन्दा निकलना कोई सरल कार्य नहीं। जितने राजनैतिक कैदी षड्यन्त्रों के सम्बन्ध में सजा पाकर इस प्रान्त की जेलों में रक्खे गए, उनमें से पांच-छः महात्माओं ने इस प्रान्त की जेलों के व्यवहार के कारण ही जेलों में प्राण त्याग दिये।

इस विचार के अनुसार काकोरी के लगभग सब हवालातियों ने अनशन व्रत आरम्भ कर दिया। दूसरे ही दिन सब पृथक् कर दिये गये। कुछ व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट जेल में रखे गये, कुछ सेन्ट्रल जेल में भेजे गए। अनशन करते पन्द्रह दिवस व्यतीत हो गए, तब सरकार के कान पर जूं रेंगी। उधर सरकार का काफी नुकसान हो रहा था। जज साहब तथा दूसरे कचहरी के कार्यकर्त्ताओं को घर बैठे वेतन देना पड़ता था। सरकार को स्वयं चिन्ता थी कि किसी प्रकार अनशन छूटे। जेल अधिकारियों ने पहले आठ आने रोज तय किये। मैंने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और बड़ी कठिनता से दस आने रोज पर ले आया। उस अनशन व्रत में पन्द्रह दिवस तक मैंने जल पीकर निर्वाह किया था। सोहलवें दिन नाक से दूध पिलाया गया था। श्रीयुत रोशनसिंह जी ने भी इसी प्रकार मेरा साथ दिया था। पन्द्रह दिन तक बराबर चलते फिरते रहे थे। स्नानादि करके अपने नैमित्तिक कर्म भी कर लिया करते थे। दस दिन तक तो मेरे मुख को देख कर अनजान पुरुष यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं अन्न नहीं खाता।

समझौते के जिन खुफिया पुलिस के अधिकारियों से मुख्य नेता महोदय का वार्तालाप बहुधा एकान्त में हुआ करता था, समझौते की बात खत्म हो जाने पर भी, आप उन लोगों से मिलते रहे। मैंने कुछ विशेष ध्यान न दिया। यदा-कदा दो एक बात से पता चलता कि समझौता के अतिरिक्त कुछ दूसरी भी बातें होती हैं। मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी एक समय सी०आई०डी० के कप्तान से मिलूं क्योंकि मुझसे पुलिस बहुत असन्तुष्ट थी। मुझे पुलिस से न मिलने दिया गया। परिणामस्वरूप सी० आई० डी० वाले पूरे दुश्मन हो गए। सब मेरे व्यवहार की ही शिकायत किया करते। पुलिस अधिकारियों से बातचीत करके मुख्य नेता महोदय को कुछ आशा बंध गई। आपका जेल से निकलने का उत्साह था, वह बहुत ढीला हो गया। नवयुवकों की श्रद्धा को मुझसे हटाने के लिए अनेकों प्रकार की बातें की जाने लगीं। मुख्य नेता महोदय ने स्वयं कुछ कार्यकर्त्ताओं

से मेरे सम्बन्ध में कहा कि ये कुछ रुपया खा गए। मैंने एक-एक पैसे का हिसाब रखा था। जैसे ही मैंने इस प्रकार की बातें सुनी मैंने कार्यकारिणी के सदस्यों के सामने रखकर हिसाब देना चाहा और अपने विरुद्ध आक्षेप करने वाले को दण्ड देने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अब तो बंगालियों का साहस न हुआ कि मुझ से हिसाब समझें। मेरे आचरण पर आक्षेप किये गए।

जिस दिन सफाई की बहस मैंने समाप्त की, सरकारी वकील ने उठकर मुक्त कण्ठ से मेरी बहस की प्रशंसा की कि सैकड़ों वकीलों से अच्छी बहस की। मैंने नमस्कार कर उत्तर दिया कि आपके चरणों की कृपा है। क्योंकि इस मुकद्दमे के पहले किसी अदालत में समय न व्यतीत किया था, सरकार तथा सफाई के वकीलों की जिरह को सुनकर मैंने भी साहस किया था। इसके बाद सब से पहले मुख्य नेता महाशय के विषय में सरकारी वकील ने बहस करनी शुरू की। खूब ही आड़े हाथों लिया। अब तो मुख्य नेता महाशय का बुरा हाल था, क्योंकि उन्हें आशा थी कि सम्भव है सबूत की कमी से वे छूट जाएं या अधिक से अधिक पांच या दस वर्ष की सजा हो जाय। आखिर चैन न पड़ी। सी० आई० डी० अफसरों को बुलाकर जेल में उनसे एकान्त में डेढ़ घण्टे तक बातें हुईं। युवक मण्डल को इसका पता चला। सब मिलकर मेरे पास आये। कहने लगे इस समय सी०आई०डी० अफसरों से क्यों मुलाकात की जा रही है? मेरी जिज्ञासा पर उत्तर मिला कि सजा होने के बाद जेल में क्या व्यवहार होगा, इस सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। मुझे सन्तोष न हुआ। दो या तीन दिन बाद मुख्य नेता महाशय एकान्त में बैठकर कई घण्टे तक कुछ लिखते रहे। लिखकर कागज जेब में रख भोजन करने गए। मेरी अन्तरात्मा ने कहा, उठ देख तो, क्या हो रहा है? मैंने जेब से कागज निकालकर पढ़े, पढ़कर शोक और आश्चर्य की सीमा न रही। पुलिस द्वारा सरकार को क्षमा प्रार्थना भेजी जा रही थी। भविष्य के लिए किसी प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलन या कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की गई थी। Undertaking दी गई थी। मैंने मुख्य कार्यकर्त्ताओं से सब विवरण कहकर इस सब का कारण पूछा कि क्या हम लोग इस योग्य भी नहीं रहे जो हम से किसी प्रकार का परामर्श किया जाय? तब उत्तर मिला कि व्यक्तिगत बात थी। मैंने बड़े जोर के साथ विरोध किया कि यह कदापि व्यक्तिगत बात नहीं हो सकती। खूब फटकार बतलाई। मेरी बातों को सुन चारों ओर खलबली पड़ी। मुझे बड़ा क्रोध आया कि कितनी

धूर्तता से काम लिया गया। मुझे चारों ओर से चढ़ाकर लड़ने के लिए प्रस्तुत किया गया। मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचे गए। मेरे ऊपर अनुचित आक्षेप किये गए, नवयुवकों के जीवन का भार लेकर लीडरी की शान झाड़ी गई और थोड़ी सी आपत्ति पड़ने पर इस प्रकार बीस-बीस वर्ष के युवकों को बड़ी-बड़ी सजाएं दिला जेल में सड़ने को डाल स्वयं बंधेज से निकल जाने का प्रयत्न किया गया। धिक्कार है ऐसे जीवन को। किन्तु सोच-समझकर चुप रहा।

अभियोग

काकोरी में रेलवे ट्रेन लुट जाने के बाद ही पुलिस का विशेष विभाग उक्त घटना का पता लगाने के लिए तैनात किया गया। एक विशेष व्यक्ति मि० हार्टन इस विभाग के निरीक्षक थे। उन्होंने घटना स्थल तथा रेलवे पुलिस की रिपोर्टो को देखकर अनुमान किया कि सम्भव है यह कार्य क्रान्तिकारियों का हो। प्रान्त के क्रान्तिकारियों की जांच शुरू हुई। उसी समय शाहजहाँपुर में रेलवे डकैती के तीन नोट मिले। चोरी गए नोटों की संख्या सौ से अधिक थी जिनका मूल्य लगभग एक हजार के होगा। इनमें से लगभग सात सौ या आठ सौ रुपये के मूल्य के नोट सीधे सरकार के ख़ज़ाने में पहुंच गए। अत: सरकार नोटों के मामले को चुपचाप पी गई। ये नोट लिस्ट प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकारी ख़ज़ाने में पहुँच चुके थे। पुलिस का लिस्ट प्रकाशित करना व्यर्थ हुआ। सरकारी खजाने में से ही जनता के पास कुछ नोट लिस्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही पहुंच गए थे। इस कारण वे जनता के पास निकल आये।

उन्हीं दिनों में जिला खुफिया पुलिस को मालूम हुआ कि मैं ८, ९, तथा १० अगस्त सन् १९२५ को शाहजहाँपुर में नहीं था। अधिक जांच होने लगी। इसी जांच पड़ताल में पुलिस को मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट स्कूल शाहजहाँपुर के इन्दुभूषण मित्र नामी एक विद्यार्थी के पास मेरे क्रान्तिकारी दल सम्बन्धी पत्र आते हैं जो मुझे दे आता है। स्कूल के हेडमास्टर द्वारा इन्दुभूषण के पास आये हुए पत्रों की नकल करा के हार्टन साहब के पास भेजी जाती रही। इन्हीं पत्रों से हार्टन साहब को मालूम हुआ कि मेरठ में प्रान्त की क्रान्तिकारी समिति की बैठक होने वाली है। उन्होंने एक सब इंस्पेक्टर को मेरठ अनाथालय में जहां पर मिटिंग होने का पता चला था, भेजा। उन्हीं दिनों हार्टन साहब को किसी विशेष सूत्र से मालूम हुआ शीघ्र ही कनखल में डाका डालने का प्रबन्ध क्रान्तिकारी समिति के सदस्य कर रहे हैं और सम्भव है किसी बड़े

शहर में डाकखाने की आमदनी लूटी जाए। हार्टन साहब को एक सूत्र से एक पत्र मिला जो मेरे हाथ का लिखा था। इस पत्र में सितम्बर में होने वाले श्राद्ध का जिक्र था जिसकी १३ तारीख निश्चित की गई थी। पत्र में था कि दादा का श्राद्ध नं० १ पर १३ सितम्बर को होगा अवश्य पधारिये। मैं अनाथालय में मिलूंगा। पत्र पर रुद्र के हस्ताक्षर थे।

आगामी डकैतियों को रोकने के लिए हार्टन साहब ने प्रान्त भर में २६ सितम्बर सन् १९२५ ई० को लगभग तीस मनुष्यों को गिरफ्तार किया। उन्ही दिनों में इन्दुभूषण के पास आये हुए पत्र से पता लगा कि कुछ वस्तुएं बनारस में किसी विद्यार्थी की कोठरी में बन्द हैं। अनुमान किया गया कि सम्भव है वे हथियार हों। अनुसन्धान करने से हिन्दू विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी की कोठरी से दो राईफलें निकली। उस विद्यार्थी को कानपुर में गिरफ्तार किया गया। इन्दुभूषण ने मेरी गिरफ्तारी की सूचना एक पत्र द्वारा बनारस को भेजी। जिसके पास पत्र भेजा था उसे पुलिस गिरफ्तार कर चुकी थी, क्योंकि उसी श्री रामनाथ पाण्डेय के पते का पत्र मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे मकान से पाया था। रामनाथ पाण्डेय के पत्र पुलिस के पास पहुंचे थे। अत: इन्दुभूषण का पत्र देख इन्दुभूषण को गिरफ्तार किया गया। इन्दुभूषण ने दूसरे दिन अपना बयान दे दिया। गिरफ्तार किये हुए व्यक्तियों में से कुछ से मिल-मिलाकर बनारसीलाल ने भी जो शाहजहांपुर की जेल में था, अपना बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। यह कुछ अधिक जानता था। इसके बयान से क्रान्तिकारी पत्र के पार्सलों का पता चला। बनारस के डाकखाने से जिन-जिनके पास पार्सल भेजे गए थे, उनको पुलिस ने गिरफ्तार किया। कानपुर में गोपीनाथ ने जिसके नाम पार्सल गया था, गिरफ्तार होते ही पुलिस को बयान दे दिया, और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। इसी प्रकार रायबरेली में स्कूल के विद्यार्थी कुंवर बहादुर के पास पार्सल आया था, उसने भी गिरफ्तार होते ही बयान दे दिया और सरकारी गवाह बना लिया गया। इसके नाम मनीआर्डर भी आया करते थे, क्योंकि यह बनवारीलाल का पोस्ट बॉक्स (डाक पाने वाला) था। इसने बनवारीलाल के एक रिश्तेदार का पता बताया, जहां तलाशी लेने से बनवारीलाल का एक ट्रंक मिला। इस ट्रंक में एक कारतूसी पिस्तौल, एक कारतूसी फौजी रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। श्री बनवारीलाल की खोज हुई। बनवारीलाल भी पकड़ लिये गए। गिरफ्तारी के थोड़े दिनों बाद ही पुलिस वाले मिले, उल्टा सीधा सुझाया और

बनवारीलाल ने भी अपना बयान दे दिया तथा इकबाली मुलजिम बनाये गये। श्रीयुत बनवारीलाल ने काकोरी डकैती में अपना सम्मिलत होना बताया था। उधर कलकत्ते में दक्षिणेश्वर में एक मकान में बम बनाने का सामान, एक बना हुआ बम, ७ रिवाल्वर पिस्तौल तथा कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य पकड़ा गया। इसी मकान में श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिरी बी०ए० जो इस मुकद्दमे में फरार थे, गिरफ्तार हुए।

इन्दुभूषण के गिरफ्तार हो जाने के बाद इसके हेडमास्टर को एक पत्र मध्य प्रान्त से मिला, जिसे उसने हार्टन साहब के पास वैसा ही भेज दिया। इस पत्र से एक व्यक्ति मोहनलाल खत्री का चान्दा में पता चला। वहां की पुलिस ने खोज लगाकर पूना में श्रीयुत रामकृष्ण खत्री को गिरफ्तार करके लखनऊ भेजा। बनारस में भेजे हुए पार्सलों के सम्बन्ध से जबलपुर में श्रीयुत प्रणवेशकुमार चटर्जी को गिरफ्तार करके भेजा गया। कलकत्ता से श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल, जिन्हें बनारस षड्यन्त्र से आजन्म काले पानी की सजा हुई थी और जिन्हें बांकुरा में क्रांन्तिकारी पर्चे बांटने के कारण दो वर्ष की सजा हुई थी। इस मुकद्दमे में लखनऊ भेजे गए। श्रीयुत योगेशचन्द्र चटर्जी बंगाल आर्डीनेंस के कैदी हजारी बाग जेल से भेजे गये। आप अक्तूबर सन् १९२४ ई० में कलकत्ते में गिरफ्तार हुए थे। आपके पास दो कागज पाये गए थे, जिनमें संयुक्त प्रान्त के सब जिलों का नाम था और लिखा था कि बाईस जिलों में समिति का कार्य हो रहा है। ये कागज इस षड्यन्त्र के सम्बन्ध के समझे गये। राजेन्द्रनाथ लाहिरी दक्षिणेश्वर बम केस में दस वर्ष के द्वीपान्तर की सजा पाने के बाद इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। अब लगभग छत्तीस मनुष्य गिरफ्तार हुए थे। अट्ठाईस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चला। तीन व्यक्ति श्रीयुत शचीन्द्रनाथ बख्शी, श्रीयुत चन्द्रशेखर आजाद और श्रीयुत अशफ़ाकउल्ला खां फरार रहे। बाकी सब मुकदमा अदालत में आने से पहले ही छोड़ दिये गये। अट्ठाईस में से दो पर से मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा उठा लिया गया। दो को सरकारी गवाह बना कर उन्हें माफी दी गई। अन्त में मजिस्ट्रेट ने इक्कीस व्यक्तियों को सेशन सुपुर्द किया। सेशन में मुकदमा आने पर श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ बहुत बीमार हो गए। अदालत न आ सकते थे, अतः अन्त में बीस व्यक्ति रह गए। बीस में से दो व्यक्ति श्रीयुत शचीन्द्रनाथ विस्वास तथा श्रीयुत हरगोविन्द सेशन की अदातल से मुक्त हुए। बाकी अठारह को सजाएं हुईं।

श्री बनवारीलाल इकबाली मुलजिम हो गए। वे रायबरेली जिला

कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी रह चुके हैं। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में छः मास का कारावास भी भोगा था। इस पर भी पुलिस की धमकी से प्राण संकट में पड़ गए। आप ही हमारी समिति के ऐसे सदस्य थे कि जिन पर समिति का सब से अधिक धन व्यय किया गया। प्रत्येक मास आपको पर्याप्त धन भेजा जाता था। मर्यादा की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति बनवारीलाल को मासिक शुल्क दिया करते थे। अपने पेट काटकर इनको मासिक व्यय दिया गया। फिर भी इन्होंने अपने सहायकों की गर्दन पर छुरी चलाई। अधिक से अधिक दस वर्ष की सजा हो जाती। जिस प्रकार सबूत इनके विरुद्ध था, वैसे ही इसी प्रकार के दूसरे अभियुक्तों पर था, जिन्हें दस-दस वर्ष की सजा हुई। यही नहीं, पुलिस के बहकाने से सेशन में बयान देते समय जो नई बातें उन्होंने जोड़ीं, उनमें मेरे सम्बन्ध में कहा कि रामप्रसाद डकैतियों के रुपये से अपने परिवार का निर्वाह करता है। इस बात को सुनकर मुझे हंसी भी आयी, पर हृदय पर बड़ा आघात लगा कि जिनकी उदर पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाला, दिन को दिन और रात को रात न समझा, बुरी तरह से मार खाई, माता पिता का कुछ भी ख्याल न किया, वही इस प्रकार आक्षेप करें।

समिति के सदस्यों ने इस प्रकार का व्यवहार किया। बाहर जो साधारण जीवन के सहयोगी थे, उन्होंने भी अद्‌भुत रूप धारण किया। एक ठाकुर साहब के पास काकोरी डकैती का नोट मिल गया था। वह कहीं शहर में पा गए थे। जब गिरफ्तारी हुई मजिस्ट्रेट के यहां जमानत नामंजूर हुई, जज साहब ने चार हजार की जमानत मांगी। कोई जमानती न मिलता था। आपके वृद्ध भाई मेरे पास आये। पैरों पर सिर रखकर रोने लगे। मैंने जमानत कराने का प्रयत्न किया। मेरे माता-पिता कचहरी जाकर खुले रूप से पैरवी करने को मना करते रहे कि पुलिस खिलाफ है, रिपोर्ट हो जाएगी, पर मैंने एक न सुनी। कचहरी जाकर कोशिश करके जमानत दाखिल कराई। जेल से उन्हें स्वयं जाकर छुड़ाया। पर जब मैंने उक्त महाशय का नाम उक्त घटना की गवाही देने के लिए सूचित किया, तब पुलिस ने उन्हें धमकाया और उन्होंने पुलिस को तीन बार लिखकर दे दिया कि हम रामप्रसाद को जानते भी नहीं। **हिन्दू-मुसलिम झगड़े में जिनके घरों की रक्षा की थी जिनके बाल बच्चे मेरे सहारे मुहल्ले में निर्भयता से निवास करते रहे, उन्होंने ही मेरे खिलाफ झूठी गवाहियां बनवाकर भेजीं। कुछ मित्रों के भरोसे पर उनका नाम गवाही में दिया कि जरूर देंगे, संसार लौट जाए, पर वे नहीं**

डिग सकते। पर वचन दे चुकने पर भी जब पुलिस का दबाव पड़ा, वे भी गवाही देने से इंकार कर गए। जिनको अपना हृदय, सहोदर, मित्र समझकर हर तरह की सेवा करने को तैयार रहता था, जिस प्रकार की आवश्यकता होती, यथाशक्ति उसको पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करता था, उनसे इतना भी न हुआ कि कभी जेल पर आकर दर्शन दे जाते। फांसी की कोठरी में ही आकर सन्तोषदायक दो बातें कर जाते। एक-दो सज्जन ने इतनी कृपा तथा साहस किया कि दस मिनट के लिए अदालत में दूर खड़े होकर दर्शन दे गये। यह सब इसलिए कि पुलिस का आतंक छाया हुआ था कि कहीं गिरफ्तार न कर लिए जाएं। इस पर भी जिसने जो कुछ किया, मैं उसी को अपना सौभाग्य समझता हूं और उनका आभारी हूं-

वह फूल चढ़ाते हैं, तुर्बत भी दबी जाती है ।
माशूक के थोड़े से भी एहसान बहुत हैं ॥

.....लोगों को इस बात की बड़ी उत्कण्ठा होगी कि क्या यह पुलिस का भाग्य ही था, जो सब बना-बनाया मामला हाथ आ गया। क्या पुलिस वाले परोक्ष ज्ञानी होते हैं? कैसे गुप्त बातों का पता चला लेते हैं? कहना पड़ता है कि यह इस देश का दुर्भाग्य! सरकार का सौभाग्य !! बंगाल पुलिस के सम्बन्ध में तो अधिक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि मेरा कुछ विशेषानुभव नहीं। इस प्रान्त की खुफिया पुलिस वाले तो महान् भौंदू होते हैं, जिन्हें साधारण ज्ञान भी नहीं होता। साधारण पुलिस से खुफिया में आते हैं। साधारण पुलिस की दरोगाई करते हैं, मजे में लम्बी-लम्बी घूस खाकर बड़े-बड़े पेट बढ़ा आराम करते हैं। उनकी बला तकलीफ उठाए। यदि कोई एक दो चालाक हुए भी, तो थोड़े दिन बड़े ओहदे की फिराक में काम दिखाया, दौड़ धूप की, कुछ पद वृद्धि हो गई और सब काम बन्द। इस प्रान्त में कोई बाकायदा पुलिस का गुप्तचर विभाग नहीं, जिसको नियमित रूप से शिक्षा दी जाती हो। फिर काम करते हुए अनुभव हो ही जाता है। मैनपुरी षड्यन्त्र तथा इस षड्यन्त्र से इसका पूरा पता लग गया कि थोड़ी सी कुशलता से कार्य करने पर पुलिस के लिए पता पाना बड़ा कठिन कार्य है। वास्तव में उनके कुछ भाग्य ही अच्छे होते हैं। जब से इस मुकदमे की जांच शुरू हुई पुलिस ने इस प्रान्त के संदिग्ध क्रान्तिकारी व्यक्तियों पर दृष्टि डाली, उनसे मिली, बातचीत की। एक दो को कुछ धमकी दी। **'चोर की दाढ़ी में**

तिनका' वाली जनश्रुति के अनुसार एक महाशय से पुलिस को सारा भेद मालूम हो गया। हम सब के सब चक्कर में थे कि इतनी जल्दी पुलिस ने मामले का पता कैसे लगा लिया। उक्त महाशय की ओर तो ध्यान भी न जा सकता था, पर गिरफ्तारी के समय मुझ से तथा पुलिस के अफसर से जों बातें हुई, उनमें पुलिस अफसर ने वे सब बातें मुझ से कहीं, जिनको मेरे तथा उक्त महाशय के अतिरिक्त कोई भी दूसरा जान ही न सकता था। और भी बड़े पक्के तथा बुद्धिगम्य प्रमाण मिल गए कि जिन बातों को उक्त महाशय जान सके थे, वे ही पुलिस जान सकी। जो बातें आपको मालूम न थी, वे पुलिस को किसी प्रकार न मालूम हो सकी। उन बातों से यह निश्चय हो गया कि यह काम उन्हीं महाशय का है। यदि ये महाशय पुलिस के हाथ न आते और भेद न खोल देते, तो पुलिस सिर पटक कर रह जाती, कुछ भी पता न चलता। बिना दृढ प्रमाणों के भयंकर से भयंकर व्यक्ति पर भी हाथ रखने का साहस नहीं होता, क्योंकि जनता में आन्दोलन फैलने से बदनामी हो जाती है। सरकार पर जवाबदेही आती है। अधिक से अधिक दो चार मनुष्य पकड़े जाते और अन्त में उन्हें भी छोड़ना पड़ता। परन्तु जब पुलिस को वास्तविक सूत्र हाथ आ गया, उसने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए लिखा हुआ प्रमाण पुलिस को दे दिया। उस अवस्था में यदि पुलिस गिरफ्तारियां न करती तो फिर कब करती, जो भी हुआ परमात्मा उनका भी भला करे। अपना तो जीवन भर यही उसूल रहा–

सताये तुझ को जो कोई बेवफ़ा बिस्मिल ।
तो मुंह से कुछ न कहना, आह! कर लेना ॥
हम शहीदाने वफा का दीनो ईमां और है ।
सिजदे करते हैं हमेशा पांव पर जल्लाद के ॥

फांसी की कोठरी

अन्तिम समय निकट है। दो फांसी की सजाएं सिर पर झूल रही हैं। पुलिस को साधारण जीवन में और समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में खूब जी भर कर कोसा है। खुली अदालत में जज साहब, खुफिया पुलिस के अफसर, मजिस्ट्रेट, सरकारी वकील तथा सरकार को खूब आड़े हाथों लिया है। हरेक के दिल में मेरी बातें चुभ रही हैं। कोई दोस्त आशना अथवा यार मददगार नहीं, जिसका सहारा हो। एक परमपिता परमात्मा की याद है। गीता पाठ करते हुए सन्तोष है कि–

जो कुछ किया सो तैं किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं ।
जहां कहीं कुछ मैं किया, तुम ही थे मुझ मांही ॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेभ्यो पद्मपत्रमिवाम्भसः ॥

—भगवद्गीता ५.१० ॥

'जो फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके कर्म करता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल पत्र जल में नहीं होता।' जीवनपर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। यदि शरीर की पालना की तो इसी विचार से कि सुदृढ शरीर से भले प्रकार स्वदेश सेवा हो सके। बड़े प्रयत्नों से यह शुभ दिन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रान्त में इस तुच्छ शरीर का ही सौभाग्य होगा जो सन् १८५७ ई० के गदर की घटनाओं के पश्चात् क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में इस प्रान्त के निवासी का पहला बलिदान मातृ-वेदी पर होगा।

सरकार की इच्छा है कि मुझे घोट-घोटकर मारे। इसी कारण इस गर्मी की ऋतु में साढ़े तीन महीने बाद अपील की तारीख नियत की गई। साढ़े तीन महीने तक फांसी की कोठरी में भूंजा गया। यह कोठरी पक्षी के पिंजरे से भी खराब है। गोरखपुर जेल की फांसी की कोठरी मैदान में बनी है। किसी प्रकार की छाया निकट नहीं। प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक सूर्य देवता की कृपा से चारों ओर रेतीली जमीन होने से अग्नि वर्षण होता रहता है। नौ फीट लम्बी तथा नौ फीट चौड़ी कोठरी में केवल छः फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा द्वार है। पीछे की ओर जमीन के आठ नौ फीट की ऊंचाई पर एक दो फीट लम्बी एक फुट चौड़ी खिड़की है। इसी कोठरी में भोजन, स्नान, मल, मूत्र त्याग तथा शयनादि होता है। मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रात भर सुनाया करते हैं। बड़े प्रयत्न से रात्रि में तीन या चार घण्टे निद्रा आती है। किसी-किसी दिन एक दो घण्टे ही सो कर निर्वाह करना पड़ता है। मिट्टी के पात्रों में भोजन दिया जाता है। ओढ़ने बिछाने के दो कम्बल मिले हैं। बड़े त्याग का जीवन है। साधना के सब साधन एकत्रित हैं। प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है-अन्तिम समय के लिए तैयार हो जाओ, परमात्मा का भजन करो।

मुझे तो इस कोठरी में बड़ा आनन्द आ रहा है। मेरी इच्छा थी कि

किसी साधु की गुफा पर कुछ दिन निवास करके योगाभ्यास किया जाता। अन्तिम समय वह इच्छा भी पूर्ण हो गई। साधु की गुफा न मिली, तो क्या साधना की गुफा तो मिल ही गई। इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अन्तिम बात लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूं। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए। बड़ी कठिनता से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

महसूस हो रहे हैं वादे फ़ना के झोंके ।
खुलने लगे हैं मुझ पर असरार ज़िन्दगी के ॥
बारे में अलम उठाया रंगे निशात देखा ।
आये नहीं हैं यूं ही अन्दाज़ बेहिसी के ॥
वफा पर दिल को सदके जान को नज़रे जफ़ा कर दे ।
मुहब्बत में यह लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़िदा कर दे ॥

अब तो यही इच्छा है –

बहे बहरे फना में जल्द या रब लाश 'बिस्मिल' की ।
कि भूखी मछलियां हैं जौहरे शमशीर कातिल की ॥
समझकर फूंकना इसको ज़रा ऐ दागे नाकामी ।
बहुत से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से ॥

परिणाम

ग्यारह वर्ष पर्यन्त यथाशक्ति प्राणपण से चेष्टा करने पर भी हम अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुए? क्या लाभ मिला? इसका विचार करने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि हमने लाभ-हानि अथवा जय-पराजय के विचार से क्रान्तिकारी दल में योग नहीं दिया था। हम ने जो कुछ किया, वह अपना कर्तव्य समझकर किया। कर्त्तव्य निर्णय में हम ने कहां तक बुद्धिमत्ता से काम लिया, इसका विवेचन करना उचिन जान पड़ता है। राजनैतिक दृष्टि से हमारे कार्यों का इतना ही मूल्य है कि कतिपय होनहार नवयुवकों के जीवन को कष्टमय बनाकर नीरस कर दिया और उन्हीं में से कुछ ने व्यर्थ में जानें गंवाई। कुछ धन भी खर्च किया। हिन्दू-शास्त्र के अनुसार किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, जिसका जिस विधि से जो काल होता है, वह उसी विधि समय पर ही प्राणत्याग करता है। केवल निमित्त मात्र कारण उपस्थित हो जाते हैं। लाखों भारतवासी महामारी, हैजा, ताऊन इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों में मर जाते हैं। करोड़ों दुर्भिक्ष में अन्न बिना प्राण त्यागते हैं तो

उसका उत्तरदायित्व किस पर है? रह गया धन व्यय, सो इतना धन तो भले आदमियों के विवाहोत्सवों में व्यय हो जाता है। गण्यमान्य व्यक्तियों की तो केवल विलासिता की सामग्री का मासिक व्यय इतना होगा जितना कि हम ने एक षड्यन्त्र के निर्माण में व्यय किया। **हम लोगों को डाकू बताकर फांसी और कालेपानी की सजाएं दी गईं हैं। किन्तु हम समझते हैं कि वकील और डाक्टर हम से कहीं बड़े डाकू हैं। वकील, डाक्टर दिन दहाड़े बड़े-बड़े तालुकेदारों की जायदादें लूटकर खा गए। वकीलों के चाटे हुए अवध के ताल्लुकेदारों को ढूंढे रास्ता भी नहीं दिखाई देता और वकीलों की ऊंची अट्टालिकाएं उस पर खिलखिलाकर हंस रही हैं। इसी प्रकार लखनऊ में डाक्टरों के भी ऊंचे ऊंचे महल बन गए। किन्तु राज्य में दिन के डाकुओं (वकील तथा डाक्टरों) में कोई भेद नहीं। दोनों अपने अपने मतलब के लिए बुद्धि की कुशलता से प्रजा का धन लूटते हैं।**

ऐतिहासिक दृष्टि से हम लोगों के कार्य का बहुत बड़ा मूल्य है। जिस प्रकार भी हो यह तो मानना पड़ेगा कि इस गिरी हुई अवस्था में भी भारतवासी युवकों के हृदय में स्वाधीन होने के भाव विराजमान हैं। वे स्वतन्त्र होने की यथाशक्ति चेष्टा भी करते हैं। यदि परिस्थितियां अनुकूल होती, तो यही इने-गिने नवयुवक अपने प्रयत्नों से संसार को चकित कर देते। उस समय भारतवासियों को भी फ्रांसीसियों की भांति कहने का सौभाग्य प्राप्त होता जो कि उस जाति के नवयुवकों ने फ्रांसीसी प्रजातन्त्र की स्थापना करते हुए कहा था। The monument so raised my serve as a lesson to the oppressors and an instance to the oppresed. अर्थात् स्वाधीनता का जो स्मारक निर्माण किया गया है वह अत्याचारियों के लिए शिक्षा का कार्य करे और अत्याचार पीड़ितों के लिए उदाहरण बने।

गाजी मुस्तफा कमालपाशा जिस समय तुर्की से भागे थे, उस समय केवल इक्कीस युवक आपके साथ थे। कोई साजो सामान न था मौत का वारंट पीछे-पीछे घूम रहा था। पर समय ने ऐसा पलटा खाया कि उसी कमाल ने अपने कमाल से संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया। वही कातिल कमालपाशा टर्की का भाग्य निर्माता बन गया। महामना लेनिन को एक दिन शराब के पीपों में छिप कर भागना पड़ा था, नहीं तो मृत्यु में कुछ देर न थी, वही महात्मा लेनिन रूस के भाग्यविधाता बने। श्री शिवा जी डाकू और लुटेरे समझे जाते थे, पर समय आया जब

कि हिन्दू जाति ने उन्हें अपना सिरमौर बना, गो-ब्राह्मण-रक्षक छत्रपति शिवा जी बना दिया। भारत सरकार को भी अपने स्वार्थ के लिए छत्रपति के स्मारक निर्माण कराने पड़े। क्लाइव एक उद्दण्ड विद्यार्थी था, जो अपने जीवन से निराश हो चुका था। समय के फेर ने उसी उद्दण्ड विद्यार्थी को अंग्रेज जाति का राज्य स्थापनकर्ता लार्ड क्लाइव बना दिया। श्री सनयात सेन चीन के अराजकतावादी पलायित (भागे हुए) थे। समय ने ही उसी पलायित को चीन प्रजातन्त्र का सभापति बना दिया। सफलता ही मनुष्य के भाग्य का निर्माण करती है। असफल होने पर उसी को बर्बर, डाकू, अराजक, राजद्रोही तथा हत्यारे के नामों से विभूषित किया जाता है। सफलता उन्हीं सब नामों को बदलकर दयालु, प्रजापालक, न्यायकारी, प्रजातन्त्रवादी तथा महात्मा बना देती है।

भारतवर्ष के इतिहास में हमारे प्रयत्नों का उल्लेख करना ही पड़ेगा, किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि भारतवर्ष की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक किसी प्रकार की परिस्थिति इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष में नहीं है। इसका कारण यही है कि भारतवासियों में शिक्षा का अभाव है। वे साधारण से साधारण सामाजिक उन्नति करने में भी असमर्थ हैं। फिर राजनैतिक क्रान्ति की बात कौन कहे? राजनैतिक क्रान्ति के लिए सर्वप्रथम क्रान्तिकारियों का संगठन ऐसा होना चाहिए कि अनेक विघ्न तथा बाधाओं के उपस्थित होने पर भी संगठन में किसी प्रकार त्रुटि न आये। सब कार्य यथावत् चलते रहें। कार्यकर्त्ता इतने योग्य तथा पर्याप्त संख्या में होने चाहिएँ कि एक की अनुपस्थिति में दूसरा स्थान-पूर्ति के लिए सदा उद्यत रहे। भारतवर्ष में कई बार कितने ही षड्यन्त्रों का भण्डा फूट गया और सब किया कराया काम चौपट हो गया। जब क्रान्तिकारी दलों की यह अवस्था है तो फिर क्रान्ति के लिए उद्योग कौन करे? .....तमाम बातों को देखकर अब तो मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि अच्छा हुआ जो मैं गिरफ्तार हो गया और भागा नहीं। भागने की मुझे सुविधाएं थीं। गिरफ्तारी से पहले ही मुझे अपनी गिरफ्तारी का पूरा पता चल गया था। गिरफ्तारी के पूर्व भी यदि इच्छा करता तो पुलिस वालों को मेरी हवा भी न मिलती, किन्तु मुझे तो अपनी शक्ति की परीक्षा करनी थी। गिरफ्तारी के बाद सड़क पर आधे घण्टे तक बिना किसी बन्धन के घूमता रहा। पुलिस वाले शान्तिपूर्वक बैठे हुए थे। जब पुलिस कोतवाली में पहुंचा, दोपहर के समय पुलिस कोतवाली के दफ्तर में बिना किसी बन्धन के खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही

निगरानी के लिए पास बैठा हुआ था, जो रात भर का जागा था। सब पुलिस अफसर भी रातभर के जगे हुए थे, क्योंकि गिरफ्तारियों में लगे थे। सब आराम करने चले गए थे। निगरानी वाला सिपाही भी घोर निद्रा में सो गया। दफ्तर में केवल एक मुन्शी लिखा पढ़ी कर रहे थे। यह भी श्रीयुत रोशनसिंह अभियुक्त के फूफीजात भाई थे। यदि मैं चाहता तो धीरे से उठकर चल देता पर मैंने विचारा कि मुन्शी जी महाशय बुरे फँसेंगे। मैंने मुन्शी जी को बुलाकर कहा कि यदि भावी आपत्ति के लिए तैयार हो तो मैं जाऊं। वे मुझे पहले से ही जानते थे। पैरों पड़ गए कि गिरफ्तार हो जाऊंगा, बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे। मुझे दया आ गई। एक घण्टे बाद श्री अशफाकउल्ला खां के भाई की कारतूसी बन्दूक और कारतूसों की भरी हुई पेटी लाकर उन्हीं मुन्शी जी के पास रख दी गई और मैं पास ही कुर्सी पर खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही खाली हाथ पास में खड़ा था। इच्छा हुई कि बन्दूक उठा कर कारतूसों की पेटी गले में डाल लूं। फिर कौन सामने आता है। पर फिर सोचा कि मुन्शी जी पर आपत्ति आएगी, विश्वासघात करना ठीक नहीं। उस समय खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट सामने छत पर आये। उन्होंने देखा कि मेरे एक ओर कारतूस रखे हैं, क्योंकि सब चीजें मुन्शी जी के पास आकर जमा होती थीं और मैं बिना किसी बन्धन के बीच में खुला हुआ बैठा हूं। डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट को तुरन्त सन्देह हुआ, उन्होंने बन्दूक तथा पिस्तौल को वहां से हटवाकर मालखाने में बन्द करवाया। निश्चय किया कि अब भाग चलूं। पाखाने के बहाने से बाहर निकाला गया। एक सिपाही कोतवाली से बाहर, दूसरे स्थान में शौच के निमित्त लिवा गया। दूसरे सिपाहियों ने उसे बहुत कुछ कहा कि रस्सी डाल लो। उसने कहा मुझे विश्वास है यह भागेंगे नहीं। पाखाना नितान्त निर्जन स्थान में था। मुझे पाखाने भेजकर वह सिपाही खड़े होकर कुश्ती देखने लगा। मैंने दीवार पर पैर रखा और चढ़ कर देखा कि सिपाही महोदय कुश्ती देखने में मस्त है। हाथ बढ़ाते ही दीवार के ऊपर और एक क्षण में बाहर हो जाता फिर मुझे कौन पाता? किन्तु तुरन्त विचार आया कि जिस सिपाही ने विश्वास करके तुम्हें इतनी स्वतन्त्रता दी, उसके साथ विश्वासघात करके भागकर, उसको जेल में डालोगे? क्या यह अच्छा होगा? उसके बाल बच्चे क्या कहेंगे? इस भाव ने हृदय पर एक ठोकर लगाई। एक ठंडी सांस भरी, दीवार से उतरकर बाहर आया। सिपाही महोदय को साथ लेकर कोतवाली की हवालात में आकर बन्द हो गया।

लखनऊ जेल में काकोरी के अभियुक्तों को बड़ी भारी आजादी थी। राय साहब पं० चम्पालाल जेलर की कृपा से हम कभी न समझ सके कि जेल में हैं या किसी रिश्तेदार के यहां मेहमानी कर रहे हैं। जैसे माता-पिता से छोटे छोटे लड़के बात-बात पर ऐंठ जाते। पं० चम्पालाल जी का ऐसा हृदय था कि वे हम लोगों से अपनी संतान से भी अधिक प्रेम करते थे। हम में से किसी को जरा सा कष्ट होता था, तो उन्हें बड़ा दु:ख होता था। हमारे तनिक कष्ट को भी वह स्वयं न देख सकते थे। और हम लोग ही क्यों, उनके जेल के किसी कैदी या सिपाही जमादार या मुन्शी किसी को भी कोई कष्ट नहीं। सब बड़े प्रसन्न रहते हैं। इसके अतिरिक्त मेरी दिनचर्या तथा नियमों का पालन देखकर पहरे के सिपाही अपने गुरु से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। **मैं यथा नियम जाड़े गर्मी तथा बरसात में प्रात:काल तीन बजे से उठकर सन्ध्यादि से निवृत्त हो, नित्य हवन भी करता था। प्रत्येक पहरे का सिपाही देवता के समान मेरा पूजन करता था।** यदि किसी के बाल-बच्चे को कष्ट होता था, तो वह हवन की भभूत ले जाता था। कोई जन्त्र मांगता था। उनके विश्वास के कारण उन्हें आराम भी होता था तथा उनकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती थी। परिणामस्वरूप जेल से निकल जाने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। जिस समय चाहता चुपचाप निकल जाता। एक रात्रि को तैयार होकर उठ खड़ा हुआ। बैरक के नम्बरदार तो मेरे सहारे पहरा देते थे। जब जी में आता सोते, जब इच्छा होती बैठ जाते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि सिपाही या जमादार सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के सामने पेश करना चाहेंगे तो मैं बचा लूंगा। सिपाही तो कोई चिन्ता ही न करते थे। चारों और शान्ति थी। केवल इतना प्रयत्न करना था कि लोहे की कटी हुई सलाखों को उठाकर बाहर हो जाऊं। चार महीने पहले से लोहे की सलाखें काट ली थी। काटकर वे ऐसे ढ़ंग से जमा दी थी कि सलाखें धोई गई, रंगत लगवाई गई, तीसरे दिन झाड़ी जाती, आठवें दिन हथौड़े से ठोकी जाती और जेल के अधिकारी नित्य प्रति सायंकाल घूमकर सब ओर दृष्टि डाल जाते थे, पर किसी को कोई पता न चला। जैसे ही मैं जेल से भागने का विचार करके उठा था, ध्यान आया कि जिन पं० चम्पालाल की कृपा से सब प्रकार के आनन्द भोगने की स्वतन्त्रता जेल में प्राप्त हुई, उनके बुढापे में जबकि थोड़ा सा समय ही उनकी पेंशन के लिए बाकी है, क्या उन्हीं के साथ विश्वासघात करके निकल भागूं! **सोचा जीवन भर किसी के साथ विश्वासघात न किया। अब**

विश्वासघात न करूंगा। उस समय मुझे यह भली भांन्ति मालूम हो चुका था कि मुझे फांसी की सजा होगी, पर उपर्युक्त बात सोचकर भागना स्थगित ही कर दिया। ये सब बातें चाहे प्रलाप ही क्यों न मालूम हों, किन्तु सब अक्षरश: सत्य हैं, सब के प्रमाण विद्यमान हैं।

मैं इस समय इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि यदि हम लोगों ने प्राणपण से जनता को शिक्षित बनाने के पूर्ण प्रयत्न किये होते तो हमारा उद्योग क्रान्तिकारी आन्दोलन से कहीं अधिक लाभदायक होता, जिसका परिणाम स्थायी होता। अति उत्तम होगा यदि भारत की भावी सन्तान तथा नवयुवकवृन्द क्रान्तिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देश सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएं. ..... मेरा तो अब यह दृढ निश्चय हो गया है कि अभी पचास वर्ष तक क्रान्तिकारी दल को भारतवर्ष में सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि यहां की स्थिति उसके उपयुक्त नहीं। अतएव क्रान्तिकारी दल का संगठन करके व्यर्थ में नवयुवकों के जीवन को नष्ट करना और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि बड़ी भूल है। उससे लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना बहुत अधिक है। **नवयुवकों को मेरा अन्तिम सन्देश यही है कि वे रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्यागकर सच्चे देशसेवक बनें।** पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें। फल की इच्छा छोड़कर सच्चे प्रेम से कार्य करें। परमात्मा सदैव उनका भला करेगा।

यदि देश-हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी ।
तो भी न मैं कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी ॥
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो ।
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो ॥

अन्तिम समय की बातें

आज १६ दिसम्बर १९२७ ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं जबकि १९ दिसम्बर १९२७ ई० सोमवार (पौष कृष्ण ११ संवत् १९८५ वि०) को ६ बजे प्रात:काल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इह-लीला संवरण करनी ही होगी। सर्वशक्तिमान् प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम

है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म मरण के बन्धन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन-सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा, किन्तु अपने लिए यह मेरा दृढ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति **शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्टमित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर यही उद्देश्य रहेगा, कि मनुष्य मात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हुकूमत न करे। सारे संसार में जनतन्त्र की स्थापना हो, वर्तमान समय में भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है। अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतंत्र न हो जाएँ, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि उसी पवित्र वाणी 'वेद वाणी' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं।** सम्भव है कि मैं मार्ग निर्धारण में भूल करूं, पर उसमें मेरा कोई विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीवमात्र ही हूं। भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे, ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूं, वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का भी उल्लेख कर देना उचित समझता हूं जो काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध में सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात् घटित हुई। ६ अप्रैल सन् १९२७ ई० को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। १८ जुलाई सन् १९२७ ई० को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ की सजाएं बढ़ीं और एकाध की कम भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रान्त के गर्वनर की सेवा में मेमोरियल भेजा था जिसमें प्रतिज्ञा की थी, कि अब भविष्य में क्रान्तिकारी दल से कोई सम्बन्ध न रखूंगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपने अन्तिम दया प्रार्थना पत्र में जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था, किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से मुकदमे की बहस लिखकर भेजी, जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी, तो

उन्हें बड़ा सन्देह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई नहीं है, तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे भयंकर षड्यन्त्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चात्ताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि वह (रामप्रसाद) छूट गया, तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे निर्दयी हत्यारे के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का चीफ कोर्ट का आद्योपान्त फैसला पढ़ने से भली भांति विदित होता है कि मुझे मृत्यु-दण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्त्ताओं पर लांछन लगाये हैं, अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, अतएव रामप्रसाद सब से बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में मांगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद, यथा नियम प्रान्तीय गर्वनर तथा फिर वाइसराय के पास दया प्रार्थना की गई। रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लाहिरी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खां के मृत्यु दण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना पत्र भेजा, किन्तु श्रीमान् सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी। उसी समय लेजिस्लेटिव असेम्बली तथा कौंसिल आफ स्टेट के ७८ सदस्यों ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थना पत्र भेजा, कि काकोरी षड्यन्त्र के मुत्यु दण्ड पाये हुओं को मृत्यु दण्ड की सजा बदलकर दूसरी सजा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि ये लोग पश्चात्ताप करें, तो सरकार दण्ड कम करदे। चारों अभियुक्तों ने पश्चात्ताप प्रकट कर दिया है। किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेम्बली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्यु दण्ड न दिया जाए। इतना होने पर सब को आशा थी, कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्यु-दण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयादशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिये गये कि

दया नहीं होगी, सबकी फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने तार सुनाया तो मैंने भी कह दिया कि आप अपना काम कीजिए। किन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के अधिक कहने पर, एक तार दया प्रार्थना का सम्राट् के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम सा बना रखा है कि प्रत्येक फांसी के कैदी की ओर से जिसकी दया भिक्षा की अर्जी वाइसराय के यहां से खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट् के नाम से प्रान्तीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ऐसा नहीं करता। उपर्युक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल इंग्लैंड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी का वाइसराय द्वारा अपील खारीज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवी-कौंसिल में अपील कराई गई नतीजा तो पहले से ही मालूम था। वहां से भी अपील खारीज हुई।

यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी, मैंने सरकार को प्रतिज्ञा पत्र क्यों लिखा? क्यों अपीलों-पे-अपीलें तथा दया प्रार्थनाएँ कीं? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं। मेरी समझ में सदैव यही आया, कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली-भांति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किए गए, तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत मौजूद है। खुली अदालत में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेंस के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम केस आर्डिनेन्स के बाद चले। खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के कत्ल का मुकद्दमा भी खुली अदालत में हुआ और भी कुछ हथियारों के मुकदमे खुली अदालत में चलाये गये, किन्तु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यन्त्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किये गए। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे पर

कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध बंधेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेकों को भयंकर षड्यन्त्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यन्त्रकारियों के लेखबद्ध प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों न किया? बात यह है कि जबरा मारे रोने न देय। मुझे भली भांति मालूम था कि संयुक्त प्रान्त में जितने राजनैतिक अभियोग चलाये जाते हैं, उनके फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबलों की हत्या के अभियोग में नितान्त निर्दोष नवयुवकों को फंसाया गया और सी०आई०डी० वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यन्त्र में भी अन्त में ऐसा ही हुआ। सरकार की सब चालों को जानते हुए भी, मैंने सब कार्य उसकी लम्बी-लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किये। काकोरी के मृत्यु-दण्ड पाये हुओं की दया प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सो काकोरी वालों ने किया। मृत्यु-दण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शान्ति भंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की सम्भावना न थी। विशेषतया जब कि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू मुसलमान असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यन्त्रकारियों की इतनी बड़ी सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पासा सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहाँपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू-मुसलिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्यु-दण्ड रद्द किये हैं, जिनको कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्यु दण्ड देना ही उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजाएं ऐसे समय माफ की गई थीं, जबकि नित्य नये हिन्दू-मुसलमान दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्यु दण्ड माफ करके दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता, तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहां तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उसमें एक भी भारतवासी

के न चुने जाने, पार्लियामेण्ट में भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड के तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली भांति समझ में आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूं कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। **गए थे रोजा छोड़ने, नमाज गले पड़ गई।** भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मृत्यु-दण्ड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था, कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस पर एकत्रित हो, हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफॉक उल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाक उल्ला कट्टर मुसलमान हो कर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद के क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम पर हिन्दू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों के ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकतें?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजुर्बा था, जो पूरी तौर से कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दु-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद, वह दिन बहुत दूर न होगा, जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने

सिर झुकाना पड़े और यदि ऐसा करेंगे, तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं, क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का मौका मिल जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूं, वही श्री अशफाक उल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फांसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सजा बढ़ने तक, श्री अशफ़ाक उल्ला खां की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी, कि वह एक बार मुझ से मिल लेते जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफॉक उल्ला खां जी अंग्रेजी सरकार से दया प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूं जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाक उल्ला खां को उनके दृढ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी या नहीं। खैर ! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी, कि हम लोगों को फांसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएं उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश सेवा में योग देने को उद्यत हों उस समय तक भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्तव्य समझने लग जाएं।

प्रिवी-कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्यु-दण्ड उपयुक्त दण्ड नहीं, क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के ख्याल से मृत्यु-दण्ड दिया गया, तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था और प्रान्त का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्यु-दण्ड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन

को फांसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएँ सब स्वीकार होती, पर ऐसा क्यों होने लगा? मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनैतिक अभियोग चले तो वे कभी भूलकर के भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आये तो जोरदार बयान दें। **अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें। काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें।** इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था, कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख टलवाकर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है। और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया कि यदि हो सके तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फांसी वालों की फांसी की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेकों प्रयत्न किये, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यहीं तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन का षड्यन्त्रकारी दल खड़ा किया था, वहां से मुझे प्राण रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका। एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका। अन्त में फांसी पा रहा हूं। फांसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूल कर भी किसी प्रकार के क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लें। यदि देशसेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देशसेवा हो सकती है जो ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आन्दोलनों में परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। जिनकी भलाई के लिए करो, वही बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अन्त में मन ही मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें सब मिलकर करें और देश की भलाई के लिए करें। इसी से सब का भला होगा।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफ़ाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

(आत्मकथा से संकलित)

बलिदान

काकोरी काण्ड के अग्रणी रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल में १९ दिसम्बर १९२७ को फांसी हुई। फांसी के पहले वाली शाम को (१८ दिसम्बर) जब उन्हें दूध पीने को दिया गया तो उन्होंने यह कहकर इन्कार कर दिया कि अब तो माता का दूध पीऊंगा। प्रातःकाल नित्यकर्म सन्ध्यावन्दन आदि से निवृत्त हो माता को एक पत्र लिखा जिसमें देशवासियों के नाम सन्देश भेजा और फिर फांसी की प्रतीक्षा में बैठ गए। जब फांसी के तख्ते पर ले जाने वाले आए, तो वह **'वन्देमातरम्'** और **'भारत माता की जय'** कहते हुए तुरन्त उठ कर चल दिए। चलते समय उन्होंने यह कहा–

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूं न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे,
तेरा ही ज़िक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे॥

फांसी के दरवाजे पर पहुंच कर उन्होंने कहा "I wish the down-fall of the British Empire" (मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूं।) इसके बाद तख्ते पर खड़े होकर प्रार्थना के बाद **'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि....'** आदि मन्त्रों का जाप करते हुए गोरखपुर के जेल में वह फंदे में झूल गए।

फांसी के वक्त जेल के चारों ओर बहुत कड़ा पहरा था। गोरखपुर की जनता ने उनके शव को लेकर आदर के साथ शहर में घुमाया। बाजार में अर्थी पर इत्र तथा फूल बरसाए गए और पैसे लुटाए गए। बड़े धूमधाम से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की गई।

फांसी के कुछ दिन पहले उन्होंने अपने एक मित्र के पास एक पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा था–

१९ तारीख को जो कुछ होने वाला है उसके लिए मैं अच्छी तरह तैयार हूं। यह है ही क्या? केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृभूमि तथा उसकी दीन-सन्तति के लिए नये उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिए शीघ्र ही फिर लौट आएगी।

यदि देश हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।
मरते बिस्मिल रोशन लहरी अशफाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैकड़ों उनके रुधिर की धार से।
उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का,
तब नाश होगा सर्वदा दुःख शोक के लवलेश का।।

"सब से मेरा नमस्ते कहिए।"

नीचे लिखी हुई कविता पण्डित जी ने जेल ही में बनाई थी और सैयद ऐनुद्दीन की अनुमति लेकर लखनऊ के अवध अखबार में छपवाई थी। इस कविता में भी एक शहीद हृदय का पता लगता है। इसलिए इसे हम यहां उद्धृत करते हैं–

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या?
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या?
काश अपनी जिन्दगी में हम ये मंजर देखते
यूं सरे तुरबत कोई महशर खरम आया तो क्या?
मिट गई जुमला उम्मीदें जाता रहा सारा ख्याल,
उस घड़ी फिर नामवर लेकर पयाम आया तो क्या?
ऐ दिल नाकाम मिट जा अब तो कूचे यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या?
आख़िर शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प।
सुबह दम गर कोई भी बालाए बाम आया तो क्या?

काकोरी काण्ड के वीरों का परिचय और उनके फांसी के दृश्य

(क्रान्तिकारी शहीद भगतसिंह की लेखनी से)

(काकोरी काण्ड के सभी वीर आकर्षक और बलिष्ठ नवयुवक थे। इस काण्ड की चारों ओर बड़ी चर्चा हुई। काकोरी के वीरों के प्रति देश की जनता का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। उसी समय क्रान्तिकारी भगतसिंह ने इनके विषय में 'किरती' नामक पत्रिका में दो लेख 'विद्रोही'

नाम से निकाले। (१) काकोरी के वीरों से परिचय (मई १९२७)। (२) काकोरी के शहीदों की फांसी के हालात (जनवरी १९२८)। ये दोनों ही ऐतिहासिक दस्तावेज हैं, अतः उन्हें यहां पाठकों के लिए यथावत् प्रस्तुत किया जाता है—**सम्पादक**)

पहले 'किरती' (पंजाबी पत्रिका) में काकोरी से सम्बन्धित कुछ लिखा जा चुका है। आज हम काकोरी षड्यन्त्र और वीरों के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे जिन्हें उस सम्बन्ध में कड़ी सजाएं मिली हैं।

९ अगस्त १९२४ को एक छोटे से स्टेशन काकोरी से एक पैसेंजर ट्रेन चली। यह स्टेशन लखनऊ से आठ मील की दूरी पर है। ट्रेन मील डेढ़ मील चली होगी कि सेकेण्ड क्लास में बैठे हुए तीन नौजवानों ने गाड़ी रोक ली और दूसरों ने मिलकर गाड़ी में जा रहा सरकारी खजाना लूट लिया। उन्होंने पहले ही जोर से आवाज देकर सभी यात्रियों को समझा दिया था कि वे डरें नहीं, क्योंकि उनका उद्देश्य यात्रियों को तंग करने का नहीं, सिर्फ सरकारी खजाना लूटने का है। खैर, वे गोलियां चलाते रहे। वह (कोई यात्री) आदमी गाड़ी से उतर पड़ा और गोली लग जाने से मर गया।

सरकारी अधिकारी हार्टन सी०आई०डी० इसकी जांच में लगा। उसे पहले से ही यकीन हो गया था कि यह डाका क्रान्तिकारी जत्थे का काम है। उसने सभी संदिग्ध व्यक्तियों की छानबीन शुरू कर दी। इतने में क्रान्तिकारी जत्थे की राज्य परिषद् की एक बैठक मेरठ में होनी तय हुई। सरकार को इसका पता चल गया। वहां खूब छान-बीन की गयी।

फिर सितम्बर के अन्त में हार्टन ने गिरफ्तारियों के वारण्ट जारी किये और २६ सितम्बर को बहुत-तलाशियाँ ली गयीं और बहुत से व्यक्ति पकड़ लिये गये। कुछ नहीं पकड़े गये। उनमें से एक श्री राजेन्द्र लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में पकड़े गये और वहीं उन्हें दस बरस कैद हो गयी। और श्री अशफाकउल्ला और शचीन्द्र बख्शी बाद में पकड़े गये, जिन पर अलग मुकदमा चला।

जज के फैसले से यह पता चलता है कि असहयोग आन्दोलन दब जाने से देशभक्त युवकों का शान्ति से विश्वास उठ गया और उन्होंने युगान्तर दल स्थापित किया। **श्री जोगेशचन्द्र चट्टोपाध्याय** बंगाल से इस दल का संगठन बनाने यू०पी० आये और पक्का काम कर सितम्बर १९२४ में लौट गये। उस समय बगाल में आर्डिनेंस पास हो चुका था और आप

लौटते ही हावड़ा पुल पर पकड़े गये। तलाशी लेने पर आपकी जेब से एक कागज मिला जिस पर यू०पी० राज्य परिषद् की किसी बैठक का और यू० पी० में अपने दल के संगठन का हाल लिखा हुआ था। खैर, फिर काम चल पड़ा और काम चलाने की खातिर कई डकैतियां भी की गयी। जज के विचार में इस दल के नेता हैं—श्री शचीन्द्रनाथ सन्याल।

श्री शचीन्द्रनाथ सन्याल का नाम किससे छिपा है। आप ही बन्दी जीवन जैसी प्रसिद्ध व शानदार पुस्तक के लेखक हैं। बनारस के निवासी हैं और १९१५ के गदर आन्दोलन में आपने खूब काम किया था। आप बनारस षड्यन्त्र के नेता व श्री रासबिहारी जी का दांया हाथ थे। तब उम्र कैद हुई थी, लेकिन १९२० में छूट गये थे। फिर आप अपने पिछले काम पर ही जुट गये और सन् १९२५ के शुरू में दी रेवोल्यूशनरी पर्चा एक ही दिन में सारे हिन्दुस्तान में बंटा। उसकी भाषा व अच्छे विचारों की अंग्रेजी अखबारों ने भी खूब तारीफ की थी। आप फरवरी में पकड़े गये। आप पर उस सम्बन्ध में मुकदमा चलाया गया और आपको दो साल कैद की सजा मिली। वहीं से आपको काकोरी के मुकदमे में घसीट लिया गया। आप बड़े जिन्दादिल हैं। कोर्ट में स्वयं खुश रहना और दूसरों को खुश रखना ही आपका काम था। आप ने अपना मामला स्वयं लड़ा। जज आपको ही सब का गुरु कहता है। बन्दी जीवन का गुजराती व पंजाबी में अनुवाद हो चुका है। आप अंग्रजी और बंगाली के उच्च कोटि के लेखक हैं। अब आपको दो वर्ष की उम्र कैद हो गयी है।

आपके साथ आपका छोटा भाई **भूपेन्द्रनाथ सान्याल** भी घसीट लिया गया। वह गरीब बी०ए० में पढ़ता था। पकड़ा गया और उसे पांच साल की कैद हो गयी।

श्री शचीन्द्र के बाद अत्यन्त प्रसिद्ध वीर **श्री रामप्रसाद हैं**। आप जैसा सुन्दर मजबूत जवान खोजने से मिलना मुश्किल है। बहुत योग्य आदमी है। हिन्दी का बड़ा लेखक है। आपने **कैथराइन, बोल्शेविको के काम, मन की लहर** अनेक पुस्तकें लिखीं। आप उर्दू के माने हुए शायर हैं। आपकी उम्र २८ बरस की है। पहले १९१९ में मैनपुरी षड्यन्त्र में आपके वारण्ट निकले और आपके गुरु श्री गेंदालाल जी आदि पकड़े गये लेकिन आप नेपाल की ओर चले गये और वहां बड़ी मुश्किलें सहन कर गुजारा करते रहे। पूरा दिन हल चलाना, कुदाल चलाना, मेहनत मशक्कत करना और रात में सिर्फ डेढ आना पाना, जिससे पेट भर रोटी भी नहीं खा सकते थे। कई बार तो घास तक खानी पड़ी। लेकिन मजा

यह कि फिर भी बैठकर कविता लिखना और भारत माता की याद और प्रेम में आंसू बहाने और गीत गाने। ऐसे नौजवान कहां से मिल सकते हैं? आप युद्ध-विद्या में बड़े कुशल हैं और आज उन्हें फांसी का दण्ड मिलने का कारण भी बहुत हद तक यही है। इस वीर को फांसी का दण्ड मिला और ये हंस दिये। ऐसा निर्भीक वीर, ऐसा सुन्दर जवान, ऐसा योग्य और उच्चकोटि का लेखक और निर्भय योद्धा मिलना मुश्किल है।

तीसरे वीर **राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी** हैं। २४ वर्ष का अत्यन्त सुन्दर जवान एम० ए० बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था। जज कहता है कि यह युगान्तर दल का एक मजबूत स्तम्भ है। आप गाड़ी रोकने वालों में थे। बाहर से कमजोर सूखे से। **कलकत्ता के पास दक्षिणेश्वर बम फैक्ट्री में पकड़े गये। वहीं दस साल कैद हुई। खुशी में मोटा होने लगे। काकोरी के मुकदमे में तो शरीर खूब भर आया था और अब फांसी की सजा हो गयी है।**

वीर रोशनसिंह को भी फांसी की सजा हुई है। आप पहले पुलिस की मदद करते थे और बहुत से डकैत आपने पकड़वाये थे। आप भी फंस गये लेकिन कोई डकैत तो नहीं हैं। जज भी कहता है यह नौजवान सच्चे देशभक्त थे। अच्छा इस वीर को भी बार-बार नमस्कार।

इसके बाद **श्री मन्मथनाथ गुप्त** की बारी है। आप काशी विद्यापीठ के बी०ए० के विद्यार्थी थे। १८ बरस की उम्र है। बंगाली, गुजराती, मराठी, उड़िया, हिन्दी, अंग्रेजी और फ्रेंच आदि अनेकों भाषाएं आपने सीख ली थीं। जज ने आपको डकैतियों में शामिल कर १४ साल की सख्त सजा दी है। आप बड़े निर्भय हैं और यह सजा सुनकर हंस दिये। आजकल जेल में भूख हड़ताल किये बैठे हैं। आपसे गैर सरकारी सदस्य ने जेल में आकर पूछा कि खाना क्यों नहीं खाते, तो आप ने उत्तर दिया कि हम मनुष्य हैं। हमारे साथी मनुष्य हैं। हमारे साथ मनुष्य जैसा व्यवहार होना चाहिए। मैं नहीं समझता कि इस पशुओं जैसे व्यवहार को सहन कर मैं १४ साल जी सकूंगा। तिल-तिलकर करने से एक बार मर जाना अच्छा है। आप पहले असहयोग में भी जेल जा चुके हैं।

अब जिस नौजवान का जिक्र होगा उसे हम महापुरुष कह दें, तो कुछ झूठ न होगा। वह वीर **श्री योगेशचन्द्र चटर्जी** है। आप कोमिल्ला (ढाका) के रहने वाले हैं। आप बी०ए० में फिलासफी के विद्यार्थी थे। प्रोफेसर आप पर बहुत खुश थे और कहते थे लड़का बड़ा होनहार है।

लेकिन आपने कालेज तो क्या पूरी दुनियां की फिलासफी पर लात मार दी और सब कुछ छोड़कर युगान्तर दल में जा मिले। आपको डिफेन्स आफ इण्डिया एक्ट के अनुसार गिरफ्तार किया गया और अकथनीय व असहनीय कष्ट दिये गये। **एक दिन आपके सर पर पाखाना डाल दिया गया और चार दिन तक कोठरी में बन्द रखा गया। मुंह धोने तक के लिए पानी नहीं दिया गया और बुरी तरह मार-मार कर पूरा बदन जख्मी कर दिया गया।** लेकिन आपके पास चुप से अधिक क्या रखा था।

१९२० में छूटे तो एक मामूली कार्यकर्ता की तरह कांग्रेस में काम करते रहे। घर से गरीब हैं, लेकिन अपना घर तबाह करके भी दुनियां की सेवा होती है। आप १९२३ में यू०पी० आये और युगान्तर दल की नींव रखी। १९२४ में बंगाल लौट गये और पकड़े गये। पहले आपको ऑर्डिनेंस के तहत पकड़ा था। फिर यहां काकोरी लाया गया। आपको दस बरस कैद हुई है। बेहद खूबसूरत नौजवान है। जज ने आपकी बड़ी तारीफ की है।

श्री गोविन्द चरणकार उर्फ डी०एन० चौधरी लखनऊ से पकड़े गये थे। आप बहुत पुराने क्रान्तिकारी हैं। १९१८ या १९१९ में ढाका में पुलिस आपको पकड़ने आयी। आपने गोलियों का जवाब गोलियों से दिया और लड़ते-लड़ाते भाग निकले, लेकिन गोलियां खत्म हो चुकी थी और आप घायल हो गये थे। पकड़े गये, काला पानी मिला। १९२५ में बहुत बीमार हो गये थे, तब छोड़े गये। और अब १० साल कैद हो गयी है।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य सम्बन्धी कुछ लिखेंगे। आप भी बनारस के रहने वाले थे। बनारस षड्यन्त्र के समय आपकी उम्र १६ बरस की थी। पकड़े गये। लेकिन कुछ प्रमाणित न होने से छूट गये और फिर नजरबन्द कर बुन्देलखण्ड में रखे गये। आप हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध लेखक हैं। कानपुर के प्रताप जैसे प्रसिद्ध अखबार के सहायक सम्पादक थे। आप बनारस में पकड़े गये और अब आपको सात साल कैद हुई है। आप बहुत सुन्दर गाते हैं। जेल में आप योगाभ्यास करते थे।

श्री राजकुमार कानपुर के रहने वाले हैं। आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में बी०ए० में पढ़ते थे, पकड़े गये। आपके कमरे से दो राइफलें निकली। बहुत सुन्दर गाने वाले और देखने में भी आप काफी सुन्दर हैं। जोशीले बहुत हैं। श्री दामोदर स्वरूप जब बहुत बीमार होने

पर भी कोर्ट बुलाए गये, तो आपको जोश आ गया और आपने जज को खूब सुनायी। जज ने कहा कि फैसले के समय तुम्हें इसका मजा चखाया जायेगा। वीर युवक को दस साल की सजा हो गयी। जीवन एक तरह से तबाह हो गया, लेकिन आप हंस दिये। धन्य हैं ये वीर, और उन्हें जन्म देने वाली माताएं !

श्री विष्णु शरण दुबलिस मेरठ के रहने वाले हैं। वैश्य अनाथालय के अधीक्षक थे। बी०ए० में असहयोग कर दिया गया था और मेरठ को उन्होंने दूसरा बारदोली बना दिया था। सिविल नाफरमानी के लिए तैयार हो गये थे। बड़े सुन्दर वक्ता थे। आपके घर युगान्तरकारियों क़ी बैठक हुई थी। आपको सात साल की सजा हो गयी है।

श्री रामदुलारे को भी ७ साल की सजा हुई। आप कानपुर निवासी थे। स्काउट मास्टर कांग्रेस के जोशीले सेवक थे।

६ अप्रैल को फैसला सुनाया गया, उस दिन सभी वीर गाते आये थे–

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए-कातिल में है !

सजाएँ लापरवाही से सुनी और हंस दिये। उसके बाद दु:ख की घड़ी आ गयी। जिन वीरों ने एक साथ समुद्र में किश्तियां डाली थी, उनके ही अलग होने का पल आ गया। "क्रान्तिकारी लोगों में जो अगाध और गम्भीर प्रेम होता है, उसे साधारण दुनियादार आदमी अनुभव नहीं कर सकते" श्री रासबिहारी के इस वाक्य का अर्थ भी हम लोग नहीं समझ सकते। जिन लोगों ने 'सिर नख तली प्रेम गली' में पैर रख दिया हो, उनकी महिमा को हमारे जैसे निकृष्ट आदमी क्या समझ सकते हैं कि उनका परस्पर प्रेम कितना गहन होता है, उसे हम सपने में भी नहीं जान सकते। डेढ़ साल से अपने जीवन के अन्धकारमय भविष्य के इन्तजार में मिलकर बैठे थे। वह पल आया। तीन को फांसी, एक को उम्र कैद, एक को १४ बरस कैद, ४ को दस बरस कैद व बाकियों को ५ से १० साल की सख्त कैद सुनाकर जज उन्हें उपदेश देने लगा–आप सच्चे सेवक और त्यागी हैं। लेकिन गलत रास्ते पर चले हो। गरीब भारत में ही सच्चे देशभक्तों का यह हाल होता है। जज उन्हें अपने कामों पर पुनर्विचार करने की बात कह चलता बना और फिर... फिर क्या हुआ? क्या पूछते हैं? जुदाई के पल बड़े बुरे होते हैं। जिन्हें फांसी की सजा मिल गयी, जिन्हें उम्र भर के लिए जेल में बन्द कर दिया गया, उनके दिलों का

हाल हम नहीं समझ सकते। कदम-कदम पर रोने वाले हिन्दुस्तानी यों ही थर-थर कांपने लगे जाने वाले कायर हिन्दुस्तानी, उन्हें क्या समझ सकते हैं? छोटों ने बड़ों के पैरों पर झुककर नमस्कार किया। उन्होंने छोटों को आशीर्वाद दिया, जोर से गले मिले और आह भरकर रह गये। सभी जेल भेज दिये गये। जाते हुए श्री रामप्रसाद जी ने बड़े दर्दनाक लहजे में कहा-

दरो दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं॥

यह कहकर वह लम्बी बड़ी दूर की यात्रा पर चले गये। दरवाजे से निकलते समय उस अदालत के बड़े भारी रैकन थिएटर हाल की भयावह चुप्पी को एक आह भरकर तोड़ते हुए उन्होंने फिर कहा-

हाय हम जिस पर भी तैयार थे मर जाने को।
जीते जी हम से छुड़ाया उसी काशाने को॥

हम लोग एक आह भरकर समझ लेते हैं कि हमारा फर्ज पूरा हो गया। हमें आग नहीं लग उठती, हम तड़प नहीं उठते, हम इतना मुर्दे हो गये हैं। आज वे भूख हड़ताल कर बैठे हैं और तड़प रहे हैं और हम चुपचाप सब तमाशा देख रहे हैं। ईश्वर उन्हें बल व शक्ति दे कि वे वीरता से अपने दिन पूरे करें और वीरों के बलिदान रंग लायें।"

लेखक 'विद्रोही'।

काकोरी के शहीदों की फांसी के हालात

"'किरती' के पाठकों को पहले किसी अंक में हम काकोरी के मुकदमे के हालात बता चुके हैं। अब इन चार वीरों को फांसी दिये जाने का हालत बताते हैं।

१६ दिसम्बर १९२७ को **श्री राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी** को गोंडा जेल में फांसी दी गयी और १९ दिसम्बर १९२७ को श्री रामप्रसाद बिस्मिल को गोरखपुर जेल में फांसी पर चढ़ा दिया गया।

इस मुकदमे के सेशन जज मि० हेमिल्टन ने फैसला देते हुए कहा था कि ये नौजवान देशभक्त हैं और इन्होंने अपने किसी लाभ के लिए कुछ भी नहीं किया और यदि यह नौजवान अपने किये पर पश्चात्ताप करें तो उनकी सजाओं में रियायत की जा सकती है। उन चारों वीरों द्वारा इस आशय की घोषणा भी हुई, लेकिन उन्हें फांसी दिये बगैर डायन नौकरशाही को चैन कैसे पड़ता। अपील में बहुत से लोगों की सजाएं

बढ़ा दी गयी। फिर न तो गवर्नर और न ही वायसराय ने उनकी जवानी की ओर ध्यान दिया और प्रीवी कौंसिल ने उनकी अपील सुनने से पहले ही खारिज कर दी। यू०पी० कौंसिल के बहुत से सदस्यों, असेम्बली और कौंसिल तथा स्टेट के बहुत से सदस्यों ने वायसराय को उनकी जवानी पर दया करने की दरखास्त दी, लेकिन होना क्या था? उनके इतने हाथ-पांव मारने का कोई परिणाम न निकला। यू०पी० कौंसिल के स्वराज्य पार्टी के नेता श्री गोविन्द वल्लभ पन्त उनके मामले पर बहस के लिए अपना मत वायसराय और लाट साहब को भेजने के लिए शोर मचा रहे थे। पहले तो प्रेजिडेण्ट साहब अनुमति ही नहीं दे रहे थे, लेकिन बहुत से सदस्यों ने मिलकर कहा तो सोमवार को बहस के लिए इजाजत मिली, लेकिन फिर छोटे अंग्रेज अध्यक्ष ने जो उस समय अध्यक्ष का काम कर रहा था, सोमवार को कौंसिल की छुट्टी ही कर दी। होम मेम्बर नवाब छतरी के दर पर जा चिल्लाये, लेकिन उनके कानों पर जूं तक न सरकी। और कौंसिल में उनके सम्बन्ध में एक शब्द भी न कहा जा सका और उन्हें फांसी पर लटका ही दिया गया। इसी क्रोध में नीचता के साथ रूसी जार और फ्रांसीसी लुइस बादशाह होनहार युवकों को फांसी पर लटका लटकाकर दिलों की भड़ास निकालते रहे थे, लेकिन उनके राज्यों की नीवें खोखली हो गयी थी और उनके तख्ते पलट गये। इसी गलत तरीके का आज फिर इस्तेमाल हो रहा है। देखें, यदि इस वार इनकी मुरादें पूरी हों। नीचे हम उन चारों वीरों के हालात संक्षेप में लिखते हैं जिससे यह पता चले कि यह अमूल्य रत्न मौत के सामने खड़े होते हुए भी किस बहादुरी से हंस रहे थे।

श्री राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

आप हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के एम०ए० के छात्र थे। १९२५ में कलकत्ते के पास दक्षिणेश्वर बम फैक्ट्री पकड़ी गयी थी, उसमें आप भी पकड़े गये थे और आपको सात बरस की कैद हो गयी थी। वहीं से आपको लखनऊ लाया गया और काकोरी केस में आपको फांसी की सजा दे दी गयी। आपको बाराबंकी और गोंडा जेल में रखा गया। आप मौत को सामने देख घबराते नहीं थे बल्कि हमेशा हंसते रहते थे। आपका स्वभाव बड़ा हँसमुख और निर्भय था। आप मौत का मजाक उड़ाते थे। आपके दो पत्र हमारे सामने हैं। एक छह अक्तूबर को तब लिखा गया था जब वायसराय ने रहम की दरखास्त नामंजूर कर दी थी। आप लिखते हैं–

छह महीने बाराबंकी और गोंडा की काल कोठरियों में रहने के

बाद आज मुझे बताया गया है कि एक हफ्ते के भीतर फांसी दे दी जायगी, क्योंकि वायसराय ने दरखास्त नामंजूर कर दी है। अब मैं अपना फर्ज समझता हूं कि अपने इन मित्रों का (यहां उनके नाम हैं।) धन्यवाद कर जाऊं, जिन्होंने मेरे लिए बहुत सी कोशिशें की। आप मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करें। हमारे लिए मरना जीना पुराने कपड़े बदलने से अधिक कुछ भी नहीं (यहां जेलवालों ने कुछ कांट-छांट की है जो बिल्कुल पढ़ा नहीं जाता), मौत आ रही है, हंसते-हंसते बड़े चाव और खुशी से उसे जोर से गले लगा लूंगा। जेल के कानून के अनुसार और कुछ नहीं लिख सकता। आपको नमस्कार। देश के दर्दमन्दों को नमस्कार।

वन्दे मातरम् !

आपका

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

फिर इस पत्र के बाद फांसी नहीं हो सकी, क्योंकि प्रीवी कौंसिल में अपील की गयी थी। दूसरा पत्र १४ दिसम्बर को एक मित्र के नाम लिखा था-

कल मुझे पता चला है कि प्रीवी कौंसिल में मेरी अपील खारिज कर दी है। आप लोगों ने हमें बचाने की बहुत कोशिश की, लेकिन लगता है कि देश की बलिवेदी पर हमारे प्राणों के बलिदान की ही जरूरत है। मौत क्या है? जीवन की दूसरी दशा के सिवाय कुछ नहीं। जीवन क्या है? मौत की ही दूसरी दशा का नाम है। फिर डरने की क्या जरूरत है? यह तो प्राकृतिक बात है, उतनी ही प्राकृतिक जितना कि प्रातः में सूर्योदय। यदि हमारी यह बात सच है कि इतिहास पलटा खाता है तो मैं समझता हूं कि हमारा बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा।

मेरा नमस्कार, सब को अन्तिम नमस्कार ।

आपका

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

कितना भोला कितना सुन्दर और निर्भीकतापूर्ण पत्र है और इनका लेखन कितना भोला है। फिर इन्हें ही अन्यों से दो दिन पहले ही फांसी दे दी गयी। फांसी के समय (१७.१२.१९२७) आपको हथकड़ी पहनाने का इन्तजाम किया जाने लगा, तो आपने कहा कि क्या जरूरत है। आप मुझे रास्ता बताते जाओ, मैं स्वयं ही उधर चल पड़ता हूं। अर्थी का जुलूस निकाला गया और बड़े जोश से अन्तिम संस्कार किया गया। वहीं यादगार

बनाने की सलाह की जा रही है।

शहीद राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी का पत्र

(उस समय काकोरी के शहीदों के चारों ओर चर्चे थे। भगतसिंह काकोरी के शहीद राजिन्द्र लाहिड़ी से इतने प्रभावित हुए कि अपने सगे छोटे भाई, जिसका जन्म १९२७ में हुआ, का नाम राजिन्द्र रखा। कारण यह है कि वह वैचारिक स्तर पर अपने दूसरे साथियों से आगे थे। समाजवाद, साम्यवाद से वे काफी परिचित थे। यह पत्र उनकी टिप्पणी सहित अक्तूबर १९२७ 'किरती' में छपा—**सम्पादक**)

मैं फिर जन्म लूंगा

काकोरी षड्यन्त्र केस में जिन चार भाइयों को फांसी की सज़ा हुई है उनके नाम ये हैं—१. रामप्रसाद २. राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी ३. रोशन सिंह ४. अशफाकउल्ला खां।

इसमें से राजिन्द्रनाथ लाहिड़ी एम०ए० कक्षा का छात्र था। वह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता था। सन् १९२५ में पकड़ा गया था। इसकी अपील व रहम की दरखास्त की गयी थी, लेकिन वह सब नामंज़ूर हो गयी। इस बहादुर भाई ने निम्न पत्र अपने बड़े भाई को लिखा है।

मेरे प्रिय भाई!

आज मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने बताया कि वाइसराय ने मेरी रहम की दरख्वास्त नामंजूर कर दी है। जेल के नियमों के अनुसार मुझे एक सप्ताह के भीतर फाँसी पर चढाया जायेगा। तुम्हें मेरे लिए अफसोस नहीं करना चाहिए, क्योंकि मैं अपना पुराना शरीर छोड़कर, नया जन्म धारण कर रहा हूं। आपको यहां आकर मुलाकात करने की जरूरत नहीं, क्योंकि कुछ दिन पहले ही आप मुलाकात कर चुके हो। जब मैं लखनऊ में था, तो बहिन ने दो बार मुलाकात की थी। सभी को मेरी ओर से प्रणाम और लड़कों को प्यार।

आपका

राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी

श्री रोशनसिंह जी

आपको १९ दिसम्बर को इलाहाबाद में फांसी दी गयी। उनका एक आखिरी पत्र १३ दिसम्बर का लिखा हुआ है। आप लिखते हैं—

इस हफ्ते फांसी हो जायेगी। ईश्वर के आगे विनती है कि आपके प्रेम का आपको फल दे। आप मेरे लिए कोई गम न करना। मेरी मौत तो

खुशीवाली है। चाहिए तो यह कि कोई बदफैली करके बदनाम होकर न मरे और अन्त समय ईश्वर याद रहे। सो यही दो बातें हैं। इसलिए कोई गम नहीं करना चाहिए। दो साल बाल-बच्चों से अलग रहा हूं। ईश्वर-भजन का खूब अवसर मिला। इसलिए मोह माया सब टूट गयी। अब कोई चाह बाकी न रही। मुझे विश्वास है कि जीवन की दु:ख भरी यात्रा खत्म करके, सुख के स्थान पर जा रहा हूं। शास्त्रों में लिखा है—युद्ध में मरने वालों की ऋषियों जैसी राहत (श्रेणी) होती है (आगे अस्पष्ट है)

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली को जानिए 'रोशन'!
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

आखिरी नमस्कार!

श्री रोशनसिंह रायबरेली के काम करने वालों में थे। किसान आन्दोलन में जेल जा चुके थे। सब को विश्वास था कि हाईकोर्ट से आपकी मौत की सजा टूट जायेगी, क्योंकि आपके खिलाफ कुछ भी नहीं था। लेकिन फिर भी वे अंग्रेजशाही का शिकार हो ही गये और फांसी पर लटका दिये गये। तख्ते पर खड़े होने के बाद आपके मुंह से जो आवाज निकली वह थी-

वन्दे मातरम्!

आपकी अर्थी के जुलूस की इजाजत नहीं दी गयी। लाश की फोटो लेकर, दोपहर में आपका दाह संस्कार कर दिया गया।

श्री रामप्रसाद बिस्मिल

श्री रामप्रसाद बिस्मिल बड़े होनहार नौजवान थे। गजब के शायर थे। देखने में भी बहुत सुन्दर थे। योग्य बहुत थे। जानने वाले कहते हैं कि यदि किसी और जगह या किसी और देश या किसी और समय पैदा हुए होते तो सेनाध्यक्ष बनते। आपको पूरे षड्यन्त्र का नेता माना गया है। चाहे बहुत पढ़े हुए नहीं थे, लेकिन फिर भी पण्डित जगतनारायण जैसे सरकारी वकील की सुध-बुध भुला देते थे। चीफ कोर्ट में अपनी अपील खुद ही लिखी थी जिसमें कि जजों को कहना पड़ा कि इसे लिखने में जरूर ही किसी बुद्धिमान् व योग्य व्यक्ति का हाथ है।

१९ तारीख की शाम को आपको फांसी दी गयी। १८ की शाम को जब आपको दूध दिया गया, तो आपने यह कहकर इन्कार कर दिया कि अब तो मां का दूध ही पीऊंगा। १८ को आपकी मुलाकात हुई। मां को मिलते समय आपकी आंखों से अश्रु बह चले। **मां बहुत हिम्मत वाली देवी थी। आपसे कहने लगी हरिश्चन्द्र, दधीचि आदि बुजुर्गों**

की तरह वीरता, धर्म व देश के लिए जान दे, चिन्ता करने और पछताने की जरूरत नहीं। आप हंस पड़े। कहा मां! मुझे क्या चिन्ता और क्या पछतावा मैंने कोई पाप नहीं किया। मैं मौत से नहीं डरता। लेकिन मां! आग के पास रखा घी पिघल जाता है। तेरा मेरा सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है कि पास होते ही आंखों में अश्रु उमड़ पड़े। नहीं तो मैं बहुत खुश हूं। फांसी पर ले जाते समय आपने बड़े जोर से कहा–'वन्दे मातरम्' 'भारत माता की जय' और शान्ति से चलते हुए कहा–

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू रहे
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरज़ू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही ज़िक्र यार तेरी जुस्तजू रहे।

फांसी के तख्ते पर खड़े हो कर आपने कहा –

(मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन चाहता हूं।)

फिर यह शेर पढ़ा–

अब न अगले बलबले हैं और न अरमानों की भीड़ ।
एक मिट जाने की हसरत, अब दिले बिस्मिल में है ॥

फिर ईश्वर के आगे प्रार्थना की और फिर मन्त्र पढ़ना शुरू किया। रस्सी खींची गयी। रामप्रसाद जी फांसी पर लटक गये। आज वह वीर इस संसार में नहीं है। उसे अंग्रेजी सरकार ने अपना खौफनाक दुश्मन समझा। आम ख्याल यह है कि उसका कसूर यही था कि वह इस गुलाम देश में जन्म लेकर भी एक बड़ा भारी बोझ बन गया था और लड़ाई की विद्या से खूब परिचत था। आपको मैनपुरी षड्यन्त्र में नेता श्री गेंदालाल दीक्षित जैसे शूरवीर ने विशेष तौर पर शिक्षा देकर तैयार किया था। मैनपुरी के मुकदमे के समय आप भागकर नेपाल चले गये थे। अब वही शिक्षा आपकी मृत्यु का कारण हो गयी। ७ बजे आपकी लाश मिली और बड़ा भारी जुलूस निकला। स्वदेश-प्रेम में आपकी माता ने कहा–

मैं अपने पुत्र की इस मृत्यु पर प्रसन्न हूं, दुःखी नहीं। मैं श्री रामचन्द्र जैसा ही पुत्र चाहती थी। बोलो श्री रामचन्द्र की जय।

इत्र फुलेल और फूलों की वर्षा के बीच उनकी लाश का जुलूस जा रहा था। दुकानदारों ने उनके ऊपर से पैसे फेंके। ११ बजे आपकी लाश श्मशान भूमि में पहुंची और अन्तिम क्रिया समाप्त हुई।

आपके पत्र का आख़िरी हिस्सा आपकी सेवा में प्रस्तुत है–

मैं खूब सुखी हूं। १९ तारीख़ को प्रातः जो होना है उसके लिए तैयार हूं। परमात्मा काफी शक्ति देंगे। मेरा विश्वास है कि मैं लोगों की सेवा के लिए फिर जल्द ही जन्म लूंगा। सभी से मेरा नमस्कार कहें। दया कर इतना काम और भी करना कि मेरी ओर से पण्डित जगतनारायण (सरकारी वकील, जिसने इन्हें फांसी लगवाने के लिए बहुत जोर लगाया था।) को अन्तिम नमस्कार कह देना। उन्हें हमारे खून से लथ-पथ रुपयों से चैन की नींद आये। बुढ़ापे में ईश्वर उन्हें सद्बुद्धि दे।

रामप्रसाद जी की सारी हसरतें दिल ही दिल में रह गयी। फांसी से दो दिन पहले से सी०आई०डी० के मि० हैमिल्टन आप लोगों की मिन्नतें करते रहे कि आप मौखिक रूप से सब बातें बता दो, आपको पांच हजार रुपये नकद दे दिया जायेगा और सरकारी खर्चे पर विलायत भेजकर बैरिस्टर की पढ़ाई करवाई जायेगी। लेकिन आप कब इन बातों की परवाह करते थे। आप हकूमतों को ठुकराने वाले व कभी कभार जन्म लेने वाले वीरों में से थे। मुकदमे के दिनों में आपसे जज ने पूछा था, आपके पास क्या डिग्री है? तो आपने हंस कर जवाब दिया था, सम्राट् बनने वालों को डिग्री की कोई जरूरत नहीं होती। क्लाइव के पास भी कोई डिग्री नहीं थी। आज हमारे बीच नहीं है। आह !!"

श्री अशफ़ाकउल्ला

"यह मस्ताना शायर भी हैरान करने वाली खुशी से (१९.१२.१९२७ को) फांसी चढ़ा। बड़ा सुन्दर और लम्बा चौड़ा जवान था, तगड़ा बहुत था। जेल में कुछ कमजोर हो गया था। आपने मुलाकात के समय बताया कि कमजोर होने का कारण गम नहीं, बल्कि खुदा की याद में मस्त रहने की खातिर रोटी बहुत कम खाना है। फांसी से एक दिन पहले आपकी मुलाकात हुई। आप खूब सजे-संवरे थे। बड़े-बड़े कढ़े हुए केश खूब सजते थे। बड़ी हंस-हंस कर बातें करते रहे। आपने कहा कल मेरी शादी होने वाली है। दूसरे दिन सुबह छह बजे आपको फांसी दी गयी। कुरान शरीफ का बस्ता लटकाकर हाजियों की तरह बजीफा पढ़ते हुए, बड़े हौंसले से चल पड़े। आगे जाकर तख्ते पर रस्सी को चूम लिया। वहीं आपने कहा-

मैंने कभी किसी आदमी के खून से अपने हाथ नहीं रंगे और मेरा इन्साफ खुदा के सामने होगा। मेरे ऊपर लगाये गये इल्जाम गलत हैं। खुदा का नाम लेते ही रस्सी खींची गयी और वे कूच कर गये। उनके

रिश्तेदारों ने बड़ी मिन्नतों-खुशामदों से उनकी लाश ली और उन्हें शाहजहांपुर ले आये। लखनऊ स्टेशन पर मालगाड़ी के एक डिब्बे में उनकी लाश देखने का अवसर कुछ लोगों को मिला। फांसी के दस घण्टे बाद भी चेहरे पर वैसी ही रौनक थी। ऐसा लगता था कि अभी ही सोये हों। लेकिन अशफाक तो ऐसी नींद में सो गये थे कि जहां से वे कभी नहीं जागेंगे। अशफाक शायर थे और उनका शायर हसरत था। मरने से पहले आपने ये दो शेर कहे थे-

फनाह है हम सब के लिए हम पै कुछ नहीं मौकूफ़!
वका है एक फ़कत जाने की ब्रिया के लिए।

(नष्ट तो सभी होंगे, कोई हम अकेले थोड़े होंगे। न मरने वाला तो सिर्फ एक परमात्मा है।) और

तंग आकर हम उनके जुलम से बेदाद से ।
चल दिये सूए अदम जिन्दाने फ़ैज़ाबाद से ॥

श्री अशफाक की ओर से एक माफीनामा छपा था, उसके सम्बन्ध में श्री रामप्रसाद जी ने अपने आखिरी एलान में पोजीशन साफ कर दी है। आपने कहा कि अशफाक माफीनामा तो क्या, अपील के लिए भी राजी नहीं थे। आपने कहा था मैं खुदा के सिवाय किसी के आगे झुकना नहीं चाहता। परन्तु रामप्रसाद के कहने-सुनने से आपने वही सब कुछ लिखा था। वरना मौत का उन्हें कोई डर या भय नहीं था। उपर्युक्त हाल पढ़कर पाठक भी यह बात समझ सकते हैं। आप शाहजहांपुर के रहने वाले थे और आप श्री रामप्रसाद के दायें हाथ थे। मुसलमान होने के बावजूद आपका कट्टर आर्यसमाजी धर्म से हद दर्जे का प्रेम था। दोनों प्रेमी एक बड़े काम के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर, अमर हो गये।"

श्री अशफ़ाकउल्ला ख़ां

(क्रान्तिकारी पं० रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित)

"मैंने इस (काकोरी काण्ड) अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी जिन्दगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उनमें से ज्यादा हिस्सा श्रीयुत अशफाकउल्ला खां वारसी का है। मैं अपनी कलम से उनके लिए भी अन्तिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

मुझे भली-भांति याद है, जब कि मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहांपुर आया था तो तुम से स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुम ने मुझसे मैनपुरी षड्यन्त्र के

सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुम ने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका, कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ, तुम सच्चे मित्र बन गये। सब को आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा विश्वास था, किन्तु तुम इन बातों की किञ्चित्मना चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हारे मुसलमान होने के कारण कुछ घृणा की दृष्टि से देखते थे किन्तु तुम अपने निश्चय में दृढ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में आते-जाते थे। हिन्दु मुस्लिम झगड़ा होने पर तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई खुल्लमखुल्ला गालियां देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश भक्त थे। **तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर के हिन्दुस्तान की भलाई करते।** जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें? तुम ने स्वदेश भक्ति से भावों को भली भांति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माता जी तथा भ्राता जी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुंह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे जिससे सब को आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति देख कर बहुतों को सन्देह होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो, पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था। फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्रमण्डली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना।

तुम्हारी जीत हुई, मुझ में तुम में कोई भेद न था। बहुधा मैंने व तुम ने एक थाली में भोजन किया। मेरे हृदय में यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दु मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हां तुम मेरा नाम लेकर नहीं पुकारते थे। तुम सदैव राम कहा करते थे। एक समय जब तुम्हें हृदय कम्पन्न का दौरा हुआ, तुम अचेत थे। तुम्हारे मुंह से बार बार 'राम', 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े भाई बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम-राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह-अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी। उसी समय किसी मित्र का आगमन हुआ जो राम के भेद को जानते थे। तुरन्त मैं बुलाया गया। मुझ से मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब लोग 'राम! राम!' के भेद को समझे!

अन्त में इस प्रेम प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी एक कट्टर क्रान्तिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि जिस प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों में भी क्रान्तिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दें। जितने तुम्हारे बन्धु तथा मित्र थे, सब पर तुम ने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया, बहुधा क्रान्तिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने एक मुसलमान को क्रान्तिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये वे सराहनीय हैं। तुम ने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है, तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाकउल्ला ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ रहे। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सब के परिणामस्वरूप अदालत में तुम को मेरा सहकार (लेफ्टीनेण्ट) ठहराया गया और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाल (फांसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई ! तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता पिता की धन सम्पति को देश सेवा में अर्पण कर के उन्हें भिखारी बना दिया। जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य

को भी देश की सेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन मन धन सर्वस्व मातृ सेवा में अर्पण करके अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।

असगर हरीम इश्क में हस्ती है जुर्म है ।
रखना कभी न पांव यहां सर लिये हुए ॥

श्री अशफ़ाकउल्ला ख़ां तो अंग्रेज़ी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे । उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबंद करीम के अलावा किसी दूसरे से दया की प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूँ, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफ़ाकउल्ला ख़ां को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी या नहीं । खैर! परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएं उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धद्मरण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जाएं।" (आत्मकथा से)

जेल से अशफ़ाक के अन्तिम पत्र और सन्देश

माता के नाम पत्र

डिस्ट्रिक्ट जेल,
लखनऊ

जनाब वालिदा साहिबा,

बाद अदब ये गुजारिश खिदमते बाबरकत है कि बंदा खैरियत से है और सेहनबरी मिजाज़े आँजनाब नेक मतलूब ४ जून को मुकदमे की सुनवाई खत्म हो गई और असेसरान की राय भी ले ली गई। यह सुनकर आपको दु:ख होगा कि माअज्जज हिन्दुस्तानी अससेरान ने क्या राय दी। मैं आपको हरगिज न लिखता, मगर मैं इसको अपना फर्ज (कर्तव्य) खयाल करता हूँ कि अपने मुकदमे के हालात से आपको काफी तौर से

आग्रह कर दूँ। यह तो आप जानती ही हैं कि चार असेसरों में से एक का इंतकाल हो गया था और तीन बाकी रह गए थे, जिनमें एक खुदातरस (ईश्वर से डरनेवाला) बूढ़े ने हम दोनों को बिलकुल बेकसूर कहा और दो ने न सिर्फ खुफिया साजिश करने वाला ही कहा बल्कि डाकू भी कहा। खैर इसका अफसोस मुझे तो कुछ भी नहीं, आप करें तो करें। यह हिन्दुस्तानी ही तो हैं, जो हम पर जुल्म कर रहे हैं। और वह भी हिन्दुस्तानी ही तो थे, जिन्होंने मुझको इस मुकदमे में ख्वाहमख्वाह (फिजूल) घसीटा। अगर अंग्रेज आज मेरे खिलाफ हों और मुझ पर ज्यादती करें हक बजानिब है, क्योंकि अपने मुल्क को फायदा वह इसी हालत में पहुँचा सकते हैं कि हम पर हुकूमत करें मगर तआज्जुब तो इन हिन्दुस्तानियों पर है जो इस तरह ख्वाहमख्वाह बगैर वह यह नहीं जानते कि हकीकतन उनकी क्या इज्जत अंग्रेज कौम के दिल में है। अंग्रेज किसी भी ऐसे इंसानों को पसन्द नहीं करते जो काम निकालने की खातिर उनकी पीठ ठोंक दिया करते हैं। खैर, मुझे इस मसले पर बहस नहीं करना है। मुझे तो आपको समझाना है। आपसे इस बात के लिए कहना है कि जो आप जैसी जईफ के लिए न सिर्फ बेजा बल्कि जुर्म होगा। यानी सबारोसुकून (शान्ति और धैर्य) के बारे में। बजाहिर सब्र तल्खा मालूम होता है मगर बाद को मीठा फल लाता है। मैं बचपन से आपकी सब्र आजमा तबीयत देखता चला आ रहा हूँ और आपको एक साबिर और राजीबरजाए मौला (ईश्वर की इच्छा पर राजी) पाया। यूं ही मैं आप पाक खुदा के नाम पर आपसे सब के लिए अपील करूँगा। आपकी उम्र का आखिर हिस्सा निहायत अफसोसनाक और तकलीफ से भरा हुआ है। मगर यह सब महज इस वजह से कि खुदा का हुक्म यही है। आराम व राहत, तकलीफ व मसाइब (मुसीबतें) सब उसके हुक्म के ताबे हैं। तारीखे मजहबी पर एक सरसरी नजर डालिए। अच्छा वाका ए-करबला को ही लीजिए। क्या किसी मजहब की ऐसी दर्दनाक और खूनी तारीख मिलेगी कि ख्वातीन (महिलाएँ) खानदाने नबी को अपने बच्चों और घर वालों के जनाजे देखना पड़े। क्या उनकी दानिस्त और इल्म में नेजों, तलवारों और तीरों का निशाना न बनाए गए। सब कुछ हुआ और क्यों? महज इसलिए कि आइंदा जब किसी पर दु:ख और तकलीफ आये, वह इस मिसाल को अपने सामने रखे और सब्र करे। आपको इस किस्म की मिसालें देना, मेरी हिमाकत होगी, क्योंकि बफजले तआला आप मुझसे ज्यादा लायक और वाकिफ हैं। मैं इसे

अब मजाक समझता हूँ कि लिखूँ कि मैं बेकसूर हूँ क्योंकि मेरा सब से बड़ा कसूर यह है यह था कि मैं मोटा ताजा हूँ और मिस्टर खैरात नबी की बहस मुताबिक मुझ को बड़ा मुजरिम होना चाहिए। वह मसखरापन कोर्ट में हुआ कि खुदा की पनाह। मुझे तो न पहले उम्मीद थी न अब है। मगर भाई साहब और लल्लू भैया के कहने के मुताबिक सफाई वगैरह पेश कर दी और चाराजोई की। खैर! अब सुनिए, आपको मालूम हो जाना चाहिए कि खैरात नबी ने साफ अलफाज में कह किया कि इंतहाई सजा मिलेगी (यानी सजाए-मौत) मेरे लिए तो यह बड़े मजे की बात है। मेरे लिए इससे ज्यादा फख्र (गौरव) की बात कौन सी हो सकती है। मेरी माँ से बढ़कर मेरे खानदान में कौन-सी माँ हो सकती है, जिसका बेटा जमाँमर्दी और बहादुरी से, इस्तकामत (साहस और दृढता) व इस्तकलाल (पक्के और सत्यविचार) से रास्तबाजी(सत्यता) के साथ, मासूमियत का जामा पहने हुए, कुर्बानगाहे वतन पर कुरबान हो जाए। मेरे सुकून व इत्मीनान यूँ है कि मैं अपने को मासूम (निरपराध) समझता हूँ और आपके भी सब्र के लिए यह काफी है कि आपका मासूम लड़का एक ऐसे मकसद की खातिर जान से जाएगा, जो बड़ा ऊँचा और नेक व पाक है। (जेल से आए इस पत्र में इस स्थान पर दो लाइनें काट दी गई जो पढ़ने में नहीं आती हैं। -लेखक)

इन इलजामात (अभियोग) जो मुझ पर लगाए गए हैं मैं कभी भी इसके लिए तैयार नहीं हूँ। हाँ, एक हिन्दुस्तानी होने की वजह से अगर यह तमाम बातें हैं तो खैर दुनियाबी बादशाहतें खत्म हो जाएँगी। किब्रो गरूर (बड़प्पन और घमण्ड) मिट्टी में मिल जाएगा। शौकत और हशमत (ठाठ बाट) का कहीं पता भी नहीं होगा, मगर हाँ खुदाबंद कुद्दूस (पवित्र ईश्वर) के दरबार में वाकियात असली रोशनी में होंगे और हाकिम हकीकी जिसने मूसा और फिरऔन का फैसला किया था। मेरा भी करेगा। चंद रोज जिन्दगी पर खुश होने वाले इन्सान जुल्मोत अद्दी (बड़ी जुल्म ढाने वाले) करने वाले सी०आई०डी० के लोग उस दिन मालूम करेंगे कि वे किसके सामने जवाबदेह है। आप खुदा पर शाकिर रहिए। सब्र कीजिए और मेरे लिए दुआ फरमाइए और अगर उसको मुझे शहादत की इज्जत देना मकसूद है तो अजमो इस्तकलाल जुरअत (हिम्मत) व हिम्मत भी अता करे और इम्तिहान के दिन मुझे बहादुर बनाए। आप कभी अफसोस न करें कि मैंने ऐनुद्दीन साहब और तसद्दुक साहब के कहने पर अमल नहीं किया। क्या वह इस बात की गारंटी कर सकते थे कि मैं कभी न मरूँगा। नहीं, मौत व जिन्दगी खुदावंदे करीम के हाथ में

है और दुनियावी ताकतों से बालातर एक ताकत है जो निजामे-आलम (संसार का प्रबन्ध) को संभाले हुए है।

मौत और जिन्दगी का साथ है, जो दुनिया में आया है, वह एक रोज जरूर मरेगा। फिर एक ऐसी चीज से, जिसका आना लाजिमी है, जरूरी है, गम करना या खौफ खाना फिजूल व अबस है। मैं अप्रूवर हो सकता था, मैं इकबाली बन सकता था, मगर दूसरों की जान फँसाने के लिए ,अपनी जिन्दगी बचाने के लिए। वह इन्सान जो अपनी जिन्दगी की खातिर कमीनी हरकत करता है, क्या वह आनेवाली नसलों के लिए बाइसे नाज (गौरव के योग्य) हो सकता है, नहीं, कभी नहीं।

मुझे इत्मीनान है, मुझे खुशी है कि आने वाली नस्ल मुझ को डरपोक और कमीना न कहेगी, बल्कि सच्चा और बहादुर कहेगी। दुनियां महज इसी पर मरती है कि मरने के बाद उसको बुरे अलफाज से न याद किया जाए। मसजिदें, तालाब, मदरसा, कुएँ बनाकर छोड़ जाते हैं ताकि बाद को याद रखें जाएँ। मेरी मासूमियत भी कभी फरामोश (भुलाई) नहीं की जा सकती। बस मुझे कुछ लिखना नहीं। आपको फख्र करना चाहिए कि आपका बच्चा बहादुरी की मौत मरेगा। अगर मौत से मुकाबला करना पड़े, तो आपको भी एक बहादुर माँ साबित करना होगा। क्या आपकी रगों में खालिस अफगानी खून नहीं है। क्या आप मेरी माँ नहीं है। आप पठान हैं, आप मेरी माँ है। यह आपके ही दूध का असर है जो मैं इंतहाई खौफनाक बातों पर भी हँस देता हूँ। आप मुझ से मिलने को आएँगी, बूलू भाभी आएँगी, मगर बहादुर बनकर आएँ, जैसी पहले बनकर आई थीं। मुझ को बहादुर बनाकर वापस जाएँगी। मैं आपसे एक बार मिलकर जबानी बातचीत करना चाहता हूँ। क्या मौत से पहले खुदा के हुक्म बिना मुझ को कोई मार सकता है या तकलीफ में डाल सकता है। नहीं, कभी भी नहीं। फिर जो कुछ है सब मिनजानिब अल्लाह है। इस पर सब्र करना शाने बंदगी है। चंद-बंद किसी के याद आ गए, लिखे देता हूँ। उनको पढ़ लीजिए। लल्लू भैया जब इतवार को आएँ, तो महबूब से मिलते आएं। अगर वह आएँ तो हमराह लेते आएँ और बिस्तरबन्द भी जरूर लाएँ ताकि सामान व बिस्तर वगैरह बाँधकर दे दूँ बिस्तरबंद भले नहीं।

है अर्ज़ आज मादरे नाशाद के हुज़ूर,
मायूस क्यों है आप अलम का है क्यों वफ़ूर ।
सदमा यह शाक आलमे पीरी में है ज़रूर,
लेकिन न दिल से कीजिए सबरो करार दूर ।

शायद खिज़ा[१] से शक्ल अयाँ[२] हो बहार की,
कुछ मसलहत[३] इसी में हो परवरदिगार[४] की ।
यह जाल से फरेब ये साजिश[५] यह शोरो शार[६],
होना जो है सब उसके बहाने हैं सर बसर[७]।
असबाब ज़ाहिरी हैं न उन पर करो नजर,
क्या जाने क्या हो परदये कुदरत से जलवागर[८]।
खास उसकी मसलहत कोई पहचानता नहीं,
मंज़ूर क्या उसे है? कोई जानता नहीं ।
राहत हो रंज हो कि खुशी हो कि इंतशार[९],
वाजिब हर एक रंग में है शुकरे मिर्दगार[१०] ।
तुम ही नहीं हो कुश्तए नेरंगे[११] रोज़गार,
मातम कदे[१२] में दहर के लाखों है सोगवार[१३] ।
सख्ती सही नहीं इक उठाई कड़ी नहीं,
दुनिया में क्या किसी पे मुसीबत पड़ी नहीं ।
देखे हैं इससे बढ़के ज़माने ने इन्कलाब,
जिनसे कि बेगुनाहों की उमरें हुईं खराब ।
सोज़े दरूँ[१४] से कलबो जिगर हो एक कबाब,
पीरी मिटी किसी की किसी का मिटा शबाब[१५] ।
कुछ बन नहीं पड़ा जो नसीबे बिगड़ गए,
वह बिजलियां गिरीं कि भरे घर उजड़ गए ।
पड़ता है जिस गरीब पै रंजो महन[१६] का वार,
करता है उनको सब्र अता आप किर्दगार[१७]।
मासूस होके होते हैं इन्सां गुनाहगार,
यह जानते नहीं, वह दानाए रोज़गार[१८]।
इन्सान उसकी राह में साबित कदम रहे,
मरदन वही है अमरीरज़ा[१९] में जो खम रहे ।

---

१. पतझर २. प्रकट ३. भेद, कारण ४. ईश्वर ५. षड्यन्त्र ६. फसाद-झगड़ा ७. प्रत्यक्ष ८. प्रकाशित ९. बेचैनी १०. ईश्वर ११. जमाने की मारी हुई, सताई हुई १२. दु:ख का स्थान १३. दु:खी १४. आन्तरिक पीड़ा १५.जवानी १६. शोक १७. ईश्वर १८. काम, कारोबार १९. ईश्वर के समक्ष झुकी रहे ।

इन अशआर को जो किसी शाइर ने लिखे हैं, पढ़िए और खुदा से मदद मांगिए। आप कभी भी यह ख्याल न कीजिए कि आप नुकसान में हैं। यहां पर मुझे एक किस्सा याद आ गया। इंग्लैण्ड के एक बड़े शख्स हिन्दुस्तान आए। वह अपनी बीबी के हमराह आगरे गए। जब ताजमहल में पहुंचे तो उनकी बीबी ने कहा कि अगर कोई वायदा करे कि मेरे मरने के बाद ऐसी आलीशान इमारत जैसा यह ताजमहल है बनाकर मुझे दफन करेगा तो मैं इसी वक्त अपने गोली मारने को तैयार हूँ। यह बात उस औरत ने कैसे कही? महज इस वजह से कि मरने के बाद वह ख्वाहिशमंद थी कि याद की जाए। हर शख्स की ख्वाहिश होती है कि मर जाने के बाद लोग उसको भूलें नहीं, और याद करें। मैं भी फख्र करता हूं कि ख्वाह मैं इस लायक था या न था, मगर लोग मुझ को समझते हैं और हरगिज फरामोश (न भूलेंगे) न करेंगे। मैं सी०आई०डी० का मशकूर हूँ कि उसने हमेशा की जिन्दगी दे दी, मेरे खानदान को फख्र करना चाहिए। जो मैं हूँ, वह मैं खुद जानता हूं, और सी०आई०डी० भी खूब जानती है। खैर, अब खत्म करता हूं। खुदा आपको सब्र अता फरमाए और मुझ को इस्तकलाल (साहस) दे। भाई साहब, अब्दुल कादिर दादा, बूलू-भाभी, दिल्ली वाली भाभी, शहादत भाई की दुल्हन को सलाम। रजी, अनीसा, खलील, रुकैया, सुल्ताना, माहजबीन, सब को दुआ व प्यार।

(अशफ़ाक उल्ला खां)

भारत की जनता के नाम सन्देश

देश के सशस्त्र क्रान्ति के प्रयास में अपने जीवन की आहुति देनेवाले अशफाकउल्ला खां ने जब क्रान्तिकारी आन्दोलन में प्रवेश किया तो वे छात्र ही थे। फाँसी पर जाते समय उनकी उम्र कुल जमा सत्ताईस वर्ष की थी। अपने पाँच-सात साल के क्रान्तिकारी जीवन में उन्होंने देश की नब्ज को भली भांति पहचान लिया था। वे क्रान्तिकारी दल के सिपाही ही नहीं अपने समय के क्रान्तिकारियों में प्रखर चिन्तक के रूप में भी हमारे सामने आते हैं। सक्रिय क्रान्तिकारी गतिविधियाँ फरारी जीवन और उसके बाद जेल की जिन्दगी में उन्हें इतना समय ही नहीं मिला कि वह अपने विचारों और अनुभवों को पूरी तरह लिपिबद्ध करते। तन्हाई के दिनों में उन्होंने जो लिखा वह बहुत संक्षिप्त है। उसे पढ़कर लगता है कि वे चाहते हुए भी अपने सोचे हुए को कलम की नोक पर उतार नहीं सके। वे बच्चों के लिए एक पुस्तक की रचना चाहते थे पर उनकी वह इच्छा भी अधूरी रह गई। हम उनके लिखे पत्रों कविताओं और डायरी

के कुछ अंशों से ही उनके जीवन और संघर्ष को जानने का प्रयास कर सकते हैं।

हिन्दु-मुस्लिम एकता और देश की स्वतन्त्रता के लिए शहीद होने वाले अशफाक उल्ला ने मरने से पहले अपनी डायरी में पन्नों पर हिन्दुस्तान का एक खुबसूरत नक्शा भी बनाया था और जिसे शक्ल देते समय वे फांसी घर में कई बार रोए थे फूट-फूटकर। मैंने देखा कि उन पन्नों पर शहीद के आसुओं के निशान आज भी ज्यों के त्यों है। कब्र के किनारे से देशवासियों के नाम भेजा गया उनका सन्देश आज भी उतना प्रासंगिक है जितना तब था। जहां कहीं कभी भी देश में साम्प्रदायिक कटुता का वातावरण बनता है लोग हिन्दू, मुसलमान या किसी भी दूसरे धर्म के नाम पर मारे जाने लगते हैं और वह आग फैलते-फैलते जब लोगों के घरों और पूरे समाज को अपनी लपटों में जलाने लगती है तो हमें बार बार अशफाक के कहे वे शब्द याद आते हैं–

न कोई इंगलिश न कोई जर्मन न कोई रशियन न कोई तुर्की ।
मिटानेवाले हैं अपने ही हिन्दी जो आज हम को मिटा रहे हैं ॥

कुछ लोग आज भी इस बात को सिद्ध करने की नाकामयाब कोशिश करते हैं और इतिहास में दर्ज करने का प्रयास भी कर रहे हैं कि क्रान्तिकारियों के पास देश के लिए कोई स्पष्ट विचार नहीं था, सिवा इसके कि उन्हें राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी थी। ऐसे लोग बिना किसी जानकारी के गैर जिम्मेदाराना वक्तव्य देकर नई पीढ़ी को गुमराह कर रहे हैं। अपने सन्देश में बहुत साफतौर पर अशफाक ने कहा कि वे किस तरह की आजादी चाहते थे। उनके भारत की कल्पना समाजवादी थी जहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं होगा। ऐसे भारत के निर्माण के लिए उन्होंने किसानों और मजदूरों की तरक्की की बात कही और यह भी कहा कि हमारा उद्देश्य तभी पूरा होगा जब कारखानों और गांवों में जाकर लोगों के बीच काम किया जाएगा। अशफाक जानते हैं कि शोषण किस तरह हो रहा है और कौन कर रहा है। उन्हें अपने दुश्मनों की पहचान है। वे कहते हैं, लुटेरा लूट से, जालिम जुल्म से अपना पेट पालते हैं, वकील मुवक्किलों से, जमींदार काश्तकारों से, सरमायादार मजदूरों से जोंक की तरह चिपटकर उनका खून चूसते हैं, और कमजोर हैं इसलिए लुट जाते हैं। इसका खात्मा करना निहायत जरूरी है और उसके खिलाफ जंग फर्ज है।

इस अन्याय और शोषण के विरुद्ध अशफाक लोगों में जागृति पैदा करने की जरूरत बताते हैं। कम्युनिस्ट ग्रुप से किया गया उनका निवेदन भी गौरतलब है। दूसरी ओर वे अपने इन विचारों के लिए कम्युनिस्ट कहे जाने की भी चिन्ता नहीं करते। ऐसा सोचनेवाले वह पहले भारतीय क्रान्तिकारी हैं। देशवासियों के नाम भेजे गए सन्देश में उन्होंने लिखा है–

बिरादराने (वतनी भाई) वतन की खिदमत में उनके भाई का सलाम पहुँचे जो उनकी इज्जत वा नामूसे वतन की खातिर फैजाबाद जेल में कुर्बान हो गया। आज जबकि मैं यह पैगाम (सन्देश) बिरादराने वतन को भेज रहा हूँ इसके बाद मुझ को तीन दिन और चार रातें और गुजारनी हैं और फिर मैं हूँगा और आगोशे (गोद) मादरेवतन होगा। हम लोगों पर जो जुर्म लगाए गए थे, वह इस सूरत में पब्लिक में लाए गए कि हम को बहुत से लोगों जो गैर तालीमयाफ्ता (विद्वान्) या हुकूमत के दस्तरख्वान (वह कपड़ा जिसपर खाना रखकर खाते हैं) की पसेखुर्दा (बची हुई) हड्डियां चचोड़नेवाले थे, डाकू, खूनी, कातिल के लकब से पुकारा किए। मैं आज इस फांसी की कोठरी में बैठा हुआ भी खुश हूँ और अपने उन भाइयों का शुक्रिया अदा करता हूँ, और कहूंगा –

मर मिटा आप पै कौन आपने यह भी न सुना।
आपकी जान से दूर आप से शिकवा है मुझे॥

खैर, यह तुम्हारा फैल (कार्यकलाप) है कि हमारी कुर्बानियों को कबूल न करो और यह हमारा फर्ज है कि तुम बार-बार ठुकराओ, मगर हम तुम्हारा ही दम भरे जाएँगे। बिरादराने वतन मैं उसी पाक व मुकद्दस (पवित्र) वतन ही की कसम खाकर कहूँगा कि हम नंगे नामूसेवतन (वतन की इज्जत) पर कुर्बान हो गए। क्या यह शर्म की बात नहीं थी कि हम अपनी आँखों से देखते कि नित नए मुजालिम (अत्याचार) हो रहे हैं और गरीब हिन्दुस्तानी हर हिस्सायेमुल्क (देश के भाग) और खित्तयेदुनिया (संसार के टुकड़े) में जलील और रुस्वा (अपमानित) हो रहे हैं और कहीं न ठिकाना है, न सहारा। किस्सा मुख्तसर ये कि हमारा वतन भी हमारा नहीं। हम पर टैक्स की भरमार, हमारी माली हालत का राजबराज गिरते जाना। ३३ करोड़ बहादुर हिन्दुस्तानी हिन्दू और मुसलमान भेड़ बकरियों की मानिन्द बनाए गए। हमारे गोरे आका (अंग्रेज मालिक) हमें ठोकरें मार दें तो बाजपुर्स (पूछताछ) न हो। जनरल डायर जलियानवाला बाग को नमूनये हशर (प्रलय का नमूना) बना दे।

हमारी माताओं की बेइज्जती करे। हमारे बूढ़ों और बच्चों पर बम के गोले, गन मशीनों की गोलियां बरसाएँ और हर नया दिन हमारे लिए नई मुसीबतें लेकर आए। फिर भी हम बादये गफलत (लापरवाही) रहे। और एशो इशरत (आराम) में अय्यामे जवानी (जवानी के समय में) गुजार देते। यह ख्याल करके-

जनूने हुब्बे वतन[१] का मज़ा शबाब[२] में है।
लहू में फिर वह रवानी[३] रहे न रहे॥
बहे बरहे फ़ना[४] में जल्द या रब लाश बिस्मिल[५] की।
कि भूखी मछलियां है जौहरे शमशीरे[६] कातिल की॥

जो भी किया, भला किया। आज हम नाकाम (असफल) रहे, डाकू हैं। कामयाब (सफल) होते, मुहिब्बे वतन (देशप्रेमी) के पाक लकब से पुकारे जाते। और जो भी आज हम पर झूठी गवाहियां दे गए, हमारे नाम के जयकारे लगाते।

आह! क्या ऐसे दौर की जिंदगी प्यारी ख्याल की जा सकती है। जब कि हमारे ही गिरोह सियासी (राजनैतिक समूहों में) में खलफिशर (झगड़ा) मचा है। कोई तबलीग (मुसलमान धर्म की दीक्षा देना) का दिलदादा (प्रेमी) है तो कोई शुद्धि पर मर मिटने को बाइसेनिजात (मोक्ष का साधन) समझ रहा है। मुझे तो रह-रह कर इन दिमागों और अक्लों पर तरस आ रहा है जो कि बेहतरीन दिमाग है और माहरीने सियासत (राजनैतिक ज्ञानी) है। काश कि वह आज दिए मिस्र की जद्दोजहद (आन्दोलन) एहरारान (स्वतन्त्रता संग्रामी) मिस्र के कारनामे और बर्तानवी सियासी चालें स्टडी कर ले और फिर हमारे हिन्दुस्तान की मौजूद हालत से मुकाबला व मवाजना (तोलना) करे। क्या ठीक वही हाल इस वक्त नहीं है। गवर्नमेट के खुफिया एजेंट प्रोपेगेंडा मजहबी बुनियाद पर फैला रहे हैं। इन लोगों का मकसद मजहब की हिफाजत या तरक्की नहीं हैं, बल्कि चलती गाड़ी में रोड़ा अटकाना है। मेरे पास वक्त नहीं और न मौका है कि सब कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता, जो मुझे अय्यामे फरारी (फरारी के दिनों) में और उसके बाद मालूम हुआ है। यहां तक मुझे मालूम है कि मौलवी नियामतुल्ला कादियानी कौन था कि काबुल से संगसार (पत्थरों से मारना) किया गया था। वह ब्रिटिश एजेंट था,

---

१. देशप्रेम और पागलपन २. जवानी ३. बहाव ४. मौत ५. मौत का समुद्र ६. तलवार के धार के पानी की मछली।

जिसके पास हमारे करमफरमा खानबहादुर तसद्दुक हुसैन साहब डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट सी०आई०डी० गवर्नमेट आफ इण्डिया पैगाम (सन्देश) लेकर गए थे, मगर बेदारमगज (चतुर) हुकूमत काबुल ने इलाज जल्द कर दिया और मर्ज को फैलने न दिया। मैं अपने हिन्दुओं और मुसलमान भाइयों को बता देना चाहता हूँ कि सब ढोंग है जो सी०आई०डी० के खुफिया खजाने के रुपये से रचा गया है। मैं मर रहा हूँ और वतन पर मर रहा हूँ। मेरा फर्ज है कि हर नेकोबद (भली बुरी) बात भाइयों तक पहुंचा दूँ। मानना न मानना उनका काम है। मुल्क के बड़े-बड़े लोग इससे बचे हुए नहीं हैं। पस अवाम की आँखें खोलकर इत्तबा (पैरवी करना, मानना) करना चाहिए। भाइयो ! तुम्हारी खानाजंगी तुम्हारी आपस की फूट तुम दोनों में से किसी के भी सूदमंद (हानिकारक) साबित न होगी। यह गैरमुमकिन है कि ७ करोड़ मुसलमान शुद्ध हो जाएँ और वैसे ही यह भी महमल (निरर्थक) सी बात है कि २२ करोड़ हिन्दु मुसलमान बना लिये जाएँ, मगर हां ! यह आसान है और बिल्कुल आसान है कि यह सब मिलकर गुलामी का तौक गले (गुलामी की ज़ंजीर) में डाल लें। ऐ वह कौम जिसका कोई कौमी झण्डा नहीं, एक वह कि तेरा वतन मेरा वतन नहीं, ऐ वह कि दूसरों की तरफ हाथ फैलाए हुए रहम की दरख्वास्त पर नजर रखने वाली बेकस कौम (दीनहीन देशवासी) तेरी अपनी गलतियों का यही नतीजा है कि आज तू गुलाम है और फिर वही गलतियां कर रही है कि आनेवाली नस्लों के लिए धब्बा गुलामी का छोड़ जाएगी कि जो भी सर सरजमीने हिन्द (भारत भूमि) पर कदम रखेगा गुलामी में रखेगा और गुलाम बनाएगा। ए खुदावंद कुद्दूस (पवित्रतम ईश्वर) क्या कोई ऐसा सवेरा नहीं आएगा कि जिस सुबह को तेरा आफताब (सूर्य) आजाद हिन्दुस्तान पर चमके और फिजाएं (भारत के वातावरण में) हिन्द आजादी के नारों से गूंज उठें। कांग्रेस वाले हों कि सौराजिस्ट (स्वराज्य प्रचारक), तबलीगवाले हों कि शुद्धिवाले, कम्युनिस्ट हों कि रिवोल्यूशनी, अकाली हो कि बंगाली, मेरा पयाम हर फरजंदेवतन (भारती पुत्रों) को पहुँचे। मैं हर शख्स को उसकी इज्जत व मजहब का वास्ता देता हूँ। अगर वह मजहब का कायल नहीं तो उसके जमीर (आत्मा) को और जिसको भी वह मानता हो अपील करता हूँ कि काकोरी केस के मर जाने वाले नौजवानों पर तरस खाओ। और फिर हिन्दुस्तान को सन् १९२० व १९२१ वाला हिन्दुस्तान बना दो। फिर अहमदाबाद कांग्रेस जैसा इत्तिहा (मेल मिलाप) इत्तिफाक का नजारा (दृश्य) सामने हो।

बल्कि उससे बढ़कर हो और मुकम्मल आजादी का जल्द से जल्द ऐलान करके इन गोरे आकाओं (मालिकों) को हटा कि ये अब केचुली उतार चुके हैं और अब वह किसी मन्त्र से बस में न होंगे, तबलीग (मुसलमान बनानेवालो) व शुद्धिवालो ! खुदारा आंखें खोलो ! कहां थे और कहां पहुंच गए। अपनी-अपनी शान खत्म करो। सोचो तो मजहब में जबरदस्ती इखतिलाफें राय (जबरदस्ती हठ के साथ धर्म के भेदभाव) पर जंग एक काम नामुकम्मल छोड़कर दूसरी तरह रूजू (मुड़ गए) हो गए। आज कौन ऐसा हिन्दू या मुसलमान है जो मजहबी आजादी इतनी रखता है? तुम अपने मजहब का सुधार क्या कर सकते हो? तुम खुदा की इबादत पुरसुकून तरीके (स्वतन्त्रता के साथ ईश्वर उपासना) पर करो। तुम ईश्वर का ध्यान खामोशी से करो और दोनों मिलकर इस सफेद भूत (गोरे भूत) को मन्त्र से जन्त्र से उतार भगाओ। इसी की यह सारी कार्यवाही है। जब यह भूत उतर जाएगा हमारी आंखें खुल जाएंगी। आओ हमारी भी सुनो पहले हिन्दुस्तान को आजाद करो फिर कुछ और सोचना। खुदा ने जिसके लिए जो रास्ता मुतखिब (रास्ते चुनो) कर दिया है वह उसी पर रहेगा। तुम किसी को भी नहीं हटा सकते। आपस में मिल जुलकर रहो और मुत्तहिद (मिल-जुलकर) ही जीओ, नहीं तो सारे हिन्दुस्तान की बदबख्ती (दुर्भाग्य) का वार तुम्हारी गर्दन पर है और गुलामी का बाइस (कारण) तुम हो। कम्युनिस्ट ग्रुप से अशफाक की गुजारिश है कि तुम इस गैरमुल्क की तहरीक (विदेशी तरीकों को) को लेकर जब हिन्दुस्तान में आए हो तो तुम अपने गैरमुल्की की तसव्वुर (विदेशी ही समझते हों) करते हो देसी चीजों से नफरत विदेशी पोशाक और तर्जेम आशरत (रहन-सहन का ढंग) के दिलदाद (आशिक, प्रेमी) हो इससे काम नहीं चलेगा। अपने असली रंग में आ जाओ। देश के लिए जीओ देश के लिए मरो। मैं तुम से काफी तौर पर मुत्तफिक (सहमत) हूं और कहूंगा कि मेरा दिल गरीब किसानों के लिए और दु:खिया मजदूरों के लिए हमेशा दु:खी रहा है। मैं अपने अय्यामे फरारी (फरारी के दिन में) में भी अक्सर इनकी हालत देखकर रोया किया हूं क्योंकि मुझे इनके साथ दिन गुज़ारने का मौका मिला है। मुझ से पूछो तो कहूंगा कि मेरा बस हो तो मैं दुनियां की हर मुमकिन चीज इनके लिए वक्फ (दे दूं) कर दूं। हमारे शहरों की रौनक इनके दम से है। हमारे कारख़ाने उनकी वजह से आबाद और काम कर रहे हैं। हमारे पंपों से इनके हाथ ही पानी निकालते हैं, गर्ज कि दुनिया का हर एक काम इनकी वजह से

हुआ करता है। ग़रीब किसान बरसात के मूसलाधार पानी और जेठ बैसाख की तपती दोपहर में भी खेतों पर जमा होते हैं और जंगल में मडलाते हुए हमारी खुराक का सामान पैदा करते हैं। यह बिल्कुल सच है कि वह जो पैदा करते हैं जो वह बनाते है उनमें उनका हिस्सा नहीं होता हमेशा दु:खी और मफलूकुल हाल (फटेहाल) रहते हैं। मैं इत्तिफाक (सहमति प्रकट) करता हूं कि इन तमाम बातों के जिम्मेदार हमारे गोरे आका (अंग्रेज़ मालिक) और उनके एजेंट हैं। मगर इनका इलाज क्या है कि उनको उस हालत पर ले जाएं कि वह महसूस करने लगे कि वह क्या हैं। इसका वाहिद जरिया (एक ही उपाय) यह है कि तुम उन जैसी वजा किता इख्तियार (तौरतरीका) करो और जेण्टिलमैनी छोड़कर देहात का चक्कर लगाओ। कारखानों में डेरे डालो और उनकी हालत स्टडी करो और उनमें अहसास (जागृति) पैदा करो। तुम कैथरीन ग्रांड मदर ऑफ रशिया की सवानेहउम्री (जीवन चरित्र) पढ़ो और वहां के नौजवानों की कुरबानियाँ (बलिदानों को) देखो। तुम कालर, टाई और उम्दा सूट पहनकर लीडर जरूर बन सकते हो, मगर किसानों और मजदूरों के लिए फाइदेमन्द साबित नहीं हो सकते। दीगर पॉलिटिकल जमाअतों से मुत्तहिद होकर काम करो और अपनी मादापरस्ती (भौतिक पूजा) से किनारा करो कि यह फिजूल है जो मुझे दूसरी जमाआतों से अलग किए हुए है। मेरे दिल में तुम्हारी इज्जत है और मैं मरते हुए भी तुम्हारे सयासी मकसद (राजनैतिक मान्यता) से बिल्कुल मुत्तफिक (सहमत) हूं। मैं हिन्दुस्तान की ऐसी आजादी का ख्वाहिशमंद था जिसमें गरीब खुश और आराम से रहे। खुदा मेरे बाद वह दिन जल्द आए जब कि छत्तरमंजिल लखनऊ में अब्दुल्ला मिस्त्री लोको वर्कशॉप और धनिये चमार किसान भी मिस्टर खलीकउज्जमा और जगत्नारायण मुल्ला व राजा साहब महमूदाबाद के सामने कुर्सी पर बैठे हुए नजर पड़ें। मेरे कामरेडो ! मेरे रिवोल्यूशनरी भाइयो ! तुम से मैं क्या कहूं और तुम को क्या लिखूं, बस यह तुम्हारे लिए क्या कुछ कम मुसर्रत (प्रसन्नता) की बात होगी जब सुनोगे कि तुम्हारा एक भाई हंसता हुआ फांसी पर चला गया और मरते-मरते खुश था। मैं खूब जानता हूं कि जो स्प्रिट तुम्हारा तबका (समुदाय) रखता है चूंकि मुझ को भी फख्र है और अब बहुत ज्यादा फख्र (गर्व) है कि जो सच्चा रिवोल्यूशनरी होकर मर रहा हूं। मेरा पयाम (सन्देश) तुम को पहुंचाना फर्ज था, मैं खुश हूं मसरूर हूं मैं उस सिपाही की तरह हूं जो फ़ायरिंग लाइन पर हंसता चला जा रहा हो और ख़ंदकों में बैठा

हुआ गा रहा हो। तुम्हें दो शेर हसरत मोहानी साहब (उर्दू के प्रसिद्ध कवि-देशभक्त) के लिख रहा हूं-

जान को महवग गम[१] बना दिल को वफ़ा निहाद[२] कर,
बंद ये इश्क[३] है तो यू कता रहे मुराद[४] कर ।।
ऐ कि निजाते हिन्द की दिल से है तुझको आरजू[५],
हिम्मते सर बुलंद से[६] यास का इंसदाद[७] कर ।।

हज़ार दु:ख क्यों न आएं बहरे जख्खार (भयानक समुद्र) दरमियान में मौजे माने आतिशी पहाड़ (अग्नि का पहाड़) क्यों न हायल (आड़े आए) हो जाए, मगर ऐ आजादी के शेरो ! अपने अपने गरम खून को मातृभूमि पर छिड़कते हुए और जानों को मातृवेदी पर कुर्बान करते हुए आगे बढ़े चले जाओ। क्या तुम खुश न होगे जब तुम को मालूम होगा कि हम हंसते हुए मर गए। मेरा वजन जरूर कम हो गया है और वह मेरी कम खाने की वजह से हो गया है। किसी डर या दहशत की वजह से नहीं हुआ और कन्हाईलाल दत्त की तरह वजन न बढ़ा सका, **मगर हाँ खुश हूं और बहुत खुश हूं। क्या मेरे लिए इससे बढ़कर कोई इज्जत हो सकती है कि सब से पहला और अव्वल मुसलमान हूं जो आजादिए वतन (देश की स्वतन्त्रता) की खातिर फांसी पा रहा है। मेरे भाइयो ! मेरा सलाम लो और इस नामुकम्मल (अपूर्ण) काम को जो हम से रह गया है तुम पूरा करना।** तुम्हारे लिए यू०पी० में मैदाने-अमल (कार्यक्षेत्र) तैयार कर दिया तुम्हारा काम जाने। इससे ज्यादा उम्दा मौका तुम्हारे हजार प्रोपेगंडे से न होता। स्कूल और कॉलेजों के तुलबा हमारी तरफ दौड़ रहे हैं अब बहुत अर्से तक दिक्कत न होगी-

उठो उठो सो रहे हो नाहक पयामे बांगे जरस[७] तो सुन लो ।
बढ़ो कि कोई बुला रहा है निशाने मंजिल दिखा दिखाकर ।।

ज्यादा क्या लिखूं, सलाम लो और कमर हिम्मत बांध लो और मैदाने सियासी लीडरी सलाम कबूल करो और तुम हम लोगों को उस नजर से न देखना जिस नजर से दुश्मनाने वतन और खाइनीने कौम देखते थे। न हम डाकू थे, न कातिल-

---

१. जान को चिन्तित २. वफादार ३. आशिक ४. आकांक्षा की राह को काट दे ५. भारतीय गुलामी के उद्धार की आकांक्षा ६. ऊंचा सर रखनेवाले साहस के द्वारा ७. अनुत्साह को समाप्त कर । ७. घण्टे की आवाज का सन्देश ।

कहां गया कोहेनूर हीरा किधर गई हाय मेरी दौलत ।
वह सब का सब लूटकर कि उलटा हमीं को डाकू बता रहे हैं ॥

हमीं को दिन-दहाड़े लूटा फिर हमीं डाकू हैं। हमारे भाइयों और बहनों और बच्चों को जलियानवाला बाग में भून डाला और अब हमी को कालस बलूट फैसले में लिखा जाता है। अगर हम ऐसे हैं तो वह कैसे हैं और किस खिताब से पुकारे जाने के काबिल हैं उन्होंने हिन्दुस्तान का सुहाग लूट लिया जिन्होंने लाखों बहादुरों को अपनी गरज के लिए मेसोपोटामिया और फ्रांस के मैदान में सुलवा दिया। खूंखार जानवर जालिम दरिंदे वह है या कि हम? हम बेवश थे, कमजोर थे, सब कुछ सुन लिया और ऐ वतनी भाइयो ! यह सब तुमने सुनवाया। आओ फिर मुत्तहिद हो जाओ फिर मैदाने अमल में कूद पड़ो और मुमकम्मल आजादी का एलान कर दो। अच्छा अब मैं रुखसत होता हूं और हमेशा कि लिए खैरबाद करता हूं। खुदा तम्हारे साथ हो और फिजायेहिन्द पर आजादी का झंडा जल्द लहराए। मेरे पास न वह ताकत है कि हिमालय की चोटी पर पहुंचकर एक ऐसी आवाज निकालूं जो हर शख्स को बेदार (जागृत) कर दे और न वह असबाब है कि जिससे फिर तुम्हारे दिल मुश्ताइल (भड़काऊं) कर दूं कि तुम उसी जोश से आगे बढ़कर खड़े हो जाओ जैसे सन् १९२० व १९२१ में थे। मैं चन्द सुतूर के बाद रुखसत करता हूं।

To every man upon this earth.
Dath cemeth soon or late,
But (then) how can a man die better,
Than facing fearful odds,
For the ashes of his fathers and,
Temples of his God.

बाद को मैं अपने उन भाइयों से रुखसत शुक्रिया के साथ होता हूं जिन्होंने हमारी मदद जाहिर तौर पर की या पोशीदा (छिपी हुई)। और यकीन दिलाऊंगा कि अशफाक आखिरी दम तक सच्चा रहा और खुशी खुशी मर गया और ख्यानते वतनी (वतन को लूटने वालों) का उस पर कोई नहीं लगाया जा सकता। वतनी भाइयों से गुजारिश है कि मेरे बाद मेरे भाइयों को वक्त जरूरत न भूलें और उनकी मदद करें और उनका ख्याल करें।

वतन पर मिटने वाला ।

अशफ़ाक वारसी हसरत

अज फ़ैज़ाबाद जेल

मेरी तहरीर मेरे वतनी भाइयों तक पहुंच जाए। ख्वाह विद्यार्थी जी अखबार के ज़रिए से या अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू में छापकर कांग्रेस के अय्याम में तकसीम करा दे, मशकूर (कतृज्ञ) हूंगा। मेरा सलाम कबूल करें और मेरे भाइयों को न वह कभी भूलें और न मेरे वतनी भाई फरामोश (न भुलायें) करें। अलविदा !

अशफ़ाकउल्ला वारसी हसरत

फ़ैज़ाबाद जेल

१९ दिसम्बर १९२७

फांसी पर जाने से पूर्व उन्होंने यह भी कहा था। भारत माता के रंगमंच पर अपना पार्ट अब हम अदा कर चुके। हमने गलत, सही जो कुछ किया वह स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना से किया। हमारे इस काम की कोई प्रशंसा करेगा तो कोई निन्दा। किन्तु हमारे साहस और वीरता की प्रशंसा हमारे दुश्मनों तक को करनी पड़ी। क्रान्तिकारी बड़े वीर योद्धा और बड़े अच्छे वेदांती होते हैं। वे सदैव अपने देश की भलाई सोचा करते हैं। लोग कहते हैं कि हम देश को भयत्रस्त करते हैं किन्तु बात ऐसी नहीं है। इतनी लम्बी मियाद तक हमारा मुकदमा चला मगर हमने किसी एक गवाह तक को भयग्रस्त करने की चेष्टा नहीं की, न किसी मुखबिर को गोली मारी। हम चाहते तो किसी गवाह, किसी खुफिया पुलिस के अधिकारी या किसी अन्य ऐसे आदमी को मार सकते थे। किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं था। हम तो कन्हाईलाल दत्त, खुदीराम बोस, गोपी मोहन साहा आदि की स्मृति में फांसी पर चढ़ जाना चाहते थे।

जजों ने हमें निर्दय, बर्बर, मानव-कलंक आदि विशेषणों से याद किया है। किन्तु हम पूछते हैं, क्या इन जजों ने जलियांवाला बाग में गोली चलते देखा या सुना? क्या उसने निरस्त्र भारतीयों स्त्री पुरुष बाल वृद्ध सब पर गोलियां नहीं चलाई थी। कितने जजों ने उसे इन विशेषणों से विभूषित किया। फिर क्या यह मजाक हमारे ही साथ उड़ाने को है।

भारतीय भाइयो ! आप कोई हो, चाहे जिस धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी हो, परन्तु आप देशहित में एक होकर योग दीजिए। आप लोग व्यर्थ में लड़ झगड़ रहे हैं। सब धर्म एक हैं, रास्ते चाहे भिन्न-भिन्न हों, परन्तु लक्ष्य सब का एक ही है। फिर झगड़ा-बखेड़ा क्यों ? हम मरने

वाले काकोरी के अभियुक्तों के लिए आप लोग एक हो जाइए और सब मिलकर नौकरशाही का मुकाबला कीजिए। **यह सोचकर कि सात करोड़ मुसलमान भारतवासियों में मैं पहला मुसलमान हूं जो भारत माता की स्वतन्त्रता के लिए फांसी पर चढ़ रहा हूं। मैं मन ही मन अभिमान का अनुभव कर रहा हूं।** किन्तु मैं यह विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं हत्यारा नहीं था, जैसा कि मुझे साबित किया गया है।

अब मैं विदा होता हूं। ईश्वर आप सब का भला करे। इस अवसर पर ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट श्री खैरात अली पब्लिक प्रासीक्यूटर सी०आई०डी० के अधिकारी खासकर खान बहादुर तसद्दुक हुसैन साहब तथा अन्य गवाहों को धन्यवाद देना अनुचित न होगा, क्योंकि इन्हीं की कृपा से हम को यह मान मर्यादा प्राप्त हुई। मेरे परिवार में आज तक देश सेवा के लिए कोई त्याग न हुआ था। अब यह कलंक छूट जाएगा। अन्त में अपने साथी अभियुक्तों तथा मुख़बिरों और इकबाली मुलजिमों से भी वन्दे करता हूं। सब को आख़िरी सलाम। भारतवर्ष सुखी हो। मेरे भाई आनन्द लाभ करें।

अशफाक चले गये, लेकिन वे देशवासियों के नाम जो सन्देश छोड़ गए उससे हम कुछ ग्रहण कर सकें तो अच्छा है।

('अशफाक और उनका युग' से)

श्री योगेशचन्द्र चटर्जी

योगेशचन्द्र चटर्जी पूर्वी बंगाल के ढाका जिले के रहने वाले थे। इनके जीवन का प्रायः सभी हिस्सा बंगाल में बीता। इस समय इनकी आयु लगभग ३२ साल की थी। जिस समय इनकी उम्र सिर्फ १५ वर्ष की थी, तभी से क्रन्तिकारी दल के सदस्य हैं। इन्होंने अपने देश की सेवा और सिद्धान्तों की रक्षा के लिये जो कष्ट सहे, जो त्याग किये, वे अनोखे हैं। इन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख शौक आदि का कुछ भी ख्याल न करके अपना तन-मन-धन सर्वस्व देश के लिये न्यौछावर कर दिया। अपनी छोटी सी अवस्था में ही इन्होंने प्रशंसनीय मर्दानगी और साहस के साथ जो-जो यंत्रणायें सहीं, उन्हें सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और इनके प्रति अनायास ही श्रद्धा उमड़ आती है। १९१६ ई. में पहले-पहल ये पुलिस के पंजे में पड़े। उन दिनों बंगाल की अवस्था बड़ी खतरनाक थी। सरकार के छक्के छूट गये थे, आज यहां बम गिरता है तो कल वहां पुलिस का पिस्तौल से सामना किया जाता है। ऐसी भयंकर स्थिति

थी कि पुलिस को यह विश्वास हो गया था कि योगेश बाबू भी इस प्रकार के कामों में लिप्त हैं। इसलिये उनसे इनके इस सम्बंध में कुछ बातें जानने की चेष्टा की। शुरू में मीठी-मीठी बातों से, फिर लालच देकर, और फिर धमकी से काम लिया गया। पर इसने साफ-साफ इन्कार कर दिया कि "मैं कुछ नहीं जानता" डर और धमकी का वार फिर हुआ। पर इससे कुछ काम न निकलता देख ब्रिटिश न्याय के नाम पर इनके साथ अनेक अमानुषिक अत्याचार हुए। पुलिस वालों ने इन्हें मारना तथा हर प्रकार से तंग करना शुरू किया। चांटे मारे, घूंसे और लातें मारीं, लिटाकर लकड़ी के मोमे डंडे से पीठ पर मार-मार के लहू-लुहान कर दिया, खाने को एक दो पूरी तथा नाममात्र को तरकारी देकर कई दिनों तक उपवास करने को मजबूर किया। स्नान करने तक की मनाही कर दी। पुलिस नैतिक शक्ति को पशु शक्ति के सामने विजित करना चाहती थी। परन्तु योगेश बाबू टस से मस न हुए। **सब कुछ सहा, पर एक बार भी मुंह से आह नहीं निकली। न किसी ने उनकी आंख से आंसू ही आते देखा,** आखिर तक 'मैं कुछ नहीं जानता' वे यही कहते रहे। पुलिस तंग आ गई। मारते-मारते थक गई पर उसे कुछ भी शर्म न मालूम हुई। **अन्त में उसने एक वीर नौजवान को गिराने के लिए एक अत्यन्त बीभत्स और अमानुषिक तरीका अख्तियार किया। दो आदमियों से श्री योगेशचन्द्र जी के दोनों हाथ पकड़वा कर उनका वीर्य स्खलन करवाया गया और इसके बाद ही इस अवस्था में उनके सिर पर मैले विष्ठा से भरा हुआ एक गमला एक मेहतर के द्वारा पलटवा दिया गया। सिर से लेकर पैर तक उनके बदन का सब हिस्सा मैले से भर गया।** शायद उनके होठों के बीच में ही कुछ पहुंच गया। बदबू से हवा तक खराब हो गई। पर इसी अवस्था में उन्हें देर तक रखा गया। बदन धोने के लिए पानी की एक बूंद तक नहीं दिया गया। पुलिस इस प्रकार उनको कमजोर और पतित बनाना चाहती थी। **परन्तु योगेश उस वक्त सचमुच योगेश हो गये, पत्थर से अटल रहे और उन्हें चूं तक नहीं किया !** लड़ाई अब खत्म हो गई। एक तरफ बेशुमार आदमी, अपार सम्पत्ति, उचित और अनुचित अभी उपाय और परम शक्तिमान् सरकार थी और दूसरी तरफ एक बिल्कुल अकेला एक निःसहाय नौजवान था, जिसकी मूंछों के अभी रेख भी नही आये थे। पर इस निमूछिये नौजवान ने अपने नैतिक बल के अमोघ अस्त्र द्वारा परम शक्तिशाली शत्रुओं की पाशविक शक्ति को चारों खाने चित्त कर डाला। कुछ अनहोनी बातें

यह भी हो गई और सताने वालों में कइयों ने आकर माफी भी मांगी।

इसके बाद सरकार ने इन्हें १८१८ ई. के तीसरे रेगुलेशन के मुताबिक राज्य कैदी बना के रखा। महायुद्ध की समाप्ति के बाद ये छोड़ दिये गये। इसके बाद भी पुलिस को बराबर यह सन्देह बना रहा कि ये बराबर क्रान्ति के कामों में भाग लेते हैं। पर वे गिरफ्तार नहीं किये जा सके। इन्हीं दिनों असहयोग आन्दोलन चला और इन्होंने अपने को उसमें डाल दिया और गांव-गांव में रचनात्मक कार्य के लिए काफी दौड़ धूप की। बाद के असहयोग आन्दोलन की शिथिलता के कारण उस आन्दोलन पर से इनका विश्वास उठ गया। दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के समय ये वहीं थे। पुलिस का ख्याल है कि दिल्ली में उस मौके पर विभिन्न प्रान्तों के क्रान्तिकारी नेता पधारे थे। और उन्होंने एक सभा करके यह तय किया कि क्रान्तिकारी आन्दोलन फिर जोरों के साथ चलाया जाये। योगेश बाबू संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारी केंद्रों की स्थापना के लिए, बंगाल की तरफ से नियुक्त किये गये थे। और उन्होंने इस प्रान्त में ये आन्दोलन आरम्भ करवाया। १९२४ ई० में युक्त प्रान्त के प्रायः सभी शहरों में 'राय महाशय' के नाम से इन्होंने भ्रमण किया। इधर के लोगों से अपरिचित होने के कारण इस कार्य में इन्हें अनेक कठिनाइयां भी झेलनी पड़ीं, पर सबों का सामना करते हुए ये अपने कार्य में लगे रहे। शुरू में इन्होंने बनारस और शाहजहांपुर में काम किया। बनारस में उनको कुछ पुराने क्रान्तिकारियों से मदद मिली और शाहजहांपुर में श्री रामप्रसाद 'विस्मिल' से। श्री रामप्रसाद जी सदा इनकी तारीफ करते थे। कुछ दिनों बाद ये सब भार श्री रामप्रसाद जी पर छोड़ बंगाल चले गये। वहां बंगाल की पुलिस बहुत दिनों से उनकी तलाश में हैरान थी। एकाएक एक दिन हावड़ापुल पर पुलिस के कई उच्च अधिकारियों द्वारा घेर कर गिरफ्तार कर लिये गये। कहते हैं कि उनकी जेब में पाये गये एक पत्र के द्वारा पुलिस को यह पता लगा कि बंगाल से बाहर उत्तर भारत के पचास बड़े-बड़े शहरों में क्रान्तिकारी दल काम कर रहा है। सरकार उस कागज के मिलते ही सम्भवतः घबरा गई और इस घटना के कुछ ही दिनों बाद बंगाल में काला कानून जारी हो गया, जिसके अनुसार बंगाल के पचासों निर्दोष व्यक्ति जेलों में ठूंस दिये गये। श्री योगेशचन्द्र चटर्जी भी आर्डिनेन्स के ही अनुसार नजरबन्द कर लिये गये। बिहार के वर्तमान गवर्नर और बंगाल के तात्कालिक होम मेम्बर ने उक्त पत्र का हवाला बंगाल कौंसिल में दिया था।

शुरू में योगेश बाबू बंगाल की ब्रह्मपुर जेल में रखे गये थे। यहां के काले कानून के कैदियों पर इनका बड़ा प्रभाव देख सरकार ने इन्हें इनके साथी सन्तोषकुमार के साथ हजारीबाग भेज दिया। परिवर्तन के वक्त इन पर जो जुल्म हुए, उसकी निन्दा के लिये बंगाल कौंसिल में बड़ी आंधी उठी और यहां तक की कौंसिल की कार्यवाही स्थगित करने तक का प्रस्ताव पास हुआ। हजारीबाग से वे नजरबन्द की हालत में काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में लाये गये। सरकारी वकील ने इन्हें इस 'षड्यंत्र का जनक' बतलाया था। पुलिस इनसे बहुत अधिक इसलिए जलती थी कि इतनी दूर से आकर वह यहां के सीधे-सादे आदमियों को क्यों राजद्रोही बनाता है ? सेशन जज ने इन्हें दस साल की सजा दी थी, परन्तु पुलिस ने अपील की, और चीफकोर्ट से इन्हें आजन्म काले पानी की सजा दिलवा ही के छोड़ा। इन दिनों ये आगरा सेन्ट्रल जेल में रखे गये।

ये बड़े ही गम्भीर प्रकृति के आदमी हैं। बोलते बहुत कम हैं और प्राय: हां या ना कहकर ही अपनी राय बतला देते हैं। जोर से न हंसने के कारण मन्द-मन्द मुस्कराहट से ही वे अपना काम चला लेते हैं। शरीर से दुबले-पतले, आंखें बड़ी-बड़ी और चेहरे से बुद्धिमत्ता टपकती है। कोई दोषी व्यक्ति इनकी आंखों से शायद ही अपना दोष छिपा सकता है। बराबर मुसीबतों का सामना करते रहने के कारण इनके चेहरे पर त्याग की एक छाप सी पड़ गई है। ब्रह्मपुर जेल में आर्डिनेन्स के सभी कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते थे। उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व और त्याग ही इसका मुख्य कारण था। इनमें संगठन शक्ति बहुत जबरदस्त है और अपने सहकारियों को प्रेम से वश में करना खूब जानते हैं। विपत्ति में कभी नहीं घबराते, सब काम नियमपूर्वक करते और जरा भी समय बर्बाद नहीं होने पाता। युक्त प्रान्त में इनके समय के मिनट-मिनट का हिसाब रहता था। युक्त प्रांत के विभिन्न नगरों का इन्होंने कई बार दौरा किया था। कार्य करने की इनकी क्षमता और दक्षता का एक बड़ा सुन्दर उदाहरण 'कुमिल्ला लेकर यूनियन' हैं। इस कम्पनी में इस समय लोहा आदि का काम होता है। मशीनों के पुर्जे भी काफी तादाद में बनाए जाते हैं। २०० रुपये से भी कम पूंजी से इन्हीं की देख-रेख में एक टीन के छप्पर के नीचे इसका काम शुरू हुआ था। आज कल इस कम्पनी के व्यवसाय की पूंजी लगभग डेढ़ लाख से भी ऊपर तक पहुंच गई है। इस व्यवसाय में जो लाभ होता है उसी में लगा दिया जाता है। सरकारी वकील ने कहा कि इस कम्पनी का गुप्त उद्देश्य क्रान्ति के समय राइफल और

पिस्तौल बनाना है। योगेश बाबू ने कभी इस कम्पनी से एक पैसा भी नहीं लिया। ये आजन्म ब्रह्मचारी हैं और आजीवन विवाह नहीं करना चाहते। विचारों में पूरे साम्यवादी हैं। खाने-पीने में किसी से किसी प्रकार का परहेज नहीं रखते। कहते हैं मैंने मेहतर के हाथ का खाना तो कितने की मर्तबा खाया है। आपके विचार आरम्भ से ही बहुत गर्म हैं। आपने हवालात में १५ रोज और सजा के बाद फतेहगढ़ जेल में ५५ दिनों तक अनशन किया। शरीर से कमजोर होने के कारण ४५ दिनों के अनशन के वक्त मृतप्रायः हो गये थे। जेल के कैदी इनकी बड़ी इज्जत करते और इनके लिये हर एक तकलीफ सहने को तैयार रहते। अधिकारियों को यह बहुत खटका। फिर उन्होंने फतेहगढ़ से उन्हें आगरा सेन्ट्रल जेल में भेज दिया। बड़े अच्छे तैराक होने के साथ ही नाव चलाना भी खूब जानते हैं। जेल में हमेशा कबड्डी आदि खेलों में बराबर भाग लेते थे। गाना गाने में ये बड़े निपुण हैं और जिस वक्त मस्त होकर गाना गाने लगते उस समय सुनने वाले विह्वल हो जाते हैं। १९१६ ई० की गिरफ्तारी के वक्त ये कालेज में पढ़ते थे। इन्होंने अन्तर राष्ट्रीय प्रगति, आयरलैंड का इतिहास, पूर्वी देशों की जागृति आदि का अच्छा अध्ययन किया है।

श्री गोविन्दचरण कर

(क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित)

"गोविन्दचरण कर बंगाल प्रान्त के सुदूरपूर्व ढाका जिले के रहने वाले हैं। ये पुराने क्रान्तिकारी हैं। सोलह सत्रह वर्ष की उम्र में ही पढ़ना छोड़कर ये क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। कुछ दिनों बाद पुलिस की दृष्टि इन पर पड़ी और सन् १९१० ई० से ही इनके पीछे पड़ गई। ये बड़ी सावधानी से काम करते रहे। पर अन्त में १९१६ ई. में पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर ही लिया। पर ये सहज ही गिरफ्तार न हुए। उन दिनों ये पवना में रहते थे, पुलिस ने अचानक इनके मकान को घेर लिया। इन्हें सीधे गिरफ्तार होना पसन्द न आया। प्रश्न जीवन-मरण का था, क्योंकि सामने हथियारबन्द पुलिस खड़ी थी। वह यह खूब समझते थे कि भागने पर गोली से मारे जायेंगे। या पकड़े जाने पर फांसी होगी। परन्तु इस बहादुर ने चिन्ता को मार भगाया, और अपनी जान हथेली पर लेकर मकान के पीछे के रास्ते से निकल भागा। हाथ में भरा तमंचा था और घोड़े पर उंगली, मकान के पीछे भी पुलिस सशस्त्र तैनात थी, परन्तु पुलिस के दिमाग में यह बात न आई कि जान पर खेल कर कोई

ऐसी हिम्मत भी कर सकेगा कि उनकी राइफलों के मुँह के सामने से भाग निकलेगा। इसलिये उनके निकल भागने के कुछ देर बाद तक वह हतबुद्धि-सी रह गई। तब तक श्री कर महाशय धान के खेतों से होते हुए कई सौ गज निकल गये। पर शीघ्र ही पुलिस के कई सिपाहियों ने हाथ में बन्दूक लिए उनका पीछा किया। पुलिस ने गोली चलाना भी आरम्भ किया। कर महाशय भी अपने तमंचे से गोलियों का गोलियों से जवाब देने लगे। वे भागते जाते थे, तमंचा बदलते जाते थे, उसमें गोली भरते जाते थे और साथ ही फायर भी करते जाते थे। उनका भागना, पुलिस वालों का पीछा करना और गोलियों का चलना लगातार बहुत देर तक जारी रहा। पुलिस इस आशा पर कि इनकी गोलियों के खत्म होते ही गिरफ्तार कर लेंगे, पीछा करती जा रही थी। अन्त में हुआ भी ऐसा ही। कर बाबू दौड़ते-दौड़ते थक गये। पुलिस की कई गोलियां उन्हीं को लग चुकी थीं। लगातार खून निकलने से बदन में बहुत कमजोरी आ रही थी और दुर्भाग्यवश वे इस समय ऐसी जगह जा पड़े थे जहां खुला मैदान ज्यादा था, फसल वाला खेत कम। इन सब कारणों से इन्हें विश्वास सा हो गया कि अब और ज्यादा देर तक पुलिस से बचना सम्भव न होगा। इसीलिये वे धान के एक घने खेत में घुसकर बैठ गये, और अपनी बची-बचायी शारीरिक शक्ति एवं कारतूसों की मदद से अन्त तक लड़ना निश्चित किया। पुलिस ने आड़ में रहकर खेत को घेर लिया, नजदीक जाने की उसकी हिम्मत न पड़ी और अन्दाज से ही उनका लक्ष्य करके वह गोली चलाने लगे। कर बाबू भी गोली चलाते रहे। कई पुलिस वाले घायल भी हुए। आखिर उनकी गोलियां खत्म हो गई। पुलिस बहुत देर तक उनके तमंचे की आवाज न सुनकर खेत की तरफ बढ़ी और उसने उनको गिरफ्तार कर लिया। उस वक्त वे अर्ध मृत और प्रायः बेहोश अवस्था में पाये गए। चलने की शक्ति नहीं थी, बदन से जगह-जगह से खून की धार बह रही थी। पर गिरफ्तारी के वक्त इनके पास हथियार का कोई नामोनिशान भी न था। पूछने पर कि तमंचा कहां है, उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा—तमंचा कैसा ? मुझे तो गोली चलाना भी नहीं आता, मैं तो अभी तक आप ही लोगों की गोलियों की बौछार से आच्छादित था। पुलिस वाले ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये, पर तमंचा का कुछ भी पता न चला ! गिरफ्तारी के बाद श्री कर बहुत दिनों तक हिरासत के अस्पताल में रक्खे गये। अच्छा हो जाने के बाद उन पर 'पवना शूटिंग केस' चला। इस मुकद्दमे में बंगाल में बड़ी खलबली मच गई थी। पुलिस

ने इन पर हत्या करने की कोशिश करने की दफा लगवाना चाहा, पर पास में हथियार के न पाये जाने के कारण मुकद्दमा न जम पाया, तिस पर भी इन्हें दस साल काले पानी की कैद की सजा हुई। काले पानी में आप कई साल रहे। उन दिनों अंडमान में क्रान्तिकारियों की भरमार थी अधिकारियों के सब अत्याचारों के रहते हुए भी कर महाशय का कहना है कि वहाँ का जीवन बड़ा आदर्श था। वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् इकट्ठे थे। सम्पादकों और लेखकों की कोई कमी न थी। देशपूज्य सावरकर, भाई परमानन्द वगैरह उस वक्त वहीं थे। कहने का मतलब यह कि एक रास्ते पर चलने वाले बहुत से सिद्धान्तवादी मुसीबत के कारण सौभाग्यवश एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे। समय की कोई कमी नहीं थी। किताबों के पार्सल बराबर पहुंचते रहते थे। वहां एक खासा पुस्तकालय बन गया था। सरकार तो यह समझती थी कि वह अपने शत्रुओं की शक्ति उन्हें वहां बन्द कर कुचल रही है। पर वास्तव में ज्यादातर लोग वहाँ अपना भविष्य निर्माण कर रहे थे। कर महाशय ने वहाँ काफी अध्ययन किया। वे अपने जीवन को सदा याद करते, तथा काकोरी केस के हवालात के समय अण्डमान के राजनैतिक कैदियों के जीवन सम्बन्धी अनेक जानने लायक बातें बड़े ही रोचक ढंग से अपने दूसरे-साथियों से कहा करते थे। इनकी इन बातों के सुनने से लोग कभी ऊबते न थे।

अभी पूरा चार साल भी न हो पाया था कि अस्वस्थता के कारण १९२० ई. में ये रिहा कर दिये गये। वहां से लौटते ही आपने असहयोग आन्दोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। ढाका के गांव-गांव में बहुत प्रचार-कार्य किया। ढाका कांग्रेस कमेटी में इनका काफी प्रभाव था। इस जमाने में भी दिन रात सी.आई.डी. इनके पीछे लगी रहती थी। सन् १९२५ ई. में श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल और श्री योगेशचन्द्र चटर्जी की गिरफ्तार के बाद संयुक्त-प्रदेश के विप्लव-आन्दोलन को ठीक तरह से चलाये रखने के उद्देश्य से इन्हें बंगाल से इधर भेजा गया। संयुक्त प्रान्त के बड़े-बड़े शहरों में घूमकर इन्होंने षड्यन्त्रकारी आन्दोलन का प्रचार भी किया। इस केस में इनकी गिरफ्तारी लखनऊ में हुई। उन दिनों ये वहाँ वेष बदलकर अमीनाबाद के पास एक मामूली होटल में रहा करते थे। यहां रहने का पता केवल एक 'देशभक्त' महाशय को मालूम था, जिन्होंने विश्वासघात करके पुलिस को बतला कर इन्हें गिरफ्तार करवाया था। इनकी गिरफ्तारी के बाद यह भी पता लगा कि उधर बंगाल सरकार 'आर्डिनेन्स' के द्वारा इन्हें अपना मेहमान बनाने के लिए अलग परेशान

थी। कर जी को सेशन जज ने दस साल की सजा दी थी। परन्तु पुलिस को इससे क्यों सन्तोष होने लगा। उसने औरों के साथ इनकी सजा बढ़ाने के लिए भी अपील की और अपील से इन्हें आजन्म काले पानी सजा दी गई। काकोरी केस के हवालातियों में श्री कर सबसे अधिक उम्र वाले होते हुए भी अपने को 'लड़ाका' और 'योद्धा' कहने में गौरवान्वित होते थे। पहली बार की गिरफ्तारी के समय के पुलिस की गोलियों के तीन-चार चिह्न अब भी इनकी देह में बने हुए हैं।

आप कहते हैं कि यही हमारा तमगा है। आप क्रान्ति और स्वाधीनता प्राप्ति के विभिन्न पहलुओं पर सदा विचार करते रहते हैं। और सदा स्वतन्त्र देशों के इतिहास से अपने देश की तुलना कर व्यग्र होते हैं। इन्होंने कितनी ही रातें इन्हीं बातों के सोचने में बिताई हैं। इनका जीवन लड़कपन से ही त्यागमय और कठोर रहा है। ये अभी तक अविवाहित हैं। इन्होंने पंजाब तथा बम्बई के प्रान्त के प्राय: सभी नगरों में भ्रमण किया है। अहमदाबाद के मजदूरों के जीवन का इन्हें अच्छा ज्ञान है। कई प्रकार का उद्योगधन्धा करना भी यह अच्छी प्रकार जानते हैं। मजाकिया तो अव्वल दर्जे के हैं। हवालात में इन लोगों का जो जमाव होता, ये उसमें बहुत प्रमुख भाग लेते थे। हवालात के समय लखनऊ में १५ दिनों तक और सजा देने के बाद फतेहगढ़ जेल में ४५ दिनों तक इन्होंने अनशन किया था। पहले कुछ दिनों तक ये ढाका हिन्दूसभा के मन्त्री भी रह चुके हैं !"

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य

(क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित)

"श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य का जन्म बनारस में पहल अगस्त १८९७ ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम पं. ईश्वरचन्द्र जी शिरोरत्न था। १६ वर्ष की आयु में इन्होंने बंगाली टोला हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की और उसके बाद बनारस के सैन्ट्रल हिन्दू कालेज में पढ़ने लगे। इन्हीं दिनों पुलिस वालों की निगाह इन पर पड़ी और १९१४ ई. में पकड़ कर ये उरई (जालोन) में चार वर्ष तक नजर बन्द कर दिये गये।

इस प्रकार इनकी कालेज की पढ़ाई बन्द हो गई। नजर बन्दी से रिहा होने के बाद ये ऊरई से ही निकलने वाले 'उत्साह' नामक हिन्दी साप्ताहिक पत्र का दो वर्ष तक सम्पादन करते रहे फिर कानपुर के 'वर्तमान' तथा 'प्रताप' के सहकारी सम्पादक रहे। आप जिन दिनों 'प्रताप' में काम

कर रहे थे, उन्हीं दिनों काकोरी केस के सम्बन्ध में गिरफ्तार हुए। सेशन जज ने इन्हें सात साल की सख्त कैद की सजा दी थी, पर अपील से यह सजा बढ़ा कर दस वर्ष कर दी गई।

श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य बचपन से ही बड़े तेज बहादुर और साहसी रहे हैं। इनका स्वभाव मिलनसार, व्यवहार मधुर तथा आचरण सादा और पवित्र है। यह इनकी सच्चरित्रता और पवित्रता का ही फल है कि इस अवस्था में भी इनका चेहरा दमकता रहता है और इन्हें देख कर एक बार दूसरों के हृदय में भी आनन्द उल्लसित हो उठता है। सदा प्रसन्न रहना और मजाक करना इनका खास गुण है। कोई भी व्यक्ति एक बार इन से मिलकर इन्हें कभी भूल नहीं सकता। गाने में ये बड़े निपुण हैं। जिस समय मस्त होकर गाने लगते हैं उस समय सुनने वाले गद्‌गद् हो उठते हैं। यह बड़े उदार प्रकृति के मनुष्य हैं।"

श्री भूपेन्द्र सान्याल

(क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित)

"श्री भूपेन्द्र सान्याल श्री शचीद्रनाथ सान्याल के सब से छोटे भाई हैं। इनका जन्म पहली जनवरी सन् १९०६ ई. में कलकत्ता में हुआ। जन्म के इसी ही वर्ष इनके पिता का देहान्त हो गया। इसके बाद इनका बाल्यकाल अपनी माता के साथ बनारस में बीता। बनारस षड्यन्त्र के मुकद्दमे के समय इनकी अवस्था नौ-दस साल की थी। खुफिया पुलिस वाले अकसर इन्हें मिठाइयां देकर श्री शचीद्रनाथ सान्याल के विषय में पूछताछ करते थे। परन्तु भूपेन्द्र उन्हें कभी कुछ भी उत्तर न देते और सदैव उन्हें निराश होना पड़ता था।

बनारस षड्यन्त्र में इनके तीनों भाइयों को सजा हुई थी। श्री शचीन्द्रनाथ को आजन्म काले पानी, श्री यतीन्द्रनाथ को दो वर्ष की सख्त कैद और श्री रवीन्द्रनाथ (जो आजकल सेण्ट एण्डरुज कॉलेज गोरखपुर में प्रोफेसर हैं) नजरबन्द कर दिये गये थे।

श्री भूपेन्द्रनाथ पर अपनी माता का बहुत असर पड़ा और सदा इनका जीवन उत्साहमय रहता आया। गोरखपुर से स्कूल लीविंग परीक्षा पास कर के ये इलाहाबाद चले आये। और यहां पर इवनिंग क्रिश्चियन कॉलेज से आई.एस.सी. पास कर जब यूनिवर्सिटी कालेज में बी.एस.-सी. में (चतुर्थ वर्ष) पढ़ रहे थे, काकोरी षड्यन्त्र के मुकद्दमे में गिरफ्तार कर लिये गये और इन्हें प्रत्येक धारा के अनुसार पांच-पांच वर्ष की

कड़ी कैद की सजा दी गई। यूनिवर्सिटी के वाद-विवाद में ये खूब भाग लेते थे। शरीर से अधिक हट्टे-कट्टे होते हुए बड़े परिश्रमी उद्यमशील और फुर्तीले व्यक्ति हैं। फुटबाल तथा हाकी के अच्छे खिलाड़ी हैं। इनके चेहरे से गम्भीरता, उत्साह, साहस प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। मातृभूमि के उद्धार के लिये इनके हृदय में उत्साह है।"

क्रान्तिकारी एवं क्रान्तिकारी साहित्य के लेखक
मन्मथनाथ गुप्त

मन्मथनाथ गुप्त क्रान्तिकारी साहित्य के प्रभावशाली लेखक हैं। इनके लेखन में स्वाभाविकता का पुट इस कारण है कि ये स्वयं क्रान्तिकारी रहे हैं। क्रान्तिकारी जीवन को इन्होंने जीया है, जेलों की निर्मम यातनाओं को भोगा है, आजादी के कालचित्र को अपनी आंखों से देखा है।

मन्मथनाथ गुप्त के दादा श्री आद्यनाथ गुप्त सन् १८८० में हुगली (बंगाल) से बनारस आकर बस गये थे। इनके पिता का नाम वीरेश्वर गुप्त था। इनका प्रतिष्ठित वैद्य वंश था। इस वंश में बनारस में सन् १९०७ में मन्मथनाथ गुप्त का जन्म हुआ। श्री गुप्त बचपन से ही तीव्र बुद्धि बालक थे। गणित के कठिन से कठिन प्रश्न आसानी से हल कर लेते थे। पिता ने इनको अपनी देखरेख में शिक्षित किया था। फिर इन्हें संन्यासी बनाने के उद्देश्य से एक सन्यासी गुरु के पास संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दिया। फिर ये विराट् नगर (नेपाल) में अपने पिता के साथ रहने लगे। इनके पिता वहां हाईस्कूल में मुख्याध्यापक थे। वहां से लौटने के कुछ दिनों बाद ही भारत में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। मन्मथ को पिता ने आगे पढ़ने के लिए काशी के गान्धी राष्ट्रीय विद्यालय में भरती करा दिया। वहां वे स्वयं भी शिक्षक थे।

मन्मथ अभी चौदह वर्ष के ही हुए थे कि भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना हुई। इंग्लैंड के युवराज का सन् १९२१ में भारत आने का कार्यक्रम निर्धारित हो गया। सरकार, अधीन राजे-महाराजे युवराज के स्वागत के लिए तन-मन-धन से जुटे थे, किन्तु स्वतंत्रता प्रेमी देशभक्त लोग उतनी ही शक्ति से विरोध प्रदर्शन की तैयारियों में जुटे हुए थे। युवराज के आगमन पर देशभर में विरोध प्रदर्शन, हड़तालें हुईं और कार्यक्रम के बहिष्कार के आह्वान हुए। चौदह साल के बालक मन्मथ भी बहिष्कार के समर्थन में पर्चे बांट रहे थे। पिता को पता चला। पिता ने मन्मथ को समझाते हुए कहा -"तुम नोटिस तो बांट रहे हो, पर अभी केवल चौदह

वर्ष के बालक हो। यदि पकड़े गये तो जेल जाना पड़ेगा। क्या तुम जेल की कठोर यन्त्रणाओं को सहन कर लोगे ?'' मन्मथ ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया –''बाबू जी ! मैं अपनी मातृभूमि के लिए प्रत्येक कष्ट सहने के लिए तैयार हूं।'' बचपन से ही देश सेवा की भावना भरी थी मन्मथ के हृदय में। वही हुआ। नोटिस बांटते हुए पकड़े गए और तीन महीने की जेल हुई। जेल से आने के बाद फिर पढ़ने लगे। काशी विद्यापीठ से इन्होंने विशारद (मैट्रिक) परीक्षा पास की। फिर आगे कक्षाओं में प्रवेश ले लिया।

सन् १९२३ में इनकी भेंट बंगाल के एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी से हुई। उनसे पर्याप्त विचार विमर्श के बाद इन्हें निश्चय हो गया भारत को क्रान्ति के द्वारा ही आजाद कराया जा सकता है। यह निश्चय होने पर ये क्रान्तिकारियों के दल में शामिल हो गये और सक्रियता से भाग लेने लगे। गुप्तचर पुलिस इन पर कड़ी नहर रखने लगी। बनारस में रहते हुए आपने अपना गुप्तरूप से एक पत्र भी निकाला जिसका नाम अग्रदूत था। वस्तुतः यह पत्र क्रान्ति का दूत था।

सन् १९२५ में लखनऊ के पास काकोरी नामक स्टेशन पर क्रान्तिकारियों द्वारा चलती रेल से रेलवे का खजाना लूट लिया गया। इस महत्वपूर्ण घटना से अंग्रेज सरकार कांप गयी। यह काण्ड 'काकोरी काण्ड' के नाम से आजादी के इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। इस काण्ड में चार मुख्य अभियुक्त पं. रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाक उल्ला खां, रोशन सिंह और राजेंद्र लाहिड़ी पकड़ लिये गये। उन्हें फांसी हुई। उन्हीं के साथ मन्मथनाथ को भी २६ दिसम्बर १९२५ को गिरफ्तार कर लिया गया। अट्ठारह साल के मन्मथनाथ गुप्त इन अभियुक्तों में सबसे छोटे थे और इस काण्ड की बातों से अनजान थे। इन्हें लगा कि अब फांसी की सजा मिलेगी। पिता जी जेल में मिलने आये तो इन्होंने कहा –''पिता जी ! यह समझ लीजिए कि अब मैं इस संसार से चला जाऊंगा।'' यह कहते हुए मन्मथ की आंखों में आंसू छलक आये।

वीर पिता ने पुत्र को कहा –"I dont expect teers in the eyes of my son." 'मैं अपने पुत्र की आंखों में आंसू देखने की आशा नहीं करता।' वाह, क्या वीरतापूर्ण उत्तर था ! ऐसे पिता की सन्तान देशभक्त और वीर क्यों नहीं होगी ?

काण्ड से सम्बंध न होने के बावजूद भी इन्हें चौदह साल का कठोर कारावास हुआ। पुलिस इन्हें भी फांसी दिलाना चाहती थी। इस

सजा को कम समझते हुए उसे बढ़वाने के लिए ऊपर कोर्ट में अपील की, पर पुलिस को मुंह की खानी पड़ी। सजा तो नहीं बढ़ी किन्तु इन्हें नैनी जेल भेज दिया गया। राजनीतिक कैदियों से साधारण अपराधी कैदियों जैसा बर्ताव होता देख इन्होंने जेल प्रशासन के विरुद्ध अनशन कर दिया। अनशन ४६ दिनों तक चलता रहा। इसके बाद श्री गणेश विद्यार्थी और अन्य नेताओं ने आग्रह करके अनशन समाप्त करा दिया। जब स्वास्थ्य कुछ सुधरा तो प्रतिशोध की भावना से जेल अधिकारियों ने इनको चक्की पीसने का काम सौंपा। आपने स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया। अधिकारी क्रोध में और अधिक उग्र हो गये और कहने लगे -'हम तुम से चक्की पिसवाकर ही छोड़ेंगे। इनको सजा पर सजा दी जाने लगी, किन्तु ये अपने निश्चय पर अडिग रहे। कष्टों, यातनाओं से कभी नहीं घबराये।

आपकी देशभक्ति और कर्मठता को देखकर क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल परमात्मा से प्रार्थना किया करते थे - 'परमात्मा मन्मथनाथ को दीर्घजीवी करे।'

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी

श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी का जन्म २५ दिसम्बर १९०४ ई. में बनारस में हुआ था। इनके पिता फरीदपुर (बंगाल) के कृष्णापुर नामक गाँव के प्रतिष्ठित बख्शी खानदान के वंशज हैं। श्री शचीन्द्रनाथ बख्शी बड़े योग्य क्रान्तिकारी संगठनकर्त्ता हैं। श्री मन्मथनाथ गुप्त और श्री बख्शी श्री योगेशचन्द्र चटर्जी की दो भुजा थे और बनारस का सुदृढ़ संगठन इन्हीं लोगों के बल पर हुआ था। श्री राजेन्द्र लाहरी तो इनके संरक्षक और उत्साहदाता थे। श्री बख्शी के पिता काशी निवासी प्रवासी बंगाली हैं। युवावस्था में कुछ दिनों तक ये जंगल विभाग में मुलाजिम थे। इस कारण श्री बख्शी को बचपन में जंगलों में रहना पड़ा जिसके फलस्वरूप वे बड़े साहसी और निर्भीक हो गये, श्री बख्शी ने १९२१ ई. में बनारस के ऐग्लो बंगाली हाई स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की। इसके बाद वे जिन दिनों बनारस क्वींस कालेज से एफ.ए. में पढ़ रहे थे, तभी पुलिस वालों की दृष्टि इन पर पड़ी जिसके कारण एफ.ए. की परीक्षा देने के पहले ही इन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। इसके बाद व्यायामशालाओं के संस्थापक की हैसियत से इन्होंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। शुरू में इन्होंने 'सैन्ट्रल हेल्थ इम्प्रूविंग' नामक व्यायाम समिति स्थापित की। इनके रहते-रहते उसमें नवयुवक सदस्यों की संख्या ७०-८० तक पहुँच गई।

और समिति सार्वजनिक जीवन का एक मुख्य केन्द्र समझा जाने लगा। पर बाद को इस में जी हजूरों का प्रवेश हो गया जिसके कारण श्री बख्शी ने इस से अलग होकर 'सेन्ट्रल हेल्थ यूनियन' नाम की व्यायाम समिति स्थापित की। यह संस्था इस समय काशी के सार्वजनिक जीवन में एक प्रमुख स्थान रखती है। श्री बख्शी ने इस समिति के द्वारा तैराकी प्रतिद्वन्द्विता का कार्य भी आरम्भ किया था। और आज तक प्रतिवर्ष इसी समिति द्वारा ही चुनार से बनारस तक की १३ मील की तैराकी प्रतिद्वन्द्विता हुआ करती है। अब तक इस समिति के चार सदस्य राजनैतिक कैदी हो चुके हैं। काकोरी केस वालों में श्री बख्शी के अतिरिक्त श्री मन्मथ और श्री राजेन्द्र भी इसके सदस्य थे। चौथे सदस्य श्री केशव चक्रवर्ती थे, जिन्हें गवर्नमेंट ने बंगाल के कॉलेज कानून (आर्डिनेन्स) के अनुसार गिरफ्तार कर रखा था। ये भी काकोरी षड्यन्त्र में फांसे जाने वाले थे, परन्तु इधर प्रमाण न मिला और काले कानून के शिकार बना दिये गये। श्री केशव चक्रवर्ती बड़े ही दक्ष तैराक हैं। बनारस की १३ मील की तैराकी प्रतिद्वन्द्विता में लगातार तीन बार प्रथम आ कर सैकड़ों रुपये के तमगे आदि प्राप्त कर चुके हैं।

दिल्ली की स्पेशल कांग्रेस के कुछ दिन पहिले ही बख्शी से श्री योगेश चटर्जी की भेंट हुई और वे क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। वे तो मानो इसकी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। कुछ दिनों तक बनारस में काम करने के बाद ये झाँसी गये। वहां न तो कोई इनका परिचित था और न पास में इतना रुपया ही था कि सुविधा से अपना कार्य-संचालन कर सकें। परन्तु ऐसे साहसी वीरों को विपत्तियों की कुछ परवाह नहीं होती है। वे वहां डट गये और काम करने लगे। इन्हें यहां एक और बड़ी बाधा थी। झांसी में एक ऐसे महाशय हैं, जो क्रान्तिकारी न होते हुये भी अपने को क्रान्तिकारी बतलाते हैं और इस प्रकार रुपये आदि ठग कर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। पहिले तो लाला मुकन्दीलाल जैसे पुराने क्रान्तिकारी भी इनके चक्कर में आ गये थे। पर श्री बख्शी उनके जाल में फंसने वाले जीवन न थे। बख्शी जी का झांसी में रहना उनके लिए खतरनाक था, क्योंकि किसी भी वक्त उनकी पोल खुल जाने की आशंका थी। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि बख्शी जी को यहां से भागना चाहिये। इसके लिये वे कई चाल चले, पर श्री बख्शी के सामने उनकी एक न चली। एक दफे उन्होंने यह भी उड़ा दिया कि बख्शी पुलिस के आदमी हैं। पर श्री बख्शी इससे भी न दबे। इन बाधा विपत्तियों

के होते हुए भी श्री बख्शी ने वहाँ बड़ी इज्जत प्राप्त की। वे बहुत दिनों तक वहां एक अंग्रेजी पत्र के सम्पादक भी रहे। इस पत्र में उन्होंने श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल की गिरफ्तारी पर एक जोरदार लेख लिखा था, इस पर इन से और प्रकाशक से विरोध हुआ और इन्होंने सिद्धान्त के निमित्त यह त्याग कर दिया। गिरफ्तारी के वक्त वे स्थानीय म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में खड़े होने वाले थे।

श्रीयुत बख्शी के ख्यालात इतने गरम हैं कि क्रान्तिकारियों में भी उन्हें गरमपन्थी कहना चाहिए एक बार उन्होंने कुछ क्रान्तिकारियों से कहा था "तुम लोग चाहे जो कुछ समझो, मैं तो क्रान्तिकारी काम के बिना जी नहीं सकता। मैं यदि कभी देखूंगा कि सभी लोग खिसक गये हैं, कोई भी सहायक नहीं, तब मैं अकेला ही अन्याय से लड़ूंगा। एक ऊँचे मकान में एक बन्दूक तथा कुछ कारतूस लेकर बैठ जाऊंगा और कुछ न हो सका तो चिल्लाकर ही ऐलान कर दूंगा कि मैं बागी हूं, मेरे साथ जिसे लड़ना हो लड़ो। बख्शी जी राजनीतिक क्रान्तिकारी होने के अतिरिक्त सामाजिक क्रान्तिकारी भी हैं। उनका कहना है "केवल राजनीतिक क्रान्ति से या देश में साम्यवाद का प्रचार होने से हमारा केवल एक आना काम हो चुकेगा। बाकी पन्द्रह आने सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक क्रान्ति से होंगे। उनकी समझ से समाज की अट्टालिका इस समय कुसंस्कारों तथा अनावश्यक प्राचीन-प्रथाओं की भित्ती पर खड़ी है, उसको खोद कर विज्ञान तथा बुद्धि की नींव पर उसे स्थापित करना पड़ेगा। तभी देश का पूरा और वास्तविक कल्याण होगा। श्री बख्शी अपने वासस्थान काशी में पुरोहितों, पुजारियों तथा साधुओं की अपार ढोंग लीला लड़कपन से देखते आये थे। वे जानते हैं कि इनके बड़प्पन की कोई वास्तविक नींव नहीं है। इनका मान मिथ्या कुसंस्कार तथा अनावश्यक लोकाचार पर अवलम्बित है। इस कारण उनको उस श्रेणी से विशेष चिढ़ थी और इस पोप लीला को अन्त करने का काम नवयुवकों पर निर्भर बतलाते थे।

एक बार काशी के पुरोहितों और ब्राह्मणों ने निश्चय किया कि काशी के ब्राह्मणों की एक सभा कर महात्मा गांधी के अछूतोद्धार विषयक कार्यों की तीव्र निन्दा की जाये, और स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया कि किसी सामाजिक या धार्मिक विषय पर महात्मा जी का बोलना उनकी अनधिकार चेष्टा है। काशी के षड्यन्त्रकारी दल में यह समाचार पहुंचा। श्रीयुत बख्शी ने कहा-"अव्वल तो हम लोगों को ऐसी सभा होने नहीं

देनी चाहिए और यदि हो भी जाय तो किसी भी हालत में उपरोक्त प्रस्ताव पास न होना चाहिए''। उनके इस निश्चयानुसार श्री राजेन्द्र लहरी, श्री बख्शी और श्री मन्मथ गुप्त दल-बल के सहित सभा स्थल पर समय से पूर्व ही पहुंचे। अभी बिचारे पंडित लोग आ भी न पाये थे कि इन लोगों ने अपनी तरफ से एक सज्जन को सभापति बनाकर वक्तृतायें शुरू कर दीं, और महात्मा गांधी की जय, तथा 'वन्देमातरम्' ध्वनि से सभास्थल को गुंजा दिया। पंडितों ने आकर जब यह हालत देखी तो बहुत शोर गुल किया, पर जनता उनके विरुद्ध थी, बिचारे करते क्या करते ? बख्शी जी के प्रस्ताव पर सभी ने निर्णय किया कि महात्मा गांधी बहुत उचित काम कर रहे हैं, उसके लिये वे दीर्घजीवी हों। दूसरे प्रस्ताव में यह निर्णय किया गया कि पण्डितों को लघुकौमुदी में लगा रहना चाहिये, महात्मा गांधी के कार्यों की समालोचना करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। उस दिन से श्रीयुत बख्शी काशी के धर्म व्यवसायियों के लिये एक भयानक शत्रु से हो गये थे। स्त्रियों और किसान तथा मजदूरों की उन्नति के सुधार और शिक्षा में भी उनके विचार बड़े ही उन्नत हैं।

बख्शी जी बड़े ही सच्चरित्र तथा सीधे व्यक्ति हैं। उनको किसी बात का गर्व नहीं, पर आत्माभिमान उनमें कूट-कूट कर भरा है। वे हरेक क्रान्तिकारी को अपने भाई से भी बढ़कर प्रेम करते हैं। उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र है। एक बार वे लखनऊ की एक धर्मशाला में बन्दूकों की एक पेटी लेकर ठहरे थे। किसी कारण वहां के अध्यक्ष को उन पर सन्देह हुआ तथा उसने उनकी तलाशी लेनी चाही। बख्शी जी तलाशी के पूर्व ही उसे अलग ले गये और सब खोल कर कहा कि वे क्रान्तिकारी हैं और इन बन्दूकों का इस्तेमाल देश के निमित्त क्रान्तिकारी कामों में होता है। इस पर वह व्यक्ति इतना प्रभावित हुआ कि बिलकुल शान्त हो गया। और कहने लगा 'बाबू जी आपके लिये मेरी जान हाजिर है।'' खैर, थोड़ी देर बाद वे वहाँ से खिसक गये। यदि उन्होंने इस प्रकार हाजिर बुद्धिमत्ता न दिखाई होती तो उन्हें अवश्य 'लालघर' (जेल) जाना पड़ता। इस प्रकार ये कितने ही मर्तबा बचे। क्रान्तिकारी बख्शी काम की धुन में खाना भी भूल जाते हैं। वे समयाभाव के कारण दाढ़ी भी न बना पाते और न अखबार ही ठीक से पढ़ पाते। ये बड़े अच्छे तैराक तथा साइकिलिस्ट भी हैं। उन्होंने एक बार क्रान्तिकारीदल की एक आवश्यकता के कारण लगातार झांसी से कानपुर तक बिना कहीं रुके साइकिल से सफर किया था। मुंह से खून आने लगा था, पर तो भी वे कहीं न रुके। ❑❑

लाहौर काण्ड और साण्डर्स हत्याकाण्ड के शहीद

क्रान्तिकारी शिरोमणि और क्रान्ति-लेखक
शहीद सरदार भगतसिंह

सरदार भगतसिंह उन क्रान्तिकारियों में से एक हैं जिनका नाम और काम व्यापक स्तर पर प्रसिद्ध हुआ। इसके कारण थे—सरदार भगतसिंह की क्रान्तिकारी पारिवारिक पृष्ठभूमि का होना, क्रान्तिकारी लेखक होना और उत्साही क्रान्तिकारी होना।

भगतसिंह ने जब से होश संभाला, उन्हें अपने परिवार में आर्यसमाजी संस्कार, देशभक्ति और क्रान्तिकारी-वातावरण मिला। भगतसिंह का जन्म जिला-लायलपुर के 'बंगा' नामक गांव में हुआ था। उनके दादा जी का नाम सरदार अर्जुनसिंह था। सरदार अर्जुनसिंह सिख परिवार के होते हुए भी संस्कारों से दृढ़ आर्यसमाजी थे। वे जहां भी जाते, अपने साथ एक पोटली रखते थे जिसमें यज्ञकुण्ड और यज्ञ सम्बन्धी सामान रहता था। वे प्रतिदिन यज्ञ करते थे। वे पूरी निष्ठा और गम्भीरता से महर्षि दयानन्द रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' का स्वाध्याय किया करते थे। सत्यार्थ प्रकाश के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। उस ग्रन्थ से उन्होंने स्वराज्य प्रेम की प्रेरणा ली थी। यही स्वराज्य भावना उनके तीनों पुत्रों श्री किशनसिंह, श्री अजीतसिंह और श्री स्वर्णसिंह में कूट-कूट कर भरी गयी थी। स्वराज्य के लिए तीनों पुत्रों ने कारावास भोगा, जेल की यातनाएं सहीं। स्वर्णसिंह तो जेल की यातनाओं से जर्जर शरीर के कारण युवावस्था में ही वीरगति को प्राप्त हो गये थे। भगतसिंह के पिता श्री किशन सिंह और चाचा अजीत सिंह को मांडले (बर्मा) की जेल में बंद किया हुआ था। ये जब छूटकर आये उसी दिन भगतसिंह का जन्म हुआ था।

भगतसिंह के दादा अर्जुनसिंह एक बार अपने गांव से ६० मील दूर किसी विवाह में शामिल होने के लिए गये। विवाह के अवसर पर सिख पुरोहित महर्षि दयानन्द रचित सत्यार्थप्रकाश के उदाहरण दे-दे कर उसकी कटु आलोचना कर रहा था। अर्जुनसिंह ने देखा कि वह व्यक्ति झूठे उदाहरण सुना-सुना कर लोगों को भड़का रहा था। अर्जुन

सिंह ने उसको टोकते हुए कहा कि 'आप लोगों को मिथ्या और कल्पित उद्धरण सत्यार्थप्रकाश के नाम पर सुना रहे हैं, ये बातें सत्यार्थप्रकाश में नहीं हैं। आप सत्यार्थप्रकाश को व्यर्थ बदनाम न करें, उसने कहा कि 'सत्यार्थप्रकाश लाओ, मैं सारे उद्धरण दिखा दूंगा।' उस समय कहीं-कहीं कोई-कोई पुस्तक मिलती थी। पुरोहित ने सोचा था कि तेरी बात ऊपर रह जायेगी। यहां किसके पास सत्यार्थप्रकाश मिलेगा ?

सत्यार्थप्रकाश के प्रति श्रद्धा रखने वाले श्री अर्जुनसिंह रात में ही ६० मील पैदल चलकर घर आये और सत्यार्थप्रकाश लेकर सबेरे तक पैदल ही वापस विवाहस्थल पर पहुंच गये। जब पुरोहित को सत्यार्थप्रकाश हाथ में थमा कर उद्धरण दिखाने के लिए कहा तो वह बगलें झांकने लगा। आखिर पुरोहित ने अपनी गलती के लिए माफी मांगकर पीछा छुड़ाया। इसी प्रकार भगतसिंह की दादी भी एक धार्मिक महिला थीं। यही संस्कार एवं परम्पराएँ भगतसिंह तक आयीं। तीन वर्ष की अवस्था में आपने गायत्री मन्त्र स्मरण कर लिया था। भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी पं. लोकनाथ जी वाचस्पति ने कराया था। शिक्षा प्राप्त करने के लिए आपके पिता जी ने आपको डी. ए.वी. स्कूल लाहौर में प्रवेश दिलाया। अन्तिम वर्षों में आपकी विचारधारा क्रान्तिकारी के साथ-साथ साम्यवादी हो गयी थी। देशहित और समाजहित के लिए आपने अपना जीवन लगा दिया। शेष जीवन-परिचय क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में प्रस्तुत है। (**सम्पादक**)

"सरदार भगतसिंह के विषय में लिखते हुए जो सब से पहली बात सामने आती है, वह यह कि उनके खानदान में देशभक्ति कोई अपरिचित वस्तु नहीं थी। उनके पिता सरदार किशनसिंह बड़े धीर, स्थिर और ज्ञानी व्यक्ति थे, फिर भी उन्हें पुलिस से बचने के लिए नेपाल जाना पड़ा था। उनके चाचा सरदार अजीतसिंह को क्रान्तिकारी आन्दोलन के सिलसिले में बहुत दिनों तक नजरबन्द किया जा चुका था। इसी प्रकार उनके एक अन्य चाचा सुवर्णसिंह भी किसी न किसी प्रकार से क्रान्तिकारी आन्दोलन से सम्बद्ध थे। जिस दिन सरदार भगतसिंह पैदा हुए, उसी दिन उनके चाचा अजीतसिंह और सुवर्णसिंह जेल से छूटे। इसी से खुश होकर उनकी दादी ने उनको भागों वाला या भाग्यवान् कहा और उनका नाम भगतसिंह पड़ा।

सरदार भगतसिंह ने डी०ए०वी० स्कूल से मैट्रीकुलेशन पास किया। उसके बाद वे नेशनल कॉलेज में पढ़ने लगे, जहां उनका परिचय सुखदेव,

भगवतीचरण, यशपाल आदि से हुआ जो बाद में चलकर बहुत प्रमुख क्रान्तिकारी हुए। इस कॉलेज में जयचन्द्र विद्यालंकार नाम के एक अध्यापक थे जो बहुत पहले शचीन्द्रनाथ सान्याल के प्रभाव में आ चुके थे। जयचन्द्र जी ने शचीन्द्रनाथ सान्याल के '**बन्दी जीवन**' के दूसरे भाग का अनुवाद भी किया था, जो बहुत कम लोगों को मालूम है। जयचन्द्र हिन्दू विचारों के थे, पर क्रान्ति का प्रचार करते थे। कुछ भी हो, इन्हीं के जरिए से भगतसिंह और उनकी मित्र मण्डली का प्रवेश क्रान्तिकारी दल में हो गया। गुरु गुड़ ही रह गए और चेले चीनी हो गए। जयचन्द्र का एक प्रभाव फिर भी इन लोगों पर यह रह गया कि सब के सब विद्याप्रेमी हुए। यद्यपि भगतसिंह सिख परिवार में पैदा हुए थे, पर उन्होंने हिन्दी भी सीख ली और हिन्दी में लिखने लगे।

जब भगतसिंह ने एफ०ए० पास कर लिया, तब घर वाले जो दूध के जले थे और फूंक फूंककर छाछ पीते थे, वह चाहने लगे कि भगतसिंह की शादी हो जाए। भगतसिंह ने समझा कि यह यों ही बात है, जैसे हुआ करती है टल जाएगी। इसलिए उन्होंने टालना शुरू किया, पर जब देखा कि बात टलने वाली नहीं है और घर वाले शादी करने पर उतारू हैं तो उन्होंने समझा कि शादी करके एक नवयुवती का जीवन नष्ट करने के बजाय घर से भाग चलना ही अच्छा है। तदनुसार वे वहां से भागे और भाग कर दिल्ली पहुंचे और 'अर्जुन' पत्र में काम करने लगे।

इसके बाद वे कानपुर गए, क्योंकि दिल्ली का पता घरवालों को मालूम हो चुका था। कानपुर में उन्होंने गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा प्रवर्तित्त और सम्पादित 'प्रताप' में कुछ काम करना शुरू किया और वहां वे अपना परिचय बलवन्तसिंह देने लगे। यही उनके दल का नाम भी बन गया।

जो कुछ भी हो, जब सरदार भगतसिंह कानपुर में थे, तब फिर एक बार घर वालों को पता लग गया कि वे कानपुर में हैं। यह खबर एक मित्र के जरिए से लगी थी। तब मित्र को सन्देश आया कि भगतसिंह की मां बहुत बीमार है और उसे कहो कि वह जल्दी घर चला आए। भगतसिंह को अपनी मां से बहुत प्यार था। वे फौरन घर चले गए। वहां फिर उन से शादी की बात नहीं कही गई। वहां उन दिनों सारे पंजाब में **गुरु का बाग** वाला अन्दोलन चल रहा था, जिसका उद्देश्य बहुत ही उचित था। वह यह था कि सिख महन्तों ने जो बड़ी-बड़ी जायदादों पर कब्जा कर रखा है, वे उनसे ले ली जाएं और सिख समाज को सौंपी

जाएं। कहना न होगा कि यह आन्दोलन भगतसिंह को बहुत पसन्द आया और उन्होंने उन लोगों की बड़ी सेवा की जो उनके गांव बंगा से होकर सत्याग्रह करने के लिए जत्थे ले जा रहे थे। ये जत्थे शहीदी जत्थे कहलाते थे। भगतसिंह ने इस आन्दोलन में भाग लेने वालों को पूरी मदद दी, पर वे स्वयं किसी जत्थे में शरीक नहीं हुए, क्योंकि वे जिस शहीदी जत्थे में शरीक हुए थे, उस जत्थे के पांव में बाकी सब जत्थे के पांव आ जाते थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन का उद्देश्य सब तरह से महन्तों और महन्ती का अन्त करके जनता के हाथ में राष्ट्र और सारे उत्पादन के साधन सौंपना था। अफसोस है कि भारत स्वतन्त्र हुए इतने दिन हो गए, पर हिन्दू-मुस्लिम-सिख- ईसाई महन्तों का खात्मा नहीं हुआ और वे धर्म के नाम पर साधारण जनता को उल्लू बनाकर खूब गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र का यह अर्थ नहीं।

इन्हीं दिनों की बात है कि बंगाल में गोपीमोहन शाहा एक अंग्रेज को मारकर शहीद हो गये। गांधी जी ने इस पर गोपीमोहन शाहा की बड़ी निन्दा की, पर बंगाल के नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास ने न केवल गोपीमोहन की प्रशंसा की, बल्कि सिरागंज प्रान्तीय सम्मेलन में गोपीमोहन की प्रशंसा के लिए एक प्रस्ताव पास कराया। गांधी और दास में इस बार सार्वजनिक रूप से बहुत लम्बा तर्क-वितर्क हुआ। सरदार भगतसिंह के कानों तक भी इसकी खबर पहुंची। उन्होंने लायलपुर में इस सम्बन्ध में एक भाषण किया। जिसमें क्रान्तिकारी पक्ष का जोरदार समर्थन किया और कहा कि प्रत्येक गुलाम जाति को अधिकार है कि वह जिस भी प्रकार चाहे और जिस भी प्रकार सम्भव हो अपनी गुलामी की जंजीर को तोड़ डाले। इस पर पुलिस ने भगतसिंह पर राजद्रोह का मुकदमा चलाना चाहा, पर मुकदमा चल नहीं सका और भगतसिंह के नेतृत्व में और भी नवजवान आ गए।

काकोरी षड्यन्त्र के जमाने में ही भगतसिंह पंजाब के क्रान्तिकारी नेता के रूप में मान लिये गए थे और काकोरी षड्यन्त्र में पेश किए गए गुप्त कागजात में लाहौर के उपदेशक नाम से जिस व्यक्ति का उल्लेख आया करता था, वे भगतसिंह ही थे। यद्यपि पुलिस को उस समय इसका पता नहीं था। भगतसिंह एक बार काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे का तमाशा देखने लखनऊ भी आए थे। उस समय मुकदमा सैयद ऐनुद्दीन की निम्न अदालत में चल रहा था।

जब तक काकोरी षड्यन्त्र चलता रहा तब तक क्रान्तिकारी दल

के अन्दर का नरम पक्ष साथ ही गिरफ्तार लोगों के रिश्तेदार बाहर के क्रान्तिकारियों और फरारों पर यह प्रभाव डालते रहे कि कोई ऐसा कार्य न किया जाए जिससे मुकदमे पर बुरा प्रभाव पड़े और सरकार बदला लेने के लिए तैयार हो जाए। भीतर-भीतर पुलिस के साथ एक समझौते की भी बातचीत चल रही थी, जिसका उद्देश्य यह था कि कुछ अभियुक्त एकदम छोड़ दिए जाएं किसी को फांसी न हो इत्यादि इत्यादि। पर पुलिस ने अन्त तक समझौता करना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसे काफी प्रमाण मिल गए और रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाकउल्ला और रोशनसिंह को फांसी की सजा दे दी गई। तब चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह और काकोरी षड्यन्त्र के दण्डित राजकुमारसिंह के छोटे भाई विजयकुमारसिंह खुलकर आन्दोलन में तेजी लाने के लिए तैयार हो गए। जब अपने साथियों को फांसी हो ही गई, तो फिर समझौता या रियायत का प्रश्न कहाँ उठता था। सब से पहले यह चेष्टा की गई कि जेल में पड़े क्रान्तिकारियों को जेल से निकाला जाए। पर इस कार्य में भी सफलता नहीं मिली। सफलता मिल तो सकती थी, पर उसके लिए बहुत दाम देने की जरूरत थी, जो उचित न होती। यदि एक व्यक्ति को जेल से छुड़ाने के लिए दस क्रान्तिकारी मारे जाते, तो यह उचित बात न होती।

इसलिए यह कार्यक्रम भी छोड़ दिया गया। दल का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन था। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने यह नाम रखा था। दल का उद्देश्य प्रजातन्त्र की स्थापना था। संविधान में यह बता दिया गया था कि दल ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव हो, साथ ही दल के एक पर्चे में जो गुप्त रूप से पेशावर से लेकर रंगून तक बांटा गया था, यह कहा गया था कि दल के सामने ऋषि-मुनियों के आदर्श के साथ ही रूस का आदर्श भी है। फिर भी स्पष्ट रूप से समाजवाद का नाम नहीं लिया गया था। अब चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, विजयकुमारसिंह, सुरेन्द्र पाण्डेय आदि ने यह जरूरी समझा कि दल का उद्देश्य स्पष्ट रूप से समाजवाद बता दिया जाए। तदनुसार दल का नाम हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोशिएशन यानी हिन्दुस्तान सामाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ कर दिया गया। इसके उद्देश्य में और स्पष्ट कर दिया गया कि दल समाजवाद के लिए लड़ रहा है। यह स्मरण रहे कि उस समय तक कांग्रेस ने ध्येय के रूप में पूर्ण स्वतन्त्रता भी नहीं अपनायी थी, समाजवाद की बात तो दूर रही। कांग्रेस ने समाजवाद के ध्येय को स्वतन्त्रता के

बाद लाने को अगाड़ी में अपनाया है। इससे यह स्पष्ट है कि विचारों के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी दल कांग्रेस से बहुत आगे रहा। कांग्रेस ने समाजवाद के ध्येय को कहां तक नारे के रूप में ही अपनाया है और कहां तक वास्तविक रूप में, अभी यह देखना है।

दल की ओर से उत्तर भारत में कई जगह बम के कारखाने खोले गए। साथ ही **नौजवान भारत सभाओं** की भी स्थापना हुई। यदि क्रान्तिकारी दल पर सरकार का उस प्रकार से प्रहार न होता, जिस प्रकार कि आगे चलकर हुआ, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि **नौजवान भारत सभा** कांग्रेस से अधिक शक्तिशाली और जनप्रिय हो जाती।

क्रान्तिकारी दल बराबर जनता को साथ लेकर चलने की चेष्टा करता रहा। इसका प्रमाण यह है कि जब १९२८ में साइमन कमीशन का ऐलान हुआ कि वह आकर भारत के भविष्य के ढांचे का निर्णय करे, तो कांग्रेस ने तो केवल बायकाट का ही नारा दिया, पर क्रान्तिकारी इससे आगे बढ़ गए और वे कमीशन के सदस्यों को ही मार डालना चाहते थे। उस सम्बन्ध में एक प्रयत्न भी हुआ जिसमें मार्कण्डेय, हरेन्द्र भट्टाचार्य और मनमोहन ने भाग लिया, पर वह सफल नहीं हुआ।

कांग्रेस के नेतृत्व में ब्रिटेन से भेजे हुए साइमन का बायकाट चालू रहा। जब कमीशन लाहौर में १० अक्तूबर १९२८ को पहुंचा तो उसका बायकाट करते समय एक भीड़ का नेतृत्व करते हुए लाला लाजपतराय पर लाठियां पड़ीं। चोटें बहुत अधिक थीं। लाला जी ने तभी बिस्तरा पकड़ लिया और १७ नवम्बर १९२८ को इस चोट के कारण उनका देहान्त हो गया। इस खबर से सारे देश में बहुत खलबली मच गई।

क्रान्तिकारियों ने यह सोचा कि यदि इस राष्ट्रीय अपमान का बदला न लिया गया, तो जनता को बहुत धक्का लगेगा और साइमन कमीशन के बायकाट से जो जोश उत्पन्न हुआ था, वह समाप्त हो जाएगा। तदनुसार यह निश्चय हुआ कि लाला लाजपतराय की हत्या के लिए जिम्मेदार पुलिस अफसर को मारा जाए। इसके लिए चार व्यक्ति नियुक्त हुए-

(१) चन्द्रशेखर आज़ाद, (२) भगतसिंह, (३) शिवराम राजगुरु और (४) जयगोपाल ।

जब साण्डर्स नामक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट अपनी मोटर साइकल पर पुलिस के दफ्तर से निकल रहा था, तो उस पर हमला हुआ। साण्डर्स वहीं गिर पड़ा और क्रान्तिकारी भाग गए। इस मौके पर विजयकुमार

सिन्हा भी आसपास रिजर्व के रूप में मौजूद थे।

साण्डर्स की हत्या से सारे भारत में खुशी की लहर दौड़ गई, क्योंकि लोगों के सामने यह स्पष्ट हो गया कि एक न्यायालय ऐसा है जहां भारतीयों के लिए भी न्याय हो सकता है। पर ब्रिटिश सरकार एकदम पागल हो गई और बड़ी कठिनाई से क्रान्तिकारी लाहौर से बाहर निकल पाए। चन्द्रशेखर आजाद को भागने में ज्यादा दिक्कत नहीं हुई, पर **भगतसिंह को कौशल से बाहर निकलना पड़ा। वे शहीद भगवतीचरण की पत्नी दुर्गादेवी और उनके शिशु पुत्र की सहायता से बाहर निकल पाए।**

इसके बाद भगतसिंह चाहते तो रूस आदि में भाग सकते थे, पर उन्होंने ऐसा उचित नहीं समझा। इस समय तक परिस्थिति ऐसी थी कि राष्ट्रीय यज्ञ जारी था और वह आहुति मांग रहा था। आहुतियाँ तो बहुत हो चुकी थीं, पर इस आहुति के साथ-साथ बहरों को सुनाने के लिए धड़ाके के साथ बीजमन्त्र देने की जरूरत थी। ऐसा मन्त्र जो कान में पड़कर शाखा-प्रशाखा फैलाकर नस-नस के रक्तकण में लालिमा के रूप में फैल जाए। यह बीज मन्त्र था इन्कलाब जिन्दाबाद और उसके साथ-साथ समाजवाद का ध्येय। जब बंकिमचन्द्र ने अपने उपन्यास **'आनन्द मठ'** में **'वन्देमातरम्'** शब्द का प्रयोग किया था तब उन्हें शायद पता न हो कि वह एक बीजमन्त्र के रूप में लगभग अर्द्धशताब्दी तक अपना कार्य करेगा और उसका कवच पहनकर कितने ही देशभक्त फांसी पर लटक जाएंगे या काले पानी की कालकोठरियों में कुलबुलाते रहेंगे, फिर भी घुटना नहीं टेकेंगे। अब यह मन्त्र कुछ घिस पिट चुका था इतना कि अब सिक्के पर क्या लिखा है, पढ़ा नहीं जाता था। इस बीच गांधी जी आये, पर उन्होंने सत्य और अहिंसा का जो नारा दिया, वह जन-जन की गइराइयों में पैठ नहीं सका था। एक विनोबा भावे के अतिरिक्त किसी ने इस नारे को सिवा एक राजनैतिक पेच के रूप में ग्रहण नहीं किया था।

अब भगतसिंह के सामने प्रश्न यह था कि यह नया बीज मन्त्र कैसे भारत को दिया जाए ताकि वह तब तक गूंजे और उसमें से लपटें और धुआं निकलता रहे जब तक कि सही अर्थों में समाजवाद की स्थापना न हो जाए। यह तय हुआ कि ऐसी नाटकीय स्थिति में इन्कलाब ज़िन्दाबाद का नारा बुलन्द किया जाए कि वह फौरन हजारों-लाखों के मन में आग छुआ दे। केवल नाटक या नाटकीयता से कुछ नहीं होने का था।

इतिहास नाटकों से नहीं बदला करता उसके लिए रक्त की आवश्यकता होती है। भगतसिंह ने इसके लिए अपना रक्त देने का निश्चय किया। उनको बहुत समझाया गया कि तुम पर तो लाहौर वाली हत्या का मुकद्दमा है, पर वे नहीं माने और कानपुर के बटुकेश्वर दत्त को साथ लेकर उन्होंने १९२९ की ८ अप्रैल को दिल्ली में असेम्बली भवन में बम डाला। बम मारने का उद्देश्य किसी को मारना नहीं था, बल्कि जैसा कि उस समय के बांटे गये पर्चे में बताया गया था उद्देश्य था 'बहरों को सुनाना।' इस पर्चे में यह स्पष्ट रूप से लिखा था कि भारतीय क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य समाजवाद की स्थापना है और हमारा नारा है 'इन्कलाब जिन्दाबाद।'

उसी दिन से सारे भारत में इन दो युवकों का नाम प्रसिद्ध हो गया। एक नेता ने इनके विरुद्ध एक बयान प्रकाशित किया, पर जनता ने उन पर थू-थू की। मुकदमा चला और भगतसिंह ने फिर एक बार पूरी तरह से बताया कि दल किन उद्देश्यों को लेकर चल रहा है और क्या चाहता है। जब लोगों ने यह वक्तव्य पढ़ा, तब पता लगा कि क्रान्तिकारी किन उद्देश्यों को लेकर अब लड़ रहे हैं। उनका उद्देश्य न तो हिन्दू राज्य था, न मुस्लिम राज्य, बल्कि मेहनत करने वाले वर्ग का राज्य था।

दोनों अभियुक्तों को आजन्म कालापानी की सजा दे दी गई और भगतसिंह को लाहौर षड्यन्त्र के मुकदमे में ले जाया गया। भगतसिंह के अतिरिक्त सुखदेव, किशोरीलाल, विजयकुमार सिन्हा, कुन्दनलाल, शिवराम राजगुरु, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, यतीन्द्रनाथ दास, जयदेव कपूर, कमलनाथ तिवारी, जितेन्द्र सान्याल, आशाराम, देशराज, प्रेमदत्त, महावीरसिंह, सुरेन्द्र पाण्डेय, अजय घोष पर मुकदमा चला। ७ अक्तूबर १९३० तक यह मुकदमा चलता रहा। इस मुकदमे का इतिहास स्वयं ही एक बहुत बड़ा इतिहास है। बीच में कई बार अनशन हुए। अभियुक्त बराबर अदालत के सामने नारे लगाते रहे और वक्तव्य देते रहे जो सारे अखबारों में प्रकाशित होते रहे। भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी तथा विजयकुमार सिन्हा, महावीरसिंह, किशोरीलाल, शिववर्मा, गयाप्रसाद, जयदेव और कमलनाथ त्रिवेदी को आजन्म कालेपानी, कुन्दनलाल को सात वर्ष और प्रेमदत्त को तीन साल की सजा हुई। मुकदमे की अपील प्रीवी कौंसिल तक की गई, पर फांसी की सजा बहाल रही और २३ मार्च १९३१ को भगतसिंह और उनके साथियों को फांसी दे दी गई।

इसी बीच देश में बहुत कुछ हो चुका था। सत्याग्रह आन्दोलन

चल चुका था और स्थगित हो चुका था। भगतसिंह की फांसी से लोगों पर यह प्रकट हो चुका था कि सरकार किसी तरह समझौता करना नहीं चाहती। फिर भी कुछ लोग समझौते की आशा लेकर चल रहे थे।

भगतसिंह ने अन्तिम समय तक साहस का परिचय दिया। उन्होंने अपने भाई को एक पत्र में ये शेर लिखे थे–

उसे फ़िक्र है हरदम नया तर्ज़े जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक है देखें सितम का इन्तहा क्या है।
घर से क्यों खफा रहे खर्च का क्यों गिला करे,
सारा जहां अदू यही आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूं ऐ अहले महफ़िल,
चिराग़े सहर हूं बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते ख़ाक है फानी रहे या न रहे।"

(मन्मथनाथ रचित 'भारत के क्रान्तिकारी' से)

शहीद भगतसिंह के कुछ ऐतिहासिक पत्र

अपने मित्र अमरचन्द (जो उस समय अमरीका में पढ़ रहे थे) को लिखा भगतसिंह का सन् १९२७ का पत्र–

प्यारे भाई अमरचन्द जी,

नमस्ते।

अर्ज है कि इस दफा अचानक मां के बीमार होने पर इधर आया और आपकी मोहतरिमा वाल्दा (आदरणीया मां) के दर्शन हुए। आपका खत पढ़ा। इसके लिए यह (साथ वाला) खत लिखा। साथ ही चार अल्फाज (शब्द) लिखने का मौका मिल गया। क्या लिखूं करमसिंह विलायत गया है, उसका पता भेजा जा रहा है। अभी तो उसने लिखा है कि लॉ पढ़ेगा, मगर कैसे चल रहा है सो खुदा जाने। खर्च बहुत ज्यादा हो रहा है।

भाई हमारी मुमालिक गैर (विदेश) में जाकर तालीम (शिक्षा) हासिल करने की ख्वाहिस खूब पासमाल(बर्बाद) हुई। अच्छा तुम्हीं लोगों को सब मुबारक। कभी मौका मिले तो कोई अच्छी-अच्छी कुतक (पुस्तक) भेजने की तकलीफ उठाना। आखिर अमेरिका में लिट्रेचर तो बहुत है। खैर अभी तो अपनी तालीम में बुरी तरह फंसे हुए हो।

सान्फ्रांसिस्को वगैरह की तरफ से सरदार जी (अजीतसिंह) का शायद कुछ पता मिल सके। कोशिश करना। कम-अज-कम जिन्दगी का यकीन तो हो जाये। मैं अभी लाहौर जा रहा हूँ, कभी मौका मिले तो खत तहरीर फरमाइयेगा। पता सूत्र मण्डी लाहौर होगा और क्या लिखूं? कुछ लिखने को नहीं है। मेरा हाल भी खूब है। बारहा (कई बार) मुसायब (मुसीबतों) का शिकार होना पड़ा। आखिर में वापस ले लिया गया। बादवां (बाद में) फिर गिरफ्तार हुआ। साठ हजार की जमानत पर रिहा हूं। अभी तक कोई मुकदमा मेरे खिलाफ तैयार नहीं हो सका और ईश्वर ने चाहा तो नहीं भी हो सकेगा। आज एक बरस होने को आया, मगर जमानत वापस नहीं ली गयी। जिस तरह ईश्वर को मंजूर होगा। ख्वाहमखाह तंग करते हैं। भाई खूब दिल लगाकर तालीम हासिल करते चले जाओ।

आपका ताबेदार

भगतसिंह

बटुकेश्वर दत्त को पत्र

सेण्ट्रल जेल लाहौर

अक्तूबर १९३०

प्रिय भाई,

मुझे सजा सुना दी गयी है और फांसी का हुक्म हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अलावा फांसी का इन्तजार करने वाले बहुत से मुजरिम हैं। यह लोग यही प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि किसी तरह वे फांसी से बच जायें। **लेकिन उनमें से शायद मैं अकेला ऐसा आदमी हूं जो बड़ी बेसब्री से उस दिन का इन्तजार कर रहा हूं, जब मुझे अपने आदर्श के लिए फांसी के तख्ते पर चढ़ने का सौभाग्य मिलेगा। मैं खुशी से फांसी के तख्ते पर चढ़कर दुनियां को दिखा दूंगा कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से कुर्बानी दे सकते हैं।**

मुझे फांसी की सजा मिली है, मगर तुम्हें उम्र कैद। तुम जिन्दा रहो और जिन्दा रहकर तुम्हें दुनिया को यह दिखाना है कि क्रान्तिकारी अपने आदर्शों के लिए सिर्फ मर ही नहीं सकते बल्कि जिन्दा रहकर हर तरह की यातनाओं का मुकाबला भी कर सकते हैं। मौत सांसारिक मुसीबतों से छुटकारा पाने का साधन नहीं बननी चाहिए बल्कि जो क्रान्तिकारी संयोगवश फांसी के फन्दे से बच गये हैं उन्हें जिन्दा रहकर दुनिया को यह दिखा देना चाहिए कि वे न सिर्फ अपने आदर्शों के लिए फांसी पर

चढ़ सकते हैं बल्कि जेलों की अन्धेरी कोठरियों में घुट-घुटकर हद दर्जे के अत्याचारों को भी सहन कर सकते हैं।

तुम्हारा
भगतसिंह

छोटे भाई कुलवीर को पत्र

सेण्ट्रल जेल लाहौर
१६ सितम्बर, १९३०

प्यारे भाई कुलवीर जी

सतश्री अकाल!

तुम्हें मालूम ही होगा कि उच्च अधिकारियों के आदेशानुसार मुझसे मुलाकातों पर पाबन्दी लगा दी गयी है। इन स्थितियों में फिलहाल मुलाकात न हो सकेगी और मेरा विचार है कि जल्द ही फैसला सुना दिया जायेगा। इसके कुछ दिनों बाद किसी दूसरी जेल भेज दिया जायेगा। इसलिए किसी दिन जेल में आकर मेरी किताबें और कागजात आदि चीजें ले जाना। मैं बर्तन, कपड़े, किताबें और अन्य कागजात जेल के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के दफ्तर में भेज दूंगा। आकर ले जाना। पता नहीं क्यों मेरे मन में बार-बार यह विचार आ रहा है कि इसी हफ्ते के किसी दिन या अधिक से अधिक इसी माह में फैसला और चालान हो जायेगा। इन स्थितियों में अब तो किसी अन्य जेल में मुलाकात होगी। यहां तो उम्मीद नहीं।

वकील को भेज सको तो भेजना। मैं प्रीवी कौंसिल के सिलसिले में एक जरूरी मशविरा करना चाहता हूं। मां जी को दिलासा देना, घबराएं नहीं।

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

कुलवीर को एक और पत्र

सेण्ट्रल जेल लाहौर
२५ सितम्बर,१९३०

प्रिय भाई कुलवीरसिंह जी,

सतश्री अकाल !

मुझे यह जानकर कि एक दिन तुम मां जी को साथ लेकर आये और मुलाकात का आदेश न मिलने से निराश होकर लौट गये, बहुत दु:ख हुआ। तुम्हें तो पता चल चुका था कि जेल में मुलाकात की इजाजत

नहीं देते। फिर मां जी को साथ क्यों लाये? मैं जानता हूं कि इस समय वे बहुत घबरायी हुई हैं लेकिन इस घबराहट और परेशानी का क्या फायदा ? नुकसान जरूर है, क्योंकि जब से मुझे पता चला कि वे बहुत रो रही हैं, मैं स्वयं बेचैन हो रहा हूँ। घबराने की कोई बात नहीं, फिर इससे कुछ मिलता भी नहीं। सभी साहस से हालात का मुकाबला करें। आखिरकार दुनिया में दूसरे लोग भी तो हजारों मुसीबतों में फंसे हुए हैं। और फिर अगर लगातार एक बरस तक मुलाकातें करके भी तबीयत नहीं भरी तो और दो चार मुलाकातों से भी तसल्ली न होगी। मेरा ख्याल है कि फैसले और चालान के बाद मुलाकातों से पाबन्दी हट जायेगी लेकिन माना कि इसके बावजूद मुलाकात की इजाजत न मिले तो..... इसलिए घबराने से क्या फायदा ?

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

कुलवीर के नाम अन्तिम पत्र

सेण्ट्रल जेल लाहौर
३ मार्च १९३१

तुमने मेरे लिए बहुत कुछ किया। मुलाकात के समय तुमने अपने ख़त के जवाब में कुछ लिख देने के लिए कहा था। कुछ शब्द लिख दूं बस। देख, मैंने किसी के लिए कुछ न किया। तुम्हारे लिए भी न कर सका। आज तुम सब को विपदाओं में छोड़कर जा रहा हूं। तुम्हारी जिन्दगी का क्या होगा? गुजर किस तरह करोगे? यही सब सोच कर कांप जाता हूं । लेकिन भाई हौसला रखना। विपदाओं में कभी न घबराना। इसके सिवाय और क्या कह सकता हूं। अमेरिका जा सकते तो बहुत अच्छा होता। लेकिन अब तो यह नामुमकिन जान पड़ता है। धीरे धीरे हिम्मत से पढ़ लो। अगर कोई काम सीख सको, तो बेहतर होगा। लेकिन सब कुछ पिताजी की सलाह से करना। जहां तक सम्भव हो प्यार-मुहब्बत से रहना। इसके सिवाय और क्या कहूं? जानता हूं कि आज तुम्हारे दिल में गम का समुद्र ठाठें मार रहा है। तुम्हारे बारे में सोच कर मेरी आंखों से आंसू आ रहे हैं, लेकिन क्या किया जा सकता है? हौसला रख मेरे अजीज! मेरे प्यारे भाई, जिन्दगी बड़ी सख्त है और दुनियां बड़ी बेरहम है, लोग भी बहुत बेरहम हैं। सिर्फ हिम्मत और प्यार से गुजारा हो सकेगा। कुलतार की पढ़ाई की चिन्ता भी तुम्हीं करना। बहुत शर्म आती है और

अफसोस के सिवाय मैं कर भी क्या सकता हूं। साथ वाला खत हिन्दी में लिखा है। खत बी०के० बहन को दे देना। अच्छा नमस्कार, अजीज भाई अलविदा... रुखसत।

तुम्हारा शुभाकांक्षी,
भगतसिंह

कुलतार के नाम अन्तिम पत्र

सेण्ट्रल जेल लाहौर,
३ मार्च १९३१

प्यारे कुलतार,

आज तुम्हारी आंखों में आंसू देख कर बहुत दु:ख पहुंचा। आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था। तुम्हारे आंसू मुझ से सहन नहीं होते।

बरखुरदार हिम्मत से विद्या प्राप्त करना और स्वास्थ्य का ध्यान रखना। हौसला रखना और क्या कहूं–

उसे बस फिक्र है सरदम नया तर्ज़े जफा क्या है,
हमें यह शौक है देखें सितम की इन्तहा क्या है।
घर से क्यों ख़फ़ा रहे खर्च का क्यों गिला करे,
सारा जहां अदू यही आओ मुकाबला करें।
कोई दम का मेहमां हूं ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूं बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते ख़ाक है फानी रहे या न रहे।

अच्छा रुखसत। खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं। हिम्मत से रहना। नमस्ते !

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

बलिदान से पहले साथियों को अन्तिम पत्र

२२ मार्च १९३१

साथियो !

स्वाभाविक है कि जीने की इच्छा मुझ में भी होनी चाहिए, मैं इसे छिपाना नहीं चाहता। लेकिन मैं एक शर्त पर जिन्दा रह सकता हूं कि मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जीना नहीं चाहता।

मेरा नाम हिन्दुस्तानी क्रान्ति का प्रतीक बन चुका है और क्रान्तिकारी दल के आदर्शों और कुर्बानियों ने मुझे बहुत ऊंचा उठा दिया है। इतना ऊंचा कि जीवित रहने की स्थिति में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता।

आज मेरी कमजोरियां जनता के सामने नहीं हैं। अगर मैं फांसी से बच गया तो वे जाहिर हो जायेंगी और क्रान्ति का प्रतीक चिह्न मद्धिम पड़ जायेगा या सम्भवत: मिट ही जाये। लेकिन दिलेराना ढंग से हंसते-हंसते मेरे फांसी चढ़ने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएं अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और देश की आजादी के लिए कुर्बानी देने वालों की तादाद इतनी बढ़ जायगी कि क्रान्ति को रोकना साम्राज्यवाद या तमाम शैतानी शक्तियों के बूते की बात नहीं रहेगी।

हां! एक विचार आज मेरे मन में आता है कि देश और मानवता के लिए जो कुछ करने की हसरतें मेरे दिल में थी, उनका हजारवां भाग भी पूरा नहीं कर सका। अगर स्वतन्त्र जिन्दा रह सकता तब शायद इन्हें पूरा करने का अवसर मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता।

इसके सिवाय मेरे मन में कभी कोई लालच फांसी से बचे रहने का नहीं आया। मुझ से अधिक सौभाग्यशाली कौन होगा? आजकल मुझे स्वयं पर गर्व है। अब तो बड़ी बेताबी से अन्तिम परीक्षा का इन्तजार है। कामना है कि यह और नजदीक हो जाय।

आपका साथी,
भगतसिंह।

क्रान्तिकारी शिवराम राजगुरु

श्री शिवराम का जन्म १९०९ में हुआ था। आप बचपन में बड़े दृढ़ थे। ६ वर्ष की आयु में आपके पिता जी का देहान्त हो गया। आपके बड़े भाई दिनकर जी उन दिनों पूना में नौकरी करते थे। इसलिए पिताजी की मृत्यु के बाद आप सपरिवार पूना में ही रहने लगे। श्री शिवराम प्रारम्भिक शिक्षा के लिए मराठी पाठशाला में भेजे गये किन्तु उनका मन पढ़ने-लिखने में नहीं लगता था अपितु खेलने में अधिक रुचि थी। खेलने की प्रवृत्ति को देखकर बड़े भाई ने आपको धमका दिया कि खेलकूद छोड़कर पढ़ने में मन लगाओ। इससे भयभीत होकर आपने पाठ्य पुस्तकों में से एक उपन्यास को लेकर पढ़ना आरम्भ कर दिया। इस पर भाई जी और बिगड़े और कहा कि यदि तुम्हें पढ़ना न हो तो घर

से निकल जाओ।

आप घूमते-घूमते पूना, नासिक, झांसी, कानपुर, लखीमपुर होते काशी पहुंच गये। वहां संस्कृत पढ़ी।

सन् १९२८ में फिर कानपुर चले आये। यहां आने के थोड़े ही दिन पीछे आपके विचारों में परिवर्तन हो गया और आप फिर घूमते-घूमते पंजाब चले गये। वहां पर सरदार भगतसिंह, श्री सुखदेव, आजाद की पार्टी में सम्मिलित हो गये और आप पंजाब में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए भगतसिंह का साथ देने लगे। इसी अवसर की दो तीन घटनाएं मैं आपके सम्मुख उपस्थित करता हूं। जिनसे पता चलेगा कि श्री राजगुरु में ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने के लिए कितनी श्रद्धा थी।

जब भगतसिंह ने लाला लाजपतराय के वध का बदला लेने का प्रस्ताव रखा और उससे निश्चित हुआ कि लाला जी के वध के जिम्मेदार लाहौर के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट स्कॉट को गोली से मार दिया जाये। तब राजगुरु ने जिद पकड़ी कि मारूंगा मैं। भगतसिंह ने कहा मगर पकड़े जाने पर केस चलने पर ऐसा बयान दिया जाये जिसको सुनकर जनता में जागृति हो। इस कारण राजगुरु अकेला अयोग्य समझा गया और अन्त में निश्चय यह हुआ कि स्कॉट को मारने के लिए राजगुरु, भगतसिंह एवम् आजाद जायें और जयगोपाल को मौका देखने और स्कॉट साहब को पहचानने तथा उनकी गतिविधि का ज्ञान रखने आदि के लिए नियुक्त किया गया। यही जयगोपाल दुर्भाग्य का कारण हुआ जो कि बाद में लाहौर केस में माफीखोर सरकारी साक्षी बना।

चार दिन बाद यह टुकड़ी अपने काम पर जाती रही थी। परन्तु स्कॉट साहब निर्दिष्ट स्थान मालरोड पर पुलिस कार्यालय से निकला ही नहीं। निडर होकर राजगुरु ने आजाद से कहा अन्दर जाकर ही ठीक किये आता हूं अर्थात् पुलिस दफ्तर में काम करते हुए स्कॉट को गोली से मार आता हूं। आजाद ने इनकी बात न मानी क्योंकि आजाद ने भी प्रोगाम बनाकर ठीक काम किया हुआ था।

इतने में ही पुलिस अफसर कार्यालय से निकला उनका मुन्शी मोटर साइकिल लिए उसके साथ था। जयगोपाल ने संकेत किया देखो शायद वह आया। भगतसिंह ने संकेत किया अरे यह वह मालूम नहीं होता। राजगुरु ने समझा कि अभी मत मार, जरा इधर आने दो। अर्थात् वह

भगतसिंह के रेंज में जाये तो भगतसिंह गोली चलाये। भला राजगुरु को यह कब स्वीकर हो सकता था। अफसर मोटरसाइकिल पर पैर रखने ही वाला था कि राजगुरु के रिवाल्वर से निकली हुई गोली उसके सिर के पार हो गई वह वहीं ढेर हो गया। फिर भगतसिंह ने आगे बढ़कर पिस्तौल की आठ गोलियों से पुलिस अफसर की लाश को रोड पर झुलसा दिया। घर अर्थात् निवास स्थान पर आने पर राजगुरु ने कहा भगतसिंह ने आठ कारतूस बेकार खराब किये। (घर आने का समाचार भगतसिंह आदि के जीवन चरित्र में देख लेना) इसी गोली काण्ड के बाद ही फर्न्स नामक व्यक्ति राजगुरु को पकड़ने के लिए लपका। जिसे देखकर राजगुरु ने अपना रिवाल्वर सीधा किया और बटन दबाया। परन्तु गोली किसी कारणवश न चली। राजगुरु ने रिवाल्वर कोट की जेब में डाला और आगे बढ़कर फर्न्स से भिड़ गया और उसे मालरोड की कठोर भूमि पर ऐसा पछाड़ा कि वह वहां से उठ न सका। स्मरण रहे कि यह जो ऊपर पुलिस अफसर मारा गया था साण्डर्स था, जो कि लाला लाजपतराय के वध का उतना ही जिम्मेदार था जितना कि स्कॉट।

आप पूना में पकड़े गये और भगतसिंह और सुखदेव के साथ आपको भी फांसी की सजा मिली। अन्त में २३ मार्च १९३१ फांसी का दिन निश्चित कर दिया गया। साधारणत: फांसी प्रात:काल दी जाती है पर सूरज की साक्षी से यह दुष्कृत्य करने का साहस अंग्रेज सरकार में भी नहीं था। सरकार ने रात में ही खत्म करने का निश्चय किया। जेल के सभी द्वार बन्द कर दिए गए। सात बजकर बत्तीस मिनट पर तीनों क्रान्तिकारी वीरों को कोठरी से निकाला गया। आंखों पर टोपी चढ़ाकर फांसी के तख्ते पर खड़ा कर दिया गया। ठीक इसी समय 'डाउन डाउन विद यूनियन जैक' के नारे लगाये गए। आवाजें एकाएक बन्द हो गईं और उसके बाद तीन लाशें स्ट्रेचर पर रक्खी हुई दीवार में एक छेद से बाहर कर दी गईं। जेल से लाशें ले जाकर सतलुज के किनारे जहां कि लाला जी की मृत्यु हुई थी वहां लाशों पे मिट्टी का तैल डालकर भस्म कर दी गई। यह काम सरकार की ओर से बड़े गुप्त रूप से झटपट पूरा किया गया और भस्म सतलुज नदी में बहा दी गई।

क्रान्तिकारी सुखदेव

श्री सुखदेव खास लायलपुर (पंजाब) के रहने वाले थे। आपका जन्म मिती फाल्गुन सुदि ६ संवत् १९६४ को दिन के पौने ग्यारह बजे

हुआ था। आपके पिता का देहान्त आपके जन्म से तीन मास पहले हो चुका था। इसलिए सेवा और शिक्षा का प्रबन्ध आपके चाचा अचिन्तराम ने किया था। **आपका जन्म आर्यसमाजी घराने में होने के कारण आप पर आर्यसमाज का विशेष प्रभाव पड़ा। जहां भी आर्यसमाज का सत्संग होता था वहां पर आप अवश्य जाते थे। और आपको हवन सन्ध्या योगाभ्यास का भी शौक था।**

सन् १९१९ में पंजाब के अनेक शहरों में मार्शल ला जारी था। उस समय आपकी आयु बारह वर्ष की थी और सातवीं श्रेणी में पढ़ते थे। आपके चाचा इसी मार्शल ला में गिरफ्तार कर लिए गये। बालक सुखदेव पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा। आपके चाचा अचिन्तराम का कहना है कि जब मैं जेल में था, तब सुखदेव मुझ से मिलने आता था। तब पूछता था कि चाचा जी क्या इस जेल में आपको कष्ट दिया जाता है। और कहता था कि मैं तो किसी को भी नमस्ते तक नहीं करूंगा।.....

महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन ने सुखदेव के जीवन को बदल डाला। उधर माता विवाह करना चाहती थी, परन्तु चाचा जी विरुद्ध थे। क्योंकि वे आर्य थे, अत: आर्य सिद्धान्त के अनुसार विवाह करना चाहते थे। आपकी माती जी जब-जब कहती थी कि **सुखदेव मैं तुम्हारी शादी करूंगी तो घोड़ी पर चढ़ोगे? तब सुखदेव सदा यही उत्तर देता था घोड़ी पर चढ़ने के बदले फांसी पर चढ़ूंगा।** .....नेशनल कालेज लाहौर में आपका परिचय भगतसिंह से हुआ था।

साइमन कमीशन के आने पर आप सब ने निश्चय किया कि समारोहपूर्वक प्रदर्शन करना चाहिए। समारोह के लिए झण्डियां बना रहे थे। इस समय केदारनाथ भी थे। परन्तु उन्हें नींद आ गई तो वे सो गये। उधर सुखदेव जी सरदार भगतसिंह के घर सो रहे थे। भगतसिंह ने भी कहा कि मैं भी सोता हूं परन्तु मित्रों ने न सोने दिया। उसी समय भगतसिंह के अन्दर विचार आया कि यदि पुलिस हमारे पर घेरा डालेगी तो सुखदेव पकड़ा जायेगा। इसलिए सुखदेव को सावधान करने के लिए एक मित्र को भेजा। उसने थोड़े से समय में आकर कहा कि भगतसिंह के घर पुलिस पहुंच गई है।

पुलिस ने श्री सुखदेव को पकड़ लिया और बहुत प्रश्न किए परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया। आपको बारह घण्टे जेल में रखा गया। इसके पश्चात् कुछ लोगों ने जाकर आपको छुड़वा दिया।

इसके पश्चात् कुछ लोगों में पार्टी का विचार हुआ तो भगतसिंह और सुखदेव ने यह प्रस्ताव रखा कि नवयुवकों को राजनीतिक शिक्षा देनी चाहिए। सरदार भगतसिंह ने प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। इनके पश्चात् यह कार्य श्री सुखदेव को सौपा गया। आप इस प्रचार के कार्य को बहुत दिनों तक बड़ी सफलता के साथ करते रहे। आपका सिद्धान्त था कि मैं केवल कार्य करना चाहता हूं, प्रशंसा नहीं।

इसके पश्चात् १५ अप्रैल सन् १९१९ को श्री किशोरीलाल और प्रेमनाथ के साथ आपकी भी गिरफ्तारी हो गई। अन्त में सात अक्तूबर सन् १९३० को फांसी का दण्ड सुनाया और २३ मार्च सन् १९३१ को चौबीस वर्ष की आयु में आप को भगतसिंह और राजगुरु के साथ फांसी पर लटका दिया गया और लाश को तैल छिड़क कर जला ,नदी में बहा दिया। (**सम्पादक**)

शहीदों का ऐतिहासिक पत्र–

हम युद्ध बन्दी हैं

अंग्रेजी कुकृत्यों की घृणित दास्तान

२० मार्च १९३१

प्रति गवर्नर पंजाब, शिमला

महोदय,

उचित सम्मान के साथ हम नीचे लिखी बातें आपकी सेवा में रख रहे हैं–

भारत की ब्रिटिश सरकार के सर्वोच्च अधिकारी वाइसराय ने एक विशेष अध्यादेश जारी करके लाहौर षड्यन्त्र अभियोग की सुनवायी के लिए एक विशेष न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) स्थापित किया था जिसने ७ अक्तूबर १९३० को हमें फांसी का दण्ड सुनाया। हमारे विरुद्ध सब से बड़ा आरोप यह लगाया गया कि हमने सम्राट् जार्ज पंचम के विरुद्ध युद्ध किया है।

न्यायालय के इस निर्णय से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

पहली यह कि अंग्रेज जाति और भारतीय जनता के मध्य एक युद्ध चल रहा है। दूसरे यह कि हमने निश्चित रूप में इस युद्ध में भाग लिया है, अत: हम युद्धबन्दी हैं।

यद्यपि इनकी व्याख्या में बहुत सीमा तक अतिशयोक्ति से काम लिया गया है तथापि हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि ऐसा करके

हमें सम्मानित किया गया है। पहली बात के सम्बन्ध में हम तनिक विस्तार से प्रकाश डालना चाहते हैं। हम नहीं समझते कि प्रत्यक्ष रूप में ऐसी कोई लड़ाई छिड़ी हुई है। हम नहीं जानते कि युद्ध छिड़ने से न्यायालय का आशय क्या है? परन्तु हम इस व्याख्या को स्वीकार करते हैं और साथ ही इसे इसके ठीक सन्दर्भ में समझाना चाहते हैं।

युद्ध की स्थिति

हम यह कहना चाहते हैं कि युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी, जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज पूंजीपति और अंग्रेज या सर्वथा भारतीय ही हों उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। यदि शुद्ध भारतीय पूंजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो तो भी इस स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपकी सरकार कुछ नेताओं या भारतीय समाज के मुखियों पर प्रभाव जमाने में सफल हो जाये, कुछ सुविधाएं मिल जायें अथवा समझौता हो जाये, इससे भी स्थिति नहीं बदल सकती तथा जनता पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ता है। हमें इस बात की चिन्ता नहीं कि युवकों को एक बार फिर धोखा दिया गया है और इस बात का भी भय नहीं है कि हमारे राजनीतिक नेता पथ भ्रष्ट हो गये हैं और वे समझौते की बातचीत में इन निरपराध बेघर और निराश्रित बलिदानियों को भूल गये हैं जिन्हें दुर्भाग्य से क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य समझा जाता है। हमारे राजनीतिक नेता उन्हें अपना शत्रु समझते हैं क्योंकि उनके विचार में वह हिंसा में विश्वास रखते हैं। हमारी वीरांगनाओं ने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उन्होंने अपने पतियों को बलिवेदी पर भेंट किया, भाई भेंट किये और जो कुछ भी उनके पास था, सब न्योछावर कर दिया। उन्होंने अपने आपको भी न्योछावर कर दिया। परन्तु आपकी सरकार उन्हें विद्रोही समझती है। आपके एजेण्ट भले ही झूठी कहानियां बनाकर उन्हें बदनाम कर दें और पार्टी की प्रसिद्धि को हानि पहुंचाने का प्रयास करें परन्तु यह युद्ध चलता रहेगा।

युद्ध के विभिन्न स्वरूप

हो सकता है कि यह लड़ाई भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण करे। किसी समय यह लड़ाई प्रकट रूप ले ले, कभी गुप्त दशा में चलती रहे, कभी भयानक रूप धारण कर ले, कभी किसान के

स्तर पर युद्ध जारी रहे और कभी यह घटना इतनी भयानक हो जाये कि जीवन और मृत्यु की बाजी लग जाये। चाहे कोई भी परिस्थिति हो, इसका प्रभाव आप पर पड़ेगा। यह आपकी इच्छा है कि आप जिस परिस्थिति को चाहें, चुन लें। परन्तु यह लड़ाई जारी रहेगी। इसमें छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बहुत सम्भव है कि युद्ध भयंकर स्वरूप ग्रहण कर ले, पर निश्चय ही यह उस समय तक समाप्त नहीं होगा, जब तक कि समाज का वर्तमान ढांचा समाप्त नहीं हो जाता, प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन या क्रान्ति समाप्त नहीं हो जाती और मानवी सृष्टि में एक नवीन युग का सूत्रपात नहीं हो जाता।

अन्तिम युद्ध

निकट भविष्य में अन्तिम युद्ध लड़ा जायेगा और युद्ध निर्णायक होगा। साम्राज्यवाद व पूंजीवाद कुछ दिनों के मेहमान हैं। यही वह लड़ाई है जिसमें हमने प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया है और हम अपने पर गर्व करते हैं कि इस युद्ध को न तो हमने प्रारम्भ किया है और न यह हमारे जीवन के साथ समाप्त ही होगा। हमारी सेवाएं इतिहास के उस अध्याय में लिखी जायेंगी जिसको यतीन्द्रनाथ दास और भगवतीचरण के बलिदानों ने विशेष रूप में प्रकाशमान कर दिया है इनके बलिदान महान् हैं। जहां तक हमारे भाग्य का सम्बन्ध है हम जोरदार शब्दों में आपसे यह कहना चाहते है कि आपने फांसी पर लटकाने का निर्णय कर लिया है, आप ऐसा करेगें ही, आपके हाथों में शक्ति है और आपको अधिकार भी प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार आप **जिसकी लाठी उसकी भैंस** वाला सिद्धान्त ही अपना रहे हैं और आप उस पर कटिबद्ध हैं। हमारे अभियोग की सुनवाई इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि हमने कभी कोई प्रार्थना नहीं की और अब भी हम आपसे किसी प्रकार की दया की प्रार्थना नहीं करते। हम आपसे केवल यह प्रार्थना करना चाहते हैं कि आपकी सरकार के ही एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार हमारे विरुद्ध 'युद्ध जारी रखने' का अभियोग है। इस स्थिति में हम युद्धबन्दी हैं, अत: इस आधार **हम आपसे मांग करते हैं कि हमारे प्रति युद्धबन्दियों जैसा ही व्यवहार किया जाये और हमें फांसी देने के बदले गोली से उड़ा दिया जाये।**

अब यह सिद्ध करना आपका काम है कि आपका उस निर्णय में विश्वास है जो आपकी सरकार के न्यायालय ने किया है। आप अपने कार्य द्वारा इस बात का प्रमाण दीजिए। हम विनयपूर्वक आपसे प्रार्थना

करते हैं कि **आप अपने सेना विभाग को आदेश दे दें कि हमें गोली से उड़ाने के लिए एक सैनिक टोली भेज दी जाये।**

भवदीय

भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव

बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में
भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेवसिंह के बयान

(असेम्बली में बम फेकने के बाद ६ जून सन् १९२९ को दिल्ली के सेशन जज मि० लियोनाई मिडिल्ट की अदालत में दिया गया सरदार भगतसिंह और दत्त का ऐतिहासिक बयान –**सम्पादक**)

हमारे ऊपर गम्भीर आरोप लगाये गये हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भी अपनी सफाई में कुछ शब्द कहें। हमारे कथित अपराध के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं: (१)क्या वास्तव में असेम्बली में बम फेंके गये थे, यदि हां तो क्यों? (२) नीचे की अदालत में हमारे ऊपर जो आरोप लगाये गये हैं, वे सही हैं या गलत ?

पहले प्रश्न के पहले भाग के लिए हमारा उत्तर स्वीकारात्मक है लेकिन तथाकथित चश्मदीद गवाहों ने इस मामले में जो गवाही दी है, वह सरासर झूठ है। चूंकि हम बम फेंकने से इन्कार नहीं कर रहे हैं, इसलिए यह इन गवाहों के बयानों की सच्चाई की परख भी हो जानी चाहिए। उदाहरण के लिए हम यह बतला देना चाहते हैं कि सार्जेण्ट टेरी का यह कहना कि उन्होंने हम में से एक के पास से पिस्तौल बरामद की, वह एक सफेद झूठ मात्र है, क्योंकि जब हमने अपने आपको पुलिस के हाथों सौंपा तो हम में से किसी के पास कोई पिस्तौल न थी। जिन गवाहों ने कहा कि उन्होंने हमें बम फेंकते देखा था, वे झूठ बोलते हैं। न्याय तथा निष्कपट व्यवहार को सर्वोपरि मानने वाले लोगों को इन झूठी बातों से एक सबक लेना चाहिए। साथ ही हम सरकारी वकील के उचित व्यवहार तथा अदालत के अभी तक के न्याय संगत रवैये को भी स्वीकार करते हैं।

पहले प्रश्न के दूसरे हिस्से का उत्तर देने के लिए हमें इस बमकाण्ड जैसी ऐतिहासिक घटना के कुछ विस्तार में जाना पड़ेगा। हमने वह काम किस अभिप्राय से तथा किन परिस्थितियों के बीच किया, इसकी पूरी एवं खुली सफाई आवश्यक है।

जेल में हमारे पास कुछ पुलिस अधिकारी आये थे। उन्होंने हमें बतलाया कि लार्ड ईर्विन ने इस घटना के बाद ही असेम्बली के दोनों सदनों के सम्मिलित अधिवेशन में कहा कि यह विद्रोह किसी व्यक्ति विशेष के खिलाफ नहीं, वरन् सम्पूर्ण शासन व्यवस्था के विरुद्ध था। यह सुनकर हमने तुरन्त भांप लिया कि लोगों ने हमारे इस काम के उद्देश्य को सही तौर पर समझ लिया है।

मानवता को प्यार करने में हम किसी से पीछे नहीं हैं। हमें किसी से व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। और हम प्राणिमात्र को हमेशा आदर की निगाह से देखते आये हैं। **हम न तो बर्बरतापूर्ण उपद्रव करने वाले देश के कलंक हैं जैसा कि सोशलिस्ट कहलाने वाले दीवान चमनलाल ने कहा है, और न ही हम पागल हैं जैसा कि लाहौर के ट्रिब्यून तथा कुछ अन्य समाचार पत्रों ने सिद्ध करने का प्रयास किया है।** हम तो केवल अपने देश के इतिहास, उसकी मौजूद परिस्थिति तथा अन्य मानवोचित आकांक्षाओं के मननशील विद्यार्थी होने का विनम्रपूर्वक दावा भर कर सकते हैं। हमें ढोंग तथा पाखण्ड से नफरत है।

एक अपकारजनक संस्था

यह काम हमने किसी व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना से नहीं किया है। हमारा उद्देश्य केवल उस शासन व्यवस्था के विरुद्ध प्रतिवाद प्रकट करना था जिसके हर एक काम से उसकी अयोग्यता ही नहीं, वरन् अपकार करने की उसकी असीम क्षमता भी प्रकट होती है। इस विषय में हमने जितना विचार किया, उतना ही हमें इस बात का दृढ विश्वास होता गया कि वह केवल संसार के सामने भारत की लज्जाजनक तथा असहाय अवस्था का ढिंढोरा पीटने के लिए ही कायम है और वह एक गैरजिम्मेवार तथा निरंकुश शासन का प्रतीक है।

जनता के प्रतिनिधियों ने कितनी ही बार राष्ट्रीय मांगों को सरकार के सामने रखा, परन्तु उस ने उन मांगों की सर्वथा अवहेलना करके, हर बार उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दिया। सदन द्वारा पास किये गये गम्भीर प्रस्तावों को भारत की तथाकथित पार्लियामेण्ट के सामने ही तिरस्कारपूर्वक पैरों तले रौंदा गया। दमनकारी तथा निरंकुश कानूनों को समाप्त कराने की मांग करने वाले प्रस्तावों को हमेशा अवज्ञा की दृष्टि से ही देखा गया है। और जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों ने सरकार के जिन कानूनों तथा प्रस्तावों को अवांछित एवं अवैधानिक बता कर रद्द कर दिया था,

उन्हें केवल कलम हिलाकर ही सरकार ने लागू कर दिए हैं।

संक्षेप में बहुत कुछ सोचने के बाद भी एक ऐसी संस्था के अस्तित्व का औचित्य हमारी समझ में नहीं आ सका जो बावजूद उस तमाम शानो शौकत के जिसका आधार भारत के करोड़ों मेहनतकशों की गाढ़ी कमाई है, केवल मात्र एक दिल को बहलाने वाली थोथी दिखावटी और शरारतों से भरी हुई संस्था है। हम सार्वजनिक नेताओं की मनोवृत्ति को समझ पाने में भी असमर्थ हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे नेतागण भारत की असहाय परतन्त्रता की खिल्ली उड़ाने वाले इतने स्पष्ट एवं पूर्वनियोजित प्रदर्शनों पर सार्वजनिक सम्पत्ति एवं समय बर्बाद करने में सहायक क्यों बनते हैं।

हम इन्हीं प्रश्नों तथा मजदूर आन्दोलन के नेताओं की धरपकड़ पर विचार कर ही रहे थे कि सरकार 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' लेकर सामने आयी। हम इसी सम्बन्ध में असेम्बली की कार्यवाही देखने गये। वहां हमारा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि भारत की लाखों मेहनतकश जनता एक ऐसी संस्था से किसी बात की भी आशा नहीं कर सकती जो भारत के बेबस मेहनतकशों की दासता तथा शोषकों की गलाघोटू शक्ति की अहितकारी यादगार है।

अन्त में यह कानून जिसे हम बर्बर एवम् अमानवीय समझते हैं, देश के प्रतिनिधियों के सरों पर पटक दिया और इस प्रकार करोड़ों संघर्षरत भूखे मजदूरों को प्राथमिक अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया और उनके हाथों से उनकी आर्थिक मुक्ति का एक मात्र हथियार भी छीन लिया गया। जिस किसी ने भी कमरतोड़ परिश्रम करने वाले मूक मेहनतकशों की हालत पर हमारी तरह सोचा है, वह शायद स्थिर मन से यह सब नहीं देख सकेगा। बलि के बकरों की भांति शोषकों और सब से बड़ी शोषक स्वयं सरकार है, की बलिवेदी पर आये दिन होने वाली मजदूरों की इन मूक कुर्बानियों को देख जिस किसी का दिल रोता है, वह अपनी आत्मा की चीत्कार की उपेक्षा नहीं कर सकता।

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य स्वर्गीय श्री एस०आर० दास ने अपने प्रसिद्ध पत्र में अपने पुत्र को लिखा था, इग्लैण्ड की स्वप्ननिद्रा भंग करने के लिए बम का उपयोग आवश्यक था। श्री दास के इन्हीं शब्दों को सामने रखकर हमने असेम्बली भवन में बम फेंके थे। हमने वह काम मजदूरों की तरफ से प्रतिरोध प्रदिर्शित

करने के लिए किया था। उन असहाय मजदूरों के पास अपने मर्मान्तक क्लेशों को व्यक्त करने का और कोई साधन भी तो नहीं था। हमारा एक मात्र उद्देश्य था बहरे को सुनाना और पीड़ितों की मांगों पर ध्यान न देने वाली सरकार को समय रहते चेतावनी देना।

हमारी ही तरह दूसरों की भी परोक्ष धारणा है कि प्रशान्त सागर रूपी भारतीय मानवता की ऊपरी शान्ति किसी भी समय फूट पड़ने वाले एक भीषण तूफान की द्योतक है। हमने तो उन लोगों के लिए सिर्फ खतरे की घण्टी बजायी है जो आने वाले भयानक खतरे की परवाह किये बगैर तेज रफ्तार से आगे की तरफ भागे जा रहे हैं। हम लोगों को सिर्फ यह बतला देना चाहते हैं कि काल्पनिक अहिंसा का युग अब समाप्त हो चुका है और आज की उठती हुई नयी पीढ़ी को उसकी व्यर्थता में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं रह गया है।

मानवता के प्रति हार्दिक सद्भाव तथा अमित प्रेम रखने के कारण उसे व्यर्थ के रक्तपात से बचाने के लिए हमने चेतावनी देने के इस उपाय का सहारा लिया है। और उस आने वाले रक्त पल को हम ही नहीं लाखों आदमी पहले से ही देख रहे हैं।।

काल्पनिक अहिंसा

ऊपर काल्पनिक अहिंसा शब्द का प्रयोग किया है। यहां पर उसकी व्याख्या कर देना भी आवश्यक है। आक्रामक उद्देश्य से जब बल का प्रयोग होता है, उसे हिंसा कहते है और नैतिक दृष्टिकोण से उसे उचित नहीं कहा जा सकता। लेकिन जब उसका उपयोग किसी वैध आदर्श के लिए किया जाता है, तो उसका नैतिक औचित्य भी होता है। किसी हालत में बल प्रयोग नहीं होना चाहिए, यह विचार काल्पनिक और अव्यावहारिक है। इधर देश में जो नया आन्दोलन तेजी के साथ उठ रहा है और जिसकी पूर्व सूचना हम दे चुके हैं वह छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, कमाल पाशा, रिजा खां, वाशिंगटन, गैरीबाल्डी, लाफासेट और लेनिन के आदर्शों से ही प्रस्फुरित है और उन्हीं के पद चिह्नों पर चल रहा है। चूंकि भारत की विदेशी सरकार तथा हमारे राष्ट्रीय नेतागण दोनों ही इस आन्दोलन की ओर से उदासीन लगते हैं और जानबूझकर उसकी पुकार की ओर से अपने कान बन्द करने का प्रयत्न कर रहे हैं, अतः हमने अपना कर्तव्य समझा कि हम एक ऐसी चेतावनी दें जिसकी अवहेलना न की जा सके।

हमारा अभिप्राय

अभी तक हमने इस घटना के मूल उद्देश्य पर ही प्रकाश डाला है अब हम अपना अभिप्राय भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इस घटना के सिलसिले में मामूली चोटें खाने वाले व्यक्तियों अथवा असेम्बली के किसी अन्य व्यक्ति के प्रति हमारे दिलों में कोई वैयक्तिक विद्वेष की भावना नहीं थी। इसके विपरीत हम एक बार फिर स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम मानव जीवन को अकथनीय पवित्रता प्रदान करते हैं और किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाने के बजाय हम मानव जाति की सेवा में हंसते-हंसते अपने प्राण विसर्जित कर देंगे। हम साम्राज्यशाही की सेना के भाड़े के सैनिकों जैसे नहीं हैं जिनका काम ही नर हत्या होता है। हम मानव जीवन का आदर करते हैं और बराबर उसकी रक्षा का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद भी हम स्वीकार करते हैं कि हमने जान-बूझकर असेम्बली भवन में बम फेंके।

घटनाएं स्वयं हमारे अभिप्राय पर प्रकाश डालती हैं। और हमारे इरादों की परख हमारे काम के परिणाम के आधार पर होनी चाहिए, न कि अटकल एवं मनगढ़नत परिस्थितियों के आधार पर। सरकारी विशेषज्ञ की गवाही के विरुद्ध हमें यह कहना है कि असेम्बली भवन में फेंके गये बमों से वहां की एक खाली बेंच का ही कुछ नुकसान पहुंचा और लगभग आधे दर्जन लोगों को मामूली सी खरोचें भर आयी। सरकारी वैज्ञानिकों ने कहा है कि बम बड़े जोरदार थे और उनसे अधिक नुकसान नहीं हुआ, इसे एक अनहोनी घटना ही कहना चाहिए। लेकिन हमारे विचार से उन्हें वैज्ञानिक ढंग से बनाया ही गया था। पहले तो दोनों बम बेंचों तथा डेस्कों के बीच की खाली जगह में ही गिरे थे। दूसरे उनके फूटने की जगह से दो फीट पर बैठे हुए लोगों को भी जिनमें मि० पी०आर०राउ, मि० शंकर राव तथा सर जार्ज शुस्टर के नाम उल्लेखनीय हैं या तो बिल्कुल ही चोटें नहीं आयी या मात्र मामूली आयीं। अगर उन बमों में जोरदार पोटाशियम क्लोरेट और पिक्रिक एसिड भरा होता जैसा कि सरकारी विशेषज्ञ ने कहा है तो इन बमों ने उस लकड़ी के घेरे को तोड़कर कुछ गज की दूरी पर खड़े हुए लोगों तक को उड़ा दिया होता। और यदि उसमें कोई और भी शक्तिशाली विस्फोटक भरा जाता तो निश्चय ही वे असेम्बली के अधिकांश सदस्यों को उड़ा देने में समर्थ होते। यही नहीं यदि हम चाहते तो उन्हें सरकारी कक्ष में फेंक सकते थे जो विशिष्ट

व्यक्तियों से खचाखच भरा था या फिर उस सर जान साइमन को अपना निशाना बना सकते थे जिसके अभागे कमीशन ने प्रत्येक विचारशील व्यक्ति क़े दिल में उसकी ओर से गहरी नफरत पैदा कर दी थी और जो उस समय असेम्बली की अध्यक्ष दीर्घा में बैठा था। लेकिन इस तरह का हमारा कोई इरादा नहीं था और उन बमों ने उतना ही काम किया जितने के लिए उन्हें तैयार किया गया था। यदि उससे कोई अनहोनी घटना हुई तो यही कि वे निशाने अर्थात् निरापद स्थान पर गिरे।

एक ऐतिहासिक सबक

इसके बाद हम ने इस कार्य का दण्ड भोगने के लिए अपने आपको जान बूझकर पुलिस के हाथों समर्पित कर दिया। हम साम्राज्यवादी शोषकों को यह बतला देना चाहते थे कि मुट्ठी भर आदमियों को मारकर किसी आदर्श को समाप्त नहीं किया जा सकता और न ही दो नगण्य व्यक्तियों को कुचलकर राष्ट्र को दबाया जा सकता है। हम इतिहास के इस सबक पर जोर देना चाहते थे कि परिचय पत्र या परिचय चिह्न (Letter decatchet) तथा बैस्टाइल (फ्रांस की कुख्यात जेल जहां राजनैतिक बन्दियों को घोर यन्त्रणाएं दी जाती थी। –अनुवादक) फ्रांस के क्रान्तिकारी आन्दोलन को कुचलने में समर्थ नहीं हुए थे। फांसी के फंदे और साइबेरिया की खानें रूसी क्रान्ति की आग को बुझा नहीं पायी थीं, तो फिर क्या अध्यादेश और सेफ्टी बिल्स भारत में आजादी की लौ को बुझा सकेंगी? षड्यन्त्रों का पता लगाकर या गढ़े हुए षड्यन्त्रों द्वारा नौजवानों को सजा देकर या एक महान् आदर्श के स्वप्न से प्रेरित नवयुवकों को जेलों में ठूंसकर क्या क्रान्ति का अभियान रोका जा सकता है? हां सामयिक चेतावनी से बशर्ते कि उसकी उपेक्षा न की जाय, लोगों की जानें बचायी जा सकती हैं और व्यर्थ की मुसीबतों से उनकी रक्षा की जा सकती है। आग ही देने का यह भार अपने ऊपर लेकर हमने कर्त्तव्य पूरा किया है।

क्रान्ति क्या है?

भगतसिंह से नीचे की अदालत में पूछा गया कि क्रान्ति से तुम लोगों का क्या मतलब है? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था कि क्रान्ति के लिए खूनी लड़ाइयाँ अनिवार्य नहीं हैं और न ही उसमें व्यक्तिगत प्रतिहिंसा के लिए कोई स्थान है। वह बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है–अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया कराने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढकने भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपना जीवन समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के शोषक पूंजीपति जरा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते है।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

आमूल परिवर्तन की आवश्यकता

सभ्यता का वह प्रासाद यदि समय रहते सम्भाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता, तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी ही समाज व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

सामयिक चेतावनी

यह हमारा उच्च आदर्श है और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने

एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है। लेकिन हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी, तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्त्ति के लिए एक भयंकर युद्ध का छिड़ना अनिवार्य है। सभी बाधाओं को रौंदकर आगे बढ़ते हुए उस युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारावर्ग के अधिनायकतन्त्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतन्त्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है। जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं क्योंकि ऐसे महान् आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इन्कलाब जिन्दाबाद !"

बमकाण्ड में हाई कोर्ट में बयान

(दिल्ली के सेशन जज ने असेम्बली बम केस में भगतसिंह को आजन्म कारावास दण्ड दिया था। लाहौर हाईकोर्ट में उसकी अपील की गयी। दिल्ली अदालत के निर्णय की आलोचना करते हुए भगतसिंह ने हाईकोर्ट में यह दूसरा बयान दिया—**सम्पादक**)

हमारे उद्देश्य पर ध्यान दें

"माई लार्ड,

हम न वकील हैं ,न अंग्रेजी विशेषज्ञ हैं और न हमारे पास डिग्रियां ही हैं, इसलिए हम से शानदार भाषणों की आशा न की जाय। हमारी प्रार्थना है कि हमारे बयान की भाषा सम्बन्धी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए उसके वास्तविक अर्थ को समझने का प्रयत्न किया जाये। दूसरे तमाम मुद्दों (प्वाइण्ट्स) को अपने वकीलों पर छोड़ते हुए मैं स्वयं एक मुद्दे पर अपने विचार प्रकट करूंगा। यह मुद्दा इस मुकद्दमे में बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्दा यह है कि हमारी नीयत क्या थी और हम किस हद तक अपराधी हैं।

यह बड़ा पेचीदा मामला है, इसलिए कोई भी व्यक्ति आपकी सेवा

में विचारों के विकास की वह ऊंचाई प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसके प्रभाव से हम एक खास ढंग से सोचने और व्यवहार करने लगे थे। हम चाहते हैं कि इसे दृष्टि में रखते हुए ही हमारी नीयत और अपराध का अनुमान लगाया जाये। प्रसिद्ध कानून विशारद सालामन के अनुसार किसी भी व्यक्ति के उसके अपराधी आचरण के लिए उस समय तक सजा नहीं मिलनी चाहिए जब तक उसका उद्देश्य कानून विरोधी सिद्ध न हो।

सेशन जज की अदालत में हमने जो लिखित बयान दिया था वह हमारे उद्देश्य की व्याख्या करता है और उस रूप में हमारी नीयत की व्याख्या भी करता था, लेकिन सेशन जज महोदय ने कलम की एक ही नोक से यह कहकर कि आमतौर पर अपराध को व्यवहार में लाने वाली बातें कानून के कार्य को प्रभावित नहीं करती और इस देश में कानूनी व्याख्याओं में कभी कभार ही उद्देश्य और नीयत की चर्चा होती है। हमारी सब कोशिशें बेकार कर दी।

माई लार्ड ! इन परिस्थितियों में सुयोग्य सेशन जज को उचित था कि या तो अपराध का अनुमान परिणाम से लगाते या हमारे बयान की मदद से मनोवैज्ञानिक पहलू का फैसला करते, पर उन्होंने इन दोनों में से एक भी काम नहीं किया।

विचारणीय बात यह है कि असेम्बली में हमने जो दो बम फेंके, उनसे किसी भी व्यक्ति की शारीरिक या आर्थिक हानि नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से हमें जो सजा दी गयी है वह कठोरतम ही नहीं, बदला लेने की भावना वाली भी है। यदि दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाये तो जब तक अभियुक्त की मनोभावना का पता न लगाया जाये, उसके असली उद्देश्य का पता ही नहीं चल सकता। यदि उद्देश्य को पूरी तरह भुला दिया जाये तो किसी भी व्यक्ति के साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि उद्देश्य को नजरों में न रखने पर संसार के बड़े-बड़े सेनापति साधारण हत्यारे नजर आयेंगे। सरकारी कर वसूल करने वाले अधिकारी चोर, जालसाज दिखाई देंगे और न्यायाधीशों पर भी कत्ल करने का अभियोग लगेगा। इस तरह तो समाज व्यवस्था और सभ्यता खूनखराबा, चोरी और जालसाजी बनकर रह जायेगी। यदि उद्देश्य की उपेक्षा की जाये, तो किसी हकूमत को क्या अधिकार है कि समाज के व्यक्तियों से न्याय करने को कहे? उद्देश्य की उपेक्षा की जाये तो हर धर्मप्रचारक झूठ का प्रचारक दिखायी देगा और हर पैगम्बर पर अभियोग लगेगा कि उसने करोड़ों भोले और अनजान

लोगों को गुमराह किया। यदि उद्देश्य को भुला दिया जाय तो हजरत ईसा मसीह गड़बड़ कराने वाले, शान्ति भंग करने वाले और विद्रोही प्रचार करने वाले दिखाई देंगे। और कानून के शब्दों में खतरनाक व्यक्तित्व वाले माने जायेंगे, लेकिन हम उनकी पूजा करते हैं, उनका हमारे दिलों में बेहद आदर है, उनकी मूर्ति हमारे दिलों में आध्यात्मिकता का स्पन्दन पैदा करती है। यह क्यों? यह इसलिए कि उनके प्रयत्नों का प्रेरक एक ऊंचे दर्जे का उद्देश्य था। उस युग के शासकों ने उनके उद्देश्य को नहीं पहचाना, उन्होंने उनके बाहरी व्यवहार को ही देखा, लेकिन उस समय से लेकर इस समय तक उन्नीस शताब्दियां बीत चुकी हैं, क्या हमने तब से लेकर अब तक कोई तरक्की नहीं की? क्या हम ऐसी गलतियां दोहरायेंगे? अगर ऐसा हो, तो मानना पड़ेगा कि इन्सानियत की कुर्बानियां, बड़े शहीदों के प्रयत्न बेकार रहे और आज भी हम उसी स्थान पर हैं, जहां आज से बीस शताब्दियों के पहले थे?

कानूनी दृष्टि से उद्देश्य का प्रश्न खास महत्त्व रखता है। जनरल डायर का उदाहरण लीजिए। उसने गोली चलायी और सैंकड़ों निरपराध और शस्त्रहीन व्यक्तियों को मार डाला, लेकिन फौजी अदालत ने उसे गोली का निशाना बनाने का हुक्म देने की जगह लाखों रुपये इनाम दिये। एक और उदाहरण पर ध्यान दीजिए–श्री खड्गबहादुरसिंह ने, जो एक गोरखा नौजवान है, कलकत्ता में एक अमीर मारवाड़ी को छुरे से मार डाला, यदि उद्देश्य को एक तरफ रख दिया जाये, तो खड्गबहादुर को मौत की सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन उसे कुछ वर्षों की सजा दी गयी और उस अवधि से भी बहुत पहले ही मुक्त कर दिया गया। क्या कानून में कोई दरार रखनी थी जो उसे मौत की सजा न दी गयी? या उसके विरुद्ध हत्या का अभियोग सिद्ध न हुआ ? उसने हमारी ही तरह अपना अपराध स्वीकार किया था, लेकिन उसका जीवन बच गया और स्वतन्त्र है। मैं पूछता हूं उसे फांसी की सजा क्यों नहीं दी गयी? उसका कार्य जंचा–तुला था। उसने पेचीदा ढंग की तैयारी की थी। उद्देश्य की दृष्टि से उसका कार्य (एक्शन) हमारे कार्य की अपेक्षा ज्यादा घातक और संगीन था। उसे इसलिए बहुत ही नर्म सजा मिली क्योंकि उसका मकसद नेक था। उसने समाज को ऐसी जोंक से छुटकारा दिलाया, जिसने कई एक सुन्दर लड़कियों का खून चूस लिया था। श्री खड्गबहादुरसिंह को महज कानून की प्रतिष्ठा बचाये रखने के लिए कुछ वर्षों की सजा दी गयी।

यह सिद्धान्त किस कदर गलत है। यह न्याय के बुनियादी सिद्धान्त का विरोध है जो कि इस प्रकार है—कानून आदमियों के लिए है, आदमी कानून के लिए नहीं हैं। इस दशा में क्या कारण है कि हमें भी वे रियायतें न दी जायें जो श्री खड्गबहादुरसिंह को मिली थी। स्पष्ट है कि उसे नर्म सजा देते समय उसका उद्देश्य दृष्टि में रखा गया था, अन्यथा कोई व्यक्ति किसी दूसरे को कत्ल करता है, तो फांसी की सजा से नहीं बच सकता। क्या इसलिए हमें कानूनी अधिकार नहीं मिल रहा कि हमारा कार्य हुकूमत के विरुद्ध था या इसलिए कि इस कार्य का राजनैतिक महत्त्व है?

माई लार्ड, इस दशा में मुझे यह कहने की आज्ञा दी जाये कि जो हुकूमत इन कमीनी हरकतों में आश्रय खोजती है जो हुकूमत व्यक्ति के कुदरती अधिकार छीनती है, उसे जीवित रहने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं। अगर यह कायम है, तो आरजी तौर पर और हजारों बेगुनाहों का खून इसकी गर्दन पर है। यदि कानून उद्देश्य नहीं देखता तो न्याय नहीं हो सकता और न ही स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

आटे में संखिया (ज़हर) मिलाना जुर्म नहीं बशर्ते कि इसका उद्देश्य चूहों को मारना है, लेकिन यदि इससे किसी आदमी को मार दिया जाये, तो वह कत्ल का अपराध बन जाता है। लिहाजा ऐसे कानूनों पर जो युक्ति (दलील) पर आधारित नहीं और न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध है, उन्हें समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे ही न्याय विरोधी कानूनों के कारण बड़े-बड़े श्रेष्ठ बौद्धिक लोगों ने बगावत के कार्य किये हैं।

हमारे मुकदमे के तथ्य बिल्कुल सादा हैं। ८ अप्रैल १९२९ को हमने सेण्ट्रल असेम्बली में दो बम फेंके। उनके धमाके से चन्द लोगों को मामूली खरोंचें आयीं। चेम्बर में हंगामा हुआ, सैंकड़ों दर्शक और सदस्य बाहर निकल गये। कुछ देर बाद खामोशी छा गयी। मैं और मेरे साथी बी० के० दत्त खामोशी के साथ दर्शक गैलरी मैं बैठे रहे, और हमने स्वयम् अपने को प्रस्तुत किया कि गिरफ्तार कर लिया जाय। हमें गिरफ्तार कर लिया गया। अभियोग लगाये गये और हत्या करने के प्रयत्न के अपराध में हमें सजा दी गयी, लेकिन बमों से ४-५ आदमियों को मामूली चोटें आयी और एक बेंच को मामूली सा नुकसान पहुंचा और जिन्होंने यह अपराध किया उन्होंने बिना किसी किस्म के हस्तक्षेप के अपने आपको गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। सेशन जज ने स्वीकार किया कि यदि हम भागना चाहते तो भागने में सफल हो सकते थे। हमने अपना अपराध स्वीकार किया और अपनी स्थिति स्पष्ट करने के

लिए बयान दिया। हमें सजा का भय नहीं है। लेकिन हम यह नहीं चाहते कि हमें गलत तौर पर समझा जाये। हमारे बयान से कुछ पैराग्राफ काट दिये गये हैं यह वास्तविक स्थिति की दृष्टि से हानिकारक है।

समग्र रूप से हमारे वक्तव्य के अध्ययन से साफ प्रकट होता है कि हमारे दृष्टिकोण से हमारा देश एक नाजुक दौर से गुजर रहा है। इस दशा में काफी ऊंची आवाज में चेतावनी देने की जरूरत थी और हमने अपने विचारानुसार चेतावनी दी है। सम्भव है कि हम गलती पर हों, हमारा सोचने का ढंग जज महोदय के सोचने के ढंग से भिन्न हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमें अपने विचार प्रकट करने की स्वीकृति न दी जाये और गलत बातें हमारे साथ जोड़ी जायें।

इन्कलाब ज़िन्दाबाद और साम्राज्यवाद मुर्दाबाद के सम्बन्ध में हमने जो व्याख्या अपने बयान में दी, उसे उड़ा दिया गया है, हालांकि यह हमारे उद्देश्य का खास भाग है। इन्कलाब ज़िन्दाबाद से हमारा यह उद्देश्य नहीं था जो आम तौर पर गलत अर्थ में समझा जाता है। पिस्तौल और बम इन्कलाब नहीं होते, बल्कि इन्कलाब की तलवार विचारों की सान पर तेज होती है और यही चीज थी जिसे हम प्रकट करना चाहते थे। हमारे इन्कलाब का अर्थ पूंजीवादी युद्धों की मुसीबतों का अन्त करता है। मुख्य उद्देश्य और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया समझे बिना किसी के सम्बन्ध में निर्णय देना उचित नहीं है। गलत बातें हमारे साथ जोड़ना साफ साफ अन्याय है।

इसकी चेतावनी देना बहुत आवश्यक था। बेचैनी रोज-रोज बढ़ रही है। यदि उचित इलाज न किया गया तो रोग खतरनाक रूप ले लेगा। कोई भी मानवीय शक्ति इसकी रोकथाम न कर सकेगी। अब हमने इस तूफान का रुख बदलने के लिए यह कार्रवाई की। हम इतिहास के गम्भीर अध्येता हैं। हमारा विश्वास है कि यदि सत्ताधारी शक्तियां ठीक समय पर सही कार्यवाहियां करती, तो फ्रांस और रूस की खूनी क्रान्तियां न बरस पड़तीं। दुनियां की कई बड़ी-बड़ी हुकूमतें विचारों के तूफान को रोकते हुए खून खराबे के वातावरण में डूब गयीं। सत्ताधारी लोग परिस्थितियों के प्रवाह को बदल सकते हैं। हम पहली चेतावनी देना चाहते थे और यदि हम कुछ व्यक्तियों की हत्या करने के इच्छुक होते तो हम अपने मुख्य उद्देश्य में असफल हो जाते। माई लार्ड इस नीयत (भावना) और उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए हमने कार्रवाई की और इस कार्रवाई के परिणाम हमारे बयान का समर्थन करते हैं। एक और नुक्ता (प्वाइण्ट)

स्पष्ट करना अवश्यक है। यदि हमें बमों की ताकत के सम्बन्ध में कतई ज्ञान न होता तो हम पं मोतीलाल नेहरू, श्री केलकर, श्री जयकर और श्री जिन्ना जैसे सम्माननीय राष्ट्रीय व्यक्तियों की उपस्थिति में क्यों बम फेंकते? हम नेताओं के जीवन किस तरह खतरे में डाल सकते थे? हम पागल तो नहीं हैं? और अगर पागल होते, तो जेल में बन्द करने के बजाय हमें पागलख़ाने में बन्द किया जाता। बमों के सम्बन्ध में हमें निश्चित जानकारी थी। उसी के कारण हमने ऐसा साहस किया। जिन बेंचों पर लोग बैठे थे उन पर बम फैंकना कहीं आसान काम था, लेकिन खाली जगह पर बमों का फैंकना निहायत मुश्किल काम था। अगर बम फैंकने वाले सही दिमाग़ों के न होते या वे परेशान (असन्तुलित) होते, तो बम खाली जगह की बजाय बेंचों पर गिरते, तो मैं कहूंगा कि खाली जगह के चुनाव के लिए जो हिम्मत हमने दिखायी उसके लिए हमें इनाम मिलना चाहिए। इन हालात में माई लार्ड, हम सोचते हैं कि हमें ठीक तरह समझा नहीं गया। आपकी सेवा में हम सजाओं में कमी कराने नहीं आये, बल्कि अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए आये हैं। हम चाहते हैं कि न तो हमसे अनुचित व्यवहार किया जाये, न ही हमारे सम्बन्ध में अनुचित राय दी जाय। सजा का सवाल हमारे लिए गौण है।"

❑❑

वीर माता-पिता का वीर बेटा

शहीद चन्द्रशेखर आज़ाद

(मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखित)

"चन्द्रशेखर आज़ाद का व्यक्तित्व काकोरी षड्यन्त्र के चार शहीद रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफ़ाकउल्ला और रोशनसिंह तथा सरदार भगतसिंह से इतना बंधा हुआ है कि इन पांचों की जीवनियों में उनकी जीवनी स्वत: आ जाती है। चन्द्रशेखर आजाद को उन थोड़े से महान् क्रान्तिकारियों में गिनाया जा सकता है, जो बहुत अच्छे संगठनकर्ता होने के साथ ही साथ त्याग की भावना से पूर्ण रूप से परिचालित होते थे। यह एक आश्चर्य की बात है कि अपने त्याग और निष्ठा की बदौलत वे किस प्रकार भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा, भगवान्दास, वैशम्पायन आदि विद्वान् क्रान्तिकारियों पर नेतृत्व करते थे, यद्यपि वे स्वयं बहुत ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे।

उनका जन्म मध्यप्रदेश के भावरा नामक गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित सीताराम था। सीताराम जी रोटी की तलाश में उन्नाव का बदरका नामक गांव छोड़कर भावरा आए थे। घर में कोई सुख नहीं था क्योंकि पण्डित सीताराम मामूली नौकर थे, इसलिए पहला मौका मिलते ही चन्द्रशेखर आजाद संस्कृत पढ़ने के लिए काशी रवाना हो गए। वहां के सम्बन्ध में उन्होंने सुन रखा था कि धर्मात्मा लोग संस्कृत पढ़ने वाले ब्राह्मणों को रहने की जगह और खाना देते हैं। चन्द्रशेखर आजाद को काशी में संस्कृत-छात्रों के साथ रहने का मौका मिला। इन्हीं दिनों गान्धी जी ने असहयोग आन्दोलन की पुकार दी और मजे की बात यह है कि काशी में संस्कृत छात्र अन्य मामलों में सब से पिछड़े होने पर भी उस समय सब से आगे बढ़ आये और उन्होंने स्कूल कालेजों में पिकेटिंग में भाग लिया। इसी सिलसिले में चन्द्रशेखर आजाद गिरफ्तार हो गए। दस्तूर के अनुसार उन पर मुकदमा चला।

यह वह जमाना था, जब अभियुक्त अदालत से सम्पूर्ण रूप से असहयोग करते थे। एक राजनीतिक अभियुक्त से पूछा गया- तुम्हारा नाम क्या है? चूंकि नवम्बर का महीना था, इसलिए उसने कह दिया मेरा नाम **नवम्बर** है।

पूछा गया—बाप का नाम? —**दिसम्बर।**

इन बातों को पढ़कर पाठक को हंसी आएगी, पर यह वह युग था, जब बहुत बड़े पैमाने पर राष्ट्र अपनी बेड़ियों को झनझनाकर तोड़ने के लिए उन्मुख हो रहा था। अदालत का अपमान, ब्रिटिश साम्राज्य का अपमान, ब्रिटिश सिंह की पूंछ ऐंठ देना, अपने पैरों पर खड़ा होना, ये ही उस युग की विशेषताएं थी। बालक चन्द्रशेखर से पूछा गया –

तुम्हारा नाम क्या है ? —**आज़ाद**

तुम्हारे बाप का नाम ? —**स्वाधीन,**

घर ? —**जेलखाना,**

मजिस्ट्रेट खरेघाट ने इस पर पन्द्रह बेंत की सजा दी। शायद ये मजिस्ट्रेट जीवित रहे और स्वतन्त्र भारत में बहुत बड़े ओहदे से रिटायर हुए। कुछ भी हो, **चन्द्रशेखर को जो अब आजाद भी हो चुके थे, पन्द्रह बेंत लगे। हर बेंत पर उन्होंने महात्मा गांधी की जय का नारा लगाया क्योंकि उन दिनों राष्ट्र की युद्ध घोषणा का यही नारा था।** बाद में चलकर इस बालक ने दो बातों में अपने इतिहास को झुठला दिया। एक तो उसने कहा था—मेरा घर जेलखाना है, पर वह उस बिना किराये के घर में आगे कभी गया ही नहीं। वह आजाद बना रहा। **दूसरी बात जो उसने झुठलाई वह यह थी कि बाद को चलकर वह क्रान्तिकारियों का महान् नेता बना और इस प्रकार महात्मा गांधी के जीवन दर्शन का सब से बड़ा जीता जागता विरोध और प्रतिवाद बना।** ऐसा क्यों हुआ, यह हम देखें तो बड़ी अजीब बातें सामने आएंगी। महात्मा गांधी ने १९२२ में चौरा-चौरी काण्ड के कारण अच्छा भला, चला चलाया आन्दोलन रोक दिया था। इस प्रकार आन्दोलन को एकाएक रोक दिए जाने से बहुत से लोगों को यहां तक कि महात्मा के परमभक्त देशबन्धु चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू को भी बड़ा धक्का लगा।

जब गांधी के भक्तों को ही धक्का लगा तो उन क्रान्तिकारियों का क्या कहना जो असहयोग आन्दोलन के कारण उसका नतीजा देखने के लिए चुप करके बैठ गए थे या असहयोग में कूद पड़े थे। रासबिहारी बोस के साथी शचीन्द्रनाथ सान्याल और गेंदालाल दीक्षित के दल के रामप्रसाद बिस्मिल फिर से मैदान में कूद पड़े। काशी में भी क्रान्तिकारियों का काम होने लगा।

बेंत खाकर छूटने के बाद चन्द्रशेखर आजाद का ज्ञानवापी में स्वागत हुआ था और मेज पर खड़ा करके उनका व्याख्यान हुआ था। सभास्थल

खचाखच भरा था। चन्द्रशेखर आजाद ने कुछ शब्द कहे थे जिस पर बड़ी तालियाँ बजी थी।

चन्द्रशेखर आजाद को काशी विद्यापीठ में पढ़ाने की चेष्टा हुई। काशी के प्रसिद्ध देशभक्त नेता और 'आज' पत्र के मालिक, विद्यापीठ के अन्यतम संचालक और उसका खर्च उठाने वाले बाबू शिवप्रसाद गुप्त चन्द्रशेखर आजाद को पढ़ाने का खर्च देने को तैयार थे और वे उन्हें अपने यहां रखना भी चाहते थे, पर उनका मन नहीं लगा और वे थोड़े ही दिनों में उनसे अलग हो गए। इन्हीं दिनों उन्हें क्रान्तिकारी दल का दूत प्रणवेश चटर्जी मिला, जिसने उनकी भेंट मुझ से कराई। इस प्रकार चन्द्रशेखर आजाद क्रान्तिकारी दल के सदस्य हो गये। जल्दी ही उन्होंने एक संगठनकर्ता के रूप में साथ ही असीम साहसी के रूप में नाम कर लिया। रामप्रसाद बिस्मिल ने उनका नाम 'क्विक सिलवर' यानी 'पारा' रखा और तब से चन्द्रशेखर आजाद क्रान्तिकारी दल के सबसे भयानक और कठिन कामों में भाग लेने लगे।

उन्होंने रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में बहुत सी राजनीतिक डकैतियों में तथा काकोरी ट्रेन डकैती में भाग लिया। ऐन काकोरी ट्रेन डकैती के बाद परिस्थिति बहुत कठिन हो गई और काशी में लोग खुल्लमखुल्ला यह कहने लगे कि यह डकैती क्रान्तिकारियों के द्वारा डाली गई है। यही नहीं, कुछ लोगों के नाम भी लिए जाने लगे। ब्रिटिश सरकार ने अब देर करना उचित नहीं समझा और एक दिन यानी २६ सितम्बर १९२५ को उस समय संयुक्तप्रान्त और अब के उत्तरप्रदेश में पुलिस ने गिरफ्तारियां और तलाशियां शुरू कर दीं। सभी मुख्य अभियुक्त पकड़े गए, पर चन्द्रशेखर आजाद नहीं पकड़े जा सके। वे स्थिति को सूंघकर समय पर सटक गए थे। उनके नाम से वारंट निकला, पर वे गिरफ्तार नहीं किए जा सके। यहां तक कि पुलिस को कुछ भी पता नहीं लगा। वे झांसी में भगवान्दास और मलकापुरकर आदि के साथ दल को चुपके चुपके संगठित करते रहे और जब काकोरी षड्यन्त्र का मुकदमा खत्म हो गया, तब वे फिर से सरकार पर हमला करने के लिए तैयार हुए। अब वे उत्तर भारत के क्रातिकारियों में सब से पुराने और तजुर्बेकार क्रान्तिकारी नेता थे, पर वे केवल इस नाते नहीं; वे सब से अधिक साहसी होने के नाते भी भगतसिंह, बटुकेश्वरदत्त, विजययकुमार सिन्हा, कमलनाथ तिवारी आदि के नेता रहे।

तब भारत में साइमन कमीशन आने वाला था, यह जांच करने के लिए कि भारत कहाँ तक स्वराज्य के उपयुक्त हुआ है, तो कांग्रेस ने ही

नहीं, भारत के सभी दलों ने यह तय किया कि इस कमीशन का बायकाट करना चाहिए। क्रान्तिकारी दल की एक टुकड़ी में मार्कण्डेय, मनमोहन गुप्त तथा हरेन्द्र भट्टाचार्य को भयानक बम देकर भेजा कि इस कमीशन को उड़ा दे, परन्तु जब ये तीनों व्यक्ति मनमाड़ के पास रेल से सफर कर रहे थे, तो बम फट गया। डिब्बे की छत उड़ गई। कई यात्री जिनमें मार्कण्डेय भी थे मारे गए। हरेन्द्र भट्टाचार्य गिरफ्तार होकर इकबाली बन गया। मनमोहन गुप्त को सात साल की सजा हुई।

जब साइमन कमीशन लाहौर पहुंचा तो उसका बायकाट करते हुए वृद्ध नेता लाजपतराय पर लाठियां पड़ीं और उन्होंने तब से जो बिस्तरा पकड़ा, तो वे मर ही गए। इससे देश में बड़ा शोर मचा और क्रान्तिकारियों ने चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि चार व्यक्तियों को साण्डर्स नामक गोरे पुलिस अफसर को मारने के लिए भेज दिया, जो लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिए जिम्मेदार था। चन्द्रशेखर आजाद भी इनमें थे।

इसके बाद ही भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने असेम्बली में बम डाला और साथ में एक वक्तव्य भी प्रचारित किया जिसमें दल का उद्देश्य मेहनतकश वर्ग का अधिनायकत्व या समाजवाद घोषित किया गया। इस कार्य के पीछे भी चन्द्रशेखर आजाद का हाथ था। उधर लाहौर षड्यन्त्र चला और भगतसिंह उसमें ले जाए गए और इस मुकद्दमे में भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा हुई।

चन्द्रशेखर आजाद फिर भी आजाद रहे, पुलिस उनके पीछे बहुत बुरी तरह पड़ी थी। वे इन्हीं दिनों जवाहरलाल नेहरू से भी मिले थे जिसका ब्यौरा जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है। **उसमें आजाद की भेंट का वर्णन करने के बाद जवाहरलाल ने यह लिखा है कि क्रान्तिकारी फासिस्टवादी मनोवृत्ति के होते थे।** इसका उत्तर १९३८ में प्रकाशित चन्द्रशेखर आजाद नामक पुस्तक में मैंने दिया था और उसकी प्रति भी मैं स्वयं जवाहरलाल नेहरू को दे आया था। फासिस्ट शब्द का अर्थ एक विशेष सन्दर्भ से सम्बन्ध रखता है। जहां पूंजीवाद पतनशील हो जाए और वह अपने नंगेपन को लोकतन्त्र के अंजीरी पत्तों से ढक न पाए और खूनी पंजा प्रकट करके अपने असली अधिनायकवादी खूनी रूप में आ जाए, वहीं फासिस्टवाद का उदय हुआ ऐसा माना जाता है। अवश्य जिस युग में जवाहरलाल की आत्मकथा प्रकाशित हुई, उस युग में सारे यूरोप में फासिस्ट शब्द का प्रयोग उन सब लोगों के लिए होता था, जिनसे अपना मतभेद हो।

चन्द्रशेखर आजाद की विस्तृत जीवनी में यह दिखलाया गया है कि वे किन विचारों के थे। सच्चे अर्थों में वे जनता के आदमी थे। भयंकर गरीबी में पले थे। दल में भी उन्होंने कभी एक पैसा खर्च नहीं किया, बल्कि भगवान्दास, विजयकुमार सिन्हा, वैशम्पायन आदि पर जो उनके वीर साथी थे, वे हमेशा लाठी लिये सवार रहते थे कि कहीं दल का पैसा एक कौड़ी ज्यादा न खर्च हो जाए। दिन भर के लिए फरारों को कुछ आने पैसे मिलते थे, यदि सिनेमा देखना है तो उसी में से बचाकर देखो, यही उनकी नीति थी। हर खतरे में वे सब से आगे रहते थे। कभी उन्होंने यह नहीं समझा कि मैं नहीं रहूंगा, तो दल नष्ट हो जाएगा, इसलिए मेरा बचे रहना जरूरी है। विचारों में भी वे बहुत आगे बढ़ गये थे और अन्त में धर्म के विराधी हो गए थे। उनका विचार यह हो गया था कि प्रचलित धर्म पूर्ण रूप से अयथेष्ट है और उनके कारण आदमी का मन खिलता नहीं है, बल्कि बन्द हो जाता है। काशी में रहने के कारण उन्हें यह मालूम हो चुका था कि पण्डे पुजारी तथा साधु किस प्रकार ढोंग और ढकोसले के शिकार हैं।

पुलिस बुरी तरह आज़ाद के पीछे पड़ी हुई थी और आजाद बराबर पुलिस की आंखों में धूल डालकर ऐन मौके पर भाग निकलते थे। पुलिस को गर्म बिस्तरा मिलता था, लेकिन आजाद नहीं मिलते थे।

इस प्रकार चन्द्रशेखर आजाद घूमते-घामते १९३१ की २७ फरवरी को अल्फ्रेड पार्क में बैठे हुए थे कि पुलिस ने दिन के दस बजे उन्हें घेर लिया। दोनों तरफ से गोलियां चलीं और अन्त में चन्द्रशेखर आजाद शहीद हो गए शहीद हाने के बाद का उनका फोटो पहले-पहल इंग्लैड की एक पुस्तक में छपा, जिससे लेकर अब यह भारत में प्रचारित हो गया है। एक अफवाह यह भी है कि चन्द्रशेखर आजाद पुलिस की गोली से नहीं मरे बल्कि उन्होंने अपने को बिल्कुल घिरा हुआ पाया और भागने का कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ा, तो उन्होंने एक गोली अपने ऊपर चला ली।

इस प्रकार एक महान् जीवन का अन्त हुआ। चन्द्रशेखर आजाद की माता जी उसके बाद बहुत दिनों तक जीवित रहीं और काफी बुरी हालत में रहीं। भगवान्दास माहौर, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने उनकी सहायता की। इसमें सन्देह नहीं कि चन्द्रशेखर आजाद ने कर्म से या विचारों से कभी कोई ऐसी बात नहीं की, जिससे उनके क्रान्तिकारीत्व में किसी प्रकार बट्टा लगे। इस कसौटी पर बहुत कम क्रान्तिकारी ही सच्चे उतर सकते हैं।" ❑❑

खतरों से खेलने वाले क्रान्तिकारी पति-पत्नी

भगवतीचरण और दुर्गा देवी

एक परिवार से दो या दो से अधिक भाई देश के लिए बलिदान हुए हैं, इस प्रकार की वीरतापूर्ण घटना तो आपने कई पढ़ी हैं। किन्तु किसी पति-पत्नी ने क्रान्तिकारी के रूप में अपना सारा जीवन देश की बलिवेदी पर अर्पित पर दिया हो, ऐसी विरली घटना केवल भगवतीचरण और दुर्गादेवी की प्राप्त होती है। वे क्रान्तिकारी क्या थे, लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा इन तीनों एषणाओं से ऊपर उठकर एक क्रान्ति-संन्यासी थे, जिनका कुछ भी अपना नहीं था, तन-मन-धन-यौवन सब कुछ देश का था।

भगवतीचरण के पिता श्री शिवचरण थे जो रेलवे-कार्यालय में ऊंचे पद पर कार्यरत थे। वे लाहौर में रहते थे। भगवतीचरण ने लाहौर के नेशनल कालेज से शिक्षा प्राप्त की। वहीं उनकी भगतसिंह के साथ मित्रता हुई और उन्होंने मिलकर देशसेवा का प्रण लिया तथा 'भारत-सभा' नामक गुप्त संगठन स्थापित किया। भगवतीचरण का विवाह कालेज से सुशिक्षित हुई लड़की दुर्गादेवी से हुआ। भगवतीचरण ने दुर्गादेवी को भी देशभक्ति का पाठ पढ़ाकर क्रान्ति के रंग में रंग लिया। अब दोनों का लक्ष्य था - क्रान्ति के द्वारा देश को आजाद कराना। भगवतीचरण ने भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि के साथ मिलकर कार्य किया।

भुसावल के बम केस में फणीन्द्र घोष सरकारी गवाह बन गया था। क्रान्तिदल ने उस विश्वासघाती को दण्ड देने का निर्णय लिया। उसके लिए जेल में रिवाल्वर अपनी चतुराई से भगवतीचरण ने ही पहुंचायी थी।

क्रान्तिकारियों ने बम बनाने के जो गुप्त कारखाने खोले, उनके प्रबन्ध का दायित्व भगवतीचरण पर था। वे बमों का प्रयोग व निर्माण करते रहते थे। १८ मई १९३० को सायंकाल ८.३० के लगभग एक बम लेकर वे परीक्षण के लिए रावी नदी के तट पर गये। वह बम फेंकते समय हाथों में ही फट गया। वे बुरी तरह घायल हो गये। उस जंगल में कोई सहायता करने वाला नहीं था। उसी अवस्था में वे शहीद हो गये।

दुर्गादेवी ने वैधव्य अवस्था में भी क्रान्ति की ज्वाला को जगाये

रखा। १७ सितम्बर १९२८ को भगतसिंह के क्रान्तिदल ने सांडर्स पर बम फेंक कर लाला लाजपतराय की हत्या का बदला ले लिया। लाहौर के चप्पे-चप्पे पर पुलिस तैनात थी। ऐसी विकट स्थिति में भगतसिंह को लाहौर से सुरक्षित निकाल ले जाने वाली बहादुर महिला दुर्गादेवी थी। दुर्गादेवी ने खतरों से खेलकर यह साहस का काम किया। भगतसिंह ने एक साहब का स्वांग भरा और दुर्गादेवी ने उसकी मॉडर्न धर्मपत्नी का। रेल की प्रथम श्रेणी का टिकट लेकर वे लाहौर से बैठे और भगतसिंह को सुरक्षित कलकत्ता पहुंचाया।

बम्बई में ९ अक्तूबर १९३१ को रात के समय लैमिंटन रोड थाने में मोटर से उतरते समय सार्जेंट टेलर और उसकी पत्नी को घायल करने वाली दुर्गादेवी ही थी। वह सजा से भी साफ बच गयी। कुछ क्रान्तिकारी उन्हें 'भाभी' और कुछ 'दीदी' सम्बोधन से पुकारते थे। दुर्गादेवी एक जुलूस का नेतृत्व करने के अभियोग में तीन मास जेल भी काट आयीं परन्तु पुलिस को यह पता नहीं चला कि क्रान्तिकारियों की वह 'दीदी' यही है। देहली में जब 'दीदी' की जोरशोर से खोज हुई तो वह लाहौर जेल में भगतसिंह से मिलने पहुंच गयी।

लाहौर रहते हुए एक असावधानी हो गयी। 'दीदी' के नाम क्रान्तिकारियों का पत्र लेकर एक पत्रवाहक दुर्गादेवी को देने जा रहा था कि वह पत्र रास्ते में गिर गया और पुलिस के हाथ लग गया। पत्रवाहक ने तुरन्त दुर्गादेवी को यह सूचना दी और आशंकित विपत्ति से बचने के लिए कहीं भाग जाने को कहा। पुलिस ने अविलम्ब संदेहास्पद दर्जनों घरों को घेर लिया। दुर्गा अपने बुद्धि कौशल से गिरफ्तारी देखने वाले तमाशबीनों की भीड़ में सम्मिलित होकर निःशंक खड़ी रही। और फिर मौका पाकर ग्रामीण वधू का स्वांग भर, लम्बा घूंघट निकाल, देहाती दिखने वाले एक व्यक्ति के साथ लाहौर से निकल भागी।

❑❑

बम-प्रयोग में शहीद किशोर क्रान्तिकारी

रोशनलाल मेहरा

सत्रह साल की भी क्या उम्र होती है? खेलने-कूदने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने और लाड-प्यार पाने की। किन्तु इस उम्र में भी जिसके हृदय में आजादी की ज्वाला प्रज्वलित हो रही हो उसे इन बातों से क्या मतलब ? सत्रह साल के इतने छोटे-से क्रान्तिकारी थे रोशनलाल मेहरा !! इस छोटी-सी उम्र में उसे बड़ा क्रान्तिकारी बनाया था उसकी आदरणीया माता श्रीमती ललितादेवी ने। वह एक देशप्रेमी महिला थी और उसी ने मेहरा को देशप्रेम की घूंटी पिलायी थी। वह घूंटी मेहरा की रग-रग में समा गयी।

पिता का नाम था श्री धनीराम। काम से भी असलियत में धनी थे। अमृतसर में रेशमी कपड़ों का अच्छा व्यापार था। इसी धनी पिता के घर खत्री परिवार में मेहरा का जन्म हुआ। देशप्रेम के संस्कार देकर माता ललितादेवी स्वर्ग सिधार गयी। उस समय रोशनलाल की आयु सत्रह वर्ष थी। पिता ने दूसरा ब्याह रचा लिया। दूसरी मां वस्तुत: 'विमाता' निकलीं।

इसी बीच रोशनलाल क्रान्तिकारी शंभूनाथ आजाद के संपर्क में आये। हृदय का देशप्रेम क्रान्तिकारियों के संपर्क में आने से ज्वाला बनकर फूट पड़ा। क्रान्ति-पार्टी के सदस्य बनकर गतिविधियों में सक्रिय योगदान करने लगे। उस समय अमृतसर में शंभूनाथ के अलावा दयाशंकर, उमाशंकर, गोविन्द राम वर्मा, रामसरन आदि क्रान्तिकारी गुप्त रूप से कार्यरत थे। सन् १९३०-३२ के हलचल भरे दिन थे। कहीं असहयोग आन्दोलन तो कहीं क्रान्ति-आन्दोलन ने अंग्रेजों की नींद उड़ा रखी थी। स्थान-स्थान पर स्वतन्त्रता प्रेमियों पर अत्याचार किये जा रहे थे। अमृतसर की कोतवाली इन अत्याचारों के लिए कुख्यात हो चुकी थी। लोग उसे 'बूचड़खाना' कहा करते थे। क्रान्तिकारियों ने बदला लेने का निश्चय किया कि इस 'बूचड़खाने' के 'बूचड़ों' को गद्दारी की सजा दी जाये। यह भार रोशनलाल और उमाशंकर ने अपने ऊपर लिया। दोनों वीरों ने सफलतापूर्वक इस काम को कर दिखाया। कोतवाली बम के धमाके से दहल गयी। पुलिस धर-पकड़ के लिए धूल फांकती फिरती रही किन्तु सभी युवक साफ बच निकले।

अमृतसर पुलिस की सक्रियता देखकर क्रान्तिकारियों ने अपनी नीति में परिवर्तन किया और योजना बनायी कि अब दक्षिण में जाकर वहां क्रान्ति का वातावरण बनाया जाये। किन्तु समस्या पैसे की थी। रोशनलाल मेहरा और गोविन्दराम वर्मा ने इस समस्या का समाधान करने का दायित्व अपने ऊपर लिया।

मेहरा के हृदय में देशभक्ति की भावना किस गहराई तक पहुंची हुई थी इस बात का अनुमान अगली घटना में हो जाता है। निजी धन देश के लिए लुटा देने की यह अद्‌भुत घटना है। एक रात रोशनलाल ने चाबी उठाकर पिता की तिजोरी खोल ली और पैसे निकालने लगे। इतने में एक डिब्बा ऊपर से गिर गया। सबकी नींद खुल गयी। रोशनलाल तपाक से बिस्तर पर जाकर इस तरह सो गया जैसे उसे कुछ पता ही नहीं। पिता ने नोटों को बिखरे देखा तो होश उड़ गये, किन्तु जब नोट पूरे मिले तो शान्ति हुई। इसका सन्देह रोशनलाल पर किया गया। सौतेली मां ने इस बात पर अधिक बवंडर मचाया। रोशनलाल पर दिन-रात संदेह किया जाने लगा और नजर रखी जाने लगी।

रोशनलाल की सारी क्रान्ति योजना विफल हो गयी। भावी क्रार्यक्रम भी मिट्‌टी में मिल गये। रोशनलाल तिलमिला उठा। उसने एक युक्ति सोची। अपने प्रति संदेह के विरोध में उसने अनशन कर दिया। चार दिन अनशन पर रहने के बाद घर वालों को विश्वास हो गया कि यह काम रोशनलाल का नहीं है। एक दिन पिता लाहौर गये हुए थे। मौका पाकर रोशनलाल ने छह हजार के लगभग रुपये निकाल लिये और शंभूनाथ आजाद तथा सीतानाथ डे के साथ ऊटकमण्ड पहुंच गये। वहां से मद्रास पहुंचकर रामपेठ बाजार में एक मकान लेकर रहने लगे।

पुलिस ने वारंट जारी किये, इनाम घोषित किये, खूब खोजबीन की किन्तु रोशनलाल हाथ नहीं आया। इस बीच सरदार बन्तासिंह, खुशीराम, इन्द्रसिंह आदि क्रान्तिकारी मद्रास पहुंच गये। सब ने मिलकर योजना बनायी कि मद्रास के गवर्नर को बम से उड़ाया जाये। पैसों की कमी के कारण यह योजना सिरे नहीं चढ़ सकी। इस कमी को पूरा करने के लिए क्रान्तिकारियों ने ऊटी बैंक को लूटने का लक्ष्य बनाया। शंभूनाथ आजाद, खुशीराम, और सरदार बन्तासिंह की टीम इसके लिए गठित की। २५ अप्रैल १९३३ को यह बैंक लूट लिया गया। २९ अप्रैल को शंभूनाथ लूटा हुआ पैसा लेकर मकान पर पहुंचे। शंभूनाथ को छोड़कर अन्य साथी गिरफ्तार कर लिये गये। शंभूनाथ और रोशनलाल मकान

बदलकर तम्बूचट्टी स्ट्रीट में नया मकान लेकर रहने लगे।

बम-निर्माण की तैयारियां की जाने लगीं। अब बम फेंकने के लक्ष्य में गवर्नर वध के अतिरिक्त जेल में बंद साथियों को छुड़ाना भी एक लक्ष्य बन गया। परीक्षण के लिए १ मई का दिन और स्थल के लिए रामपुरम् के पास का समुद्र तट चुना गया। उस दिन रात आठ बजे रोशनलाल अपने तीन क्रान्तिकारी साथियों के साथ निर्धारित स्थान पर पहुंचे। पूर्व की ओर शंभूनाथ आजाद खड़े होकर पहरा दे रहे थे तथा पश्चिम की ओर इन्द्रसिंह मुनि और गोविन्दराम वर्मा खड़े हो गये। यह निश्चय किया गया कि विस्फोट करके रोशनलाल पश्चिम की ओर भागेंगे।

विस्फोट सफल हुआ। जोरदार धमाके के साथ रात को रोशनी का गोला दूर तक दिखायी दिया। लोग घटनास्थल की ओर दौड़े। काफी देर प्रतीक्षा करके क्रान्तिकारी साथी मकान पर आ गये यह सोचकर कि रोशनलाल किसी और रास्ते से भाग गया होगा। किन्तु वह घर भी नहीं पहुंचा था। इन्द्रसिंह मुनि को घटनास्थल पर जानकारी लेने के लिए फिर से भेजा गया। देखा तो रोशनलाल के शरीर के चिथड़े बिखरे पड़े थे। खुफिया पुलिस ने अपनी जांच रिपोर्ट में लिखा कि "मालूम होता है कि रोशनलाल का पत्थरों पर पैर फिसल गया और पत्थर से टकराकर बम का विस्फोट हो गया।" एक उत्साही किशोर आजादी के हजारों अरमान दिल में संजोये इस गुलाम भूमि से विदा ले गया। वीर लोग ऐसे ही मौत से खेलते हैं।

❑❑

चटगांव शस्त्रागार काण्ड

(जिसमें ४० किशोर क्रान्तिकारी शहीद और २५ को सजा हुई)

आजादी की धुन में युवा ही नहीं किशोर भी कितने दीवाने थे, उस दीवानगी का प्रमाण चटगांव शस्त्रागार कांड का युद्ध है जिसे बंगाल के चटगांव के ७०-८० किशोरों ने लड़ा था।

१८ अप्रैल १८३० की रात की यह मार्मिक घटना है।

सर्वश्री अनन्तसिंह, अम्बिका चक्रवर्ती, गणेश घोष, सूर्यसेन के नेतृत्व में कुछ बालक और किशोर इकट्ठे हुए। उन्होंने अंग्रेजी सरकार की संचार, यातायात और पुलिस व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर पुलिस शस्त्रागार लूटने की योजना बनायी। वे सब चार दलों में बंट गये। एक दल ने कलकत्ता और ढाका जाने वाले टेलीफोन के तारों को काटा और टेलीफोन एक्चेंज को आग लगा दी। दूसरा दल रेल की पटरियों को उखाड़ने में लगा था। थोड़ी ही देर में कई गाड़ियां पटरियों से उतर गयीं और रेल मार्ग रुक गया। एक बड़े दल ने पुलिस लाइन पर धावा बोल कर वहां के हथियार लूट लिये और वहां आग लगा दी। चौथे दल ने आग्जीलियरी फोर्स के शस्त्रागार को तोड़कर वहां रखे पिस्तौलों, रिवाल्वरों, कारतूसों और बन्दूकों को लूट लिया। सार्जेंट फैरेल की उनके घर में ही हत्या कर दी। फिर चारों दल मिल गये। किशोर क्रान्तिकारियों में इतना उत्साह था कि रात ११ बजे यह अभियान शुरू किया था और १२ बजे तक चटगांव के बाहरी भाग में सारे सरकारी स्थानों पर तोड़फोड़ कर चुके थे।

रात १२ बजे के लगभग जिला मजिस्ट्रेट पुलिस को लेकर इन क्रान्ति पर उतरे बालकों को रोकने पहुंचा किन्तु दल ने उस पर गोलियां बरसायीं। वह तो बच भागा परन्तु उसका ड्राइवर घायल हो गया और एक पुलिसकर्मी वहीं मारा गया। इसी बीच अन्य उच्च अधिकारी गोरखा सैनिकों को लेकर पहुंच गये। सैनिक-पल्टन को आती देखकर क्रान्तिकारी पहाड़ियों की ओर निकल गये। वहां पहाड़ियों पर मोर्चा लेकर बैठ गये। सैनिक-पल्टन ने पहाड़ियों की ओर जाकर उन्हें घेर लिया। कई घण्टों

तक दोनों ओर से गोलाबारी होती रही। इस युद्ध में सेना के ५० के लगभग सैनिक मारे गये। अधिकारियों को यह युद्ध बंद करना पड़ा।

दूसरा दिन हुआ। सरकार ने सैनिकों की संख्या बढ़ा दी और नवीनतम तथा घातक शस्त्रों का उपयोग किया। एक ओर शस्त्रास्त्रों और खाद्य सामग्री से सम्पन्न पर्याप्त सैनिक थे दूसरी ओर आजादी के दीवाने कुछ युवक थे, जिनके पास सीमित शस्त्र थे, भूख-प्यास से बेहाल और थकान से चूर थे। इन किशोरों ने दूसरे दिन भी डटकर मुकाबला किया। परिणामस्वरूप सेना के ३० लोग मारे गये। अब गोला-बारूद समाप्त होता देख ये किशोर घनी पहाड़ियों की ओर खिसक गये। इनका दल तितर-बितर हो गया। पुलिस और फौज लगातार पीछा कर रही थी। जगह-जगह पर किशोर मारे जाने लगे। ४० के लगभग शहीद हो चुके थे। अन्त में कुछ किशोरों ने समर्पण कर दिया। गणेश घोष भी पकड़े गये। अनन्तसिंह ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। इस सम्बन्ध में कुल ३० लोग पकड़े गये जिन पर मुकदमा चलाया गया। अदालत ने उनमें से १२ को कालापानी की सजा दी, दो को दो-दो वर्ष की सजा दी तथा १६ को प्रमाणों के अभाव में छोड़ दिया। शहीद होने वाले जिन युवकों का विवरण प्राप्त हुआ है, उनमें १५ निम्नलिखित थे-

१.	हरिगोपाल बाल	१४ वर्ष	९.	मोती	१७ वर्ष
२.	त्रिपुरासेन	१५ वर्ष	१०.	नरेशराय	१७ वर्ष
३.	दस्तीदार	१६ वर्ष	११.	मधुसूदन दत्त	१७ वर्ष
४.	विंकाक	१६ वर्श	१२.	जतिनदास	१८ वर्ष
५.	प्रवास नाथ	१६ वर्ष	१३.	पुलिननिकास घोष	१९ वर्ष
६.	हरिगोपाल	१८ वर्ष	१४.	निशेन महाचार्य	२० वर्ष
७.	गोके	१७ वर्ष	१५.	नरेश राय	२२ वर्ष
८.	कम्मू	१७ वर्ष			

धन्य हैं आजादी के लिए शहीद होने वाले ये किशोर ! सारा देश इन्हें प्रणाम करता है। ❑❑

जो भरा नहीं है भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं॥

बंगाल के कुछ जुझारू क्रान्तिकारी

बंगाल पुलिस के लिए आतंक के पर्याय
यतीन्द्रनाथ मुकर्जी
उनके दल के अन्य सदस्य–
चित्तप्रिय, मनोरंजन, नीरेंद्र और ज्योतिष

बंगाल के 'पवना' नामक स्थान पर एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे यतीन्द्रनाथ मुकर्जी को व्यायाम, दौड़ और घुड़सवारी का शौक था। आपके पास अपना एक घोड़ा था। मुकर्जी का शरीर सुडौल, सुन्दर और आकर्षक था। जिस प्रकार पंजाब के बन्तासिंह सगवाल 'पंजाब पुलिस के लिए आंतक' कहे जाते थे उसी प्रकार यतीन्द्रनाथ **'बंगाल पुलिस के लिए आतंक'** के पर्याय थे। इन्होंने मैट्रिक पास करके एक कार्यालय में तीस रुपये मासिक वेतन पर नौकरी शुरू कर दी थी।

जिस समय बंगाल में क्रान्ति की हवाएं चल रही थीं और पूर्वी बंगाल में 'अनुशीलन समिति' तथा चन्द्रनगर का रासबिहारी का दल मिलकर पूरे भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति की योजना बना रहा था, ठीक उसी समय पश्चिम बंगाल में यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का विद्रोही दल देश की आजादी के लिए क्रान्ति की योजना में लगा हुआ था। तब तक उन दलों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं था।

२१ फरवरी १९१५ को पंजाब में क्रान्ति होने का समाचार सुनकर आप बनारस आये और रास बिहारी से मिले। उस समय क्रान्ति की योजनाओं के लिए इनके पास धन की कमी थी। यतीन्द्र ने सारे धन की व्यवस्था करने का दायित्व लिया। उन्होंने एक महीने में इतना धन इकट्ठा करके रासबिहारी को दे दिया जिससे कई वर्षों तक क्रान्ति का काम निर्विघ्न रूप से चल सकता था।

निवासस्थान बदलते-बदलते एक बार आप कलकत्ता के एक मकान में अपने दल के साथियों के साथ रह रहे थे। एक व्यक्ति जिस पर आपके दल को संदेह था कि यह गुप्तचरी कर रहा है, उसने आपको पहचान लिया। आपके दल के एक युवक ने उस पर गोली चला दी फिर आप लोग मकान को छोड़ भाग निकले। अपने महत्वपूर्ण मृत्युपूर्व बयान में उस व्यक्ति ने अपनी हत्या का जिम्मेदार यतीन्द्रनाथ को बतलाया।

यतीन्द्र पर पुलिस की वक्रदृष्टि और बढ़ गयी। साथियों ने विदेश चले जाने का परामर्श दिया परन्तु यतीन्द्र ने साथियों से कहा–

"मित्रो ! हम लोग साथ जीने-मरने की कसम खाकर घरों से आजादी के संग्राम के लिए निकले हैं। अपने साथियों को विपत्ति में छोड़कर विदेश में जाकर सुखपूर्वक दिन बिताने से तो मैं यहां भूखा-प्यासा रहकर या संघर्ष में मुकाबला करते हुए प्राण दे देना अच्छा समझता हूं। अपने नेता का दृढ़तापूर्ण निश्चय सुनकर सभी साथी मौन रह गये।

पुलिस को उक्त मकान का पता चल जाने के बाद यतीन्द्रनाथ अपने दल को लेकर बालेश्वर के निकट रहकर और वहीं केंद्र बनाकर कार्य करने लगे। किसी तरह पुलिस को इस स्थान की जानकारी भी मिल गयी। जिस दिन पुलिस का छापा पड़ना था उस दिन यतीन्द्र के दो साथी बारह मील दूर जंगल में गये हुए थे। यतीन्द्र चाहते तो कहीं भागकर अपनी जान बचा सकते थे किन्तु अपने साथियों को पुलिस के चक्रव्यूह में फंसाकर स्वयं बच निकलना उनकी आत्मा को कदापि स्वीकार्य नहीं था। वे कहीं भागने के बजाय अपने साथियों को जानकारी देने जंगल की ओर चले गये। पुलिस को किसी प्रकार यह भी भनक लग गयी कि यतीन्द्रनाथ का दल जंगल में छिपा है। पुलिस ने आस-पास के गांव में यह अफवाह फैलाकर कि इस जंगल में सशस्त्र डाकुओं का एक दल छिपा हुआ है और वह कभी भी किसी गांव पर हमला कर सकता है, गांव के लोगों को साथ मिला लिया। हजारों गांव वालों और पुलिस वालों के साथ जंगल को घेर पुलिस सुपरिटेंडेंट सर्च लाइट की सहायता से क्रान्तिकारियों को ढूंढते रहे। रात को तो वे नहीं मिले किन्तु उन्हें निश्चय हो गया कि दिन निकलते ही वे पकड़े जायेंगे। तब उन्होंने गिरफ्तार होने के बजाय मुकाबला करते हुए वीरों की तरह मरना अच्छा समझा और युद्ध करने का निर्णय कर लिया।

९ सितंबर १९१५ का दिन था। गर्मी का उमस और तपन भरा मौसम। दिन निकला। एक ओर दो दिन से भूखे प्यासे, जंगल के ऊंचे-नीचे, कंटीले स्थानों की खाक छानते-छानते थककर चकनाचूर हुए और छलनी हुए पांव-शरीर वाले पांच क्रान्तिकारी। दूसरी ओर अत्याधुनिक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हजारों पुलिस और गांव वाले। गोलियों की आवाज से जंगल की घाटियां गूंजने लगी। आखिर वे कब तक मुकाबला करते ? गोलियां समाप्त हो रही थीं। एक गोली चित्तप्रिय को लगी और वह जमीन पर

लुढ़क गया। यतीन्द्र और उसका किशोर साथी मनोरंजन घायल होकर लहू-लुहान हो रहे थे। घायल यतीन्द्र जमीन पर बेसुध सा पड़ा "पानी-पानी" पुकार रहा था। खून से तर-बतर किशोर मनोरंजन हिम्मत करके उठा और पास की तलैया से अपनी चादर भिगोकर लाया और बूंद-बूंद मुंह में टपकाने लगा। पुलिस सुपरिटैंडेंट ने निकट आकर इस दृश्य को देखा तो उसका कठोर हृदय भी द्रवित हो उठा। उसने अपनी टोपी उतारी, उसमें पानी भरकर लाया और यतीन्द्रनाथ को स्वयं पिलाया। जीवित बचे चारों घायल क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। यतीन्द्र को कटक के अस्पताल में भरती कराया गया किन्तु कुछ समय बाद ही उनका प्राणान्त हो गया। पुलिस सुपरिटेंडेंट श्री टेगार्ट ने यह कहकर उसे अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

"मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है, किन्तु मैं यतीन्द्र का हार्दिक सम्मान करता हूं। क्योंकि वही अकेला ऐसा बहादुर बंगाली था जिसने पुलिस का मुकाबला करते हुए अपनी जान दी है।"

जैसा कि निश्चित था, अदालती नाटक करके अंग्रेज सरकार ने मनोरंजन और नीरेंद्र को फांसी पर लटका दिया। पांचवें साथी ज्योतिष को कष्टदायक आजन्म कारावास की सजा दी गयी। ज्योतिष को जेल में इतनी यातनाएं दी गयीं कि वह पागल हो गया। तब उसे बहरमपुर के पागलखाने में दाखिल करा दिया। वहां कुछ समय बाद वह भी इस गुलामी की दुनियां को छोड़कर अपने चारों साथियों के पास स्वर्गलोक में चला गया। इस प्रकार देशभक्त साहसी युवाओं और किशोरों के एक और दल का अन्त हो गया।

अत्याचारी पुलिस अधिकारी टेगार्ट के वध के इच्छुक गोपीमोहन साहा

बंगाल में क्रान्ति का वातावरण बनने के बाद एक विधान (आर्डिनैंस) की आड़ लेकर अंग्रेज सरकार ने निरपराध हजारों युवकों को बिना कारण बताये पकड़ कर जेलों में ठूंस दिया। वहां भी उनको यातनाएं दी जातीं। कितनों को झूठा मुकाबला दिखाकर मौत के घाट उतार दिया। कितने ही क्रान्तिकारी दलों को घेर कर भून डाला। अत्याचार पूरे जोरों पर थे। इन सबका जिम्मेदार था पुलिस अधिकारी टेगार्ट। जी हां, वही टेगार्ट जिसने यतीन्द्र मुकर्जी आदि को घेर कर मारा था। यों समझिए कि उन दिनों बंगाल में टेगार्ट का ही राज्य था। वह देशभक्त लोगों की आंखों में कांटे की तरह खटक रहा था।

ऐसी स्थिति में उस कांटे को जड़ से निकालने का दृढ़ निश्चय किया गोपीमोहन साहा ने। यह बंगाली युवक विद्यार्थी-काल में ही क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन गया था। बंगाल की जनता पर टेगार्ट के अत्याचारों से खिन्न होकर यह युवक प्रतिशोध की भावना में इतना खो गया था कि रात को सोते समय नींद में भी टेगार्ट को ललकारने लगता और उठ बैठता। मन में प्रतिहिंसा की आग संजोये साहा टेगार्ट के बंगले के आसपास मंडराता रहता और अवसर की ताक में रहता। एक दिन इसी प्रकार घूमते हुए साहा ने देखा कि बंगले में से एक अंग्रेज बाहर निकल रहा है। साहा ने उस पर गोली दाग दी, अंग्रेज वहीं ढेर हो गया। साहा ने सोचा कि मेरी योजना पूरी हो गयी। वह भागा नहीं। थोड़ी ही देर में उसे पता चला कि मरने वाला टेगार्ट नहीं कोई दूसरा था। उसने गुस्से में रिवाल्वर जमीन पर पटक दी। पुलिस ने उसे जंजीरों में जकड़ लिया।

गोपीमोहन साहा पर अभियोग चला। १९२३ में उसे फांसी पर लटका दिया गया। अदालत में उसने गर्व, प्रसन्नता और निर्भीक भाव से अपने अपराध को स्वीकार करते हुए कहा–**"मैं तो टेगार्ट को मारने आया था और टेगार्ट समझकर ही उस व्यक्ति को मारा था किन्तु यह अन्य व्यक्ति निकला। मुझे एक निर्दोष के मारे जाने का दु:ख है।"**

एक और नवयुवक देश के काम आया। भले ही उससे एक निरपराध व्यक्ति मारा गया हो किन्तु वह अंग्रेज सरकार के लिए यह संदेश छोड़ गया कि क्रान्तिकारियों का दमन करना उसके वश की बात नहीं है।

क्रान्तिकारी नलिनी वाक्च्य
तथा देशभक्त दल के साथी-
तारिणी मजूमदार

जब कोई क्रान्ति विफल हो जाती है अथवा किसी क्रान्तिकारी दल का अन्त हो जाता है तो इसका अभिप्राय यह नहीं होता कि वह परम्परा समाप्त हो जाती है। यदि किसी देश के निवासियों में दृढ़ लग्न हो तो नये दल पैदा होते रहते हैं। पंजाब में क्रान्ति का दमन होने से या बंगाल के कई क्रान्तिकारी दलों का अन्त होने से बंगाल की क्रान्ति रुकी नहीं। वहां एक दल और उभरा जिसके नेता थे - नलिनी वाक्च्य। बंगाल में वीरभूमि के रहने वाले नलिनी क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न होने के कारण अपने अध्ययन के समय ही पुलिस की कुदृष्टि में आ गये। उन्हें बिहार के भागलपुर के कालेज में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। बिहार में क्रान्तिकारी संगठन नहीं था अत: वहां पुलिस की धर-पकड़

कम थी। नलिनी लम्बे बाल कराकर, टोपी लगाकर, मोटे कपड़े का कुर्ता पहन और फेंटदार धोती बांधकर पूरा बिहारी बनकर कालेज में जाने लगा। किन्तु वह यहां भी पुलिस की कुदृष्टि से नहीं बच पाया और उसे कालेज छोड़ पुनः बंगाल लौटना पड़ा।

सन् १९१७ में बंगाल में धर-पकड़ जारी थी। अपने चुने हुए क्रान्तिकारी साथियों को सुरक्षित स्थानों पर भेजकर नलिनी चार विश्वस्त साथियों के साथ गोहाटी में एक मकान किराये पर लेकर रहने लगे। सभी रिवाल्वर भरकर रखते और बारी-बारी से एक साथी खिड़की में बैठकर पहरा दिया करता। किसी ने पुलिस को सूचित किर दिया कि अमुक मकान में चार बंगाली युवक रह रहे हैं। एक दिन बहुत सबेरे पुलिस ने मकान को घेर लिया। पहरेदार साथी ने सबको जगा दिया। सभी युवक नीचे आकर गोली चलाते हुए पुलिस के घेरे से बच निकले और पास की एक पहाड़ी पर जाकर छुप गये। हजारों सशस्त्र सिपाहियों ने उस पहाड़ी को भी घेर लिया। दोनों ओर से गोलियां चलने लगी। धांय-धांय की आवाज से पहाड़ी का शान्त वातावरण गूंज उठा। इतने सिपाहियों के सामने चार युवक कब तक टिक सकते थे? दो युवक वहीं ढेर हो गये। नलिनी और तारिणी किसी प्रकार बच निकलने में सफल हो गये।

नलिनी सात दिन पहाड़ों और जंगलों में भटकते रहे। भूख, प्यास और थकान से शरीर निढाल हो चला था। वे पैदल ही बिहार पहुंचे। वहां जाने पर पता चला कि वहां पहले से ही उसकी खोज हो रही थी। वे वापस बंगाल लौट आये। हावड़ा स्टेशन पर उतरकर साथियों की खोज की किन्तु कोई भी नहीं मिला। दो सप्ताह से अन्न के दर्शन भी नहीं हुए थे। पास एक पैसा नहीं था। चलने की शक्ति जवाब दे चुकी थी। पास में भरा रिवाल्वर था जो कभी भी खतरा बन सकता था। आखिर निराश हो नलिनी किले के मैदान में एक वृक्ष के नीचे जाकर पड़ गये। जंगल में घूमते समय एक पहाड़ी कीड़ा उनके शरीर से चिपक गया था जिसके विष के कारण उन्हें बुखार आ गया था। दो दिन वे इसी हालत में पेड़ के नीचे पड़े रहे। संयोग से दो दिन बाद उनका एक साथी उधर से निकला। उसने नलिनी को देखा और पहचान लिया। उसको चेचक भी निकल आई थी। साथी की यह दुर्दशा देखकर उसकी आंखों में आंसू भर आये। वह उसे घर ले आया। बाहर इलाज कराना मौत को निमंत्रण देना था। अतः वह डाक्टरी इलाज भी नहीं करा सकता था। साथी ने उसका घरेलू इलाज ही शुरू कर दिया। शरीर पर हल्दी-मट्ठा मिलाकर लेप कर दिया और मट्ठा ही पीने को दिया। सौभाग्य से नलिनी

इसी से ठीक हो गया। जिस दिन नलिनी ने पूरा स्वस्थ होकर अपने साथी के साथ भोजन किया तो उनके आनन्द का ठिकाना न था। स्वस्थ होकर दोनों ने फिर देश सेवा का काम शुरू कर दिया। दुर्भाग्य से एक दिन घर से निकलने के बाद इनका वह साथी पुलिस की गिरफ्त में आ गया। नलिनी बच निकला।

नलिनी ने अपने क्रान्तिकारी साथी तारिणी मजूमदार के साथ मिलकर हावड़ा में एक मकान किराये पर ले लिया और रहने लगे। कुछ ही दिन चैन से रहने पाये थे कि मकान को पुलिस ने घेर लिया। दोनों ओर से गोलियां चलने लगी। एक गोली तारिणी मजूमदार को लगी जिससे वह शहीद हो गया। नलिनी ने पुलिस अधिकारी पर निशाना साधा किन्तु गोली टोपी पर लगकर उसे उड़ाती हुई ले गयी। अधिकारी बच गया। तभी पुलिस की गोली नलिनी को भी लगी। वह घायल होकर गिर पड़ा। पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर अस्पताल पहुंचाया। घायल अवस्था में खाट पर पड़े नलिनी से पुलिस अधिकारी नाम-पता आदि पूछने लगा। नलिनी ने उसे फटकारते हुए कहा -

"Dont disturb me please. Let me die peacefully."

''मुझे तंग न करिये। कृपा करके मुझे शान्ति से मरने दीजिए।''

१५ जून, १९१८ को वीर नलिनी शान्ति से प्राण त्याग कर गया। अन्तिम समय भी उसने पुलिस को अपनी पहचान नहीं बतायी। कितने निष्काम भाव से देशसेवा में संलग्न था वह युवा क्रान्तिकारी !! ऐसे वीर युवाओं का देश लम्बे समय तक न तो गुलाम रह सकता था और न रहा।

यतीन्द्रनाथ दास

कलकत्ता निवासी युवा यतीन्द्रनाथ दास का जन्म सन् १९०४ में हुआ था। आपके पिता का नाम बंकिम बिहारी दास था। मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद आप १९२१ में असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। आजादी आन्दोलन में कार्य करने के लिए सत्रह वर्ष के बालक यतीन्द्रनाथ ने कालेज की पढ़ाई छोड़ दी।

१९२१ में पश्चिम बंगाल में भयंकर बाढ़ आयी। साथी कार्यकर्ताओं के साथ आपने बाढ़ पीड़ितों की अत्यधिक सहायता की। वहां से लौटते ही असहयोग के अपराध में आपको गिरफ्तार कर लिया किन्तु चार दिन बाद ही छोड़ दिया। आपके पिता नहीं चाहते थे कि आप इन कार्यों में भाग लें। वे आपके सामने रुकावट डालते थे। आप घर छोड़कर निकल गये। असयोग-अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण इस बार यतीन्द्रनाथ

दास को एक महीने का कठोर कारावास हुआ। फिर १९२२ में सरकार के विरुद्ध धरना देने के आरोप में इनको पांच मास की जेल हुई। अट्ठारह वर्ष के इस किशोर के साथ जेल में इतना यातनापूर्ण व्यवहार किया गया कि आपका शरीर केवल अस्थिपंजर रह गया था। जेल से छूटने के बाद यह डेढ़ मास तक रोग शय्या पर पड़ा रहा। इस स्थिति में आपके पिता आपको मनाकर ले गये फिर आपको पढ़ने के लिए आशुतोष कालेज में भरती करा दिया। कालेज के समय के बाद आप देशसेवा के कार्यों में लगे रहते। १९२४ में आपको दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमेटी का 'सहायक मंत्री' चुना गया।

९ नवम्बर १९२८ को आपको बंगाल विधेयक की आड़ में आधी रात के समय गिरफ्तार कर लिया गया और कलकत्ता प्रेसिडेंसी जेल भेज दिया। वहां से मेदिनीपुर सैंट्रल जेल भेजा गया। वहां भीषण गर्मी से बीमार होने पर मौत से बाल-बाल बचे। वहां से चिकित्सा के लिए कलकत्ता सैण्ट्रल जेल, फिर मैमनसिंह सैंट्रल जेल भेजा गया। खराब व्यवहार के कारण आपकी जेल सुपरिटेंडेंट से हाथा-पायी हो गयी। उसके बाद आपको इतनी बेरहमी से पीटा गया कि मरते-मरते बचे। फिर इन पर मारपीट का अभियोग चला दिया। इस अन्याय के विरुद्ध आपने अनशन शुरू कर दिया। तेईस दिन के बाद बंगाल सरकार के बीच-बचाव से आपने अनशन त्याग दिया। जेल सुपरिटेंडेंट को माफी मांगनी पड़ी। इसके बाद आपको मियांवाली जेल (पंजाब) से कलकत्ता जेल में और फिर चटगांव जिले के एक छोटे से गांव में नजरबंद रखा गया। इस बीच आपकी बहन की मृत्यु हो गयी किन्तु आपने धैर्य नहीं छोड़ा और न ही माफी मांगकर बाहर आये। २९ सितंबर १९२८ को आपको मुक्त किया गया।

वापस आते ही आप फिर देश सेवा के कार्य में लग गये। कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर आपको स्वयं सेवक दल का 'आफिसर इन कमांड' बनाया गया। आपने दल का गठन और संचालन बहुत ही योग्यतापूर्ण ढंग से किया। आपने फिर से बंगवासी कालेज में बी.ए. में प्रवेश ले लिया। किन्तु सरकार आपके पीछे पड़ी हुई थी। आपको 'लाहौर-हत्याकाण्ड' के सन्दर्भ में फिर से गिरफ्तार कर लाहौर जेल भेज दिया। अपने प्रति किये गये अन्याय और दुर्व्यवहार के विरुद्ध आपने वहां अनशन कर दिया। बासठ दिनों तक अनशन करने के बाद आपका स्वर्गवास हो गया। देश का एक और युवक आजादी की बलिवेदी पर बलि हो गया। गोरी सरकार को बड़ा चैन आया, क्योंकि उनकी आंख का एक कांटा निकल गया था। ❑❑

बंगाल की क्रान्तिकारिणी महिलाएँ

श्रीमती लीलावती नाग, एम० ए०—यह पेंशनयाफ्ता डिप्टी मजिस्ट्रेट रायबहादुर गिरीशचन्द्र नाग की लड़की थी। अंग्रेजी साहित्य में एम०ए० थी। छात्र जीवन में हरेक परीक्षा को इन्होंने नामवरी से पास किया था।

लीलावती ने ही ढाका की कमरुन्निसा बालिका विद्यालय की स्थापना की थी। पहले दो साल तक वह उसकी अवैतनिक प्रधानाध्यापिका रही। उस समय इसका नाम दीपावली विद्यालय था। इसी युग में इन्होंने दिवाली संघ नाम से एक नारी संस्था की स्थापना की, जिसका उद्देश्य नारियों की सब प्रकार की उन्नति करना था। बहुत सी बाधाएँ उनके रास्ते में आईं, किन्तु उन्होंने सब बाधाओं पर विजय प्राप्त की। गाँव गाँव घूमकर इन्होंने लड़कियों के विद्यालय भी स्थापित किए।

दीवाली विद्यालय से सम्बन्ध टूट जाने पर उन्होंने नारी शिक्षा मन्दिर नाम से लड़कियों का एक हाई स्कूल स्थापित किया। उसी के साथ बोर्डिंग की भी स्थापना की। इसमें गरीब लड़कियों के लिए पढ़ने तथा काम सीखने की व्यवस्था थी, इसी युग में इन्होंने जय श्री नाम की एक विख्यात मासिक पत्रिका निकाली। १९३१ के २० दिसम्बर को क्रिमिनल ला अमेंडमेण्ट एक्ट के अनुसार गिरफ्तारी हुई, १९३८ में यह छोड़ी गई।

श्रीमती रेणुका सेन, एम०ए०- रेणुका सेन अर्थ शास्त्र में एम० ए० थी। लीलावती ने जब पहले पहले बालिका विद्यालय की स्थापना की तब वहीं छात्रा थी। बी०ए० पास करने के बाद वह पढ़ने के लिए कलकत्ता गई और वहीं एम०ए० पास किया। १९३० के सितम्बर में यह पहले-पहल डलहौजी स्क्वायर बम कांड के सम्बन्ध में पकड़ी गई। एक महीने तक लाल बाजार लोकअप में तथा प्रेसिडेन्सी जेल में रहने के बाद यह छूट गई। इस कारण वेथून कालेज से निकाली गई। १९३० के २० दिसम्बर को यह लीला नाग के साथ पकड़ी गई और १९३१ में छोड़ी गई।

श्रीमती लाल कमाल, बी०ए०—आशुतोष कालेज में बी०ए० में पढ़ते समय यह ग्रिण्डले बैंक को धोखा देने के शक में गिरफ्तार हुई, किन्तु छूट गई। यह महाराष्ट्र की रहने वाली थी।

श्रीमती इन्दुमती सिंह– इन्दुमती चटगाँव के गोपाललाल सिंह की लड़की थी। १९३४ के १४ दिसम्बर को गिरफ्तार हुई, छह साल जेल में रहने के बाद छूटी।

श्रीमती अमिता सेन–१९३४ के अगस्त में यह बंगाल आर्डीनेन्स में पकड़ी गई। १९३६ में जेल से निकालकर श्रीमती नलिनीसेन गुप्ता के मकान पर नजरबन्द कर दी गई। फिर यह हिजली भेज दी गई। १९३८ में छूटीं।

श्रीमती कल्याणीदेवी एम०ए०–१९३१ के सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में ८ महीने तक जेल में रही। फिर पकड़ी गई और फिर छोड़ी गई। १९३१ में उनके बालीगंज वाले मकान से एक तमंचा मिला। अतः वह अपने होस्टल में गिरफ्तार कर ली गई, किन्तु सबूत न मिलने पर छूट गई। तुरन्त बंगाल आर्डीनेन्स में पकड़ी गई। प्रेसिडेन्सी हिजली तथा अन्य जेलों में वर्षों रहने के बाद छूटीं।

श्रीमती कमला चटर्जी बी०ए०–कालेज की छात्रा अवस्था में १९३१ में बंगाल आर्डिनेन्स में गिरफ्तार हुई, १९३७ के अन्त में छूटी। आपकी लिखने की शक्ति अच्छी थी।

बाईस अन्य क्रान्तिकारिणियाँ–इनके अतिरिक्त ये महिलाएँ भी आर्डिनेन्स में थी–

१. **सुशीलादास गुप्ता**–५ साल जेल में रही।

२. **लावण्यप्रभा दास गुप्ता**–५ साल जेल में रही।

३. **कमलादास गुप्ता बी०ए०**–वीणादास के साथ पकड़ी गई, किन्तु छोड़ दी गई और फिर आर्डिनेन्स में ले ली गई।

४. **सुरमादास गुप्ता बी०ए०**–डेढ साल जेल में रही।

५. **उषा मुकर्जी**–तीन साल जेल में रही।

६. **सुनीतिदेवी**–दो साल जेल में रही।

७. **प्रतिभा भद्र बी०ए०**– पाँच साल जेल में रही।

८. **सरयू चौधरी**–टीटागढ मामले में पकड़ी गई। फिर आर्डिनेन्स में चार साल जेल में रही।

९. **इन्द्रसुधा घोष**–चार साल जेल में रही।

१०. **श्रीमती प्रफुल्लनलिनी ब्रह्मा**–टिहरी मजिस्ट्रेट मि० स्टीवेन्स की हत्या के अपराध में गिरफ्तार हुई, किन्तु मुकदमा न चला, फिर आर्डिनेंन्स में ले ली गई। १९३० में जेल में मर गई।

११. **श्रीमती हेलना बाल बी०ए०**—यह अपने मामा श्री प्रफुल्ल कुमार दत्त तथा सुपतिराय चौधरी के साथ गिरफ्तार हुई, फिर कई साल जेल में रही।

१२. **श्रीमती आशादास गुप्ता**—५ साल जेल में रही।

१३. **श्रीमती अरुणा सान्याल**—५ साल जेल में रही।

१४ **श्रीमती सुषमादास गुप्ता**—कई साल तक घर में नजरबन्द रही।

१५ **प्रमिला गुप्ता बी०ए०**—वीणादास के साथ पकड़ी गई थी। कई साल नजर बन्द रही।

१६. **सुप्रभा भद्र**—प्रतिभा भद्र की छोटी बहिन नजरबन्द रही।

१७. **शान्तिकणा सेन**—दो साल जेल में रही।

१८. **शान्तिसुधा घोष एम०ए०**—१९३३ के ग्रिण्डले बैंक के सिलसिले में गिरफ्तार रही। फिर चार साल तक नजरबन्द रही। गिरफ्तारी के समय वह विक्टोरिया कॉलेज की प्राध्यापिका थी।

१९. **विमलाप्रतिभा देवी**—१९३३ में २० जून को देशबन्धु दिवस पर जलूस का नेतृत्व करती हुई गिरफ्तार हुई, फिर आर्डिनेन्स में ली गई। यह १९३७ में छूटी।

२०. **ममता मुकर्जी**—कुमिल्ला में नजरबन्द रही।

२१. **हास्यबाला देवी**—वरसान में अपने घर पर नजरबन्द रही।

२२. **सरोज नाग**—टीटागढ़ अस्त्र वाले मामले में पकड़ी गई। फिर छूटी तो नजरबन्द कर दी गई। स्वर्गीय सरदार पटेल के अनुसार ये सभी कांग्रेस की नीति के कारण भारत के कलंक हैं ?

❑❑

मद्रास प्रान्त के प्रमुख क्रान्तिकारी

बंची अय्यर

उन दिनों वर्तमान तमिलनाडु प्रान्त का नाम मद्रास प्रान्त था और वर्तमान चेन्नई नगर का भी नाम मद्रास। बंची अय्यर का जन्म मद्रास के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके माता-पिता धार्मिक विचारों के साथ-साथ देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत थे। देशभक्ति की भावना बंची अय्यर को अपने माता-पिता से प्राप्त हुई। इन्हें तमिल, अंग्रेजी और संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था।

बंची अय्यर जब युवा थे तब उस समय के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता विपिनचंद्र पाल ने मद्रास का दौरा किया। पाल एक ओजस्वी वक्ता थे और उस समय पूरे भारत में उनका नाम था। विपिनचन्द्र पाल ने अंग्रेजी शासन और उसकी कूटनीति के विरुद्ध अनेक स्थानों पर भाषण दिये। उनके भाषणों का युवकों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा और मद्रास में युवकों के क्रान्तिकारी दल उठ खड़े हुए। उन युवकों में बंची अय्यर, चिदम्बरम् पिल्लै, सुब्रह्मण्यम् शिव, नीलकण्ठ ब्रह्मचारी, शंकर अय्यर के नाम उल्लेखनीय हैं। बंची इंग्लैंड में श्याम जी कृष्ण वर्मा के साथ रहे थे उससे उनकी क्रान्ति की भावना और बढ़ गयी। उनका सावरकर आदि क्रान्तिकारियों से भी निकट का सम्बन्ध बन गया था। अय्यर का सम्बन्ध फ्रांसीसी सरकार से भी था। वे क्रान्तिकारियों को कहा करते थे कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पांडिचेरी से हथियार उपलब्ध हो जायेंगे। उस समय पांडिचेरी पर फ्रांसीसियों का शासन था। बंची अय्यर ने पांडिचेरी में रहकर ही हथियार चलाने का अभ्यास किया था।

इन क्रान्तिकारियों का विश्वास था कि अंग्रेजों को मारे बिना वे देश को छोड़कर जाने वाले नहीं हैं। इस विश्वास के आधार पर इन्होंने अधिक से अधिक अंग्रेजों का वध करने की योजना बनाई थी। क्रान्ति सम्बन्धी गतिविधियों के सन्देह में सुब्रह्मण्यम् शिव और चिदम्बरम् पिल्लै पकड़े गये। पिल्लै की गिरफ्तारी से बंची को बहुत दु:ख हुआ। उसने गिरफ्तारी के बाद एक पर्चा वितरित किया जिसमें अंग्रेजी सरकार को कटु शब्दों में कोसा गया था। बंची अय्यर ने लिखा था -

"अरे फिरंगी ! बेरहम बाघ ! तुमने एक साथ तीन भलेमानस

भारतीयों को बिना किसी उचित कारण के ग्रस लिया। तुमने अपना भंडाफोड़ कर दिया है, क्योंकि तुम यह मान चुके हो कि भारत में स्वाधीनता की हवा पैदा होते ही तुम्हारी जड़ हिल चुकी है।''

देश की आजादी के लिए आक्रान्ता अंग्रेजों का वध करना वे एक पवित्र कार्य मानते थे। बंची ने अपने इस पवित्र कार्य का आरम्भ मजिस्ट्रेट ऐश की हत्या से किया। १७ जून १९२२ को तिरुवेल्ली के जिला मजिस्ट्रेट को एक स्टेशन पर मारकर दूसरे लोक पहुंचा दिया। घटना के समय शंकर कृष्ण अय्यर भी उपस्थित थे। बंची अय्यर मौके पर ही पकड़ा गया। उसकी जेब से तमिल में लिखा एक पर्चा मिला जिसमें लोगों को क्रान्ति के लिए प्रेरित करते हुए जोशीले शब्दों में लिखा था –

'प्रत्येक भारतीय स्वराज्य और सनातन धर्म को सुरक्षित रखने के लिए अंग्रेजों को भारत से निकालने पर कटिबद्ध है। जिस देश पर राम, कृष्ण, अर्जुन, शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह जैसों का राज्य था, उसी पर गोमांस भक्षी जार्ज पंचम का राज्य है, यह कितनी बड़ी लज्जा की बात है। अब तीन हजार मद्रासी युवक प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि वे पंचम जार्ज का विनाश करके दम लेंगे।

ऐसे उत्साही युवक की, उस दिन कहानी ही शेष रह गई,जब उसे फांसी पर लटका दिया। बंची की मृत्यु से मद्रास में क्रान्ति की गति धीमी पड़ गयी।

❑❑

अगस्त १९४२ की क्रान्ति और अंग्रेजों की क्रूरता

अगस्त १९४२ में एक बार पुन: अंग्रेज सरकार के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चला। इस आन्दोलन की विशेषता यह थी कि इसमें विरोध के दोनों रूप समान्तर चल रहे थे—क्रान्तिकारी गतिविधियां भी पूरे जोश पर थीं और अहिंसात्मक आन्दोलन भी। इसी कारण आजादी के इतिहास में १९४२ के आन्दोलन को **'१९४२ की क्रान्ति'** का नाम दिया जाता है।

जनता में विद्रोह के उफान को देखकर ९ अगस्त १९४२ को कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का आरम्भ किया। अहिंसात्मक आन्दोलनों के द्वारा स्वतन्त्रता सेनानी थानों तथा सरकारी भवनों पर ब्रिटिश ध्वज हटाकर तिरंगा लहरा रहे थे। उधर क्रान्तिकारी तत्त्व थानों, अदालतों, सरकारी कार्यालयों पर हमला कर रहे थे और अंग्रेज अफसरों तथा सरकार का साथ देने वाले कर्मचारियों पर आक्रमण कर रहे थे। थाने-डाकखाने जलाये गये, गाड़ियां जलाई गयीं, पटरियां उखाड़ी गयीं, कानूनों को भंग किया। आन्दोलन विकराल रूप धारण कर गया था। सरकार उसे देखकर घबरा गयी किन्तु उतनी ही अधिक शक्ति से उसने दमन किया। जनता पर भयंकर जुल्म ढाये गये। लोगों की बेरहमी से हत्या की गयी, महिलाओं की इज्जत लूटी गयी, उन्हें बेहूदे तरीकों से अपमानित किया गया। इससे बढ़कर और बर्बरता क्या हो सकती है कि जनता पर हवाई जहाज से बम गिराकर निहत्थे लोगों को मौत के घाट उतारा गया। **सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही १९४२ की क्रान्ति में सेना और पुलिस की गोली से ९४० व्यक्ति मरे, १६३० घायल हुए, ६० हजार देशभक्त गिरफ्तार हुए, १८ हजार को नजरबंद किया, ५३८ बार जनता पर पुलिस ने गोलियां चलायीं, ६० बार सेना ने गोलियां चलायीं, ६ स्थानों पर जनता पर हवाई जहाज से बमों से हमला किया गया। वास्तविक आंकड़े कहीं इससे अधिक थे। सरकार ने यह विवरण घटाकर दिया है। (सम्पादक)**

१९४२ की क्रान्ति में बलिया की आजादी

९ अगस्त को कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में १०

रतन देवी शास्त्री

मणिबेन बल्लभ भाई पटेल

विद्या देवी
(भगतसिंह की माँ)

रल्ली देवी
(सुखदेव की माँ)

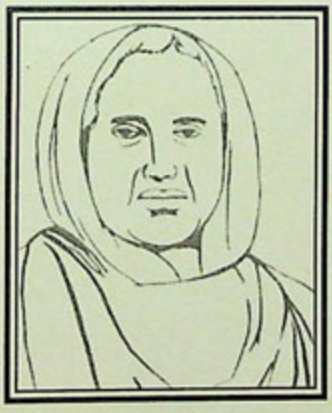

शास्त्री देवी
(बिस्मल की बहन)

दुर्गा बाई देशमुख

महारानी लक्ष्मीबाई का अन्तिम युद्ध

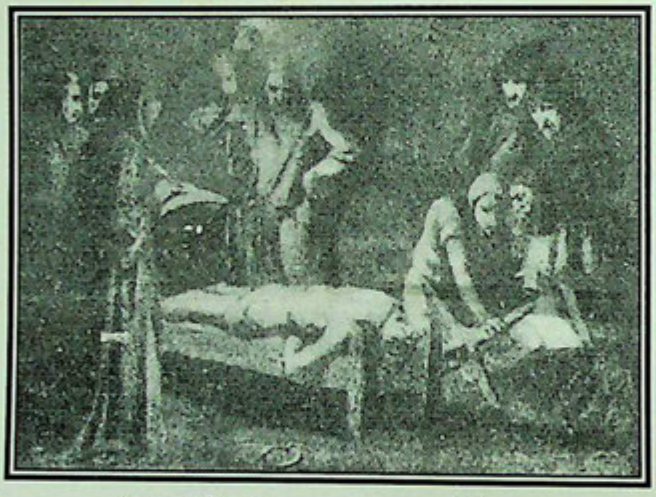

'मृत्यु-सेज' नामक दण्ड-विधान

दिल्ली का अन्तिम सम्राट बहादुरशाह और बेगम जीनत महल

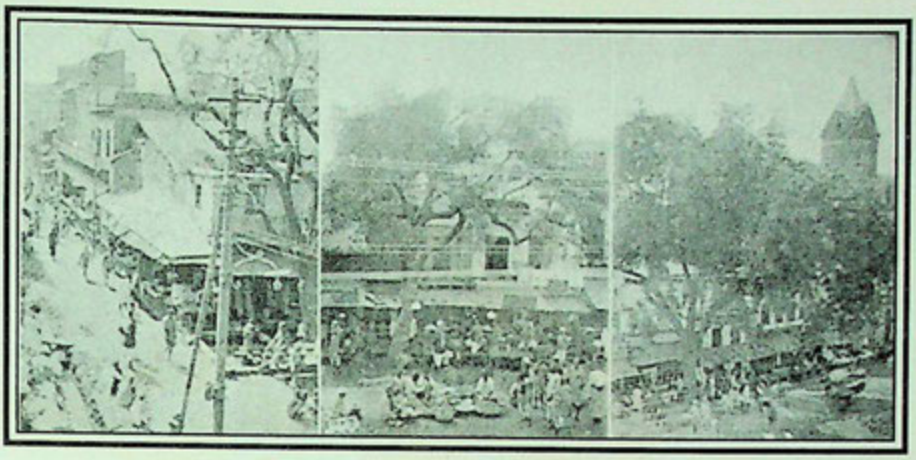

इलाहाबाद में चौक मोहल्ले के नीम के सात पेड़, जिन पर
सन् ५७ में लगभग ८०० निर्दोष नागरिकों को फाँसी
पर लटकाया गया

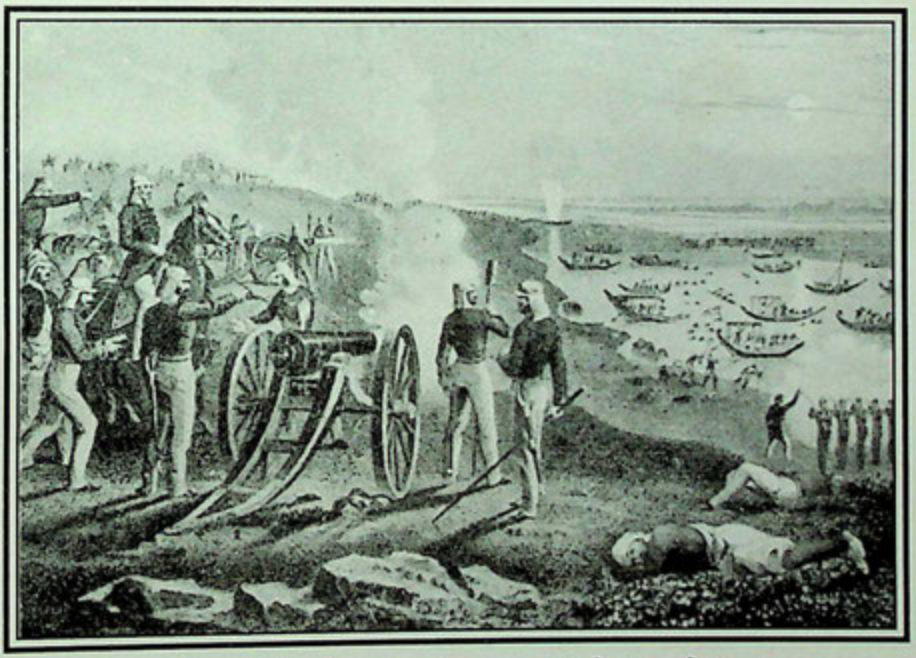

क़श्तियों में बैठ कर इलाहाबाद से भागते हुए
हिन्दोस्तानियों पर अंग्रेजी सेना द्वारा गोलाबारी

सम्राट बहादुरशाह की गिरफ़्तारी

कप्तान हडसन द्वारा मुगल शाहज़ादों की निर्मम हत्या

रंगून की जेल में कैद दिल्ली-सम्राट बहादुर का मृत्यु-शैया पर लिया गया एक फोटो

कानपुर के एक गाँव को अंग्रेजी फौज के सिपाही आग लगा रहे है। और गाँव वाले जानलेकर भाग रहैं।

दिल्ली की लूट का एक दृश्य, जिसमें अंग्रेज प्राइज़ एजण्ट लोग मकानों को खुदवा कर गड़ा धन निकालते दिखाए गए हैं

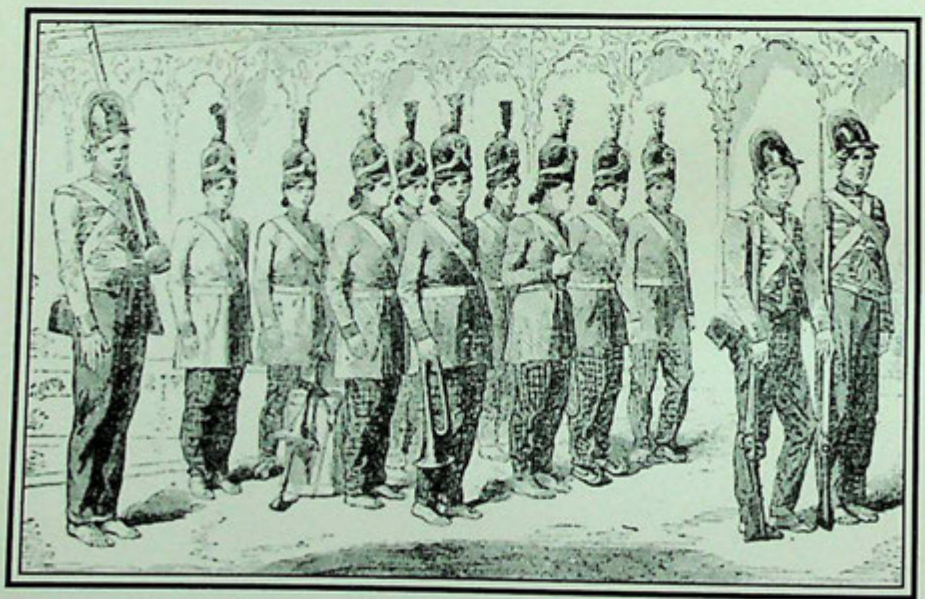

लखनऊ के नवाबी महल की बहादुर महिलाएँ, जिन्होंने मरदाना वेष पहन कर आजादी की लड़ाई में भाग लिया

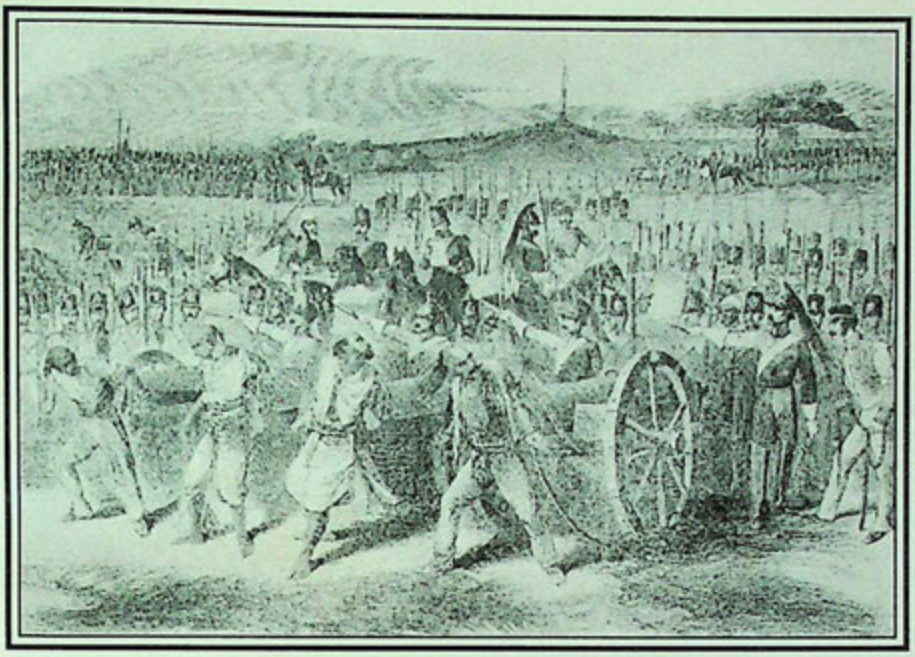

जून, १८५७ में बग़ावत के सन्देह पर हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप के मुँह पर बाँध कर उड़ाया जा रहा है

१० जून, सन् १८५७ को पेशावर में हिन्दोस्तानी सिपाहियों को तोप से उड़ाया जा रहा है। चित्र में बारूद के धुएँ में उड़ते हाथ, पैर और सिर दिखाए गए है

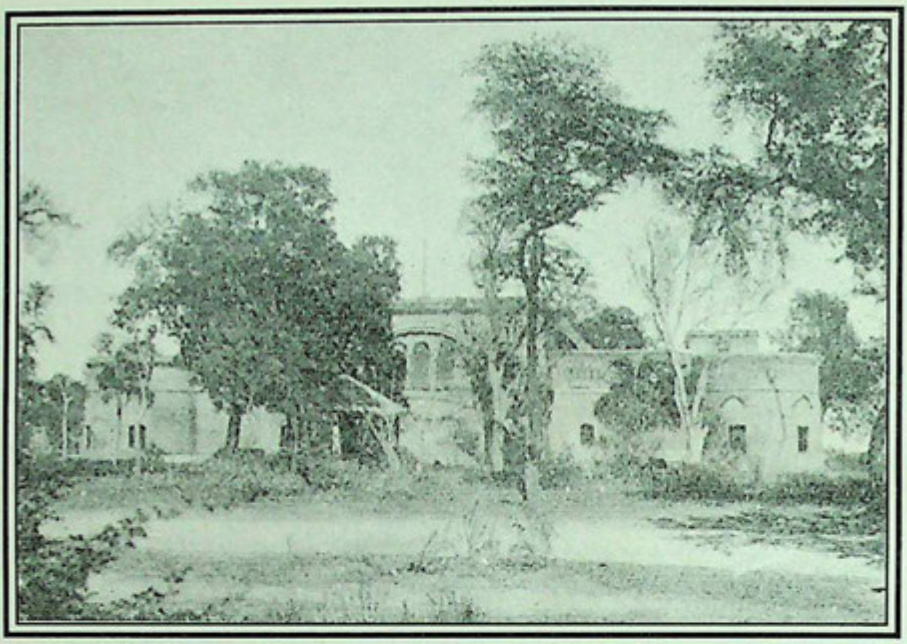

काल्याँ-दा-बुर्ज (अजनाला) की इमारत, सिके एक छोटे से बुजे में सन् ५७ में अंग्रजों ने ६६ हिन्दोस्तानी बन्द कर दिए थे । इन ६६ में से ४५ व्यक्ति सुबह होने तक दम घुटने से मर चुके थे

काल्याँ-दा-बुर्ज (अजनाला)

अगस्त को बलिया (उत्तर प्रदेश) में पूरी हड़ताल रही। ११ अगस्त को छात्रों ने एक जुलूस निकाला। पुलिस ने उस पर लाठी चार्ज किया। बहुत से लोगों को चोटें आयीं। ४० छात्रों को गिरफ्तार कर लिया गया। इससे आन्दोलन दबा नहीं अपितु और उग्र हो गया। १२-१८ अगस्त को स्टेशन जला दिया गया, सरकारी सम्पत्ति नष्ट की, टेलीफोन के तार काट दिये, डाकखाना लूटा गया, कार्यालयों पर हमले हुए। इस समय तक बलिया देश के अन्य भागों से कट चुका था। १६ अगस्त को पुलिस ने गोलियां चलायीं जिसमें ९ व्यक्ति मरे और घायल हुए। बलिया की रसड़ा और बांसडीह तहसीलों के खजाने लूट लिये गये और थाने जला दिये गये। १९ अगस्त को बलिया पर हमला करके गिरफ्तार नेताओं को छुड़ाने की जनता की योजना थी। इसका पता चलते ही जिला मजिस्ट्रेट ने चित्तू पांडे को छोड़ दिया और स्वयं को जनता के हाथों सौंप दिया। बलिया की आजादी की घोषणा कर दी गयी। तीन दिन तक बलिया आजाद रहा और वहां जनता का राज्य रहा। इसी प्रकार सतारा, मेदिनीपुर आदि स्थानों पर भी जनता ने कई स्थानों पर कब्जा कर लिया था। **(सम्पादक)**

जब किशोरों ने सीने पर गोली खायी

बिहार के पटना सचिवालय के आठ शहीद

९ अगस्त १९४२ को 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन सारे देश में पूरे जोश के साथ आरम्भ हुआ। कहीं अहिंसात्मक आन्दोलन हो रहे थे तो कहीं हिंसात्मक तोड़-फोड़। कांग्रेस के सारे नेता गिरफ्तार हो चुके थे। अंग्रेज सरकार ने कुर्सी खिसकते देखकर दमन और अत्याचार पर सारा जोर लगा दिया था। बिहार की राजधानी पटना में ११ अगस्त ४२ को एक अहिंसात्मक विशाल जुलूस निकला। सारा शहर, सभी स्कूल, सभी कालेज बंद थे। सारा शहर आजादी पाने के लिए जुलूस की शक्ल में उमड़ रहा था। लगभग २५-३० हजार लोगों की भीड़ थी। आगे-आगे स्कूल-कालेजों के छोटे बच्चे चल रहे थे। सचिवालय (सेक्रेट्रिएट) पहुंचकर जुलूस को रुकना पड़ा। सामने खड़ा था काले दिल का गोरा जिला मजिस्ट्रेट आर्चर, जो गोरखा सैनिकों की टुकड़ी को लेकर पहले से ही तैयार खड़ा था। स्वतन्त्रताप्रिय निहत्थे आन्दोलनकारी एक ओर थे तो बंदूकों और कारतूसों से लैस सैनिक दूसरी ओर। फिर भी देशभक्त भयभीत नहीं थे। वे चाहते थे सेक्रेट्रिएट पर तिरंगा ध्वज लहराना। अचानक

आर्चर के आदेश पर पुलिस ने लाठीचार्ज किया। लाठियां खाकर भीड़ वहां से नहीं हटी। 'आर्चर मुर्दाबाद' 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारों से आकाश गूंज रहा था। तभी उसमें एक और आवाज गूंजी, गोलियों की आवाज ! अचानक फायर से हैरान लोगों ने देखा कि स्कूल-कॉलेज के कुछ विद्यार्थी धरती पर लहुलुहान पड़े ''पानी-पानी'' चिल्ला रहे थे। जुलूस में भगदड़ मच गयी थी किन्तु कुछ उत्साही वीरों ने निश्चय किया कि बिना ध्वज पहराये नहीं लौटेंगे। तभी एक युवक 'विधानसभा' भवन पर चढ़कर हाथ में तिरंगा ध्वज लेकर फहराता दिखायी पड़ा। उसे गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना ने सारे प्रान्त में अंग्रेजों के विरुद्ध आग लगा दी। आन्दोलन और व्यापक हो गया। इस घटना में छह बालक मौके पर ही शहीद हुए और दो अस्पताल में दम तोड़ गये। वे बहादुर बालक थे-

१. **श्री राजेन्द्र प्रसाद**—गर्दनीबाग हाई स्कूल के इस छोटे-से बालक की जन्मभूमि गांव 'धीराचक्र' जिला पटना थी। पूज्य पिता जी का नाम श्री शिवनारायण सिंह था।

२. **श्री तारापद चौधरी**—दस वर्ष की कोमल आयु के इस अबोध बालक का परिचय अज्ञात है।

३. **श्री सतीश झा**—पटना कालेज का यह विद्यार्थी जिला भागलपुर के बटापुरा गांव का था। पिता जी का नाम पं. मथुराप्रसाद था। मरते समय इस बालक ने उद्‌गार प्रकट किये थे -

ब्रिटिश हकूमत का अन्त आ गया है !

स्वतन्त्रता का सूर्योदय हो चुका है !!

४. **श्री उमाकान्तसिंह**—१५ वर्षीय एक राजपूत बालक था। शहादत के समय अत्यधिक प्रसन्न था।

५. **श्री जगपतिप्रसाद**—बी. एन. कालेज का छात्र था। पटना के प्रमुख वकील श्री सतयुग शरण का भाई था।

६. **श्री रामगोविन्द**—मैट्रिक में पढ़ने वाला यह १६ वर्षीय बालक गांव दशरथा जिला पटना का था। जाति से कुर्मी था और माता-पिता की इकलौती सन्तान थी।

७. **श्री रामनन्दन**—मैट्रिक में पढ़ने वाला यह १८ वर्षीय छात्र गांव फतहा का था, जो विवाहित था। इसके शहीद होने के बाद शोक की अवस्था में पत्नी ने भी प्राण त्याग दिये।

८. **श्री इन्द्रदेव**—आपके पिता जी का नाम श्री जगनलाल चौधरी

था। विधानसभा भवन पर तिरंगा फहराने के लिए प्रवेश करते हुए आप पर पुलिस द्वारा लाठी-प्रहार किया गया जिसके कारण घायल होने पर अस्पताल में आपकी मृत्यु हो गयी।

क्रूर आर्चर को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ, उसने इन बलिदानियों की लाश देने से इन्कार कर दिया। इससे लोगों में आक्रोश और अधिक बढ़ गया। कुछ प्रमुख लोगों द्वारा बीच-बचाव करने पर लाशें सौंपी गयीं। आधी रात के समय इनकी विशाल शवयात्रा निकाली गयी। दीघा घाट पर सुबह होते-होते इनका संस्कार कर दिया।

अंग्रेज़ी कुकृत्यों की घृणित दास्तान

अगस्त क्रान्ति में स्त्रियों के साथ क्रूरता

अगस्त क्रान्ति की नेत्रियाँ अरुणा और सुचेता

हम पहले दिखा चुके हैं कि आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्त्रियों का भाग कोई मामूली नहीं था। फिर १९४२ में यदि उनका भाग प्रधान रहा, इसमें आश्चर्य क्या? शायद समस्त प्रान्तों की अपेक्षा आसाम में ही स्त्रियों का भाग सब से अधिक रहा पर यह अधिकांश लोगों को नहीं मालूम और न किसी लेखक ने ही लिखा है कि ठीक नेताओं की गिरफ्तारी के बाद क्रान्ति को संगठित करने के लिए जो कमेटी बनी उसमें श्रीमती अरुणा आसफअली तथा श्रीमती सुचेता कृपलानी भी थी। किसी कारण से उन लोगों ने उसके इतिहास को नहीं लिखा, पर श्रीमती आसफअली तथा अच्युत पटवर्धन ने १९४६ के दिसम्बर में फरारी हालत में जो बृहत् पत्र मौलाना आजाद को लिखा था, उससे इस आन्दोलन की नेत्रियों में उनका स्थान तो ज्ञात है। सुचेता जी के भाग को बहुत कम लोग जानते है पर उनका भी इस अन्तरंग कमेटी में उतना ही भाग था जितना श्रीमती आसफअली का। स्मरण रहे कि इस कमेटी में कोई वामपंथी या दक्षिणपंथी की हैसियत से नहीं थे या थीं, सभी **'कांग्रेस का अगस्त विद्रोह'** के रूप में ये थीं। हर फैसले में सब की राय होती थी। दु:ख है कि अगस्त क्रान्ति के इस पर्दे के पीछे के इतिहास को अभी लिखने के उपादान प्राप्त नहीं हैं, कभी प्राप्त होगा कि नहीं, इसमें अभी सन्देह है। अभी तक अगस्त क्रान्ति के इतिहास में घटनाएं ही आ रही हैं, पर इस युग में जो बुलेटिन निकले, जो पर्चे निकले, उनका कौन लेखक तथा लेखिका थी, प्रत्येक फैसले में किसका कितना हाथ रहा, जब तक यह न जाना जाय तब तक हम असली इतिहास से दूर ही

होंगे। अस्तु ! कुछ दक्षिणपंथी जिन्होंने वास्तविक तोड़-फोड़ में हिस्सा लिया, और खूब लिया, बाद को गांधी जी का रुख देखकर अपने कार्यों पर चुप्पी साध गए, जिससे अन्तरंग इतिहास लिखना बहुत ही मुश्किल है। इस कारण नेतृत्व में स्त्रियों का कितना हाथ रहा यह भी बताना मुश्किल है। कहीं गलतफहमी न हो जाय इसलिए हम यह बता दें कि अन्तरंग कमेटी जो भी बनी हो, उसका प्रयास स्तुत्य होने पर भी मैं यह समझता हूं कि जनता ने अपनी मौलिक क्रान्तिकारी बुद्धि से काम लिया और जैसा कि अच्युत तथा अरुणा ने अपने उल्लिखित पत्रों में लिखा कि जो हजारों लाखों मन औपादानिक शक्तियां मुक्त हुई, उनको एक-आध माशा परिचालना हमने दी। इसका यह एक-आध माशा केवल नम्रता सूचक शब्द नहीं है सचमुच ही उनकी आवाज़ बहुत दूर तक नहीं पहुंची। अस्तु।

सुचेता जी बाद को अलग

ऐसा सुना जाता है कि बाद को जब गांधी जी के अनशन (१९४३ फरवरी) वाले पत्र प्रकाशित हुए, तब सुचेता जी इस अन्तरंग कमेटी से अलग हो गई। पर उस समय तक तो आन्दोलन बहुत कुछ खत्म हो चुका था, फिर तो कमेटी के लोग पर्चेबाजी करते रहे। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि सुचेता जी इस कमेटी की उतनी ही नेत्री थीं जितनी अरुणा जी।

अन्य नेत्रियाँ

इन दोनों के अतिरिक्त इस आन्दोलन में छात्रों के साथ छात्राओं ने बराबर बहुत गौरवजनक भाग लिया। हिन्दु विश्वविद्यालय की छात्राओं ने, बम्बई की देशसेविकाओं ने तथा अन्य स्थानों की स्त्रियों ने जो भाग लिया उसका कुछ कुछ वर्णन आता गया है। मातागि फुलेश्वरी कलकत्ता आदि का यथास्थान वर्णन आ चुका है।

स्त्रियाँ त्याग में पुरुषों से आगे

पुरुषों के साथ-साथ सब त्याग करने पर भी और कई क्षेत्रों में उनका त्याग अधिक नीरव होने पर भी स्त्रियों को एक त्याग पुरुषों से अधिक करना पड़ा। वह है फौजियों के तथा पुलिस वालों के हाथों उनकी लज्जाहानि तथा सतीत्व का नाश। कई क्षेत्रों में तो लज्जा तथा अन्य कारणों से स्त्रियों तथा उनके पति आदि इस प्रकार की घटनाओं को दबा गए होंगे, फिर भी सैकड़ों घटनाएँ प्रेस में आईं और जितनी

थोड़ी बहुत घटनाएँ आईं उन्हीं से यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को इस क्षेत्र में नात्सीवाद के मुकाबले में झेंपने की कोई जरूरत नहीं। जिस प्रकार किराए के टट्टुओं ने हमारी माँओं तथा बहिनों की इज्जत को बात की बात में नष्ट करके धर दिया, उसे पढ़कर आने वाली सन्तानें हमेशा खून के आँसू रोयेंगी।

यहां हम कुछ ऐसी घटनाओं को उद्धृत कर रहे हैं –

काशीबाई की लज्जाहानि

बम्बई के प्रधान मन्त्री (उन दिनों अर्थात् ९ दिसम्बर १९४४ को भूतपूर्व प्रधानमन्त्री) श्री बी० जी० खेर के सभापतित्व में एक जांच कमेटी ने जो नतीजे निकाले वे इस प्रकार हैं। यह घटना कोल्हापुर राज्य की पुलिस ने १९४२ के आन्दोलन के सम्बन्ध में जो आतंक फैलाया था उसी का अंश है। मल्लू नामक एक व्यक्ति १९४२ की क्रान्ति के सम्बन्ध में फरार था। उसी का पता लगाने के लिए उसकी माँ काशीबाई पर अत्याचार किये गये। यों तो पंगीरे नामक गांव के सभी लोगों पर अत्याचार हुए। कमेटी ने जांच करके इस बात को प्रमाणित पाया कि काशीबाई, उसका पति, उसके छोटे बच्चे तथा दो अन्य व्यक्ति १९४४ के १९ अक्तूबर को चिखावल के पुलिस पाटिल के घर पर ले जाए गए। वहां काशीबाई को इंगवाले नामक दारोगा के सामने पेश किया गया। उससे पहला प्रश्न तो यह पूछा गया कि तुम मल्लू की मां हो या बीबी। फिर दारोगा ने काशीबाई के बाल पकड़ लिये उसे जमीन पर गिरा दिया गया। और उसके पति से कहा कि तुम उसे नंगी कर दो। काशीबाई नंगी की गई और उस पर हंटर पड़ने लगे। उस पर थोड़ा-थोड़ा पानी भी छिड़का गया यह शायद इस कारण कि हंटर का दाग न पड़े।

गुप्तस्थान में मिर्च की बुकनी

कमेटी के सदस्यों ने देखा कि काशीबाई के शरीर पर अब हंटर के दबे हुए दाग थे। चार सनदी यानी इनामी जमीन प्राप्त चौकीदारों की गवाही से जो घटनास्थल पर मौजूद थे, कमेटी को यह ज्ञात हुआ कि फिर दुष्ट दारोग़ा ने काशीबाई को धमकाया कि यदि वह मल्लू का पता न बतायगी तो उसके गुप्तस्थान में मिर्च की बुकनी डाली जायगी। अन्य गवाहियों से यह साबित होता है कि मिर्चों की बुकनी या तो दारोगा ने खुद डाली या तो उसके लोगों ने डाली। शुक्रवार को सवेरे फिर वह नंगी की गई और मारी गई। काशीबाई का पति, दो बच्चे तथा अन्य जो

दो आदमी थे, वे भी मारे-पीटे गये। एक को इतने जोर से धक्का मारा गया कि दीवारों की ईंटों में दाग पड़ गया। कमेटी के सदस्यों ने इस दीवार को देखा था। पाटिल के घर में ही सब मार पीट होती रही। इन सब को, जब तक पुलिस उस गांव में रही, तब तक खाने का दाना नहीं दिया गया। बाहर के लोगों ने मारपीट की आवाज सुनी। इसमें सन्देह नहीं की काशीबाई के गुप्तस्थानों में मिर्चों की बुकनी दी गई। कोल्हापुर सरकारी अस्पताल में काशीबाई का इलाज हुआ, पर कोशिश करने पर भी डॉक्टर या नर्सों को गवाही देने की इजाजत नहीं दी गई। पुलिस इंस्पेक्टर जनरल से इजाज़त मांगी गई कि वे डॉक्टरों को आज्ञा दें, पर यह आज्ञा नहीं दी गई। एक स्त्री ने यह गवाही दी कि घर लौटकर काशीबाई के गुप्तस्थान से रक्तस्राव हो रहा था। स्मरण रहे कि यह अत्याचार शिवा जी के साक्षात् वंशधर कोल्हापुर के राजा के राज्य में हुआ और प्रधान मन्त्री ने इस बात की पूरी चेष्टा की कि कमेटी को काशीबाई पर अत्याचार के सम्बन्ध में कोई गवाही न मिले, फिर भी चार सनदियों ने तथा पाटिल ने समर्थनात्मक गवाही दी हैं।

सिन्धुबाला माइति पर बलात्कार

बंगाल के मेदिनीपुर जिले महिषादल इलाके के चण्डीपुर मोजा के श्री अधरचंद्र माइति की पत्नी श्रीमती सिन्धुबाला माइति ने बयान दिया था–

मेरी उम्र १९ साल है और मेरा बच्चा है। १९४३ की ९ जनवरी दिन के ९.३० बजे पुलिस अफ़सर कुछ फौजियों के साथ मेरे घर में दाखिल हुआ। उन लोगों ने मेरे पति को जबरदस्ती पकड़कर अलग कर दिया, फिर मुझ पर बार बलात्कार किया। मैं बेहोश हो गई थी, बलात्कृत होने का यह दूसरा मौका था।

इस स्त्री पर १९४३ के २० अक्तूबर को एक दफे और बलात्कार किया गया था। दूसरी बलात्कृत होने के बाद उस स्त्री को कोई भयंकर रोग हो गया, जिससे वह चल बसी।

खुदिबाला पर बलात्कार

इसी गांव के हरिपद पंडित की पत्नी श्रीमती खुदिबाला पंडित ने यह बयान दिया था–

मेरी उम्र २१ वर्ष है, मैं तीन बच्चियों की मां हूं। १९४३ की ९ जनवरी को सवेरे एक पुलिस अफसर कुछ फौजियों के साथ मेरे घर में

दाखिल हुआ। मेरे पति को गिरफ्तार कर कहीं और ले जाया गया। वह व्यक्ति फिर मेरे कमरे में आया और उसकी हिदायत के अनुसार दो फौजियों ने मेरे मुंह को कपड़े से बांध दिया और उन लोगों ने धमकाया कि यदि चिल्लाऊंगी तो मुझे गोली मार दी जाएगी। इसके बाद दोनों फौजियों ने एक के बाद एक ने मुझ पर बलात्कार किया, मैं बेहोश हो गई। होश में आने के बाद देखा कि मेरे पति लौट आए हैं, उनके शरीर पर चोटें हैं और उन चोटों से खून टपक रहा है।

जिस समय इस स्त्री पर बलात्कार किया गया था, वह गर्भवती थी।

सुहासिनी पर बलात्कार

इसी गांव के श्री मन्मथनाथ दास की पत्नी श्रीमती सुहासिनीदास ने यह बयान दिया–

मेरी उम्र २० साल है, अभी कोई बच्चा नहीं है। १९४३ की ९ जनवरी को एक पुलिस अफसर कुछ फौजियों के साथ मेरे घर पर आया। उन्होंने मेरे पति को पकड़ कर कहीं अलग पहुंचा दिया। उस व्यक्ति के हुक्म से दो फौजियों ने कपड़े के टुकड़े से मेरा मुंह बंद कर दिया और मुझे धमकाया कि यदि मैं चिल्लाऊंगी तो मुझे गोली मार दी जाएगी। उन दोनों फौजियों ने मेरे साथ जबरदस्ती की। मैं लज्जा तथा घृणा से बेहोश हो गई, आप लोग हमें फिर से सामाजिक बनाएँ।

इस स्त्री को हैजा हुआ था और बलात्कार के तीन दिन पहले ही उसने स्वाभाविक खाना खाया था।

विधवा पर बलात्कार

इसी गांव की स्वर्गीय सुशील मुखर्जी की श्रीमती स्नेहबाला ने यह बयान दिया मेरी उम्र २८ साल है। मेरे चार लड़के हैं। १९४३ की ९ जनवरी को एक पुलिस अफसर कुछ फौजियों को लेकर हमारे घर पर आया। उनमें से कुछ ने मेरे बड़े लड़के को पकड़ कर और कहीं भेज दिया। उस व्यक्ति की आज्ञा से फौजी मेरे कमरे में आए और उन्होंने मुझे पकड़ लिया। फिर मेरे मुंह में कपड़ा ठूंस कर मुझ पर बारी-बारी से बलात्कार किया गया। मैं बेहोश हो गई, फिर जब होश में आई, तो देखा कि लड़का लौट आया है पर उसके शरीर पर चोटें है और उसके घावों से खून बह रहा है।

तीन फ़ौजियों द्वारा बलात्कार

इसी थाने के डिही मसुरिया गांव के श्री गिरीश मापारू की पत्नी

श्रीमती बसन्तबाला मापारू ने इसी प्रकार का बयान दिया। उस पर तीन फौजियों ने जबरदस्ती की।

राइमणि का बलात्कार

इसी गांव के श्री भुवन पाड़िया की श्रीमती राइमणि पाड़िया के बयान में भी ये ही बातें थी। उनके बयान में विशेषता यह है कि वह भागकर एक बांस के जंगल में जा रही थी, पर पकड़ ली गई और मुंह में कपड़ा ठूंस कर उस पर बलात्कार किया गया। यह स्मरण रहे कि एक ही थाने ने यह सब कराया। मालूम होता है कि उस पशु ने बलात्कारों का एक कार्यक्रम बना लिया था। यदि इन निर्यातनों के शिकारी जापानी विजय चाहते तो भी बेजा न होता, क्योंकि ब्रिटिशगण पाशविकता में कम कब थे?

करीब-करीब भारत भर में सर्वत्र अगस्त क्रान्ति को दबाने के लिए स्त्रियों की लज्जाहानि तथा उन पर बलात्कार किया गया।

(भा०क्रा०आ०इति० से)

कुछ क्रान्तिकारी महिलाएं

अंग्रेजी क्रूरताओं के नमूने
जेलों में अगस्त बन्दियों पर अत्याचार

(क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त)

जेलों में इतिहास बना

१९४२ का कोई भी वर्णन उस सम्बन्ध में राजबन्दियों पर किये गए अत्याचारों के वर्णन के बिना अधूरा रहेगा। यों तो अन्य अत्याचारों के साथ-साथ जेल के अत्याचारों का कुछ वर्णन हम कर आए हैं, पर इस अध्याय में अगस्त कैदियों के साथ जेल में हुए दुर्व्यवहारों का कुछ वर्णन किया जाता है। सच तो यह है कि राजनीतिक कैदी जहां भी रहे, उनके साथ दुर्व्यवहार हुआ। पर यहां कुछ ही जेलों का वर्णन दिया जायेगा। **'हांडी के चावल'** न्याय से ऐसी दशा सभी जेलों की समझी जाये।

अलीपुरम जेल की मार

पहले दक्षिण के अलीपुरम जेल से चला जाये। वहां बहुत से प्रतिष्ठित राजबन्दी बन्द थे, जिनमें वकील डॉक्टर सभी तरह के लोग थे। एक राजबन्दी तथा एक वार्डन में कुछ झगड़ा हो गया था, पर वह निपट गया था और किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था। एक सीटी बजी और लोग राजनीतिक बन्दी वार्ड की तरफ दौड़ते हुए देखे गए। सामने देखा गया तो जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट जेलर तथा रिजर्व पुलिस आ गई थी। फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने लाठी चार्ज का हुक्म दिया। बस फिर क्या था, लोग बात की बात में गिरा दिये गए, जैसे जंगल में पेड़ गिरा दिए जाते हैं और धूल कई फुट तक उड़ने लगी। लोग उठने की चेष्टा कर रहे थे, पर फौरन गिरा दिये गए और फर्श खून से लाल हो चला। कुछ राजबन्दी जो अभी बैरक के अन्दर थे, वे बचे थे पर अधिकारियों का ध्यान शीघ्र ही उधर गया और वे भी गिरा दिये गए। सुपरिण्टेण्डेण्ट के बायें हाथ में पिस्तौल थी। जो लोग टट्टी में बैठे थे, वे वहीं पर गिरा दिये गये थे और उधर भी लोग कराह रहे थे।

फिर मार और ड्रिल ???

एकाएक सब राजबन्दियों को बीच की जगह पर जाने को कहा गया। लोग बताई हुई जगह पर जा कर बैठ गए। लोग यह समझे कि

अब मार हो चुकी कुछ उपदेश होगा। पर यह क्या अब फिर लाठी चार्ज शुरू हो गया। अब तो लोग ऐसी जगह पर थे कि भाग भी नहीं सकते थे। इसके बाद लोगों को बाहर ले जाकर चार-चार की कतार में खड़ा होने को कहा गया। कई तो खड़े नहीं हो सके, पर बाकी खड़े हुए। जो खड़े हुए उनसे ड्रिल करने के लिए कहा गया। पर लोग ड्रिल न कर सके, तो उन पर कोड़े पड़े। कोड़ों की मार से लोगों को ड्रिल कराया गया। इस प्रकार राजबन्दियों को एक वार्डर के साथ झगड़ा करने का सबक दिया गया। यह १४ सितम्बर १९४२ की घटना है।

शिव्बनलाल पर जेल में मार

७ सितम्बर १९४२ को डी०आई०जी० मिस्टर लक गोरखपुर जेल में श्री शिव्बनलाल सक्सेना से मिले। उसी दिन उन्होंने यह पत्र विलायत लिखा-

प्रियतमे

....ट्राबटन तथा उसकी सेना परसों यहां से जा रहे हैं और उसकी जगह पर सफोक सेना आ रही है। वे बड़े काम की रही। कई ट्राबटन की सेना ने अपने अधिकार से बाहर आकर मदद की। मुझे आशा है कि सफोट सेना भी इसी प्रकार सहायक सिद्ध होगी ...प्रसिद्ध कांग्रेसी विद्रोही शिव्बनलाल सक्सेना जिसके लिए हम इतने दिनों तक परेशान थे कल महाराज गंज में एक गांव के मुखिया के द्वारा पकड़ लिया गया। इससे बड़ी चिन्ता दूर हुई। यही वह आदमी है जो एरिक मास की हत्या करने की चेष्टा में लगा था और उस जिले की तोड़ फोड़ का बहुत कुछ इसी व्यक्ति ने संगठन किया था। आज मैंने उससे जेल में मुलाकात की। इस सूअर ने कहा कि इसे संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में कांग्रेस विद्रोहियों के द्वारा होने वाले तोड़-फोड़ के कार्यों के सम्बन्ध में कुछ नहीं मालूम। मैंने उसे बतलाया कि किस प्रकार थानेदार जिन्दा जला दिये गए, इस पर उस बदजात ढोंगी ने कुछ घड़ियाली आंसू निकाले और कहा कि वाकई ऐसी घटनाएँ कांग्रेस के झण्डे के लिए कलंक स्वरूप हैं और श्री गांधी जी को ये घटनाएं मालूम हो गईं तो वे इसके लिए भयंकर प्रायश्चित्त करेंगे। मुझे तो शक ही नहीं विश्वास है कि इस पाजी सूअर ने ही कई ऐसे काम कराए होंगे। कांग्रेसी देशभक्तों का यह ढोंग देखकर बदन में आग लग जाती है। सच तो यह है कि जो कुछ उपद्रव आफत तथा गुंडई हुई है उसके लिए इसे कुछ भी अफसोस

नहीं था। यदि उसे अफसोस था तो इस बात पर कि और अधिक बदमाशी करने के पहले पकड़ा गया। फिर मैंने उसे जेल की कोठरी में मारते-मारते करीब करीब मार डाला। उसके पकड़े जाने पर एरिया को इतने खुशी हुई कि उसने हमें तास में हराया। बड़ी खुशी है कि तुम खूब पार्टियों में जा रही हो, पर अधिक रात तक न जगा करो, पर मैं जानता हूं कि तुम बहुत अच्छी हो। मेरी प्यारी स्त्री बहुत प्यार।

तुम्हारा ही

जिस

१९४२ तथा उसके बाद के दिनों में लाहौर का किला अत्याचार के लिए मशहूर हुआ। यहां पर जयप्रकाश जी, डा० लोहिया, शीलभद्र याजी आदि कितने ही राजबन्दी रखे गये थे। श्री शरत् बोस के भतीजे तथा अन्य लोगों के सम्बन्ध में बयान हुए। हम बाद में उन्हें उद्धृत करेंगे। पहले हम देखें कि संयुक्त प्रान्त की फ़तेहगढ़ सेण्ट्रल जेल में अगस्त बन्दियों पर क्या अत्याचार हुए। लेखक वहीं पर स्वयं रहा, पर यह विवरण कानपुर स्टेशन बम काण्ड के श्री निरंजनसिंह (सजा कालेपानी) द्वारा संग्रह किये गये विवरण के आधार पर है जो लेखक के पास चोरी से लेखक के जेल में रहते समय ही १.१०.४७ को दिया था।

फतेहगढ़ का हृदयविदारक इतिहास

फतेहगढ़ सेण्ट्रल जेल संयुक्त प्रान्त का अण्डमान है। यहीं बड़ी दयनीय परिस्थिति में क्रान्तिकारी शहीद श्री मणीन्द्रनाथ बनर्जी की मृत्यु हुई थी। यद्यपि इस बार बरेली जेल में जैसे श्री दीवानसिंह की मृत्यु हुई थी वैसे यहां कोई राजबन्दी नहीं मरा, पर राजबन्दियों के साथ इस जेल में जो व्यवहार हुआ, वह हृदयविदारक है।

हर बहाने मार

मैनपुरी के अगस्त बन्दी बाबूराम तथा मास्टर गयाप्रसाद फतेहगढ़ आते ही चक्की पीसने के लिए भेजे गए। किसी मामूली-सी बात पर मास्टर गयाप्रसाद को इतना मारा कि उनके बाएं पैर की हड्डी टूट गई। और वे जीवन भर के लिए लंगड़े हो गए। इस मार के बाद उन्हें एक अंधेरी कोठरी में बन्द रखा गया और उन्हें तीन दिन तक पानी नहीं दिया गया। चौथे दिन वह फिर निकाले गए और उन पर फिर तड़ी डाली गई। अब मास्टर साहब से और सहन नहीं हुआ और उन्होंने उसी हालत में

अनशन कर दिया। यह अनशन ४० दिन तक रहा इस पर उनकी हालत खराब हो गई और अधिकारियों ने वायदा किया कि आगे उनके साथ दुर्व्यवहार न होगा, तब उन्होंने अनशन तोड़ा। इस वायदे पर भी अनशन करने के ही कारण उन पर मुकदमा चला और उन्हें ६ महीने की सजा दी गई।

मारा भी और मुकदमा भी चलाया

इसी प्रकार इटावा के कन्हैयालाल जी को पहले चक्की दी गई। फिर इतनी मार पड़ी कि खोपड़ी टूट गई और कुर्ता तथा जांघिया खून से लथपथ हो गए। फिर वे बेहोश हो गए। बिना कारण मार पर उन्होंने अनशन किया और अनशन के लिए उन पर दफा ५२ के तहत मुकदमा चला। अदालत ने उन्हें बीस बेंत की सजा दी। इटावा के बाबूराम गुप्त और ओंकारसिंह तथा मैनपुरी के रामनारायण आजाद ने उनकी सहानुभूति में अनशन कर दिया, इसके लिए उनको भी २०-२० बेंत की सजा दी गई। खैरियत यह हुई कि अपील में भी बेंत की सजा ही दी गई।

फ़ालिन तथा भूखों रखना

इसी जेल में कानपुर के शिवरामसिंह, रामनाथ वर्मा, रामतरन; गाजीपुर के सिद्धिनाथ, गिरिराज; फर्रुखाबाद के हलचल, बच्चालाल, बजिया के रामनगीना तथा मूलराज सिंह को इतना मारा कि उनके मुंह से तथा टट्टी से खून गया। कन्हैयालाल तथा शिवरामसिंह के कान भी फट गए। कुछ राजबन्दियों के अतिरिक्त फतेहगढ़ के सब सी श्रेणी के राजबन्दियों पर फालिन हुआ। गिरा कर टांग उठाकर मारने को फालिन कहते हैं। जब इस प्रकार की मार से राजबन्दी बेहोश हो जाते थे तो उन्हें घसीटकर अन्धी कोठरी में बन्द कर दिया जाता था। जिस समय इन कैदियों पर फालिन होता था, उस समय गांधी जी तथा अन्य नेताओं को गालियां दी जाती थीं। जब ये मारकर कोठरी में डाल दिए जाते थे, तो किसी नम्बरदार या मामूली कैदी को दया आ जाती थी तब उन्हें पानी मिल जाता था। पर यदि अधिकारियों को इसका पता लग जाता था, तो उस कैदी की शामत आ जाती थी।

नमस्ते पर मारे गए

राजनीतिक कैदियों पर क्यों मार पड़ती थी यह भी देखा जाय। कुछ पर तो इस कारण मार पड़ी कि उन्होंने जेलर से शराफ़त से नमस्ते कह दिया। राजनीतिक कैदी इस लायक भी नहीं समझे जाते थे कि

उनका नमस्ते लिया जाये। यदि किसी की तबीयत खराब हो और वह खाना न खाता तो उस पर भी मार पड़ती। इलाहाबाद के जमुनाप्रसाद, रामचन्द्र, जगन्नाथ; मेरठ के मिट्ठनलाल और कामताप्रसाद पर कई बार मार पड़ी।

काम न करने पर मारे गए

मैनपुरी के सरदार मन्नासिंह पर इस कारण मार पड़ी कि वे जेल की मशक्कत पूरी न कर सके। इस पर प्रतिवाद में वह अनशन करते रहे। कई मौकों पर पूरी मशक्कत करने वाले राजबन्दी भी इसी कारण मारे गए कि उन्होंने खुद तो काम किया, पर वे अपने साथियों से काम कराने में असमर्थ रहे।

रामदत्त शुक्ल जेलर

ये सारे अत्याचार रामदत्त शुक्ल जेलर के जमाने में हुए। मजे की बात यह है कि रामदत्त शुक्ल के छोटे भाई श्री जगदीश शुक्ल एक क्रान्तिकारी रहे। रामदत्त शुक्ल की हृदयहीनता का परिचय इसी से मिलेगा कि उसने अपने छोटे लड़के को पुलिस की इस शिकायत पर हमेशा के लिए घर से निकाल दिया कि उसने किसी राजनीतिक जुलूस में भाग लिया था और यह बेचारा दाने-दाने को मुहताज हो गया। रामदत्त शुक्ल के बाद अजीनतुल रहमान जेलर होकर आए पर वह भी रामदत्त की लीक पर चलते रहे।

मुफ्त में बेंत

इसी जेल में अनुशासन भंग करने के कारण कानपुर के शिवरामसिंह, रामराखन, मन्नालालद्विवेदी; इटावा के राधाकृष्ण और कन्हैयालाल; बनारस के देवनन्दन दीक्षित; मिरजापुर के बिहारीराम; नैनीताल के दलीपसिंह को अनुशासन भंग करने पर सात-सात बेंत लगे। असल में इनको बेंत इस कारण लगे कि इन्होंने जेलों के आई०जी० के आते समय परेड पर खड़े होने से इन्कार किया था।

खूब मार पड़ी

खीनी के रामेश्वरदयाल, मुन्नालाल काशीराम, जगन्नाथ, कोमिल राम छोटेलाल; बदांयू का हरिनारायणसिंह; फैजाबाद के रामसुन्दर, प्रतापगढ़ के लाल माधोसिंह; पीलीभीत के पं० रामलाल शर्मा भी पीटे गए। इटावा के जगदीशचन्द्र यादव पर इस कारण मार पड़ी कि उन्होंने दीमक द्वारा खाए हुए कम्बल को लेने से इन्कार किया। रामलाल शर्मा और प्रेमसिंह

को लकड़ी ढोने को कहा गया, इससे इन्कार करने पर, उन पर मार पड़ी।

एक साथ पांच-पांच सजाएं

जेलर शौकत बेग ने तो अपने हुक्म से राजबन्दियों का राशन घटा दिया, कहा कि वे इतना हजम नहीं कर सकते क्योंकि वे पूरी मशक्कत नहीं कर रहे हैं। कुछ कैदियों को गैरकानूनी तरीके से पांच-पांच सजाएं एक साथ दी गई। (१) डण्डा बेड़ी (२) हथकड़ी (३) कोठरी (४) कम खाना (५) कड़ी मशक्कत। इसके अलावा मार तो घाटे में पड़ती थी। खीरी के काशीराम ने प्रार्थना की कि उनकी मशक्कत बदल दी जाये, इस पर उन्हें गिराकर मारा गया।

स्वास्थ्य गिरा

इन कारणों से कई कैदी बीमार हो गए। पर बीमार होने पर भी हस्पताल नहीं भेजा जाता था। फिर भी इटावा के स्वामी बुद्धूलाल; बदायूं के हरिनारायणसिंह; बलिया के हरगोविन्दसिंह तथा फर्रुखाबाद के बच्चीलाल को बराबर अस्पताल में रखना पड़ा। यही हाल इटावा के मिजाजीलाल का रहा।

सब को सी श्रेणी

अत्यन्त प्रतिष्ठित अगस्त कैदियों को भी सी श्रेणी में रखा गया। इटावा के भारतवीर श्री मुकुन्दीलाल जी काकोरी षड्यन्त्र के कैदी की हैसियत से ८ साला बी श्रेणी के बन्दी थे पर अगस्त कैदी (सजा सात साल) की हैसियत से वह बराबर सी श्रेणी में रखे गए। वह ४० पौण्ड घट गए। जौनपुर के श्री रामबली गुप्ता के घर को लूटकर पुलिस ७२००० रु० ले गई थी पर वह भी बी श्रेणी के योग्य नहीं समझे गए। इसी प्रकार अन्य कैदियों की हालत रही।

द्विजेन्द्र बोस तथा मि० ऋषि का बयान

श्री शरत्चन्द्र बोस के भतीजे श्री द्विजेन्द्रबोस ने जो लाहौर के किले से रिहा किये गए थे अपनी रिहाई के बाद लाहौर की एक विराट् सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए जेल के घृणित अत्याचारों का करुणाजनक वर्णन किया। इसके साथ ही पंजाब के डाक्टर ऋषि का वक्तव्य भी हम प्रकाशित कर रहे हैं जिससे कि लाहौर के किले में राजनीतिक बन्दियों के प्रति होने वाले घृणित व्यवहारों का पता चले।

स्वास्थ्य गिर गया—श्री द्विजेन्द्र बोस ने बतलाया कि एक बार मुझे

एक ऐसे अलग कमरे में ले जाकर बन्द कर दिया गया जिसमें ११६ डिग्री तक गर्मी पहुंचाई गई थी मुझे तब तक उसमें रखा गया, जब तक कि मैं बेहोश नहीं हो गया।

श्री बोस इतने अधिक दुर्बल थे कि वह मंच तक भी नहीं आ सकते थे और अपने भाई सुशील बोस की सहायता से मंच पर आए। मंच पर भी वह खड़े न रह सके और बैठे ही बैठे भाषण दिया, बोलने के कारण बीच-बीच में आप को थकान का अनुभव होने लगता था और सुस्ताने के लिए रुक जाना पड़ता था।

गोली से उड़ाने की धमकी—आपने कहा कि मैं करीब साढ़े चार वर्ष तक जेल में बन्द रहा और अब जाकर अंग्रेजी राज्य के कसाई खाने से छुटकारा पा सका हूं। जब मैं लाहौर के किले में था, उस समय खुफिया पुलिस का एक अफसर मुझ से दिन रात सवाल किया करता था। क्या सुभाष बाबू महात्मा गांधी की सलाह से हिन्दुस्तान से भागे? क्या पंजाब के मालमन्त्री सरदार बलदेवसिंह ने सुभाष बाबू की भागने में मदद की थी? जब मैं इन प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार कर देता, तो धमकाया जाता कि तुम्हें गोली से उड़ा दिया जायेगा।

ऋषि के बयान

पंजाब के डाक्टर शिवानन्दन ऋषि ने जो लाहौर के किले से रिहा किए गए थे, एक वक्तव्य प्रकाशित कर लाहौर के किले में बन्द राजबन्दियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार पर प्रकाश डाला है और अध्यक्ष आज़ाद से अपील की कि देशभर के जेलों में राजबन्दियों के प्रति होने वाले दुव्यवहार की जांच के लिए कमिशन नियुक्त करे।

पृथ्वी पर नरक—आपने अपने वक्तव्य में कहा कि श्री द्विजेन्द्र बोस इसलिए धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने लाहौर के किले के नारकीय दृश्यों को जनता के सामने उपस्थित किया। यह महत्त्व की बात है कि दिल्ली का किला अहमदनगर के किले आगा खां के महल या देवली कैम्प जेल की तरह नजरबन्द शिविर नहीं थे। उस पर इंस्पेक्टर जनरल आफ प्रिजन्स का कोई अधिकार नहीं था और पुलिस वाले भी जो कानूनी हवालातों के जिम्मेदार थे लाहौर के किले में कुछ नहीं कर सकते थे। वह किला पूरी तौर से पंजाब के खुफिया पुलिस विभाग की स्पेशल ब्रांच के हाथ में था जो ब्रिटिश सरकार के इण्टेलिजेन्स ब्यूरो की सहायता से काम करता था। इसलिए पृथ्वी पर इस नरक की व्यवस्था का पूरा

दायित्व खुफिया विभाग के हाथ में ही था।

बिल्कुल अलग से बन्द करना, छोटे से अंधेरे कमरे में बन्द कर देना, उसी कमरे में छोटे से खुले हुए बरतन में शौच आदि से निवृत्त होना, जिस में चौबीसों घण्टे बदबू से नाक फटती है, हफ्तों हजामत बनाने से रोककर, कपड़े साफ करने से रोककर और नहाने से रोककर, अस्वास्थ्यकर जीवन के लिए विवश करना, लाहौर के किले की मामूली घटना थी। इस प्रकार गन्दी भाषा का प्रयोग और गालियां भी साधारण सी बात थी।

तरह तरह की यातनाएँ—लाहौर के किले में स्वयम् अपने दो मास के बन्दी जीवन में मुझे इतनी शारीरिक और मानसिक यातनाएं सहनी पड़ीं कि उस जीवन से मृत्यु कहीं अधिक अच्छी मालूम होती है। मुझे कड़ाके की सर्दी की तीन रातें बिना बिस्तर ओढ़ने के बितानी पड़ी, जिससे मुझे १०१ डिग्री तक ज्वर चढ़ आया। छाती में कफ इकट्ठा हो गया और कफ के साथ खून गिरने लगा फिर भी औषधोपचार की कोई व्यवस्था नहीं की गई। इसका फल यह हुआ कि दो दिन बाद मुझे निमोनिया हो गया और बहुत किया तो उक्त डॉक्टर भी एक मिक्श्चर का नुस्खा लिखकर चलने लगे। इस पर मैंने उनका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि बिना बिस्तरों के सील में पड़े रहने से कैसे अच्छा हो सकता हूं। इसके दो-तीन दिन बाद किसी तरह मेरे लिए एक बिस्तर की व्यवस्था की जा सकी।

मेरे लिए सब से अधिक शारीरिक यातना यह थी कि मुझे लगातार तीन दिन और तीन रात सोने नहीं दिया गया। इन ७२ घण्टों तक मुझे आंखें खुली रखने के लिए विवश किया गया। इस यातना की कल्पना से ही रोमांच हो जाता है।

अजीब प्रश्न—मुझसे जो प्रश्न किए जाते थे उनका सम्बन्ध 'आजाद पंजाब गजट' से होता था जो शिव उपनामधारी व्यक्ति के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था और पंजाब के भारत छोड़ो आन्दोलन से सम्बद्ध था। प्रश्नकर्ता इस बात का बहुत प्रयत्न करते थे कि विध्वंसक कार्यों का सम्बन्ध कांग्रेस नेताओं से जोड़ा जाये। मैंने उन्हें बताया कि आजाद पंजाब गजट ने कभी हिंसा या विध्वंस के कार्यों का प्रचार नहीं किया और पंजाब में सब से पहली हिंसा तो वही है जो खास ब्रिटिश सरकार की देख-रेख में लाहौर के इस किले में नजरबन्द असहाय एकाकी लोगों के साथ की जा रही थी।

जौनपुर जेल में दिन मारपीट से शुरू—जौनपुर जेल के सम्बन्ध में यह ज्ञात हुआ है कि अगस्त बन्दियों की दिनचर्या कुछ दिनों तक मार से ही शुरू कराई जाती थी। उन दिनों वहां ८०० राजबन्दी थे। अगस्त बन्दियों के साथ ऐसा व्यवहार था जब कि मामूली बदमाशों के साथ भी ऐसा नहीं किया जाता था।

बीस-बीस बेंत—बरेली जिला के जेल के क्रान्तिकारी वार्ड पर सरकार की विशेष कृपा रही। वहां राजनीतिक कैदियों से कहा गया कि अपने कुर्तों पर नाम स्टेन्सिल करवा लो। कैदियों ने ऐसा करने से इन्कार किया तो उनको गाली गुफ्ता दिया गया। इस पर उन्होंने अनशन कर दिया। इस पर आजमगढ़ के मुक्तिनाथ उपाध्यक्ष; फैजाबाद के जगदीश शुक्ल; महाराष्ट्र के विरूपाक्ष; बनारस-गाजीपुर के हृदयनानरायण पाठक; जौनपुर के शिवव्रतसिंह और दु:खहरण मौर्य; गोरखपुर के केशव पाण्डेय; बलिया के मृगराजसिंह; गोंडा के जगन्नाथ पुरी को बीस-बीस बेंत मारे गये। बरेली में राजबन्दियों की ६ बार तलाशी होती थी।

आपसी लड़ाई से सरकार को फायदा—इसी जेल में १९३४ के जाड़े में विभिन्न पार्टियों के राजबन्दियों में लड़ाई हुई। कम्युनिस्ट और आर०एस०पी० वाले एक तरफ तथा दूसरी तरफ एच०एस०आर०ए० वाले थे। सी०एस०पी० का वहां अस्तित्व नहीं था। इस लड़ाई में तसला, स्लेट चले। इस पर पचासों बन्दियों को तीन-तीन महीनें की बेड़ी दी गई। आपसी झगड़ा था, आपस में निपट जाता। पर ब्रिटिश सरकर तो मौका ढूंढ़ा करती थी। इस झगड़े के बहाने लालटेन, पुस्तकें आदि छीन ली गईं।

भंगियों से कहा मारो—इसके बाद जेल के भंगियों को भड़का दिया गया कि राजबन्दियों को मारो। भला उन बदमाशों को क्या चिन्ता थी, वे इसके लिए तैयार हो गए। इस पर राजनीतिक बन्दियों ने मौका देखकर खुद ही टट्टी उठाना शुरू कर दिया और कहा कि हमारे वार्ड में भंगियों के आने की जरूरत नहीं। हम खुद ही टट्टी उठा लेंगे। तीन दिनों तक टट्टी उठाना जारी रहा, तब भंगी बदल दिये गए।

अनशन किया तो बेंत लगे—वहां १९४४ के २८ जनवरी को २४ राजबन्दियों ने अनशन किया। उनका अनशन दुर्व्यवहार के विरुद्ध था। उसी दिन अनशन की हालत में निम्नलिखित बन्दियों को बीस बीस बेंत मारे गए—

(१) मिठाई लाल गुप्त, (२) रामराज यादव, (३) शिवव्रतसिंह, (४) दुखहरण मौर्य, (५) सूर्यनाथ उपाध्याय, (६) बैजनाथसिंह, (७) दयाशंकर (ये सातों जौनपुर के थे)। (८) हृदयनारायण पाठक, (९) कालका राय, (१०) रमाशंकर राय (ये तीनों गाजीपुर के थे)। (११) शान्तिस्वरूप त्यागी (मेरठ); (१२) नेकराम शर्मा (आगरा); (१३) उदरेशसिंह (जौनपुर); (१४) मृगराजसिंह (बलिया); (१५) शंभुनाथ (झांसी); (१६) गणेश चतुर्वेदी (ओरई); (१७) विरूपाक्ष (महाराष्ट्र); (१८) बद्रीनारायण मिश्र (गोरखपुर); (१९) केशव पाण्डे (गोरखपुर)।

सरकार को झुकाया—इन लोगों को बेंत लगाने के बाद जो घाव हुए उनके किसी प्रकार मरहम पट्टी नहीं की गई थी। लोगों को बेंत लगाने के बाद बैरक में घसीट कर बन्द कर दिया। छः दिन तक कोई खबर नहीं ली गई। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी पर कम्बल छिन लिये गए थे। कर्नल शेख आए, कहा—कोठरी में बन्द करो। बन्दी बेंत की मार तथा एक सप्ताह के अनशन से दुर्बल हो गए थे। इस कारण उन्होंने स्ट्रेचर के बिना कोठरी में जाने से इन्कार किया। इस पर वे एक फर्लांग तक घसीट कर कोठरी में ले जाए गए। कैदी दृढ बने रहे। इस पर १६ फरवरी को समझौता हो गया।

अन्य अत्याचार

१९४४ के १नवम्बर को कुंजबिहारीसिंह, हृदयनाथ पाठक, अर्जुनसिंह पर दफा ५२ चला और उनकी सजा ६ महीने बढ़ा दी गई। इनको ६ महीनों तक लंगोट तथा एक चादर पर रखा गया। इस पर उन लोगों ने प्रतिवाद में कोठरी से निकलने से इन्कार किया, इस कारण ये रोज घसीटकर बाहर लाए जाते थे। गोरखपुर के हरिप्रसाद को टट्टी फिरते समय घसीटकर लाया गया। उन पर यह अभियोग था कि वे परेड के समय टट्टी गए थे। इसके प्रतिवाद में ३४ राजबन्दियों ने अनशन किया जो ६० रोज तक चला। इनमें से श्रीभगवान शुक्ल को १२ दिन पानी नहीं दिया गया। अनशन के जमाने में भी लोग घसीटे और मारे जाते थे।

दीवानसिंह तथा उमाशंकर

इसी जेल में दीवानसिंह मरे। अत्याचार के कारण वह घुल-घुलकर शहीद हुए। गाजीपुर के उमाशंकर निमोनिया होने पर भी अस्पताल नहीं भेजे गए। अन्त में उनकी हालत इतनी खराब हो गई कि सदर अस्पताल ले जाया गया और वह वहीं मर गए।

विष्णुकुमार द्विवेदी पर अत्याचार

लखनऊ के अगस्त नेता श्री शिवकुमार द्विवेदी के छोटे भाई विष्णुकुमार द्विवेदी एक छोटे से स्टेशन पर पकड़े गए। कई तमंचे एक साथ उन पे तान दिये गए थे। उनको खूब मारा गया और बार-बार उठा-उठाकर पटक दिया गया। तीन दिन तक उन्हें बिना दाना-पानी के एक कोठरी में बन्द रखा गया। फिर चौथे दिन से उन्हें रोज तीन आने की खुराक दी जाती थी। इसी के बाद से उन्हें मुखबिर बनाने के लिए तरह-तरह की यन्त्रणा दी जाने लगी। जब इन्होंने इन्कार किया तो उन पर लाठी, जूतों, घूसों की मार पड़ी और वे बेहोश हो गए। होश आने पर फिर मार पड़ती और फिर पुछाई शुरू होती। जब श्री द्विवेदी ने पुलिस अफसरों से बात करने से इन्कार किया तो उन्हें टांग दिया गया। रोज कई घण्टे तक टांगना जारी रहा। नाखूनों में सूई चुभोई गई। उनके सीने पर कई लाठियां बिछाई, फिर दोनों तरफ कई पुलिस वाले बैठे। मार के कारण पेशाब तथा टट्टी हो जाती थी। श्री द्विवेदी बहादुरी से इन अत्याचारों को सहते रहे, पर उनका स्वास्थ्य नष्ट हो गया।

वीर योगेश चटर्जी

अगस्त क्रान्ति के अन्यतम वीर नेता श्री योगेश चटर्जी इन अत्याचारों की बात सुनते-सुनते ऊब गए। विशेषकर जब अगस्त बन्दी सी श्रेणी में रखे जाते थे। इसका उन्हें बहुत मलाल था, क्योंकि बन्दियों के वर्गीकरण तथा राजनीतिक कैदियों के लिए लड़कर सहूलियतें दिलाने में उनका जितना स्थान रहा उतना कम व्यक्तियों का ही रहा। इस कारण उन्होंने १९४५ में आमरण अनशन शुरू कर दिया। सारे भारत में तहलका मच गया। अन्त में लोगों के आग्रह पर उन्होंने अनशन तोड़ दिया। इस प्रकार इस महावीर नेता का २५ साल जेल काटने पर भी जोश बराबर बना रहा और अगस्त क्रान्तिकारियों की अगली कतार में रहे। उनके अनशन के कारण देशभर के लोगों का ध्यान अगस्त बन्दियों की दुर्दशा की ओर गया।

❑❑

तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा?
अपनी आग तेज करने को नाम तुम्हारा लेगा।।

"तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा" के उद्घोषक

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (बसु)

भारत के कोटि-कोटि हृदयों के प्रिय 'नेताजी', आजादी के कर्णधार, मातृभूमि के लिए तन-मन-धन से समर्पित, वीर सेनानी, परम देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस आजादी के इतिहास के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता हैं। भारत की आजादी प्राप्त होने में चार प्रमुख कारण रहे हैं–

१. सशस्त्र क्रान्तिकारियों का आतंक, २. महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन, ३. आजाद हिन्द फौज का भय और ४. इन सबके कारण भारत की जनता के हृदय में उभरी स्वाधीनता की प्रबल इच्छा। इन सब कारणों में नेता जी द्वारा संगठित आजाद हिन्द फौज का अधिक महत्त्व इस कारण है कि जिस सेना को भारतीयों के दमन का साधन बना रखा था, आजाद हिन्द फौज के वातावरण से उसी भारतीय सेना में जहां अंग्रेजों के विरुद्ध अविश्वास एवं असहयोग का भाव पनप गया वहीं सरकार के मन में भविष्य में ऐसी सेनाओं के निर्माण होने की राह पड़ने की आशंका घर कर गयी। ऐसी स्थिति में अंग्रेज सरकार को आभास हो गया कि अब उसका अधिक दिनों तक टिकना संभव नहीं है।

पाठकों को याद रखना चाहिए कि कोई आक्रान्ता शासक हथियाए हुए राज्य को कभी थाली में परोसकर नहीं लौटाता जब तक कि उसे जान-माल का भय न हो, और यह भय अंग्रेज सरकार को केवल दो संगठनों से था–क्रान्तिकारी संगठनों और आजाद हिन्द फौज जैसी सेनाओं से। इसलिए नेताजी का आजादी प्राप्ति में जो योगदान है, वह अमूल्य है।

इस जन-जन के दुलारे देशभक्त का जन्म २३ जनवरी १८९७ को कटक (वर्तमान उड़ीसा) में एक बंगाली परिवार में हुआ था। इनके पिताश्री का नाम जानकीनाथ था। जानकीनाथ का जीवन अभावों एवं बाधाओं से भरा था किन्तु अथक परिश्रम के बल पर इन्होंने इतनी उन्नति की कि सरकार ने इन्हें 'राय बहादुर' की उपाधि से अलंकृत किया। सुभाष के अतिरिक्त इनके शरच्चन्द्र और सुनीलचन्द्र दो पुत्र और थे। माताश्री भी देशप्रेमी और बुद्धिमती थीं। पुत्रों को उच्च शिक्षित करने में इनकी भी विशेष प्रेरणा थी। कटक के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में प्रवेश ले लिया। यहीं सुभाष

के साथ वह ऐतिहासिक घटना घटी जिसने सुभाष को एक वीर युवा के रूप में स्थापित किया और इनकी जीवन दिशा ही बदल दी। कालेज का एक अंग्रेज प्रोफेसर सी.एफ. ओटन बड़ा जातीय अभिमानी था और भारतीयों को घृणा की दृष्टि से देखता था। इस प्रोफेसर ने सुभाष की कक्षा के एक विद्यार्थी से कोई प्रश्न पूछा। वह उसका ठीक से उत्तर नहीं दे पाया। वस्तुत: उसने प्रश्न ठीक से नहीं सुना था, शीघ्रता में उत्तर दे गया। इतनी सी बात पर प्रोफेसर ने क्रोध में तड़ककर कहा –

''यू रास्केल''

''सर, मैं आपके प्रश्न को ठीक से समझ नहीं सका।'' छात्र ने विनम्रता से उत्तर दिया।

''यू ब्लैक मंकी (काले बन्दर) तू प्रश्न को भी ठीक से नहीं समझ सकता?'' प्रोफेसर ने विनम्रता का उत्तर जातीय गाली से दिया।

कक्षा में बैठे देशभक्त वीर सुभाष को यह गाली सहन नहीं हुई। उसने खड़े होकर आक्रोश भरे शब्दों में कहा –

''प्रोफेसर साहब, जरा संभलकर बोला कीजिए। कौम को गाली देना अनुचित है।''

''यू ब्लडी'' अंग्रेज प्रोफेसर ने और अधिक अहंकार में आकर एक और गाली दे डाली।

सुभाष के हृदय को इन अपमानजनक गालियों ने छलनी कर दिया। सुभाष क्रोध में तमतमाया प्रोफेसर की ओर यह कहते हुए बढ़ा कि **''हमारी आजादी छीनकर हमें गुलाम बनाकर हमें गालियों से अपमानित भी करते हो ?''**

''शट अप, यू बास्टर'' कहकर प्रोफेसर कक्षा से बाहर निकलने लगा। सुभाष ने उसे पकड़कर एक जोरदार तमाचा मुंह पर दे मारा। गोरे चेहरे पर पांचों अंगुलियों की कलाकृति अंकित हो गयी। गाल को सहलाता हुआ प्रोफेसर सीधा प्रिंसिपल के पास पहुंचा और सुभाष की शिकायत लगायी। सुभाष और उनके मित्र अनंग मोहनदास को कॉलेज से निकाल दिया गया।

यह तमाचा अंग्रेज प्रोफेसर के मुंह पर नहीं, अंग्रेज सरकार के मुंह पर लगा था। तभी से सुभाष विद्रोही बन गया क्योंकि वह एक और बड़ा तमाचा अंग्रेज सरकार के मुंह पर जड़ना चाहता था।

सर आशुतोष के प्रयासों से सुभाष को 'स्काटिश कॉलेज' में प्रवेश

मिल गया। वहां से उन्होंने बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर वे पिता के आदेश से आई.सी.एस. (वर्तमान आई.ए.एस.) परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट हो गये। प्रतिभाशाली सुभाष ने १९२० में आई.सी.एस. परीक्षा में चौथा स्थान प्राप्त किया। माता-पिता, बन्धु-बान्धव इस सफलता पर फूले नहीं समाये। किन्तु सुभाष का लक्ष्य आक्रान्ता अंग्रेजों की गुलामी करना नहीं था, वे तो उनसे भारत को आजाद कराना चाहते थे। उस समय आई.सी.एस. अधिकारी एक राजा के समान होते थे। सुभाष चाहते तो जीवनभर शाही ठाठ-बाट से जीवन बिता सकते थे किन्तु उन्होंने आई.सी.एस. से त्यागपत्र देकर सारे ठाठ-बाट को ठुकरा दिया। देश के लिए ठोकरें खाना अधिक कल्याणकारी समझा।

विद्रोही सुभाष का जीवनवृत्त अनेक रोमांचक घटनाओं से परिपूर्ण है। यहां उसे संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है। सुभाष ने अनेक बार जेलें काटीं। अंग्रेज सरकार उनके वीरतामय व्यक्तित्व से भयभीत थी, अत: उन पर अनेक अपमानपूर्ण प्रतिबन्ध लगाये गये, किन्तु सुभाष उनसे कभी नहीं घबराये अपितु आग में तपे सोने की तरह कुन्दन बनकर निखरते चले गये।

१९२१ में जब "प्रिन्स आफ वेल्स" (ब्रिटेन का युवराज) भारत में आया तो भारतभर में उसके बहिष्कार की तैयारियां होने लगीं। बंगाल में सुभाष बाबू सक्रिय थे। युवराज के आने से पूर्व दिसम्बर १९२१ में सुभाष को गिरफ्तार कर छह मास के लिए जेल में डाल दिया। वहां जेल में इन्हें देशभक्त नेता देशबन्धु चित्तरंजनदास मिले। सुभाष श्रद्धावश उनका भोजन बनाते थे। उनके सान्निध्य में रहकर सुभाष में देशभक्ति की भावना और सुदृढ़ हो गयी।

जेल से छूटने पर सुभाष ने बंगाल में आई बाढ़ के अवसर पर उल्लेखनीय बचाव कार्य किया। उन्होंने 'युवक दल' की स्थापना की। अब वे युवकों के एकछत्र नेता माने जाने लगे थे। १९३३ में कलकत्ता कार्पोरेशन के चुनाव हुए तो उनमें सुभाष बाबू को निर्विरोध चुना गया। इन्हें कार्पोरेशन का 'एक्जिक्यूटिव आफिसर' बनाया गया। सुभाष का त्याग देखिए, उस समय इस पदाधिकारी को वेतन के रूप में ३००० रुपये मासिक मिलते थे। किन्तु इन्होंने वेतन के रूप में खर्च चलाने के लिए केवल १५०० रुपये मासिक ही लिये। सुभाष की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी तो अंग्रेज सरकार की दिल की धड़कन बढ़ रही थी। 'बंगाल आर्डिनेंस' की आड़ में अंग्रेज सरकार ने २५ अक्तूबर १९२४ को ८०

युवकों को गिरफ्तार कर जेल में ठूंस दिया। उनके साथ बिना कारण सुभाष को भी गिरफ्तार कर बर्मा की माण्डले जेल में भेज दिया। देशबन्धु चित्तरंजनदास ने इस गिरफ्तारी का विरोध किया किन्तु शातिर अंग्रेजी सरकार ने उस पर ध्यान नहीं दिया। माण्डले जेल में सुभाष के स्वास्थ्य पर इतना प्रतिकूल प्रभाव पड़ा कि कुछ ही समय में उनका ४० पाउंड वजन घट गया। सारे देश में इस बात को लेकर शोर मचा तब अंग्रेज सरकार ने इस शर्त के साथ सुभाष को छोड़ना स्वीकार किया कि सुभाष भारत नहीं लौटेंगे, सीधे यूरोप चले जायें। किन्तु सुभाष ने इस अपमानपूर्ण प्रतिबन्ध को ठुकरा दिया। सरकार को विवश होकर १९२६ में उनको छोड़ना पड़ा।

जेल से छूटकर आप कांग्रेस के साथ मिलकर कार्य करने लगे। अनेक बार सम्मेलनों के प्रमुख अधिकारी व संयोजक बने। १९२८ में कलकत्ता में सम्पन्न कांग्रेस अधिवेशन आपके प्रबन्धकत्व में अत्यन्त सफल हुआ। इस अधिवेशन के कुछ समय बाद क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ का देहान्त हो गया। शवयात्रा में लोगों की भारी भीड़ जमा थी। इस अवसर पर सुभाष ने ओजस्वी भाषण दिया। सरकार ने उसे अपराध मानते हुए इनको छह मास के लिए जेल की सजा दी। इस जेल को पूरी कर छूटे ही थे कि २६ जनवरी १९३१ को एक स्वातन्त्र्य जुलूस निकाला जिसमें सुभाष बाबू भी घोड़े पर सवार थे। पुलिस ने इस जुलूस पर लाठीचार्ज किया और लोगों को पकड़कर जेल में भेज दिया। सुभाष को फिर छह महीने की जेल हुई। किन्तु गांधी-इर्विन समझौते के अन्तर्गत पहले ही छोड़ दिये गये।

जेल से छूटने के बाद मथुरा में एक "नौजवान भारत सभा" का अधिवेशन आयोजित हुआ। आपको सभापति चुना गया। उस अवसर पर आपके भाषण की आड़ लेकर आपको बिना मुकद्दमा चलाये जेल में डाल दिया। लगातार जेलों में रहने से आपका स्वास्थ्य चिन्ताजनक ढंग से गिर गया। देश में सुभाष को छोड़ने के लिए आवाज उठी तो कुटिल अंग्रेज सरकार ने फिर वही शर्त रखी कि सुभाष भारत में न रहें तो इन्हें छोड़ दिया जायेगा। सुभाष ने इस शर्त को नहीं माना किन्तु गिरते स्वास्थ्य को देखते हुए और देश के नेताओं के आग्रह पर उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया। उन्हें वायुयान में बिठाकर स्विटजरलैंड भेज दिया गया। कई वर्ष विदेश प्रवास के बाद पिता जानकीनाथ जब मृत्यु शय्या पर थे तो उन्होंने सुभाष से मिलने की इच्छा व्यक्त की।

अंग्रेज सरकार पहले तो मानी नहीं, फिर वही शर्त रखी कि मिलकर वापस यूरोप लौटना पड़ेगा। सुभाष इस शर्त पर आये तो तब तक पिता का देहान्त हो चुका था। सुभाष को अंग्रेज सरकार के इस बर्बर व्यवहार से इतना आघात लगा कि वे १९३६ में बिना अनुमति के स्वदेश लौट आये। आते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १९३७ में उन्हें फिर छोड़ दिया।

वे कांग्रेस में फिर सक्रिय हो गये। त्रिपुरा कांग्रेस का उन्हें सभापति चुना गया। कांग्रेस में उनका महत्वपूर्ण स्थान बन गया किन्तु महात्मा गांधी और गांधी दल का सुभाष के प्रति संतोषजनक रवैय्या नहीं था अत: मतभेद उभरते गये। फिर सन् १९४० के जुलाई मास में कलकत्ता के 'हालवेल स्मारक' के विरुद्ध आन्दोलन में भाग लेने के कारण सुभाष को फिर जेल में डाल दिया। कुछ दिनों बाद उन्हें जेल से निकालकर उन्हीं के एल्गिन रोड़ पर कलकत्तास्थित मकान में नजरबंद करके रखा गया। अंग्रेज सरकार का बस यही लक्ष्य था कि यह शेर किसी प्रकार पिंजरे में ही बंद रहे। सुभाष के हृदय में आजादी की भावनाएं कसमसा रही थीं। वह समझ रहा था कि सरकार जेलों में ही सारा जीवन नष्ट करना चाहती है किन्तु सुभाष कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता था जो प्रभावकारी हो, सफल हो, देश को गुलामी से मुक्त करने वाला हो, अंग्रेजों की जड़ें उखाड़ने वाला हो। उसने निश्चय कर लिया कि वह जीवन का अमूल्य समय यों ही बर्बाद नहीं होने देगा.....निश्चित रूप से नहीं होने देगा।

२६ जनवरी १९४१ का दिन था। इतिहास एक नयी करवट बदलने चला था। सुभाष एक दाढ़ीधारी पठान का वेश बनाकर, नजरबंदी के लिए तैनात पुलिस दल की आंखों में धूल झोंककर घर से निकल गये और अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पहुंच गये। वहां से जर्मन दूतावास की सहायता से जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुंचे। जर्मनी में सुभाष भारत की आजादी में सहायता के लिए हिटलर से मिले। हिटलर सुभाष के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसने इन्हें ''भारत के डिप्टी "फ्युहरर'' की उपाधि दे डाली। सहायतास्वरूप आपको एक हवाईजहाज और एक रेडियो ट्रांसमीटर भी दिया जिससे सुभाष अपना संदेश प्रसारित कर सकें। वहां से आप एक सबमैरीन के द्वारा सिंगापुर व जापान पहुंचे।

जापान में उन दिनों क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस रह रहे थे और अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन कर रहे थे। उन्होंने वहां

'आजाद हिन्द फौज' की स्थापना की। सुभाष के जापान पहुंचने पर उसका नियन्त्रण उन्हें सौंप दिया। सुभाष ने उसे बहुत ही अच्छे और व्यापक रूप से संगठित किया। इसके साथ ही नेताजी के नेतृत्व में 'आजाद हिन्द सरकार' की स्थापना भी कर दी गयी। लगभग दस देशों ने इस सरकार को मान्यता दे दी।

२३ अक्तूबर १९४३ को इस अन्तरिम सरकार के मन्त्रिमण्डल की बैठक में ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का फैसला किया। स्वयं सुभाष ने इस फैसले की घोषणा रेडियो से प्रसारित की। इस निर्णय के बाद आजाद हिन्द फौज ने भारत को आजाद कराने के लिए प्रयाण किया। नेताजी ने सैनिकों का आह्वान किया –

''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा''

इसके साथ ही नेता जी के **''दिल्ली चलो''** इस वीरतापूर्ण उद्घोष के साथ सैनिक पूर्वी सीमान्त प्रान्त पर पहुंच गये। १९४४ में जब जापान का रंगून (बर्मा) पर कब्जा हो गया तो आजाद हिन्द फौज का दफ्तर भी सिंगापुर से रंगून चला गया। मार्च में यह फौज बर्मा की सीमा को पार कर भारत भूमि में प्रवेश कर गयी और इम्फाल समेत एक बड़ा भूभाग अपने कब्जे में ले लिया। वहां तिरंगा ध्वज लहराने लगा। अनेक वर्षों बाद भारत का वह भू-भाग अंग्रेजों के शासन से आजाद हुआ था।

आजाद हिन्द फौज का भाग्य जापान के साथ जुड़ा हुआ था। जब तक जापान जीतता रहा आजाद हिन्द सेना भी आगे बढ़ती रही, जब जापान मित्र राष्ट्रों से हारने लगा तो आजाद सेना को भी पीछे हटना पड़ा। २३ अप्रैल १९४५ को जापान को रंगून छोड़ना पड़ा। उसके साथ ही आजाद फौज भी पीछे हट गयी। आजाद हिन्द सेना में ५०,००० सैनिक थे। खाद्यान्न आदि की कमी के कारण अनेक सैनिक मारे गये। १९५५ तक अनेक सैनिक अंग्रेजों की पकड़ में आ गये। यद्यपि सैनिक दृष्टि से आजाद हिन्द सेना असफल हो गयी किन्तु इसका व्यापक प्रभाव जनता में तथा भारतीय सेना में स्वाधीनता की भावना को उत्पन्न करने के रूप में पड़ा। अंग्रेज सैनिक गिरफ्तार करके भारत लाये गये। भारतीय सेना में उनको दी गयी सजाओं से आक्रोश फैला। अंग्रेज सरकार का भारतीय सेना से विश्वास उठ गया। बस, यहीं से अंग्रेज सरकार हताश हो चली और उसे लगने लगा कि अब तुम्हारा टिकना संभव नहीं है। और अंग्रेज ने अपना बिस्तर समेटना शुरू कर दिया। **(सम्पादक)**

आजाद हिन्द सेना की सैनिक विफलता के बाद सुभाषचन्द्र बोस बर्मा को छोड़ सिंगापुर चले गये। स्वतन्त्रता आन्दोलन को नया रूप देने के लिए वे सिंगापुर से साइगोन गये। १८ अगस्त १९४५ को वे कुछ जापानी अफसरों के साथ टोकियो के लिए रवाना हुए। कहा जाता है कि लगभग दो बजे फार्मसा में स्थित ताइहोक के निकट उनके हवाई जहाज में आग लग गयी और गिर पड़ा। उन्हें अधजली हालत में अस्पताल पहुंचाया गया। जापानी सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार उसी रात ८-९ के बीच नेताजी का देहान्त हो गया। नेता जी की अस्थियां जापान में रखी हुई हैं।

किन्तु भारत की अधिकांश जनता आज भी विभिन्न कारणों से नेताजी के देहान्त के समाचार पर विश्वास नहीं करती। उनके निधन को लेकर शाहनवाज और खोसला आयोग की रिर्पोट अस्वीकार हुई। अब मुखर्जी आयोग जांच कर रहा है। वह डी.एन.ए. के वैज्ञानिक आधार पर नेता जी की अस्थियों की जांच कर रहा है। देखिए, उसका क्या निर्णय आता है। ❑❑

नौसेना द्वारा विद्रोह

उन दिनों देश में असहयोग और विद्रोह का वातावरण चारों ओर उभर रहा था। फरवरी १९४६ में 'तलवार' नामक जहाज पर तैनात नौसैनिकों ने भी विद्रोह कर दिया। इस जहाज पर नौसेना को प्रशिक्षण दिया जाता था। एक दिन किंग नामक अंग्रेज कमांडर ने शिक्षार्थी भारतीयों को **''कुत्ते का बच्चा''** और **''कुली का बच्चा''** कहकर गालियां दीं। यों तो प्रायः भारतीयों को ऐसी गालियां दी जाती थीं किन्तु बदले हुए वातावरण में सैनिकों ने उनको सहन नहीं किया और विद्रोह कर दिया। साथ ही आजाद हिन्द सैनिकों की रिहाई तथा विदेशों में तैनात भारतीय फौज की वापसी की मांग भी कर दी। फैलते-फैलते यह हड़ताल १९ फरवरी तक सारी नौ सेना में फैल गयी। इस हड़ताल में २० हजार नौसैनिक, २० बड़े जहाज तथा लगभग १०० छोटे जहाज शामिल हो गये। जहाजों पर विद्रोही नौसैनिकों का अधिकार हो गया था। उन पर किसी पर तिरंगा, किसी पर लाल और किसी पर मुस्लिम लीगी हरा झंडा फहराने लगा।

(सम्पादक) ❑❑

बीसवीं शताब्दी में हरियाणा में क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ

आजादी के संघर्ष के दिनों अम्बाला क्रांतिकारी-वीरों का अच्छा खासा केन्द्र बन गया था। २९ दिसम्बर १९०९ को अम्बाला के डिप्टी कमिश्नर सिकेस को, जो कि राष्ट्रवादी आन्दोलन को कुचलने में सर्वाधिक दिलचस्पी ले रहा था, इन क्रान्तिकारियों ने अपना निशाना बनाया।

इस घटना से सरकार चौकन्नी हो गई और उन्होंने क्रान्तिकारियों को इस क्षेत्र से पूर्णतया नष्ट करने का यत्न किया। सरकार के कठोर कदम यहाँ के युवकों को क्रान्ति में कूदने से नहीं रोक पाए। हाँ इतना अवश्य हुआ कि उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र हरियाणा की बजाय बंगाल की भूमि को चुन लिया।

१० नम्बर जाट पलटन की क्रांति

१० नम्बर जाट पलटन ने, जिसमें रोहतक और हिसार के जाट युवक थे, बंगाल के क्रान्तिकारियों से मिलकर क्रान्ति की योजनाएँ बनाईं। उनके लगभग १४५ सैनिकों ने एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य बनकर निम्नलिखित शपथ ली :-

"मैं आज से इस सभा का सदस्य हूं और जब तक मेरी मातृभूमि स्वतन्त्र नहीं होती तब तक इसका सदस्य बना रहूंगा। मैं अपने देश के हित में काम करते हुए देश के और अपने शत्रुओं को बिल्कुल समाप्त करके ही दम लूंगा।"

क्रान्तिकारी संस्था के सदस्य बनने के उपरान्त जाट सैनिकों ने कलकत्ता के डायमंड हार्बर पर स्थित सरकारी खजाने को लूटने की योजना बनाई। किन्तु दुर्भाग्यवश ललित मोहन चक्रवर्ती नामक उनके एक सहयोगी ने समय से पहले ही सरकार के समक्ष उनकी योजना का भाण्डाफोड़ कर दिया। परिणामत: धर-पकड़ शुरू हुई। सूबेदार हरिराम, हवलदार चुनी लाल, नायक जोत राम, सिपाही सुरजन सिंह, तथा उनके सैंकड़ों साथियों को नौकरी से हाथ ही नहीं धोना पड़ा वरन् लम्बी-लम्बी सजाएँ भी मिलीं।

काशीराम जोशी की गतिविधियाँ :- इन दिनों हरियाणा में कुछ नवयुवक ऐसे भी थे जो क्रान्ति की भाषा बोलते थे और अपनी जान को

हथेली पर रखकर भारत माता को स्वतन्त्र कराने के लिए क्रान्ति के रास्ते पर चल पड़े थे। भारत माता के इन क्रान्तिकारी सपूतों में अम्बाला के पं. काशी राम जोशी का स्थान सर्वोपरि है। इनका जन्म १८८३ में माड़ोली कलां में पं. गंगाराम के घर हुआ था। मैट्रिक पास करके ये अमेरिका चले गए। वहीं इन के हृदय में राष्ट्र को मुक्त कराने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। इन्होंने लाला हरदयाल से मिलकर गदर पार्टी का गठन किया और क्रान्तिकारियों को तैयार करने का बेड़ा उठाया। १९१४ में वे भारत आ गए और यहाँ क्रान्तिकारी आंदोलन चलाने लगे। अन्ततः पकड़े गए और २७ मार्च १९१५ को फांसी पर लटका दिए गए।

क्रान्तिकारियों के अतिरिक्त उग्रवादी कांग्रेसियों ने भी विश्व युद्ध के समय सरकार से सहयोग नहीं किया, बल्कि इन दिनों अपने प्रिय नेता तिलक के नेतृत्त्व में उन्होंने होम रूल (स्वराज्य) प्राप्त करने के लिए तीव्र आन्दोलन चला दिया। हरियाणा के पं. नेकीराम शर्मा ने इस आन्दोलन में खूब बढ़-चढ़ कर काम किया। रोहतक के डिप्टी-कमिश्नर ने पंडित जी को बुलाकर डांटा कि युद्ध के दौरान वह इलाके में बगावत फैला रहा है और इस कार्य के लिए उसे सख्त से सख्त सजा मिल सकती है। पंडितजी ने कहा कि वह यह जानते हैं। डिप्टी कमिश्नर ने प्रलोभन भी दिया। "आप को इधर जेल मिलेगा और उधर सरकार की मदद करने की एवज में २५ मुरब्बे जमीन। जमीन का इन्तजाम अभी करवा देता हूँ। सोच लो।

"सोच लिया," पंडितजी ने गम्भीर होकर कहा, "आप मुझे २५ मुरब्बे देकर प्रसन्न करना चाहते हैं, मैं तो २५००० मुरब्बे से भी प्रसन्न नहीं हो सकता। मुझे तो सारे भारत की जमीन चाहिए जिस पर आप लोगों ने अवैध अधिकार कर रखा है।" डिप्टी-कमिश्नर बेहद क्रुद्ध हुआ और पंडितजी को चले जाने का आदेश दिया।

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन का प्रारम्भ उपवास द्वारा किया। उन्होंने ३० मार्च, १९१९ को रोलेट एक्ट के विरुद्ध देशव्यापी हड़ताल का दिन निश्चित किया जो बाद में ६ अप्रैल कर दिया गया। हरियाणा के लगभग सभी नगरों तथा कस्बों में महात्मा गांधी के आह्वान पर पूर्ण हड़ताल रही। जगह-जगह सभाएं हुई जिन में एक्ट का प्रबल विरोध किया गया। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार उन दिनों सभाओं में २,००० से लेकर १०,००० तक की उपस्थिति हुआ करती थी। लोग इन सभाओं में बहुधा काले बैज पहन कर जाते थे। कई तो काले वस्त्र ही धारण किए रहते थे। यदि कोई उन से पूछता कि ऐसा क्यों कर रहे हैं तो उन का

उत्तर होता "सम्राट् मर गया है, उस का शोक मनाया जा रहा है।" वस्तुत: उन दिनों हरियाणा में चारों तरफ गजब की हलचल देखने को मिलती थी।

रोलेट एक्ट विरोधी आंदोलन का हरियाणा पर गहरा प्रभाव पड़ा। यहाँ हर जिले में कांग्रेस की शाखाएँ स्थापित हो गईं। उन दिनों कुछ प्रमुख नेता, जिन्होंने हरियाणा में इस संगठन को सफल बनाया, ये थे : नेकीराम शर्मा, बलदेव सिंह, के.ए.देसाई, मुरलीधर, रामजी लाल, श्याम लाल (रोहतक), श्याम लाल (हिसार), ठाकुर दास भार्गव, गोपी चन्द भार्गव, श्रीराम शर्मा तथा राव मंगलीराम।

महात्मा गाँधी की पलवल में गिरफ्तारी

पंजाब (तथा हरियाणा) की परिस्थितियों का जायजा लेने के लिए जब महात्मा गांधी बम्बई से लाहौर जा रहे थे तो ९ अप्रैल, १९१९ को पलवल के स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इससे साधारणतया सारे देश और विशेषत: हरियाणा में एक आग-सी लग गयी। सब कारोबार ठप्प हो गया। हड़ताल, जलसे, जलूस और सरकार का विरोध, यही चीजें हर जगह देखने को मिलती थीं। कुछ हिंसा भी हुई। कई जगहों पर उत्तेजित भीड़ ने सरकारी सम्पत्ति को नष्ट कर दिया।

असहयोग आंदोलन

जब सरकार उपर्युक्त आंदोलन से न झुकी तो कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन शुरू कर दिया। हरियाणा के हजारों लोगों ने काँग्रेस के 'असहयोग प्रस्ताव' के अनुसार विदेशी माल का बहिष्कार किया, सरकारी उत्सवों तथा समारोहों में भाग न लिया, सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार किया तथा जेल गए। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर खूब काम किया।

राष्ट्रीय आंदोलन में नई स्फूर्ति–

राष्ट्रीय आन्दोलन १९२८ तक काफी धीमी गति से चला। किन्तु इस वर्ष एक ऐसी घटना घटी कि वह पुन: गतिमान् हो उठा। वह घटना थी, साइमन कमीशन का भारत में आगमन।

८ नवम्बर १९२७ को ब्रिटिश सरकार ने सर जॉन साइमन के नेतृत्व में वहां की संसद् के सात सदस्यों का एक कमीशन नियुक्त किया, जिसका काम यह देखना था कि १९१९ के सुधारों को कहां तक सफलता मिली है। चूँकि इस कमीशन में एक भी सदस्य भारतीय नहीं था, अत: यहाँ लगभग सब राजनैतिक पार्टियों ने इस के बहिष्कार करने का निर्णय लिया। कांग्रेस ने इस दिशा में सबसे अधिक क्रांतिकारी रुख अपनाया।

फरवरी १९२८ में जब साइमन कमीशन ने बम्बई में पदार्पण किया

तो देश के हर नगर में पूर्ण हड़ताल रही। सब जगह प्रदर्शन हुए और काले झण्डे लिए हुए लोगों ने 'साइमन वापिस जाओ' के गगन भेदी नारों से सारा देश गुंजायमान कर दिया। हरियाणा में भी रोहतक, झज्जर, भिवानी, अम्बाला में हड़तालें हुई और प्रदर्शन हुए। झज्जर नगरपालिका ने इसके विरोध में प्रस्ताव भी पास किया।

३० अक्तूबर १९२८ को साइमन कमीशन जब लाहौर में आया तो लाला लाजपत राय, ला. दुनीचन्द, अब्दुर् रहमान, डॉ. सत्यपाल, मौलाना अब्दुल कादिर, डॉ. आलम आदि नेताओं के साथ हजारों लोगों ने इसका विरोध किया। पंजाब सरकार के ऊंचे कर्मचारी इससे बड़े बौखलाए और उन्होंने शांतिपूर्ण भीड़ पर भयंकर लाठी चार्ज करवा दिया। वृद्ध नेता लाजपत राय पर भी लाठियाँ पड़ीं जिससे उनके दिल के पास दो इंच गहरा जख्म हो गया। घायल पंजाब केसरी ने सायंकाल एक विरोध सभा में ऐतिहासिक भविष्यवाणी की–''हम पर हुआ एक-एक प्रहार अंग्रेजी राज्य के कफन में कील बनेगा।''

१७ नवम्बर १९२८ को उन प्रहारों से लालाजी की मृत्यु हो गई। सारा देश इस 'अनहोनी' घटना से हिल गया। महात्मा गांधी ने कहा–''लालाजी की मृत्यु भारत के आकाश में से एक महान् नक्षत्र के अस्त हो जाने के बराबर है।'' साइमन कमीशन ने यदि हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन को सुप्त अवस्था में झकझोर कर चेतना प्रदान की तो लाला लाजपतराय के बलिदान ने इसे जीवन, शक्ति और सामर्थ्य प्रदान किया। अब देश का बच्चा-बच्चा युद्ध करने के लिए उतारू हो गया। हरियाणा के हर नगर और गांव में जलसे और जलूसों के माध्यम से सरकार की कटु आलोचना की गई।

सामूहिक प्रदर्शनों द्वारा अंग्रेज-विरोधी भावना व्यक्त की गई। हजारों प्रस्ताव पास करके यहां की जनता ने लालाजी की मृत्यु के चैलेंज को स्वीकार किया। मार्च, १९२९ में रोहतक में प्रांतीय कान्फ्रेंस हुई। इसमें ३० हजार लोगों ने भाग लिया। सभा की अध्यक्षता पंजाब प्रदेश के मानवीय नेता डॉ. सत्यपाल ने की। पं. श्रीराम स्वागत समिति के प्रधान थे। पं. मोती लाल नेहरू विशेष अतिथि थे। पं. जवाहर लाल नेहरू ने ध्वजारोहण की रसम अदा की। वरिष्ठ नेताओं ने देश की राजनैतिक अवस्था पर प्रकाश डालते हुए जनता को उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया। फलतः सारे प्रांत में जागृति आ गई।

पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य

इसी दौरान दिसम्बर, १९२९ में अपने लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में-डोमिनियन स्टेट्स' की रट को

छोड़ कर 'पूर्ण स्वराज्य' का लक्ष्य अपनाया। २६ जनवरी, १९३० को सारे भारत में गांधी जी के आह्वान पर स्वाधीनता दिवस मनाया गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

पूर्ण स्वराज्य को प्राप्त करने के लिए जनता ने महात्मा गांधी का बताया हुआ सविनय अवज्ञा आंदोलन का मार्ग स्वीकार किया। गाँधी जी ने स्वयं इसका उद्घाटन किया। १२ मार्च, १९३० को महात्माजी ने साबरमती आश्रम से अपना ऐतिहासिक डांडी मार्च आरम्भ किया। २४१ मील पैदल चलकर वे ५ अप्रैल को डांडी पहुंचे जहां उन्होंने नमक न बनाने की सरकारी आज्ञा को भंग करके अवज्ञा आंदोलन का शुभारम्भ किया।

सब जगह आंदोलन शुरू हो गया। जनता ने नमक बनाकर सरकार की आज्ञाओं के चिथड़े-चिथड़े कर दिए। रोहतक, झज्जर, भिवानी, पानीपत, अम्बाला तथा अन्य कस्बों और गांवों में नमक बना और सार्वजनिक सभाओं द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन का श्रीगणेश किया गया। हरियाणा में स्त्रियों ने भी इस आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। स्त्रियों का नेतृत्व अम्बाला में लाला दुनीचन्द की पुत्री विद्यावती, जमना देवी, महादेवी और रोहतक में कस्तूरा बाई ने किया। उन्होंने नमक बनाया और सत्याग्रह का बिगुल बजाकर पुरुषों के साथ जेल जाने को आगे बढ़ी।

महात्माजी के साथ धारसना के सरकारी नमक डीपो पर ऐतिहासिक सत्याग्रह करके अपनी गिरफ्तारी देने के लिए हरियाणा से २५ कार्यकर्त्ता गए। महात्मा जी को तो ४ मई, १९३० को सत्याग्रह से पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया और हरियाणा के इन वालियंटयर्स ने श्रीमती सरोजनी नायडू की अध्यक्षता में उस ऐतिहासिक आयोजन में भाग लिया। हरियाणा के इन पच्चीसों कार्यकर्त्ताओं को बड़ी सख्त चोटें आई थी और वे कई महीनों तक अस्पतालों में पड़े रहे।

स्थानीय सत्याग्रहियों ने भी धारसना के सत्याग्रहियों की तरह ही हर जगह शांतिमय ढंग से सत्याग्रह किया। किन्तु सरकार ने पहले हर सत्याग्रही को गिरफ्तार नहीं किया, केवल उनके नेताओं को और सक्रिय सदस्यों को ही गिरफ्तार किया। रोहतक से उन्होंने ला. श्याम लाल, पं. श्रीराम शर्मा, कामरेड लछमन दास, ला. काशी राम, राव मंगली राम, ला. हरिसिंह जैन, चौ. भरत सिंह, पं. मान सिंह, स्वामी आत्मानन्द, ला. राम शरण दास, चौ. कन्हैया सिंह, ला. बनारसी दास, चौ. मियां राम, श्रीमती कस्तूरा बाई, ला. सुलतान सिंह, सरदार तिरलोक सिंह को लगभग ५०० कांग्रेसी कार्यकत्ताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया। हिसार जिले से

उन्होंने पं. नेकीराम शर्मा, ला. श्यामलाल सत्याग्रही, पं० रामकंवार आदि नेताओं को लगभग ३०० अन्य सत्याग्रहियों के साथ गिरफ्तार किया। इसी प्रकार, गुड़गांव से महाशय भगवानदास तथा नारनौल से श्रीमती कमलादेवी, पं० रूपनारायण अपने लगभग २०० कार्यकत्ताओं के साथ गिरफ्तार हुए।

गांधी-इरविन समझौते का प्रभाव

जबकि सत्याग्रह आंदोलन चल ही रहा था तो गांधीजी एवं वायसराय इरविन के बीच समझौता हो गया। ५ मार्च १९३१ को यह समझौता 'गांधी-इरविन पैक्ट' अथवा 'दिल्ली समझौता' के नाम से अस्तित्व आया, जिसके अनुसार यह तय हुआ कि सभी राजनैतिक सत्याग्रहियों को छोड़ दिया जाएगा, सत्याग्रह समाप्त कर दिया जाएगा, तथा कांग्रेस द्वितीय गोलमेज कांफ्रेंस में भाग लेगी। इस समझौते के अनुसार शीघ्र ही हरियाणा के सब बन्दी रिहा कर दिए गए, और सत्याग्रह उठा लिया गया।

किन्तु दुर्भाग्य से यह स्थिति बहुत थोड़े दिन रही। गांधीजी दिसम्बर १९३१ में दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस से असफल हो कर लौटे। यहां आते ही सरकार ने उन्हें ४ जनवरी १९३२ को गिरफ्तार कर लिया। साथ ही देशव्यापी दमन चक्र भी चल पड़ा। हरियाणा में भी धर-पकड़ शुरू हुई। सैकड़ों लोगों को जो अभी-अभी गांधी-इरविन समझौते के अधीन बरी हुए थे जेलों में पुन: ठूँस दिया गया। सत्याग्रह फिर प्रारम्भ हुआ और जत्थे पर जत्थे गिरफ्तारियों के लिए पेश होने लगे। रोहतक से कोई १,०००, हिसार से ८००, अम्बाला, करनाल से १०००, गुड़गांव से ४०० सत्याग्रहियों ने गिरफ्तारियां दी। पुलिस ने कांग्रेस के दफ्तरों को ताले लगा दिए और भय का आलम चारों तरफ बरपा कर दिया।

गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे को चुना। अक्तूबर १९४० में यह आंदोलन सारे देश में आरम्भ हुआ। केवल पक्के अहिंसावादी, अनुशासन की डोर से बंधे हुए कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को ही इस आंदोलन में भाग लेने की अनुमति थी। हरियाणा से व्यक्तिगत सत्याग्रह में जिलेवार गिरफ्तारियां इस प्रकार रहीं :-

क्र.सं.	जिला	गिरफ्तारी (व्यक्तिगत)	अन्य गिरफ्तारियाँ
१	अम्बाला	१२०	३३
२	गुड़गाँव	३२	७
३	हिसार	७७	१
४	करनाल	३६	....

५	रोहतक	२५१	२

व्यक्तिगत सत्याग्रह, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, सरकार को कोई विशेष रूप से परेशान करने के लिए नहीं छेड़ा गया था। वह तो केवल नैतिक विरोध का प्रदर्शन करना था।

अब कांग्रेस को यह समझते देर न लगी कि ब्रिटिश सरकार उनको कुछ देने वाली नहीं है। अत: उन्होंने उग्रवादी जन-आन्दोलन छेड़ने की बात सोचनी शुरु की। ८ अगस्त १९४२ के दिन अपने बम्बई अधिवेशन में काँग्रेस ने **'अंग्रेजो भारत छोड़ो'** का ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किया। महात्मा गांधी इस प्रस्ताव को एकदम क्रियान्वित नहीं करना चाहते थे। भयंकर जन आंदोलन चलाने से पूर्व वे वायसराय से बात करके समस्या का कोई शांतिपूर्ण हल निकालना चाहते थे। युद्ध में धंसे अंग्रेजों को वे परेशान नहीं करना चाहते थे किन्तु इससे पूर्व कि गांधी जी वायसराय से मिलते, सरकार ने गांधी समेत कांग्रेस की कार्यकारिणी के सब सदस्यों को बम्बई छोड़ने से पूर्व ही गिरफ्तार कर लिया। इसकी सब जगह बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

९ अगस्त को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव और नेताओं की गिरफ्तारी की खबर देश भर में विद्युत् गति से फैल गई।

हरियाणा में सभी जगह बड़ा रोष फैल गया। स्थानीय नेताओं ने दिन रात एक करके लोगों को आन्दोलन में कूदने के लिए तैयार किया। चौधरी रणबीर सिंह आदि नेताओं के प्रयत्नों से सब किसान भी (विशेषत: रोहतक और हिसार के) आजादी की आग में कूदने के लिए आगे बढ़ने लगे। सब जगह हड़ताल हो गई। जलसे और जलूसों के माध्यम से जनता ने सरकार की भर्त्सना की। जगह-जगह पुलिस ने गोली चलाई। किन्तु उत्तेजना किसी भी तरह कम न हो पाई। एक जन आंदोलन चल पड़ा। विद्यार्थी, मजदूर, किसान, संघर्ष में कूद पड़े। रेलवे स्टेशन, डाक तथा तार घर, जो कि ब्रिटिश राज्य के चिन्ह माने जाते थे, बरबाद कर दिए गए। हरियाणा में तोड़-फोड़ की घटनाएं इस प्रकार हुई :-

१.	रेलवे स्टेशनों को पूर्ण तथा आंशिक क्षति	४
२.	डाक घरों पर आक्रमण	११
३.	तार काटने की वारदातें	४५
४.	पुलिस स्टेशनों तथा अन्य सरकारी भवनों पर आक्रमण	१२
५.	रेल की पटरी उखाड़ने की वारदातें	६

सरकार ने भी उतने ही रोष से आन्दोलन को दबाना चाहा। पुलिस ने सब जगह पूरी नाकाबन्दी कर दी और जरा से शक पर भी लोगों को पकड़ कर जेल में ठूंस दिया गया। हजारों लोग जेल की काल-कोठरियों में उन दिनों चक्की पीसते दिखाई देते थे। बहुत-से लम्बी बीमारियों के शिकार बन गए। रेवाड़ी के डा. सत्यनारायण पेचिश और टी.बी. के कारण शहीद हुए।

आजाद हिन्द सेना में योगदान

अब तनिक भारत से बाहर लड़े गये स्वाधीनता संघर्ष में हरियाणावासियों के योगदान पर भी दृष्टि डाल लें। दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों की सिंगापुर की हार के बाद हरियाणा के हजारों युवक, जो ब्रिटिश सेना में थे, जापान द्वारा बन्दी बना लिये गए। थोड़े दिन बाद जब सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का निर्माण किया तो वे सब उसमें शामिल हो गए। हरियाणा के लगभग प्रत्येक गांव को यह गौरव प्राप्त है कि उसका कम-से-कम एक वीर युवक तो भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में अमर सेनानी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरुद्ध समरांगण में डटकर लड़ा है।

कुल मिलाकर आजाद हिन्द फौज में हरियाणा के कोई पौने तीन हजार सैनिक थे। इन वीर शिरोमणियों का जिलेवार ब्यौरा इस प्रकार है:-

क्र.सं.	जिला	अफसर	सैनिक	कुल संख्या	शहीद
१	रोहतक, सोनीपत	१४९	७२४	८७३	१३८
२.	करनाल, कुरुक्षेत्र	१४	१०५	११९	५
३.	जीन्द	५३	२९६	३४९	५५
४.	हिसार, भिवानी	६१	४७८	५३९	५३
५.	गुड़गांव	१०६	५८०	६८६	७७
६.	महेन्द्रगढ़	१४	१०४	११८	१८
७.	अम्बाला	१	३०	३१	...
	कुल जोड़	**३९८**	**२३१७**	**२७१५**	**३४६**

इस प्रकार हरियाणावासियों ने प्रत्येक अवसर पर आजादी के आन्दोलन में योगदान किया है। अन्ततः १५ अगस्त, १९४७ को देश अंग्रेजी शासन से मुक्त हो गया। अनेक बलिदान देने के बाद स्वतन्त्रता का उपहार पाकर हरियाणावासियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। स्वतन्त्रता-समर में जो वीर काम आये हरियाणावासी उन्हें नतमस्तक होकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। ❑❑

अहिंसा के समर्थक और क्रान्तिकारियों के हितैषी

गणेशशंकर विद्यार्थी

आजादी के आन्दोलन के समय भारत के चारों ओर देशभक्ति का वातावरण बना हुआ था। जिसके हृदय में थोड़ा सा भी देशप्रेम था, वह किसी-न-किसी प्रकार देश की आजादी में अपना योगदान करना चाहता था। कोई असहयोग आन्दोलन के रूप में तो कोई क्रान्तिकारी के रूप में, कोई अंग्रेजों के विरुद्ध नारे लगाकर, कोई पर्चे बांटकर, कोई तिरंगा फहराकर अपने देशप्रेम को प्रकट कर रहा था। लेखक और पत्रकार लेखनी के द्वारा अपना योगदान कर रहे थे। उन्हीं में से एक सुप्रसिद्ध पत्रकार थे -गणेशशंकर विद्यार्थी, जिनके द्वारा कानपुर में प्रकाशित-सम्पादित 'प्रताप' नामक समाचार पत्र उस समय हिन्दी क्षेत्र में आजादी का प्रतीक बन गया था। 'प्रताप' के माध्यम से श्री विद्यार्थी जहां आजादी के लिए जागृति का वातावरण बना रहे थे वहीं क्रान्तिकारियों, स्वतंत्रतासेनानियों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाते थे। इस कारण अंग्रेज सरकार को गणेशशंकर विद्यार्थी खटकने लगे थे। सरकार की यह कोशिश रहती कि किसी भी तरह यह समाचार पत्र बंद हो जाये। उत्तर प्रदेश के अंग्रेज प्रशासन ने आपको खूब तंग किया, खूब सताया, बात-बात पर जेलों में डाला और वहां यन्त्रणाएं दी गयी। गणेशशंकर एक आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे। जब भी जेल में डाले जाते तो छूटने के समय तक अस्थिपंजर होकर निकलते। किन्तु आपने सारी यातनाएं सहन करने के बावजूद देशसेवा का कार्य नहीं छोड़ा और अंग्रेज सरकार ने आपको जेल में डालने का कोई मौका नहीं छोड़ा। छोटी-छोटी कारावास की सजाओं के अतिरिक्त आपको १९२० में दो वर्ष का और छूटते ही फिर १९२५ तक कारावास भोगना पड़ा। यद्यपि आप अहिंसक आन्दोलन के समर्थक थे किन्तु क्रान्तिकारियों की हर संभव सहायता करते थे। आपने स्वतंत्रता सम्बन्धी प्रत्येक घटना को महत्वपूर्ण और प्रेरक ढंग से प्रस्तुत किया। क्रान्तिकारियों के साथ जेलों में होने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार और अत्याचारों को उजागर कर न्याय का ढोंग रचने वाली गोरी सरकार का पर्दाफाश किया। आप द्वारा सम्पादित प्रताप के पाठकों का क्षेत्र बहुत व्यापक था। लगभग पन्द्रह

करोड़ लोगों तक आपकी आवाज पहुंचती थी। हर विरोध के बाद अंग्रेज सरकार तिलमिलाकर रह जाती।

एक दिन पत्र के कार्यालय में जाने के बाद देर रात तक जब आप नहीं लौटे तो आपकी खोज हुई। पता चला कि किसी ने आपकी हत्या कर दी है। आपकी हत्या का समाचार सुनकर भारत का बहुत बड़ा क्षेत्र दु:ख के सागर में डूब गया। आपकी हत्या के षड्यन्त्र में अंग्रेज सरकार के हाथ से इन्कार नहीं किया जा सकता।

एक क्रान्तिकारी लेखक के साथ आप श्रेष्ठ साहित्यकार, हिन्दी भाषा के प्रबल समर्थक और गरीबों के हितैषी थे। सामाजिक सौहार्द बनाये रखने में आप सदा यत्नशील रहते थे। २५ मार्च १९३१ को कानपुर में साम्प्रदायिक दंगा भड़क उठा। दोनों पक्षों के अनेक लोग मारे गये। आपने घर-घर जाकर दोनों पक्षों के लोगों को समझाया। उसका शुभ परिणाम यह निकला कि कानपुर में शीघ्र ही शान्ति स्थापित हो गयी। आपकी हत्या के साथ एक देशप्रेमी सौम्य व्यक्तित्व सदा के लिए शान्त हो गया और एक प्रखर लेखनी सदा के लिए अवरुद्ध हो गयी।

(सम्पादक) ❑❑

संगीनों के सामने सीना तानने वाले वीर संन्यासी

अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द

अनेक राष्ट्रीय कार्यक्रमों के कर्णधार, भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा के पोषक, समाज सुधारक और अछूतोद्धारक स्वामी श्रद्धानन्द का नाम देशभक्तों की अग्रणी पंक्ति में अंकित है।

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म संवत् १९१३ विक्रमी (सन १८५६ ईस्वी) में जालंधर जिले के गांव तलवन में हुआ था। आपके पिता श्री नानकचन्द जी पहले फौज में रिसालदार थे। फिर पुलिस कोतवाल बनाये गए। बांदा, बलिया, बरेली, बनारस आदि शहरों में जहां-जहां आपके पिता रहे वहीं आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। एक कोतवाल का पुत्र होने के कारण आपके पास धन का अभाव नहीं था, ऊपर से सत्ता का अहंकार। मनचाहा धन और निरंकुश अहंकार के कारण इनमें सारे दुर्गुण घर कर गये। उस समय इनका नाम मुंशीराम था।

बरेली में एक बार आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती आये। उनके व्याख्यानों का मुंशीराम के युवा मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके प्रभाव से नास्तिक से आस्तिक, कदाचारी से सदाचारी, उच्छृंखल से गम्भीर बन गये। स्वामी दयानन्द के व्याख्यानों से ये भारतीय संस्कृति-सभ्यता और शिक्षा के परम उपासक और स्वराज्यसमर्थक देशभक्त बन गये। इनके जीवन का व्यवहार और लक्ष्य ही बदल गया।

आपने वकालत की डिग्री लेकर कई वर्ष तक लाहौर और जालंधर में वकालत की। 'सद्धर्म प्रचारक' नाम का एक पत्र निकाला जिसमें जीवन निर्माण करने वाले और देशभक्ति से सम्बन्धित लेख होते थे। आपको यह निश्चय हो गया था कि भारत की गुलामी और भारत के युवकों को पथभ्रष्ट करने तथा देशभक्ति के संस्कारों की क्षीणता का मूल कारण मैकाले द्वारा प्रवर्तित अंग्रेजी शिक्षा है। इस कारण आपने अथक प्रयास करके और अपना सर्वस्व त्याग कर भारतीय शिक्षा पद्धति के प्रचार-प्रसार हेतु २ मार्च १९०२ को हरिद्वार के समीप गंगातट पर गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की और सर्वप्रथम अपने दो पुत्रों को उसमें प्रविष्ट कराया। आज यह विश्व प्रसिद्ध विश्वविद्यालय है। सन् १९०० से १९१७ तक आपने इसका स्वयं संचालन और निरीक्षण किया।

१० अप्रैल १९१७ को आपने संन्यास ग्रहण कर लिया और मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द बन गये। उसके बाद आप पूर्णत: राष्ट्रीय कार्यक्रमों

और समाजसुधार में लग गये।

'रोलट कानून' के आधार पर जब पंजाब में मार्शल ला लागू करके देशभक्तों का दमन किया गया तो आपने ३० मार्च १९१९ को दिल्ली में उसके विरोध में प्रभावशाली और ऐतिहासिक जुलूस निकाला। चांदनी चौक बाजार में आपके नेतृत्व में जुलूस आगे बढ़ रहा था। घण्टाघर के पास अंग्रेजी फौज संगीन लिये रास्ता रोके खड़ी थी। जुलूस के पास आने पर अंग्रेज अधिकारी ने चेतावनी देते हुए कहा–'वहीं रुक जाओ। यदि आगे बढ़े तो गोलियों से उड़ा दिया जायेगा। स्वामी श्रद्धानन्द उन मतलब परस्त नेताओं में से नहीं थे जो विपत्ति में जनता को धकेलकर खुद साफ बच निकलते हैं और मारी जाती है आम जनता। वे सच्चे नेता थे। उन्होंने जुलूस को वहीं रुकने का आदेश दिया। स्वयं आगे बढ़ गये। एक साथ दर्जनों संगीनें गोली चलाने के लिए तन गयी। इस वीर संन्यासी ने छाती खोलकर, सीना तानकर, निर्भीक भाव से संगीनों से छाती लगाकर कहा–

"लो, पहले मेरी छाती में मारो गोलियां।"

इस अप्रत्याशित वीरतापूर्ण दृश्य को देख अंग्रेज अधिकारी और सैनिक सभी हतप्रभ रह गए। जनता ने दांतों तले अंगुलियां दबा ली। स्वामी जी के इस सच्चे नेतृत्व से प्रभावित होकर अंग्रेज अधिकारी ने जुलूस को आगे जाने दिया। इस निर्भीकतापूर्ण घटना से राष्ट्रीय संग्राम के पर्दे पर आप एक महारथी के समान उभर गये। इसके बाद १९१९ के अन्त में अमृतसर में श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में जो कांग्रेस का अधिवेशन हुआ उसमें स्वागत समिति का अध्यक्ष आपको ही बनाया गया था। इसके बाद कांग्रेस के साथ मिलकर अनेक राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भाग लिया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर 'मिस्टर गांधी' को सबसे पहले आपने 'महात्मा' विशेषण से सम्बोधित किया था। बाद में यही विशेषण इतना प्रसिद्ध हुआ कि उनकी पहचान बन गया और विश्व में 'मिस्टर गांधी' आज 'महात्मा गांधी' के नाम से ही जाने जाते हैं।

एक बार पंजाब में गुरुबाग के लिए सिखों का सरकार के साथ झगड़ा हुआ। न्याय के अनुसार आपने इस मामले में सिखों का साथ दिया और अमृतसर में सिखों के पक्ष में व्याख्यान दिया। अंग्रेज सरकार ने आपके व्याख्यान को आपत्तिजनक मानकर आप पर अभियोग चलाया और एक साल की सजा सुनाई। आप खुशी-खुशी जेल गये। सरकार का विचार बदला और छह महीने बाद ही आपको रिहा कर दिया गया।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में सबसे पहले सन् १८७४ में स्वराज्य का उद्घोष करके विदेशी राज्य के उन्मूलन और स्वराज्य प्राप्ति का सार्वजनिक आह्वान किया था। इससे प्रेरित होने के कारण प्रत्येक आर्यसमाजी देशभक्त होता है। उस समय भी स्वराज्य के

लिए प्रयत्नशील क्रान्तिकारियों और आन्दोलनकारियों में पर्याप्त संख्या आर्यसमाजियों की थी। उनमें स्वामी श्रद्धानन्द के अतिरिक्त लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, श्यामजी कृष्णवर्मा, पं० रामप्रसाद बिस्मिल, गेन्दालाल दीक्षित, भगतसिंह, सुखदेव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अंग्रेज सरकार ने यह देखकर आर्यसमाज और आर्यसमाज के ग्रन्थों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए मुकदमा दायर किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने इस मुकदमे की पैरवी की और आर्यसमाज पर प्रतिबन्ध लगाने के अंग्रेजी सरकार के सपने चूर-चूर कर दिये।

आपके जीवन में एक अन्य ऐतिहासिक घटना का भी रिकार्ड दर्ज है, जो अब तक नहीं टूटा है और भविष्य में भी उसके टूटने की संभावना कम है। ४ अप्रैल १९२५ का दिन था। दिल्ली की प्रसिद्ध जामा मस्जिद में नमाज के बाद मुसलमानों की एक विशाल सभा हो रही थी जिसमें मुसलमान नेताओं के भाषण हो रहे थे। उसमें मौलाना अब्दुल्ला चूड़ीवाले ने आवाज देकर कहा कि "स्वामी श्रद्धानन्द जी की तकरीर(भाषण) होनी चाहिए।" नेताओं की सहमति होते ही दो-तीन नौजवान उठे और तांगा लेकर नया बाजार से स्वामी श्रद्धानन्द को आदरपूर्वक ले आये। "अल्लाह हो अकबर" के उद्घोष के बीच स्वामी जी जामा मस्जिद के मिम्बर (वेदि) पर चढ़े और वेदमन्त्र के उच्चारण के साथ अपना भाषण दिया। इसी प्रकार ६ अप्रैल को फतेहपुरी मस्जिद में आपका भाषण देने का यह पहला अवसर था। आर्यसमाज के लक्ष्य के अनुसार स्वामी जी मुसलमानों को शुद्ध करके पुनः हिन्दू धर्म ग्रहण करवा रहे थे। उन्होंने हजारों मलकाना राजपूत तथा अन्य लोगों के शुद्ध कर हिन्दू बनाया। किन्तु आप कट्टर साम्प्रदायिकता के विरोधी थे। आप मुसलमानों को भी भाई समान मानकर उनका सहयोग करते थे।

शुद्धि-कार्य से कट्टर मुसलमान आपसे रुष्ट हो गये। २३ सितम्बर १९२६ को एक दिन आप नया बाजार दिल्ली में अत्यन्त रुग्ण होने के कारण शय्या पर लेटे हुए थे। तभी एक मतान्ध मुस्लिम युवक आया और इस्लाम के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करने की इच्छा प्रकट करने लगा। स्वामी जी ने कहा-"भाई, आज तो मैं बहुत रोगी हूं। तुम्हारी दुआ से जब ठीक हो जाऊंगा तब चर्चा करूंगा।" इसके बाद उसने सेवक से पानी लाने के लिए कहा। सेवक धर्मसिंह जैसे ही पानी लाने के लिए गया, पीछे से मसनद का सहारा लेकर बैठे स्वामी जी पर पिस्तौल से गोलियां चला दीं। स्वामी जी का तुरन्त प्राणान्त हो गया। हत्यारे को पं० धर्मपाल ने पकड़ लिया। उसका नाम अब्दुल रशीद था जो एक जिल्दसाज था। अदालत ने उसे फांसी की सजा दी। किन्तु एक देशभक्त और समाज सुधारक की शहादत से समाज की अपूरणीय क्षति हो गयी। (**सम्पादक**)

जन-जन के हृदय सम्राट्, लोहपुरुष

भारत निर्माता सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार पटेल उन जननायकों में से एक हैं जो भारत की जनता के हृदयों में निवास करते हैं और जिन्होंने देश की सेवा के लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया। श्री पटेल जैसे दृढ़ इच्छाशक्ति वाले नेता का ही यह चमत्कार है कि उन्होंने अंग्रेजों द्वारा विखण्डित किये भारत को एक सूत्र में बांध दिया। आज का अखण्ड भारत सरदार पटेल की देन है। दुर्भाग्य यह रहा कि कश्मीर पर कार्यवाही करने का अधिकार सरदार पटेल को नहीं मिला, नहीं तो आज की भयावह कश्मीर समस्या उत्पन्न ही नहीं होती। तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू की राजनीतिक अदूरदर्शिता ने कश्मीर रूपी नासूर को पनपने का ऐसा मौका दे दिया कि वह न जाने कब तक भारत को सालता रहेगा।

१५ अगस्त १९४७ को जब अंग्रेजों ने भारत को आजाद किया तो कुटिलता की नीति प्रदर्शित करते हुए सारी रियासतों को स्वतन्त्र कर दिया ताकि अव्यवस्था फैल जाये और भारत सरकार मजबूर होकर प्रार्थना करके अंग्रेज सरकार को शासन संभालने के लिए यहां रखे। किन्तु लोहपुरुष सरदार पटेल ने, जो उस समय भारत के उपप्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री थे, उस अव्यवस्था को उत्पन्न ही नहीं होने दिया। सभी ६०० रियासतों को प्रेम से समझाकर भारत में एक संघ के रूप में मिलने पर राजी कर लिया। तीन राज्य भारत में मिलने के लिए तैयार नहीं हुए – हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर। सरदार पटेल ने इन पर कठोरता करते हुए सैनिक कार्यवाही की और इनको भारत का अविभाज्य अंग बना दिया। वर्तमान पाक अधिकृत कश्मीर भी भारत का अंग बन जाता यदि नेहरू पटेल के कार्य में दखल न देते।

पटेल ने महान् राजनीतिक त्याग कर देश के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। स्वतन्त्र भारत के प्रधानमन्त्री का चयन करने की प्रक्रिया यह थी कि जिसके पक्ष में अधिक प्रान्तों की कांग्रेस कार्यसमितियां प्रस्ताव करके भेजेंगी उसी को प्रधानमन्त्री नियुक्त किया जायेगा। बहुमत सरदार पटेल के पक्ष में आया। केन्द्रीय कांग्रेस कार्यसमिति में महात्मा गांधी जवाहर लाल नेहरू के पक्ष में नियमविरुद्ध तरीके से अड़ गये। ऐसी स्थिति में सरदार पटेल ही ऐसे उदारपुरुष निकले जिन्होंने उदारता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए स्वयं अपना नाम वापस ले लिया। श्री

पटेल की उदारता का ही परिणाम था कि श्री नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री बने। भारत की आम जनता का मानना है कि पटेल का यह त्याग भारत के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ।

इस वीर पुरुष का जन्म गुजरात प्रान्त में ३१ अक्टूबर १८७५ को हुआ। आपके पिताश्री का नाम झेबर भाई पटेल था। आपके बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल थे। आपका परिवार कृषि कार्य करता था।

सामाजिक क्षेत्र में आने के बाद आपने स्वाधीनता आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया तथा साथ ही समाजहितैषी कार्य भी किये। आपको गुजरात कांग्रेस की कार्यकारिणी का मन्त्री चुना गया। आपने इस समिति को पूरी निष्ठा से चलाया। उस समय गुजरात प्रान्त में निम्न श्रेणी के राज्य कर्मचारियों से बेगार ली जाती थी। आपने उसके विरुद्ध आवाज उठायी। कमिश्नर ने आपकी बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर आपने सरकार को चेतावनी दी कि "यदि सरकार ने सात दिन के अन्दर बेगार प्रथा बंद नहीं की तो मैं इसके विरुद्ध सत्याग्रह करूंगा।" आखिर सरकार को झुकना पड़ा और आपके सद्प्रयत्नों से यह निन्दनीय प्रथा बंद हो गयी। इसके बाद आपने गुजरात में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की जिससे गुजरात में शिक्षा की उन्नति को बल मिला।

आपने बारदौली में जो सत्याग्रह किया वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। आपने सत्याग्रह के माध्यम से लगान वसूली बंद करायी। सरकार ने आपके भाषणों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। आपने सरकार के प्रतिबन्ध को तोड़ा जिसके कारण आपको चार मास का कारावास काटना पड़ा। जेल से छूटने के बाद आपने विशाल जुलूस के साथ लोकमान्य तिलक की बरसी मनायी। पुलिस नहीं चाहती थी कि जुलूस निकले किन्तु आप अपने फैसले पर अडिग रहे। आपको पुनः गिरफ्तार कर लिया गया।

आपके सामाजिक एवं स्वाधीनता विषयक कार्यक्रमों से जनता तथा कांग्रेस में आपकी प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। कराची में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसमें आपको अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। सरदार पटेल कभी अनुचित दबाव के आगे नहीं झुके। मुस्लिम लीग अथवा जिन्ना जब कभी भी अनुचित धमकी देते तो सरदार पटेल उसका दृढ़ता से उत्तर देते थे।

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद आप दिन-रात देश की सेवा एवं उन्नति के कार्यों में लगे रहते। कार्य की अधिकता के कारण आपको हृदय-रोग हो गया। १५ अक्तूबर १९५० को भारत का यह लोहपुरुष स्वर्ग सिधार गया। आज भी भारत की जनता उन्हें श्रद्धा और आदरपूर्वक स्मरण करती है। (**सम्पादक**) ❑❑❑

क्रान्तिकारियों द्वारा रचित उनके प्रिय गीत एवं कविताएं

क्रान्तिकारियों द्वारा अदालत में जाते समय गाया जाने वाला गीत–

(१)

सरफरोशी की तमन्ना[१] अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल[२] में है।
रहबरे राहे मुहब्बत[३] रह न जाना राह में,
लज़्जते सहरानवर्दी[४] दूरिए मञ्ज़िल[५] में है।
वक्त आने दे बता देंगे तुझे ए आसमाँ
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।
अब न अगले बलबले[६] हैं अब न अरमानों[७] की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत[८] अब दिले बिस्मिल[९] में है।
आज मक्तल[१०] में यह कातिल कह रहा है बार–बार,
क्या तमन्नाये–शहादत[११] भी किसी के दिल में है।
ऐ शहीदे मुल्को–मिल्लत[१२] मैं तेरे ऊपर निसार,[१३]
अब तेरी हिम्मत की चर्चा ग़ैर[१४] की महफ़िल में है ।।

भगतसिंह की प्रिय रचना जिसे उन्होंने अपने भाई को लिखे पत्र में उद्धृत किया है–

(२)

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफा क्या है,
हमें यह शौक देखें तो सितम की इन्तहां क्या है।
घर से क्यों खफा है खर्च का क्यों गिला करे,
सारा जहां अदू सही आओ मुकाबला करें।

---

१. सर काटने की आकांक्षा । २. कातिल के हाथों में । ३. प्रेम की राह के सूत्रधार । ४. जगह–जगह मारे फिरना । ५. लक्ष्य की दूरी । ६. जोश–हिम्मत । ७. आकांक्षाओं, कामनाओं । ८. प्रबल इच्छा । ९. अधमरा, जख्मी । १०. फांसीगृह । ११. धर्म या देश पर बलिदान । १२. देश और समाज । १३. न्यौछावर । १४. दुश्मनों में।

कोई दम का मेहमां हूं ऐ अहले महफिल,
चिरागे सहर हूं बुझा चाहता हूं।
मेरी हवा में रहेगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है फानी रहे या न रहे।

क्रान्तिकारी रोशन द्वारा रचित अन्तिम शेर

ज़िन्दगी ज़िन्दा दिली को जान ए रोशन,
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।

रामप्रसाद बिस्मिल के गीत और कविताएं–

एक बार काकोरी काण्ड के क्रान्तिकारियों को जेल से निकालने के लिए एक योजना यह बनी कि दीवार फांद कर जेल से क्रान्तिकारी निकल आएं। ऐसा करने के लिए क्लोरल मंगाकर पहरेदारों में मिठाई खिलाने और सींखचे काटने का काम करना था पर अदालत में एक बार क्लोरल लेते समय पुलिस ने पकड़ लिया और इस तरह यह योजना भी कार्यान्वित न हो सकी। जेल के भीतर बिस्मिल पर जब निगरानी भी बढ़ा दी गई तो इस कारण बाहर के लोगों को उन्हें छुड़ाने का विचार त्यागना पड़ा। बिस्मिल से सम्पर्क और सूचनाओं का आदान प्रदान इस समय बहुत मुश्किल हो रहा था। बिस्मिल भी किसी माध्यम से बाहर दल के लोगों तक कोई खबर नहीं पहुंचा पा रहे थे। बहुत प्रयत्न करने पर विजयकुमार सिन्हा को बिस्मिल के हाथ की लिखी हुई एक गजल प्राप्त हुई जिसमें बिस्मिल ने अपने उलाहने को अभिव्यक्ति दी थी। जेल अधिकारियों ने यह समझकर कि यह कोई साधारण प्रेम कविता है उसे पास कर दिया था। बिस्मिल का कहना साफ था कि कुछ करना है तो जल्दी करो। बाद में रस्से से लटकी मेरी लाश को तुमने छुड़ा भी लिया तो वह तुम्हारे किस काम आएगी। गजल इस प्रकार थी –

(३)

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या,
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या।
मिट गई जब सब उमीदें मिट गए सारे ख्याल,
उस घड़ी गर नामवर लेकर पयाम आया तो क्या।
ऐ दिले नादान मिट जा अब तो कूचए यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या।

काश अपनी जिन्दगी में हम वो मंज़र देखते,
बरसरे तुरबत कोई महशरखराम आया तो क्या।
आखिरी शबदीद के काबिल थी बिस्मिल की तड़प,
सुबहे दम कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या।

भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा और पार्टी के दूसरे लोग बिस्मिल की इस गजल को पढ़कर अपनी विवशता पर रो पड़े। भगतसिंह को इससे गहरा आघात लगा, पर उन्होंने जल्दी ही अपने को संयत कर लिया।

मेरी यह इच्छा हो रही है कि मैं उन कविताओं में से भी चन्द का यहां उल्लेख कर दूं जो कि मुझे प्रिय मालूम होती हैं, और मैंने यथा कंठस्थ की थीं। **—रामप्रसाद बिस्मिल**

(४)

भूखे प्राण तजै भले केहरि खरु नहि खाहिं।
चातक प्यासा ही रहे बिन स्वाती न अघाहिं।।
बिन स्वाती न अघाहिं हंस मोती ही खावे।
सती नारी पतिव्रता नेक नहि चित्त डिगावे।।
तिमि 'प्रताप' नहि डिगे होहि चह सब किन रूखे।
अरि सम्मुख नहि नवै फिरैं चह बन बन भूखे।।

(५)

चाह नहीं है सुर बाला के गहनों में गूंथा जाऊं।
चाह नहीं है प्यारी के गल पड़ूं हाथ में ललचाऊं।।
चाह नहीं है राजाओं के शव पर मैं डाला आऊं।
चाह नहीं है देवों के सिर चढ़ूं भाग्य पर इतराऊं।।
मुझे तोड़कर हे वनमाली उस पथ में तू देना फेंक।
मातृभूमि हित शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।

(६)

भारत जननि! तेरी जय हो विजय हो।
तू शुद्ध और ज्ञान की आगार।।
तेरी विजय सूर्य माता उदय हो।
हो ज्ञान सम्पन्न जीवन सुफल होवे।।

सन्तान तेरी अखिल प्रेममय हो।
आयें पुनः कृष्ण देखें दशा तेरी।।
सरिता सरों में भी बहता प्रलय हो।
सावर के संकल्प पूरण करें ईश।।
विघ्न और बाधा सभी का प्रलय हो।
गांधी रहें और तिलक फिर यहां आवें।।
अरविन्द, लाला, महेन्द्र की जय हो।
तेरे लिए जेल हो स्वर्ग का द्वार।।
बेड़ी की झनझन में वीणा की लय हो।
कहता खलिल आज हिन्दू मुसलमान।।
सब मिल के गाओ जननि! तेरी जय हो।

(७)

कर के प्रीति कोऊ न सुख से सोया।।
सुन्दर कली सेमर की देखी सुअनाने मन मोहा।
कर के प्रीति०
मारी चोंच सुआ जब देखा पटक-पटक सिर रोया।
कर के प्रीति०
सुन्दर कली कमल की देखी भंवरा का मन मोहा।
कर के प्रीति०
सारी रैन सम्पुट में बीती तड़प-तड़प जी खोया।
कर के प्रीति०

(८)

तू वह मये खूबी है ऐ जलवए जानाना।
हर गुल है तेरा बुलबुल हर शमां है परवाना।।
मस्ती में भी सर अपना साकी के कदम पर हो।
इतना तो करम करना ऐ लगजिशे मस्ताना।।
या रब इन्हीं हाथों से पीते रहे मस्ताना।
या रब वही साकी हो या रब वही पैमाना।।
आंखें हैं तो उसकी हैं किस्मत है तो उसकी है।
जिसने तुझे देखा है ऐ जलवए जानानां।।

छेड़ो न फरिश्तो तुम ज़िक्रे गमे जानाना।
क्यों याद दिलाते हो भूला हुआ अफ़साना।।
ये चश्मे-हकीकी भी क्या तेरे सिवा देखें।
सिजदे से हमें मतलब काबा हो बुतखाना।।
साकी को दिखा देंगे अंदाज फ़कीराना।
टूटी हुई बोतल है टूटा हुआ पैमाना।।

(९)

दर्दे दिल मत रो यहां आंसू बहाना है मना।
अंदलीबों को चमन में चहचहाना है मना।।
हाय जल्लादी तो देखो कह रहा सय्याद यह।
वक्ते ज़िबहा बुलबलों को फड़फड़ाना है मना।
वक्ते जिबहा जानवर को देते हैं पानी पिला।
हजरते इन्सान को पानी पिलाना है मना।।
मेरे खूं से हाथ रंग कर बोले क्या अच्छा है रंग।
अब उन्हें तो उम्र भर मेंहदी रचाना है मना।।
ऐ मेरे ज़ख़्मे जिगर नासूर बनना है तो बन।
क्या करूं इस जख्म पर मरहम लगाना है मना।।
खून दिल पीते हैं असग़र खाते हैं लख्ते जिगर।
इस कफ़स के कैदियों को आबोदाना है मना।।

(१०)

वतन की आबरू को पास देखें कौन करता है।
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहां होगा।।
जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज।
न जाने बादे-मुर्दन मैं कहां और तू कहां होगा।।
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।।
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही ज़मीं होगी और अपना आसमां होगा।।

(११)

इम्तहां सब का कर लिया हम ने।
सारे आलम को आज़मा देखा।।

नज़र आया न कोई अपना अज़ीज़।
आंख जिसकी तरफ उठा देखा।।
कोई अपना न निकला महरमे राज।
जिसको देखा उसे बे-वफ़ा देखा।।
अलग़रज सब को इस ज़माने में।
अपने मतलब का आशना देखा।।

(१२)

हैफ हम जिस पै कि तैयार थे मर जाने को।
यक-ब-यक हम से छुड़ाया उसी काशाने को।।
आसमां क्या यही बाकी था गज़ब ढाने को।
लाके ग़ुरबत में जो रखा हमें तड़पाने को।।
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को।। १।।
फिर न गुलशन में हमें लायेगा सय्याद कभी।
क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फरियाद कभी।।
याद आयेगा किसे यह दिले नाशाद कभी।
हम भी इस बाग में थे कैद से आजाद कभी।।
अब तो काहे को मिलेगी वह हवा खाने को।। २।।
दिल फ़िदा करते हैं कुरबान जिगर करते हैं।
पास जो कुछ है माता की नजर करते हैं।।
खाना वीरान कहां देखिये घर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं।।
जाके आबाद करेंगे किसी वीराने को।। ३।।
देखिये कब यह असीराने मुसीबत छूटें।
मादरे-हिन्द के अब भाग खुलें या फूटें।।
देश सेवक सभी अब जेल में मूंजें कूटें।
हम यहां ऐश से दिन-रात बहारें लूटें।।
क्यों न तरजीह दें इस जीने पे मर जाने को।। ४।।
कोई माता की उमीदों पे न डाले पानी।
जिन्दगी भर हमें भेज के काले पानी।।
मुंह में जल्लाद हुए जाते हैं छाले पानी।

आब खंजर का पिला कर के दुआ ले पानी।।
भरने क्यों जाएं हम इस उम्र के पैमाने को।। ५।।

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर।
हम को भी पाला था मां बाप ने दु:ख सहकर।।
वक्ते रुखसत उन्हें इतना भी न आये कहकर।
गोद में आंसू जो टपके कभी रुख से बहकर।।
तिफ्ल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को।। ६।।

देश सेवा ही का बहता है लहू नस नस में।
अब तो खा बैठे हैं चित्तौर के गढ़ की कसमें।।
सर फ़रोशी की अदा होती है यूं ही रस्में।
भाई खंजर से गले मिलते हैं सब आपस में।।
बहनें तैयार चिताओं पे हैं जल जाने को।। ७।।

नौजवानो जो तबीयत में तुम्हारी खटके।
याद कर लेना कभी हम को भी भूले-भटके।।
आप के उजले बदन होवें जुदा कट-कट के।
और सर चाक हो माता का कलेजा फटके।।
पर न माथे पे शिकन आये कसम खाने को।। ८।।

अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रक्खा था।
रंज रक्खा था मुहिन रक्खा था गम रक्खा था।।
किसको परवाह थी और किस में यह दम रक्खा था।
हमने जब वादिये गुरबत में कदम रक्खा था।।
दूर तक यादे वतन आई थी समझाने को।। ९।।

अपना कुछ गम नहीं पर यह खयाल आता है।
मादरे हिन्द पै कब तक यह जबाल आता है।।
हरदयाल आता है योरुप से न पाल आता है।
कौम अपनी पै तो रह-रह के मलाल आता है।।
मुंतजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को।।१०।।

मैकदा किसका है यह जामे सबू किस का है।
वार किस का है मेरी जां यह गुलू किस का है।।
जो बहे कौम की ख़ातिर वह लहू किस का है।

आसमां साफ़ बता दे तू उदू किस का है।।
क्यों नये रंग बदलता है ये तड़पाने को।। ११।।

दर्दमंदों से मुसीबत की न हालत पूछो।
मरने वालों से जरा लुत्फ शहादत पूछो।।
चश्म मुश्ताक से कुछ दीद की हसरत पूछो।
कुश्तये नाज से ठोकर की कयामत पूछो।।
सोज कहते हैं किसे पूछो तो परवाने को।। १२।।

बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें।
देश के वास्ते कुरबान करें सब जानें।।
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें।
कहता है खून से मत अपना गिरेबां सानें।।
नासिहा आग लगे तेरे इस समझाने को।। १३।।

न मयस्सर हुआ रहत में कभी मेल हमें।
जान पर खेल के आया न कोई खेल हमें।।
एक दिन को भी न मंजूर हुई बेल हमें।
याद आयेगा बहुत लखनऊ का जेल हमें।।
लोग तो भूल ही जायेंगे इस अफ़साने को।।१४।।

नौजवानो यही मौका है उठो खुल खेलो।
ख़िदमते कौम में जो बला आये खुशी से झेलो।।
देश के सदक में माता को जवानी दे दो।
फिर मिलेंगी न यह माता की दुआएँ ले लो।।
देखें कौन आता है इरशाद बजा लाने को।। १५।।

(१३)

न किसी की आंख का नूर हूं न किसी के दिल का करार हूं।
जो किसी के काम न आ सके मैं वह एक मुश्तेगुबार हूं।।
न दवाये दर्द जिगर हूं मैं न किसी की मीठी नजर हूं मैं।
न इधर हूं मैं न उधर हूं मैं न शकेब हूं न करार हूं।।
मैं नहीं हूं नगमाये जां फिजां मुझे सुन के कोई करेगा क्या।
मैं बड़े वियोगी की हूं सदा मैं बड़े दु:खी की पुकार हूं।।
न मैं किसी का हूं दिलरुबा न किसी के दिल में बसा हुआ।

मैं जमीं की पीठ का बोझ हूं मैं फलक के दिल का गुबार हूं।।
मेरा बखत मुझ से बिछुड़ गया मेरा रंग-रूप बिगड़ गया।
जो चमन खिजां से उजड़ गया मैं उसी की फसले बहार हूं।।
कोई पढ़ने फातिहा आये क्यों कोई आके शमा जलाये क्यों।
कोई चार फूल चढाये क्यों कि मैं बेकसी का मजार हूं।।
न ज़फ़र मैं किसी का रकीब हूं न मैं किसी का हबीब हूं।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूं जो उजड़ गया वह दयार हूं।।

(१४)

उरियानी न हैरानी न थे पांव में छाले।
हम भी थे कभी आह बड़े नाजों के पाले।।
जुल खाया मिटे उड़ गई आज़ादी ओ राहत।
अल्लाह यह दिन अपने दुश्मन पै भी न डाले।।
मारा है मिटाया है हमें आह उन ही ने।
कर बैठे थे हम जानो जिगर जिन के हवाले।।
हम ने तो हमेशा तेरी खुशनूदी ही चाही।
खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्भाले।।
उसका यह सिला हम को मिला उफ री मुहब्बत।
बरबाद किया डाल दिये जान के लाले।।
बेबस हुए जलील हुए मिट तो चुके हम।
अब और कयामत भी जो ढाना हो ढा ले।।
सौगन्ध है तुझ को तेरे उस जोरो-जफा की।
जी भर के हमें जितना सताना हो सता ले।।
किस्मत का कभी अपने भी चमकेगा सितारा।
हम भी कभी देखेंगे आजादी के उजाले।।
बदले की लहर सब तेरे सर चढ़ के कहेगी।
था जहर पै केचुल से या लाचार थे काले।।

(१५)

मानस हों तो वही रसखान बसो ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बस मेरो चरों नित नन्द की धेनु मंझारन।।
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियौ ब्रज छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौ वही कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।।

X X X

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारों।
आठहूं सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की धेनु चराय बिसारों।।
रसखान सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों।।

(१६)

यह कविता पं० रामप्रसाद बिस्मिल ने अपने गांव शाहजहांपुर में भारत दुर्दशा नाटक में गाई थी, तब सभी श्रोताओं की आखों से पानी बहने लगा था।। इस कविता के सुनाने पर पण्डित जी को स्वर्ण पदक और पारितोषिक भी मिला था।.....

देश की खातिर मेरी दुनिया में यह ताबीर हो।
हाथ में हो हथकड़ी पैरों में पड़ी जंजीर हो।।
शूली मिले फांसी मिले या कोई भी तदबीर हो।
पेट में खंजर दुधारा या जिगर में तीर हो।।
आंख खातिर तीर हो मिलती गले शमशीर हो।
मौत की रखी हुई आगे मेरी तस्वीर हो।।
मर कर भी मेरी जान पर ज़हमत विला ताखीर हो।
और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शमशीर हो।।
खासकर मेरे लिए दोज़ख़ नया तामीर हो।
अलग़रज़ तो कुछ मुमकिन वह मेरी तहकीर हो।।
हो भयानक से भयानक भी मेरा आखीर हो।
देश की सेवा ही लेकिन इक मेरी तकशीर हो।।
इससे बढ़कर और दुनिया में अगर ताजीर हो।
मंजूर हो ! मंजूर हो !! मंजूर हो !!! मंजूर हो !!!
मैं कहूंगा फिर भी अपने देश का शैदा हूं मैं।
फिर करूंगा काम दुनिया में अगर पैदा हूं मैं।।

(१७)

देखना है किस कदर दम खंजरे कातिल में है।
अब भी यह अरमान यह हसरत दिले बिस्मिल में है।।
गैर के आगे न पूछो इस में है एक खास राज।
फिर बता देंगे तुम्हें जो कुछ हमारे दिल में है।।

खींचकर लाई है सब को कत्ल होने की उम्मीद।
आशिकों का आज जमघट कूचये कातिल में है।।

फिरते हो क्यों हाथ में चारों तरफ खंजर लिये।
आज है यह क्या इरादा आज यह क्या दिल में है।।

एक से करता नहीं क्यों दूसरा कुछ बातचीत।
देखता हूं मैं जिसे वह चुप मेरी महफ़िल में है।।

उन पर आफ़त आयेगी एक रोज मर ही जायेंगे।
वह तो दुनिया में नहीं जो कूचये कातिल में है।।

एक जानिब है मसीहो एक जानिब है कजा।
किस कशमकश में पड़ी है जान किस मुश्किल में है।।

जख्म खाकर भी उसे है जख्म खाने की हवश।
हौसला कितना तड़पने का तेरे बिस्मिल में है।।

(१८)

आओ आओ भाइयो दिल खोलकर मातम करें,
हम शहीदाने वतन की बेकसी का गम करें।
साथ वालों ने खुशी से जान दे दी मुल्क पर,
रह गये इस फिक्र में बैठे हुए हम क्या करें।
राहे हक में जो मेरे जिन्दा है वह गम उनका क्या?
जीते जी हम मर गये जीने का अपना गम करें।।
मानने की जो न हो वह बात क्यों कर मान लें,
गैर मुमकिन हम उदू के सामने सर खम करें।
आप ही ख़िलवत में काटें अपने भाई का गला,
आप ही फिर बैठकर अहबाब का मातम करें।
जब ये हालत हो हमारे मुल्क के इफराद की,
जुल्म से अग़ियार के फिर चश्म क्या पुरनम करें।।
बहुत रोये अब तो बिस्मिल रोने से होता है क्या?
काम इन कैसा करें अब आहोनाला कम करें।।

(१९)

पूछते क्या हो कि क्या अरमां हमारे दिल में है।
कुछ वतन की याद में आहें दमे बिस्मिल में हैं।।

साकियाने बाग आलम सब रिहाई पा चुके।
इक हमी आफत के मारे कैद की मुश्किल में हैं।।
देश वालो! दामने हिम्मत कभी छोड़ो नहीं।
इम्तहाने इश्क की हम पहली ही मंजिल में हैं।।
आ ही पहुंचेगी किनारे किश्ती ऐ भारत कभी।
कोई दम में देखना हम दामने साहिल में हैं।।

(२०)

ग़ैर हालत है मेरी देखने आये कोई,
कौन है किस से यह गम जिसको सुनाये कोई।
रोक हर एक से कहती है ये भारत माता,
मुझ को कमजोर समझकर न सताये कोई।
दूध बचपन में सपूतों को पिलाया मैंने,
अब जईफी में दवा आके पिलाये कोई।
बाप को बेटे से है भाई को भाई से है मलाल,
रंज आपस के जो हैं इनको मिटाये कोई।
ख्वाब ग़फ़लत में पड़े सोते हैं जो अहले वतन,
होश में लाए कोई इनको जगाये कोई।
क्या गिनाने कोई अनफ़ास है तेंतीस करोड़,
काम एक मेरी मुसीबत में तो आए कोई।
यह जमाने की है खूबी यह मुकद्दर की है बात,
चैन से सोए कोई चैन न पाए कोई।
फिर न बिस्मिल रहे दुनिया में कोई ए !
बिस्मिल फिर न आजार जमाने के उठाए कोई।।

पं० रामप्रसाद बिस्मिल की प्रिय कविताएँ

यहां पर कुछ ऐसी कविताओं को उद्धृत करते हैं जो पं० रामप्रसाद बिस्मिल को बहुत प्रिय थीं और यथासमय कण्ठस्थ की थीं–

(२१)

ऐ मादरे हिन्द न हो ग़मगीन अच्छे दिन आने वाले हैं,
आजादी का पैगाम तुझे जल्द सुनाने वाले हैं।

मां तुझ को जिन जल्लादों ने दी है तकलीफ जईफी में,
मायूस न हो मगरूरों को हम मजा चखाने वाले हैं।।
कमजोर हैं और मुफलिस हैं, हम गो कुञ्ज कफस में बेबस हैं,
बेबस हैं लाख मगर माता हम आफत के परकाले हैं।
हिन्दू और मुसलमां मिल करके चाहे जो कर सकते हैं,
ऐ चर्ख कुहन हुशियार हो तू पुरशोर हमारे नाले हैं।।
मेरी रूह को करना कैद कफस इनकाम से बाहर है उनके,
आजाद है अपना दिल शैदा, गो लाख जुबां पर ताले हैं।
मगलूब जो हैं होंगे गालिब महकूम जो हैं होंगे हाकिम,
सदा एक सा वक्त रहा किसका कुदरत के तौर निराले हैं।।
आजादी के मतवालों ने यह कैसा मन्त्र चलाया है,
लरजा है जिससे अर्श समां सरकार की जान के लाले हैं।।

(२२)

मुहब्बाने वतन होंगे हजारों बेवतन पहले,
फलेगा इण्डिया पीछे भरेगा अण्डमान पहले।
मुसीबत आ कयामत आ यहां जंजीरो जिन्दा है,
यहां तैयार बैठे हैं गरीबाने वतन पहले।।
जमीने हिन्द भी फूले फलेगी एक दिन लेकिन।
मिलेंगे खाक में लाखों हमारे गुल बदन पहले।।

(२३)

सिर्फ शिकवा आशिकी में लब पै लाना है मना,
सामने बेदर्द के आंसू बहाना है मना।
कातिले सफफाक का मकतल में हुक्म आम है,
आशिके जांबाज को सर को हिलाना है मना।
है बुलबुल को हिदायत गुल की अजरूये अदब,
शाखे गुल पर बैठकर चहचहाना है मना।
बदनसीबी देखिये मुझ आशिके नाकाम की,
उसके कूचे से गुजर कर मेरा जाना है मना।
जब हंसी आई मुझे तो वह भी फरमाने लगे,
आशिकों को इश्क में हंसना-हंसाना है मना।।

(२४)

देश हित पैदा हुए हैं देश पर मर जायेंगे,
मरते-मरते देश को जिन्दा मगर कर जायेंगे।
हम को पीसेगा फलक चक्की में अपनी कब तलक,
खाक बनकर आंख में उसकी बसर हो जायेंगे।।

कर वही बर्गे खिगा को बादे सर सर दूर क्यों,
पेशवाये फस्ले गुल है खुद समर कर जायेंगे।
खाक में हम को मिलाने का तमाशा देखना,
तुख्मरेजी से नये पैदा शजर कर जायेंगे।।

नौ नौ आंसू जो रुलाते हैं हमें उनके लिए,
अश्क के सैलाब से गरपा हशर कर जायेंगे।
गर्दिशे गरदाब में डूबे तो परवाह नहीं,
बहरे हस्ती में नई पैदा लहर कर जायेंगे।।

क्या कुचलते हैं समझकर वह हमें वगें हिना,
अपने खूं से हाथ उनके तर-बतर कर जायेंगे।
नकशे पर है क्या मिटाता तू हमें पारे फलक,
रहबरी का काम देंगे जो गुजर कर जायेंगे।।

(२५)

यदि देशहित मरना पड़े मुझ को सहस्त्रों बार भी।
तो भी न इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।।

हे ईश ! भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो।
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैंकड़ों उनके रुधिर की धार से।।

उनके प्रबल उद्योग से उद्धार होगा देश का।
तब नाश होगा सर्वथा दु:ख शोक के लवलेश का।।

(२६)

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूं न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे।।

(२७)

उमड़ आये आंखों में प्राण श्वास में आई अन्तिम वायु।
धूल में मिलने अब चली फूल सम खिलकर मेरी आयु।।
उठा था मन में मेरे भाव, बसूंगा मृत्यु वधू के द्वार।
और निज रक्त रंग से साज शत्रु को दूंगा उपहार।।
वधिक! धिक् अधिक करे मत देर खींच तख्त की रस्सी डार।
चलूं इस जीवन के उस पर चखा दे मृत्यु वधू का प्यार।।

फांसी पर जाते समय राजेन्द्रनाथ लहरी का गाना

(२८)

हम सरे दार बसद शौक जो घर करते हैं।
ऊंचा सर कौम का हो नजर यह सर करते हैं।।
सूख जाय न कहीं पौधा यह आजादी का।
खून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं।।
इस ग़ुलामी में तो कोई न खुशी आई नजर।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।।
सर तन से जुदा कर दो ये है हाथ तुम्हारे।
पर रूह से जज़बातें जुदा कर नहीं सकते।।

अशफाक उल्ला की रचनाएं

बिस्मिल की तरह अशफाकउल्ला भी वारसी और 'हसरत' उपनाम से कविता लिखते थे। उन्होंने हवालात में अनेक रचनाएं लिखीं, जिनमें कुछ हमदम नामक उर्दू अखबार में प्रकाशित भी हुईं। उनकी कुछ प्रसिद्ध गजलें, नज्में और चन्द अशआर हम यहां दे रहे हैं–

(३३)

बहार आई हुई शोरिश तुनूने फितना सामां[१] की,
इलाही खैर करना तू मेरे जेबो गरीबां[२] की।
सही जजबाते हुर्रियत[३] कहीं मेटे से मिटते हैं,
अबस[४] है धमकियां दारोरसन[५] की और जिंदां[६] की।।

---

१. वसंत के आने पर, मस्ती के साधनों की अधिकता का शोरगुल । २. कुर्ते की जेब और गला जिसमें बटन लगाये जाते हैं । ३. आजादी के उद्‌गार । ४. फिजूल । ५. सूली और फांसी का तख्ता । ६. जेल ।

वह गुलशन जो कभी आजाद था गुजरे जमाने में,
मैं शाखे खुश्क हूं, हां-हां, उसी उजड़े गुलिस्तां की।
नहीं तुमसे शिकायत हम सफीराने चमन[१] मुझ को,
मेरी तकदीर ही में था कफस[२] और कैद जिंदां की।।
करो जब्ते मुहब्बत[३] गर तुम्हें दावाए उल्फत[४] है,
खामोशी साफ बतलाती है ये तस्वीरे जानां[५] की।
यूं ही लिक्खा था किस्मत में चमन पैराये आलम[६] ने,
कि फस्ले गुल में गुलशन छूटकर है कैद जिंदां की।।
जमीं दुश्मन जमां दुश्मन जो अपने थे पराए हैं,
सुनोगे दास्तां क्या तुम मेरे हाल-परीशां की।
ये झगड़े और बखेड़े मेटकर आपस में मिल जाओ,
ये तफरीके अगस[७] है तुम में हिन्दू और मुसलमां की।।
सभी सामाने-इशरत[८] थे मजे से अपनी कटती थी,
वतन के इश्क ने मुझ को हवा खिलाई जिंदां[९] की।
खुदा वाकिफ है जैसी भी गुजरती है गुजरती है,
सुनोगे दास्तां क्या यार तुम बीमारे-हिजरां[१०] की।।
मिसाले-कैस[११] दीवाना किसी लैला की खातिर में,
महीनों ठोकरें खाया किया कोहो बियाबां[१२] की।।
बहमदल्ला[१३] चमक उट्ठा सितारा मेरी किस्मत का,
कि तकलीदे-हकीकी की अता शाहे-शहीदां की[१४]।।
इधर खौफे खिजां है आशियां का डर उधर दिल को,
हमें यकसां है तफरीहे-चमन[१५] कैद और जिंदा की।।
जिबहसाई[१६] दरे-हजरत की हसरत अपना अपना ईमां है,
मुबारक हजरते वाइज को ख्वाहिश बागे-रिजवा[१७] की।।

---

१. चमन के साथी, सारे पक्षीगण । २. पिंजड़ा । ३. प्रेमभार सहन करना । ४. प्रेमी होने का दावेदार । ५. माशूक की तस्वीर । ६ ईश्वर । ७. भेदभाव बेकार ८. सुख के सामान ९. कैदखाना १०. वियोग का रोगी ११. मजनूं का दूसरा नाम १२. जंगलों पहाड़ों १३. बलिहारी ईश्वर की १४. सच्चा अनुकरण हजरत हुसैन का १५. बाग की सैर १६ ईश्वर के समक्ष माथा टेकना १७. उपदेशक की जन्नत का दरोगा होने की कामना

(३४)

वह रंग अब कहां है नसरीनो नसरतन[१] में,
उजड़ा पड़ा हुआ है क्या खाक है वतन में।
कुछ आरजू नहीं है है आरजू तो यह है,
रख दे कोई जरा सी खाके वतन कफन में।
ए पुख्ताकारे[२] उलफत हुशियारे डिग न जाना,
मेराजे[३] आशिकां है इस दार[४] और रसन[५] में।
था नारए अनलहक[६] और दावाए मुहब्बत,
रखा हुआ था और क्या मन्सूरो कोहकन[७] में।
मौत और जिंदगी है दुनिया का एक तमाशा,
फरमान कृष्ण का था अर्जुन को बीच रन में।
जिसने हिला दिया है दुनिया को एक पल में ,
अफसोस क्यों नहीं है वह रूह अब वतन में।
ऐ खायनीने[८] मिल्लत ये खूब याद रखना,
हैं बोस और कन्हाई अब भी बहुत वतन में।
सैयद जुल्म पेश आया है जब से हसरत,
है बुलबुले कफस में जागो[९] जगन[१०] चमन में।।

(३५)

सुनाएं गम की किसे कहानी हमें तो अपने सता रहे हैं,
हमेशा सुबहो शाम[११] दिल पर सितम के खंजर चला रहे हैं।
न कोई इंगलिश न कोई जर्मन न कोई रशियन न कोई तुर्की,
मिटाने वाले हैं अपने हिन्दी जो आज हम को मिटा रहे हैं।
कहाँ गया कोहेनूर हीरा किधर गई हाय मेरी दौलत,
वह सब का सब लूट करके उल्टा हमीं को डाकू बता रहे हैं।

---

१. फूलों के नाम २. सफल प्रेमी ३. प्यार की बुलन्दी ४. सूली ५. फांसी की रस्सी ६. मन्सूर एक सूफी संत थे, जिन्होंने अपने आप ईश्वर के दर्शन किए थे और इसलिए अनलहक का नारा लगाया था । अत: उसे फांसी दी गई । उसी फांसी के लिए दरोरसन शब्द आते हैं । ७. फरहाद (शीरीं का आशिक) ८. खयानत करने वाला । ९.कौवा १०. चील ११. प्रात: और संध्या

जिसे फना वह समझ रहे हैं बका[१] का है राज उसी में मुजमिर[२],
नहीं मिटाए से मिट सकेंगे वह लाख हम को मिटा रहे हैं।
जो है हुकूमत वह मुद्दई है जो अपने भाई हैं हैं वह दुश्मन,
गजब में जान अपनी आ गई है कजा के पहलू में जा रहे हैं।
चलो चलो यारो रिंग थियटर[३] दिखाएं तुमको वहाँ पे लिबरल,
जो चंद टुकड़ों पे सीमोजर[४] के नया तमाशा दिखा रहे हैं।
खामोश हसरत खामोश हसरत अगर है जज्बा[५] वतन का दिल में,
सजा को पहुंचेंगे अपनी बेशक जो आज हम को सता रहे हैं।।

(३६)

खुदाया देख ले हम कैसे ख्वार हो के चले,
तिरे ही नाम पे प्यारे निसार हो के चले।
खराबो खस्ताओ जारो नजार[६] हो के चले,
वतन में आह गरीबुद्दियार[७] हो के चले।।
निशानाये सितमे सदहजार हो के चले,
जनाब माफ हो ये गुफ्तगूए-बेतासीर।
मुकद्दरात में चलती नहीं कोई तदबीर,
हमारी तरह से है और भी कई दिलगीर[८]।।
फिराये देखिये हम को कहाँ-कहाँ है तकदीर,
असीरे गर्दिशे लैलो निहार[९] हो के चले।
तिरे ही वास्ते आलम में हो गए बदनाम,
तिरे सिवा नहीं रखते किसी से हम कुछ काम।।
तिरे ही नाम को जपते हैं हम तो सुबहो शाम,
वतन न दे हमें तर्के वफा[१०] का तू इलजाम।
कि आबरू पे तेरी हम निसार[११] होके चले।।

---

१. शेष रहना २. छिपा हुआ ३. रिंग थियेटर में मुकदमा हुआ था। यह व्यंग्य सरकारी वकील पं० जगत्नारायण मुल्ला पर है जो ५०० रुपये रोज पाते थे। यह गजल ऐनुद्दीन मजिस्ट्रेट के न्यायालय में अशफाकउल्ला ने गाई थी ४. चांदी-सोने के टुकड़े ५. भाव ६. रोते हुए परेशान हाल ७ बेवतन ८. रंजीदा ९. रात-दिन १०. वफा को छोड़ देना ११. कुर्बान, भेंट।

(३७)

वह बसीरे दामे बला[१] हूँ मैं जिसे सांस तक भी न आ सके।
वही कतीले खंजरे जुल्म[२] हूँ जो न आंख अपनी फिरा सके।।
मेरा हिन्दुकुश हुआ हिन्दुकुश ये हिमालिय है दिवालिया।
मेरी गंगा जमना उतर गई है बस इतनी है कि नहा सके।।
मिरे बच्चे भीख हैं मांगते उन्हें टुकड़ा रोटी का कौन दे।
जहां जावें कहें परे-परे कोई पास तक न बिठा सके।।
फिरे कोहेनूर को क्या हुआ उसे टुकड़े-टुकड़े ही कर दिया।
उसे खाक में ही मिला दिया नहीं एकया कोई कि ला सके।।

(३८)

नहीं अपनी हालत है बताने के काबिल।
नहीं माजरा ये सुनाने के काबिल।।
जुबां तक नहीं हम हिलाने के काबिल।
बुजुर्गों का किस मुंह से हम राग गाएँ।।
जब इक गुन भी उनका न अपने में पाएँ।
किसी को नहीं मुँह दिखाने के काबिल।।
चमन में खिजाँ अपने इठला रही है।
कयामत गुलो-गुचों पर आ रही है।।
जमीं चर्ख बनकर सितम ढा रही है।
सुनो रो के बुलबुल ये क्या गा रही है।।
कभी खार था इसका बागे अदन को।
नजर हाय किसकी लगी इस चमन को।।
कभी यों न उजड़ा था मसकन किसी का।
न यों जल गया होगा खिरमन किसी का।।
हरदयाल आता है युरोप से न पाल आता है।
दिल में रह रह के बस इतना खयाल आता है।।
भरते जाते हैं कहीं उम्र के पैमाने को।
हिन्द को छोड़ते हैं रंजोअलम खाने को।।

---

१. मुसीबत के जाल में फंसा हुआ २. अत्याचार के खड्ग से आहत

(३९)

उरूजे-कामयाबी[१] पर कभी हिन्दोस्ताँ होगा।
रिहा सैयाद[२] के हाथों से अपना आशियाँ[३] होगा।।
चखाएंगे मजा बरबादी-ए-गुलशन का गुलची[४] को,
बहार आ जाएंगी उस दिन जब अपना बागवां[५] होगा।
जुदा मत हो मेरे पहलू से ए दर्दे-वतन हरगिज,
न जाने बादे मुरदन[६] मैं कहां और तू कहां होगा।
वतन[७] की आबरू का पास[८] देखें कौन करता है,
सुना है आज मक्तल[९] में हमारा इम्तहाँ होगा।
ये आये-दिन की छेड़ नहीं ऐ खंजरे-कातिल,
बता कब फैसला उनके हमारे दरमियाँ होगा।
शहीदों के मजारों पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।
कभी वो दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी, जब अपना आसमाँ होगा।।

(४०)

जमाना बना यूँ न दुश्मन किसी का।
खिजा[१०] से लुटा यूं न गुलशन[११] किसी का।।
रहा एक बुलबुल भी जिसमें न बाकी।
फसाना जो उजड़े चमन[१२] का सुनाती।।
हमें खाक में वो मिलाये हुए हैं।
जमाने के रौंदे सताये हुए हैं।।
जनज्जुल[१३] के चक्कर में आए हुए हैं।
कि अपने ही घर में पराए हुए हैं।।
ये सब कुछ सही है मगर जान तन में।
शरारा[१४] मैं ये अपने ठंडे अगन[१५] में।।

---

१. उन्नति का शिखर २. चिड़ीमार ३. घोंसला, अपना घर। ४. फूल तोड़ने वाला, दमनकारी ५. माली, रक्षक-पोषक ६. मृत्यु के बाद ७. देश ८. मान्यता, गौरव ९. वधशाला १०. पतझड़ उजाड़ ११. आवासगृह १२. उजड़े बाग की कहानी १३ पतन १४. स्फुलिंग १५. अग्नि।

नहीं गरचे अब वे हरारत दिलों में।
वही खून बाकी है लेकिन रगों में।।
जुनूँ गरचे बाकी नहीं अब सरों में।
अगर आबोगिल[१] है वही हड्डियों में।।
लटे भी तो हाथी लटेगा कहां तक।
समंदर घटे सो घटेगा कहां तक।।
नहीं गरचे रौनक वो अपने चमन में।
न वो रंग बू है गुले यासमन[२] में।।
है मुद्दत से गो अपना सूरज गहन में।
मगर खूँ तो है वो ही अपने बदन में।।
बहुत फर्क है मुर्दा मुर्दा दिलों में।
तफावत[३] है बेजान और बिस्मिलों[४] में।।
वह स्थान गंगोत्तरी का पवित्तर।
पिथौरा की लाट और अदयपुर के पत्थर।।
हिमालय की वे चोटियाँ सर उठाकर।
इक आवाज से कह रहे हैं बराबर।।
कि न जब तक हैं हम इनको मरने न देंगे।
फना का इन्हें जाम भरने न देंगे।।

(४१)

ख्याल[५] आता है जिस दम दिल में चुभता है सिनाँ[६] होकर।
रहे क्यों कब्जा ए अगियार में हिन्दोस्ताँ होकर।।
शहीदाने वतन का खून एक दिन रंग लाएगा।
चमन में फूट निकलेगा वह बरगे अर्गवा[७] होकर।।
फकत दारोरसन ही कामयाबी का जरिया है।
मकासिद तक यह पहुँचाएगी हमको निर्दबाँ[८] होकर।।
नहीं वाकिफ थे मादर और पिदर इस अमरे-शुदनी[९] से।
कि आफत में पड़ेंगे उनके बच्चे नौजवा होकर।

---

१. पानी-मिट्टी (तत्त्व) २. चमेली का फूल। ३. अन्तर ४. घायल ५. विचार ६. बरछी ७. लाल ८. सीढ़ी ९. होने वाली बात।

सता ले ऐ फलक मुझ को जहां तक तेरा जी चाहे।
सितम परवर सितम झेलूंगा शेरे नेसताँ[1] होकर।।
करूँ मैं इनकिलाबे दहर का शिकवा मआज अल्लाह[2]।
है तुफ[3] मुझे पर डरूँ गर जेल से मैं नौजवां होकर।।
दहलता है कलेजा दुश्मनों को देखकर 'हसरत'।
चला करते हो जब बेड़ी पहनकर शादमाँ[4] हो कर।।

कुछ अशआर

(४२)

आनी थी हम को मौत सो आई वतन से दूर।
अब देखना है कि ये मिट्टी कहां की है।।

बहुत ही जल्द टूटेंगी गुलामी की ये जंजीरें।
किसी दिन देखना आजाद ये हिन्दोस्ताँ होगा।।

जिन्दगी बादे फना तुझ को मिलेगी हसरत।
तेरा जीना तिरे मरने की बदौलत होगा।।

वतन हमेशा रहे शादकाम और आजाद।
हमारा क्या है अगर हम रहें न रहें।।

बुजदिलों को ही सदा मौत से डरते देखा।
गो कि सौ बार उन्हें रोज ही मरते देखा।।

वीर को मौत से हमने नहीं डरते देखा।
तख्तये मौत पे भी खेल ही करते देखा।।

मौत इक रोज आनी है तो डरना क्या है।
हम सदा खेल ही समझा किए मरना क्या है।।

तंग आकर हम भी उनके जुल्म के बेदाद से।
चल दिए सूए-अदम जिंदाने फैजाबाद से।।

जबकि गैरों से उन्हें इक दम की भी फुरसत नहीं।
फिर वह क्यों मिलने लगे अब हसरते नाशाद से।।

बाइसे नाज जो थे अब ह फसाने न रहे।
जिन तरानों में मजा था वह तराने न रहे।।

---

१. जंगल का शेर २. ईश्वर बचाए ३. खेद ४. प्रसन्न।

घर छूटा बार छूटा अहले वतन छूट गए।
माँ छुटी बाप छुटा भाई बहन छूट गए।।
अपना यह अहद सदा से था कि मर जाएँगे।
नाम माता तेरे उश्शाक[१] में कर जाएँगे।।
कौन वाकिफ था कि यूँ सर पे बला आएगी।
बैठे बिठाए हुकूमत यह गजब ढायेगी।।
फना[२] है सब के लिए हम पे कुछ नहीं मौकूफ[३]।
बका[४] है एक फकत जाते केब्रिया[५] के लिए।।
तनहाई गुरबत[६] से मायूस[७] न हो हसरत।
कब तक न खबर लेंगे याराने-वतन[८] तेरी।।
वह जुर्मे आरजू[९] पै जिस कदर चाहें सजा दे लें।
मुझे खुद ख्वाहिशे ताजिर[१०] मुलजिम हूँ इकरारी।

(४३)

हे मातृभूमि तेरी सेवा किया करूँगा।
फांसी मिले मुझे या हो जन्म कैद मेरी।
बेड़ी बजा-बजाकर तेरा भजन करूँगा।।

क्रान्तिकारी की उमंग (गजल)

(२९)

मत रो मां तेरे चरणों पर कर दूंगा जीवन बलिहार।
हृदय रक्त जल से धो दूंगा बहती हुई आंसू की धार।।
शीश चढ़ा दूंगा मां तेरे पग कमलों पर पुष्प समान।
पद पखार दूंगा शोणित से किन्तु न होने दूंगा म्लान।।
देखूं कौन देखता है अब जननी तुझ को नयन तरेर।
भय के दिन अब बीत गये मां नहीं सुदिन की है अब देर।।
कट जायेंगे तेरे बन्धन पहनेगी तू जय का हार।
मत रो मां अब शेष रहे हैं दुःख के दिन बस दो ही चार।।

---

१. प्रेम, इश्क २. मृत्यु ३. निर्भर ४. शेष ५. ईश्वर ६. एकान्त की गरीबी ७. उदासी, मजबूरी ८. देशवासी ९. आकांक्षा का अपराध १०. जुर्म से इन्कार ।

(३०)

सरफरोशी की तमन्ना है तो सर पैदा करो,
दुश्मने हिन्दुस्ताँ के दिल में डर पैदा करो।
फूंक दो बरबाद कर दो आशियां सैयाद का ,
शरबाजो ! अब जरा फिर से शरर पैदा करे।।

झौंक दो दोजख की भट्टी में तुम इंगिलिस्तान को
जल के हो जायें खाक गोरे वह हशर पैदा करो।
आगे बढ़ करके जरा अब फोर्ड विलियम छीन लो,
लार्ड साहब के मिटाने की अक्ल पैदा करो।।

दत्त भगतसिंह की तरह झेलो हजारों सख्तियां,
दास जैसा सख्त जानिब फिर बसर पैदा करो।
सन् अठारह सौ सत्तावन का वही आगाज हो,
नौजवानाने वतन फिर से गदर पैदा करो।।

निर्वासन कालेपानी से जरा न भय मानूंगा मैं,
भूखे बिना अन्न पानी रह गीत बना गाऊंगा मैं।
फांसी पर दे चढ़ा अरे हंसते हंसते झूलूंगा मैं,
बोटी-बोटी मांस नोच ले आह नहीं बोलूंगा मैं।।

आती सन्-सन्-सन् गोली को छाती से ठुकराऊं मैं,
क्रान्ति विजय साम्राज्य नाश यह शब्द नहीं छोड़ूंगा मैं।।

युवकों का जय घोष

(३१)

कुछ जतन कर ले कटती हैं सब कड़ियां तेरी गुलामी की।
यह हम से हो सकता ही नहीं कि सूरत देखें नाकामी की।।
क्या फिक्र तुझे मां ! कैसे कटे हम नहें नाहें बेचारों से।
जंजीर कड़ी जो कट न सकी इन बूढ़ों के औजारों से।।

हम जती सती हैं ए माता हम तेरा मान बढ़ायेंगे।
जो हम ने तुझ को वचन दिया वह पूरा कर दिखलायेंगे।।
अहसासे गम नहीं हमें परवाहे गम नहीं।
हमने समझ लिया है कि दुनियां में हम नहीं।।

बुलबुल को गुल पसन्द है और गुल को बू पसन्द।
किसी को कुछ पसन्द हो पर मुझ को तू पसन्द।।
माताएँ अब करें न ममता देशप्रेमी मतवालों की।
पिता न मोह करें पुत्रों की बलि दे अपने लालों की।।
वीर पत्नियां बनें न बाधक पतियों को वह विदा करें।
आजादी ले आओ कहकर फर्ज प्रेम से अदा करें।।

मैं क्या था?

(३२)

देश दृष्टि में माता के चरणों का मैं अनुरागी था,
देशद्रोहियों के विचार से मैं केवल दुर्भागी था।
माता पर मरने वालों की नजरों में मैं त्यागी था,
निरंकुशों के लिए अगर मैं कुछ था तो बस बागी था।। १।।
माता के बन्धन तोड़ूंगा रखता था नित ध्यान यही,
अथवा मातृभूमि पर मर जाऊंगा था मुझ को अभिमान यही।।
चाह रहा था जीवन में मैं फांसी का वरदान यही,
जन्मूंगा फिर भी भारत में होता उर में भान यही।। २।।
देशप्रेम के मतवाले कब झुके फांसियों के भय से,
कौन शक्तियां हटा सकी हैं उन वीरों को निश्चय से।
हो जाता है शक्तिहीन जब शासन अतिशय अविनय से,
लखता है जब बलिदानों की पूर्ण विजय तब विस्मय से।। ३।।
वीर शहीदों के शोणित से राष्ट्र महल निर्माण हुए,
माता के चरणों पर अर्पित निज देश के प्राण हुए।
उत्पीड़क बन राजकुलों के भाग्यदीप निर्माण हुए,
रहे न पलभर पराधीन फिर प्राप्त उन्हें कल्याण हुए।। ४।।

आजादी की वधशाला

(राष्ट्रकवि रामावतार 'विकल')

द्वार खोलकर ऊँचे स्वर से, बोला कातिल मतवाला।
वो ही आये देश धर्म की, जिसे जलाती हो ज्वाला।।
सुरा सुराही शीशा सागिर, सुरबाला का नाम नहीं।
बिना पिये ही अविकल जग को, 'विकल' बनाती वधशाला।। १।।

देख धर्म ही साथ जायेगा, और न कुछ जाने वाला।
समझाने पर भी जालिम ने, काटा जिस्म जला डाला।।
जिसे समझते हो देहली में, शीशगंज का गुरुद्वारा।
'तेगबहादुर' गुरु अर्जुन की, यहीं बनी थी वधशाला।। २।।

पहले दीवारों में दोनों, वीरों को चिनवा डाला।
तान तेग फिर सिर के ऊपर, बोला कातिल मतवाला।।
धर्म छोड़ दो बच सकते हो, बोले फिर भी है मरना।
वाहे गुरु की फतेह से एकदम, गूञ्ज उठी थी वधशाला।। ३।।

नाना और तांतियां टोपे, पिया मुबारक ने प्याला।
हुए नशे में चूर जला दी, घर-घर में जीवन ज्वाला।।
बांध पीठ सुत चढ़ घोड़े पर, झूम-झूम कर मतवाली।
खोल गई सन् सत्तावन में झांसी वाली वधशाला।। ४।।

धोखे से मारा जाता है, सत्य बात कहने वाला।
पिला दूध में कांच लोभवश, अपना धर्म गवां डाला।।
'ऋषि दयानन्द' तेरे उर का, वार-पार क्या खाक मिले।
बख्शा कातिल को दे इनाम, बदनाम नहीं की वधशाला।। ५।।

हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य की, भड़क उठी एकदम ज्वाला।
उसे बुझाने हित उसने, खून पसीना कर डाला।।
आंक सके न फिर भी कीमत, महजब के अन्धे जौहरी।
'हा ! गणेशशंकर' जैसे की, बना कानपुर वधशाला।। ६।।

जा प्रयाग में कुम्भ त्रिवेणी, न्हाता है क्या मतवाला।
धर्म-कर्म सब तेरे निष्फल, क्योंकि तेरा दिल काला।।
पहले जा अलफ्रेड पार्क में, होगा तीर्थ तभी सफल।
खोल गया आजाद दिलजला, आजादी के हित वधशाला।। ७।।

यहीं रूपरानी के गले में, डाली 'मोती' ने माला।
आजादी का यहीं जवाहर, कमला ने दीपक बाला।।
जीते जी जल गया देश हित, घर का घर ही दीवाना।
आज वही आनन्द भवन है, नेहरू वंश का वधशाला।। ८।।

ब्रिटिश कफन की कील बनेगा, मेरे सीने का छाला।
आगे बढ़कर झूम गया, पंजाबकेसरी मतवाला।।
तू जाये लाहौर तो मस्तक, झुका चूम लेना भू को।
माल रोड पर बनी हुई है, लाला जी की वधशाला।। ९।।

डायर ओडायर का हम को, याद कारनामा काला।
वही जुल्म की अन्तिम सीमा, बना तीर्थ जलियां वाला।।
पिण्डदान करने कुटुम्ब को, उठो सभी पंजाब चलें।
नया राष्ट्र निर्माण कर गई, उन वीरों की वधशाला।।१०।।

नामुमकिन को मुमकिन कर, दिखलाता है करने वाला।
जिसने सिर रख लिया हाथ, उसने सब कुछ कर डाला।।
कब से था पीछे दीवाना, दम लेकर ही दम छोड़ा।
खुले खजाने लन्दन खोली, 'ऊधम सिंह' ने वधशाला।। ११।।

दूर फेंक दो तुलसी दल को, तोड़ो गंगाजल प्याला।
दुआ फातहा दान पुण्य का, मरे नाम लेने वाला।।
मेरे मुंह में अरे डाल दो, एक उसी सतलुज का घूंट।
जिसके तट पर बनी हुई है, 'भगत सिंह' की वधशाला।। १२।।

'रोशन' सा दिलजला कहां है, 'लहरी' सा विषियर काला।
दीवाना 'अशफाक' बना दे, सब को 'बिस्मिल' मतवाला।।

फांसी के तख्ते पर कीमत, आजादी की आंक गये।
महाकृतघ्नी भूल जाये जो, उन वीरों की वधशाला।। १३।।

गीता गीता कहे न कहता, त्यागी त्यागी मतवाला।
लिप्त हुआ माया में भूला, अपने को भोला भाला।।
गीता से अमरत्व बरसता, है फांसी के तख्ते पर।
खुदी छोड़कर कभी न देखी, 'खुदीराम' की वधशाला।। १४।।

रोक सकी कब बूढ़ी माँ के, अन्दर की जलती ज्वाला।
रोक सकेगी नवबाला के, नयनों से बहती हाला।।
चौरासी दिन के अनशन से, चौरासी बन्धन काटे।
अमर हिमालय की चोटी पर, 'देवसुमन' की वधशाला।। १५।।

'राज नारायण मित्र' वही, जो खीरी का रहने वाला।
आजादी के लिए गले में, फांसी का फन्दा डाला।।
पत्नी की आखों में आंसू देखे तो मुंह फेर लिया।
अरी अभागिन हंसते-हंसते, देख हमारी वधशाला।। १६।।

कुछ दिन को तो दुनिया ही से, इसे अलग था कर डाला।
अरे जहां 'चित्तू पांडे' का, रहा खूब शासन आला।।
कौन भूल जायेगा बोलो, 'बलिया' का बलिदान अमर।
बम बरसा कर अंग्रेजों ने, जहां बनाई वधशाला।। १७।।

चली फौज आजाद हिन्द पीकर आजादी का प्याला।
जीत लिया 'इम्फाल' जली, जनरल टोजो के उर ज्वाला।।
'रसद न भेजी' हाय किया, विश्वासघात जालिम तूने।
वही पाप बन गया अन्त, जापान देश की वधशाला।। १८।।

येरूसलम यहीं पर समझो, काबा बुतखाना आला।
बौद्ध विहार जैन मन्दिर, औ गुरुद्वारा नानक वाला।।
कहां भटकते फिरते पगलो, आओ परिक्रमा कर लें।
'देसाई' 'कस्तूरबा' की, बनी जहां पर वधशाला।। १९।।

भीष्म पितामह सा ब्रह्मचारी, था दिलेर वह दिल वाला।
डाल चुकी आजादी जिसके, गले में खूब विजयमाला।।
परवाना बनकर दीवाना कहाँ ! अनन्त की ओर उड़ा।
अरे दैव ! निर्दयी खोल दी, क्या सुभाष की वधशाला।। २०।।

हटा न मुल्ला और पुजारी के दिल से पर्दा काला।
कभी न मिलकर पीने देते, यह आजादी का प्याला।।
छुरी कटारी चल पड़ती हैं, जरा-जरा सी बातों पर।
मन्दिर, मस्जिद आज बने हैं, भाई-भाई की वधशाला।। २१।।

मन्दिर तोड़ मुसल्मां इक दम, बोल उठा अल्ला ताला।
मस्जिद फूंक और हिन्दू का, बजा शंख घंटा आला।।
जान पाये ना दोनों पागल, उसके नाम अनेकों हैं।
किया धर्म बदनाम खोल, 'रहमान' 'राम' की वधशाला।। २२।।

दाढ़ी-चोटी के झगड़े में, जीवन व्यर्थ गंवा डाला।
खुराफात में फंस कर भूला, असली बात को मतवाला।।
मुसनमान में बोल कमी क्या, हिन्दू में क्या लाल लगे।
बुरा वही है जिसने खोली, अगर किसी की वधशाला।। २३।।

अपने घर में अपने कर से, अरे लगा रहे ज्वाला।
एक दूसरे से लड़ कर हा ! सर्वनाश ही कर डाला।।
जब तक रहे गुलाम मांगते, रहे रोज हम आजादी।
अब होकर आजाद खोल दी, आजादी की वधशाला।। २४।।

पहले से ही जालिम ने सब समान जुटा डाला।
किसे खबर थी ऊपर से, उजला है लेकिन दिल काला।।
नर पिशाच बीसवीं सदी के, हृदयहीन 'सोहरावर्दी।
नोआखली और त्रिपुरा की, याद रहेगी वधशाला।। २५।।

सच कह दे आबेहयात, किस ने तेरे मुंह में डाला।
अन्न खिला कर बड़े चाव से, है तुम को किस ने पाला।।

जन्मभूमि जननी के तूने, कर डाले टुकड़े-टुकड़े।
पाकिस्तान बना कर खोली, भारत माँ की वधशाला।। २६।।

है कोई अपने को सच्चा, मुसलमान कहने वाला।
दिल पर रख कर हाथ बता दे, क्या कुरान देखा भाला।।
नग्न औरतों के दुनिया में, कहीं निकाले गये जलूस?
तेरा पाकिस्तान बना, इस्लाम धर्म की वधशाला।। २७।।

गर्भवती का गर्भपात कर, जीवित शिशु भू पर डाला।
टुकड़े करके तला, तैल में हंसता था हंसने वाला।।
उसके माता-पिता के मुंह में, फिर वह तोहफा ठूंस दिया।
बोला जायका कैसा है यह पूछ रही थी वधशाला।। २८।।

जब देखा अब किसी तरह भी, नहीं धर्म बचने वाला।
स्वाभिमान को लिये इकट्ठी हुई सैंकड़ों नव बाला।।
नाम 'पद्मिनी' का लेकर वह, सभी कूएं में कूद पड़ीं।
जौहर जालिम देख रहा था, जय बोल रही थी वधशाला।। २९।।

नाच गया किसकी थापों पर, जिन्ना होकर मतवाला।
किसके सगे हुए ये गोरे, रहा हमेशा दिल काला।।
'क्रिप्स' लगाकर आग हिन्द में, सात समन्दर पार गया।
बजा रहा है चर्चिल बगलें देख हमारी वधशाला।। ३०।।

बुरे कर्म करके अच्छा फल, अरे कहां मिलने वाला।
सोचे समझे बिना अभागे, यह अनर्थ, क्यों कर डाला।।
तू किस मुंह से जन्नत का, तलबगार बतला काफिर।
बना दिया दुनिया को दोजख, हाय ! खोलकर वधशाला।। ३१।।

कहां फला-फूला है कोई, अरे ! जुल्म करने वाला।
इसे जलाकर खाक करेगी, इसके जुल्मों की ज्वाला।।
भारत रहा अखंड रहेगा, यह भविष्यवाणी मेरी।
पाकिस्तान आप खोलेगा, अपनी एक दिन वधशाला।। ३२।।

हिन्दू मुस्लिम का फितूर, भरपूर दूर करने वाला।
चला प्रार्थना प्रभु से करने, हुआ प्रेम में मतवाला।।
अनशन से यदि मर जाता तो, जगसेवा का क्या होता।
विश्व वन्दनीय बापू तेरी, अमर रहेगी वधशाला।। ३३।।

वह हिन्दू हिन्दू कैसा जो, नीच कर्म करने वाला।
अपने ही हाथों से अपना, कर बैठा जो मुंह काला।।
हिन्दू कहलाने वाले क्यों, हिन्दू को बदनाम किया।
बापू जैसे राष्ट्रपिता की, अरे खोल कर वधशाला।। ३४।।

हिंसा से हिंसा बढ़ती है, पियो प्रेमरस का प्याला।
नफरत से नफरत को बस में, अरे कौन करनेवाला।।
बापू के हित अगर तुम्हारी, आंखों में कुछ आंसू हैं।
बन्द लड़ाई करो न खोलो, हिन्दू मुस्लिम वधशाला।। ३५।।

दान धर्म क्या खाक करेगा, अब कोई करनेवाला।
'पाप पुण्य' कुछ नहीं वृथा ही जग को धोखे में डाला।।
परमभक्त बापू का जिसको, 'दानवीर' जग कहता है।
उसी बिरला का भवन बना, फिर क्यों 'बापू' की वधशाला।। ३६।।

धर्मरूप श्री भीमराव ने, 'हिन्दूकोड' बना डाला।
यह 'मनु' का अवतार कहां से हुआ नियम रचने वाला।।
अच्छा हो सरकार बुलाये, एक सभा विद्वानों की।
तब निर्णय करके सब खोलें, दुष्कर्मों की वधशाला।। ३७।।

बेटी का समभाग पिता की, सम्पत्ति में जब कर डाला।
हैं जितने हकदार जलेगी, नित उनके उर में ज्वाला।।
बहिन भाई के शुद्ध प्रेम का, बना महा भयंकर रूप।
'भैयादूज' न होगी, होगी बहिन की वधशाला।। ३८।।

कौन मिलेगी पति चरणों पर, जीवन अर्पण कर डाला।
कौन मिलेगा पत्नी को, जीवन संगी कहने वाला।।

कभी परस्पर प्रेम न होगा, बनी रहेगी यह शंका।
कब 'तलाक' दे हाय न जाने, कौन खोल दे वधशाला।। ३९।।

भारतीय नारी का जग में , हो जायेगा मुंह काला।
था जिसका जीवन महान्, हा उसे गति में क्यों डाला।।
'सीता द्रौपदी' की सन्तानें, रंडी बनकर घूमेंगी।
जरा-जरा सी बातों पर, दिन रात खुलेगी वधशाला।। ४०।।

देशप्रेम की जिसके उर में, कल तक जलती थी ज्वाला।
आज वही बन गया हाय ! 'परमिट' पर मर मिटने वाला।।
जनता की आंखों में लेकिन, खटक रहे हैं यह काटें।
करे 'ब्लैक' मनमाना चाहे, अमन रहे या वधशाला।। ४१।।

आज नुकीली गांधी टोपी, खद्दर का कुर्ता आला।
कल था अंग्रेजों का पिट्ठू, यही जुल्म करने वाला।।
गंगा गया तो गंगाधर है, यमुना गया तो यमुनादास।
इस 'अवसरवादी' की अब तो अरे खोल दो वधशाला।। ४२।।

मैं लीडर हूं किसका डर है, जो चाहा सो कर डाला।
है अपनी सरकार मुझे फिर, रहा कोई न कहने वाला।।
देशधर्म मिले आग में, 'उल्लू सीधा' करता हूं।
जो बोला विपरीत उसी की खुलवा दूंगा वधशाला।। ४३।।

घूसखोर और चोर जहां हो, इन्तजाम करने वाला।
फिर कैसा इन्साफ कि जिसका, दिल पहले ही से काला।।
कांग्रेस को बस ऐसे ही, गुण्डों ने बदनाम किया।
हाय क्यों न 'सरकार' खोलती, इन कुत्तों की वधशाला।। ४४।।

नई-नई संस्थाएं खोलकर, जग को धोखे में डाला।
बना लिया है धन्धा घूमे, 'चन्दा' चट करने वाला।।
ध्येय नहीं कुछ भी जीवन का, बेपेन्दी के लोटे हैं।
दण्ड पेलते रहें खोलकर, 'दान धर्म' की वधशाला।। ४५।।

'मीरा और चैतन्य प्रभु' का, सब उद्देश्य मिटा डाला।
नाच-कूद गुण्डों के संग में, करें कीर्तन नव बाला।।
यहीं गर्भ धारण होते हैं, यहीं निवारण भी होते।
लोग कहें 'गोविन्द भवन' है, मैं कहता हूं वधशाला।। ४६।।

आज पतन की ओर चला, इन्सान हुआ क्यों मतवाला।
सोच रहा है विश्वनाश का, नित उपाय दिल का काला।।
बना लिया 'एटम बम' तूने, अपने लिये बनाया क्या।
अमन न क्यों हो गया देखनी, तुझे न पड़ती वधशाला।। ४७।।

दया क्षमा सन्तोष प्रेम नहीं, यहां सभी का दिल काला।
जीवमात्र का जीवमात्र है, बन गया खून पीने वाला।।
क्या तेरे हाथों से हे प्रभु, निकल गई है ये दुनिया।
नई बना ले और खोल दे, इस दुनिया की वधशाला।। ४८।।

(दयानन्दसन्देश के स्वराज्य विशेषांक से उद्धृत)

❑❑❑

क्रान्तिकारियों के नाम, स्थान एवं प्रमुख शब्दों की अनुक्रमणिका

अ

अदूनुद्दीन—३९९
अकोला—२२३
अग्रदूत—४६६
अचिन्तराम—४८७
अच्युत पटवर्धन—५३२
अच्युतराव कोल्हटकर—५३२
अजनाला—६५
अजय घोष—४७८
अजीत सिंह सरदार—८८, १९६, १९७, २६२, २८३, २८४, २८५, २८८, ३७०, ३७३
अजीनतुल रहमान—५४१
अजीमुल्ला—२४
अटारी—३०४
अण्डमान—९६, ९८, ९९, १०५, १०८, १०९, १११, ११६, १३३, १४७, २१४, २४१, २८९, २९६, २९७, ३१२, ४६१, ४६२, ५३९
अता मुहम्मद—२६७
अथावले—२१९
अघरचन्द माहुति—५३४
अनंग मोहनदास—५३४
अनन्तसिंह—५१४, ५१५
अन्नपूर्णा बाई महारानी—३९
अनारकली—२८४, २९८, ३०३
अनीसा—४४६
अनुभवानन्द स्वामी—३५८, ३६२
अफगानिस्तान—५१, २८४, ५५२
अफजल—७२
अफ्रीका—३२३, ३२४
अबुबकर हुमायुँ मिर्जा—३५
अब्दुर्रहमान खाँ नवाब—४५, ४९
अब्दुलकादिर दादा—४४६
अब्दुलकादिर मौलाना—५५८
अब्दुल रशीद—३४३, ५६८
अब्दुल रहमान हाजी—३६७
अब्दुल रहमान—५५८
अब्दुल्ला मौलाना चूड़ीवाला—५६७
अब्बासअली—३५२
अमरचन्द—४७९
अमरनाथ लाला—३४७, ३४९
अमरसिंह—३१९, १५५, २९१
अमरसिंह राजा—३२, ३३, ३४, ३५
अमरावती—२२३
अमरीका—९१, ९२, १५५, २३६, २३७, २४१, २४३, २४४, २६०, २७९, २८२, २८५, २८६, २८७, २९०, २९२, २९३, ३०२, २९९, ३०१, ३०३, ३१०, ३१९, ४७१, ४७२, ४८०, ५५३
अमरीका को स्वाधीनता कैसे मिली—३८८, ३८९
अमित सेन—५२४

अमीचन्द मास्टर—१९९, २०४, २०५, २०८, २०९, २११, २१४, २१५, २३५
अमीनाबाद—४६२
अमृतबाजार पत्रिका—१९५
अमृतसर—५४, ५५, ६५, १८७, २८२, २९०, २९१, ३०२, ३०४, ३१८, ३१९, ३२७, ३२८, ३४९, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ५१३, ५६६
अम्बिका चक्रवर्ती—५१४
अम्बा प्रसाद सूफी—१९४, १९५, १९६, १९७, २८४, ३७०, ३७३
अम्बाला—१८, ४०, ४२, ४३, ४५, ५०, ५६, २५८, २९०, ३४९, ५५५, ५५६, ५५८, ५५९, ५६१, ५६३
अयोध्या—३१
अरब—१२४
अरविन्द घोष—८२, १२५, १२६, १३८, १५१, १५६, १५७, १७६, १७७, २२०, ५७४
अरुणा आसफअली—५३१, ५३२
अरुणा सान्याल—५२५
अरुड् सिंह डाक्टर—३०८
अरोड़ा—३२१
'अर्जुन'—४७३
अर्जुन—५२७
अर्जुन सिंह—२५१, २७०, ३१०, ४७१, ५४६
अलखधारी—१५९
अलवर—५०, ५२
अलीपुर—१२५, १२६, १३१, १५२, १५६, १६३, १६५, १६८, १७०, १७५, १९०, ५३७
अल्फ्रेड पार्क—५०८
अल्लादीन—३४२
अवध—४१८
'अवध'—४२५
अवधबिहारी—१९९, २०१, २०४, २०५, २०६, २०७, २०९, २११, २१३, २१५
अविनाशचन्द्र राय—१३१, १४०, १४३, १४४, १८२,
अशफॉकउल्ला खाँ—३८५, ४०६, ४१४, ४१८, ४२१, ४२२, ४२६, ४३५, ४३७, ४३८, ४४०, ४४१, ४४६, ४४७, ४५४, ४५६, ४६६, ४७५, ५०४, ५८६
अशोकनन्दी—१७६,
अश्विनीकुमार दत्त—२२९
असगर सुलतान मिर्जा—३५
अहमदअली नवाब—४५, ४९
अहमदनगर किला—५४३
अहमदाबाद—५१, ९५, ४५०, ४६३
अहीरवाल—४१

आ

आई०सी०लाल—३६४
आक्टरलोनी—१७७
आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय—९१, ९२, २३५
आगरकर—७८
आगरा—२७७, २७८, २८०, २८४, ४५९, ४६०, ५४६

आगाखाँ महल—५४३
आजाद पंजाब गजट—५४४
आजाद हिन्द फौज—२१७, ५४८, ५५३, ५५४, ५६२
आत्मशक्ति—१३८
आत्मानन्द स्वामी—५६०
आद्यनाथ गुप्ता—४६५
आनन्द किशोर मेहता—१९६
'आनन्द किशोर पत्रिका'—१३७
आनन्द मठ—४७७
आनन्द राव—२८
'आबे हयात्'—१९७
आय्यर मेजर—३१
आयरलैण्ड—४६०
आरा—३२, ३३
आर्चर मजिस्ट्रेट—५२९
आर्यसमाज—२०८, २०८, २३५, २८३, २८४, ३८९, ४३९, ४८७, ५६५, ५६७
आलम डाक्टर—५५८
आशादास गुप्ता—४७८
आशुतोष—५४९
आशुतोष कालेज—५४९
आशु बाबू—१२९
आस्ट्रेलिया—२१०

इ

इकबाल नारायण—३५०, ३७१
इंगवाले—५३३
इंग्लैण्ड—१९, २२, २३, २४, ३३, ८०, ९२, १५२, २३७, २८८
इटली—२८८
इटावा—२७६, ५४०, ५४१, ५४२
इंडिया—१९६
इंडिया हाऊस—९३, १९०, २३५, ३२०
इंडियन ट्रेडिंग कम्पनी—२४३
इंडियन म्यूटिनी—५९
इंडियन सोश्योलॉजिस्ट—९३
इण्डियन इंडिपेण्डेन्स लीग—२१७
इनसेन—२३३
इन्द्रदेव—५३०
इन्द्रसिंह मुनि—५१२, ५१३
इन्दु भूषण—१११, ११२, १४२, १४४, १४६, १४८, २९७, ४०४, ४०५, ४०६
इन्दुमति सिंह—५२४
इन्दौर—३४७
इमर्सन—१३२
इम्फाल—५५३
इलाहाबाद—६२, ६८, १४२, १४३, २८०, ४२०, ४३६, ४६४, ५४०

ई

ईराक—५१
ईरान—२३, ५२, १९७, २३७, २८४, ३०१
इर्विन लार्ड—३२३, ४९२
ईश्वरचन्द्र शिरोरत्न—४६३
ईसा मसीह—५००
ईस्ट इण्डिया कम्पनी—१९, २२

उ-ऊ

उड़ीसा—२७८
उत्तम सिंह—३०८, ३१०, ३११
उत्साह—४६३
उदयपुर—७०, ९२

उदयसिंह—२७४, २७५, २७६
उदरेश सिंह—५४६
उन्नाव—५०४
उपेन्द्रनाथ—१२५, १२६, १२७, १३८, १८३, १८५
उमर हयात खँ टिवाना—३२९
उमाकान्त सिंह—५३०
उमाशंकर—५११, ५४६
उमेशचन्द्र बनर्जी—२८
उरई—४६३
उल्लासकरदत्त—१२५, १२६, १२७, १३३, १३५, १३९, १४२, १४५, १४७, १४८, १४९, १५१, १५४
उषा मुकर्जी—५२५
ऊटकमण्ड—५१२
ऊधमसिंह सरदार—९१, ३१२, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१

ऋ

ऋग्वेद—८०
ऋषि डाक्टर शिवानन्दन—५४२, ५४३
ऋषि दयानन्द सरस्वती—८५, ९१, ४७१, ५६५, ५६७

ए-ऐ

एग्रिस स्मेंडले—१९३
एडवर्ड मेंकलेगन—३२८
एण्ड्रुज—२९९
एण्ड्फ्रेजर—१८३
एन०सी०केलकर—७०
एनीबेसेन्ट—८०
एमर्सन—१८६
एम्पायर—१५७
एयर्स्ट लेफ्टिनेण्ट—७३
एरक मास—५३८
एल्गिन रोड—५५२
एल्फिन्सटन कालेज—९१
एल्फिस्टन लार्ड—६७
एशियाटिक एमेण्ड मेण्टला—३२५
एस०आर०दास—१९४
एस०के०रुद्र—२०६
ऐनुद्दीन सय्यद—४५५, ४७४
ऐश मजिस्ट्रेट—५२७

ओ

ओंकार सिंह—५४०
ओडायर माइकिल—२०२, २०८, २०८, २८९, २९४, ३०१, ३१६, ३१८, ३१९, ३२०, ३२७, ३२८, ३२९, ३३८, ३४२, ३४६, ३४८, ३५६, ३५७, ३५८, ३६१, ३६३, ३६६, ३७०, ३७१, ३७२, ३७४, ४४८, ५००
ओब्राइन कर्नल—३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५४
ओरई—५४६
औरंगजेब—१९९, २८५
ओरैया—२७६

क

कांगड़ा—३०३
किंग—२३३
किंग्सफोर्ड—११९, १२०, १३९
कुंअर सिंह राजा—३१, ३२, ३३
कुंजबिहारी लाल—३८०
कुंवर बहादुर—४०५
कच्चरमन गाँव—२३३

कटक—५४८
कनखल—४०४
कनाडा—२१०, २३६, २३८, २३९, २४३, २४४, २५१, २५६, २९९, ३००, ३०१, ३०७
कन्दी—२६६
कन्हाईलाल दत्त—१२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १७०, १७१, ४५३, ४५५
कन्हैयालाल—३५२, ५४०, ५४१
कन्हैया सिंह चौधरी—५६०
कपूरथला—२७५, ३०७, ३११
कमरुन्निसा बालिका विद्यालय—५२३
कमलनाथ तिवारी—४७८, ५०६
कमला चटर्जी—५२४
कमलादास गुप्ता—५२५
कमलादेवी—५६०
कमालपाशा—४९५
करतार सिंह—२१२, २१४, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २९१, २९२, २९४, २९५, ३१०, ३१२
करनाल—४५, ५६०, ५६१, ५६३
करबला—४४२
कर्जन लार्ड—७७, १९८
कर्जन वायली—१८७, १९१
कर्मचन्द—३२३
कर्मचन्द हितैषी—३३८, ३४२
'कर्मवीर'—३८०, ३८१, ३७८
कर्मसिंह—२६५, २७१, २७४, २७५, २७६, ४७९
करांची—२८४, ३२९
करियाला—१९९
क्रेगन—१५७, १५८, १५९
क्रो—७४
कलकत्ता—२१, ७७, ८५, १२१, १२६, १४०, १७९, १८०, १९८, १९९, २०९, २११, २३२, २३८, २३९, २४१, २८२, २८९, २९६, २९८, ३००, ४०६, ४३४, ४६४, ५१०, ५१६, ५२१, ५२४, ५३२, ५५०, ५५२, ५५५
कल्याण देवी—५२४
कश्मीर—५६९
कसूर—१५४, ३३५, ३४०
कसैल—३१२
कस्तूरबाई—५५९, ५६०
काकोरी—२१४, ३८५, ३९६, ४०२, ४०४, ४०६, ४०७, ४१५, ४१७, ४२०, ४२५, ४२६, ४३४, ४५५, ४६२, ४६४, ४६६, ४६८, ४७४, ५०४, ५०६, ५४२, ५७२
काक्स—३२९
कानूंड—४९
कानपुर—३१, ६४, ६७, २८०, ४०५, ४२९, ४७०, ४७३, ४७८, ४८५, ५३९, ५४०, ५६४
कापले—२१४
काबुल—५१, ३१२, ३००, ४४९, ५५२,
कामताप्रसाद—५४१
कामागातामारू—२३८, २५२, २८५, २९१, ३००, ३५७,
'काल'—१२४
कालका राय—५४६

कालपी—२९, ३१, ५१
कालीदास बोस—१२१
काली बाबू—३३३, ३३९, ३४०
कालीनाथ राय—३३८, ३३९, ३६९
कालेश्वर—१५६
कॉवन डिप्टी कमिश्नर—५६, ५७, ५८
कॉवन, जेल सुपरिटेण्डेण्ट—३३७, ३६४
काशी—२०९, २८२, ४६५, ४६७, ४६९, ५०४, ५०६, ५०८
काशीप्रसाद पाण्डेय—३८०
काशीाई—५३३, ५३४
काशी राम—५४१, ५४२
काशी राम जोशी—५५५, ५५६
काशी राम पण्डित—२५८, २५९, २९०
काशी राम लाल—५६०
काशी विद्यापीठ—४२७, ४६६, ५०६
किचन—३६६
किरती—२०२, २०३, ३२२, ४२५, ४३०
किशन सिंह—२६५, ४७१, ४७२
किशन सिंह गर्गज्ज—२६२, २६३
किशन सिंह राव—४७, ५१
किशन सिंह सरदार—१९६, २८४, ३७०
किशनगढ़—३८
कुतानी गाँव—५१
कुन्दनलाल—४७८
कुलकर्णी—७१
कुलतार—४८३
कुलबीर सिंह—४८१, ४८२
कूका—५३
कूकियां दा खकड—५७
कुमार कृष्णदत्त—१६१
कुम्बडवाल गाँव—२५४
कुरान—२१०
कुरुक्षेत्र—५६३
कुष्टियार—१६०
कृपालसिंह—२४६, २९१, ३००, ३१२
कृष्ण—७२, ९१, ५२७, ५७४
कृष्ण कुमार मित्र—२२९
कृष्ण गोपाल—१३१
कृष्ण गोपाल राव—५०, ५१
कृष्ण महाशय—३३३, ३३८, ३६९
कृष्णजी राव देशपाण्डे—१८५
कृष्णापुर गाँव—४६७
के०—६४
के०ए०देसाई—५५७
के०डी०घोष—१५३
केदारनाथ—४८७
केनन आलनट—२०६
केनेडी—१२०
केम्बलपुर—३३२
केलकर—३८२, ५०३
केशव चक्रवर्ती—४६८
केशव राव कोरटकर—७४, ७५
केशवराव देशपाण्डे—१८५
केसरी—७१, ७४, ७८, ७९, ८०, ९२, १२३, २२१
केहर सिंह—३०८, ३११
केथराइन—४२७
कैथरीन—४५१
कैमुर—३४
कैम्ब्रिज मिशन हाई स्कूल—२०४, २०९
कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी—५५०
कैलिफोर्निया—२३८, २४१

कैसर सम्राट्—२३६
कोट कासिम—५२
कोटा—२७८
कोटूमल पण्डित—३४१, ३६२
कोमिल्ला—४२८
कोलफिल्ड कमाण्डर—४७
कोल्हापुर—५३३, ५३४
क्षत्रसिंह—१५६

ख

खड्गबहादुर सिंह—५००, ५०१
खण्डवा—२२३, २२५, २२६, २२९, ३७८
खतूते राम—२०४
खन्ना—२६१
खरखौदा—४२
खरेघाट—५०५
खलीक उजजमा—४५२
खलील—४४६
खीरी—५४१, ५४२
खुदादाद—१४१
खुदिवाला—५३४
खुदीराम बोस—११९, १२०, १२१, १२२, १२५, ४५५
खुर्दपुर गाँव—३०१, ३०६
खुलना—१४२
खुशीराम—१९९
खेमकौर—५७
खैरात अली—४५५
ख्यालाते लाजपत—३७३

ग

गंगाधर पंत—७८
गंगाधर राव—२८
गंगाराम पण्डित—२५८, २५९
गंगाराम लाला—३४५
गंगा सिंह—२६३
गेंदालाल दीक्षित—२७६, २७७, २७८, ३८८, ४२७, ४३३, ५०५, ५६७
गेंडा सिंह सूबेदार—२६४, २६५
गैरीवाली—४९५
गोंड़ा—४३०, ४३४, ५४५
गणपत राय—३६४
गणेश कुण्ड—७३
गणेश घोष—५१४, ५१५
गणेश पंत दामोदर सावरकर—९४, १०२, १०३, १०४, ११५, ११६
गणेश पिंगले—२८१, ३१०
गणेश शंकर द्रविड—७४, ७५
गणेश शंकर विद्यार्थी—४६७, ४७३, ५६३, ५६४
गणेशी लाल—२०९
'गदर'—९३, १५५, २३६, २३८, २४०, २४४, २४८, २५१, २६९, २७९, २८८, ३१२, ३००, ३०६
गदरपार्टी—९१, ९२, १५४, २१७, २३५, २३६, २३८, २४६, २४७, ३०६, ३१०, ३५७, ३७४
गन्धा सिंह—२५८, २५९, २६०, २६१, ३१०
गया प्रसाद—४७८, ५३९
गर्दनी बाग हाई स्कूल—५३०
गांधी राष्ट्रीय विद्यालय—४६५
गाजीपुर—५४०, ५४५, ५४६

गाजी मुस्तफा कमालपाशा—४१२
गिरिराज—५४०
गिरीडीह—२२९, २३०, २३३
गिरीशचन्द्र नाग—५२३
गिरीश मापारु—५३५
ग्रिण्डले बैंक—५२४, ५२५
गीता—७१, ७४, १७१, १८१, २०९, २१७
गुड़गांव—४१, ४४, ४८, ५६०, ५६१, ५६३
गुजरांवाला—३२७, ३३०, ३४७
गुजरात—९१, ३२३
गुजरात विद्यापीठ—५६९
गुरदासपुर—३३३, ३६५, ३६७, ३६९
गुरु का बाग—४७३
गुरुकुल कांगड़ी—५६५
गुरुदत्त सिंह बाबा—२३८, २४०, २४४, ३००, ३०६
गुरुनानक खालसा फैक्ट्री—३५१
गुरुनानक जहाज—२३८, ३००
गुरुनानक स्टीम नेवीगेशन कम्पनी—२३८
गुरुमुख सिंह नम्बरदार—५५
गुरुमुख सिंह पंत—५५
गोइन्दा—१८०
गोकरणनाथ पण्डित—८६
गोकलचन्द नारंग—३३२, ३४२, ३४६
गोकुल गढ़—५०
गोके—५१५
गोपाल कृष्ण गोखले—७४, ८५, ३२८
गोपाल देव राज—४१, ५०
गोपाल राव देशमुख—९२
गोपाल लाल—५२४
गोपीचन्द भार्गव—५५७
गोपी मोहन शाह—४५५, ४७४, ५१८, ५१९
गोरखपुर—३२४, ४१०, ४२३, ४२४, ४३१, ४४०, ४६४, ५३८, ५४५, ५४६
गोवर्धनदास—२२६, ३२९
गोवा—१८
गोविन्द राम शर्मा—५११, ५१२, ५१३
गोविन्द वल्लभ पंत—३८५, ४३१
गोविन्द सिंह गुरु—२९३, ४९५, ५२७
गोहाटी—५२०
ग्वालियर—२९, ३०, २७७, २७८, ३८५, ३८८

घ

घल खुर्द गाँव—३६०
घुग्गा गाँव—२७२
घुड़ियाल गांव—२६३

च

चक्रवर्ती दल—२६३
चटगाँव—१२६, ५१४, ५२२, ५२४
चन्द्रभानु गुप्त—३८५
चन्द्रनगर—१२६, १८०, ५१६
चन्द्रशेखर आजाद—३२४, ३८५, ४०६, ४७५, ४७६, ४८५, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९
चन्दासिंह जैलदार—३०४
चम्पालाल पण्डित—४१५
चम्बल—२७७, ३८५
चरणदास—१९९
चांदनी चौक—४९, १९८, २०१, २१०,

५६६
चाँदा—४०७
चापेकर बन्धु—६९
चार्ल्स डिल्क—६४
चार्ल्स बॉल—५९, ६१, ६५
चारुचन्द्र राय—१८०
चिखावल—५३३
चिट्ठी गाँव—३०७
चितरंजनदास देशबन्धु—३२४, ४७४, ५०५, ५५०, ५५१
चितप्रिय—५१६, ५१७
चित्तौड़—५७७
चित्तु पाके—५२९
चिन्तामणि—२३१
चिबल—७८
चीन—१३९, २४४, २५१, ३०३
चुनी लाल हवलदार—५५५
चेन्नई—५२६
चेम्सफोर्ड लार्ड—३२७, ३७७
चेलपुरी—२३५
चैम्बर्स—६१
चैम्सफोर्ड विश्वविद्यालय—२३६
चोलकर डाक्टर—२२५
चौंता साहब गुरुद्वारा—२७६
चौबीस परगना—१५७
चौरी-चौरा काण्ड—३२४, ५०५

छ

छबीलदास लल्लूभाई—९१
छबीली—२८
छोटेलाल—५४१

ज

जंगबहादुर राणा—१९६
जगतनारायण पण्डित—३८५, ३८६, ४३२, ४३३
जगतराम—१५५, २९०
जगत सिंह—२६९, २७८, ३१२
जगदीशचन्द्र यादव—५४१
जगदीशपुर—३१, ३२, ३३, ३४
जगदीश शुक्ल—५४१, ५४५
जगनलाल—५३०
जगन्नाथ—१३९, ५४१
जगन्नाथपुरी—५४५
जगपति दास—५३०
जगाधरी—४३
जतिनदास—५१५
जपजी साहब—८९
जबलपुर—३८१, ३८३, ४०६
जमना देवी— ५५९
जमशेर स्टेशन—२६८
जमैका—२८६
जमुनाप्रसाद—५४०
जमोरिन—१८
जयकर—५०३
जयश्री—५२२
जयगोपाल—४७६, ४८५, ४८६
जयदेव कपूर—४७८
जयपुर—५१, ५२
जयप्रकाश नारायण—५३९
ज्योतिष—५१६, ५१८
जर्मनी—२३६, २८६, २९२, ३००, ३१५, ३५३
जलियाँवाला—२१७, २६३, ३१५, ३१६, ३१९, ३२१, ३५८, ३६०, ३६२, ४४८, ४५३,

४५५
जवाहरलाल नेहरू—९३, ९४, १२२, ५०७, ५०८, ५५८, ५५९, ५६८, ५६९
जसवन्तराय लाला—२१९, २२८, ३७०
जहाँगीर हाल—१८७, १९१
जहान-ए-इस्लाम—२४८
जागरान गाँव—८५
जाट पलटन—५५५
जॉन—४८
जानकी दास—५५१
जानकीनाथ—५४८
जॉन के—६०
जॉन लारेंस—४८, ६४, ६७
जॉन साइमन—४९६, ५५७
जापान—१३९, २१३, २१५, २१६, २४४, ५५२, ५५३, ५६२
जामा मस्जिद—५६७
जार्ज केम्पवेल—६२
जार्ज पंचम—२०९, ४८८, ५२७
जार्ज शुस्टर—१९४, २६२, २६३, २६९, ३०१, ३०२, ३०३, ३०६, ३०८, ३४९, ३६२, ५६५
जालोन—४६३
जितेन्द्र सान्याल—२१४
जिया-उल-हक—१९७
जिन्ना—५०३
जिवन्द सिंह—३०४
जीत सिंह—३१०
जीन्द—४३, ४५, ४९, ५१, ५२, २६२, ५६३
जीनत महल वेगम—३६
जीवन सिंह—३०८, ३११
जीवन राव—५०
जिस—५३९
जोगिन्द्र सिंह—२५३
जोगेशचन्द्र चट्टोपाध्याय—४२६
जोतराम नायक—५५५
जोधपुर—४६, ५०, २०१, २०३
जोहान्सबर्ग—३२५
जौनपुर—५४२, ५४४, ५४५, ५४६
जूनागढ़—९२, ५६९
जे०सिलण्हियन—३७
जेनिङ्गस—६१
जेनेवा—२८८
जेम्स प्रथम—१९
जेरार्ड कर्नल—४६, ४७
जेल की गाथ—१२६
ज्वाला सिंह—२६७, २६८, २६९, २७१
ज्ञान—१३१
ज्ञानवासी—५०५
ज्ञानसिंह—५५

झ

झूंसी का किला—३९०
झज्जर—४१, ४५, ४६, ४९, ५०, ५५८, ५५९
झांसी—२७, २८, २९, ४६८, ४८५, ५०६, ५४६
झेलम—१९९, २९९, ३२१
झेवर भाई पटले—५६९

ट

टाइटैनिक—२९५
टामकिन—२९३
ट्राबटन—५३८

ट्रिनिडाड—२८६
ट्रिब्यून—३३३, ३३९, ३६९, ४९२
टिहरी—५२५
टीरागढ़—५२५
टीपू सुलतान—५९
टेगार्ट—५१८
टेरी सार्जेण्ट—४९१
टेलर सार्जेण्ट—५१०
टैप—२६६
टोकियो—५५४
ट्वैलरज—३७५

ठ

ठाकुर दास भार्गव—५५७
ठाणा—९५, ९६

ड

डांडी यात्रा—३२३, ५५९
डगलस ब्रिगेडियर—३२, ३३
डच गायना—२८६
डब्लू फोर्ड कलक्टर मजिस्ट्रेट—४१
डयूप्ले कालेज—१८०
डलहौजी—३७, ३८
डलहौजी स्क्वायर—५२४
डायमण्ड हार्वर—५५५
डायर—९१
डिह मसुरिया गांव—५३५
डी०ए०देशपाण्डे—२१७
डी०ए०वी—२७६, १८४, ३०३, ३२१, ४७२
डी०गेल—२७४
डेक्कन कालेज—७८
डैफ्रो—१७६
डेरा गाजी खां—३३२, ३३३
डेली एमर्सन—१७०, १७१
डेली डाक्टर—१८६
डेली न्यूज—१९२
डेविड मेजर—५५

ढ

ढाका—४२८, ४५६, ४६०, ४६२, ४६३, ५१४
ढुढ़ियाल गांव—२९९

त

तमलूक—१८०
तमिलनाडु—५२६
तम्बूचट्टी स्ट्रीट—५१२
तलवन—५६५
तलवार—५५४
तसद्दुक हुसैन—४४९, ४५६
ताइलोक—५५४
ताजमहल—४४५
तात्याँ टोप—२९, ३१, ५१, ५९
तारदीवाल मेजर—१८०
तारापद चौधरी—५३०
तावडू—५०
ताशकन्द—३०१
तिजारा—५२
तिब्बत—१२८
तिलक—३२८
तिरलोक सिंह सरदार—५६०
तिरुवेल्ली—५२७
तुलाराम राव—४४, ४५, ४६, ४७, ५०, ५१
तुर्की—४१२
तेग बहादुर गुरु—१९९, २००
तेजबहादुर सप्रु—३३७

तेहरान—५२
तैमूर—३५, ३६
तोकियो—२१६
तोसिका—२१५
त्रिपुरा—५५२
त्रिपुरा सेन—५१५

थ

थर्नहिल—१६१, १६३
थानेसर—४५
थोराट—७१

द

द क्राइसिस इन द पंजाब—६५
दक्षिणेश्वर बम केस—४१९, ४२६, ४२७, ४३४
दधीचि—४३२
दमदम—२१
दयानन्द कालेज लाहौर—१५६
दयानन्द सरस्वती महर्षि—८५, ९१, ४७१, ५६५, ५६७
दयाशंकर—५४६
दर्शन—३५१
दलीप सिंह—२४४, २६५, २६६, २६७, २७१, ५४१
दशरथा गाँव—५३०
दस्तीदार—५१५
दादरी—४४, ४९, ५१, ५२
दामोदर चापेकर—६९, ७,० ७१, ७३, ७९
दामोदर पन्त सावरकर—९५
दामोदर स्वरूप सेठ—२०९, ४०१, ४०६, ४२९
दित्तू—२६५, २६७
दिल्ली—२७, २९, ३१, ३५, ३६, ४१, ४२, ४४, ४५, ४८, ५०, ६७, ७७, १९८, २०८, २०९, २६१, २६५, २७८, २८४, ३२९, ३४७, ३५६, ३६८, ३७७, ३८८, ४६९, ४७३, ४७८, ५१०
दिल्ली का किला—५४३
द्विजेन्द्र बोस—५४२, ५४३
दिवाली संघ—५२३
दि हिन्दुस्तान—२४४
दीनदयाल—१६३
दीन मोहम्मद—३५०, ३५१, ३५२
दीनानाथ—१९९, २००, २०१, २०४, २११, २१९, ३६२, ३७०
दीपावली विद्यालय—५२३
दीवानचन्द बैरिस्टर—३३३, ३३६, ३४६
दीवान चमनलाल—४९२
दीवान सिंह—५३९, ५४६
दुःखहरण मौर्य—५४५
दुजाना—४४, ४९, ५२
दुनीचन्द लाल—३२, ३३४, ३३५, ३४२, ३६४, ३६५, ३६९, ५५८, ५५९
दुर्गा देवी—४७७, ५०९, ५१०,
देवनन्दन दीक्षित—५५१
देवली—२१४
देवली कैम्प जेल—५४३
देशबन्धु—५२५
देशभक्त मण्डल—१९७
देशराज—३५१, ४७८
देश सेवक—२२०
देहरादून—२०८

दौलतपुर गांव—२२४
दौलतराव शिन्दे—३७

ध

धनपत राय लाला—८८
धनपतराय वकील—३३५, ३३९, ३४०
धन्ना सिंह—२७०, ३७३
धनिया—४५२
धनीराम—५११
धमिया कलां गांव—२६६, २६७
धर्मदास सूरी लाला—३४२, ३४३, ३४६
धर्मपाल—५६८
धर्मशाला—३५८, ३६३
धर्मसिंह—५६८
धारसना—५५९
धार—३८
धीराचक्र गांव—५३०

न

नंगल कलां गांव—३०४
नजरूल इस्लाम—१८७
नजात अली सैय्यद—५२
नत्था सिंह—२६१
नत्थूराम गोडसे—३२३
ननकाना साहब—२६२, २६३, २६६
नन्दलाल बनर्जी—१२१
नन्दसिंह—२६३, २६४
ननिगोपाल—१४७, १४८, १४९, १५०
नमक आन्दोलन—३२५
नरेन्द्रनाथ गुसाई—१६९, १७०, १७१, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५
नरेन्द्र गोस्वामी—१२५, १२६, १२७, १२९
नरेन्द्र मोदी—९४
नरेन्श राय—५१५
नलिनी वाकच्य—५१९, ५२०, ५२१
नलिनी सेन गुप्ता—५२४
नव शक्ति—१६०
नवांकोर—३२१
नसीपुर—५१
नसीबपुर—४६
नागपुर—३७, ३८, ३९, २२०, २२१, २२३, २२४, २२५, २२६, २२९
नादिरशाह—४५, ६७
नानक चन्द—५६५
नाना फ्रडनवीस—५९
नाना साहब—२४, २८, ३१, ३२, ५१, ५९
नाभा—४३, ५१, ५२
नामधारी सम्प्रदाय—५३
नारनौल—४४, ४६, ४९, ५१, ५२, ५६०
नार्टन—१७५, १७६, १७७, ३३७, ३४३
नारायण—१३८
नारायणगढ़—१५०
नारायणलाल—३८५
नारायण सावरकर—९४, ९५
नारायण सिंह—२४६, २५१
नारी शिक्षा मन्दिर—५२३
नासिक—९५, ९७, १४२, १५२, ४८५
नाहर सिंह राजा—४५, ४९, ५२
निकल्सन कर्नल—६४
निमराणा—५०
नियामतुल्ला कादियानी मौलवी—४४९
निरंजन सिंह—५३९

निरापद—१६४
निश्चलदास—२३३
निशेन महाचार्य—५१५
नीरेन्द्र—५१६, ५१८
नील—६२
नीलकण्ठ ब्रह्मचारी—५२६
नूर मोहम्मद खां नवाब—४३
नृपेन्द्र—१३८
नोनदी गांव—३४
नोवालिस—१०७
नोगल शमां गांव—२६५
नौजवान भारत सभा—४७६
नौलखा थाना—३७३
नौशेरा छावनी—२९९
नेकराम शर्मा—५४६
नेकी राम शर्मा—५५६, ५५७, ५६०
नेपाल—३२, १९६, २८४, ४३३, ४६५
नेशनल कालेज—४७२, ४८७, ५०९
नैनीताल—५४१
नैपोलियन—३७५, ३७६, ३७७
नैरेटिव आऊप द इण्डियन रिवोल्ट—६४
न्यू एशिया—२१६
न्यूयार्क—२८५, २८६

प

पंजाब—४०, ४२, ८८, १९६, ३१२, ३२१, ३२७, ३२९, ३७०, ३७१
पंजाब विश्वविद्यालय—२३५
पंजाबी—२२८
पाण्डीचरी—१२५, १५६, ५२६
पिंगले—२१२, २१४
पिंडोरी गंगासिंह गांव—२७५
पटियाला—४३, ४५, ५१, ५२, ५६, ५८, २५४, ३१८
पटियाला स्टीमर—२३१
पटौदी—४४, ४९, ५०
पठानकोट—३५९
परमानन्द भाई—९१, ९३, १५६, १९९, २००, २३५, २३६, २३८, २७८, २८३, ३४६, ३४७, ३५७, ४६१, ५६७
परमानन्द (झांसी वाले)—२७८
परमानन्द—१५५
परशुराम—३५३
पलवल—४१, ५१, ५५७
पलासी—५९
पवना—५१६
पवना शूटिंग केस—४६१
पाकिस्तान—७७
पाटलिपुर—२१०
पानीपत—४४, ४८, ४५९
पापुलर डिस्पेंसरी—२०७
पायेनियर—३४८
पिण्डीदास लाला—१९६, २२६, ३७१
पी०आर०राड—४९६
पी०एन०टैगोर—२१५
पुर्तगाल—१८, १९
पुरुषोत्तम नाटेकर—१८५
पुलिस निकास घोष—५१५
पूना—६९, ७१, ७३, ७४, ७६, ७८, १२३, २८१, ४८४, ४८५, ४८६
पृथ्वी सिंह—१५५, २७८, २८०

पेटमैन—३७३, ३७४
पेरिस—९३, ९४, ९८, १५४, २३५, २८५
पेशवा—१९७
पेशावर—२९०, ४७५
पेशावरी मल—३३३
पैटन विला जेल—३२१
पोरबन्दर—३२३
पोर्ट ब्लेअर—१०८, १५१, २९६
प्यारा सिंह भाई—३०४
प्लूटार्क—१७६
प्रणवेशकुमार चटर्जी—३८५, ४०६, ५०६
प्रताप—३३३, ३६९
प्रताप (कानपुर)—४२९, ४६३, ४७३, ५६३
प्रतापगढ़—५४१
प्रतिभा भद्र—५२५
प्रफुल्लकुमार चाकी—११९, १२०, १२१, १२५
प्रफुल्ल कुमार दत्त—५२२
प्रफुल्ल नालिनी ब्रह्मा—५२५
प्रभाताई—११७
प्रमिला गुप्ता—५२५
प्रयाग—३३७, ३३८, ३९०
प्रवास नाथ—५१५
प्रेमकृष्ण खन्ना—३८५, ३९८
प्रेमतोष बाबू—१३१
प्रेमदत्त—४७८
प्रेमनाथ—४८८
प्रेमसिंह—५४१
प्रेसीडेंसी कालेज—५४८
प्रिंस आफ वेल्स—५५०

फ

फणीन्द्र घोष—५०९
फतहा गांव—५३०
फतेह खां—२७५, २७६
फतेहगढ़—४५९, ४६०, ४६३
फतेहगढ़ सेन्ट्रल जेल—५३९
फतेहपुरी मस्जिद—५६७
फतेह सिंह—५५, २६२, ३३२
फरवाही—५५
फ्रांस—२४, ७२, ९६, २३७, २८५, ३७७, ४५३, ५०३
फरीदपुर—३१४, ४६८
फरुखनगर—४४, ४५, ४९, ५०
फरुखाबाद—५४०, ५४२
फारसिथ डिप्टी कमिश्नर—४३
फालू मटाफ—१७६
फिरोजपुर—१७६
फिरोजपुर झिरका—५०
फिलिस्तीन—१२४
फूलबाग—३०
फैजाबाद—४४७, ४५५, ५४५
फैरेल सार्जेण्ट—५१४
फोर्ड—५०
फोर्डपुरा—५१
फ्रेड्रिक कूपर—६५
फ्रेड्रिक सम्राट्—२८६

ब

बंका रानी—३९
बंकिमचन्द्र—१८१, ४७७
बंकिम बिहारी दास—५२१
बंगावासी कालेज—५२३

बंगा गाँव—४७१, ४७४
बंगाल—७७, ८२, १२५, २८९, ३१२
बंगाल—७७, ८२, १२५, २८९, ३१२
बंगाल आर्मी—५९
बंची अय्यर—५२६, ५२७
बंतासिंह धामिया—२६७, २६८, २६९, २७०, २७२
बंतासिंह सगवाल—२९९, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ५१६
बंता सिंह सरदार—५१२
बांकुरा—४०६
बांदा—३१, ५६५
बांसहीड—५२९
बैंकवे—८०
बैंकाक—२४६, ३०२
बइबलपुर—२७०, ३७३, २७५
बकाउल्ला—१४१
बक्सर जेल—८२, ८३
बच्ची लाल गुप्त—५४०
बजबज—२३९, २४०, २६२
बजिया—५४०
बटापुर गांव—५३०
बटाला—३३५, ३६५, ३६६, ३६७
बटुकेश्वरदत्त—४७८, ४८०, ४९१, ५०२, ५०६, ५०७
बड़ौदा—१५६, १८५, २२३
बड़ौदा कालेज—१५१
बदरका गांव—५०४
बदायूं—५४२
बद्रीनारायण मिश्र—५४६
बनवारी लाल—३८५, ४०५, ४०६
बनारस—२१४, २७९, २८०, २८२, ४०५, ४०६, ४२६, ४२८, ४२९, ४५८, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ५१६, ५४१, ५४५, ५६५
बनारसी दास—५६०
बनारसी दास चतुर्वेदी—५०९
बनारसी लाल—३९८, ३९९, ४००, ४०५, ४०७
बन्दी जीवन—२०६, २१४, ४७३,
बब्बर अकाली दल—२६२, २६३, २६४, २७०,,२७२, २७४, २७५
बम्बई—१९, ५१, ७१, ७४, ८०, ८१, ९१, १२६, १७३, १७९, १८५, २८५, २८८, ३३०, ३४७, ५१०, ५३२, ५५७, ५६१
बरार—३७
बराणी—५१
बरेली—१९४, ५४५, ५६५
बरेली जेल—५३९
बर्कनहेड लार्ड—४२१
बर्दवान—२३१
बर्मा—२५, ५७, ७९, ८५, १३९, २४३, २४४, २४६, २४८, २८४, ३१२, ४७१, ५५१, ५५३
बर्लिन—२३५, ५५२
बर्लिन सोसायटी—२३७
बर्ले—१७७, १७८, १८२
बलदेव सिंह—५४३, ५५७
बलराज भल्ला—१९९, २०८, २११, २९१, ३५७
बल्लभगढ़—४४, ४५, ४९, ५०
बलवन्त सिंह—२३९, २४३, २५१,

२५२, २५४, ४७३
बलवन्त सिंह भाई—२९९, ३०१, ३०२, ३०५
बलिया—५२८, ५२९, ५४२, ५४५, ५४६, ५६५
बशीर डाक्टर—३६०
बसन्त कुमार विसवास—१९९, २०५, २०७, २०८, २११, २१२, २१५,
बसन्तवाला मापारू—५३५
बसरा—५१, २६३
बहरामपुर—४०, ५१८
बहरोड—५२
बहादुरगढ़—४४
बहादुरशाह जफर—३५, ३६, ४१, ४३, ५०, ५९
बहोवाल—३०७
बाईबिल—२२६
बाग लेफ्टिनेण्ट—२६
बाजीराव पेशवा—२८
बापट—९१, ९३
बाबू राम—५३९, ५४०
बामन—२२९
बाम्बे क्रानिकल—३२९, ३३०
बारदोली—४२९, ५६९
बाराबंकी—४३४
बारीबाबा जेलर—१०१, १०३, १०४, १०५, २९७
बालकृष्ण चापेकर—६९, ७४, ७५
बालमुकुन्द भाई—१९९, २००, २०२, २०३, २०४, २०८, २११, २१५, २८५, २९१
बालापुल—३११
बालीगंज—५२४
बालेश्वर—५१७
बावल—५२
बिजली—१३८
बिजवासन—४१
बेनी—१२०
बेनीप्रसाद खोसला—३४६
बिलासपुर—३८०, ३८१
बिशन सिंह—५७, २७४, २७५, २७६
बिशन सिंह जैलदार—२६५, २६७, २७०
बिहार—१२२
बिहारी राम—५४१
बीच क्राफ्ट—१७७
बी०जी०खेर—५३३
बी०एन०कालेज—५३०
बीहल सिंह—५५
बुकानन—१७०
बुग्गा—३४१
बुद्धलाल स्वामी—५४२
बुन्देलखण्ड—४२९
बूटा लम्बरदार—२६५, २६७, २६८, २७०
बूलू—४४६
बूटा सिंह—३०२, ३०४, ३०७
बेतुल—३८४
बेलारी जेल—३१२
बेलसिंह—२५३, २५५
बैजनाथ सिंह—५४५
बैरकपुर—२४, २५, ४०
बैस्टाइल जेल—४९६
बोमेली—२७४, २७५
बोरंग—३२९, ३४६

बोल्शेविक—४२७
ब्लैक होल—६६
ब्रह्म अखाड़ा—३५२
ब्रह्मचारी—२७७, ३८८
ब्रह्मपुर—४५९
ब्रिटिश गायना—२८६
ब्रिटेन—५५३
ब्रीन—७५

भ

भगतसिंह—८५, १९९, २००, २६०, ३२०, ३२१, ४२५, ४७१, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४८५, ४८७, ४८८, ४९१, ४९७, ४९८, ५०४, ५०६, ५०७, ५०९, ५१०, ५६७, ५७१, ५७३
भगवदगीता—४१०
भगवती चरण—४७२, ४७७, ४९०, ५०९
भगवानदास महाशय—५६०
भगवानदास माहौर—५०९
भगेल सिंह भाई—२५४
भट्टू—४२
भरत सिंह चौधरी—५६०
भवानी मन्दिर—१३८
भागलपुर—५२०, ५३०
भाग सिंह—२३९, २४३, २५१, २५२, २५५
भानसिंह—२४०, २४१, २४२
भानुमति—९१
भारतमाता बुक सोसायटी—१९६, २०१
भारतमाता सोसायटी—१९६
भारत सभा—५०९
भारत भवन—१३, १८७
भिक्खी विण्ड गाँव—२५१
भिवानी—५५८, ५५९, ५६३
भीका जी कामा मैडम—९१, ९३
भीमसेन—३२१
भुवन पाडिया—५३६
भुसावल—५०९
भूपेन्द्रनाथ दत्त—१५३
भूपेन्द्रनाथ बसु—१६०
भूपेन्द्रनाथ सान्याल—२१४, ४२६, ४६४
भूला सिंह—२९१
भेणी—५३, ५४, ५५, ५७
भोपाल—१९५
भोंडसी—४१

म

मंगल गांव—२७५
मंगल पांडे—२५, २६, २७, ४०
मंगल सिंह—५५, २७८
मंगल सेन दीवान—३३२, ३४७, ३५३, ३६५
मंगली राम राव—५५७, ५६०
माण्डले—२४३, २४४, ४७१
माण्डले जेल—७९, ८५, ८६, ८८, ५५१
मिंटगुमरी—२०१, २४१, ३५६, ३६५, ३७५
मुंशीराम—५६५
मई गांव—२७६
मडौली कलां गांव—२५८
मणि सिंह—५१
मणीन्द्रनाथ बनर्जी—५३९
मजहर अली—३३५, ३६५
मतिदास भाई—१९९, २००, २६९,

२८५
मथुरा—४१
मथुरा प्रसाद—३४२, ५३०
मथुर सिंह डाक्टर—२९९, ३००, ३०१
मदनलाल धींगड़ा—९३, १८७, १८९, १९०
मदनमोहन मालवीय—२९४, ३४६, ३५२, ३५६, ३६०, ४१७
मद्रास—३९, १४९, १८५, २८४, ३१२, ३२९, ५१२, ५२६
मद्रास आर्मी—५९
मधुसूदन दत्त—५१५
मननहाना गांव—२७१
मनमाड—८४, ५०७
मनमोहन गुप्ता—८४, ४७६, ५०७
मन्नालाल द्विवेदी—५४१
मन्ना सिंह सरदार—५४१
मनुबाई—२८
ममता मुकर्जी—५२५
मरली—१७८
मराठा—७८, ८०
मलकापुरकर—५०६
मलेर कोटला—५५, ५६, ५८
मलोध—५६, ५७
मल्लू—५३३
मस्तान सिंह—५५
मस्तुमना—५३३
महमूदाबाद—४५२
महात्मा गांधी—८०, १२२, १४४, २९८, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३४८, ३४९, ३५२, ३५७, ३६०, ३६२, ३६५, ४६९, ४७०, ४७४, ४७७, ४८७, ५०४, ५०५, ५३१, ५३२, ५३८, ५४०, ५४३, ५४८, ५५२, ५५६, ५५७, ५५९, ५६१, ५६६, ५६९, ५७४
महात्मा फुल्ले—९२
महादेव गोविन्द रानाडे—९२, १७३
महादेवी—५५९
महाभारत—७२
महाराष्ट्र—६९, ७५
महाराज गंज—५३८
महावीर सिंह—४७८
महिषादल—५३४
महेन्द्रगढ़—५०, ५१, ५२, ५६३
महेन्द्र प्रताप सिंह—५७४
महेशमुण्डा—२३०
माकानिक—९२
माखनलाल चतुर्वेदी—३८०, ३८४
माडोली कलां गांव—५५६
माण्टगुमरी मार्टिन—६७
माण्टेगू—३७७
माणिकटोला—१११, १२६, १३८, १६१, १८०
माण्डली गांव—९१
मातंगी फुलेश्वरी—५३२
माधवराव—११६
माधो सिंह—५४१
मानकुंवारी—२५१
मानसिंह—२७८
मानावधवाना गांव—३११
मायावली आश्रम—१३८

मादटीनेक—२८५, २८६
मारवाड़ी लायब्रेरी—१९८
मार्कण्डेय—८४, ४७६, ५०७
मालवा—२६२
मालाबार—१८
मालेसन कर्नल—४१, ४६, ४७
माहजवीन—४४६
मिट्ठनलाल—५४२
मिठाईलाल गुप्त—५४५
मिजाजी लाल—५४२
मितसूई तोयामा—२१५, २१६
मेदिनीपुर—१२५, १६३, १८०, ५२२, ५२९, ५३४
मिन्टो लार्ड—९५
मियां राम चौधरी—५६०
मियांवाली जेल—५२२, ५३१
मारसेलीज—२८५
मिर्जाखान—१०८, १०९
मिर्जापुर—५४१
मिश्र—२३७, २४८
मीयांमीर स्टेशन—३०४
मुकन्दीलाल—३८५, ४६८, ५४२
मुक्तिनाथ—५४५
मुगल मिर्जा—३५
मुजफ्फरपुर—७९, ११९, १२०, १२१, १२३, १५७, १५८
मुञ्जे डाक्टर—२२१
मुडी पोर्ट—२५४
मुण्डेर—२६७, २६९, २७२
मुन्नालाल—५४१
मुफ्ती निजामुद्दीन—५१
मुरलीधर—३८६, ५५७
मुरलीधर मन्दिर—७५
मुरादाबार—१९४
मुरारीपुकुर रोड—१२७, १५४
मुलतान—३६२
मुहम्मद अली—३२२
मुहम्मद शफी—३४५
मुहासिन साह सय्यद—३४२
मूलराज सिंह—५४०
मृगराज सिंह—५४५, ५४६
मेनयुएल—१६१
मेरठ—१८, २९, ४०, ५०, २८०, २८२, ४०४, ४२९, ५४६
मेलाराम लाला—३४८, ३५३
मेवली—४४
मेवात—४१, ५५१
मेवा सिंह—२५५, २५६, २६७
मेसर्ज जगत सिंह एण्ड ब्रदर्स—२९९
मेहर सिंह—२०१, २०५
मैकफर्सन—३०
मैकास्विनी—३८३
मैकाले—५६५
मैक्समूलर—७९
मैटकाफ—५१
मैनपुरी—२७६, २७८, ३८८, ४०८, ४२७, ४३३, ५३९, ५४१
मैमनसिंह सेंट्रल जेल—५२२
मैसोपोटामिया—४५३
मोडी गांव—५१
मोता सिंह—३३९, ३४२
मोती—५१५
मोतीलाल नेहरू—३२४, ३४६, ३६०, ५०३, ५०५, ५५८, ५६६

मोतीलाल राय—१२९
मोनिचर विलियम्स—९१, ९२
मोहनलाल खत्री—४०६
मोहनलाल लाला—३४७, ३५०
मोहनलाल सक्सेना—३८५, ४१९, ४२१
मौज—२३८
मौलाना आजाद—५३१

य

यतीन्द्रनाथ दास—४७८, ४९०, ५२१, ५२२
यतीन्द्रनाथ मुखर्जी—३०५, ५१६, ५१७, ५१८, ५२१
यतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय—२३४
यतीशचन्द्र पाल—१५६
यशपाल—४७२
युगान्तर—१२६, १३८, १५२, १५३
युगान्तर आश्रम—२३६
यू०पी०—४०
यूलो—२३८
युवक दल—५५०
योकोहामा—२३८
योगेन्द्रचन्द्र घोष—१५९
योगेशचन्द्र चटर्जी—३८५, ४०६, ४२८, ४५६, ४५७, ४५८, ४६२, ४६७, ४६८, ५४७
यूनियन जैक—१८९

र

रंगा सिंह—२९९, ३०६, ३०७
रंगून—३६, ८९, १४०, २३२, २३४, २४६, ४७५, ५५३
रंगो बापू जी—३७
रींवा—३१
रकाबगंज गुरुद्वारा—२६२
रक्षित—१५८, १५९
रघुनाथ सहाय लाला—२८४, २९४
रघुवर शर्मा—१९९
रघोजी भोसले राजा—३७, ३८, ३९
रजी—४४६
रढ़ गांव—५६
रणजीत सिंह महाराज—५३
रणबीर सिंह चौधरी—५६१
रतनचन्द—३३५
रतन सिंह—५५
रतलाम—९२
रत्नागिरी—७८
रमणी मोहन घोषाल—२२७
रमाशंकर दास—५४६
रवीन्द्रनाथ—४६४
रवीन्द्रनाथ टैगोर—७७, २१६, ३४६
रवीन्द्र सान्याल—२१४
रसडा—५२९
रसल—६८
रहमत अली शाह—२५९
रहल सिंह—३१८
राइमणि पाडिया—५३६
राजकुमार सिन्हा—३८५, ४२९
राजकुमार सिंह—४७५
राजयोग—१८१
राजस्थान—४५
राजेन्द्रनाथ लहरी—४६९, ५८५
राजेन्द्रनाथ लाहड़ी—३८५, ४०६, ४१८, ४२५, ४२७, ४३०, ४३३, ४३४, ४६६, ४६७, ४६८, ४७५, ५०४

राजेन्द्र प्रसाद—५३०
राजा बाजार—२०५, २११
राधा कृष्ण—५४१
राधाकृष्ण लाल रानाडे—७५, ७६
राधो सिंह—३१०
रानी थाना गांव—२७०
रानियां—४३
रार्बट माण्टगुमरी—६५
राम—५२७
रामकंवर पण्डित—५६०
रामकिशन रनमी—३८५
रामकृष्ण खत्री—४०६
रामगढ़ झुगिया गोत—२७५
रामगोविन्द—५३०
रामचन्द्र—५४१
रामचन्द्र पण्डित—२३६
रामजी पाण्डे—७६
रामजी लाल—५५७
रानी थाना गोत—२७०
रामतीर्थ स्वामी—२०४
रामदत्त शुक्ल—५४१
रामदास साधु—५३
रामदुलारे—४२९
रामधन सिंह—५१
रामनगीना—५४०
रामनन्दन—५३०
रामनाथ पाण्डेय—३८५, ४०५
रामनाथ वर्मा—५४०
रामनारायण आजाद—५४०
रामभजदत्त पण्डित—३४२, ३६९
राममुहम्मद आजाद—३३०
रामरखा—१३९, १५६, २९७
रामरतन—५४०
रामरखी—२०३
रामराखन—५४१
रामराज यादव—५४५
रामलाल—१४१, १९९
रामलाल शर्मा—५४१
रामायण—२१७
रामबली शर्मा—५४२
रामशरणदास लाला—५६०
रामेश्वरदयाल—५४१
रामसरन—५११
रामसिंह—२६०
रामसिंह कूका—५३, ५४, ५६, ५७
रामसुख—५६
रामसुन्दर—५४५
रामजे मैकडोनल—२३७
रामावतार विकल—५९६
रायकोट—५५
रायगढ़—७८
रायड़ स्ट्रीट—१६०
रायबरेली—३९९, ४०६, ४०५, ४०७, ४३६
रायल कमीशन—४२१
राला—२६५, २६७
रावल पिण्डी—२६३, २९९
राव साहब—५१
रावी—६५, २६३, ५१०
रास बिहारी बोस—२०१, २०७, २०८, २०८, २०९, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २७९, २८२, २८९, २९१, ३०६, ३१२, ४२६,

४२९, ५०५, ५१६, ५५२
रिजाखाँ—४९५
रिनांड—६४
रिहल्स—३५८, ३६३
रीड—२५५, २५६
रुकैया—४४६
रूपनारायण पण्डित—५६०
रूस—१२४, २२६, २३७, ३०१, ४१३, ४७५, ४७७, ५०३
रेजिनाल क्रेडांक—१४१, १५०
रेणुका सेन—५२३
रेवरण रैनेडी—२३
रेवाड़ी—४१, ४४, ४५, ४६, ५०, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३
रैण्ड—६९, ७१, ७३, ७८, ७९, १२३
रैमिसबर्ग—२४३
रोशन लाल मेहरा—५११, ५१२, ५१३
रोशन सिंह—३८५, ४०२, ४१४, ४१८, ४२७, ४३५, ४३६, ४६६, ४७४, ५०४
रोहतक—४१, ४४, ४५, ४८, ८५, ५५५, ५५८, ५५९
रौलट—१२२, १६४
रौलट एक्ट—३१५, ३१६, ३१९, ३२१, ३४७, ३५७, ३६२, ३६६, ५५६, ५५७, ५६६
रौलट जज—२८२, ३१५

ल

लन्दन—१९, ३७, ९१, ९३, ९८, १८७, २३५, २८८, ३२१
लन्दन टाइम्स—७४
लक—५३८
लक्ष्मीबाई रानी—२७, २८, २९, ३०, ५१, ५९
लखनऊ—४०, ७९, ३७२, ३८५, ३८६, ३८९, ३९३, ३९४, ४००, ४०६, ४१२, ४१९, ४२५, ४२५, ४३७, ४५२, ४६२, ४६३, ४६६, ४७०, ४७४
लखीमपुर—४७
लघुकौमुदी—४७०
लच्छमनदास कामरेड—५६०
ललिता देवी—५७१
ललित मोहन चक्रवर्ती—५५५
लहमा सिंह—५५
ललिया सिंह—५५
लहसना सिंह—५५
लाजपत राय लाला—८०, ८४, ८५, ८६, १९९, २०४, २१५, २८३, २८४, २८५, ३७०, ३७३, ४७६, ४८५, ४८६, ५०७, ५१०, ५५८, ५६७, ५७४
लाफसेर—४९५
लाभसिंह—२४३, २६६, २६७
लाभसिंह बैरिस्टर—३५०, ३५१, ३५२, ३५३
लाभसिंह मिस्त्री—२६५, २६७, २७०
लायलपुर—१५६, २७२, २७४, ३५१, ४७४, ४८७
लारेंस रोड—२०१, २०५, २०७
लालकमाल (श्रीमती)—५२४
लाल किला—२१८
लालचन्द फलक—२१९, ३५७, ३७०, ३७१, ३७३
लाल बाजार—१६०, १६६, ५२४

लाल सिंह—५५
लावण्य प्रभादास गुप्ता—५२४
लाहौर—६५, ८४, ८५, ८६, १५४, १९६, १९७, २०१, २०६, २०७, २०८, २५१, २५८, २६०, २६१, २६३, २६४, २६५, २७८
लाहौर काण्ड—४७१
लाहौर का किला—५४४
लियोनाई मिडिल्ट—४९१
लीलावती नाग—५२३, ५२४
लुगार्ड जनरल—३२, ३३
लुधियाना—५३, ५५, ५६, १९४, २४१, २६५, २७८, २८०, २८४, २८८, २८९, २९२, २९८, २९९, ३०१, ३०२, ३०६, ३०७, ३०८, ३१०, ३२२, ३२३, ३२७, ३२९, ३३०, ३३३, ३४९, ३५४, ३५५, ३५६, ३५९, ३६३, ३६४, ३६५, ३७१, ३७२, ३७६, ३७७, ४७४, ४७६, ४७७, ४८०, ५०९, ५२२, ५३९, ५४२, ५५७, ५५९, ५६५
लूइस—१५१
लेनिन—४१२, ४१३, ४९५
लैमिंगटन रोड—५१०
लोकनाथ वाचस्पति—४७२
लोकमान्य तिलक—७०, ७१, ७२, ७४, ७५, ७८, ७९, ८०, ८५, ९२, १२२, १२३, १९७, २२६, ३१५, ३७२, ३८६, ३८७, ५७०, ५७४
लोहारू—४८, ४९
लोहिया राममनोहर—५३९
ल्यू किस—१४८

व

विंकाफ—१५६
वक्त—३६२
वजीर अली—२४
वजीराबाद—३४९
वटेश्वर—२७६
वतन सिंह—२३९, २५३, २५४, २५५
वन्देमातरम—८२, १३१, १३८, १५७, १६३, १७१
वर्कले विश्वविद्यालय—२३६, २४३
वर्तमान—४६३
वर्धा—३७८
वर्याम सिंह—२६९, २७०, २७२, २७४
व्रजभूषण—३४८, ३५१
वल्लभभाई पटेल—५६८, ५६९, ५७०
वान कोर्टलैण्ड जथल—४३
वान जीमरमैन—२३७
वानियाचांग—१७९
वरियाम सिंह—५८
वारिंग गोत—२६२
वारीन्द्र कुमार घोष—१२५, १२६, १२७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४८, १५२, १५३, १५६, १५७, १६९, १८१, १८३
वासुदेव चापेकर—६९, ७५, ७६
वासुदेव राव पटवर्धन—७१
वास्को डि गामा—१८, १९,
विक्टोरिया कालेज—५२५
विक्टोरिया टेक्लिकल इंस्टीच्यूट—१२६
विक्टोरिया नगर—२४३

विक्टोरिया महारानी—३६, ७१, ७३, ७४, ७८
विचार सागर—२३३
विजय कुमार सिन्हा—४७६, ४७८, ५०४, ५०६, ५०८, ५७२, ५७३
विजयकुमार सिंह—४७५
विट्ठलभाई पटेल—५६९
विद्रोही ईसा—१९६
विद्वांस—७४
विद्यापति—५५९
विनायक सावरकर—९४, ९५
विनोदकुमार गुप्त—१५७, १५८, १५९, १६०
विनोद बिहारी बोस—२०८
विनोबा भावे—४७७
विपिनचन्द्र पाल—८२, ८५, १२६, १५६, १८९, १९१, ३७२, ५२६
विमला प्रतिभा देवी—५२५
विराट नगर—४६५
विरूपाक्ष—५४५, ५४६
विलिंकन—७१
विलियन—२४९
विलियम कर्नल वाचली—९२, ९३
विलियम मेरिस—४१८, ४२०
विल्सन हाई स्कूल—९१
विवेकानन्द स्वामी—१८१, २८६
विश्वम्भर पिल्ले—१८५
विश्वासराय—११७
विष्णु कुमार द्विवेदी—५४६
विष्णु गणेश पिंगले—२७८, २८०, २८१, २८२, २८९, २९५
विष्णु शास्त्री चिपलूणकर—७८
विष्णुशरण दुबलिस—४२९
विसारत अली सूबेदार—४४
वीणादास—५२५
वीरसिंह—२९९, ३०७
वीरेन्द्र चन्द्र सेन—१७९
वेकेट—३५८
वेथून कालेज—५२४
वेद—७९, २०९
वेराड जेल—८०
वेल्लौर—५९
वैंकोवर—२३९, २५४, २५५
वैद्यनाथ—१७०, १७१
वैशम्पायन—५०४, ५०८
वृत्तिप्रभाकर—२३३
व्योमकेश चक्रवर्ती—१७८
व्हीलर कर्नल—२६

स

संजीवनी—१७१
सिंगापुर—२३९, २४४, ५५२, ५५४, ५६२
सगवाल गाव—३०२, ३०८
सज्जन सिंह फिरोजपुरी—३०४
सतयुग शरण—५३०
सतारा—१८५, ५२९
सतीश झा—५३०
सत्यनारायण डाक्टर—४८२
सत्यपाल डाक्टर—५५८
सत्यार्थप्रकाश—४७१, ४७२, ५६७
सत्येन्द्र चाकी—१२७
सत्येन्द्र वसु—१२५, १२७, १२८, १३१,

१३२, १७१
सन्यात सेन—२०७, ४१३
सन्तराम लाला—३५२, ३६७
सन्ता सिंह—२६५, २६६
सन्तानम बैरिस्टर—३४५, ३४६
सन्तोषकुमार—४५८
सन्देश—३८८
सन्ध्या—१३८
सफोटा—५३८
सद्धर्म प्रचारक—५६५
समद खां पठान जनरल—४६, ४७, ५०, ५१
समरनाथ—१५९
समर्थ रामदास—९७
समस्तीपुर—१२१
सरयू चौधरी—५२५
सरला देवी—३३५, ३३७, ३४२, ३४६, ३७०
सरावा गांव—२७८
सरोज नाग—५२६
सरोजनी नाडयू—५५९
सहसराम—३१
सहारनपुर—३९३
साइगोन—५३४
साइबेरिया—४९६
साइमन कमीशन—८४, ४७६, ४८७, ५०७, ५५७, ५५८
साईन्स आफ रेलीजियस—१८१
साठे—७५, ७६
साण्डर्स—८५, ४७१, ४७६, ४८६, ५०७, ५१०
साधुसिंह—३१८
साबरमती—२२६, ३२५, ५५९
सालामन—४९९
सावरकर—७६, ९३, ९४, १३५, १५२, १८७, १९०, १९१, २१७, २३८, ४६२, ५२६, ५७४
साहरी—२४३
सिकन्दर लाल—३५३
सिकेस कमिश्नर—५५२
सिद्धिनाथ—५४०
सिन्धुबाला माइति—५३४
सिपांय वार—६२
सिरसा—४३, ४५, ४६, ४८
सिरागंज—४७४
सिराज—५२
सिलानी—४१
सिवनी—३८३
सी०आर०दास—३६०
सीएटल—२४३
सी०एफ०ओटन—५४९
सीताराम डे—५१२
सीताराम पण्डित—५०४
सुक्खा सिंह—३०९
सुखदेव—४७२, ४७८, ४८५, ४८७, ४८८, ५०७, ५६७
सुचेता कृपलानी—५३१, ५३२
सुधारक—७८
सुधीर चन्द—१४२
सुन्दरलाल—३७८, ३८४
सुन्दर सिंह—२५१
सुनाम—३१८
सुनील चन्द्र—५५४
सुनेत—२४१

सुपतिराय—५२५
सुप्रभा भद्र—५२५
सुब्रह्मण्यम् शिव—५२६
सुबोधचन्द्र मलिक—२२९
सुभाषचन्द्र बोस—३२, २१७, २१८, ५४३, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५६२
सुरजन सिपाही—५५५
सुरमादास गुप्ता—५२५
सुलतानचन्द—१९९, २००, २०५, २११
सुलतानपुर—२१४
सुलतानसिंह लाला—५६०
सुल्ताना—४४६
सुरेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य—३८५, ४२८, ४६३
सुरेन्द्रनाथ बनर्जी—१२६, १२९
सुरेन्द्र पाण्डेय—४७५, ४७८
सुरेश भट्टाचार्य—२०९
सुशील दास गुप्ता—५२४
सुशील बोस—५४३
सुशील मुखर्जी—५३५
सुषमादास गुप्ता—५२५
सुहासिनी दास—५३५
सूरत—१९
सूर्यनाथ उपाध्याय—५४५
सूर्यसेन—५१४
सूबा सिंह—२६५
सेण्ट एण्डरुज कालेज—४६४
सेण्ट हेलिना—३७७
सेण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज लाहौर—२०६
सेण्ट्रल हैल्थ इम्प्रूविंग—४६७
सेण्ट्रल हैल्थ यूनियन—४६७
सेन फ्रांसिसको—२३६, २४७, २८७, ४८०
सेंट जान—२८८
सेफद्दीन किचलू डाक्टर—३३४, ३३५, ३४६, ३४८, ३४९, ३५८, ३५९, ३६१, ३६९
सेलुलर जेल—९७, १०५, २४१
सैदपुर—३२१
सैयद साह—३४६
सोनीपत—५६३
सोमा—२१५
सोहन लाल पाठक—२४६, २४७, २४८, २४९, २५०
सोहना—५०
सोहागी—२३३
स्कॉट—४८५, ४८६
स्कॉटलैण्ड—१७७
स्कॉटस् लेन—१७९
स्काटिश कालेज—५४९
स्कॉटहोम—२३७
स्टीवेन्स—५२५
स्ट्रेटसमैन—८३
स्नेहवाला—५३५
स्मिथ—२७५
स्याम—१३९
स्यालकोट—३४५, ३५२
स्यालु सिंह ठाकुर—५१
स्वदेशी—१६३
स्वराज—१४३
स्वर्णमन्दिर—५४
स्वर्ण सिंह—४७१, ४७२

स्वामी सोमदेव—३८६
स्विटजरलैण्ड—२३६, ५५१
स्वीडन—२३७

श

शंकर अय्यर—५१६, ५२७
शंकरन् नैयर—३४६
शंकर राव—४९६
शंघाई—२३८, २३९, २५१, २९९, ३००, ३०२
शम्भूनाथ आजाद—५११, ५१२, ५१३
शचीन्द्रनाथ बख्शी—३८५, ४०६, ४२६, ४६७
शचीन्द्रनाथ सान्याल—२०६, २०९, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २८२, ३८५, ४०६, ४२६, ४६२, ४६४, ४६७, ४६८, ४७३, ४७५, ५०५
शचीन्द्र सेन—१८६
शम्भुनाथ—५४६
शरच्चन्द्र—५४८
शरतचन्द्र बोस—५३९, ५४२
शमसुल आलम—१८२, १८३, १८४
शहादत भाई—४४६
शादी रास—५१
शान्तिकणा सेन—५२५
शान्तिसुधा घोष—५२५
शान्ति स्वरूप त्यागी—५४६
शाम चुरासी—२६९
शावर्स ब्रिगेडियर जनरल—४५, ४६
शाहजहाँ—१९
शाहजहाँपुर—३८६, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९६, ३९७, ३९८, ४०४, ४०५, ४२०, ४३७, ४३८, ४४८
शाहपुर—३५८
शिमला—२८४, २९४, ४८८
शिब्बनलाल सक्सेना—५३८
शिव—५४४
शिवकुमार द्विवेदी—५४६
शिवचरण—५०९
शिवनारायण सिंह—५३०
शिवप्रसाद गुप्त—५०६
शिवपुर—३२
शिवराज मिश्र—२२२
शिवराम सिंह—५४०, ५४१
शिव वर्मा—४७९
शिवव्रत सिंह—५४५
शिवाजी छत्रपति—७१, ७२, ७८, ४१३, ४९५, ५२७, ५३४
शिवाजी समिति—२७७
शिवानन्दन ऋषि—५४३
शिशिर घोष—१२०
शीलभद्र याची—५३९
शेक्सपीयर—१७६
शेखावटी—४७
शैलेन्द्र बाबू—१५८, १६०, १६१
शोभा बाजार बम केस—४१९
शौकत बेग—५४३
श्याम—३०२
श्यामजी कृष्ण वर्मा—७०, ९१, ९२, ९४, २३५, २३८, ५२६, ५६७
श्याम बाजार—१८०
श्यामलाल (रोहतक)—५५७, ५६०
श्यामलाल (हिसार)—५५७, ५६०

श्याम सुन्दर चक्रवर्ती—१५७, २२९, २३१, २३२, २३४
श्रद्धानन्द स्वामी—५६५, ५६६, ५६७
श्रीभगवान् शुक्ला—५४६
श्रीरामचन्द्र—१९३, ४३३
श्रीराम वाजपेयी—३८६
श्रीराम शर्मा—५५७, ५५८, ५६०
श्रीहट्ट—१७९, १८०

ह

हंडूरास—३०२
हँस गाँव—३१०
हंसराज महात्मा—२०८
हाँकांग—२३८, २३९, २४३, २५१, २५४, २५८, ३००
हाँसी—४२
हड़सन कप्तान—४५
हड़सन मेजर—३५, ३६
हड़सन लेफ्टिनेण्ट—४२
हण्टर कमेटी—३६०, ३६५
हण्टर कमीशन—३१६
हजारा सिंह—२६५, २६७, २७०, २७१, २७५
हजारी बाग—३७७, ४०६, ४५८
हनुमन्तसहाय लाला—१९९, २०८, २०९, २११, २३६, २९१
हबीबुल्ला खाँ—३४२
हमरा—३७५
हयृव्हीलर—६४
हयूसन साजेण्ट मेजर—२५
हरकनाथ पण्डित—३९८, ४००
हरकिशन लाल लाला—३२७, ३३२, ३३४, ३३५, ३४२, ३४६, ३६०, ३६९
हरगोविन्द—४०६
हरगोविन्द सिंह—५४२
हरदयाल लाला—९१, ९३, १९७, २०१, २०४, २०८, २३५, २३६, २३८, २४४, २४८, २८५, २८६, २८७, २८८, ३७३, ५५६, ५६७, ५७४
हरनाम सिंह बाबू—२४३, २५१, २५२
हरयों खुर्द गाँव—२६५
हरिगोपाल—५१५
हरिगोपाल बाल—५१५
हरिद्वार—५६५
हरिनारायण सिंह—५४१
हरिसिंह—२९९
हरियाणा—१७, ३९, ४०, ४४, ४९, ५०, ५५५
हरिपद पण्डित—५३४
हरिपन्त चापेकर—६९
हरिप्रसाद—५४६
हरि मन्दिर साहब—५४
हरियाणा लाईट इन्फैन्टरी—४२
हरिराम सूबेदार—५५५
हरिश्चन्द्र—४३२
हरिसिंह जैन वाला—५६०
हरेन्द्र—८४
हरेन्द्र भट्टाचार्य—४७६, ५०७
हर्वर्ट हैमिल्टन—३०
हल—१७६
हलचल—५४०
हलिगशेद—१७६
हसन इमाम—३४४

हसन खां—२४६
हसरत मोहानी—४५२
हाकिन्स—१८
हाकिम राय लाला—३५२
हाकिम सिंह—५५
हायकिन्स—२५५, २५६, २५७
हार्डिंग लार्ड—१९८, २०१, २१०
हार्टेन—२७१, ४०४, ४०५, ४०६, ४२५
हालवेल स्मारक—५५२
हावड़ा—१८०, ४२६, ५२०, ५२१
हास्याबाला देवी—५२६
हिजली—५२४
हिटलर—५५२
हिन्दू विश्वविद्यालय—४०५, ४२७, ४२९, ४३३, ४३५, ५३२
हिन्दुस्तान—१९६
हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन—४७५
हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ—४७५
हियरसे जनरल—२६
हिसार—४२, ४५, ४८, ८५, ५५५, ५६०, ५६१, ५६३
हिस्ट्री आफ द सिपॉय—६०
हीरा बाग—७४
हीरा मण्डी—३२२
हीरा सिंह सरदार—५६, ५७
हुगली—२३९
हेग अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—९५, ९६
हेमचन्द्र दास—१२५, १२७, १४२, १४३, १५२, १५४, १६२, १६३, १६९, १८६
हेमचन्द्र सेन—१८०
हेमिल्टन—४३१, ४३३
हेरम्बल लाल गुप्त—२१५
हेरिन—३५३
हेलनावाल—५२५
हैक्टर—१९
हैदराबाद—१९६, ५६८
हैमलेट—१७७
हैयतपुर—२७५
हैरीसन रोड—१७९
हैलिडे—१६०, १६१
होडल—४६
होतीलाल—१४५
होम्स—४६, ६२
होमरूल लीग—८०
होशियारपुर—२४३, २६६, २७१, २७२, ३०४, ३०५, ३०७
हौलवेल—६६
हृदयनाथ पाठक—५४५, ५४६

❑❑❑

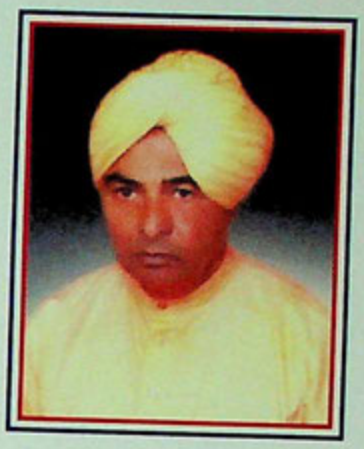

सत्यधर्म द्वारा प्रकाशित
आचार्य सत्यानन्द की
अन्य कृतियाँ

१. वैदिक नित्यकर्म एवं पञ्चमहायज्ञ विधि
२. सर्वनाश : शराब से
३. शिक्षाप्रद कहानियाँ
४. प्रेरणाप्रद कहानियाँ
५. उत्तम शिक्षा की अच्छी-अच्छी कहानियाँ (दो भाग)
६. भारत की आदर्श वीरांगनाएँ
७. दो बहनों की धार्मिक बातें
८. जीवन निर्माण की कहानियाँ
९. भजन संगीत सागर (दो भाग)
१०. वैदिक सत्संग पद्धति

अप्रकाशित–

११. वैदिक नित्यकर्म एवं पञ्चमहायज्ञ विधि मीमांसा
१२. गाय विश्व की माता

तथा

लगभग दो दर्जन पुस्तकों का सम्पादन

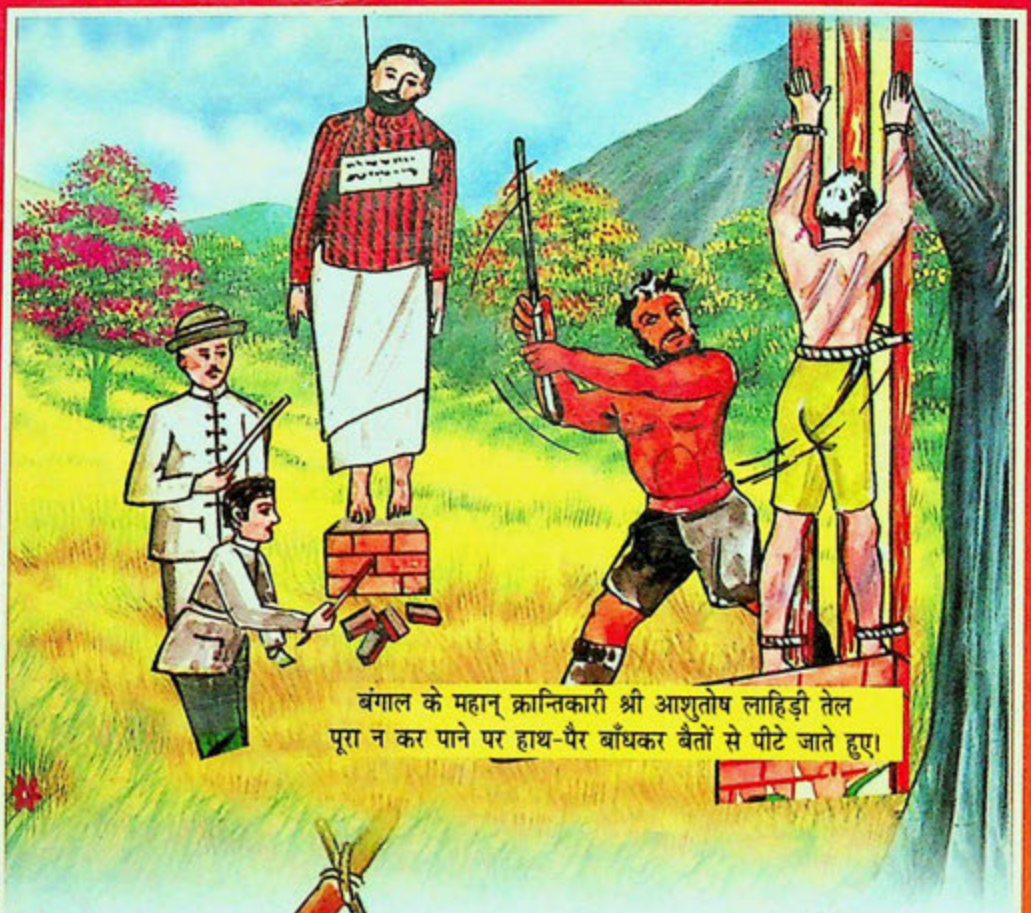

बंगाल के महान् क्रान्तिकारी श्री आशुतोष लाहिड़ी तेल
पूरा न कर पाने पर हाथ-पैर बाँधकर बैतों से पीटे जाते हुए।

वीर सावरकर अण्डमान की काल-कोठरी में
तेल के कोल्हू में बैलों की जगह जुतकर तेल पेरते हुए।

आवरण सज्जा : श्रीमहालक्ष्मी ०११-५५८४५५९९, ०९३१३७८४२७२